रामचरितमानस

१

मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन
भोपाल

श्री गोस्वामी तुलसीदास कृत

रामचरितमानस

श्री विनायकी टीका सहित

वाच्यार्थ-व्यंग्यार्थ-गूढ़ार्थ-पूरित, भाव, रसादि सहित तथा विविध कविवरवाणी-विभूषित
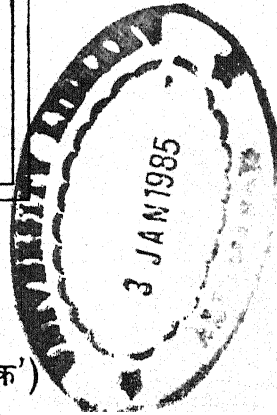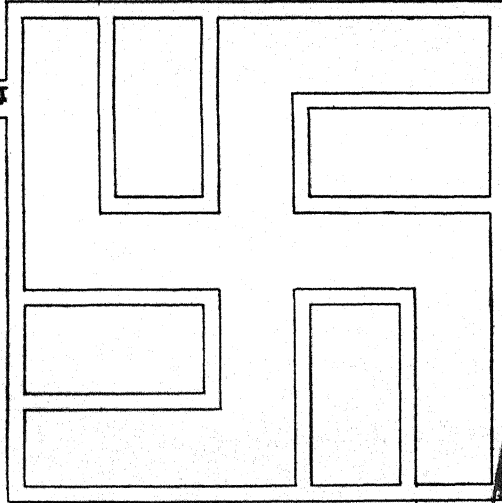
जिसे
पं० विनायक राव (उपनाम कवि 'नायक')
(पूर्व) असिस्टेण्ट सुपरिन्टेंडेंट ट्रेनिंग
इंस्टिट्यूशन जबलपुर ने रचा

मूल्य : २००.०० प्रति खण्ड
६००.०० सम्पूर्ण ग्रन्थ

प्रकाशक : मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन
भोपाल

वितरक : अंकुर प्रकाशन
१/३०१७ मंडोली रोड, रामनगर
शाहदरा, दिल्ली-११००३२

आवरण : शिव कुमार सिन्हा

मुद्रक : शान प्रिंटर्स, दिल्ली-११००३२

विनायकी टीका

२०वी शताब्दी मे रामचरितमानस पर तीन उल्लेखनीय टीकाये छपी है। अग्रेजी मे ग्राउस की, उर्दू मे मुशी कालिका प्रसाद की, तथा हिन्दी मे बैजनाथ कुर्मी की।

आज से लगभग ७० वर्ष पूर्व जबलपुर के श्री विनायक राव ने विनायकी नामक टीका छपाई। उन्होने पूर्ववर्ती टीकाओ और ग्रन्थो से सामग्री का सकलन तो किया ही, अपने समय के अच्छे रामायणीयो की भरपूर सहायता ली, साथ ही अपने गद्य अनुवाद को उन्होने मूल के भावार्थ के अनुरूप रखने मे विशेष सावधानी बरती। यह टीका आधुनिक परिमार्जित हिन्दी मे पहली उत्तम टीका है। श्री रामेश्वर भट्ट की टीका गद्य मे उल्था मात्र है। भावार्थ की अभि-व्यजना की दृष्टि से श्री विनायकी टीका का स्थान अद्वितीय है।

इस टीका की मुख्य विशेषताओ का उल्लेख करना आवश्यक है—टीकाकार ने जैसा कि अपनी भूमिका में लिखा है कि उन्होने इसका आरम्भ हिन्दी मिडिल के और एन्ट्रेस के विद्यार्थियो के निमित्त किया, इसलिए इसे सुबोध बनाना ही उनका उद्देश्य नही था, उनका उद्देश्य यह भी था कि तुलसीदास के रामचरितमानस का समग्र दृष्टि से अध्ययन किए बिना इसका अर्थ ठीक तरह नहीं खुलता—यह बात हृदयगम कराना भी था।

उन्होने तीन प्रकार के सन्दर्भ दिए—पहले प्रकार के सन्दर्भ तो तुलसीदास जी के ही ग्रन्थों से दिए गए हैं, उनमें रामचरितमानस के स्थलोत्तर के सन्दर्भ हैं और दूसरे ग्रन्थो के सन्दर्भ हैं। इन सन्दर्भों के देने के पीछे टीकाकार का उद्देश्य यह है कि तुलसीदास के मन मे बसी हुई अन्विति से पाठक का परिचय हो और वह समग्र दृष्टियो से पक्तियो का अर्थ लगाए, कही-कही ऊपर से दिखने वाले विरोध के परिहार के लिए भी सन्दर्भान्तर दिए गए है। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ कवितावली, विनयपत्रिका, गीतावली, दोहावली के है, इन सन्दर्भों को जुटाने मे टीकाकार ने बहुत परिश्रम किया है।

दूसरे प्रकार के सन्दर्भ वे है जो मध्ययुगीन हिन्दी के ग्रन्थो से है, उनमे कुछ तो लक्षण ग्रन्थ है, जैसे-काव्य-निर्णय, यशवन् का यशोभूषण, कुछ राम कथा से सम्बद्ध ग्रन्थ हैं . राम-चन्द्रिका, रामचन्द्रभूषण और कुछ मध्ययुगीन कवियो के उद्धरण है जैसे कबीर, सूर, रहीम, सुन्दर। सस्कृत के कालिदास जैसे कवियो से भी उद्धरण दिए गए है, सस्कृत के बहुत से उद्धरण ऐसे हैं जो तुलसीदास के श्रोत सामग्री हैं, जैसे—कुमारसम्भव के श्लोको की छाया बालकाण्ड मे है और उन श्लोकों को सामने रखने में यह बात अपने आप प्रत्यक्ष हो जाती है। इसके अतिरिक्त बहुत से तुलसी के उत्तरवर्ती मध्ययुगीन और आधुनिक कवियो के तुलनीय सन्दर्भ भी टीकाकार ने एकत्र कर दिए हैं, इनमे कई एक कवि ऐसे हैं जो अत्यन्त अल्पज्ञात है, जैसे सुवश, कान्ह। कादूर और ये सन्दर्भ अधिकतर मौखिक परम्परा से सकलित किए गए है, इस दृष्टि से ये एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज का भी काम करते है, जिसमे तुलसी और रामकथा से सन्दर्भित सन्दर्भों की वाचिक परम्परा की समृद्धि सुरक्षित है।

इस टीका मे तीसरे प्रकार के सन्दर्भ वस्तुत सन्दर्भ नही है, वे युक्ति है, युक्ति या प्रमाण है, जहाँ कही टीकाकार को किसी पंक्ति मे कोई ऐसी कठिनाई दिखाई पड़ी है कि उसका समाधान ठीक नही मिलता वहाँ उन्होने शास्त्रो से अथवा उस पक्ति के अर्थ करने के लिए ठीक प्रक्रिया पूरे ग्रन्थ के अभिप्राय को सामने रखकर समझाई है। उदाहरण के लिए 'बिन अघ

कही सतीय अस नारी' पक्ति का अर्थ करते हुए उन्होंने अघ का अर्थ पाप न करके, दु ख किया, और उत्तरकाण्ड के सन्दर्भ से इसका औचित्य समझाया है।

इन तीन प्रकार के सन्दर्भों से सचालित होने के कारण यह टीका अपने आप मे एक शोधकार्य है। आज भी इन सन्दर्भों के साथ रामचरितमानस को पढते समय यह प्रतीत होने लगता है कि रामचरितमानस समग्र भारतीय मन का प्रतिबिम्ब है और उसकी समग्र सृजनात्मक कल्पना जहाँ एक ओर समष्टि मन मे उद्भूत होने वाली कल्पना है, वहीं दूसरी ओर उस कल्पना ने समष्टि मन को नए ढग से सोचने के लिए नयी दिशाये दी है। रामचरितमानस की इस टीका के द्वारा रामचरित अपने आप मे एक जातीय सवाद की प्रक्रिया बन जाता, इसलिए ७० वर्ष बाद भी ये टीका आज नयी और सार्थक लगती है, क्योंकि इसका लक्ष्य ही अनजानी समग्रता और एकता का अन्वेषण है।

आलोचनाशास्त्र मे जिस सरचनावाद की बात पश्चिम में व भारत मे विगत दो दशको मे की जा रही है उसकी भीतरी समझ प्राचीन टीकाकारो मे कितनी गहरी थी, इसका प्रमाण बैजनाथ कुर्मी की टीका, विनायकी टीका और विजयानन्द त्रिपाठी के मानस-पियूष मे सहज रूप मे मिलता है। विनायकी टीका अन्य दो टीकाओ से इस माने मे विशिष्ट है कि वह कथावाचक या कथा के अध्यात्म तत्त्व के व्याख्याता या चमत्कारपूर्ण अर्थ देने वाले विद्वान् की लिखी टीका नहीं है, वह टीका साहित्य के सामान्य किन्तु गहरे पाठक की लिखी टीका है, और इसमे साहित्य पक्ष के साथ ही साथ मानवीय पक्ष अधिक महत्त्वपूर्ण है।

मुझे इस टीका के पुन प्रकाशन से बडी प्रसन्नता है, मैं इसके लिए मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन और अंकुर प्रकाशन को बधाई देता हूँ।

—विद्यानिवास मिश्र
निदेशक एव आचार्य, क० मु० हिन्दी विद्यापीठ
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

अपनी ओर से

'रामचरितमानस' की लोकप्रियता से लोग परिचित है। इस ग्रथ की खूबी यह है कि इसे अपढ आदिवासी जानते है और कला के पारखी विद्वान भी। इसका रसास्वादन लोग भक्तिभाव से करते है और इस पर केन्द्रित वैचारिक गोष्ठियाँ भी होती है। 'रामचरितमानस' के नाम पर विश्वमेला आयोजित किया जाता है। इसकी तरह अन्य कोई ग्रथ हमारे देश मे नही जाना जाता। इसकी लोकप्रियता का लाभ उठाकर कई बार असामाजिक और साम्प्रदायिक गति-विधियाँ भी होती है। ऐसे लोग मानस की गलत व्याख्या करते है। ऐसे तत्त्वो को प्रभावहीन बनाने के लिए जरूरी है कि इस ग्रंथ को सही ढग से प्रस्तुत करने के प्रयत्न जारी रखना चाहिए। जो लोग ऐसा करते है, उनमे से एक नाम जबलपुर निवासी विनायक राव का भी है। वे मानस के मर्मज्ञ पाठक थे। वे बिना किसी लाग-लपेट के इस ग्रथ की एक-एक पक्ति को समझाने का प्रयत्न करते थे। बहुत दिनो तक वे मित्रो तथा काव्य-रसिको के बीच मानस की पक्तियो और प्रसगो का अर्थ मौखिक रूप से खोलते रहे। अन्तत उन्होने उसको लिपिबद्ध करने का निर्णय लिया। उन्होने मानस के प्रत्येक अध्याय की व्याख्या लिखी और इस शताब्दी के पहले दशक मे सात खण्डो मे विनायकी टीका का प्रकाशन हुआ। जब यह टीका पाठको तक पहुँची तो लोगो ने इसका अभूतपूर्व स्वागत किया। किसी व्यावसायिक प्रतिष्ठान से प्रकाशन न होने के कारण माँग के बावजूद इसके सस्करण निरन्तर नही निकल सके।

पिछले दिनों मुझसे हिन्दी के गभीर विद्वान नामवर सिंह ने इस टीका की प्रशसा की। उनके अनुसार यह मानस की सबसे अच्छी टीका है। उनकी बात से प्रेरित होकर हमने सोचा कि यह काम हिन्दी साहित्य सम्मेलन को करना चाहिए। आखिर, इस सस्था का यही तो काम है। अन्तत सम्मेलन ने प्रकाशन का निर्णय लिया और अब टीका आपके सामने है। इतने वर्षों बाद इसके पुनर्प्रकाशन का श्रेय पाकर सम्मेलन गौरवान्वित है। पुनर्प्रकाशन के श्रेय मे हम अपनी ही तरह विनायक राव जी की पुत्रवधू श्रीमती प्रेमकाति तिवारी को भागीदार मानते है, क्योकि दोनो के सहयोग के बगैर यह काम इतनी तत्परता से सभव न होता।

—मायाराम सुरजन
अध्यक्ष
मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन
भोपाल

भूमिका

जिस अनूठे भाषा-काव्य के प्रथम भाग का यह तिलक लिखा गया है, उसे गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'रामचरितमानस' ऐसा नाम दिया है और उसके भागो को सोपान कहा है। परन्तु वाल्मीकिजी के सस्कृत महाकाव्य रामायण के अनुसार इसे भी लोग रामायण कहने लगे है और उसके सोपानो का 'काण्ड' ऐसा नाम भी उन्ही के अनुसार पड गया है।

यह वाल्मीकीय रामायण का उल्था नही है क्योकि इसमे कथा-भाग दूसरे ही प्रकार से अनोखी रीति पर वर्णन किया गया है और इसमे अध्यात्म रामायण, भागवत, महाभारत, रघुवश, कुमारसम्भव, उत्तररामचरित, हनुमन्नाटक, महारामायण आदि सस्कृत तथा हिन्दी के अनेक कवियो की कविता के उत्तम विचार पाये जाते है। कहा भी है—नाना पुराण-निगमागमसम्मत यद्रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि। आदि।

हिन्दी साहित्य मे तुलसीकृत रामायण से बढकर अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ नही है। इसका प्रचार सब श्रेणियो के लोगो मे किसी न किसी रूप से है। यथा— इसका उल्था उर्दू मे मुशी कालिका प्रसाद लखनऊ वालो ने 'रामायण खुशतर' के नाम से किया है। मराठी मे भी यह अनुवाद सहित छप चुकी है। रामायण बगाली मे भी है। तुलसीकृत रामायण का अग्रेजी मे तर्जुमा एफ० एस० ग्रौसी० एम० ए० सी० आई० ई०, कलेक्टर जिला बुलन्दशहर ने किया है।

यह ग्रन्थ धर्मनीति, समाजनीति और राजनीति से युक्त सभी आर्ष ग्रन्थो के अनुसार सीधी-सादी भाषा मे इस प्रकार से उदाहरण के साथ पक्षपात-रहित लिखा गया है कि शैव, शाक्त, स्मार्त्त, वैष्णव किसी के सिद्धान्तों से इसका विरोध नही पडता है, तभी तो सभी इसका सम्मान करते है।

डॉ० ग्रियर्सन साहब कहते है कि गोसाईंजी ने कबीर, नानक आदि की नाई अपना कोई पथ नही चलाया, उन्होने इसकी रचना इस प्रकार की है कि किसी पथ का हिन्दू इनके बताये हुए सन्मार्ग का अनुसरण करने मे आगा-पीछा न करेगा।

आजकल के हिन्दुओ के प्रसिद्ध प्रचलित धर्म के निमित्त यह पुस्तक बहुत ही विश्वस-नीय मार्गदर्शिका है।

रामायण का प्रभाव प्राय सारे भारतवर्ष पर है। इसकी कहावते अपढ, कुपढ और सुपढ़ सभी लोगो के कहने-सुनने मे आती है। तभी तो केवल रामायण पढ़कर ही कई लोग ज्ञानी बन जाते हैं और विरक्त भी हो जाते हैं। धर्मशासन के लिए वह धर्मशास्त्र का काम देती है।

मुसलमानी राज्य के पश्चात हिन्दुओं के चरित्रों मे सुधराव के निमित्त यह एक विशेष कारण हुई है।

विद्या-प्रचार मे भी इससे बहुत कुछ सहायता मिली है। कारण, बहुत-से लोग इसको पढ़ने ही के लिए हिन्दी लिखना-पढना सीखते है। इस ग्रन्थ का आदर रक और राजा सभी करते है।

सादी भाषा होने पर भी रामायण के भाव साधारण तथा गभीर भी है। तभी तो इसे पढकर ग्रामीण सीधे भाव मे मग्न रहते है, साधारण लोग साधारण भाव मे और पडित लोग अनेक अनूठे गभीर और वेदान्ती विचारो से सन्तोष पाते है।

हिन्दी के प्राचीन ग्रन्थ बहुधा कविता ही मे लिखे गये है और उनकी रचना ब्रजभाषा

ही मे की गई है, परन्तु तुलसीदासजी ने एक नई ही भाषा की सृष्टि की। जिसमे ब्रजभाषा बैसवाड़ी, भोजपुरी, खड़ी बोली और उर्दू भी स्थान-स्थान पर पाई जाती है। ऐसा करने मे कवि को अपने भाव सरलता से प्रकट करने का सुभीता हुआ है और इसी कारण से यह ग्रन्थ सर्व-साधारण की मनोरंजक और आबाल वृद्ध वनिता सबको रुचिकर हो रहा है। वाल्मीकीय रामायण का अंग्रेजी कवित्तबद्ध अनुवाद करने वाले ग्रिफिथ साहब ने लिखा है कि इंग्लिस्तान के साधारण लोगो मे बाइबिल का जितना आदर और प्रचार है, उससे बढ़कर आदर और प्रचार पश्चिमोत्तर प्रान्त के हिन्दुओ मे तुलसीकृत रामायण का है।

निदान रामायण के बारे मे जो कुछ कहा गया है, उसे अत्युक्ति न समझना चाहिए क्योकि इस ग्रन्थ मे अनेक उत्तम बातों का समावेश है और वे सक्षेप मे यो हैं

मन०छ० . राजन समाजन के काज लख्यौ चाहौ जो पै, चाहहु जो देखन रहनि भाई-भाई की।
सभा माहि बोलन त्यो छोटे औ बडेन हू की, चाहहु विलोकन सम्हार रघुराई की।
जाँचन चहहु जो परख 'अम्बादन' हू की, रस की बरस औ निरख मनुसाई की।
रीति चाहौ नीति चाहौ प्रीति जो पै चाहौ कछू कविता पढौ तौ सिरी तुलसी गोसाईं की॥

कुडलिया गाथा रामचरित्र की, सांशारिक व्यौहार।
ईशभक्ति नृप गुरु भगति, मात पिता कौ प्यार॥
मात पिता कौ प्यार, सत्यता की दृढ़ताई।
अटल तिया-पति प्रेम, मत्रिवर की चतुराई॥
कहत 'विनायक राव', भाई भाई को साथा।
सेवक सेव्य सुप्रेम पूर्ण रघुनायक गाथा॥

बालकाण्ड सम्पूर्ण रामायण का प्राय एक-तिहाई भाग है। इस काण्ड मे ३६१ दोहे है, उनमें से १२० दोहे तक भूमिका ही है।

यो तो समस्त बालकाण्ड की रचना उत्तम है, परन्तु उसमे भी वन्दना, मदन-दहन, नारद-मोह, प्रतापभानु की कथा तथा रामजन्म, फुलवारी-वर्णन और धनुष-यज्ञ के प्रसग बहुत ही अद्भुत हैं। इतना सब होने पर भी इस धुरन्धर कवि ने अपने को दीन और हीन माना है।

रामायण की कथा किस ने, किससे किस ढग से कही, सो सब बालकाण्ड पूर्वार्द्ध मे पृ० १३३ की टिप्पणी में विस्तार सहित दी गई है।

इस तिलक का नाम श्री विनायकी टीका रखने का यह कारण है कि (विक्रमीय सम्वत् १९६४) मिती भादों सुदी, विनायकी चतुर्थी को इसका आरम्भ किया गया था। सो यो कि मध्यप्रदेश के हिन्दी मिडिल स्कूल की छठवी कक्षा के विद्यार्थियों के निमित्त अरण्यकाण्ड की टीका प्रथम लिखी गई थी। इस पर लोगों की विशेष रुचि देखकर एन्ट्रेन्स क्लास के विद्यार्थियो के निमित्त अयोध्याकाण्ड की टीका लिखी गई। इसके पश्चात् रामायण के प्रेमियो से उत्साहित किये जाने पर किष्किन्धा और सुन्दरकाण्ड की टीकाएँ रची गईं। तदनन्तर बालकाण्ड की टीका की तैयारी की गई थी, परन्तु उसके छपने में सोलह महीने से भी अधिक लगे।

इस टीका मे नीचे लिखी बातो का समावेश है—

(१) सस्कृत श्लोकों का शब्दार्थ, अन्वय और अर्थ, कही-कही भावार्थ, गूढ़ार्थ-समेत लिखा गया है और बहुधा यह भी दर्शाने का प्रयत्न किया गया है कि गोस्वामीजी ने उन्हे किस हेतु लिखा है।

(२) कठिन पद्यखण्डो का अन्वय और उनके सभाव्य अनेक अर्थ प्रमाणो सहित।

(३) बहुतेरे शब्दो का शुद्ध रूप, बहुतेरों की धातु और बहुतेरों के पर्यायवाची शब्द।

(४) अर्थ, सरलार्थ, भावार्थ, अनेकार्थ आदि।

(५) उचित उपयोगी सूचनाएँ।

(६) ऐतिहासिक और पौराणिक कथाओं का उल्लेख।

(७) अनेक शकाएँ और उनके समाधान।

(८) भिन्न-भिन्न पाठान्तर और उनके अर्थ, उपयुक्त सूचनाओ सहित।

(९) कई उपयोगी बातो के स्मरणार्थ रचकर लिखी हुई कविता।

(१०) अनेक धुरन्धर प्राचीन और अर्वाचीन कवियो की काव्य-रचनाएँ यथायोग्य स्थान पर टीका मे विशेषकर टिप्पणियो मे (श्लोक, दोहा, चौपाई, भजन, गजल कवित्त, कुण्डलिया, छप्पय, सवैया, रेखता, लावनी, बरवा, आर्य्या, दोबई और वीरछन्द आदि कई प्रकार के छन्दो मे) दी गई है।

(११) जन्मोत्सव के गीत, सोहरे, गारी और ज्यौनारे।

(१२) इस काण्ड मे उल्लिखित देवगण, ऋषि-मुनि, राजा, राक्षस और गधर्व आदि के जीवन-चरित्र।

(१३) पुरौनी मे काव्य-लक्षण, गण-विचार, अर्थों के प्रकार, रस-भेद, इस काण्ड की कविता का पिगल विचार, राघव मत्स्य और गजेन्द्र तथा हरिहर की कथा, अन्धेरे तथा उजेले पाख का विचार, ६४ कला, वर्ण-मैत्री, दग्धाक्षर दोष, भाव-भेद, काव्य-दोष, काव्य-गुण; अजामिल, गणिका और रावण के जीवन-चरित्र, कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा के जीवन-चरित्र, षोडश सस्कार और श्राद्ध का प्रचार तथा उदाहरणीय कहावते लिखी गई है।

(१४) छोटे-छोटे क्षेपक तो टिप्पणियो मे और बडे-बडे क्षेपक पुरौनी मे एकत्र दे दिए गए है, इस अभिप्राय से कि वे तुलसीकृत नही है। अनेक कवियो के बनाये हुए है और उनकी भाषा तुलसीदास जी की भाषा से अनमिल है तथा उनकी योजना भी प्राय अनुचित है क्योकि जिन विचारो को गोस्वामी जी दबाना चाहते थे, क्षेपक वालो ने उन्हे प्रकट करने में अपना गौरव माना है। कही-कही बिल्कुल विरोध दर्शाकर दुर्दशा ही कर दी है। जैसे एक बडे पराक्रमी दिग्विजयी योद्धा रावण को एक वृद्धा द्वारा टँगडी पकडकर आकाश मे ले जाने के पश्चात् समुद्र मे फिकवा देना (आदि, देखो पुरौनी, पृ० ५६६)।

इस काण्ड मे यत्रालय वालो की असावधानी के कारण पूर्वार्द्ध के ३७६ पृष्ठ, उत्तरार्द्ध के ३२० पृष्ठ और पुरौनी के ५९ पृष्ठ अलग-अलग दिए है, यथार्थ मे सम्पूर्ण काण्ड के ७५५ पृष्ठ है।

टीकाकार की बनाई हुई कविताओ मे कही 'नायक', कही 'विनायक' और कही पूरा नाम लिखा है। 'नायक' लिखने का कारण यह है कि जबलपुर के कवि-समाज द्वारा टीकाकार को 'नायक' कवि की पदवी बसत-पंचमी के उत्सव मे प्रदान की गई थी।

विद्वद्वर्य श्रीमान रावबहादुर पडित सदाशिव जयराम एम० ए० सस्कृत प्रोफेसर, गवर्नमैंट कालेज जबलपुर और फैलो इलाहाबाद यूनीवर्सिटी ने अनेक स्थानो मे सुयोग्य सम्मति दी और विशेषकर सस्कृत भाग के सशोधन व भाषान्तर मे सहायता दी, इस हेतु इन महाशय को अनेक धन्यवाद है।

श्रीमान् पडित प्रेमशकर दबे, क्लार्क आफ कोर्ट, भडारा, ने ज्योतिष तथा धर्मशास्त्र सम्बन्धी टिप्पणियो के तैयार करने मे सहायता देकर अनुगृहीत किया।

विद्वद्वर्य श्रीमान् वैद्यराज जगन्नाथ गौड जबलपुर-निवासी ने सस्कृत तथा हिन्दी कवियो की कविताएँ सूचित कराईं, अतएव मै इनका कृतज्ञ हूँ।

पडित जगन्नाथप्रसाद मिश्र जबलपुर-निवासी ने अनेक उपयोगी पुस्तको के द्वारा सहायता दी। इस उपकार के कारण ये महाशय भी धन्यवाद के पात्र है।

श्रीमान् पडित छक्कूलाल वाजपेयी, टीचर वर्नाक्यूलर माडल स्कूल (जबलपुर) ने कविताओ के शोधन तथा सम्पूर्ण काण्ड के प्रूफो के जाँचने मे बडा श्रम उठाया, इस हेतु उन महाशय का मुझ पर बडा उपकार हुआ।

इस टीका मे १. रामचन्द्रभूषण, २ रामचन्द्रिका, ३ राम-स्वयवर, ४ सीता-स्वयवर, ५ रामरसायन रामायण, ६ विष्णुपदी, ७ प्रेम-पीयूषधारा, ८ पद रामायण, ९ सुमति-मनरजन नाटक, १० काव्यनिर्णय, ११ रावणेश्वरकल्पतरु, १२ काव्य प्रभाकर, जगवन्त-जसोभूषण, १४ सगीत-रत्न-प्रकाश, १५ गजल पुरबहार इत्यादि-इत्यादि अनेक ग्रन्थो से बहुत-कुछ सहायता मिली है, इस हेतु इनके कर्त्ताओ को हार्दिक धन्यवाद है।

रामकथारूपी अमृतसर के अभिलाषी विद्वज्जन ऐसे प्रसिद्ध महाकवि और भक्त शिरा-मणि गोस्वामी श्री तुलसीदास कृत रामायण के इस सर्वरस-पूर्ण अनुपम बालकाण्ड की श्री विनायकी टीका को किसी भी प्रकार से उपयोगी समझेंगे तो टीकाकार अपने परिश्रम को सफल समझेगा। क्योकि—

दोहा—जड़ चेतन गुन दोष मय, बिस्व कीन्ह करतार।
सन्त हस गुन गर्हहि पय, परिहरि बारि बिकार ॥

इस न्याय से विद्वज्जन गुणो को ग्रहण करेगे, और जहा कही किसी भी कारण से उन्हे त्रुटियाँ समझ पडे, सो कृपया सूचित करे, जिससे दूसरी आवृत्ति मे उनके सुधारने का प्रयत्न किया जावे।

सूचना—स्मरण रहे कि इस काण्ड मे सुभीते के लिए विविध विषयो को 'शीर्षकों' द्वारा अलग-अलग सूचित किया है।

—विनायक राव (पेंशनर)

सम्वत् १९७१

क्रम

बालकाण्ड

पूर्वार्द्ध

मगलाचरण १७
वन्दना २४
सज्जनो की वन्दना ३०
खल-गणो की वन्दना ३८
सन्त और असन्तो की वन्दना ४४
शिव-पार्वती की विशेष वन्दना ६६
अयोध्या नगरी, राजा दशरथ और उनके परिवारो की वन्दना ७२
राम-नाम की महिमा ७६
नामी से नाम की महिला-विशेप ८८
सेव्य-सेवक १०१
कथा का आरम्भ ११६
रामचरितमानस-फल-वर्णन ११८
रामचरितमानस की उत्पत्ति आदि ११६
शिव-पार्वती सम्वाद-रूपी राम-कथा १४३
सती-मोह १४६
दक्ष का यज्ञ १५७
पार्वती की कथा १६४
सतीजी के देह-त्याग के पश्चात् शिव-चरित्र १७५
कामदेव-दहन १८४
शिव-पार्वती का विवाह १६४
कैलाम पर्वत पर शिव-पार्वती का सम्वाद २१५
शिवजी द्वारा यथार्थ रामरूप की विवेचना २२३
अवतारो के कारण २३३
नारद का मोह और शाप २३७
स्वायम्भुव मनु और शतरूपा की कथा २५४
राजा प्रतापभानु और कपटी मुनि की कथा २६४
रावण आदि की उत्पत्ति २८७

उत्तरार्द्ध

अयोध्या और राजा दशरथ ३०७
श्री रामचन्द्र आदि चारो भाइयो का जन्म और बाल-लीला ३११
विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण-गमन और ताड़का-सुबाहु का वध ३३७

विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का जनकपुर प्रवेश (हर्षि चले) ३५०
पुष्पवाटिका (समय जानि गुरु आयसु पाई) ३६८
धनुषयज्ञ (सतानन्द पद बन्दि प्रभु) ३९०
परशुराम-आगमन ४२८
ब्याह की तैयारी ४५१
अवधपुर से जनकपुर को बरात का प्रस्थान, आदि ४६८
विवाह का उत्सव ४९६
बरात की बिदा ५१५
बारत का अयोध्या लौटना ५२६

पुरौनी

काव्य और गण-विचार ५४६
अर्थ-प्रकार ५४८
साहित्य के नवरस ५४९
पिंगल-विचार ५५०
राघव मत्स्य, गजेन्द्र तथा हरिहर की कथा ५५४
समप्रकास तम पाख दुहूँ ५५५
सकल कला ५५६
वर्णमैत्री ५५७
दग्धाक्षर दोष ५५७
भाव-भेद ५५८
काव्य-दोष ५५९
काव्य-गुण ५६१
अजामिल ५६२
गणिका ५६३
रावण ५६३
क्षेपक ५६५
कौशल्या ५७७
कैकेयी ५७८
सुमित्रा ५७८
सस्कार ५७९
श्राद्ध ५८०
कहावतें ५८१

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

श्री गोस्वामी तुलसीदासकृत

रामचरितमानस

बालकाण्ड

श्री विनायकी टीका-सहित

श्लोक—वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि[१] ।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥१॥

सूचना—श्री तुलसीदासजी 'श्रीरामचरितमानस' नामक ग्रन्थ को भाषा-दोष-रहित तथा निर्विघ्नता से सिद्ध होने के हेतु श्री सरस्वतीजी और श्री गणेशजी की वन्दना करते है। उसीके अनुसार श्रीरामचरितमानस की टीका आरम्भ करने के पूर्व टीकाकार-कृत मगलाचरण—

दोहा—वाणि विनायक पद कमल, नमन विनायक कीन्ह ।
श्री विनायकी तिलक कौ, श्रीगणेश कर दीन्ह ॥

---

१. वर्णाना—श्री गोस्वामी तुलसीदासजी अपने महाकाव्य 'श्रीरामचरितमानस' (अर्थात् रामायण) के आरम्भ ही मे शास्त्र की इस आज्ञा का पालन करते है—"आशीर्नमस्क्रिया वस्तु निर्देशोवापि तन्मुखम्"। अर्थात्, काव्य के आरम्भ मे (१) आशीर्वाद-युक्त, (२) नमस्कारात्मक, और (३) वस्तु-निर्देश रूप मङ्गलाचरणो मे से किसी एक का होना आवश्यक है। इस हेतु यहाँ पर नमस्कारात्मक मगलाचरण किया गया है, और मगलाचरण से ग्रन्थ के आरम्भ करने का फल शास्त्र मे इस प्रकार है—

आदिमध्यावसानेषु यस्य ग्रन्थस्य मगलम् ।
तत्पाठात्पाठनाद्वापि दीर्घायुर्धार्मिको भवेत् ॥

अर्थात्, जिस ग्रन्थ के आदि, मध्य और अन्त मे मगलाचरण होता है, उसके पढने-पढाने वाले, दोनो, दीर्घायु और धर्मात्मा होते है।

'वर्णाना' इसमे तीनों अक्षर गुरु है क्योकि वकार सयुक्त अक्षर के पहले रहने से दीर्घ समझा गया है। जैसा महर्षि पाणिनि ने कहा है कि 'सयोगे गुरु'। इस हेतु ग्रन्थ का आरम्भीय गण मगण है जो सब प्रकार से श्रेष्ठ समझा जाता है। इसका विशेष पिंगल-विचार इसी काण्ड की पुरौनी में मिलेगा।

'अर्थसघाना'—अर्थ तीन प्रकार के होते है—(१) वाच्य, (२) लक्ष्य, और (३) व्यग्य। इनका विस्तार पुरौनी मे है।

'रसाना'—साहित्य के रस नव है सो उदाहरण-सहित पुरौनी मे देखे। 'छन्दसा'—छन्द अगणित है। यथास्थान उनका वर्णन किया जाएगा। यहाँ पर इतना ही लिखना पर्याप्त है—

दोहा—द्वै कल से बत्तीस लौ, छन्द बानवै लाख ।
सहस सतासी आठसौ, छ्यासठ पिंगल भाख ॥

इस काण्ड के छन्दों का पिंगल-विचार पुरौनी मे है।

शब्दार्थ—वर्णाना = अक्षरो के। अर्थसघाना = अर्थ-समूहो के, अर्थात् अनेक अर्थों के। रसानां = शृङ्गारादि नवरसो के। छन्दसामपि = छन्दो के भी। कर्तारौ = रचने वाले। वाणी-विनायकौ = सरस्वतीजी और गणेशजी को। वन्दे = मैं प्रणाम करता हूँ।

अन्वय—वर्णाना, अर्थ सघाना, रसाना, छन्दसा, अपि च मगलानां कर्तारौ वाणी-विनायकौ वन्दे।

अर्थ पहला—(तुलसीदासजी कहते हैं कि) अक्षरो, अनेक अर्थों, रसो और छन्दो तथा सम्पूर्ण मगलो के करने वाले श्री सरस्वतीजी और श्री गणेशजी की मैं वन्दना करता हूँ।

अर्थ दूसरा—मैं अक्षरो, अनेक अर्थों, रसो, छन्दो और कल्याणो के रचयिता सीता और रामचन्द्रजी को प्रणाम करता हूँ।

सूचना—ऊपर का दूसरा अर्थ इस अभिप्राय से किया गया है कि यद्यपि ग्रन्थ के आरम्भ मे श्री गणेशजी की वन्दना करना उचित ही है तथापि तुलसीदासजी के इष्टदेव तो श्री रामचन्द्रजी ही हैं और उन्ही की यह वन्दना है, जैसा कि आगे के कथन से स्पष्ट होगा।

एक समय की बात है कि—

वृन्दावन की यात्रा मे श्री कृष्णचन्द्रजी की मूर्ति के सम्मुख तुलसीदासजी को खड़ा देखकर किसी साधु ने यह तर्कना की थी कि आप तो राम-उपासक हैं। इस पर तुलसीदासजी ने कृष्ण भगवान् से यों प्रार्थना की थी—

दोहा—कहा कहौं छबि आज की, भले बने हौ नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै, धनुषबान लेउ हाथ॥

भक्तवत्सल परमात्मा ने उसी समय उनकी प्रार्थना स्वीकार की, सो यों की—

दोहा—मुरली मुकुट दुराय के, नाथ भये रघुनाथ।
तुलसी रुचि लखि दास की, धनुषबान लियो हाथ॥

और भी, इसी अनन्यता की पुष्टि मे नीचे लिखा हुआ श्लोक भी प्रसिद्ध है। यथा—

सीतांशसंभवां वाणी रामांशेन विनायकम्।
सीता-रामांश-सभूतौ, वन्दे वाणी-विनायकौ॥

अर्थात्, सीताजी के अंश से उत्पन्न हुईं सरस्वतीजी और रामचन्द्रजी के अश से उत्पन्न हुए गणेशजी—इस प्रकार सीता और रामजी के अश से उत्पन्न हुईं सरस्वती और विनायकजी की मैं वन्दना करता हूँ।

श्लोक—भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धा[१]-विश्वास[२] रूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्[३] ॥२॥

---

१. श्रद्धा—गूढ़ता और विचित्रता से आकर्षित होकर किसी बात को गुरु और वेद की सम्मति से जानने आदि की उत्कट इच्छा को 'श्रद्धा' कहते हैं। यथा—'तथापि वैचित्र्यरहस्यलुब्धाः, श्रद्धां विधास्यन्ति सचेत सोऽत्र। (विक्रमोर्वशीय, १-१३)
अर्थात्—तो भी, विचित्रता के गुप्त भेद जानने की उत्कट इच्छा से सहृदय इसमें श्रद्धा रखेंगे।

२. विश्वास—पक्का भरोसा। उत्कट इच्छा तभी विश्वास कहलाती है, जब चाही हुई बात पर भरोसा किसी प्रकार ठीक-ठीक हो जाय। जैसा अरण्य-काण्ड में कहा है—"मन्त्र जाप मम दृढ विस्वासा"।

३. स्वान्त.स्थम् ईश्वरम्—हृदय-स्थित ईश्वर रूप आत्मा, जो ईश्वर-कृपा के बिना समझ में नही आता। जब तक मनुष्य समझता है कि मैं हूँ, तब तक उसे शुद्ध आत्मबोध नहीं रहता। और जब अहता भूल जाता है तब ही ईश्वर-दृष्टि आता है। जैसे— →

शब्दार्थ—भवानीशकरौ=पार्वतीजी और शिवजी। वन्दे=मैं प्रणाम करता हूँ। श्रद्धाविश्वास-रूपिणौ=श्रद्धा और विश्वास के रूप। याभ्या विना=जिन दोनो के बिना। न पश्यन्ति—नही देखते है। सिद्धा =सिद्ध लोग (वे पवित्र पुरुष जिन्हे अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त हो चुकी हो)। स्वान्त स्थम् ईश्वरम्=अपने हृदय मे स्थित ईश्वर को।

अन्वय—श्रद्धाविश्वासरूपिणौ भवानीशकरौ वन्दे। याभ्या विना सिद्धाः स्वान्त स्थम् ईश्वरम् न पश्यन्ति।

अर्थ—फिर मैं श्रद्धा और विश्वास के मानो साक्षात् स्वरूप पार्वतीजी और महादेवजी को प्रणाम करता हूँ, जिनके बिना सिद्ध लोग भी अपने हृदय मे रहने वाले ईश्वर को नही देख सकते।

सूचना—यहाँ पर श्रद्धारूपी पार्वतीजी है जिन्होने शकरजी के द्वारा रामायण आदि अनेक राम-कथाएँ कहलाकर स्वत शिवजी के वचनो मे श्रद्धा रक्खी और दूसरे प्राणियो को भी रामकथा मे श्रद्धा कराई, जैसा अध्यात्मरामायण मे कहा है—

श्लोक—पुरा त्रिपुरहन्तार, पार्वती भक्तवत्सला।
श्रीरामतत्त्व जिज्ञासु., पप्रच्छ विनयान्विता॥

अर्थात् पहले एक समय भक्तो पर प्यार करने वाली पार्वतीजी श्री रामचन्द्रजी के तत्त्व को जानने की इच्छा से त्रिपुर को मारने वाले शिवजी से विनयपूर्वक प्रश्न करने लगी। तथा महादेवजी विश्वासरूप है, जिन्होने स्वत श्री रामचन्द्रजी के ध्यान मे ऐसा विश्वास रक्खा है कि उनसे बढकर कोई दूसरा रामभक्त नही है और अपने ही उदाहरण से दूसरे लोगो को श्री रामचन्द्रजी की भक्ति में विश्वास कराया। यदि ये दोनो न होते तो राम-कथा ससार मे कदाचित् प्रकट ही न होती। इस हेतु इन दोनो को मूल कारण समझ तुलसीदासजी ने इनकी वन्दना की है।

श्लोक—वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं[1] शंकररूपिणम्। यमाश्रितोहि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते[2] ॥३॥

दोहा—जब मै था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।
'कबिरा' नगरी एक मे, राजा दो न समाहिं॥

और भी विस्तारपूर्वक वर्णन उत्तरकाण्ड में मिलेगा।

१. वन्दे बोधमयं नित्य गुरु—

श्लोक—विदलयति कुबोध बोध यत्यागमार्थम्
सुगति-कुगति मार्गौ, पुण्य पापे व्यनक्ति।
अवगमयति कृत्याकृत्य-भेद गुरुर्यो
भव-जल-निधि-पोतस्तं विना नास्ति किंचित्॥

अर्थात्, गुरु वही है जो शास्त्रो का ज्ञान कराकर अज्ञान को दूर करता है, जो सुगति और कुगति के मार्गों तथा पुण्य और पाप को पृथक्-पृथक् समझाता है। जो उचित और अनुचित कर्मों का बोध कराता है और जिसके बिना ससार-सागर से पार करने वाला कोई दूसरा नही है।

२. यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चद्र· सर्वत्र वंद्यते—इसके सम्बन्ध में केशवदासजी की कविता देखिये—(विजयाछन्द)—

विजया छन्द—ज्यो मणि मे अति ज्योति हुती रवि ते कछु और महा छवि छाई।
चन्द्रहि वन्दत ते सब 'केशव' ईश ते वन्दनता अति पाई॥ →

शब्दार्थ— वन्दे = मैं वन्दना करता हूँ। बोधमय = ज्ञान से परिपूर्ण। नित्य = सदा। गुरु = बोध कराने वाले। शंकररूपिणम् = शिवस्वरूप। यम् आश्रित = जिसके आधार में। हि = विशेष करके। वक्र = टेढा। चन्द्र. = चन्द्रमा। अपि भी। सर्वत्र वन्द्यते = सब स्थानो मे वन्दना किया जाता है।

अन्वय—बोधमय शंकररूपिणम् गुरु नित्य वन्दे। यम् आश्रित.वक्र अपि चन्द्र सर्वत्र वन्द्यते हि।

अर्थ—मैं ज्ञान से परिपूर्ण शिव-स्वरूप अपने गुरुजी की सदैव वन्दना करता हूँ, जिनका आश्रय करके टेढ़ा चन्द्रमा (अर्थात् द्वितीया का चन्द्रमा) भी सब स्थानो मे वन्दना किया ही जाता है।

भावार्थ—जिस प्रकार शिवजी के मस्तक पर रहने से द्वितीया का टेढा चन्द्र भी मान को पाता है, उसी प्रकार शंकररूपी गुरुजी की कृपा से मैं जो टेढा अर्थात् सब प्रकार बुद्धिहीन हूँ, सो प्रतिष्ठा को प्राप्त होऊँ।

श्लोक—सीताराम-गुणग्राम-पुण्यारण्य-विहारिणौ।
वंदे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वर-कपीश्वरौ[1] ॥४॥

भागिरथी हुति पै अति पावन बावन ते अति पावनताई।
त्यो निमिवश बडौइ हतो भइ सीय संयोग बड़ीय बडाई॥

१. विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वर-कपीश्वरौ—प्रसिद्ध है कि एक दिन वाल्मीकि मुनि दोपहर के समय तमसा नदी के किनारे जा पहुँचे तो वहाँ क्या देखते हैं कि क्रौंच पक्षियो के जोडे मे से एक को किसी बहेलिये ने बाण से मार दिया था और उसका जोडा वियोग के दु:ख से तड़फडा रहा था। उसी समय दयार्द्र हो मुनिजी के मुख से यह श्लोक निकल पड़ा—
श्लोक—मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम. शाश्वती: समा.।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी: काममोहितम् ॥ (उत्तररामचरित)
भाव यह है—हे बहेलिये! जो तू ने काम-मोहित क्रौंच के जोड़े मे से एक का वध किया है, इस हेतु तू अगणित वर्षों तक प्रतिष्ठा को न पावे।
इस पर से ब्रह्मदेव ने प्रकट होकर ऋषिजी से यह कहा कि "हे ऋषि! तुम्हें शब्द-ब्रह्म का प्रकाश हुआ है। तुम्हारे आर्षनेत्र होवें।" अर्थात् "जो मनुष्यों को न दिखे सो तुम देखो और उन नेत्रों की ज्योति अव्याहत हो, यानी तुम कोई भी बात देखने मे असमर्थ न हो और नई-नई वार्त्ताओं के प्रकट करने वाले होओ। तुम आदिकवि हुए, इस हेतु रामचरित्र का वर्णन करो।" इतना कहकर ब्रह्माजी अंतर्धान हो गये। श्री वाल्मीकिजी ने सौ कोटि रामायण रची। उन्होंने सिवाय रामचरित्र के और कुछ वर्णन नही किया।
कहते हैं कि उन्होने बहुत-से रामचरित्र पहले ही से लिख रक्खे थे जो पीछे से श्री रामचन्द्रजी ने किये थे, क्योंकि वे दिव्यचक्षु वाले ऋषि हो गये थे।
विशुद्ध विज्ञान कपीश्वर—वाल्मीकीय रामायण के उल्था 'रामरत्नाकर' से उद्धृत श्री रामचन्द्रजी द्वारा हनुमान्‌जी के विशुद्ध विज्ञान की प्रशसा—
दोहा—पास पाय निज बंधु सन, करत प्रसंसा तासु।
लखो लखन कपिपति सचिव, बिमल बचन है जासु॥
साम यजू ऋगुवेद पढे हैं। शुद्ध व्याकरण वचन कढे हैं॥
कवि के कहत न इंगित फीकी। किमपि अशुद्ध न बोलन ही की॥
नहिं विलम्ब नहिं श्रवण-कटू हैं। यद्यपि कपि-कुल वेष बटू हैं॥
मध्यम स्वर उर कंठ गहेते। निकसत शब्द सुवचन कहेते॥

शब्दार्थ—सीताराम-गुणग्राम=सिया-राम के गुणानुवाद । पुण्य अरण्य=पवित्र वन मे । विहारिणौ=विहार करने वाले । वन्दे=मैं वन्दना करता हूँ । विशुद्धविज्ञानौ=निर्मल ज्ञान वाले । कवीश्वर=वाल्मीकिजी । कपीश्वर=हनुमान्‌जी ।

अन्वय—सीता-राम-गुण-ग्राम-पुण्यारण्य-विहारिणौ विशुद्ध-विज्ञानौ कवीश्वर-कपीश्वरौ वन्दे ।

अर्थ—सिया-राम के गुणानुवादरूपी पवित्र वन मे विहार करने वाले निर्मल ज्ञान-सम्पन्न कवि वाल्मीकिजी और हनुमान्‌जी की मैं वन्दना करता हूँ ।

भाव यह कि वाल्मीकिजी और हनुमान्‌जी सदैव श्री रामचन्द्रजी के गुणानुवाद मे तल्लीन रहते है, क्योकि वे उनके शुद्ध परमात्म-स्वरूप के परमज्ञाता है ।

श्लोक—उद्‌भवस्थितिसंहारकारिणी क्लेशहारिणीम्[१] ।
सर्वश्रेयस्करी सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ।। ५ ।।

शब्दार्थ—उद्भव=उत्पत्ति । स्थिति=पालन । सहार=नाश । कारिणी=करने वाली । क्लेशहारिणीम्=दु ख दूर करने वाली । सर्वश्रेयस्करी=सब कल्याण करने वाली । रामवल्लभाम्=राम की प्यारी । सीता=सीता को । अह नत.=मै नमस्कार करता हूँ ।

अन्वय—उद्‌भव-स्थिति-सहार-कारिणी क्लेश-हारिणीम् सर्वश्रेयस्करी रामवल्लभाम् सीता अह नत ।

अर्थ—(सृष्टि की) उत्पत्ति, पालन और नाश करने वाली, दुख दूर करने वाली, सब कल्याणो की करने वाली राम की प्यारी किशोरी जी को मै वन्दना करता हूँ ।

सूचना—उद्‌भव से अपने मे ज्ञान की उत्पत्ति, स्थिति से बुद्धि की स्थिरता, सहार से

को अस पुरुष न मोहित होई । अरि पुनि सुनि हित मानहि सोई ।।
है व्याकरण सहित यह बानी । शुद्ध सुनत नहि होत गिलानी ।।
जेहि नृप के अस सचिव न होई । ताके काज कौन बिधि होई ।।
सुभ अरु असुभ भूप आचरणी । जानी जात दूत मुख बरनी ।।
दोहा—अस कह निज अनुजहि बहुरि, पवन-तनय प्रति राम ।
बोले प्रेम बढाय तब, जानि सकल गुन-धाम ।।

सूचना—(१) राजाओ को चाहिए कि वे ऐसा ही मत्री रक्खे,
(२) मन्त्रियो को चाहिए कि वे इसी प्रकार की योग्यता रक्खे, और
(३) भाषणकर्त्ताओं को ऐसी ही वाक्य-रचना, उच्चारण-ध्वनि आदि का अनुकरण करना चाहिए ।

१. उद्‌भव-स्थितिसहार-कारिणी क्लेशहारिणीम्—यह आशय रामतापिनी से मिलता है । यथा—

श्लोक—श्री रामसान्निध्यवशाज्जगदानन्ददायिनी ।
उत्पत्तिस्थितिसहारकारिणी सर्वदेहिनाम् ।।
सा सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसज्ञिता ।
प्रणवत्वात्प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिन ।।

और भी 'जानकीस्तवराज' भाषा-टीका से—

सवैया—जानत हौ जननी तब नैन के खोलत मे भये अड अपारे ।
ते सब अडन कौ परिपालन होत जबै दृग सौह निहारे ।।
फेरि बिलात न देर लगै जब मूँदत नैन सिया सरकारे ।
यो जग पालन सर्ग विनास प्रयास बिना सिय नैन निहारे ।।

तमोगुण अर्थात् अज्ञान का नाश कविजी चाहते हैं।

श्लोक—यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः[1] ।
यत्पादप्लव एक एवहि भवाम्भोधेस्तितीर्षावताम्[2]
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं[3] रामाख्यमीशं हरिम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—यत् माया=जिसकी माया के। वशवर्त्ति=आधीन। विश्वम् अखिलम्=सारा जगत्। ब्रह्मा आदि देव-असुरा=ब्रह्मा आदि देवता और राक्षस। यत्=जिसकी। सत्त्वात्=सत्ता से। अमृषाइव=सत्य की नाई। भाति=समझ पड़ता है। सकल=सब। रज्जौ=रस्सी में। यथा=जैसे। अहे.=सर्प का। भ्रम=सन्देह। यत्—जिसके। पादप्लव=चरणरूपी नौका। एक एवहि=निश्चय करके केवल एक। भव अम्भोधेः=संसार-रूपी समुद्र को। तितीर्षावता=पार जाने की इच्छा करने वालो के लिए। वन्देऽह (वन्दे=वन्दना करता हूँ+अह=मैं)=मैं वन्दना करता हूँ। तम्=उसको। अशेष कारणपर=सम्पूर्ण कारणो मे परे। रामाख्यम् ईश हरिम्=राम नामधारी प्रभु पापहारी को।

अन्वय—यत् माया वशवर्त्ति अखिल विश्वम् (अस्ति) ब्रह्मा आदि देव असुरा (सन्ति), यत् सत्त्वात् रज्जौ अहेर्भ्रमः यथा सकल अमृषा इव भाति। भवाम्भोधे तितीर्षावता यत् एक एवहि पादप्लव (भवति), अशेष कारण पर तम् ईश हरिम् रामाख्यम् अह वन्दे।

अर्थ—जिनकी माया के अधीन सम्पूर्ण ससार है तथा ब्रह्मा आदि देवता और राक्षस भी है, जिनकी सत्ता से रज्जु मे सर्प की भावना के समान सब (संसार) सत्य ही सा समझ पड़ता है। संसाररूपी समुद्र से पार जाने की इच्छा रखने वाले प्राणियो को जिनकी चरणरूपी नौका ही केवल आधार है, सम्पूर्ण कारणो से परे ऐसे उस पापहारी राम-नाम धारी प्रभु की मैं वन्दना करता हूँ।

---

१. रज्जौ यथाहेर्भ्रमः—श्रीमत्शंकराचार्य-विरचित 'आत्मप्रबोध' से—

श्लोक—ससारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसकुल ।
स्वकाले सत्यवद्भाति प्रबोधे सत्य सद्भवेत् ॥'

अर्थात्—राग-द्वेष आदि से परिपूर्ण यह ससार स्वप्न की नाईं है। यहाँ स्वप्न के समय तो सत्य-सा समझ पड़ता है, परन्तु जागने पर असत्य ही जाने पड़ता है।

२. भवाम्भोधेस्तितीर्षावताम्—श्रीमत्शंकराचार्य विरचित 'आत्मप्रबोध' से—

श्लोक—तीर्त्वा मोहार्णव हत्वा रागद्वेषादिराक्षसान् ।
योगी शान्तिसमायुक्तो ह्यात्मा रामो विराजते ॥

अर्थात्—जो योगी राग-द्वेष आदि राक्षसों का नाश कर एव मोहरूपी समुद्र पार कर शान्त-चित्त हो जाता है, उसके हृदय में आत्मा राम का प्रकाश हो जाता है।

३. वन्देऽह तमशेषकारणपरम्—वाल्मीकीय रामायण मे लिखा है—

श्लोक—पर ब्रह्म परं तत्त्व पर ज्ञानं पर तपः।
पर बीज पर क्षेत्रं परं कारण-कारणम् ॥

अर्थात्—श्री रामचन्द्रजी ही परब्रह्म है, परमतत्त्व हैं, ज्ञान से बढ़कर विशेष तप, मुख्य बीज, श्रेष्ठ क्षेत्र और ससार के तथा ब्रह्मा, बिष्णु, शिव और प्रकृति आदि सब ही के कारण है। इनसे बढ़कर और कोई नहीं है।

श्लोक—नाना-पुराण-निगमागम-सम्मतं यद्—
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथ-गाथा—
भाषा-निबंधमतिमजुल मातनोति[१] ।।७।।

शब्दार्थ—नाना पुराण निगम आगम = अनेक पुराण, वेद और शास्त्र। सम्मत यद् = सम्मत जो। रामायणे निगदित = रामायण मे कहा गया है। क्वचित् = कुछ-कुछ। अन्यतः अपि = और स्थान से भी। स्वान्त सुखाय = अपने हृदय के सुख-निमित्त। तुलसी = तुलसीदास। रघुनाथ-गाथा = रामचन्द्रजी की कथा। भाषा-निबध = हिन्दी भाषा मे। अतिमजुलम् = अति मनोहर। आतनोति = विस्तारपूर्वक वर्णन करता है।

अन्वय—नाना पुराण निगम आगम यद् सम्मत रामायणे क्वचित् अन्यत अपि निगदितम्। (तत्) रघुनाथ-गाथा भाषा-निबध तुलसी स्वान्त सुखाय अति मजुलम् आतनोति।

अर्थ—अनेक पुराण, वेद और शास्त्रो की सम्मति जो रामायण मे तथा कुछ दूसरे स्थानो मे भी की गई हैं, उन रघुनाथजी की कथा के निबध को, मैं तुलसीदास, अपने चित्त के आनन्द के लिए अति मनोहर रीति से हिन्दी भाषा मे वर्णन करता हूँ।

---

१. नाना पुराण निगम आदि—पुराण १८ हैं, यथा—

दोहा—विष्णु नारदी भागवत, गरुड़ पद्म वाराह।
'नायक' सात्विक छउ कहे, शोधि पुराणन्ह माह।।
ब्रह्म ब्रह्मवैवर्त्त पुनि, वामन भविषहु जान।
मारकण्ड ब्रह्माण्ड मिलि, षट राजसी पुरान।।
मत्स्य कूर्म शिव अग्नि अरु, लिंग स्कन्द सुजान।
ये षट तामस युत भये, अष्टादशहि पुरान।।

निगदित क्वचिदन्यतोऽपि—

दोहा—चार वेद ऋक साम अरु, यजू अथर्वण जान।
'अन्यत' मुनि गुरु वाक्य निज, अनुभवादि पहिचान।।

भाव यह है कि कही-कही जो दूसरे स्थानो से लिखा है सो उपनिषद्, उपपुराण, दूसरे मुनियो की सम्मति, गुरु-वाक्य और कभी-कभी अपने ही अनुभव से कहा है। प्रमाण 'प्रौढ़ सुजन जन जानहिं जनकी। कहहुँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की' आदि, और भी स्थानो से लेने के उदाहरण यथोचित स्थानो की टिप्पणियो मे दिये गये हैं।

आगम = शास्त्र। ये छ. हैं, जैसे—

दोहा—तर्क योग वेदान्त अरु, साख्य, मिमासा मान।
वैशेषिक युत जानिये, छऊ शास्त्र परमान।।

इसी श्लोक के आशय को एक कवि ने कैसी उत्तम रीति से दरशाया है—

कवित्त—अष्टादश पुराण चारि वेद मत शास्त्रन को ग्रथनि सहस्त्र मत रामायश कै गये।
पाप को समूह कोटि कोटिन्ह सिराने धर्म राजस महान के कपाट-द्वार दै गये।।
भनत 'गुलामी' धन्य तुलसी तिहारी बानी प्रेम सानीभक्तिमुक्तिजीवनसुकहि गये।
योग सुख ब्रह्म सुख लोक सुख भोग सुख एते सुख सुकृत गोसाईं लूटि लै गये।।

(२ वन्दना)

सोरठा—जेहि सुमिरत[१] सिधि होइ, गननायक[२] करिबर बदन ।
करहु अनुग्रह सोइ, बुद्धिराशि सुभ गुन सदन[३] ।।१।।

शब्दार्थ—गननायक=गणो के मुखिया। करिबर बदन (१) श्रेष्ठ हाथी सरीखा मुख, (२) मुख को दिव्य करने वाले। सदन=(१) स्थान, (२) सदन—इस नाम का प्रभु-भक्त कसाई।

अर्थ पहला—जिनके स्मरण करते ही सफलता प्राप्त होती है सो श्रेष्ठ हाथी के समान सुन्दर मुख वाले, बुद्धि से परिपूर्ण और उत्तम गुणों के स्थान श्री गणेशजी मेरे ऊपर कृपा करें।

सूचना—गोस्वामीजी जिस प्रकार सम्कृत भाषा की स्तुति का आरम्भ श्री गणेशजी की वन्दना से कर आये है, उसी प्रकार हिन्दी भाषा मे भी श्री गणेशजी की वन्दना से ग्रन्थ का आरम्भ करते है। कारण पूज्यपद तो इन्ही को है और वह पद श्रीराम-नाम ही की महिमा से प्राप्त हुआ था। जैसा आगे कहा है—

"महिमा जासु जान गनराऊ, प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ।"

दूसरा अर्थ—जिनके (अर्थात् राम-नाम के) स्मरण करने ही से सुन्दर हाथी सरीखे मुख वाले श्री गणेशजी सफल-मनोरथ हुए (अर्थात् प्रथम पूज्यपद पा गये), सो रामचन्द्रजी जो बुद्धि से परिपूर्ण है और जिन्होंने सदन सरीखे कसाई को मानो अच्छे गुणो का बना दिया है, मेरे ऊपर कृपा करें।

सूचना—इस प्रकार के अर्थ करने का वही कारण है जो पहले श्लोक के दूसरे अर्थ की सूचना में लिख आये है।

तीसरा अर्थ—वे परमात्मा, जिनके स्मरण मात्र ही से सब काम सिद्ध हो जाते हैं, जो सम्पूर्ण गणो के अगुआ है, जो प्राणियो के मुखो को उज्ज्वल करने वाले (अर्थात् प्राणियों को यश देने वाले हैं), जो बुद्धि से भरे-पूरे हैं तथा जो उत्तम गुणो के भण्डार हैं, ऐसे परमात्मा मेरे

---

१. 'जेहि सुमिरत' का पाठान्तर 'जेहि सुमिरे' भी है। 'जेहि' में दीर्घ 'जे' को ह्रस्व पढ़ना पडता है, नहीं तो मात्रा बढ जाती है और 'सुमिरे' में स्मरण करने के पश्चात् ऐसा अर्थ गर्भित होता है। 'सुमिरत' से बहुत ही शीघ्रता का बोध होता है।

२. गननायक—परमात्मा के लिये गननायक यह विशेषण पद्म पुराण भूमि खण्ड अ० ६८-१३ में विज्वल ऋषि ने कहा है। यथा—

श्लोक—आनन्द कन्दाय विशुद्ध बुद्धये, शुद्धाय हंसाय परावराय।
नमोस्तु तस्मै गणनायकाय, श्री वासुदेवाय महा प्रभाय ॥

अर्थात् आनन्द के मूलकारण विशुद्ध विज्ञान सम्पन्न, पवित्र, हंस स्वरूपी परात्पर ऐसे सम्पूर्ण गणों के स्वामी महा तेजस्वी श्री वासुदेव भगवान् को मेरा नमस्कार है।

३. सुभ गुन सदन—इसके बारे में कबीरदासजी भैरवी में यो अलापते हैं—

हरि से लगा रहो रे भाई। तेरी बिगरी बात बन जाई ॥
रका तार्‌यो बंका तार्‌यौ, तार्‌यौ सदन कसाई।
सुआ पढावत गनिका तारी, तारी है मीरा बाई ॥
ऐसी भक्ति करौ घट भीतर, छोड कपट चतुराई।
सेवा बन्दगी औ अधीनता, सहज मिलैं रघुराई ॥
कहत कबीर सुनौ भाई साधो, सतगुरु बात बताई।
यह दुनिया दिन चार दिहाड़े, रहौ राम लव लाई ॥

ऊपर कृपा करें ।

टुक सोचना चाहिए कि तुलसीदासजी, जो यहाँ पर ईश्वर की कृपा चाहते है, उसका कारण यह है कि ईश्वर की कृपा बिना कोई भी यश नही पा सकता है। यदि उसकी कृपा है तो अवश्य यश को पावेगा, नही तो नही। जैसा कहा है—

दोहा—गुण बुधि बल अभिमान ते, यश पावत नहिँ कोइ।
पैहै वह जापै प्रभू, कृपा तुम्हारी होइ ॥

सोरठा—मूक होइ बाचाल,[१] पंगु चढ़ै गिरिबर गहन ।
जासु कृपा सु दयाल, द्रवउ सकल कलिमल-दहन ॥२॥

शब्दार्थ—मूक = जो बोले नही। बाचाल = बडा बोलने वाला। पगु = लँगडा, चलने मे असमर्थ। गहन = कठिन, दुर्गम। द्रवउ = कृपा करो। कलिमल = कलियुग के पाप। दहन = नाश करने वाले।

अर्थ—जिस (ईश्वर) की कृपा से अनबोलता भी बडा बोलने वाला हो जाता है और लँगडा भी बडे दुर्गम पहाड पर चढ सकता है, ऐसे सम्पूर्ण कलियुग के पापो को नाश करने वाले दयालु प्रभु मेरे ऊपर कृपा करे।

सूचना—यह सोरठा 'मूक करोति वाचाल पगु लघयते गिरिम्। यत्कृपा तमहंवन्दे परमानन्दमाधवम्' इस श्लोक का बहुधा अनुवाद ही जँचता है। इसमे परमात्मा की स्तुति की गई है।

दूसरे—तुलसीदासजी श्री रामचन्द्रजी की कथा लिखना चाहते है। इस हेतु आदि पुरुष की वन्दना करते हैं जो श्री रामचन्द्रजी से भिन्न नही है और जो मूक और चलने की शक्ति से हीन प्राणियो को बोलने वाले तथा चलने मे समर्थ कर देते है॥

इस वन्दना का गूढ भाव यह है कि गोस्वामीजी रामायण-वर्णन करने मे अपने को मूक और अपनी कविता-शक्ति को अपग समझकर इस बात की प्रार्थना करते है कि मेरे उक्त दोषो को परमात्मा अपनी स्वाभाविक दयालुता से दूर करे।

सोरठा—नील सरोरुह श्याम, तरुन अरुन वारिजनयन[२] ।
करउ सो मम उर धाम, सदा छीरसागर सयन ॥३॥

शब्दार्थ—सरोरुह (सर = तालाब + रुह = पैदा होना) = तालाब से पैदा होने वाला, अर्थात् कमल (योगरूढि)। तरुन अरुन = खिला हुआ लाल रग का। वारिज (वारि = पानी + ज = पैदा होना) = पानी से पैदा, अर्थात् कमल (योगरूढि)। छीरसागरसयन = दूध के समुद्र मे विश्राम करने वाले।

---

१. मूक होई बाचाल—कवि शिरोमणि सूरदासजी ने भी इसी आशय को राग भैरव में यो गाया है—

बन्दौ श्री हरि पद सुखदाई।
जाकी कृपा पगु गिरि लघै, अँधरे को सब कछु दरसाई ॥
बहिरौ सुनै मूक पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई।
'सूरदास' स्वामी करुनामय बारबार बन्दौ तेहि पाई ॥

२. नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन-बारिज नयन···
इस सोरठे का अभिप्राय ठीक निम्नलिखित श्लोक ही से मिलता है। यथा—

श्लोक—नीलाम्बुजसम श्यामो रामो राजीवलोचन ।
करोतु हृदये वास. क्षीरसागर-मदिरः ॥ (आश्चर्य रामायण)

अर्थ—नीले कमल के समान श्यामल शरीर वाले, जिनके नेत्र खिलते हुए लाल कमल के समान है, ऐसे क्षीरसागर मे विश्राम करने वाले (विष्णु भगवान्) मेरे हृदय म सदा बने रहे।

सूचना—इसके आशय पर विचार करने मे समझ पडता है कि यह श्री विष्णुजी की स्तुति मे साभिप्राय कहा गया है। कारण, रामकथा के आरम्भ मे गोसाईंजी विष्णुजी की स्तुति इस हेतु करते है कि वे ही राम-अवतार धारण कर पृथ्वी पर आये है। जैसा अयोध्याकाण्ड मे कहा है, "पय-पयोधि तजि अवध बिहाई। जहँ सिय राम लखन रहे आई"।

इससे स्पष्ट है कि विष्णुजी रामरूप धारण कर अवध मे आये थे।

कहते है कि दूसरे और तीसरे सोरठाओ के विशेषणो मे यह गूढ आशय भरा है कि निर्गुण ब्रह्म सगुण होकर अवतरे और तीनो गुणो के अनुसार गोस्वामीजी ने तीन विशेषण दे तीन ही बाते अपने हेतु माँगी है, सो ऐसी कि (१) 'क्षीर सागर शयन' से सतोगुण रूप मान उनसे 'मूक होइ बाचाल' यह सतोगुणी वृत्ति माँगी, (२) 'तरुन अरुन बारिज-नयन' से रजोगुण रूपी मान उनसे 'पगु चढ़ै गिरिबर गहन' ये रजोगुण रूपी वृत्ति माँगी, और (३) 'नील सरोरुह स्याम' से तमोगुण वाले समझ 'कलिमल-दहन' करने के हेतु प्रार्थना की है।

सोरठा—कुन्द इन्दु सम देह, उमारमन[१] करुनायतन।
जाहि दीन पर नेह,[२] करउ कृपा मर्दनमयन[३] ॥४॥

शब्दार्थ—कुन्द=सफेद रग का एक फूल। इन्दु=चन्द्रमा। उमारमन=पार्वती के पति। करुनायतन=दया के भण्डार।

अर्थ—कुन्द के फूल तथा चन्द्रमा के समान स्वच्छ शरीर वाले, पार्वती के पति, दया के स्थान (श्री शकरजी), जिनका प्रेम दीनो पर बना रहता है, ऐसे कामदेव के भस्म करने वाले मेरे ऊपर कृपा करें।

---

१. उमा (उ=हे+मा=मत)=हे पुत्री ! तप मत कर, पार्वती की माता मैनाजी के ये वचन हैं। 'कुमारसम्भव' सर्ग १ मे लिखा है—

"उमेति मात्रा तपसो निषिद्धा पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम" ॥२६॥

अर्थात्—जब माता मैना ने तपस्या से निषेध करने के लिए कहा कि 'उ' (हे पुत्री) 'म' (मत)—भाव यह कि तपस्या मत कर। तभी से उस सुन्दरी का नाम 'उमा' हुआ।

२. जाहि दीन पर नेह, करउ कृपा मर्दनमयन—हे शंकरजी, आप दीनो पर दया करने वाले हैं, सो मेरे ऊपर भी दया कर मुझे श्री सीता-रामचन्द्रजी के चरणों में निरन्तर अटल प्रेम दीजिये। कुण्डलिया रामायण में कहा है—

कुण्डलिया—दीन दयाल दया करौ, दीन जानि शिव मोहिं।
सीता राम सनेह डर, सहज सत गुण होहिं ॥
सहज संत गुण होहिं, यथा प्रद लाभ दु:ख सुख।
कर्म विवश जहँ जाउँ, तहाँ सिय राम कृपा रुख ॥
राम कृपा रुख नित रहौ, जगत जनित सशय हरौ।
कह तुलसीदास शकर उमा, दीन दयाल दया करौ ॥

३. मर्दनमयन—कामदेव का नाश करने वाले। इस विशेषण से कविजी ने यह दरशाया है कि 'कामदेव' मनुष्यो का बडा भारी शत्रु है जो राम-भजन आदि सब शुभ कार्यों में बाधा डालता है। सो शिवजी मेरे ऊपर कृपा करके इस भारी शत्रु से बचावें। क्योंकि यही एक देव हैं जिन्होने काम को जला कर 'कामजित्' ऐसा नाम पाया है। कामदेव के

सोरठा—बन्दउँ गुरु पद कंज,[१] कृपासिन्धु नररूप हरि[२] ।
महामोह तम-पुञ्ज, जासु बचन रबिकर निकर[३] ॥५॥

शब्दार्थ—गुरु=अज्ञान को दूर करने वाले । नररूप हरि=मनुष्य का रूप धारण किये हुए विष्णुजी । रबिकर=सूर्य की किरणें । निकर=समूह ।

पहला अर्थ—(तुलसीदासजी कहते है कि) मैं अपने गुरुजी के कमल-स्वरूपी चरणो की वन्दना करता हूँ जो चरण दया के मानो समुद्र ही है और जो मनुष्य के शरीर को 'हरि' अर्थात् आवागमन से छुडाने वाले है तथा जिनके सामने मोहरूपी भारी अधकार "बच न" अर्थात् बच नही सकता (कारण) उनका प्रकाश सूर्य की अगणित किरणो के समान है (स्मरण रहे कि यहाँ पर 'गुरुपद कज' यही मुख्य कर्त्ता है, इस हेतु सब विशेषण चरणो ही के गुणसूचक मान-कर यह अर्थ किया गया है और गोस्वामीजी तो इससे भी आगे १२ पक्तियो तक गुरुजी के चरणो ही के सम्बन्ध मे लिखते गये है) ।

दूसरा अर्थ—मैं अपने गुरुजी के कमलस्वरूपी चरणो की वन्दना करता हूँ जो गुरुजी दया मे परिपूर्ण है, जो मनुष्यरूप धारण किये हुए मानो साक्षात् विष्णु है और जिनके वचन ही मानो सूर्य की अगणित किरणो के द्वारा ममतारूपी महाअधकार को नाश कर देते है ।

सूचना—गुरुजी की महिमा का तुलसीदासजी ने बहुत वर्णन किया है और वह यथार्थ ही है । कारण सद्‌गुरु के उपदेश बिना मनुष्य मे न तो ज्ञान, न भक्ति आदि मुक्ति के साधन हो सकते है । जैसा कहा है—

दोहा—गुरु गोबिंद दोनो खडे, केहि के लागौ पॉय ।
बलिहारी गुरुदेव की, गोबिद दिये लखाय ॥

बंदउँ गुरु पद पदुम परागा । सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ॥

---

१. कञ्ज—कमल । कमल की उपमा बहुधा अनेक स्थानो मे मिलती है, कभी उसके रग से, कभी मधुरता से, कभी पखुरी से, कभी पराग से और कभी रस आदि से । इस हेतु कमल के गुण लिखना आवश्यक है—

श्लोक—कमल मधुर वर्ण्यं शीतलं कफपित्तजित् ।
तृष्णा-दाहास्र-विस्फोट-विष-सर्प-विनाशनम् ॥

अर्थात्—कमल मधुर, सुन्दर रग वाला, शीतल तथा कफ और पित्त को शान्त करने वाला है और प्यास, दाह, रक्तपित्त तथा विसर्प नाम के रोग का नाश करने वाला है ।

२. नररूपहरि—तुलसीदासजी के गुरु का नाम नरहरिदास किंवा नरसिह दास था ऐसा प्रसिद्ध है । तुलसीदासजी ने उसे स्पष्ट रूप से नही कहा, परन्तु युक्ति से दरशा दिया है ।

३. महामोह तम-पुज, जासु बचन रबिकर निकर—गुरुजी के शिक्षारूपी वचनो से मन के भ्रम आदि सब दूर हो जाते है । जैसा इसी काण्ड मे शिवजी का वाक्य है कि "सुनु गिरिराज कुमारि, भ्रम तम रविकर वचन मम ।" महात्मा सुन्दरदासजी ने भी स्पष्ट कहा । जैसे—

• सवैया—पूरण ब्रह्म बताय दियो निज एक अखण्ड है व्यापक सारे ।
राग रु द्वेष करै अब कौनसौ जोई है मूल सोई सब डारे ॥
सशय शोक मिट्यौ मन कौ सब तत्त्व विचार कह्यौ निरधारे ।
'सुन्दर' शुद्ध किये मल धोय कै वा गुरु कौ उर ध्यान हमारे ॥

अमियमूरिमय चूरन चारू[१] । समन सकल भवरुज परिवारू[२] ॥

अर्थ—मैं अपने गुरुजी के कमल स्वरूपी चरणों की पराग के सदृश धूल की वन्दना करता हूँ जो धूल पराग ही की नाईं रुचिकर, सुगन्धित रसीली और रंगीली है।

(साराश यह है कि पद-रज भी रुचिकर, कीर्ति युक्त, मधुर तथा प्रीति से भरी हुई है)। (वह चरण-रज) अमृतरूपी जडी-विशेष का मानो चूर्ण ही है जिसके सेवन करने से ससार के अनगिनत रोग मिट जाते है (अर्थात् जिस प्रकार हिंग्वाष्टक चूर्ण से कुपच और त्रिफला आदि चूर्ण से अनेक रोग नष्ट हो जाते है इसी प्रकार गुरु पद-रज रूपी चूर्ण से काम-क्रोध-लोभ-ईर्ष्या आदि ससार के रोग शान्त हो जाते है)।

सुकृत सम्भुतन बिमल बिभूती[३] । मंजुल मंगल मोद[४] प्रसूनी ॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी । किये तिलकगुनगनबस करनी ॥

अर्थ—वही पवित्र गुरुपदरज सत्कर्मरूपी महात्मा के शरीर में उत्तम मगल और आनन्द को उत्पन्न करती है (अर्थात् जिस प्रकार अपवित्र चिता-भस्म महादेवजी के शरीर के ससर्ग से बहुत पवित्र मानी जाती है इसी प्रकार कैसी ही रज महात्मा गुरुजी के चरणों के ससर्ग से शुद्ध होकर सत्कर्म करने वाले प्राणियो को अनेक मगल और आनन्द देने वाली हो जाती

---

१ अमियमूरिमय चूरन चारू—इसमे यह शका हो सकती है कि तुलसीदासजी ने और अच्छे-अच्छे शास्त्रो को छोड वैद्यक शास्त्र से ग्रन्थ का आरम्भ क्यो किया ? उसका समाधान यो है कि "धर्मार्थ-काम-मोक्षाणां, आरोग्य मूल कारणम्"—अर्थात् अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष सभी की सिद्धि के लिए आरोग्यता मुख्य कारण है। यदि शरीर रोग ग्रसित होवे तो कोई भी कार्य ठीक-ठीक न बन पडेगा। इस हेतु वैद्यक शास्त्र को मुख्य मान उसी के आधार से ग्रन्थ का आरम्भ करते है। जैसा कि कुमारसम्भव के ५वें सर्ग के ३३वें श्लोक मे कहा है 'शरीर माद्य खलु धर्म साधनम्' अर्थात् किसी भी प्रकार के धर्म की साधना मे शरीर मुख्य है।

२. भवरुज परिवारू—संसारी तथा मानस रोगो का विस्तारपूर्वक निर्णय उत्तरकाण्ड के १२०वे दोहे के पश्चात् लिखा है। जैसे—

सुनहु तात अब मानस रोगा। जेहि तें दुख पावहिं सब लोगा ॥ इत्यादि

३. सुकृत सम्भुतन बिमल बिभूती—(कुमारसम्भव मे लिखा है)

श्लोक—तदगससर्गमबाप्य कल्पते, ध्रुव चिताभस्म रजो विशुद्धये।
तथाहि नृत्याभिनयक्रियाच्युत, विलिप्यते मौलिभिरम्बरौकसाम् ॥

अर्थात्—जिन शिवजी के अग के संसर्ग से चिताभस्म भी ऐसी पवित्रता को प्राप्त हो जाती है कि नृत्य करने के समय उनके शरीर से गिरी हुई उसी भस्म को सब देवगण अपने माथे में लगाते हैं।

४. मजुल मंगल मोद—

(१) मंगल—वह सुख है जो बाहरी इन्द्रियो के सहारे से उत्पन्न होता है, जैसे शुद्ध सात्विक परमेश्वर-सम्बन्धी कर्म अथवा प्यारी वस्तु का देखना अर्थात् पुत्र-जन्म, पुत्र-विवाह आदि।

(२) मोद—वह सुख है जो अन्त.करण के विचार से उत्पन्न होवे। जैसे अन्त:करण से परमात्मा का विचार करना अथवा प्यारी वस्तु के मिलने से जो आनन्द होता है, जैसे भगवान् का जन्मोत्सव, कथा सुनना और साधुओ को भोजन देना।

'मंजुल' कहने से यह अभिप्राय है कि दोनों मंगल और मोद सात्विक होवें, न कि तामसी।

है। भाव यह है कि गुरुजी की कृपा से प्राणियो को आनन्द-मगल प्राप्त होते है)।

मनुष्यो के कोमल मन-रूपी दर्पण के मैल को मिटाने वाली यह चरण-रज है। यदि इसका तिलक (माथे पर) लगाया जाय तो अनेक गुण मानो वश मे हो जाते है (अर्थात् अज्ञान से ढका हुआ मन, गुरुजी की कृपा से शुद्ध हो जाता है। भाव यह कि गुरुजी से ज्ञान मिलता है और गुरुजी की कृपा से मनुष्य सम्पूर्ण गुणो को भी पा लेता है)।

श्री गुरुपदनख मनिगन जोती[१] । सुमिरत दिब्य दृष्टि हिय होती[२] ।।
दलन मोह तम सोसु प्रकासू । बडे भागि उर आवहि जासू ।।

शब्दार्थ—सोसु=उन्ही का।

अर्थ—श्री गुरुजी के चरण-नख का प्रकाश बहुत-सी मणियो के तुल्य है। उनका स्मरण करने से हृदय के नेत्र दिव्य हो जाते हैं (अर्थात् गुरुजी की कृपा से हृदय मे शुद्ध ज्ञान उत्पन्न हो जाता है)। उन्ही का उत्तम प्रकाश मोहरूपी अन्धकार को नाश कर देता है। उस मनुष्य के बडे भाग्य समझने चाहिए जिसके हृदय मे (गुरु-चरणो) का ध्यान बँध जावे।

उघरहि बिमल बिलोचन हीके । मिटहिं दोष दुख भव रजनी के[३] ।।

अर्थ—हृदय के निर्मल (विवेकरूपी) नेत्र खुल जाते है और ससाररूपी रात्रि के दोष और दु.ख दूर हो जाते है (अर्थात् सद्-असद्-विवेक उत्पन्न होता है और उससे अविद्यारूपी रात्रि, जो दोष-दु ख से परिपूर्ण है, सो मिट जाती है)।

भाव यह कि विवेक के कारण अज्ञान से उत्पन्न हुआ जन्म-मरण का दु.ख दूर हो जाता है।

सूझहिं रामचरित मनि मानिक । गुपुत प्रकट जहँ जो जेहि खानिक[४] ।।

---

१. श्री गुरुपदनख मनिगन जोती—कवि प्रिया से नखो की उपमा—

दोहा—तारा रवि शशि सुमन मनि, नग गनि नखनि समान।
अँगुरी चम्पक की कली, जीवन मूरि प्रमान ।।

अर्थ—चरण के नखो की उपमा तारा, सूर्य, चन्द्रमा, फूल, मणि या रत्नो से दी जाती है तथा पैर की अँगुलियो को चम्पाकली अथवा प्यारे की जीवन-मूर कहते है।

२. सुमिरत दिब्य दृष्टि हिय होती—इसका स्पष्टीकरण विस्तार-सहित यो है—

क०—गुरु बिन ज्ञान नाहिं गुरु बिन ध्यान नाहि गुरु बिन आत्मा विचार न लहत्व है।
गुरु बिन प्रेम नाहि गुरु बिन प्रीति नाहिं गुरु बिन शील हू सन्तोष न गहत्व है ।।
गुरु बिन बास नाहि बुद्धि को प्रकाश नाहिं भ्रमहू को नाश नाहि सशय रहत्व है।
गुरु बिन बाट नाहिं कौडी बिन हाट नाहिं 'सुन्दर' प्रकट लोय वेद यो कहत्व है ।।

३. उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के—गजल—पुर-बहार से

गजल—जो गुरुदेव को शिर नवाता नही है। वो विद्या का वरदान पाता नही है ।।
हरै दोष गुण ज्ञान से कोष भर दे। गुरुदेव सा कोई दाता नही है ।।
गुरु के सिवा उलटा मारग बतावे। कोई राह सीधी बताता नही है ।।
ये ससार सागर अगम इससे दूजा। कोई पार गुरु बिन लगाता नही है ।।
कहै 'श्यामा' मुश्किल है कविता का मारग। बिन गुरु-कृपा हाथ आता नही है ।।

४. गुपुत प्रकट जहँ जो जेहि खानिक—गुप्त अथवा प्रकट हीरा-पन्ना आदि जिस प्रकार अफ्रीका और पन्ना की खदानो से निकाले जाते है, इसी प्रकार रामचरित्र भी, जो प्रसिद्ध है अथवा छिपे हुए है, वे सब समझ मे आ जाते है। गुप्त चरित्र यथा—(१) जयन्त की कथा, (२) सीताजी का अग्नि-प्रवेश, (३) सीता को विराटरूप दिखाना, आदि। →

अर्थ—(हृदय के नेत्र खुल जाने से) श्री रामचन्द्रजी के मणि-माणिक रूपी चरित्र जो जहाँ पर जिस खान में छिपे हैं अथवा प्रकट हैं, सो सब दिखाई देने लगते हैं (अर्थात जिस प्रकार ढूँढने वाला हीरा-पन्ना आदि जवाहरों को ढूँढ निकालता है, इसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य परमात्मा का गुप्त या प्रकट चरित्र खोज लेता है)।

दोहा—यथा सुअंजन आँजि दृग, साधक सिद्ध सुजान ।
कौतुक देखहिं सैल बन, भूतल भूरि निधान ।।१।।

शब्दार्थ—सुअजन (सु=उत्तम+अजन=सुरमा)=उत्तम सुरमा, अर्थात् वह सुरमा जिसके लगाने से ससार के अद्भुत गुप्त पदार्थ दृष्टि मे आ जाते है (ऐसे सुरमे के बनाने की अनेक विधियाँ तन्त्रशास्त्र के ग्रन्थो मे मिलेंगी)। साधक=साधने वाला, अर्थात् अपने इच्छित काम या मत्र आदि को साधने वाला। सिद्ध=आध्यात्मिक ज्ञानवाला योगी, जिसे सिद्धियाँ आदि प्राप्त हो चुकी हो। कौतुक=आश्चर्य की बातें। भूतल=पृथ्वी के पृष्ठ पर। भूरि=बहुत। निधान=धन, भण्डार।

अर्थ—जिस प्रकार ज्ञानवान्, कार्य की सिद्धि चाहने वाले सिद्ध लोग सिद्धाजन को नेत्रो मे लगा लेते है तो उन्हे पहाड़ो मे (स्वर्ण, रत्न आदि की) आश्चर्ययुक्त खदानें, वन मे (अद्भुत औषधिया) और पृथ्वी पर बहुत-से धन के भण्डार दिखाई देने लगते है। इसी प्रकार

गुरुपद रज मृदु मंजुल अंजन । नयन अमिय दृग दोष बिभंजन ।।

अर्थ—गुरुजी के चरणों की धूल भी मधुर-मनोहर अजन है जो (हृदय के नेत्रो को अमृत के समान है अर्थात् हृदय को शीतलता और विवेक को स्थिरता देने वाली है (और उन्ही नेत्रो के अज्ञान आदि दोषों को दूर करने वाली है)।

साराश यह है कि गुरुजी के दिये हुए ज्ञान से हृदय के नेत्र सदा के लिए खुल जाते हैं, ठंडक लिये रहते हैं और उनकी अज्ञानरूपी धुन्ध भी दूर हो जाती है।

तेहि कर बिमल बिबेक बिलोचन[1] । बरनउँ रामचरित भवमोचन ।।

शब्दार्थ—भवमोचन=संसार से छुड़ाने वाले अर्थात् जन्म-मरण के दु:खो से छुड़ाकर मोक्ष देने वाले।

अर्थ—उसी अञ्जन से विवेकरूपी अपने नेत्रो को निर्मल करके मैं (तुलसीदास) ससार के आवागमन से छुड़ाने वाले श्री रामचन्द्रजी के चरित्रों का वर्णन करता हूँ (अर्थात् गुरु-कृपा से विवेक को पाकर श्री रामचरित्र लिखता हूँ)।

(३. सज्जनों की वन्दना)

बंदउँ प्रथम महीसुर चरना[2] । मोह जनितसंसय सब हरना ।।

और भी—

दोहा—जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठि।
हौं बौरी ढूंढ़न गई, रही किनारे बैठि।।

१. तेहि कर बिमल बिबेक बिलोचन—यही उत्तम विचार 'शिक्षा' नामक 'वेदांग' मे बहुत ही स्पष्ट रूप से दरशाया है। यथा—

श्लोक—अज्ञानान्धस्य लोकस्य ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै पाणिनये नम:।।

अर्थात्—अज्ञान से मानो अन्धे मनुष्यों के नेत्रो को ज्ञानरूपी अजन की सलाई से जिन्होंने खोल दिया है, ऐसे महात्मा 'पाणिनि' को नमस्कार है।

२. बंदउँ प्रथम महीसुर चरना—शका यह हो सकती है कि अभी तक अनेक वन्दनाएँ कर—

शब्दार्थ—महीसुर (मही=पृथ्वी+सुर=देवता)=पृथ्वी के देवता अर्थात् ब्राह्मण। स्मरण रहे कि स्वर्ग-सुर (देवता) के पश्चात् महीसुर (अर्थात् पृथ्वी के देवता ब्राह्मण) इस शब्द की योजना मे कविजी की चतुराई सराहनीय है।

अर्थ—मै पहले ब्राह्मणो की वन्दना करता हूँ, जो मोह से उत्पन्न हुए सम्पूर्ण सन्देहो को दूर करने वाले है (अर्थात् वेद के पढनेवाले ब्राह्मण अपने विद्यालय से लोगो के अज्ञान उत्पन हुए सब सन्देहो का निवारण कर देते है)।

सुजन समाज सकल गुन खानी। करउँ प्रनाम सप्रेम[2] सुबानी[3] ॥

अर्थ (अब) सब गुणो से विभूषित सज्जनो की समाज को प्रेम-सहित सरल भाषा से प्रणाम करता हूँ (अर्थात् मैं सधे हृदय से सज्जनो और महात्माओ की वन्दना करता हूँ)।

साधुचरित[4] शुभ सरिस कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू ॥

शब्दार्थ—सरिस=बराबर। निरस=(१) रस के बिना (२) विषय-वासना रहित। बिसद=(१) स्वच्छ, (२) छल-रहित। गुनमय=(१) तागो से भरा हुआ, (२) सुचरित्रो सहित।

अर्थ—साधुओ के चरित्र कपास के फल के समान भले होते है क्योकि वे रस-रहित, उज्ज्वल और गुणो से भरे हुए हैं। (अर्थात् जिस प्रकार कपास का फल रस-रहित, स्वच्छ और अनगिनत तन्तुओ से भरा हुआ रहता है उसी प्रकार साधुओ के चरित्र विषय-वासना-रहित, छल-हीन और सद्गुणो से परिपूर्ण होते है)।

चुके, फिर भी 'बन्दउँ प्रथम महीसुर चरना' क्यो लिखा? यह वन्दना तो कुछ प्रथम की नही है। उसका समाधान यह है कि गोस्वामीजी ने रामचरित-वर्णन के आरम्भ मे ब्राह्मणो की वन्दना की है। पहले देवताओ की वन्दना करके उन्होने अपने गुरु की वन्दना की और अब रामचरित के वर्णन मे महीसुर की वन्दना करते है। जो कदाचित् यह सन्देह किया जावे कि गुरुजी तो देवता नही है, उनके पश्चात् वन्दना कर प्रथम वन्दना क्यो कहा? सो उसका कारण यह है कि गुरुजी की प्रतिष्ठा सबसे बढ़कर देवताओ ही के तुल्य है। जैसा कहा है—'गुरुर्ब्रह्मा गुर्रुविष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वर। गुरु साक्षात्परब्रह्मा तस्मै श्रीगुरुवे नम॥ (देखो तीसरे श्लोक पर टिप्पणी) और भी—'बदउँ प्रथम महीसुर चरना' इसका अर्थ यदि ऐसा लिया जावे कि पहले समय के ब्राह्मण (अर्थात्) जो सबसे पहले उत्पन्न हुए थे (यथा सनकादि, नारद, अगस्त्य, वशिष्ठ आदि) उनके चरणो की वन्दना करता हू, तो फिर सन्देह ही नही रहता।

१ मोह जनित ससय सब हरना—धन्य है तुलसीदासजी जिन्होने इस विशेषण से ब्राह्मणो के लक्षण, उनकी विद्या और कर्तव्य सब ही दरशा दिये है। पहले समय के ब्राह्मण इस प्रकार पढे-लिखे होते थे कि वे लोगो के कठिन से कठिन सन्देहो का निवारण कर सकते थे, तभी तो प्रथम वन्दनीय ठहराये गये—जैसे याज्ञवल्क्यजी, वशिष्ठजी, लोमशजी आदि। इन्होने समय-समय पर लोगों के कठिन सन्देहो का निवारण किया था।

२. सप्रेम—शुद्ध प्रेम के लक्षण ये है—

दोहा—अन्तर प्रीति उमँगि तन, रोम कठ भरि होय।
बिह्वलता जल नेत्र मे, प्रेम कहावै सोय॥

३. सुबानी—सरल सुबानी इस प्रकार होनी चाहिए—

दोहा—अर्थ बडो आखर अलप, मधुर भवण सुखदानि।
साँची समय सुहावनी, कहिये सरल सुबानि॥

४. साधुचरित—'वैराग्य सदीपिनी' मे दिये साधुओ के लक्षण—

जो सहि दुख परछिद्र दुरावा । बन्दनीय जेहि जग जस पावा ॥

अर्थ— (कपास और सज्जन दोनों) कष्टों को सहकर दूसरों के दोषों को ढाँकते हैं और इस संसार में कीर्ति प्राप्त कर सम्मान पाने के योग्य हो जाते हैं (अर्थात् जैसे कपास ओटने-धुनने, कातने और बुनने आदि का कष्ट स्वतः सहकर मनुष्यों के शरीर को ढाँक कर लज्जा-कष्ट आदि का निवारण करता है, ऐसे ही सन्तजन विषय-त्यागी हो इन्द्रिय दमन संयम और ज्ञान प्राप्त कर मनुष्यों को शिक्षा दे कष्टों से दूर रखते हैं । भाव यह कि कपास की नाईं सन्त स्वतः कष्ट सहकर स्वार्थ को त्याग दूसरों का उपकार करते रहते हैं । जैसा कहा है—
उत्तम नर पर अरथ करत स्वारथ को त्यागत । मध्यम पर को अरथ करत स्वारथ अनुरागत ॥"

मुद मंगलमय सन्त समाजू[१] । जो जग जंगम तीरथराजू ॥

शब्दार्थ—जंगम = चलनेवाला । तीरथराज = प्रयाग ।

अर्थ— सन्तों का समाज आनन्द और मंगल से परिपूर्ण है । मानो संसार का 'चलनेवाला प्रयाग' ही हो ।

सूचना—तुलसीदासजी सन्त-समाज को प्रयाग-तुल्य समझ उसकी विशेषता और प्रयाग की त्रिवेणी-अक्षयवट आदि की समता आगे स्पष्टरूप से वर्णन करते हैं ।

रामभक्ति जहँ सुरसरि धारा[२] । सरस्वति ब्रह्म विचार प्रचारा[३] ॥

अति अनन्य गति इन्द्री जीता । जाको हरि बिन कतहुँ न चीता ॥
मृगतृष्णा सम जग जिय जानी । तुलसी ताहि सन्त पहिचानी ॥

१. मुद मंगलमय संत समाजू—'मुद' और 'मंगल' की परिभाषा पृ० २८ में लिख आये हैं । 'मुद' का उपयोग, जैसा गीताजी में लिखा है (अ० १६-१४)
'यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्ये' अर्थात् नट आदि को धन देने से हर्ष को प्राप्त होऊँगा ।
'मंगल' इस शब्द का उपयोग 'भामिनीविलास' में यों किया है - सत्सङ्गता किमु न मंगल-मातनोति ।

अर्थ—सज्जनों की संगति कौन-से मंगल नहीं देती है (अर्थात् सभी मंगल देती है) ।

२. रामभक्ति जहँ सुरसरि धारा—गंगाजी की धार से श्री रामचन्द्रजी की भक्ति का मिलान करने के अनेक कारणों में से मुख्य दो लिखे जाते हैं—
(१) गंगाजी का जल बिगड़ता नहीं और निरन्तर बहता हुआ दूसरी नदियों के जल को भी गंगाजल बना देता है । इसी प्रकार श्री रामचन्द्रजी की भक्ति क्रिया नष्ट होने पर भी निर्मल रहकर दूसरे भक्तों को भी भक्त बना देती है । जैसा कहा है—

हमारे प्रभु अवगुन चित न धरौ
इक नदिया इक नार कहावै मैलो ही नीर भरौ ।
जब मिलि दोऊ एक बरन भये, सुरसरि नाम परौ ॥

(२) गंगाजी में कोई भी प्राणी स्नान करने से मुक्ति का भागी हो जाता है । इसी प्रकार श्री रामचन्द्रजी की भक्ति के अधिकारी ऊँच-नीच, स्त्री-पुरुष, आबाल-वृद्ध सब ही हैं । यथा—

श्लोक— विष्णुपादाब्जसम्भूते गंगे त्रिपथगामिनी ।
धर्मं द्रवीति विख्याते पापं मे हर जाह्नवी ॥

अर्थात्—हे गंगाजी ! तुम विष्णुजी के चरण-कमलों से उत्पन्न हुई हो और तुम्हारी तीन धाराएँ तीनों लोकों में बहती हैं । धर्म के कारण तुम दयालु हो जाते हो । सो मेरे पापों को दूर करो ।

३. सरस्वति ब्रह्म विचार प्रचारा—सरस्वतीजी स्पष्ट रूप से त्रिवेणी में दिखाई नहीं देतीं,→

शब्दार्थ—सुरसरि (सुर = देव + सरि = नदी) = देवनदी, अर्थात् गगा ।

अर्थ—(सन्त समाजरूपी प्रयाग मे) श्री रामचन्द्रजी की भक्ति ही गगाजी की धार है और (निर्गुण) ब्रह्म के ज्ञान का विचार ही सरस्वतीजी हैं ।

बिधि निषेधमय कलिमल हरनी । कर्म कथा रविनन्दिनि बरनी[1] ।।

शब्दार्थ—कलिमल = कलियुग के पाप । रविनन्दिनि = सूर्य की पुत्री अर्थात् यमुनाजी ।

अर्थ—कर्तव्य और अकर्तव्य उपदेशो से भरी हुई कर्म-कथा जो कलियुग के पापो की नाश करनेवाली है, वही यमुनाजी कही गई है (प्रयाग मे गगा, सरस्वती और यमुना इन तीन नदियो का सगम है सो सन्त-समाज मे रामकथा, ब्रह्मकथा और कर्मकथा इन तीनो का सगम बताया गया है) ।

हरिहर कथा बिराजत बेनी । सुनत सकल मुद मंगल देनी[2] ।।

कभी-कभी उनकी लाल धारा किसी-किसी को दृष्टि पडती है । वे गुप्त बहती है, ऐसा लोगों का कहना है । सो इनका मिलान निर्गुण ब्रह्म की कथा से करना अति उत्तम है । क्योकि यह कथा भी तो बहुधा गुप्त ही है और किसी-किसी महात्मा की समझ मे कभी-कभी आ जाती है । जैसा अरण्यकाण्ड मे कहा है—

दोहा—पुरइन सघन ओट जल, वेगि न पाइय मर्म ।
माया छन्न न देखिये, जैसे निर्गुन ब्रह्म ।।

और भी—

हर जगह मौजूद है पर वह नज़र आता नही ।
योग साधन के बिना उसको कोई पाता नही ।।

१. बिधि निषेधमय कलिमल हरनी । कर्म कथा रविनन्दिनि बरनी—
यमुनाजी का मिलान कर्म-कथा से करना भी अति उत्तम है क्योंकि श्री कृष्णजी ने बहुत से शुभ कर्म उसी के किनारे किये थे, जैसे—अग्नि-भक्षण, काली-नाग नाथन, गोपियो को उपदेश, आदि ।
बिधि निषेधमय के कुछ धर्म-कर्म ये है—

दोहा—यज्ञ दान तप अध्ययन, सत्य क्षमा धृति सोय ।
अरु अलोभ गनि धर्म ये, आठ भाँति ते होय ।।

यमुनाजी की प्रशसा कविशिरोमणि सूरदासजी यो करते है—

राग रामकली—श्री यमुना तिहारो दरश मोहि भावै ।
श्री गोकुल के निकट बहत है लहरन की छवि आवै ।।
सुखकरनी दुखहरनी यमुना जो जन प्रात नहावै ।
मनमोहन को अति ही प्यारी पटरानी कहलावै ।।
वृन्दावन मे रास रच्यो है, मोहन मुरली बजावै ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन को बेद बिमल जस गावै ।।

२. हरि हर कथा विराजत बेनी । सुनत सकल मुद मगल देनी—(राग-विनोद से)
राग चचरीक—जयति जयति जयति जयति जयति श्री त्रिवैनी !

गग जमुन सरस्वती स्वर्ग की नसैनी ।
तीर्थराज आय भई, सगम सुख दैनी ।।
पाप ताप रोग शोक कलिमल की छैनी ।
दरस परस पान किये पातक हर लैनी ।।
चारौ फल पाय दीन बिहरैं मुद सैनी ।
बरनत ब्रज चन्द भववारिधि की खैनी ।।

वट बिस्वास अचल निज धर्मा[१] । तीरथराज[२] समाज सुकर्मा ।।

अर्थ— विष्णुजी और शिवजी की जो कथा है (अर्थात् कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड) वह बेनी के मिलने का स्थान है, जिनके सुनने मात्र से सम्पूर्ण आनन्द-मगन प्राप्त होते हैं । अपने धर्म मे अचल विश्वास यही अक्षयवट है और सम्पूर्ण सत्कर्म प्रयाग का और भी समाज है ।

सबहि सुलभ सब दिन सब देसा । सेवत सादर समन कलेसा ।।

अकथ अलौकिक तीरथराऊ । देइ सद्यफल प्रकट प्रभाऊ[३] ।।

शब्दार्थ - शमन- नाश करना । अकथ = जो कहने मे न आवे । अलौकिक = अद्भुत, परलोक का । सद्य = तुरन्त ।

अर्थ—(सन्तरूपी प्रयाग) सब लोगो को सदैव सभी स्थान मे सहज ही मे मिल सकता है । यदि उसका आदर-सहित सेवन किया जाए तो वह क्लेशो का नाश कर देता है । इस तीर्थराज की महिमा कही नही जा सकती, क्योकि यह अद्भुत है और इसका यह प्रभाव प्रकट है कि शीघ्र ही फल दे देता है (अर्थात् स्थानी प्रयाग मे स्नान आदि करने से अर्थ-धर्म-काम और मोक्ष योग्यतानुसार कालान्तर में मिलते हैं, परन्तु सत्संगति मे तो सब ही इच्छित फल तुरन्त ही मिल जाते हैं । जैसा आगे लिखा है) ।

दोहा—सुनि समझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग ।
लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग ।।२।।

शब्दार्थ—मज्जहिं = मग्न होते हैं, गोता लगाते हैं । अछत तनु = शरीर रहते ही, जीते-जी ।

अर्थ—सन्त समाजरूपी प्रयाग में (सत्सङ्गति-महिमा) सुनना मानो अर्थ की प्राप्ति है, समझना यही धर्म है, मन का प्रसन्न होना यही काम (कामना की सिद्धि है) और विशेष प्रेम

---

१. अचल निज धर्मा—श्रीमद्भगवद्गीता के तीसरे अध्याय में कहा है—

स्वधर्मे निधनं श्रेय. परधर्मो भयावह ।। ३५ ।।

अर्थात्—अपने धर्म में प्राण दे देना अति उत्तम है, परन्तु दूसरे का धर्म है ग्रहण करना दु खो का स्थान है ।

२. तीरथराज—

श्लोक—प्रयागं माधवं सोमं, भारद्वाजं च वासुकिम् ।
वन्दे अक्षयवटं शेषं प्रयागं तीर्थनायकम् ।।

भाव यह कि तीर्थराज प्रयाग की समाज में माधवजी, सोमनाथजी, भारद्वाजजी, वासुकि, अक्षयवट और शेषनागजी हैं । इसीके अनुसार सन्तों की समाजरूपी प्रयाग में (१) हरि-पूजा माधवजी हैं, (२) भगवत् नाम का जाप सोमनाथजी, (३) सत्कथा भारद्वाजजी, (४) सम्पूर्ण व्रत वासुकिजी, (५) अपने धर्म में दृढ़ विश्वास अक्षयवट, और (६) कथा-कीर्त्तन शेषनागजी हैं ।

३. देइ सद्य फल प्रकट प्रभाऊ—श्रीमद्भागवत मे लिखा है—

श्लोक—न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामया ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधव. ।।

अर्थात्—न तो जल वाले तीर्थस्थान और न मिट्टी या पाषाण की बनी हुई देव-मूर्तियां (जल्दी फल देती हैं), ये तो बहुत समय के पश्चात् पवित्र करती हैं, परन्तु साधु तो दर्शन-मात्र ही से पवित्र कर देते है ।

मे मग्न हो जाना यही मोक्ष है। इस प्रकार जीते-जी मनुष्य सभी बाते पा लेता है (परन्तु यथार्थ प्रयाग मे तो इनकी प्राप्ति शरीर छूटने पर होती है)।

मज्जन फल पेखिय ततकाला। काक होहिं पिक[१] बकहु मराला[२] ॥
सुनि आचरज करै जनि कोई। सत सगति महिमा नहि गोई ॥
वाल्मीकि नारद घटजोनी। निज निज मुखन कही निज होनी[३] ॥

शब्दार्थ—पेखिय (प्रेक्ष)=देखिये। पिक=कोयल। मराल - हस। गोई=छिपी हुई। घटजोनी=अगस्त्य ऋषि।

अर्थ—मग्न होने का फल शीघ्र दिखाई देने लगता है। जिसमे कौआ तो कोयल और बगुला हस हो जाता है (अर्थात् कौए के समान स्वभाव वाले कोयल के समान स्वभाव वाले हो जाते है और बगुले के समान जीव हस के तुल्य हो जाते है जैसा आगे कहा है)। इस बात को सुनकर कोई अचरज न करे, कारण सत्सङ्गति का प्रभाव कुछ छिपा नही है देखे वाल्मीकि,

---

१ काक होहिं पिक—कौए से कोयल हो जाने का कितना उत्तम उदाहरण तुलसीदासजी ने दिया है कि बहुत ही दुष्ट और मलिन कर्म करने वाले कठोर-भाषी वाल्मीकिजी—उत्तम कर्म करने वाले मधुरभाषी कोयल ही बन गये। जैसा कहा है—

श्लोक—कूजत राम रामेति, मधुर मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखा, वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥

अर्थात्—उन कोकिला-स्वरूपी वाल्मीकिक विजी को नमस्कार है जो कवितारूपी वृक्ष की शाखा पर बैठकर 'राम-राम' यही कूक मधुर ध्वनि से करते रहते है।

साराश— लूटमार और हत्या का काम छोड़ सत्सङ्गति से पूरे रामभक्त और आदि-कवि बन गये। (देखें वाल्मीकिजी का जीवन-चरित्र)

२. बकहु मराला—ऐसे ही बगुले का हस हो जाना नारदजी के जीवन-चरित्र से स्पष्ट हो जाएगा कि न कुछ सेवकिनी के कुपढ पुत्र सज्जनो की सङ्गति से हस रूप अर्थात् आचरण मे परमहस ही हो गये है। ऐसे ही अगस्त्यजी को भी जानो।

३. वाल्मीकि नारद घटजोनी। निज निज मुखन कही निज होनी ॥

वाल्मीकिजी ने अपना वृत्तान्त श्री रामचन्द्रजी से कहा था (जबकि वे वनवास के समय उनके आश्रम मे मिलने को गये थे) सो यों कि हे श्री रामचन्द्रजी! मैं प्रचेता का पुत्र हूँ परन्तु किरातो के सङ्ग रहकर उन्हीके कर्म करने लगा था। निदान सप्त ऋषियो की सङ्गति से ऐसा सुधरा कि इस अवस्था को प्राप्त हुआ कि लोग मुझे महर्षि कहते है और मैं ब्रह्माजी के वरदान से आदिकवि हो गया। (पूरा जीवन-चरित्र अयोध्याकाण्ड की श्री विनायकी टीका में मिलेगा)।

जब श्री वेदव्यासजी को शान्ति न होती थी, तब नारदजी ने अपनी कथा उनसे यो वर्णन की थी—अकाल पडने पर मेरी माता ने साधुओ की जूठन से मेरा पालन किया था। उसीके प्रभाव तथा उन्हींकी सङ्गति से मैं ब्रह्मा का पुत्र होकर देवऋषि कहलाने लगा। (पूरा वृत्तान्त अरण्यकाण्ड श्री विनायकी टीका की पुरौनी मे देखे)

घटजोनी—अर्थात् अगस्त्य ऋषि ने शिवजी से कहा ('एकबार त्रेताजुग माही। शम्भु गये कुम्भज ऋषि पाही')—हे शिवजी! मेरी उत्पत्ति घडे से है तो भी सज्जनो की कृपा और शक्ति से मै इस योग्यता को प्राप्त हुआ कि आप मेरे आश्रम मे पधार कर मुझसे श्री रामचरित-वर्णन करने को कह रहे है, इत्यादि। सविस्तार कथा अरण्यकाण्ड की श्री विनायकी टीका की टिप्पणी मे है।

नारद और अगस्त्य—इन्होंने अपनी दशा अपने ही मुख मे कही है। (ये ही कोयल और हंस हो जाने के उदाहरण है, देखें टिप्पणी)

जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना[1] ॥
मति कीरतिगतिभूतिभलाई। जब जेहि जतन जहा जेहि पाई ॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहु बेद न आन उपाऊ ॥

शब्दार्थ—जहाना (फारसी जहान) = जगत।

अन्वय- जहाना जे (१) जलचर (२) थलचर (३) नभचर (४) जड़ (५) चेतन नाना जीव। (तिन ने क्रमानुसार) (१) मति (२) कीरति (३) गति (४) भूति (५) भलाई जेहि जब जेहि जतन जहाँ पाई। सो सतसग प्रभाऊ जानब लोकहु बेद आन उपाऊ न।

अर्थ—ससार में जितने (१) जल के रहने वाले, (२) थल पर रहने वाले, (३) आकाश मे उडने वाले, (४) जड, और (५) चैतन्य नाना प्रकार के जीवों म में क्रमानुसार जो (१) बुद्धि, (२) बडाई, (३) गति, (३) ऐश्वर्य, और (५) सामग्री जब भी कभी किसी प्रकार से जिसने जहाँ पाई है सो सब सत्सङ्ग ही के प्रभाव से जानो, क्योंकि ससार अथवा वेद में कही भी कोई दूसरा उपाय नही है (अर्थात् (१) जलचारी जीव राघव मत्स्य ने बुद्धि, (२) थलचारी जीव गजेन्द्र ने कीर्ति, (३) नभचारी जटायु ने गति, (४) जड़ पाषाण-रूपी अहल्या ने ऐश्वर्य, और (५) चैतन्य हनुमान्, सुग्रीव आदि ने भलाई पाई है। सो सब सत्संग ही के कारण से समझो, दूसरा कारण नही)।

बिन सतसंग बिबेक न होई। रामकृपा बिन सुलभ न सोई ॥
सतसंगति मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥

अर्थ—सज्जनों की सङ्गति के बिना ज्ञान नही होता सो सत्सङ्गति श्री रामचन्द्रजी की कृपा के बिना मिलना सहज नहीं है। सत्सङ्गति आनन्द और मङ्गल की जड है तथा उसका फल सिद्धि है। सम्पूर्ण साधनाएँ उसके फूल हैं (अर्थात् जिस प्रकार जड़ से वृक्ष, उससे फूल और फूल से फल होते हैं, उसी प्रकार सत्सङ्गति से आनन्द-मंगल, उससे उपासना-भक्ति और उनसे मुक्ति मिलती है)।

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई[2]। पारस[3] परसि कुधातु सुहाई ॥

१. जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना—राघव मत्स्य और गजेन्द्र की कथा पुरानों में मिलेगी, जटायु की कथा अरण्यकाण्ड और हनुमान् तथा सुग्रीव का जीवन चरित्र किष्किन्धाकाण्ड की श्री विनायकी टीका में है। अहल्या का वृत्तान्त इसी काण्ड में है।

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई—राजर्षि भर्तृहरि का वचन विचारणीय है। यथा—

श्लोक—जाड्यं धियो हरति सिंचति वाचि सत्यम्
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेत. प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम्
सत्सगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥

अर्थात्—सत्संगति बुद्धि की जडता को मिटाती, वाणी को सत्य से सींचती, मान को बढाती, पाप को घटाती, चित्त को प्रसन्न रखती और दिशाओं में यश फैलाती है। कहो तो सही, सत्सङ्गति पुरुष के हेतु क्या नहीं करती? (अर्थात् सभी कुछ करती है)।

पारस (स्पर्शमणि)—एक प्रकार की पथरी, जिसके संसर्ग से लोहा सोना हो जाता है। आल्हखण्ड में लिखा है—"पारस पूजा है महुवे में लोहा छूवत सोन ह्वै जाय"।

बिधि बस सुजन कुसंगति परही । फनि मनि सम निज गुन अनुसरही[1] ।।

शब्दार्थ—पारस (स्पर्शमणि)=एक प्रकार की पथरी, जिसके ससर्ग से लोहा सोना हो जाता है। परसि (स्पर्श)=छूने से । कुधातु=लोहा । बिधिबस=दैवयोग से ।

अर्थ--दुष्ट मनुष्य भी सज्जनो की सगति से सुधर जाते है जैसे पारस के छूने ही से लोहा सोना हो जाता है । दैवयोग से यदि सज्जन मनुष्य बुरी सगति मे पड भी जाए तो वे अपने सद्‌गुणो को लिये रहते हैं, जैसे सर्प के सग रहकर भी मणि अपने गुण को लिये रहती है।

बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी । कहत साधु महिमा सकुचानी[2] ।।
सो मो सन कहि जात न कैसे । शाक[3] वनिक मनि गुन गन जैसे ।।

शब्दार्थ—कोबिद=पण्डित । शाक-वनिक=तरकारी बेचने वाला कुँजडा ।

अर्थ--ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कवि और पण्डित लोग भी साधुओ की महिमा नही कह सके। वह महिमा मुझसे किसी भी प्रकार नही कही जा सकती, जिस प्रकार कुजडा मणियो की परख नही कर सकता ।

दोहा—बदऊँ सन्त समान चित, हित अनहित नहि कोउ[4] ।
अजुलिगत सुभ सुमन जिमि, सम सुगध कर दोउ ।।

---

१. फनि मनि सम निज गुन अनुसरही—

दोहा—बुद्धिमान गम्भीर को, सगति लागत नाहिं।
ज्यो चन्दन ढिग अहि रहत, विष न होत तेहि माहिं ।।

२. बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी । कहत साधु महिमा सकुचानी-- 'महारामायण' मे श्री शङ्करजी अपने मुख ही से यो कहते हैं —

श्लोक—अह विधाता गरुडध्वजश्च, रामस्य बाले समुपासकानाम् ।
गुणाननंतान् कथितु न शक्तास्सर्वेषु भूतेष्वपि पावनस्ते ।।

अर्थात्—शिवजी बोले कि हे पार्वती ! मैं, ब्रह्मा और विष्णुजी भी श्री रामचन्द्रजी के भक्तो के अगणित गुणो को कहने की सामर्थ्य नही रखते, क्योकि वे सब तो सकल प्राणियो से पवित्र है ।

और भी—

वैराग्य सन्दीपिनी से—

सोरठा—को बरनै मुख एक, तुलसी महिमा सन्त की।
जिनके बिमल बिबेक, शेष महेश न कहि सकत ।।

३. शाक=भाजी, तरकारी । जैसा कि 'भामिनीविलास' में लिखा है--

श्लोक—दिलीश्वरो वा जगदीश्वरो वा, मनोरथान् पूरयितुं समर्थं ।
अन्यैर्नृपैर्यत्परिदीयमान, शाकाय बास्याल्लवणाय वास्यात् ।।

अर्थात्—दिल्ली का राजा ही हो या परमेश्वर हो, तो वे मनोरथो को पूर्ण कर सकते हैं, परन्तु और दूसरे राजाओ का दातव्य या तो तरकारी के लिए अथवा नमक के लिए होता है ।

४. बदऊँ सन्त समान चित, हित अनहित नहिं कोउ—इसके विषय मे महात्मा सुन्दर ने क्या ही सुन्दर कहा है—

सवैया—कोउ इक निन्दत कोउ इक बन्दत, कोउ इक देत है आय के भक्षण।
कोउ इक आय लगावत चन्दन, कोउ इक डारत धूरि ततक्षण ।।
कोउ कहै यह मूरख दीसत, कोऊ कहै यह आय विचक्षण।
'सुन्दर' काहू सो राग न द्वेष, सो ये सब जानहु साधु के लक्षण ।। →

अर्थ—समदर्शी सन्त लोगों की मैं वन्दना करता हूँ जिनका न तो कोई हितुआ है और न अहितुआ। जैसे अजलि मे रक्खे हुए फूल दोनो हाथो को बराबर सुगन्ध देते है (अर्थात् सन्त लोग मित्र और शत्रु को बराबर लेखते है, ऐसे ही अजुलि मे रक्खे हुए-फूल दाहिन-बायें दोनो हाथो को एक ही सी सुगन्ध देते है)।

दोहा—सन्त सरल चित जगत हित, जानि सुभाउ सनेहु।
बाल विनय सुन कर कृपा, रामचरन रति देहु ॥३॥

अर्थ—सन्त लोग सीधे स्वभाव वाले और ससार के हित करने वाले है। वे मेरे सच्चे भाव और प्रेम की पहचान करें तथा मुझ बालक की विनती सुनकर कृपा करें और श्री रामचन्द्र जी के चरणों मे मेरी प्रीति लगावें।

(४. खलगणों की वन्दना)

बहुरि बन्दि खल गन[१] सतिभाये। जे बिन काज दाहिने बायें[२] ॥

शब्दार्थ—सतिभाय = सीधे स्वभाव से (छलकपट से किंवा द्वेष भाव मे नहीं)।

अर्थ—फिर मैं सीधे स्वभाव से दुष्ट मनुष्यो की भी वन्दना करता हूँ जो बिना स्वार्थ के ही अपने हितुओ के शत्रु बन जाते हैं।

दूसरा अर्थ—'जे बिन काज दाहिने बायें' अर्थात् जो बिना मतलब ही के भले-बुरे काम करने मे लगे रहते हैं। भाव यह है कि उनके भले काम भी केवल दिखावटी और बनावटी रहते है।

और भी—

श्रीमद्भगवद्गीता के १२वें अध्याय मे कहा है -

'सम. शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयो' ॥१८॥

अर्थात्—(सन्त जन) शत्रु और मित्र तथा मान और अपमान सब को एक-सा लेखते है। और भी, उत्तरकाण्ड में कहा है—

सम अभूत रिपु बिमद बिरागी। लोभामर्ष हर्ष भय त्यागी ॥

१. खल गन—इस शब्द की व्युत्पत्ति अर्थ सहित सुभाषित रत्न भाण्डागार मे यो बताई है—

श्लोक—विशिखव्यालयोरन्त्य वर्णाभ्यां योहि निर्मित:।
परस्य हरति प्राणान्नैतच्चित्रं कुलोचितम् ॥

अर्थ—जो शब्द 'विशिख' और 'व्याल' इन शब्दों के अन्त्य अक्षरों से बना है (अर्थात् विशिख का अन्तिम अक्षर 'ख' और व्याल का अन्त्य अक्षर 'ल' इस प्रकार 'खल' शब्द की व्युत्पत्ति है) दूसरों के प्राणों का हरण करता है, यह कुछ अद्भुत नही है, कुल के योग्य ही है (अर्थात् विशिख प्राण हरता है और व्याल भी प्राण हरता है। इन दोनों से जो उत्पन्न होता है वह और भी बढ़कर प्राण हरता ही होगा।) जैसा अयोध्याकाण्ड मे कहा है—

दोहा—कारण तें कारज कठिन, होइ दोष नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपलतें, लोह कराल कठोर ॥

२. जे बिन काज दाहिने बायें—इसी आशय को भर्तृहरिजी ने नीतिशतक में यों कहा है—'ये निघ्नन्ति निरर्थक परहित ते के न जानी महे' अर्थात् जो मनुष्य बिना मतलब ही के दूसरो के हित का नाश करते हैं, हम नहीं जानते कि उन्हें किस नाम से पुकारें (क्योंकि उत्तम, मध्यम और निकृष्ट तो गिना चुके हैं)।

और भी—

परहित हानि लाभ जिन केरे। उजरे हरष बिषाद बसेरे[१] ।।

अर्थ—दूसरे के कार्य मे हानि होना इन दुष्टों के लिए लाभ ही है जिन्हे किसी स्थान के उजड जाने से आनन्द होता है और उसी के बस जाने से बडा दु ख होता है।

हरि हर जस राकेस राहु से[२] । पर अकाज भट सहसबाहु से ।।

शब्दार्थ—राकेश (राका = पूर्णमासी + ईश = स्वामी) = पूर्णमासी की रात्रि का

सवैया—क्रूरन को है स्वभाव यही, पर-सम्पति-लाभ लखे जरते हैं।
त्यो 'हरिपाल जू' कारन ही, बिन बैर बिसाहि बृथा लरते हैं।।
पै तिन के उपहासन को, नहि सज्जन चित्त कबहुँ धरते हैं।
कोसे कमीनन्ह के न सुने कहुँ, बैल किसानहु के मरते हैं।।

१. उजरे हर्ष बिषाद बसेरे—सुल्तान महमूद गजनवी ने भयकर लडाइयो और अनेक अत्याचारो से ईरान भर को नष्ट कर दिया था। यहाँ तक कि राज्य भर मे अनगिनत गाँव ऊजड हो गये थे। कहते हैं कि सुल्तान का वज़ीर पक्षियो की बोली समझ सकता था। एक दिन सुल्तान महमूद अपने वज़ीर के साथ जगल मे शिकार खेल कर राजधानी को आ रहा था। उसने मार्ग मे एक ऊजड गाँव के किसी वृक्ष पर दो उल्लुओ को बैठा देखा। उल्लू आपस मे कुछ कह रहे थे। बादशाह ने वज़ीर की जाँच के लिए उससे कहा कि जो कुछ ये उल्लू कह रहे हो, मुझे समझा कर कहो। थोडे समय तक उल्लुओ के शब्दो पर ध्यान देकर वज़ीर ने कहा—हुज़ूर! मेरा कुसूर माफ हो तो अर्ज करूँ। बादशाह कहने लगा—अच्छा कहो! ये क्या कह रहे है? वज़ीर बोला कि एक उल्लू कह रहा है कि जो तुम अपनी लडकी के दहेज में ५० ऊजड गाँव देने का इकरार करो तो मै अपने लड़के की शादी करने को राज़ी हू। इस पर लडकी वाले उल्लू ने जवाब दिया कि कुछ फ़िक्र नहीं, अगर सुल्तान महमूद सलामत रहे तो एक पचास क्या, कई पचास ऊजड गाँव देना कुछ मुश्किल न होगा। सुनते ही बादशाह सलामत समझ गये कि बेशक मै ही तो गाँवो का ऊजड करने वाला हू। हकीकत मे सारा ईरान तो वीरान हो रहा है।
तात्पर्य यह है कि दुष्टजन तो 'उजरे' पर हर्ष और 'बसेरे' पर विषाद किया करते हैं।

२. हरि हर जस राकेस राहु से—हरिहर का यश पुरौनी मे मिलेगा, राहु और सहसबाहु की कथा परशुराम-सम्वाद मे मिलेगी।
दुष्ट जन हरि-कथा मे कई प्रकार से बाधा डालते है सो नीचे लिखे हुए श्रोताओ के प्रकार से विदित होगा—

दोहा—इक श्रोता सौता तथा, सोता सोटा जान।
शरमौता अरु सिलवटा, और सरौता मान।।

अर्थात्—ईश्वर के गुणानुवाद सुनने वाले सात प्रकार के होते है—
(१) श्रोता = चित्त लगाकर मन से सुनने वाले।
(२) सौता = कथा सुनने को तो जावे, पर ध्यान न देवे।
(३) सोता = जो कथा के समय आलस और नीद के वश रहे।
(४) सोटा = जो बहुत देरी ने कथा सुनने आवे।
(५) शरमौता = जो लज्जावश कथा न सुने।
(६) सिलवटा = जो कथा सुनकर समझे नही। (मूर्ख)
(७) सरौता = जो कथा के समय अनेक कुतर्कों से कथा के आशय को काटें और उसमे विश्वास न रख कर ईश्वर की निन्दा करें।

स्वामी, अर्थात् पूर्णचन्द्रमा। सहसबाहु (सहस=हज़ार+बाहु=भुजा)=हज़ार भुजा वाला अर्थात् कार्तवीर्य।

अर्थ—ये विष्णुजी और शिवजी के यशरूपी चन्द्रमा को राहु के तुल्य (ग्रहण लगाने वाले) है और ये ही दूसरो की हानि करने को कार्तवीर्य के समान हज़ार भुजा वाले योद्धा बन जाते है।

जे परदोख लखहिं सहसाखी[१]। परहित घृत जिनके मन माखी ।।

अर्थ जो दूसरो के अवगुणो को आँख पडते ही देख लेते है (अर्थात् बडी शीघ्रता से देखते है) और दूसरो का भला, यही मानो घी है, उसमे उनके मन मक्खी बन जाते है (अर्थात् दूसरो के लाभ बिगाडने मे ये अपने प्राण की हानि तक कर देते है)।

तेज कृसानु रोष महिषेसा[२]। अघ अवगुन धन धनिक धनेसा ।।

---

१. सहसाखी (सहस=हज़ार+आखी (अक्षि)=आँख)=हज़ार नेत्रो से। परन्तु ऐसा अर्थ करने मे हज़ार आँखो से दोषो को देखना यह पुनरुक्ति हो जाएगी, क्योकि आगे तुलसीदासजी ने लिखा है—"सहस नयन परदोष निहारा", जो इन्द्र के साथ तुलना करने मे उचित ही है। इस हेतु 'सहसाखी' का अर्थ यहाँ पर (सहसा=एक दम से+आखी=आँख)=एक दम से आँख का पड़ना अर्थात् "बहुत जल्दी देख लेना" ऐसा उचित होगा। दुष्ट लोग दूसरो के थोड़े से ही अवगुण को जल्दी देख लेते है। जैसा कहा है—

श्लोक खल. सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति ।।

अर्थात्—दुष्ट मनुष्य दूसरो के सरसो-सरीके (छोटे) दोषो को देख लेता है परन्तु अपने बेल के सदृश बड़े दोष को देखता हुआ भी अनदेखा-सा कर देता है।

२. महिषेसा—(१) यमराज—वेदों के अनुसार 'यम' मृत्यु के देवता हैं जिनके साथ मृतक प्राणियो की आत्मा रहती है। इनके जन्मदाता सूर्य और उनकी स्त्री सञ्जना है। ये वैवस्वत मनु और यमुना के भाई हैं। इनका रग हरा, वस्त्र लाल और स्वरूप भयकर है। इनका वाहन महिष है, इसीहेतु इनका नाम महिषेश है। इनके हथियार दण्ड और पाश हैं। हेममाला, विजया और सुशीला इनकी स्त्रियाँ हैं। इनके अनेक नाम है, यथा—मृत्यु, अन्तक, काल, कृतान्त, शमन, दण्डधर, भीमसेन, पाशी, पितृपति, प्रेतराज, श्राद्धदेव, वैवस्वत, औदुम्बर और धर्मराज। मरने पर प्राणियों की आत्मा यमदूतो के द्वारा इन्ही के पास न्याय के हेतु जाती है जहाँ चित्रगुप्तजी उसके कर्मों का हिसाब-किताब पढ़ सुनाते है और फिर आत्मा को कर्मानुसार पितृलोक, नरक या पुनर्जन्म के हेतु मृत्युलोक का वास दिया जाता है। ये दक्षिण दिशा के स्वामी हैं। इस हेतु इन्हें दक्षिणाशापति कहते है। यम के नाम से एक धर्मशास्त्र प्रसिद्ध है।

(२) महिषासुर दैत्य—रम्भ नाम के दानव को महिषी से जो पुत्र उत्पन्न हुआ था, उसका नाम महिषासुर है। इसने हेमगिरि पर केवल वायु के आधार से रह कर कठिन तपस्या की। ब्रह्मदेव ने प्रकट होकर इसे वरदान देना चाहा। यह अमरत्व चाहता था और जब यह वरदान न मिल सका, तो उसने कहा कि स्त्रीरूप छोड़ कर किसी से मेरा वध न हो। ब्रह्मा जी ने कहा, ऐसा ही होवे। वरदान पाते ही इसने अपने राक्षसी स्वभाव के अनुसार उपद्रव मचाना आरम्भ कर दिया। इसने बहुत से बलवान् राक्षसों को अपने अधिकार मे बडे-बड़े पदो पर नियत करके इन्द्र को युद्ध में परास्त किया। जब इससे सब प्राणियों को दु:ख पहुँचने लगा, तब आदि शक्ति ने अठारह भुजा वाला शरीर धारण किया। जब यह हाल महिषासुर को मालूम हुआ तब उसने बहुत से राक्षस उनसे लड़ने को भेजे। वे सब→

शब्दार्थ—कृसानु = अग्नि। घनेसा (धन+ईश) = धन के स्वामी, कुबेर।

अर्थ—जिनका तेज अग्नि के समान और क्रोध यमराज अथवा महिषासुर के समान है तथा जो पाप और दुर्गुणरूपी धन से तो मानो कुबेर ही है (अर्थात् वे तीखे, क्रोधी और पापी तथा दुर्गुणी हैं)।

उदय केतु सम हित सब ही के[१] । कुम्भकरन सम सोवत नीके[२] ॥

शब्दार्थ—केतु = पुच्छलतारा।

अर्थ—पुच्छलतारे की नाईं बढती पाकर (खल) सब ही के हितकारी होते है (अर्थात् जिस प्रकार पुच्छलतारे का उदय होना बहुधा राजा-प्रजा के लिए अनिष्टकारी है उसी प्रकार खलों का अधिकार बढना भी लोगो को हानिकारक है। यहाँ 'हित' का अर्थ 'अहित' व्यग्य से समझना चाहिए। ये लोग यदि कुम्भकरण की नाईं सोते रहे तो अच्छा है (अर्थात् लोग इनके उपद्रवो से बचे रहे)।

पर अकाज लग तनु परिहरिही[३] । जिमि हिमउपल कृषीदल गरही ॥

मारे गये। तब वह स्वत. उस देवी स्वरूप से लडने को गया। देवीजी के साथ उस क्रोधी दुष्ट राक्षस का घोर युद्ध हुआ। निदान, वह उन्ही के हाथ से मारा गया (सविस्तार कथा देवीभागवत मे है)।

१. उदय केतु सम हित सब ही के—केतु, धूमकेतु अथवा पुच्छलतारा वह तारा है जो कभी-कभी रात्रि के समय कई दिनो तक दिखाई देता है, और जिसकी एक लम्बी प्रकाश की पूँछ-सी दीख पडती है। यह पूँछ बहारू की नाईं होती है, इस हेतु इसे बहारू का तारा भी कहते हैं, यूरोपनिवासी भी हिन्दुओ की नाईं इसके उदय को युद्ध, मरगी, दुर्भिक्ष तथा किसी राजा-महाराजा की मृत्यु की सूचना देने वाला समझते थे, परन्तु अब यूरोपीय ज्योतिर्विदों ने यह सिद्ध कर लिया है कि धूमकेतुओं का उदय नियमित वर्षों के अन्तर से हुआ करता है और उनके भ्रमण करने की नियमित कक्षाएँ भी हैं तथा ये सौर जगत के अङ्ग भी हैं। एक धूमकेतु अपने आविष्कर्त्ता हेली साहब के नाम से प्रसिद्ध है, यह केतु अडाकार कक्षा मे भ्रमण करता है और सूर्य से तीन अरब ५० करोड मील दूर तक जाता है। इसे अपनी कक्षा पर घूमने मे लगभग ७५ वर्ष लगते हैं। माध्याकर्षण की सहायता लेकर और भी दो धूमकेतुओ की गतिविधि का निश्चय किया गया है।
ज्योतिर्विदो ने केतुओ के तीन भेद लिखे है, पहला वह जिसमे एक उज्ज्वल-सा तारा और दुम-सी हो, दूसरा भी पहले की नाईं ही होता है परन्तु उस तारे के भीतर से और तारागण भी दृष्टि पडते रहते है और तीसरा वह जिसमे उज्ज्वल तारा न रहकर धुएँ का गुब्बार-सा दिखलाई पड़ता है।

२. कुम्भकरन सम सोबत नीके—कुम्भकरण ने तपस्या करके यही वरदान मागा था कि मैं छ: मास तक सोया करूं। इसी कारण अगणित जीवों के प्राण और बहुत से उपद्रव बचते थे। इसका जीवन चरित्र आगे इसी काण्ड मे मिलेगा।

३. पर अकाज लग तनु परिहरिही—

कुण्डलिया—साईं सन परु दुष्टजन, इनको यही स्वभाव।
खाल खिचावै आपनी, पर बधन के दाँव ॥
परबधन के दाँव, खाल अपनी खिचवावै।
मूँड काटि कै धरै, तऊ पुनि बाज न आवै ॥
कह गिरिधर कबिराय, जरै अपनी कुटिलाई।
जल में गिर सड़ गये, तऊ छोड़ी न खुटाई ॥

शब्दार्थ—हिम उपल =ओला। गरही =गल जाते हैं।

अर्थ—दूसरे को हानि पहुँचाने के हेतु ये लोग आप भी मर मिटते हैं, जैसे ओले खेती का नाश कर आप भी गल जाते हैं।

बन्दौ खल जस सेष सरोषा[1]। सहस बदन बरनै परदोषा॥
पुनि प्रणवौ पृथुराज समाना। पर अघ सुनै सहस दस काना॥

शब्दार्थ—सरोषा =तेजस्वी। सहस बदन (सहस्र-वदन) हजार मुँह से। प्रणवौं = प्रणाम करता हूँ।

अर्थ—फिर भी मैं खलों को तेजस्वी सर्पराज के समान समझता हूँ जो दूसरे के दोषों को वर्णन करने में मानो हजार मुँह बन जाते हैं (भाव यह है कि जिस प्रकार तेजस्वी शेषनाग जी अपने हजार मुँह से 'दोष पर' अर्थात् दोषों से परे ऐसे विष्णुजी का गुणानुवाद करते हैं, इसी प्रकार दुष्ट जन बड़ी चपलता से दूसरों के दोष वर्णन करने की कई प्रकार से चेष्टा करते हैं)। फिर मैं महाराजा पृथु के समान जान उन्हें प्रणाम करता हूँ, क्योंकि वे दूसरों के अवगुण सुनने के लिए मानो दश हजार कान वाले हो जाते हैं (भाव यह है कि जैसे पृथुजी ने 'अघ पर' अर्थात् पापों से रहित परमेश्वर के गुणानुवाद सुनने के हेतु दश हजार कानों की शक्ति माँग ली थी), इसी प्रकार खल जन दूसरों के दोष इस रीति से ध्यान लगाकर, खोज-खोजकर सुनते हैं जैसे कोई दश हजार कान वाला मनुष्य सुने।

बहुरि सक्र सम बिनवौ तेही। संतत सुरानीक हित जेही॥
बचन बज्र जेहि सदा पियारा। सहस नयन परदोष निहारा[2]॥

शब्दार्थ—सक्र = इन्द्र। सुरानीक =(१) (सुर =देवता + अनीक सेना) = देवताओं की सेना, (२) (सुरा = मदिरा + नीक = अच्छी) = अच्छी मदिरा।

अर्थ—फिर मैं दुष्टों को इन्द्र के समान मानकर प्रणाम करता हूँ क्योंकि जिस प्रकार इन्द्र को देवताओं की सेना प्यारी है, वैसे ही खलों को मदिरा बहुत ही हितकारी जान पड़ती

---

१. बन्दौ खल जस सेष सरोषा—दुष्ट निंदक प्राणियों के पैर पड़कर ही लोग निंदा आदि बचा सकते हैं। जैसा कहा है—

दोहा—तुलसी निन्दक बन्दियौ, इहि सम और न ओर।
चरण गहत सिर कटि गयौ, जिमि सेंधि को चोर॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि अपने निन्दा करने वाले के चरण गह लेना ही उचित है, क्योंकि इसके समान और दूसरा उपाय नहीं है। जैसे सेंध लगाकर पैरों के बल किसी के मकान में घुसने वाले चोर के यदि मकान वाला चरण गह लेवे तो चोर के साथी ही उसका सिर काटकर ले जाते हैं, अपने को कुछ विशेष उपाय नहीं करना पड़ता। यदि उनसे झगडा करने का उद्योग करें तो उसमें अपनी ही बड़ी हानि, कदाचित् प्राण-हानि तक होना सम्भव है।

और भी, अयोध्याकाण्ड में 'चोर नारि जिमि प्रकट न रोई' का अर्थ देखें।

२. सहस नयन परदोष निहारा—रामचन्द्रजी के विवाह-उत्सव के समय सम्पूर्ण देवता एकत्र हुए थे। उस समय ब्रह्मा ने आठ आँखों से, स्वामिकार्तिक ने १२ आँखों से, शिवजी ने पन्द्रह आँखों से और इन्द्र ने हजार आँखों से श्री रामचन्द्रजी की छवि को निहारा था। यथा—

रामहिं चितव सुरेश सुजाना। गौतम श्राप परम हित माना॥
देव सकल सुरपतिहिं सिहाहीं। आज पुरन्दर सम कोउ नाहीं॥

है। जिस प्रकार इन्द्र को वज्र प्यारा है, उसी प्रकार खलो को वज्र समान वचन प्यारा है और जिस प्रकार इन्द्र ने हज़ार नेत्रो से 'दोष पर' अर्थात् दोषो से रहित रामचन्द्रजी के विवाह-उत्सव को बडे चाव से देखा था, उसी प्रकार ये दूसरो के दोषो को बडी चाव से देखने के लिए मानो हज़ार आंखवाले हो जाते है।

दोहा—उदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहिं खल रीति[1] ।
जानि पानि जुग जोरि कर, बिनती करौ सप्रीति ॥४॥

शब्दार्थ—उदासीन (उद् = अलग + आसीन = बैठा हुआ) = अलग बैठा हुआ, मध्यस्थ।

अर्थ—खलो की यह रीति है कि वे मध्यस्थ, शत्रु अथवा मित्र सभी का हित सुनते ही जल जाते है, यह समझकर मैं दोनो हाथो को जोडकर प्रेम-सहित विनय करता हूँ (अर्थात् दुष्ट प्रकृति वाले यदि पढे-लिखे हुए, तो भाषा या कविता के दोष निकालने लगते है और जो अपढ हुए तो अनेक कुतर्क उठाने लगते है। इस हेतु कविजी विनय करते है कि मेरे ऊपर कृपा-दृष्टि रखिये)।

मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। तिन निज ओर न लाउब भोरा[2] ॥
पायस[3] पालिय अति अनुरागा। होहि निरामिष कबहुँ कि कागा[4] ॥

शब्दार्थ—पायस = खीर से। निरामिष (नि = बिना + आमिष = मास) = बिना मांस।

अर्थ—मैंने अपनी ओर से तो विनती की है, परन्तु वे अपनी ओर से सीधे न चलेंगे। जिस प्रकार कौए को खीर खिलाकर बड़े प्रेम से भी पालें तो क्या वह मास खाना छोड देगा? (अर्थात् विनती से दुष्ट नहीं पसीजते, जैसे कौए प्रेम से खीर खिलाने पर भी मास खाना नही छोडते)।

---

१. उदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहिं खल रीति—जैसा कहा है—
दोहा—पर सुख सम्पति देखि सुन, जरत जे खल बिन आग।
तुलसी तिन के भाग ते, चलत भलाई भाग ॥

२. तिन निज ओर न लाउब भोरा—जैसा कि किसी कवि ने कहा है—
श्लोक—बहुभिर्यत्न विधानैर्न भवति सरला खल प्रकृति।
नलिकागतमपि सुचिर न भवति सरल शुन. पुच्छम् ॥
अर्थात्—बहुत से उपायों के करने पर भी दुष्ट मनुष्य का स्वभाव सुधरता नही है, जिस प्रकार कुत्ते की पूँछ नली मे डाल कर रखने पर भी टेढी की टेढी बनी रहती है (तभी तो कहावत प्रसिद्ध है कि १२ वर्ष कुत्ते की पूँछ पुंगरिया मे रक्खी, जब खोली तब टेढ़ी की टेढी)।

३. 'पायस' का पाठान्तर 'बायस' भी है परन्तु इसमे पुनरुक्ति दोष होता है।

४. होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा—
जाको परो सुभाव जाय नहिं जीसो। नीम न मीठी होइ सीच गुड-घी सो ॥
और भी—
सवैया—प्याज कि गाँठ कपूर मिलाय के बेर पचासक धोय मँगाई।
केसर की पुट बीसक दै पुनि चन्दन वृक्ष कि छाँह सुखाई ॥
बेला कलीन लपेट धरी तउ आख़िर बास वही फिर आई।
ऐसहि नीच कुनीच कि सङ्गति कोटि करो पै कुँटेब न जाई ॥

(५. सन्त और असन्तों की वन्दना)

बदउँ संत असज्जन चरना[1] । दुखप्रद उभय बीच कछु बरना ॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं । मिलत एक दारुन दुख देहीं ॥

शब्दार्थ—दुखप्रद = दुःख देने वाला । उभय = दोनों ।

अर्थ—अब सन्त और असन्तों के चरणों को प्रणाम करता हूँ । दुःखदायी तो दोनों वर्णन किये गये हैं परन्तु कुछ भेद के साथ (सो यों कि) सन्त लोग यदि बिछुड़ जायें तो प्राणों को हर लेवें और असन्त लोग यदि मिल जावें तो कठिन पीड़ा पहुँचावें (अर्थात् सज्जनों का वियोग असह्य होकर कभी-कभी प्राणहानि कर डालता है जैसा कि दशरथजी के विषय में गोसाईंजी ने इसी काण्ड के १६वें सोरठे में कहा है—'बिछुरत दीनदयाल, प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ' और दुर्जनों के मिलने से दारुण दुःख का प्रमाण उत्तरकाण्ड से—यह है 'जिमि कुठार चन्दन आचरनी') ।

उपजहिं एक संग जल माहीं[2] । जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं ॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू । जनक एक जग जलधि अगाधू ॥

शब्दार्थ—सुरा = मदिरा । जनक = पिता । अगाधू = अथाह ।

अर्थ—(यद्यपि) एक ही साथ जल में उत्पन्न होते हैं (तो भी) कमल और जोंक इनके गुण भिन्न-भिन्न होते हैं (अर्थात् जल से उत्पन्न कमल में सुगन्ध, ठंडक और सुन्दरता रहती है और उसी जल से उत्पन्न जोंक में घिनौनापन, रक्त पीना और डरावनी सूरत होती है) । साधु और असाधु क्रमानुसार अमृत और मदिरा के तुल्य होते हैं और उनका उत्पत्ति-स्थान क्रमानुसार संसार और समुद्र मात्र है (अर्थात् साधु और असाधु दोनों एक ही जगत् में उत्पन्न होते हैं परन्तु उनके गुण पृथक्-पृथक् हैं जिस प्रकार अमृत और मदिरा एक ही समुद्र से उत्पन्न हुए हैं तो भी उनके गुण अलग-अलग हैं) ।

---

१. बदउँ सन्त असन्तन चरना—इसमें कोई-कोई यह शंका कर बैठते हैं कि गोस्वामीजी ने साधुओं की वन्दना करके असाधुओं की वन्दना पृथक् की है, अब फिर यहाँ साधु और असाधु दोनों को मिलाकर क्यों वन्दना की है ? इसका समाधान यह है कि मिलाकर वन्दना करते-करते तुलसीदासजी ने यह स्पष्ट दर्शा दिया है कि साधु और असाधु दोनों का उत्पत्ति-स्थान एक जगत् ही है परन्तु (१) अच्छे कर्म करने से, और (२) सज्जनों की संगति से मनुष्य साधु हो जाते हैं, ऐसे ही (१) बुरे कर्म करने से, और (२) बुरी संगति से लोग असाधु हो जाते हैं । न उनका कोई अलग देश है, न जाति, न कुल और न कोई भिन्न रूप है जिससे साधु और असाधु पहिचाने जावें । उनके तो लक्षणमात्र ही पहिचान कराने वाले हैं ।

२. उपजहिं एक संग जल माहीं—

दोहा—एक उदर बाही समय, उपज न इक सी होय ।
जैसे काँटे बेर के, बाँके सीधे जोय ॥

कमल का गुण रक्तवर्धक है (देखें पृ० १५) और जोंक का गुण रक्तशोषक है । जैसा कहा है—

दोहा—दोषहि को उमहै गहै, गुन न गहै खल लोक ।
पियै रुधिर पय ना पियै, लगी पयोधर जोंक ॥

भल अनभल निजनिज करतूती । लहत सुजस अपलोक बिभूती[१] ॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू । गरल अनल कलिमल सरि[२] ब्याधू ॥
गुन अवगुन जानत सब कोई । जो जेहि भाव नीक तेहि सोई[३] ॥

शब्दार्थ—सुधा = अमृत । सुधाकर (सुधा = अमृत + कर = किरण) = अमृतमयी किरणो वाला, चन्द्रमा । गरल = विष । कलिमल सरि = कर्मनाशा नदी ।

अर्थ--भले और बुरे अपनी-अपनी करनी के अनुसार सुकीर्ति की शोभा और अपकीर्त्ति की दुर्दशा को पाते है । अमृत, चन्द्रमा और गंगा नदी—ये साधुओ के तुल्य है । विष, अग्नि और कर्मनाशा नदी ये असाधुओ के सदृश है । (अर्थात् साधुओ मे अमृत की नाईं अमरता, चन्द्रमा के तुल्य शीलता और गगाजी के समान पाप दूर कर देने की शक्ति है, इसी प्रकार असाधुओ मे विष की नाईं मृत्यु, अग्नि के तुल्य दाहकता और कर्मनाशा नदी के समान पुण्य हर लेने की शक्ति है) ।

दोहा—भलो भलाई पै लहइ, लहइ निचाई नीच[४] ।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच ॥ ५ ॥

अर्थ—भला तो भलाई के लिए रहता है और नीच ओछेपन को पकडता है । अमृत मे तो अमर कर देने का गुण सराहना करने के योग्य है, परन्तु विष मे मार डालने का गुण सराहनीय है ।

खल गह अगुन[५] साधु गुन गाहा । उभय अपार उदधि अवगाहा ॥
तेहि ते कछु गुनदोष बखाने । संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ॥

शब्दार्थ—गाहा (सं० गाथा) = कथा । अवगाहा = गहरा ।

अर्थ—दुष्ट तो दुर्गुणो को और सज्जन गुणों को ग्रहण करते है और दोनो बडे भारी गहरे समुद्र के समान है (अर्थात् न तो दुष्टों के अवगुणो का लेखा लग सकता है और न सज्जनो के गुणो का) । इस हेतु उनके थोडे-से गुण और दोष वर्णन किये है, क्योकि, बिना पहिचाने उनका सग अथवा त्याग नही हो सकता (अर्थात् कहे हुए गुणो मे से कुछ गुण मिले, उसे सन्त समझो और जिसमे दुर्गुण पाये जायँ, उसे दुष्ट जान लो) ।

---

१. बिभूती—जैसा कि अमरकोष मे लिखा है—
"विभूतिर्भूतिरैश्वर्यमणिमादिकमष्टधा"—अर्थात्—बिभूति का अर्थ भस्म और ऐश्वर्य है तथा ऐश्वर्य अणिमा आदि भेद से आठ प्रकार का है ।

२. कलिमल सरि—(देखो अयोध्याकाण्ड की श्री विनायकी टीका की टि० पृ० ।)

३. गुन अवगुन जानत सब कोई । जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ॥
दोहा—मीठी मीठी बस्तु नहिं, मीठी जाकी चाह ।
अमली मिश्री छांडि के, आफू खात सराह ॥

और भी—
विष को कीट विषहि रुचि मानै । कहा सुधा रस स्वादहि जानै ॥

४. भलो भलाई पै लहइ, लहइ निचाई नीच—शिवसिंह सरोज से—
दोहा—दुष्ट न छांड़ै दुष्टता, सज्जन तजै न हेत ।
कज्जल तजै न श्यामता, मोती तजै न सेत ॥

५. खल गह अगुन—
दोहा—गुन मे औगुन खोज ही, हिये न समझै नीच ।
ज्यो जूही के खेत में, शूकर खोजत कीच ॥

भलेउ पोच सब विधि उपजाये । गनि गुन दोष वेद बिलगाये ॥
कहहिं वेद इतिहास पुराना । विधि प्रपञ्च गुन अवगुन साना ॥

अर्थ - भले-बुरे सब ब्रह्मा ने पैदा किये है और वेदो ने गुण तथा अवगुणों के विचार से उनका भेद बताया है। वेदों, इतिहासों और पुराणों का कहना है कि ब्रह्मा की सृष्टि मे गुण और अवगुण मिले हुए है। (सो यों कि —)

दुख सुख पाप पुन्य दिन राती । साधु असाधु सुजाति कुजाती ॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू । अमिय सँजीवन माहुर मीचू ॥

अर्थ—दुख और सुख, पाप और पुण्य, दिन और रात, सज्जन और दुष्ट, सुजाति और कुजाति, दैत्य और देवता, ऊँचा और नीचा, जिलाने वाला अमृत और मारने वाला विष।

माया ब्रह्म जीव जगदीसा । लच्छि अलच्छि रंग अवनीसा[१] ॥
कासी मग सुरसरि क्रमनासा । मरु मालव महिदेव गवासा ॥
स्वर्ग नरक अनुराग बिरागा । निगम अगम गुन दोष विभागा ॥

---

१. माया ब्रह्म जीव जगदीसा । लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा ॥

किसी-किसी ग्रन्थ मे यह पंक्ति क्षेपक मान छोड़ दी गई है, ऐसा करने से दो बातों का निर्वाह भलीभाँति हो जाता है सो यों कि (१) 'बिधि प्रपंच गुन अवगुन साना' इसके अनुसार ब्रह्मा की सृष्टि मे ब्रह्मा के बनाये हुए ब्रह्म माया आदि तो हैं ही नही, उसके बनाये हुए कैसे कहे, (२) 'माया ब्रह्म' इन दो से माया अवगुण-सहित, और ब्रह्म गुण-सहित, ऐसा अर्थ करना पड़ेगा, परन्तु ब्रह्म तो गुण से परे है, उनमे कोई विशेषण इस प्रकार का देना असंबद्ध होगा। इस हेतु ठीक भी जँचता है कि यह पंक्ति पीछे से मिलाई हुई है और यदि मिलाई हुई न होती तो विधि के प्रपंच-वर्णन मे पहले ही लिखी जाती। सो तो है नहीं, यह तो तीसरी पंक्ति मे है। प्रपंच का आरम्भ तो 'दुख सुख पाप पुन्य दिन राती' से है।

यदि इसे मान लें तो 'बिधि प्रपंच गुन अवगुन साना' का अर्थ यों करना पड़ेगा कि 'सृष्टि-क्रम गुण-अवगुण से मिले हुए पदार्थों का है और 'माया-ब्रह्म जीव-जगदीसा'— ये चारों परब्रह्म परमात्मा आप ही हो गया। माया गुण के सहित है और ब्रह्म निर्गुण सब मे व्याप्त है। जीव ब्रह्म का अंश ही है तथा जगदीश ये ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन रूपों से है। जैसाकि श्रीमद्भगवद्गीता, (अ० ७, श्लोक १४) में कहा है—

श्लोक—दैवी ह्येषा गुणमयी, मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते, मायामेतां तरन्ति ते ॥

अर्थात्—यह मेरी माया दैवी और गुणमयी होकर जीतने के योग्य नही है। जो मेरी शरण गहते हैं, वे इस माया से छुटकारा पा जाते हैं।

जीव—जैसाकि श्रीमद्भगवद्गीता के १५ वें अध्याय में कहा है—

ममैवांशो जीवलोके, जीवभूतः सनातन ॥ ७ ॥

अर्थात्—इस ससार मे जीव ही मेरा अंश है तथा सनातन है।

'जगदीसा'—कहा है 'कुमारसम्भव' में (सर्ग ७-४४)—

श्लोक—एकैव मूर्त्तिर्बिभिदे त्रिधा सा, सामान्यमेषां प्रथमा वरत्वम् ।
विष्णोर्हरस्तस्य हरिः कदाचित्, वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ ॥

अर्थ—वही एक मूर्त्ति है जिसने अपने तीन भाग किये हैं (अर्थात् ब्रह्मा विष्णु, महेश)→

अर्थ—माया और ब्रह्म, जीव और जगदीश, लक्ष्मी और दरिद्री, भिखारी और राजा, काशी और मगधप्रदेश, गंगा नदी और कर्मनाशा नदी, मारवाड और मालवा, ब्राह्मण और कसाई, स्वर्ग और नरक, प्रेम और परित्याग—इन सबके गुण और दोषो का भेद वेदो और शास्त्रो मे बताया गया है।

सूचना—ऊपर कही हुई वस्तुएँ यद्यपि एक-दूसरे के विरुद्ध गिनाई गई है तो भी उनमे से प्रत्येक मे गुण और अवगुण भरे ही है। इसका निर्णय वेदो और शास्त्रो के पढने से ठीक-ठीक समझ मे आ जाएगा।

दोहा—जड चेतन गुन दोषमय, बिस्व कीन्ह करतार।
सत हस गुन गहहि पय, परिहरि बारि बिकार[१] ॥६॥

अर्थ—विधाता ने ससार के जड और चेतन जीवो को गुण और दोषो से भरा हुआ उत्पन्न किया है। सन्तजन हस की नाई दुर्गुणरूपी पानी का त्याग कर सद्‌गुणरूपी दूध को ग्रहण करते हैं (अर्थात् जिस प्रकार पनिया दूध मे से हस केवल दूध ही को पी लेता है, इसी प्रकार सन्तजन इस मिश्रित ससार मे से केवल सद्‌गुणो को ले लेते है)।

अस बिबेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष गुनहि मन राता॥
काल सुभाउ करम बरिआई। भलेउ प्रकृति बस चुकहि भलाई[२]॥

इनमे पहिलौटापन और श्रेष्ठता की समानता है। जैसे कभी-कभी विष्णु से महादेव पहले और श्रेष्ठ समझे जाते है, कभी-कभी महादेव से विष्णु, कभी-कभी ब्रह्मा दोनो से और कभी-कभी दोनों ब्रह्मा से ज्येष्ठ और श्रेष्ठ समझे जाते है।

१. सन्त हस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार—जैसा कि कहा है—

श्लोक—अनन्तपार बहु वेदितव्य, अल्पश्च कालो बहवश्च विघ्ना।
यत्सारभूत तदुपासितव्य, हसो यथा क्षीरमिवाम्बुमिश्रम्॥

अर्थात्—विद्या अपार है, सीखने को बहुत है, परन्तु समय थोडा है और उसमे बाधाएँ बहुतेरी है। इस हेतु जो कुछ सार हो, उसीका ग्रहण करें जिस प्रकार हस पनिया दूध मे से केवल दूध ही पी लेता है।

२. १. काल, २. सुभाउ, ३. करम बरिआई। भलेउ प्रकृति बस चुकहिं भलाई—

(१) काल बरिआई—द्वापर के अन्त मे राजा परीक्षित के राज्य करते समय चाडाल-वेषधारी कलिकाल के आगमन से गौरूपधारी पृथ्वी और बृषभरूपधारी धर्म भागे जाते थे। राजा ने कारण पूछा और सब समाचार जानकर उसने कलि को मारना चाहा। कलियुग ने कह सुनाया कि कर्त्तार के प्रबन्ध मे किसी का हस्तक्षेप नही चलता। महाराज! आप मुझे कही रहने का स्थान दीजिए। परीक्षित के कथनानुसार वह जुआ, चोरी, स्वर्ण आदि मे जा बसा। मुकुट के स्वर्ण में भी कलियुग का वास होने से राजा की मति पलट गई और उसने एक समय एक मरा सर्प उठाकर लोमश ऋषि के गले मे डाल दिया। जब यह हाल लोमश ऋषि के पुत्र शृंगी ऋषि को मालूम हुआ, तब उसने श्राप दिया कि पिताजी के गले मे सर्प डालने वाले को यही सर्प सातवें रोज डसेगा। श्राप का हाल सुनकर राजा पछताने लगा कि कलिकाल के प्रभाव से मैं भलाई चूक गया। निदान शुकदेव मुनि ने श्रीमद्‌भागवत का सप्ताह सुनाकर राजा को मोक्षपद प्राप्त करा दिया। (प्रेमसागर)

(२) सुभाउ बरिआई—द्वापर की बात है कि अक्रूर सरीखे महात्मा तथा कृतवर्मा ने शतधन्वा के द्वारा सत्राजित का वध कराकर उसकी मणि छिनवा ली। निदान शतधन्वा के मारे जाने पर आप ही उस मणि को ले काशीपुरी मे जा बसे। परन्तु वे श्री कृष्णजी→

अर्थ—जब इस प्रकार (क्षीरनीरन्याय) का ज्ञान विधाता दे तब तो अवगुणो को छोड गुणो मे मन लग जाए। परन्तु समय के फेर, स्वभाववश और कर्मों के बल से भले मनुष्य भी माया के कारण भलाई करना भूल जाते हैं।

सो सुधारि हरिजन जिमि लेही। दलि दुख दोप विमल यश देही ॥
खलउ करहिं भल पाइ सुसगू। मिटै न मलिन सुभाउ अभंगू[1] ॥

अर्थ—उसको जिस प्रकार भक्तजन सुधार लेते हैं और दुख दोष का नाश कर निर्मल यश देते है, इसी प्रकार दुष्टजन भी अच्छी सगति मे पड कर अच्छे काम कर डालते हैं परन्तु उनका अमिट बुरा स्वभाव मिटता नही।

कर सुवेष[2] जग बंचक जेऊ। वेष प्रताप पूजियत तेऊ ॥
उघरहि अत न होय निबाहू। कालनेमि[3] जिमि रावण[4] राहू[5] ॥

से मणि का भेद कहकर काशीपुरी गये थे। वही से अपने बिगडे स्वभाव का सुधराव श्री कृष्ण द्वारा किये जाने पर द्वारिका को प्रतिष्ठा-सहित लौट आये। (देखें प्रेमसागर)।
(३) करम बरिआई—-विश्वामित्र सरीखे बड़े प्रतापी और यशस्वी राजा ने वशिष्ठ ऋषि द्वारा उत्तम अतिथि-सत्कार पाने पर भी उनकी कामधेनु को हरण करने आदि का ऐसा बुरा कर्म किया कि जिसके कारण उनकी सेना और लड़के मारे गये। परन्तु अन्त मे वशिष्ठजी ने सम्पूर्ण प्रकार के अपमान सहन करके भी विश्वामित्र को सफल-मनोरथ कर ही दिया (देखें विश्वामित्र जी का जीवन-चरित्र)।

१. खलउ करहिं भल पाइ सुसगू। मिटै न मलिन स्वभाव अभंगू—
दोहा—कोटि यतन कोऊ करै, परै न प्रकृतिहिं बीच।
नल बल जल ऊँचो चढ़ै, अन्त नीच को नीच ॥

२. कर सुवेष का पाठान्तर लखि सुवेष भी है।

३ कालनेमि—यह राक्षस रावण का चाचा था। रावण ने कहा था कि यदि तुम हनुमान् को सजीवनमूर लाने मे बाधा डाल सको कि जिससे लक्ष्मण का जी उठना असभव हो जाए, तो मैं तुम्हें अपना आधा राज्य दे डालूँगा। यह सुनकर वह राक्षस गंधमादन पर्वत पर कपटमुनि का वेष धारण करके जा बैठा। प्यास के मारे हनुमान्‌जी ने उससे पानी माँगा। जब उसने समीप के तालाब मे पानी पीने का संकेत किया, तब ऐसा करते समय एक मगरी ने उनका पैर पकड़ लिया। हनुमान्‌जी ने उसे पानी के बाहर खींच कर मार डाला। मरने पर उसने अपना अप्सरा का रूप धारण कर हनुमान्‌जी को चेता दिया कि यह कपटी मुनि राक्षस है। मैं यक्ष के श्राप से मगरी होकर आपके द्वारा मारे जाने का मार्ग ही देख रही थी। हनुमान्‌जी ने कपटी मुनि को अपनी पूँछ में लपेट कर ऐसा पटका कि उसका प्राण शरीर छोड चला। इस प्रकार कपटी सुवेषधारी कालनेमि का भेद खुल गया। (रावण और राहु, देखें पृ० ४९ की टिप्पणी)

४. रावण—लंका का राजा रावण यतीवेष धारण कर पंचवटी मे गया। वहाँ पर उसने सीताजी के पास जाकर भिक्षा माँगी, सीताजी उसे अतिथि जान कन्द-मूल-फल देने लगीं। परन्तु उसने फिर भी छल से उन्हें भुलावा दे लक्ष्मण द्वारा खींची हुई रेखा के बाहर बुला लिया और राजनीति से भरी हुई भय तथा प्रीति की बातें करने लगा। सीताजी ने जान लिया कि यह कोई दुष्ट प्राणी यती का भेष धारण किये है। इस हेतु उन्होंने कहा कि तुम यती होकर ऐसे दुष्ट वचन कहते हो और श्री रामचन्द्रजी के प्रताप का वर्णन किया। रावण ने तुरन्त अपना राक्षसी रूप प्रकट किया और जबरन सीता का हरण→

अर्थ—अच्छा भेष बनाये हुए ससार को धोखा देने वाले है, वे भी भेष के कारण पूजे जाते है परन्तु अन्त मे उनका भेद खुल ही जाता है, निबाह नही होता, जिस प्रकार कालनेमि, रावण और राहु (इन राक्षसो) का भेद खुल ही गया (अर्थात् इनके बनावटी रूप न छिप सके)।

किये कुवेष साधु सनमानू। जिमि जग जामबंत हनुमानू ॥
हानि कुसंग सुसंगति लाहू[१]। लोकहु बेद बिदित सब काहू ॥

अर्थ—यद्यपि कुभेष भी धारण किये हो तो भी साधु लोग आदर को पाते है जिस प्रकार ससार मे (रीछ तनुधारी) जामवत और (वानर रूप) हनुमान् (आदरणीय हुए है)। ससार मे वेद द्वारा सबको विदित है कि बुरी सगति से हानि और भली सगति से लाभ होता है।

गगन चढ़ै रज पवन प्रसंगा। कीचहि मिलइ नीच जल संगा ॥
साधु असाधु सदन सुक सारी। सुमिरहि राम देहि गनि गारी[२] ॥

अर्थ – (उदाहरण यह है कि ऊपर जाने वाली) हवा के साथ धूल आकाश मे उड जाती है, और नीचे जाने वाले पानी के साथ कीचड मे मिल जाती है। (इसी प्रकार) तोता और मैना साधु के घर रहने से राम-नाम पढते है परन्तु वे ही दुष्ट के घर पडने से गालियाँ बका करते हैं।

भाव यह कि पशु-पक्षी और निर्जीव पदार्थ भी अच्छी सगति मे सुधरते और बुरी सगति में बिगडते हैं।

धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिय पुरान मजुमसि सोई ॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जगजीवन दाता ॥

किया। इस प्रकार इसका भी भेद खुल गया। रावण का पूरा जीवन-चरित्र अन्यत्र मिलेगा।

५. राहु—देवरूप धारी राक्षस राहु का भेद समुद्र मथन के पश्चात् अमृत और सुरा बाटते समय सूर्य और चन्द्र के सकेतो से विष्णुजी को प्रकट हो गया था—पूरी कथा परशुराम सवाद मे है।

१. हानि कुसग सुसगित लाहू—

दोहा—सगति कीजै साधु की, हरै और की व्याधि।
ओछी सगति नीच की, आठहु पहर उपाधि ॥
होइ सुसगति सहज सुख, दुख कुसग की थान।
गधी और लुहार की, बैठो देखि दुकान ॥

२. साधु असाधु सदन सुक सारी। सुमिरहि राम देहि गनि गारी— एक तोता राजा से यो कहता है कि हम दोनो तोते एक साथ उत्पन्न हुए परन्तु सगति से हम दोनो मे ऐसा भेद हो गया कि—

श्लोक— अह मुनीना वचन शृणोमि, शृणोति राजन् सगवासिना वच।
न चास्य दोषो न च मे गुण वा, ससर्गजा दोष-गुणाः भवति ॥

अर्थ—हे राजा ! मैं तो मुनियो के वचन सुना करता हूँ और यह दूसरा सुग्गा कसाइयो के वचन सुना करता है। इसमे न तो उसका दोष है और न मेरा गुण। दोष और गुण तो सगति ही से होते हैं (अर्थात् साधुओ की सगति से मै राम-नाम कहता हूँ और यह दूसरा दुष्टो की संगति से मार-मार कहता है।)

शब्दार्थ —अनल = अग्नि। अनिल = हवा।

अर्थ—(लकडी आदि ईंधन के ससर्ग मे जलाई हुई अग्नि का) धुआँ किसी भी पदार्थ मे लग कर उसे काला कर देता है। वही धुआँ यदि चिराग के ससर्ग मे उत्पन्न हो तो उसमे स्याही बन जाने से पुराण आदि लिखने के काम आता है। वही धुआँ पानी, अग्नि और वायु के ससर्ग से यदि उत्पन्न हो तो भापरूप हो बादल बन ससार का प्राणदाता हो जाता है। **सारांश**— धुआँ या धुआँरूपी भाप एक ही है परन्तु केवल धुआँ कालिमा लगाता है, वही स्याही बनकर पुराण आदि लिखने के काम आता है और भापरूप हो बादल बन बरसने लगता है जिससे ससार का जीवन होता है। स्मरण रहे कि इस अतिम कार्य ही के कारण मेघ को धूम-योनि और पानी को जीवन कहते हैं।

दोहा—ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुयोग सुयोग।
होइ कुबस्तु सुबस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग॥

अर्थ—(नव) ग्रह, औषधि, पानी, हवा और कपडा- ये बुरे के योग से अशुभ और भले के योग से शुभ समझे जाते हैं। ससार मे लोग तो लक्षण ही देखते है (अर्थात् किसकी सगति से कौन उत्तम समझा गया और फिर वही किसकी सगति मे बुरा समझा गया)। भाव यह है कि वे ही पदार्थ सगति-भेद से भले या बुरे समझे जाते है, जैसे नवग्रह मे से कोई भी यदि एकादश स्थान मे हो तो शुभ, और-और स्थानो मे शुभ व अशुभ, यथायोग्य, माने जाते है। औषधि —अच्छे अनुपान के साथ सेवन करने से लाभदायक और बुरे अनुपान मे हानि-कारक हो जाती है। जल - शुद्ध गंगाजल और गुलाबजल आदि के विरुद्ध कर्मनाशा और नाली का जल। हवा —सुगन्धित और दुर्गन्धित हवा को सब जानते है। इसी प्रकार पुण्यात्मा पुरुष के पास का कपडा पवित्र और नीच किंवा मृतक के ससर्ग से वही अपवित्र समझा जाता है।

दोहा—सम प्रकास तम पाख दुहुँ[१], नाम भेद बिधि कीन्ह।
ससि पोषक सोषक समुझि, जग जस अपजस दीन्ह॥

शब्दार्थ—पाख (पक्ष) = पखवारा। पोषक = बढानेवाला। सोषक = घटानेवाला।

अर्थ—(महीने के) दोनो पखवारो मे चन्द्रमा का उजेला और अँधेरा बराबर ही रहता है, परन्तु ब्रह्मा ने उनके नामो मे भेद कर दिया है। एक को चन्द्रमा का बढाने वाला समझ बडाई दी (अर्थात् इसका नाम शुक्ल पक्ष या उजेला पाख रख दिया) और दूसरे को चन्द्रमा का घटाने वाला समझ कुबड़ाई दी (अर्थात् इसका नाम कृष्ण पक्ष किंवा अँधेरा पाख रख दिया)।

---

१. सम प्रकास तम पाख दुहुँ —स्मरण रहे कि चन्द्रमा में स्वतः का प्रकाश नही है, वह सूर्य के प्रकाश से प्रकाश पाता है। इस हेतु गोल होने के कारण उसका आधा भाग जो सूर्य के सामने रहता है, सदैव प्रकाशित रहता है, और आधा भाग अप्रकाशित रहता है। सूर्य, पृथ्वी तथा चन्द्रमा की स्थिति और गति के कारण चन्द्रमा का घटना-बढ़ना हम लोगो की दृष्टि मे आता रहता है। यहाँ तक कि अमावस्या को चन्द्रमा का उजेला भाग सूर्य ही के सम्मुख रहकर उसका अँधेरा भाग हमारे सामने रहने से कुछ भी नहीं दिखाई देता और पूर्णिमा को सब प्रकाशित भाग दीख पड़ता है। इसका विशेष वर्णन सिद्धान्त के ग्रन्थों मे मिलेगा तथा पुरौनी मे भी इसके समझाने का प्रयत्न किया जाएगा।

दोहा—जड चेतन जग जीव जे, सकल राममय जानि[1] ।
बंदउँ सब के पद कमल, सदा जोरि जुग पानि ।।

अर्थ—ससार मे जितने जड और चेतन जीव है उन सबको रामरूप समझ उन सबके चरणकमलो को दोनो हाथ जोडकर सदैव वन्दना करता हूँ। (जड पदार्थों मे भी ईश्वर की सत्ता विद्यमान है, नही तो वे पदार्थ ही न रहे। इसके सिवाय जड खम्भे मे से नृसिह रूपधारी ईश्वर का प्रकट होना जड को भी राममय सिद्ध करता है)।

दोहा—देव दनुज नर नाग खग, प्रेत पितर गन्धर्व[2] ।
वन्दौ किन्नर[3] रजनिचर, कृपा करहु अब सर्ब ।।७।।

अर्थ देवता, दैत्य, मनुष्य, सर्प, पक्षी, प्रेत, पितर, गधर्व, किन्नर और राक्षस इन सबकी वन्दना करता हूँ। आप सबके सब अब कृपा कीजिये।

आकर चार लाख चौरासी[4] । जाति जीव जल थल नभ बासी[5] ।।

---

१ जड चेतन जग जीव जे, सकल राममय जानि—

बीजहू मे वृक्ष जैसे तन्तुहू मे पट जैसे मृत्तिका मे घट जैसे काया मे रमाया है।
फूलहू मे बास जैसे रवि मे प्रकाश जैसे काठहू मे आग ज्यो आकाश बीच छाया है ।।
पानीहू मे बल जैसे दीप मे प्रकाश जैसे चकमक मे आग जैसे दूध घृत पाया है।
आपहू को जाप जामे पुण्यहू न पाप अरु आपही मे आप जिन खोजा तिन पाया है ।।

और भी—

कोई-कोई लोग गणित की युक्ति से भी सिद्ध करते है कि सब पदार्थों मे राम है ही।

यथा—

दोहा—नाम चतुर्गुण पचयुत, द्विगुण कृस्य कर मान।
अष्टवसू को भाग दे, शेष राममय जान ।।

अर्थात् (जैसे तीन अक्षर का नाम कोई भी हो) उसे चार से गुणा करो तो (३ × ४) = १२ हुए, उसमे ५ जोडे तो १७ हुए, फिर १७ के दूने ३४ हुए, फिर इसमे ८ का भाग दिया तो शेष रहे दो जो रामनाम के अक्षर है।

इसी प्रकार ४, ५, ६ आदि कितने ही अक्षरो के नाम से ऊपर की नीति से शेष दो ही बचेगे।

२. गधर्व—एक प्रकार के देवताओं के गवैये जिनका बड़ा मधुर स्वर रहता है। इनका निवास स्थान गुह्यलोक और विद्याधर लोक के मध्य मे है। इनके ११ प्रकार कहे गये हैं (देखें विष्णु पुराण)।

३. किन्नर किंवा किम्पुरुष, इनका वर्णन अरण्यकाण्ड की विनायकी टीका की टिप्पणी मे भी मिलेगा।

४. आकर चार लाख चौरासी—आकर चार अर्थात् चार प्रकार के जीव और लाख चौरासी जाति जीव याने चौरासी लाख जीवो के प्रकार ये है—

दोहा—नर पशु 'पिडज' जानिये, पक्षी 'अडज' जान।
चीलर 'स्वेदज' 'उद्भिजहु' सकल वनस्पति मान ।।
मनुज चार तेइस पशु, पक्षि लक्ष दश जान।
जलचर नौ कृमि रुद्र लख, थावर नखत प्रमान ।।

रुद्र लख = ११ लाख। नखत = २७ (लाख)

५. जाति जीव जल थल नभ बासी—सब प्रकार के जीवो को प्रणाम करना ठीक [illegible] ही →

सीय राम मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।।

अर्थ—चार खानि से उत्पन्न हुए चौरासी लाख प्रकार के जीव पानी में, भूमि पर और आकाश में रहते हैं। सब संसार को सीताराम-मय समझकर मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ।

जानि कृपा कर किंकर मोहू। सब मिलि करहु छाँड़ि छल छोहू ।।
निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं। ता ते बिनय करहुँ सब पाहीं ।।

अर्थ—आप सब मिलकर दया से मुझे अपना सेवक समझिये और भेद का विचार न कर मुझ पर प्रेम कीजिये। मुझे न तो अपनी बुद्धि और न कविता शक्ति का भरोसा है। इसी हेतु सबसे विनती करता हूँ।

करन चहउँ रघुपति गुनगाहा। लघुमति मोरि चरित अवगाहा ।।
सूझ न एकउ अंग उपाऊ। मन मति रंक मनोरथ राऊ ।।

अर्थ—मैं श्री रामचन्द्रजी के गुणों की कथा लिखना चाहता हूँ, मेरी बुद्धि तो थोड़ी है परंतु चरित्र गंभीर है। मुझे न तो कविता के अंग और न उपाय सूझते हैं क्योंकि मन और बुद्धि तो दरिद्री हैं परन्तु विचार राजा के तुल्य हैं।

मति अति नीच ऊँच रुचि आछी। चहिय अमिय जग जुरइ न छाछी ।।
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बालबचन मन लाई ।।

अर्थ—मेरी बुद्धि तो तुच्छ है परन्तु इच्छा बहुत बढ़कर है। सो इस प्रकार कि (स्वर्गीय) अमृत को तो चाहता हूँ परन्तु संसारी छाछ भी मिलना दुर्लभ है। सत्पुरुष मेरे इस ढीठपने को क्षमा करेंगे और मुझ अबोध के कथन को चित्त लगाकर सुनेंगे।

ज्यौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता[1] ।।
हँसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी। जे परदूषन भूषन धारी[2] ।।

शब्दार्थ – तोतरि = साफ नहीं, अधूरी।

आशय श्रीमद्भागवत में व्यासजी ने दरशाया है—

श्लोक—स्वं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्वानि दिशोद्रुमादीन्।
सरित्समुद्राश्च हरेश्शरीरं, यत्किंच भूतं प्रणमेदनन्य. ।।

अर्थात्—अनन्य भक्त को चाहिए कि वह आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, तारागण आदि, जीवधारी, दिशा, वृक्ष आदि, नदी और समुद्र सबको परमेश्वर का रूप मानकर प्रणाम करे।

१. ज्यों बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता—

दोहा—कहै धाय अँगुरी गहै, वहै सिखाये बैन।
सो शिशु की तुतरी गिरा, देत पिता चित चैन ।।

२. हँसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी। जे परदूषन भूषन धारी—दूसरे के लेख की निंदा करने वाले बहुत से लोग होते हैं। कहा है 'उत्तररामचरित' में (अंक १—५)—

श्लोक – सर्वथा व्यवहर्तव्यं, कुतो ह्यवचनीयता।
यथास्त्रीणा तथा वाचाम्, साधुत्वे दुर्जनो जनः ।।

अर्थ—सदा कर्तव्य करते रहना चाहिए, निर्दोषीपन कहां से रह सकता है क्योंकि मनुष्य तो स्त्रियों के सतीत्व और वाणी की शुद्धता के विषय में दुष्ट प्रकृति के होते हैं (अर्थात् वे स्त्रियों और उत्तम भाषा के दोष ही ढूंढा करते हैं)।

अर्थ—जैसे छोटे बच्चे तोतली बाते करते हैं तो भी माता-पिता उन्हे सुनकर प्रसन्न होते है (अर्थात् जिस प्रकार माता-पिता अपने बालको के बेढगे वचनो को सुनकर, उनके बेढगपने का विचार न कर, उनके आशय मात्र पर प्रसन्नतापूर्वक विचार करते है, इसी प्रकार सज्जन दूसरो के लेख के अवगुणो का विचार न कर उसके आशय पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करते है)। उसी कथन को सुनकर मूर्ख, टेढे और बुरे विचार वाले हँसेगे, क्योकि वे तो दूसरो के दोषो को ढूँढने मे अपनी बडाई समझते है।

निज कबित्त केहि लाग न नीका[१] । सरस होउ अथवा अति फीका ।।
जे पर भनित सुनत हरषाही । ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं ।।

अर्थ—अपनी बनाई हुई कविता किसको अच्छी नही लगती है, वह चाहे अच्छी हो या बुरी। परन्तु जो लोग दूसरे का लेख सुनकर प्रसन्न होते है, उनकी नाईं उत्तम पुरुष ससार मे बहुत नही है (अर्थात् विरले है)।

जग वहु नर सरिता सम भाई । जे निज बाढ़ि बढहि जलपाई ।।
सज्जन सुकृत सिन्धु सम कोई[२] । देखि पूर बिधु बाढहि जोई ।।

अर्थ— हे भाई ! ससार मे बहुत-से मनुष्य नदी के समान है (भाव यह कि ऐसे मनुष्यो मे स्वत की बुद्धि तो होनी ही नही, यहाँ वहाँ के चुटकले सीखकर अपने ही कथन की बडाई करते फिरते है) और सत्कर्मी सत्पुरुष समुद्र के समान होते है जो चन्द्रमा को पूर्ण देखकर बढ़ते है (अर्थात् अपनी ही विद्या से तो बहुतेरे मनुष्य फूले नही समाते, परन्तु दूसरे की बढती देख प्रसन्न होने वाले महात्मा विरले ही है)।

दोहा—भाग छोट अभिलाष बड, करऊँ एक बिस्वास ।
पैहहि सुख सुनि सुजन सब, खल करि है उपहास ।। ८ ।।

अर्थ मेरा भाग्य तो छोटा है परन्तु इच्छा बडी है। तो भी मुझे इस बात का निश्चय है कि सभी सज्जन सुनकर सुख पावेंगे और दुष्टजन हँमी करेंगे ।

खल परिहास होइ हित मोरा । काक कहहि कलकठ कठोरा ।।
हंसहि बक दादुर चातकही[३] । हँसहिं मलिन खल बिमल बतकही ।।

शब्दार्थ—कलकठ (कल = मीठा + कठ = गला) = मीठे गले वाली, अर्थात् कोयल।

---

१. निज कबित्त केहि लाग न नीका—कहावत प्रसिद्ध है कि अपना ऐब कोई नही देखता। जैसे—

दोहा पर को अवगुन देखिये, अपनो दृष्टि न होइ ।
करै उजेरो दीप पै, तरै अँधेरो जोइ ।।

२. 'सुकृत' का पाठान्तर 'सकृत' भी है जिसका अर्थ 'कोई विरला' है।

३ हसहिं बक दादुर चातकही—नीच प्राणी बडो की निंदा करने के निमित्त अपनी बडाई की झूठी डीग मारते हुए लज्जित नही होते। जैसे—

कुण्डलिया—कौआ कहत मराल सो, कौन जाति को गोत।
तो सो बदरूपी महा कोउ न जग मे होत ।।
कोउ न जग मे होत, कुटिल मैले मल खाने।
उसर बैठ मर्य्याद भ्रष्ट आचार न जाने।।
कह गिरधर कबिराय, कहाँ ते आयौ हौआ।
धन्य हमारौ देश जहाँ सज्जन जन कौआ ।।

बक = बगुला। दादुर = मेढक। बतकही = बातचीत।

अर्थ - दुष्ट मनुष्यों के हँसी करने से मेरा हित होगा, जैसे कौए कोयल के शब्द को कठोर कहते है (अर्थात् कौए कोकिला की निंदा करते है तो उससे कोयल की प्रशंसा ही होती है)। बगुला हंस को, मेढक पपीहे को और नीच दुष्ट निर्मल वाक्य-रचना पर हँसते हैं। (भाव यह कि यदि लोग मेरे काव्य पर हँसेंगे तो वे बरिआई से मुझे कौवा मान लेंगे और मुझमे कविता के अग है ही नही)।

कवित रसिक न रामपद नेहू। तिन कहँ सुखद हास रस एहू ॥
भाषा भनित मोरि मति भोरी। हँसिबे जोग हँसे नहि खोरी ॥

शब्दार्थ—भनित (सं० भणित, धातु भण् = बोलना) = कही हुई।

अर्थ जो कविता के रसिक नही हैं और जिनका प्रेम रामचन्द्रजी के चरणो म नही है, उन्हे तो यह आनद देने वाला हास्य रस होगा। (अर्थात् वे इसकी हँसी उडाएगे)। क्योंकि एक तो हिन्दी कविता और दूसरे मेरी मति भी ओछी है, इस हेतु हँसने ही के योग्य है, हँसने वालो का कुछ दोष नही है।

प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहि कथा पुनि लागहि फीकी ॥

अर्थ जिनका प्रेम ईश्वर के चरणो मे नही है और न उनकी समझ भी ठीक है, उनको यह कथा सुनने मे नीरस लगेगी।

दूसरा अर्थ – जिन प्राणियो का प्रेम श्री रामचन्द्रजी के चरणो मे तो है नही, परन्तु उनकी समझ अच्छी है (अर्थात् जो रामभक्त तो नही है परन्तु काव्य के गुण दोष जानते हैं) उनको यह कथा अच्छी न लगेगी (क्योकि इसमे काव्य की उत्तम रचना का विशेष विचार नही किया गया, सो काव्य-प्रेमी इसे काहे को सराहेंगे ?)।

तीसरा अर्थ—जिनकी समझ इतनी अच्छी नही है कि वे समझ सकें कि श्रीरामचन्द्र जी के चरणो में प्रेम लगाने से क्या लाभ होता है, उन्हें यह कथा नीरस लगेगी।

हरि हर पद रति मति न कुतरकी। तिन कहँ मधुर कथा रघुबर की ॥

अर्थ—परन्तु जिनका प्रेम विष्णु और शिवजी के चरणों मे है तथा जिनकी बुद्धि बुरे विचारो से रहित है, उनको श्री रामचन्द्रजी की कथा मनोहर जान पडेगी।

दूसरा अर्थ --जिन लोगों का प्रेम विष्णुजी के चरणों मे लगा हुआ है और शिवजी के विषय मे जो कुतर्क नही करते, उनको तो राम-कथा अच्छी ही लगेगी, परन्तु जो शिव-भक्त हैं और विष्णुजी से बैर-भाव की कुतर्कना नही करते, उन्हें भी यह कथा अच्छी लगेगी, क्योंकि रामायण की कथा को तो शिवजी ने ही कहा है।

राम भक्ति भूषित जिय जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी ॥
कवि न होउँ नहिं बचन प्रबीना। सकल कला[१] सबविद्या[२] हीना ॥

---

१. सकल कला—६४ कला होती हैं, सो पुरीनी में देखें।

२. सब विद्या—विद्या १४ हैं। यथा—

श्लोक—अगानिवेदाश्चत्वारो, मीमासा न्यायविस्तर ।
पुराणं धर्मशास्त्रं च, विद्या ह्येताश्चतुर्दशः ॥

अर्थात्—वेदाग ६ जैसे (१) शिक्षा, (२) छन्द, (३) कल्प, (४) ज्योतिष, (५) निरुक्त, (६) व्याकरण और चार वेद जैसे (७) ऋक्, (८) यजु, (९) साम (१०) अथर्वण, तथा (११) मीमांसा, (१२) न्याय, (१३) पुराण, और (१४) धर्मशास्त्र।

अर्थ—सज्जन इस कथा को मन मे श्री रामचन्द्रजी की भक्ति से शोभायमान जान कर सुन्दर वाणी से प्रशसा करते हुए सुनेगे। क्योकि मैं न तो कवि हूँ और न बोलने मे चतुर हूँ तथा सम्पूर्ण कला और सब विद्याओ से रहित हूँ।

आखर अर्थ अलकृत नाना[1]। छन्द प्रबंध अनेक विधाना ।।
भाव भेद रसभेद अपारा। कवित दोष गुन विविध प्रकारा ।।
कबित बिबेक एक नहि मोरे[2]। सत्य कहौ लिखि कागद कोरे[3] ।।

अर्थ—अक्षर भी तो अनेक अर्थों और अलकारो से भरे पडे है और छन्दो की रचना भी अनेक प्रकार की है। भावो के भेद तथा रसो के भेद भी अनगिनती है और कविता के दोष-गुण भी तरह-तरह के है। कविता रचने का ज्ञान मुझमे कुछ भी नही है, यह मै कोरे कागज पर लिखकर सत्य-सत्य ही कहता हूँ।

दोहा—भनित मोरि सब गुन रहित, बिस्व बिदित गुन एक।
सो बिचारि सुनिहहि सुमति, जिनके बिमल बिबेक ।।९।।

अर्थ · मेरी कविता सब गुणो से रहित है, तो भी इसमे लोक-प्रसिद्ध एक गुण है, उसी का विचार कर, जिनका ज्ञान निर्मल है, ऐसे बुद्धिमान् लोग उसे सुनेगे (वह गुण यह है)।

---

१. आखर अर्थ अलकृत नाना इत्यादि—अक्षरो मे वर्ण-मैत्री, दग्धाक्षर-दोष, अर्थ मे वाच्य, व्यग्य, लक्ष्य; अलकारो मे उपमा आदि; छन्द-रचना मे अनुष्टुप्, सोरठा, दोहा, चौपाई आदि, भाव मे स्थायी, सचारी आदि; रसो मे शृगार, हास्य आदि, दोषो मे कर्ण-कटु, ग्रामीण आदि; और गुणो में माधुरी-प्रसाद आदि इन सबका सक्षेप से कुछ वर्णन पुरौनी मे मिलेगा।

२. कबित बिबेक एक नहिं मोरे —गोस्वामीजी बडी चतुराई के साथ कविता मे दोष-गुण आदि का ठीक-ठीक कथन तो कर ही चुके हैं, फिर अन्त मे कहते है कि मुझमे कविता का कुछ भी विवेक नही है, सो वे इस विचार से कहते हैं कि अपने मुँह से अपनी ही स्तुति करना उचित नही, जैसा कहा है -"इन्द्रोऽपि लघुता याति स्वय प्रख्यापितैर्गुणै"—अर्थात् यदि इन्द्र भी अपने मुँह से अपने गुणो का वर्णन करे तो लघुता को प्राप्त हो जावें।

३ सत्य कहौ लिखि कागद कोरें—(१) यह कथन एक प्रकार की सौगन्द मानी जाती है, जिसके कहने से कहने वाला अपने हृदय की निष्कपटता दर्शाता है। सो यहाँ पर गोस्वामीजी अपनी आधीनता निष्कपट हृदय से बतलाते है जैसाकि हनुमान्जी ने परम भक्त होने पर भी कहा था—

"तापर मै रघुवीर दोहाई। जानहुँ नहिं कछु भजन उपाई ।।"

(२) इससे यह भी ध्वनि निकलती है कि मैं इस ग्रन्थ मे अपनी कवित्व शक्ति का ज्ञान बतलाना नही चाहता, मेरा शुद्ध विचार तो श्री रामचन्द्रजी जो सत्य-स्वरूप है, उन्हीके गुणानुवाद वर्णन करने का है क्योकि श्री रामचन्द्रजी ही ब्रह्म स्वरूप अर्थात् सत्य स्वरूप है। जैसा कहा है—"ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या।" अर्थात्—"ब्रह्म सत्य है और ससार झूठ है" और इसी की पुष्टि मे गोसाईजी कहते है कि —"इहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा ।।

इहि महँ रघुपति नाम उदारा। अतिपावन पुरान श्रुति सारा ॥
मंगल भवन अमंगल हारी[1]। उमा सहित जेहि जपत पुरारी ॥

अर्थ—इसमे श्री रामचन्द्रजी का कल्याणदायक नाम है जो बहुत ही पवित्र है और पुराण तथा वेदो का सार है। (यह नाम) सम्पूर्ण कल्याणों का स्थान है और अमगलों का दूर करने वाला है जिसे पार्वती और शिवजी जपा करते है।

भनित बिचित्र सुकबि कृत जोऊ। रामनाम बिन सोह न मोऊ[2] ॥
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बरनारी ॥

अर्थ—धुरन्धर कवि की उत्तम कविता भी हो तो भी वह ईश्वर के नाम बिना शोभा को नही पाती। जिस प्रकार चन्द्र के समान मुख वाली सब प्रकार के शृगारो मे सजाई हुई सौभाग्यवती स्त्री भी कपडो के बिना शोभा नही पा सकती।

सब गुन रहित कुकबिकृत बानी[3]। राम नाम जस अंकित जानी ॥
सादर कहहि सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुनग्राही ॥

अर्थ - सम्पूर्ण काव्यलक्षणो से हीन अनाडी कवि की बनाई हुई कविता भी यदि ईश्वर के नाम अथवा यश को लिये हो, तो उसे बुद्धिमान् लोग प्रेम से कहते और सुनते हैं, क्योंकि सत्पुरुष तो भौरे की नाईं गुणो के गाहक होते है।

---

१. मंलग भवन अमगल हारी— जैसा कि सांखल्य स्मृति मे कहा है—

श्लोक—पापाना शोधक नित्य, परानदस्य बोधकम्।
रोधक चित्तवृत्तीना, भजध्व नाम मगलम् ॥

अर्थात्—उस मागलिक नाम का स्मरण करो जो सदैव पापो का हरने वाला, परम आनन्द का देने वाला तथा राग-द्वेष आदिक चित्त-वृत्तियो का रोकने वाला है।

२. भनित बिचित्र सुकबि कृत जोऊ। रामनाम बिन सोह न सोऊ—
श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध के ५वें अध्याय मे इसका कथन यों है—

श्लोक—नयद्वचश्चित्रपद हरेर्यशो, जगत्पवित्र प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद्वायसं तीर्थमुशंतिमानसा, नयत्रहंसाः विरमत्युशिक्क्षया ॥

अर्थात् - जिस वाणी ने ससार को पवित्र करने वाली ईश्वर की कीर्ति का वर्णन नही किया, उस वाणी को चाहे वह कैसे ही सुललित पदों से भरी हो, सत्य प्रभाव मन वाले संन्यासी जो सुन्दर ब्रह्मरूप में रममाण होते हैं उसे कौओ का तीर्थ मानते हैं (अर्थात् उसे असज्जनो के कहने-सुनने के योग्य समझते हैं, जैसे कि मानसरोवर के रहने वाले राजहस कौओं के तीर्थ-स्थान अर्थात् घूरे पर नही ठहरते)।

३. सब गुन रहित कुकबिकृत बानी—इसके विषय मे भी श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध के ५वें अध्याय मे कैसी उत्तम रीति से कहा है—

श्लोक—तद्वाग्विसर्गो जनताघविल्पवो, यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।
नामान्यनतस्य यशोकितानियच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणति साधवः ॥

अर्थात्—उस वाणी को जो मनुष्यों के पापों को हरती है, यदि वह बेढंगेपन से रचित भी हो, तो भी परमेश्वर के नाम और यश से परिपूर्ण होने से सन्तजन उसे सुनते हैं, गाते हैं और वर्णन करते हैं।

जदपि कबित रस एकउ नाही । राम प्रताप प्रकट इहि माही ।।
सोइ भरोस मोरे मन आबा । केहि न सुसंग बडप्पन पाबा[1] ।।

अर्थ—यद्यपि कविता के गुण इसमे एक भी नही है, तो भी इसमे रामचन्द्रजी की महिमा कही गई है। यही विश्वास मेरे जी मे भी जम गया। देखो, अच्छी सगति से किसने बडाई नही पाई (अर्थात् सबको सुसगति से बडाई मिली है, जिसके कुछ उदाहरण ये है)—

धूमउ तजइ सहज करुआई । अगरु प्रसंग सुगध बसाई ।।
भनित भदेस बस्तु भलि बरनी । रामकथा जग मगल करनी ।।

शब्दार्थ—अगरु (स०)—सुगधित लकडी।

अर्थ—धुआँ भी अपना स्वाभाविक कड़ुआपन छोडकर सुगधित पदार्थों के सग से सुगन्धित हो जाता है। (इसी प्रकार यद्यपि) मेरी कविता भद्दी है तो भी इसमे अच्छी वस्तु का वर्णन है और वह रामकथा है जो ससार को मगल देने वाली है।

छन्द—मगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की ।
गति कूर कबिता सरित की ज्यो सरित पावन पाथ की ।।
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी ।
भब अंग भूति मसान की सुमिरत सोहाबनि पाबनी[2] ।।

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि रामचन्द्रजी की कथा कल्याण की करने वाली और कलियुग के पापो को हरने वाली है। मेरी कवितारूपी नदी की गति टेढी है। जिस प्रकार 'पावनपाथ' अर्थात् गगाजी की आडी-टेढी धारा होती है (भाव यह कि कविता ऐसी अडबड है कि जैसी गगा की धार, परन्तु उसमे श्री रामचन्द्रजी का मगलदायक यश है। जैसे गगाजी की धार तो टेढी है परन्तु उसका जल पवित्र करने वाला है) इसी प्रकार मेरी भद्दी कविता श्री रामचन्द्रजी के सुन्दर यश के साथ रहने से अच्छी कविता कहलाएगी और सज्जनो के मन को रुचेगी। जिस प्रकार चिता-भस्म, जो अपवित्र समझी जाती है शिवजी के शरीर के ससर्ग से स्मरण करने मे सुखकारी तथा पवित्र हो जाती है।

---

१. केहि न सुसग बडप्पन पाबा—

दोहा—जाहि बड़ाई चाहिए, तजै न उत्तम साथ।
ज्यो पलाश सँग पान के, पहुँचै राजा हाथ।।

२. भब अग भूति मसान की सुमिरत सोहाबनि पाबनी—

श्लोक—श्मसानेष्वा क्रीडा स्मरहर पिशाचा सहचरा
चिता भस्मा लेपो सृगपि नृकरोटी परिकर।
अमगल्य शील तव भवतु नामैवमखिल
तथापि स्मर्तृणाम् वरद परम मगलमसि।।

अर्थात्—हे कामदेव के शत्रु, आप श्मशान-भूमि मे क्रीडा करने वाले तथा पिशाचो के सग रहने वाले हैं। आपके शरीर मे चिता की भस्म तथा रक्त लगा हुआ है और मनुष्य की खोपडी आपकी सामग्री है। यद्यपि आपका इस प्रकार का अमगल रूप है तो भी हे वरदान देने वाले, आप स्मरण करने वालो को कल्याणरूप ही है।

दोहा—प्रिय लागहि अति सबहि मम, भनिति रामजस संग।
दारु बिचारु कि करइ कोउ, बंदिय मलय प्रसंग[1] ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी के गुणानुवादों सहित मेरा कथन सब लोगों को बहुत ही अच्छा लगेगा। क्या कोई कभी (चंदन की) लकड़ी का विचार करता है? उसको तो चंदन के संसर्ग से वंदना की जाती है अर्थात् चन्दन की सुबास से उसके पास के सभी वृक्ष चन्दन बन जाते हैं। सो चन्दन पाकर लोग यह विचार कभी नहीं करते कि यह किस वृक्ष की लकड़ी है जो चन्दन बन गई। वे तो उसे चन्दन मानकर आदर देते हैं। इसी प्रकार सब लोग मेरी कविता कैसी है, इसका विचार न कर राम-यश में सम्मिलित होने के कारण उसका आदर करेंगे।

दोहा—स्याम सुरभि[2] पय बिसद अति, गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम सिय रामजस, गावहिं सुनहिं सुजान ॥१०॥

अर्थ—कृष्णा गाय के दूध को सफेद और अधिक गुणकारी होने के कारण सब लोग पीते हैं। इसी प्रकार देहाती बोली में भी वर्णन किया हुआ सीता-रामचन्द्रजी का यश ज्ञानी लोग कहते और सुनते हैं।

मनि[3] मानिक[4] मुकुता[5] छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी ॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई ॥

शब्दार्थ—किरीट = मुकुट। तरुनी = जवान स्त्री।

अर्थ—रत्न, माणिक और मोती की जो यथार्थ शोभा है वह (क्रमानुसार) सर्प, पर्वत और हाथी के शिरोभाग में नहीं फबती, (परन्तु) सब के सब या तो राजा के मुकुट में या जवान स्त्री के शरीर पर (अलङ्कार रूप में) बड़ी भारी शोभा को प्राप्त होते हैं (अर्थात् रत्न,

---

१ दारु बिचारु कि करइ कोउ, बंदिय मलय प्रसंग—(टीकाकार-कृत)
दोहा—स्वर्ण रजत गिरि वास कह, जहँ तरु तरुहि रहाँहि।
धन्य मलयगिरि जहँ सकल, तरु चंदन हुइ जाँहि ॥

२. श्याम सुरभि—वैद्यक के अनुसार कृष्णा गौ का दूध बल का बढ़ाने वाला और बात रोग का नाश करने वाला होता है जैसा कि वैद्यक ग्रन्थों में लिखा है—'कृष्णायाः गोर्भवं दुग्धं वातहारि गुणाधिकम्'—अर्थात् कृष्ण गौ का दूध बातनाशक और अधिक गुणकारी होता है।

३. मनि—रत्न, जो किसी-किसी सर्प के मस्तक में रहता है न कि प्रत्येक सर्प के मस्तक पर, जैसा कहा है कि 'फण फण मणि नहिं होत'।

४. मानिक—लाल रंग का कीमती पत्थर जो किसी-किसी पहाड़ में मिलता है, जैसा कहा है 'शैले शैले न माणिक्यं' अर्थात् प्रत्येक पहाड़ में माणिक नहीं मिलता।
दोहा—पंडित अरु वनिता लता, शोभित आश्रय पाय।
है माणिक बहु मोल को, हेम जटित छबि छाय ॥

५. मुक्ता—मोती, जो सीप में पैदा होता है और किसी-किसी हाथी के मस्तक में रहता है, इनके उत्पत्ति स्थान मल्लिनाथ ने यों लखाये हैं—
श्लोक—करीन्द्र जीमूत वराह शंख मत्स्याहि शुक्त्युद्भव वेणु जानि।
मुक्ता फलानि प्रथितानि लोके तेषां तु शुक्त्युद्भव मेव भूरि ॥
अर्थात् (दोहा)—गज घन शूकर शंख झख, सीप बांस अरु शेष।
आठ ठौर मोती क्वचित, सीपी माहि विशेष ॥

माणिक और मोती अपने-अपने उत्पत्ति-स्थान मे इतनी शोभा नही पाते जितनी कि स्थानान्तर हो योग्य सगति पाकर सुशोभित होते है)।

तैसेहि सुकबि कबित बुध कहही। उपजहिं अनत अनत छबि लहही[१] ॥
भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमरित सारद आबति धाई[२] ॥

अर्थ—इसी प्रकार बुद्धिमानो का कहना है कि अच्छे कवियो की कविता एक स्थान मे बनाई जाती है और दूसरे स्थान मे उसकी प्रतिष्ठा होती है (अर्थात् कवि लोग जो कविता रचते है उसकी पूरी-पूरी जाँच और प्रशसा दूसरे विद्वानो के पास होती है)। स्मरण करते ही भक्ति के कारण सरस्वती ब्रह्मलोक को छोड दौडकर आ जाती है।

दूसरी पंक्ति का दूसरा अर्थ- भक्तो के निमित्त 'शारदा' अर्थात् वाणी 'विधि भवन' अर्थात् ब्रह्मा के घर मे (भाव उनके उत्पत्ति-स्थान अर्थात् नाभि से) निकल कर हृदय मे आती है, फिर कण्ठ मे से मुख मे शीघ्र आ जाती है। साराश यह है कि भगवद्भक्त के निमित्त भगवान् की इच्छा मे वाणी नाभि-स्थान से स्फुरण हो हृदय मे आकर कठ और मुख मे आकर शब्द रूप मे प्रकट होती है। जैसा वाल्मीकिजी के मुख से ईश्वर-प्रेरित वह श्लोक निकल पडा था कि जिसके प्रताप से वे 'आदिकवि' हो गये (देखे, वाल्मीकिजी का जीवन-चरित्र)।

राम चरित सर बिन अन्हवाये। सो श्रम जाय न कोटि उपाये ॥
कबि कोबिद अस हृदय बिचारी। गावहि हरि जस कलिमल हारी ॥

अर्थ—सरस्वती की वह थकावट रामचरित-रूपी तालाब मे स्नान कराये बिना करोडो उपायो से भी नही मिटती (साराश यह कि यदि अपनी वाणी मे वर्णन करने की शक्ति आ जाए तो परमेश्वर के यश का वर्णन करना उत्तम होगा)। (तभी तो) कविगण और पडित लोग हृदय से ऐसा विचार कर कलियुग के पापो का नाश करने वाले ईश्वर के प्रताप ही को गाते रहते हैं।

कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिरधुनि गिरा लागि पछताना ॥
हृदय सिधुमति सीपि समाना। स्वाती सारद कहहि सुजाना ॥
जो बरखइ बर बारि बिचारू। होहि कबित मुक्ता मनि चारू[३] ॥

---

१. उपजहि अनत-अनत छबि लहही—

दोहा—कविगण कविता करहिं जो, ज्ञानवान रस लेइ।
जन्म देइ पितु पुत्रि को, पुत्रि पतिहि सुख देइ ॥

२. सुमिरत सारद आबति धाई—बलभद्र भक्त-कृत श्रीशारदाजी का स्मरण इकताला के ताल मे यो है—

शरण सुखद हरणताप जगत जननि बानी।
ब्रह्मरमनि हस गमनि दवनिताप मोद छवनि, सबनि सुखद भवन भवन अवनि मे बखानी।
श्वेत बसन व्यसन एक रामयशन रसन माहिं, कसन करहु रसन वास दास अपन जानी ॥
दीन हितू लीन पीन ताप वाप छीन करन, ह्वै प्रवीन बीन हाथ तीन लोक गानी।
मानि धरम धाम वानि नरम ठानि भरम भानि, याचत बलभद्र तोहि जानि परम दानी ॥

३. होहिं कबित मुक्ता मनि चारू—इस विषय पर ठाकुर कवि की कविता देखिये—

सवैया—मोतिन कैसी मनोहर माल गुहै तुक अक्षर रीझि रिझावै।
धर्म कौ पथ कथा हरिनाम कि उक्ति अनूठी बनाय सुनावै ॥
ठाकुर सो कवि भावत मोहि जो राजसभा मे बडप्पन पावै।
पडित और प्रवीनन्ह के पुनि चित्त हरै सो कवित्त कहावै ॥

अर्थ—जो साधारण मनुष्यों के गुणों का वर्णन किया जाए, तो सरस्वतीजी सिर पीट-पीटकर पछताने लगती है (अर्थात् साधारण मनुष्यों के गुण वर्णन करने में कविता शक्ति का बड़ा भारी अनादर है क्योंकि उसमें मनुष्यों की अयोग्य बड़ाई की जाती है)। ज्ञानी लोग कहते है कि हृदय तो समुद्र के समान है, बुद्धि सीप के सदृश है, और विद्या ही मानो स्वाति (नक्षत्र) की बूंद है। जो विचाररूपी उत्तम मेह बरसे, तो उसमें से कवितारूपी सुन्दर मोती और मणि उत्पन्न होवे।

भाव यह है कि गभीर बुद्धि वाले हृदय में श्रेष्ठ मति के कारण उत्तम वाणी प्रकट होकर शुद्ध विचार कवितारूप मे प्रकाशित होवे, तो वह कविता बहुत ही सुन्दर सुहावनी होगी।

दोहा—युक्ति बेधि पुनि पोहिये, रामचरित बरताग।
पहिरहि सज्जन बिमल उर, सोभा अति अनुराग ।।११।।

अर्थ—(कवितारूपी मोतियों को) युक्तिरूपी सूचिका मे बेधकर रामचन्द्रजी के चरित्ररूपी सुन्दर धागों मे पोह लेना चाहिए। यह मुक्तामाल सज्जन अपने स्वच्छ हृदय में धारण करेंगे, तब ईश्वर मे जो विशेष प्रेम उत्पन्न होगा, वही शोभा होगी। (सारांश, कविता को बुद्धिमानी से रामयशमयी बनाकर सत्पुरुष उसे अपने हृदय में रख विशेष प्रेमी हो जाते है)।

जे जनमे कलिकाल कराला। करतब बायस बेष मराला[1] ।।
चलत कुपंथ बेद मग छाँड़े। कपट कलेबर कलिमल भाँड़े[2] ।।

अर्थ—जो लोग इस कठिन कलियुग मे जन्म लेते है वे देखने में तो हंस का सा भेष बनाये रहते है परन्तु उनके काम कौए की नाईं होते है। वे वेद की रीति को छोड़ कुमार्ग पर चलते हैं, उनका शरीर छल से भरा हुआ है, और वे कलियुग के पापों के भंडार ही है।

बंचक भक्त कहाइ राम के[3] । किंकर कंचन कोह काम के[4] ।।
तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी। धिक धरमध्वज धंधक धोरी ।।

शब्दार्थ—बचक = छलिया। किंकर (किम् = क्या + कर = करना) = क्या करें (ऐसा

---

१. करतब बायस बेष मराला—

घर की पियारी ताहि कर के नियारी अब बनि के अचारी भारी डोलत सफ़र मे।
छोड़ द्विज देवनि की मंडली को संग भलो साधु कहवाय जाय सोवत नफर मे ।।
कहैं शिवराम साँची बात ही को आँच माने आँखिन फिराय ऐंठ बैठत अकर मे।
रोय गाय हँसि कै सुजीवन के छीन धन करि कै मकर प्राग जात हैं मकर मे ।।

२. कपट कलेबर कलिमल भाँडे—

गीता पुस्तक हाथ, साथ विधवा, माला विशाला गले
गोपीचदन चर्चित सुललित, भाल च वक्षस्थल।
रैदासा रँगवा कुलाल पटवा, कोरी बढ़ोई बड़ो
हा वैराग्य कुतो गतोसि भवता, नामापि न श्रूयते ।।

३. बचक भक्त कहाइ राम के—

दोहा—जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम।
मन काचे नाचे वृथा, साँचे राचे राम ।।
विरले विरले पाइये, माया त्यागी सत।
तुलसी कामी कुटिल खल, केकी काक अनत ।।

४. किंकर कचन कोह काम के—राम स्वयंवर से—

→

प्रश्न जो अपने स्वामी से करे), दास । कचन = सोना । कोह = क्रोध । प्रथम रेख = पहली लकीर (किसी की गिनती करने मे जो लकीर खीचकर कहते है 'एक', फिर दूसरी लकीर खीचकर कहते है 'दो', इत्यादि । इसमे पहली लकीर के साथ जो गिना जाता है वह पहला (मुखिया) कहलाता है) अर्थात् पहले नम्बर वाला या मुखिया । धिक (स०) = धिक्कार । धरमध्वज (धर्म = पुण्य + ध्वज = झडा) = पुण्य का झडा, पाखडी (योगरूढि) धधक = काम करने वाला । धोरी = बैल ।

अर्थ—ठगिया तो है पर रामजी के भक्त कहलाते है (यथार्थ मे) धन, क्रोध और काम के सेवक है (अर्थात् धोखा देकर रामदास बनते है, पर सच पूछो तो ये धनदास, क्रोधदास, स्त्रीदास है । भाव यह है कि वे दिखावटी साधु के रूप मे धन बटोरते है, क्रोध करते है और स्त्रीवासना रखते है) । ऐसे पाखडियो मे पहले मेरी गिनती है । धिक्कार है ऐसे धर्मध्वजियो को, जो अपने धधो मे बैल के समान जुते रहते है (अर्थात् ऐसे मुझ-सरीखे पाखडियो को धिक्कार है जो रामभक्त कहलाकर लोगो को नाना प्रकार से ठगने के उद्योग मे लगे रहते है) ।

जो अपने अवगुन सब कहऊँ । बाढ़ै कथा पार नहि लहऊँ ।।
ता ते मै अति अलप बखाने । थोरे महँ जानहहि सयाने ।।

अर्थ—जो मै अपने सम्पूर्ण दुर्गुणो का बखान करूँ तो कथा बहुत बढ जाएगी और उसकी समाप्ति न होगी । इस हेतु मैने बहुत ही थोडे मे उन्हे कह डाला है, चतुर लोग थोडे ही मे समझ जाएगे ।

समुझि बिबिध बिधि बिनती मोरी । कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी ।।
एतेहु पर करहहि जे संका । मोहि ते अधिक ते जडमति रंका ।।

अर्थ—मेरी नाना प्रकार की विनय पर ध्यान रख कोई भी कथा सुनकर मुझे दोष न देगा (अर्थात् मेरी नम्रता, निज-दोष-स्वीकार और रामकथा का महत्त्व विचार बहुधा लोग मुझे दोष न देगे) । इतने पर भी जो लोग शका करेगे, उन्हे मुझसे भी अधिक मूर्ख और मति-हीन समझना चाहिए ।

कबि न होउँ नहि चतुर कहावउँ । मति अनुरूप रामगुन गावउँ ।।
कहँ रघुपति के चरित अपारा[1] । कहँ मति मोरि निरत ससारा ।।

शब्दार्थ — अनुरूप अनुसार । निरत = आसक्त, फँसी हुई ।

सवैया—किंकर काम के कोह के कूकरे कूरता काहरी मे कठिनोई ।
कोक कलान के काम करैया कहैया कुढग कपार करोई ।।
कचन कामिनी काज के काजिल काजी कुशास्त्रन कृत्य कुबोई ।
कूसुर कर्म कहौ कहँलौ करनैल बने कलि के सब कोई ।।

१. कहँ रघुपति के चरित अपारा—इसी आशय को रघुवश मे कालिदासजी ने कैसी उत्तम रीति से वर्णन किया है । यथा—

श्लोक—क्व सूर्यप्रभवो वश क्व चाल्पविषया मति. ।
तितीर्षुर्दुस्तर मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ।।

अर्थात् (कालिदासजी कहते है कि)—कहाँ तो सूर्य से उत्पन्न वश और कहाँ मेरी अल्प बुद्धि, मै मोहवश एक तख्ते के द्वारा भारी समुद्र के पार जाना चाहता हूँ । भाव यह कि सूर्यवश का वर्णन बहुत ही कठिन है, अतएव मेरी बुद्धि काम नही देती ।

अर्थ—न तो मैं कवि हूँ और न चतुर कहलाता हूँ, मैं तो अपनी बुद्धि के अनुसार श्रीरामचन्द्रजी के गुणो का वर्णन करता हूँ। कहाँ तो रघुनाथजी के अनगिनती चरित्र और कहाँ मेरी बुद्धि, जो ससारी कामो मे फँसी हुई है (भाव यह कि बुद्धि थोडी है और चरित्रो का पार नही)।

जेहि मारुत गिरि मेरु उडाही। कहहु तूल केहि लेखे माही ॥
समुझत अमित राम प्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई ॥

शब्दार्थ—मारुत = पवन। तूल = रुई।

अर्थ—जो पवन सुमेरुपर्वत को उडा सकती है उसके सामने रुई किस गिनती मे है (भाव यह कि जिन रामचरित्रो को शारदा, नारद, आदि भी वर्णन नही कर सकते, उनका वर्णन मै तुलसीदास कैसे कर सकूगा)। श्री रामचन्द्रजी की अपरपार महिमा पर विचार करने से उनकी कथा लिखने मे मन बहुत कचियाता है।

दोहा—सारद सेष महेस बिधि, आगम निगम पुरान[1]।
नेति नेति कहि जासु गुन, करहि निरन्तर गान ॥१२॥

अर्थ—सरस्वती, शेषनाग, महेशजी, ब्रह्मदेव शास्त्र, वेद और पुराण (ये सब के सब) जिनके गुणानुवाद सदैव वर्णन किया करते है और फिर भी कहते है 'नेति', 'नेति' (अर्थात् 'इतना ही नही' 'इतना ही नही')।

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहे बिन रहा न कोई[2] ॥
तहाँ बेद अस कारन राखा। भजन प्रभाव भाँति बहु भाखा[3] ॥

अर्थ—परमेश्वर के महत्व को सभी जानते है (कि वह अकथनीय है) इतने पर भी उसकी कुछ न कुछ महिमा कहे बिना कोई न रहा। उसका कारण वेद के अनुसार यही निश्चित हुआ कि भजनो का प्रभाव अनेक भाँति का है (अर्थात् अपनी-अपनी भावना के अनुसार ईश्वर के गुणों का गान लोग किया करते हैं)।

---

१. सारद सेष महेस बिधि, आगम निगम पुरान, आदि—श्री गजाधर प्रसाद (उपनाम मोहिनीदास) बनारस-निवासी-कृत 'प्रेमपीयूषधारा' से—

नट—रघुवर तेरो नाम अनंत।
गावत शेष महेश शारदा, पावत तदपि न अन्त ॥
बरनत सनकादिक मुनि नारद, नित नित निगम कहन्त।
मोहनि दास मगन है निशि दिन, तेरो ध्यान धरन्त ॥

२. तदपि कहे बिन रहा न कोई -जसवत जसो भूषण से-—

दोहा—अबलों कल्पारंभ ते, आये कहत अनेक।
कत समस्त कहिबे समय, मैं अलपायु रु एक ॥

३. भजन प्रभाव भाँति बहु भाखा—जैसा कि श्रीमद्भागवत में लिखा है—

श्लोक—यत्कीर्त्तनं यत्स्मरण यदीक्षण यद्व दन यच्छ्रवणं यदर्हणम्।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥

अर्थात्—जिस प्रभु के गुणानुवाद कहना, जिसका स्मरण करना, जिसका दर्शन करना, जिसकी वदना करना, जिसका यश सुनना और जिसका पूजन करना प्राणियों के पापों को तुरन्त ही नाश कर देता है, ऐसे कल्याण रूपी परमेश्वर को प्रणाम है।

एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानंद परधामा ।।
ब्यापक बिश्वरूप भगबाना[१] । तेहि धरि देह चरित कृत नाना ।।

शब्दार्थ—अनीह = इच्छा-रहित । अरूप - आकार-रहित । अनामा = नाम-रहित । अज = जन्म-रहित । सच्चिदानन्द (सत् = तीनो कालो मे रहने वाला + चित् = चैतन्य किंवा ज्ञानस्वरूप + आनन्द पूर्ण सुख) = त्रिकाल-अबाधित, चैतन्य स्वरूप और आनन्द-घन । परधामा जिनका स्थान सबसे परे है—अर्थात् बैकुठवासी । व्यापक = सब स्थानो मे रहने वाले । विश्वरूप = विराटरूप । भगवान् (भग = ऐश्वर्य + वान् = वाले) = ऐश्वर्य वाले ।

अर्थ केवल एक, इच्छा-रहित, आकार-रहित, नाम-रहित, जन्म-रहित, सच्चिदानन्द, बैकुठ-निवासी, घट-घट-वासी, विराट रूप और षडैश्वर्यशाली परब्रह्म हैं । वे ही देह धारण कर अनेक चरित्र करते है ।

सो केवल भगतन हित लागी । परम कृपालु प्रनत अनुरागी ।।
जेहि जन पर ममता अति छोहू[२] । तेहि करुना कर कीन्ह न कोहू ।।

अर्थ—(वे) परम दयालु है और शरणागत पर प्रेम करते है । उन ईश्वर का अवतार लेना केवल अपने भक्तो के निमित्त है । दयासागर परमेश्वर की कृपा और प्रेम जिस प्राणी पर होता है उस पर वे क्रोध नही करते ।

गई बहोर गरीबनेबाजू[३] । सरल सबल साहिब रघुराजू ।।
बुध बरनहि हरिजस अस जानी । करहिं पुनीत सुफल निज बानी ।।

अर्थ—(गाने की रीति पर) प्रभु बिगडी के बनाने वाले, दीनो के पालने वाले, है सरल सबल भगवान । रघुवश मे जन्मने वाले । ऐसा समझ बुद्धिमान लोग श्री रामचन्द्रजी का यश वर्णन करके अपनी वाणी को पवित्र और सफल करते है ।

---

१ व्यापक बिश्वरूप भगवाना— ब्रह्मवैवर्तपुराण मे नारदजी के वचन अम्बरीष के प्रति—

श्लोक—दृष्टनामात्मक विश्व मया विज्ञान चक्षुषा ।
वाङ्मनोगोचरातीत निर्विकल्प प्रमोददम् ।।

अर्थात्—हे अम्बरीष जी ! जो मैने ध्यान धरके विज्ञान के नेत्रो से देखा तो सब ससार मे रामजी को व्याप्त देखा जो मनसा वाचा कर्मणा से परे निर्विकल्प और आनन्ददायी है ।

२. जेहि जन पर ममता अति छोहू । तेहि करुणा कर कीन्ह न कोहू—
वाल्मीकीय रामायण मे कहा है—

श्लोक—मित्रभावेन सप्राप्त, नत्यजेय कथचन ।
दोषो यद्यपि तस्यस्यात्, सतामेतद्धि गर्हितम् ।।

अर्थात्—जिससे मित्र भाव मान लिया है उसे कभी न छोडना चाहिये । चाहे उसका दोष भी हो क्योकि यह बात सज्जनो के लिये निन्दनीय है ।

३. गई बहोर गरीबनेबाजू । सरल सबल साहिब रघुराजू—
गई बहोर से अनेक अभिप्राय निकलते है यथा (१) जो कोई वस्तु किसी की चली गई हो तो फिर से मिला देते हैं (२) भक्तो के अवगुणों पर विचार न करके उन पर कृपा करते हैं (३) देवताओ के गये हुए राज्य और सुख को अवतार धारण कर लौटा देते हैं, इत्यादि ।
गरीबनेबाजू—गरीबनेबाजू ऐसे है कि शबरी, गीध, आदि गरीबो का उद्धार किया । →

तेहि बल मैं रघुपतिगुन गाथा । कहिहउँ नाइ रामपद माथा ।।
मुनिन्ह प्रथम हरिकीरति गाई । तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई ।।

अर्थ—उसीके आधार से मैं श्री रामजी के चरणों में शीश नवाकर रघुनाथजी के चरित्रों की कथा कहूँगा। वाल्मीकि आदि ऋषि हरियश पहले ही लिख चुके हैं, इस हेतु हे भाई! मुझे उन्ही के अनुसार चलना सहज हो गया है।

दोहा—अति अपार जे सरित बर, जो नृप सेतु कराहिं ।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु, बिनु श्रम पारहि जाहिं ।।१३।।

शब्दार्थ—पिपीलका = चीटी ।

अर्थ—(देखो यदि) बडी गभीर नदी का पुल कोई राजा बँधवा देता है, तो उस पुल के सहारे से बहुत ही छोटी चीटी भी बिना अडचन के पार हो जाती है। (इसी प्रकार वाल्मीकि-व्यास आदि मुनियो ने अति गंभीर रामचरित्रो की जो कथा का वर्णन कर दी है तो अब अति अल्प बुद्धि वाला मैं तुलसीदास उसी के आधार से कुछ रामचरित्र वर्णन करने मे समर्थ हो सका हूँ)।

इहि प्रकार बल मनहिं दृढाई । करिहौ रघुपति कथा सुहाई ।।
ब्यास आदि कबि पुंगव नाना[1] । जिन सादर हरि चरित बखाना ।।

सरल—ऐसे कि जनकपुर मे बालको से विशेष सिधाई से बर्ताव किया था और निषाद से भेंट कर उसे अपना मित्र माना।

सबल—ऐसे कि १४ हजार राक्षस, कुम्भकर्ण, रावण आदि राक्षसों का नाश किया।

साहिब—ऐसे कि राजत्याग, विभीषण को पहले ही से राजतिलक कर अपनी शरण मे रख लिया।

रघुराजू—तो सिंहासन पर बैठ त्रेता में सतयुग की करनी कर दिखाई और रघुवश की कीर्ति बहुत फैलाई।

ब्यास आदि कबि पुगब नाना—पहले छः मन्वन्तरो की जो कुछ व्यवस्था हो सो ईश्वर जाने, परन्तु प्रचलित मन्वन्तर मे प्रत्येक चौकड़ी के द्वापर युग के अन्त मे एक एक व्यास हुए हैं जिनके नाम ये हैं, पहले ब्यास (१), स्वयंभू (२), प्रजापति (३), उशना (४), बृहस्पति (५), सविता (६), मृत्यु (७), मघवा (८) वशिष्ठ (९), सारस्वत (१०), त्रिधासा (११), त्रिविश (१२), भारद्वाज (१३), अन्तरिक्ष (१४), धर्मा (१५), त्र्य्यारुण (१६), धनजय (१७), मेधातिथि (१८), व्रती (१९), अत्रि (२०), गौतम (२१), हर्यात्मा (उत्तमा) (२२), बेन बाजस्रजाक्ष (२३), सोमशुष्मायण (२४), तृणबिन्दु (२५), भार्गव (२६), शक्ति (२७), जातुकर्ण (२८), और वर्तमान व्यास कृष्ण द्वैपायन (ये पराशर के पुत्र है)। अब २९वी चौकडी मे द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा व्यास होगे। जैसा कहा है (देवी भागवत स्कन्ध १-४) 'एकोनत्रिंशे संप्राप्ते, द्रौणिर्व्यासो भविष्यति।' 'व्यास' शब्द का अर्थ वेद की व्यवस्था करने वाला समझा जाता है। इनका यही काम है कि वेदो की जो अव्यवस्था हो गई हो, उसे ठीक किया करें।

इन महात्मा के विषय मे बुन्देलखण्ड की जैतपुर-निवासिनी नीलसखी-कृत कविता देखिये—

पद—जय जय बिशद व्यास की बानी।
मूलाधार इष्ट रसमय उतकर्ष भक्ति रससानी ।। →

शब्दार्थ—पुगन (पुम् = पुरुष + गो = गाय) = गाय का पुरुष अर्थात् बैल, परन्तु और शब्दो के साथ आने से इसका अर्थ 'श्रेष्ठ' होता है जैसे कवि-पुगव = कवियो मे श्रेष्ठ ।

अर्थ—इस प्रकार के बल से मन को पक्का करके रघुनाथजी की सुन्दर कथा कहूँगा। व्यास आदि जो कवि श्रेष्ठ हो गये है और जिन्होंने आदर-सहित श्री रामजी के चरित्र वर्णन किये है ।

चरन कमल बंदौ तिन केरे । पुरबहु सकल मनोरथ मेरे ॥
कलि के कबिन्ह करउँ परनामा । जिन बरने रघुपति गुनग्रामा ॥

अर्थ—मैं सब लोगो के कमलस्वरूपी चरणो की वदना करता हूँ। आप मेरी सब मनोकामनाए पूरी कीजिए। कलियुग के कवियो को भी प्रणाम करता हूँ जिन्होने श्री रामचन्द्रजी के गुणानुवाद वर्णन किये है ।

जे प्राकृत कबि परम सयाने[1] । भाषा जिन हरि चरित बखाने ॥
भये जे अहहि जे होइहहिं आगे । प्रनवउँ सबहिं कपट सब त्यागे ॥

अर्थ—जो साधारण कवि बडे चतुर हैं और जिन्होने भाषा मे हरि-चरित्रो का वर्णन किया है, जो हो गये है, जो अभी है, और जो अब होगे, उन सबको सम्पूर्ण छल छोड कर प्रणाम करता हूँ ।

होहु प्रसन्न देहु बरदानू । साधु समाज भनित सनमानू ॥
जो प्रबंध बुध नहि आदरही । सो श्रम बादि बाल कबि करही ॥

अर्थ—आप लोग प्रसन्न होकर यह वरदान दीजिये कि मेरी कविता का सम्मान सज्जनों की सभा मे हो। कारण जिस लेख या कविता का बुद्धिमान् लोग सम्मान नही करते, सो अज्ञानी कवियों का श्रम करना वृथा ही है ।

कीरति भनिति भूति भलि सोई । सुरसरि सम सब कर हित होई[2] ॥
राम सुकीरति भनित भदेसा । असमंजस अस मोहि अँदेसा ॥

अर्थ—यश, कविता, ऐश्वर्य वही अच्छे होते है जो गगाजी के समान सभी को हित-

---

लोक वेद भेदन ते न्यारी प्यारी मधुर कहानी ।
स्वादिल शुचि रुचि उपजै पावत मृदु मनसा न अघानी ॥
सकत अमोघ विमुख भजन की प्रकट प्रभाव बखानी ।
मत्त मधुप रसिकन के मन की रस रजित रजधानी ॥
सखीरूप नव नीत उपासन अमृत निकास्यो आनी ।
नीलसखी प्रणमामि नित्य मह अद्भुत कथन मथानी ॥

१. जे प्राकृत कबि परम सयाने—तुलसीदासजी ने इस बात पर बडा जोर दिया है कि लेख चाहे सस्कृत मे हो चाहे देशी भाषा मे, परन्तु प्रेम सच्चा होना चाहिए। इसी विचार से उन्होने अपने मित्र को भी जिसे लोग हिन्दी मे ग्रथ लिखने के कारण नाम रखते थे, यही सलाह दी थी कि —

दोहा—का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये साच।
काम जो आवइ कामरी, का लै करै कमाँच ॥

२. कीरति भनिति भूति भलि सोई । सुरसरि सम सब कर हित होई—(१) कीरति (कीर्ति) अर्थात् प्रसिद्धता ऐसे कामो मे होनी चाहिए जिसमे सबका भला हो जैसे प्रसिद्ध दानी, प्रसिद्ध पडित या प्रसिद्ध भक्त, आदि । →

कारी हो। श्री रामचन्द्रजी का सुन्दर यश तो है, परन्तु भद्दी कविता मे है, इस हेतु दुविधा के कारण मुझे (यह) सदेह उठता है। (भाव यह कि हिन्दी भाषा मे रामयश लिखूं या नही)।

तुम्हरी कृपा सुलभ सोउ मोरे। सिअनि सुहावनि टाट पटोरे ।।
करहु अनुग्रह अस जिय जानी। बिमल जसहि अनुहरइ सुबानी ।।

अर्थ—आप लोगो की कृपा से मुझे सभी सहल है जिस प्रकार मोटे वस्त्र मे भी रेशम की सिअन सुहावनी लगती है।

(दूसरा अर्थ) आप लोगों की कृपा से मुझे सभी सहल हो जायगा, जिस प्रकार टाट हो किंवा रेशम का कपडा हो, उत्तम सिलाई होनी चाहिए तो दोनो सुशोभित लगते हैं। इसी प्रकार कविता सस्कृत मे हो अथवा भाषा मे, उसमे ईश्वर का यश वर्णन होना चाहिए, ऐसा मन मे विचार मेरे ऊपर कृपा करो जिसमे निर्मल रामयश के अनुसार सुन्दर वाणी भी हो जाय (अर्थात् उस बडे यश के वर्णन करने की कुछ भी तो योग्यता पा जावे)।

दोहा—सरल कबित कीरति बिमल, सोइ आदरहि सुजान[१]।
सहज बैर बिसराय रिपु, जो सुनि करहि बखान ।।

अर्थ—जो कविता सरल हो और यश निर्मल हो, उसी का आदर सज्जन करते है तथा उसी को सुन कर स्वाभाविक बैरी भी अपने बैर को छोड कर उसका वर्णन करने लगते है।

---

(२) भनिति अर्थात् कविता या लेख ऐसा होना चाहिए जो सबको यथार्थ शिक्षा दे और विशेष विरोध उत्पन्न न करे, जैसे तुलसी-कृत रामायण—

(३) भूति अर्थात् ऐश्वर्य, अधिकार, धन, आदि उसी के पास शोभा देते हैं जिससे बहुधा लोगो को लाभ पहुँचे, जैसाकि कहा है—

मर्दों का काम नेक में करना नहीं अच्छा।
बढना उसी का खूब है जिससे हो फैज आम। बदमाश मक्खीचूस का बढ़ना नही अच्छा ।।

१. सरल कबित कीरति बिमल, सोइ आदरहिं सुजान—सरल कविता की सराहना भाषा के विरोधी भी करने लगते हैं, यहां पर नागरी भाषा से विरोध रखने वाले कोई-कोई सस्कृत के ज्ञाता पंडित लोग हो जाते हैं, परन्तु वे भी उत्तम नागरी कविता मे रामयश वर्णन सुनकर मुग्ध हो जाते हैं और उंसकी सराहना करने लगते हैं क्योकि वह सस्कृत की अश्लील कविता से कहीं बढ़ कर समझी जाती है, जैसे—

मनि भाजन बिष पारई। पूरन अमी निहार।
का छांड़िय का संग्रहिय। कहहु बिवेक बिचार ।।

और विमल कीर्ति जैसे अर्जुन के पराक्रम के सामने उनके शत्रु महारथी कर्ण की प्रशंसा श्री कृष्णजी ने की थी। यथा (महाभारत में लिखा है कि)—

श्लोक—युध्यंतमर्जुनं दृष्टवा के के देवा न विस्मिताः।
न मन्ये बहु गोविंदो दृष्टः कर्णपराक्रमः ।।

अर्थ—अर्जुन को संग्राम करते देख कौन-कौन से देवता आश्चर्य युक्त नहीं हुए (अर्थात् सभी चकित हुए थे) परन्तु श्री कृष्णजी ने कर्ण के पराक्रम को देख अर्जुन के पराक्रम को कुछ प्रशंसनीय न समझा (कारण श्री कृष्णजी सारथी थे, पृथ्वी अर्जुन के रथ को विशेष आकर्षित किये थी और हनुमानजी ध्वजा पर विराजे थे, तो भी कर्ण के बाण से अर्जुन का रथ पीछे हट ही जाता था, यह बात श्री कृष्णजी ही जानते थे, तभी तो उन्होने शत्रु पक्ष वाले कर्ण के बल की प्रशंसा की)।

दोहा—सो न होइ बिन बिमल मति, मोहि मतिबल अति थोरि।
करहु कृपा हरिजस कहउँ, पुनि पुनि करउँ निहोरि॥

अर्थ—ऐसी कविता बिना शुद्ध बुद्धि के नही हो सकती और मुझमे बुद्धि का बल बहुत थोडा है। इस हेतु बारंबार विनती करता हूँ कि आप लोग कृपा करे जिससे मै रामयश वर्णन कर सकू।

दोहा—कबि कोबिद रघुबरचरित, मानस मंजु मराल।
बालबिनय सुनि सुरुचिलखि, मोपर होहु कृपाल॥१४॥

अर्थ—कवि और पडित लोग श्री रामचद्रजी के मानसरोवररूपी चरित्रो के सुन्दर हस है ऐसे जन मुझ अज्ञानी की विनती सुन और प्रेम को देख मुझ पर दयालु होवे।

सोरठा—बंदउँ मुनिपदकंज[1], रामायन जिन निरमयेउ।
सखरसु कोमल मंजु, दोष रहित दूषन सहित॥

पहला अर्थ— जिन्होने रामायण काव्य को रचा, उन (आदिकवि) वाल्मीकि मुनिजी के कमलस्वरूपी चरणो की मै वदना करता हूँ। वह काव्य 'खर' नाम राक्षस के वर्णन-युक्त, कोमल, मधुर और दोष-रहित भाषा मे लिखा गया है तथा उसमे दूषण राक्षस का भी वर्णन है।

सखरस (सख=दूध+रस=सार)=दूध का सार अर्थात् मक्खन (विश्वकोष मे लिखा है यथा—सख क्षीर पयो दुग्ध, गोरस सर्पिहेतुकम्)

दूसरा अर्थ—मैं उन मुनियो के कमलस्वरूपी चरणो की वदना करता हूँ जिन्होने रामायण की कथा लिखी है। जो कथा मक्खन के समान कोमल और मधुर है तथा दोष-रहित है और दूषण-सहित है (अर्थात् यद्यपि छाछ मिलने का दूषण मक्खन मे रहता है तो भी वह 'सोहत' अर्थात् हितकारी है, इसी प्रकार रामायण की कथा दोष-रहित है और यद्यपि उसमे राक्षसो के दुराचरण रूपी दोष दिखाई देते है तो भी वे हितकारी है, क्योकि राक्षसी आचरण का त्याग और उत्तम गुणो का ग्रहण, यह हितकारी शिक्षा इससे मिलती है)।

---

१ बदउँ मुनिपदकज—यह सोरठा प्राय नीचे लिखे श्लोक ही का अनुवाद है—

नमस्तस्मै कृता ये न पुण्यारामायणी कथा।
सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला॥

कवि वाल्मीकिजी की वदना करने का यह अभिप्राय है कि ये आदि-कवि है और वरदा पाये हुए है। ये श्री रामचन्द्रजी के समकालीन थे तथा इन्होने रामायण मे पहले ही से ये बातें लिख दी थी जिनकी घटना पीछे हुई। इन सब बातो का विचार कर कवि जी ने आरभ ही के तीसरे श्लोक मे इनकी वन्दना कर ली है और अब फिर से उसे स्पष्ट कर ऐसी कविता मे आरम्भ करते है जो सरल, अलकार आदि से युक्त होकर उसी श्लोक का उल्था है।

स्मरण रहे कि गोस्वामीजी की वर्णन करने की प्राय यह शैली है कि वे चरण या चरण-रज आदि को कर्त्ता बनाते है, परन्तु उसके विशेषण, उस व्यक्ति के विशेषण लिखते है जिसके वे चरण या चरण-रज आदि हो। जैसे इसी मे 'वदौ मुनिपदकज रामायन जिन निरमयेउ' इसमे वदना तो चरणो की है और कार्य वाल्मीकिजी के है, चरणो के नही। ऐसे ही दो और उदाहरण लिखते है—

(१) बदौ गुरु पद कज, कृपासिंधु नररूप हरि।
(२) बदौ विधिपदरेणु भवसागर जेहि कीन्ह जहँ।

तीसरा अर्थ—(दूसरी पंक्ति का)—रामायण की कथा 'सखर' अर्थात् कठोरता युक्त, याने पापियों को यथायोग्य दंड देने वाली तथा 'सकोमल' अर्थात् भक्तों और शरणागतों पर विशेष कृपा से भरी हुई है। इन दोनों कारणों से मधुर हुई और दोष-रहित है सो यों कि अशुद्ध उच्चारण करने का दोष इसमें नहीं लगता। तथा दूषण-सहित अर्थात् बेसमझे पढ़ने का दूषण भी इसमें हितकारी हो जाता है। कारण, इसकी भाषा इतनी सरल है कि साधारण मनुष्य भी इससे साधारण अर्थ समझ लेते हैं और बड़े पंडित भी बड़ी पंडिताई का अर्थ लगा सकते है तथा इसका एक-एक अक्षर भी पाप-नाशक है। जैसा कहा है—

श्लोक—चरितं रघुनाथस्य, शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां, महापातकनाशनम्॥

अर्थात्—श्री रामचन्द्रजी के चरित्रों का विस्तार सौ करोड़ पर्यन्त है, उनमें से एक-एक अक्षर भी मनुष्यों के भारी पापों का नाश करने वाला है।

चौथा अर्थ (दूसरी पंक्ति का)—रामायण की कथा कोमल और मंजु है। यदि सखरता अर्थात् कठोरता इसमे ढूँढ़ी जाए तो केवल 'खर' राक्षस का नाम ही है और दूसरी सखरता नहीं। इसी प्रकार इसमें दूषण भी नहीं है। यदि दूषणों की खोज करें तो दूषण के स्थान मे 'दूषण' नामका राक्षस है और कोई दूसरा दूषण नहीं। (यह अर्थ प्राय. उस कविता के अर्थ की नाईं है जो तुलसीदासजी ने उत्तरकाण्ड में लिखी है। यथा—दंडयतिन कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज। जितहु मनहि अस सुनिय जग, रामचन्द्र के राज)।

सोरठा—बंदउँ चारिउ बेद[१], भवबारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहि न सपनेहु खेद, बरनत रघुबर बिसद जस॥

अर्थ—मैं चारों वेदों की वंदना करता हूँ जो संसाररूपी समुद्र से पार करने हेतु नौका के समान हैं और जिनको श्री रामचन्द्रजी की निर्मलकीर्ति वर्णन करने मे कुछ भी क्लेश नहीं होता।

सोरठा—बंदौं बिधिपदरेनु, भवसागर जेहि कीन्ह जहँ[२]।
संत सुधा ससि धेनु, प्रकटे खल बिष बारुनी॥

---

१. बंदौं चारिउ बेद—चारों वेदों में परमात्मा की स्तुति अनेक रूप में की गई है और वही परमात्मा अवतार धारण कर रामरूप हो गये हैं। इस हेतु श्री रामचन्द्रजी का यश-वर्णन मानो परमात्मा ही का यश-वर्णन है जो कि वेदों में किया गया है। यह उस शंका का समाधान है जो लोग कभी-कभी विचारने लगते हैं कि वेद में रामयश का वर्णन कहाँ है।
और भी—

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना॥

अर्थात्—वेदों से जानने के योग्य परात्पर ब्रह्म ने दशरथजी के यहाँ पुत्र-रूप से अवतार लिया, तब वेद भी वाल्मीकि मुनि के द्वारा रामायण-रूप में अवतीर्ण हुए। तभी तो गोस्वामीजी कहते हैं कि वेदों को रामयश-वर्णन करने का क्लेश लेश-मात्र भी नहीं होता।

२. बंदौं बिधिपदरेणु, भवसागर जेहि कीन्ह जहँ—इसमें कदाचित् कोई यह शंका कर बैठे कि ब्रह्माजी की स्तुति बहुधा ग्रंथो में नहीं मिलती। यहाँ पर गोस्वामीजी ने क्यों की? तो उसका कारण तुलसीदासजी स्पष्ट करते हैं कि इस सृष्टि के कर्त्ता तो ब्रह्मदेव ही हैं। →

अर्थ—ब्रह्मदेव की चरणरज को मैं वंदना करता हूँ जिन ब्रह्मदेव ने ससार को बनाया है। जहाँ पर सत तो मानो अमृत, चद्रमा और गौ के समान हैं और दुष्टजन विष और मदिरा के तुल्य है।

दोहा—बिबुध बिप्र बुध ग्रह चरन, बंदि कहउँ कर जोरि।
होइ प्रसंन्न पुखहु सकल, मंजु मनोरथ मोरि[१] ॥१४॥

शब्दार्थ –बिबुध = देवता।

अर्थ—मैं देवताओ, ब्राह्मणो, सज्जनो और नवग्रहों के चरणों की वदना हाथ जोडकर करता हूँ। सब ही प्रसन्न होकर मेरी सुन्दर मनोकामनाएँ पूर्ण कीजिये।

(६ **शिव-पार्वतीजी की विशेष वन्दना**)

पुनि बंदौ सारद सुरसरिता। जुगल पुनीत मनोहर चरिता॥
मज्जन पान पापहर एका। कहत सुनत इक हर अबिबेका[२] ॥

इसके सिवाय अध्यात्मरामायण मे स्वत शिवजी ब्रह्मदेव के माहात्म्य को यो वर्णन करते है—

श्लोक—तत्रदृष्ट्वा मूर्त्तिमद्भिश्छन्दोभि. परिवेष्टितम्।
बालार्कप्रभया सम्यग्भासयत सभागृहम्॥
मार्कण्डेयादि मुनिभिः स्तूयमान मुहुर्मुहु।
सर्वार्थगोचरं ज्ञानं सरस्वत्या समन्वितम्॥
चतुर्मुख जगन्नाथ भक्ताभीष्टफलप्रदम्।
प्रणम्य दडवद्भक्त्या तुष्टाव मुनिपुगवः॥

अर्थात्—वहाँ पर नारद मुनि ने ब्रह्माजी को मूर्ति धारण किये हुए चारो वेदो से सेवा किये हुए तथा प्रात काल के सूर्य के समान सम्पूर्ण सभागृह को सुशोभित करते हुए देखा और बार-बार मार्कण्डेय आदि अनेक मुनि उनकी स्तुति कर रहे थे जो वेद आदि सब शास्त्र और जो लौकिक पदार्थ हैं तिन सबके जानने वाले है और सरस्वतीदेवी सहित है। जो ससार के स्वामी चार मुँह वाले और भक्तो को इच्छित फल देने वाले है ऐसे ब्रह्माजी को त्रे नारद मुनि भक्तिपूर्वक नमस्कार करके खडे.हो रहे।

'भवसागर जेहि कीन्ह जहँ'—कवि की चतुराई देखिये कि जब उन्होने ससार को समुद्र के समान कहा, तो उसमे के कुछ जीवो को समुद्र से निकले हुए चौदह रत्नो के तुल्य ही बताया। यथा— उत्तम रत्न सत हैं जिनकी तुलना अमृत, चन्द्रमा और कामधेनु से की है, सो यो कि सतजन अमृत के समान गुणकारी है क्योकि वे रामयश सुनाकर लोगो को मानो अमर कर देते है। ऐसे ही चन्द्रमा के समान उनके त्रिताप दूर करते हैं और कामधेनु के समान इच्छित फल देने वाले है। असतो की उपमा विष और मदिरा से दी है कारण वे ज्ञान-वैराग्य के विष-तुल्य घातक और मदिरा की नाईं मादक है।

१. इन १४ दोहो मे श्री गोसाइंजी ने १४ भुवन के रहने वाले जीवधारियो की वदना की है।

२. मज्जन पान पापहर एका—

गजल—देखा करूँ दृगन सो, गगे, बहार तेरी।
छाई त्रिलोक मे है, प्रतिभा अपार तेरी॥
उज्ज्वल सरूप तेरा, पय-सा अनूप सोहै।
छीने सुधा की उपमा, पावन ये धार तेरी॥ →

अर्थ—फिर मैं शारदाजी और गंगाजी की वंदना करता हूँ। इन दोनों के चरित्र पवित्र और मनोहर हैं। एक (गंगाजी) में स्नान करने व उनका जल पीने से पापों का नाश होता है और दूसरी (शारदाजी) के कहने-सुनने से अज्ञान दूर हो जाता है (अर्थात् शारदाजी का कथन और श्रवण करते ही अज्ञान मिट जाता है)।

गुरु पितु मातु महेस भवानी। प्रणवौ दीनबंधु दिनदानी ॥
सेवक स्वामि सखा सिय पी के[१]। हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के ॥

शब्दार्थ—दिनदानी = प्रतिदिन पोषण करने वाले। निरुपधि (निरु नहीं + उपाधि = छल) = छल-रहित अर्थात् शुद्ध।

अर्थ—गुरु और पिता के तुल्य शिवजी तथा माता के समान पार्वतीजी की मैं वंदना करता हूँ, जो दीनों पर दया करने वाले तथा प्रतिदिन पोषण करने वाले हैं। (क्योंकि शिवजी) श्री रामचन्द्रजी के सेवक, स्वामी और सखा समझे जाते हैं तभी तो वे सब प्रकार से तुलसीदासजी के शुद्ध हित करने वाले समझे गये।

पापी सुरापी तुझमे, यदि भूल से नहावैं।
तो अन्त मुक्ति पावैं, महिमा प्रचार तेरी ॥
वरनें ये गुन तिहारे, वाणी निगम-अगम की।
थाकी हिये मे शारद, कीरति निहार तेरी ॥
दीजै प्रभात दर्शन, 'ब्रजचन्द' को निरन्तर।
पायौ शरण है अब तो, जननी, उदार तेरी ॥

२. कहत सुनत इक हर अबिबेका—राग विनोद से

राग प्रभाती—कीजै रसना निवास आय मातु बानी।
बन्दत निशि द्यौस सीस नाय जोरि पानी ॥
हेम सी अनूप अंग शोभा सरसानी।
राजै सुठि सीस सेत सारी छवि खानी ॥
कंठ मंजु माला अरविन्द की सोहानी।
बीना इक एक बानि पुस्तक सुखदानी ॥
तेरे गुण गावैं शुचि नारदादि ज्ञानी।
महिमा जग वेश कहै निगम अगम बानी ॥
देहु बुद्धि बिशो मोहि शारदा भवानी।
याचत 'ब्रजचन्द' मिलै तोहि ब्रह्मरानी ॥

१. सेवक स्वामि सखा सिय पी के—इन तीनों का प्रमाण नीचे लिखे अनुसार है—
सेवक—(बालकाण्ड से) 'तुम सब भाँति परम हितकारी। अज्ञा सिर पर नाथ तुम्हारी।'
स्वामी—(अयोध्याकाण्ड से) 'तब मज्जन करि रघुकुल नाथा। पूजि पार्थिव नायउ माथा ॥'
सखा—(लंकाकाण्ड से), शंकर प्रिय मम द्रोही, शिव द्रोही मम दास।
सो नर करहिं कल्प भर, घोर नरक महुँ बास ॥'
और भी सेतुबन्ध के समय श्री रामचन्द्रजी द्वारा स्थापित किये हुए शिवजी के 'रामेश्वर' इस नाम के समास से भी तीनों बातें स्पष्ट होती हैं—
सेवक का लक्ष्य—राम: ईश्वरो यस्य, अर्थात् राम है ईश्वर जिनके।
स्वामी का लक्ष्य—रामस्य ईश्वरः, अर्थात् राम के स्वामी।
सखा—रामश्चासौ ईश्वरः, अर्थात् जो राम हैं सोई ईश्वर शिवजी हैं।

कलिबिलोकिजगहितहरगिरिजा । साबर मंत्र जाल जिन सिरिजा[1] ॥
अनमिल आखर अरथ न जापू । प्रकट प्रभाब महेस प्रतापू ॥

शब्दार्थ—साबरमत्र = 'सिद्धशाबर' नामक ग्रंथ मे लिखे हुए मत्र । सिरिजा (सृजा) = रचा । आखर = शुद्धरूप अक्षर ।

अर्थ - कलियुग को देख जिन महादेव-पार्वतीजी ने ससार की भलाई के लिए बहुत-से शाबर-मत्र रचे है । जिनमे न तो अक्षरो का ठीक-ठीक मेल ही है, न अर्थ है, और न जपने की कोई विधि है। परन्तु महादेवजी के प्रताप से उन मत्रो का प्रभाव प्रकट है (अर्थात् उनसे सिद्धि होती है) ।

सो महेस मोहि पर अनुकूला । करहि कथा मुद मंगल मूला ॥
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ । बरनऊँ रामचरित चितचाऊ ॥

शब्दार्थ—शिवा = पार्वती । पसाऊ (प्रसाद) = प्रसन्नता । चाऊ (चाव) = उमग ।

अर्थ – ऐसे महादेवजी मुझ पर प्रसन्न होकर मेरी कथा को आनन्द-मगल की देने वाली कर देवे (अर्थात् जिन शिवजी के शाबर मत्रो को सिद्धि दे डाली, उन्हे मेरी कथा को आनन्द-मगल देने वाली कर देना कुछ भी कठिन नही है।) अब भवानी-शकर का स्मरण कर और उनकी प्रसन्नता प्राप्त कर मै बडी उमग से राम-कथा लिखता हूँ।

भनिति मोरि शिव कृपा बिभाती । ससिसमाज मिलि मनहुँ सुराती ॥
जो यह कथा सनेह समेता । कहिहहि सुनहहि समुझि सचेता ॥
होइहहिं रामचरन अनुरागी । कलिमल रहित सुमगल भागी ॥

शब्दार्थ—बिभाती = सुशोभित होगी ।

अर्थ—शिवजी की कृपा से मेरी कविता इस प्रकार सुशोभित होगी जिस प्रकार नक्षत्र और चन्द्रमा सहित रात्रि सुहावनी लगती है। (भाव यह कि रात्रि अनेक दोषो से युक्त होने पर भी चन्द्रमा सहित तारागणो से सुशोभित होती है, इसी प्रकार भाषा की मेरी भद्दी कविता भी शिवजी की कृपा से सबको प्रिय लगेगी) । जो मनुष्य इस कथा को प्रेम सहित ध्यान-पूर्वक कहेगे, सुनेगे और समझेगे, वे श्री रामचन्द्रजी के चरणो मे प्रेम लगावेगे और कलियुग के पापो से छुटकारा पाकर सम्पूर्ण कल्याणो को पावेगे ।

दोहा—सपनेहुँ साँचेहुँ मोहि पर, जो हर गौरि पसाउ[2] ।
तौ फुर होइ जो कहेऊँ सब, भाषा भनित प्रभाउ ॥१५॥

---

१. साबर मत्र जाल जिन सिरिजा—शिवजी को शबर या किरात इसलिये कहते है कि उन्होने शबर रूप धारण कर अर्जुन से सग्राम किया था जिसका विस्तारपूर्वक हाल कवि भारवि कृत, किरातार्जुनीय ग्रन्थ मे लिखा है। शबर के रचित मत्र 'शाबर' कहलाये और यद्यपि उनके अक्षरो का ठीक-ठीक मेल तथा अर्थ समझ मे नही आता तो भी वे सिद्धि के दाता समझे जाते है । इसी हेतु जिस ग्रथ मे ये मत्र लिखे है उसका नाम सिद्धि शाबर ग्रन्थ है ।

२. सपनेहुँ साँचेहुँ मोहि पर, जो हर गौरि पसाउ—उत्तम और कठिन कार्यों की सूचना महात्माओ को बहुधा स्वप्न द्वारा हो जाया करती है। क्योकि ईश्वर के सकेत बहुधा स्वप्न द्वारा अथवा महात्माओ की बुद्धि स्फुरण द्वारा हुआ करते है । यथा —

श्लोक—आदिष्ट वान्यथा स्वप्ने, रामरक्षामिमा हर ।
तथा लिखितवान्प्रातः, प्रबुद्धो बुद्धकौशिकः ॥

शब्दार्थ—पसाउ (शुद्ध शब्द—प्रसाद) = प्रसन्नता। कहा है अमर कोश मे 'प्रसादस्तु प्रसन्नता'।

अर्थ—स्वप्न मे भी अथवा यथार्थ मे जो मुझ पर महादेव-पार्वतीजी की प्रसन्नता है तो मैंने जो कुछ भाषा मे कथन करने का प्रभाव कहा है, सो सब सत्य ही होवे।

(७. अयोध्या नगरी, राजा दशरथ और उनके परिकर की वन्दना)

बन्दौ अवधपुरी अति पावनि। सरयू सरि कलि कलुष नसावनि[१]॥
प्रनवौ पुर नर नारि बहोरी। ममता जिन पर प्रभुहि न थोरी॥

अर्थ—मैं अति पवित्र अयोध्या नगरी की वन्दना करता हूँ जहाँ कलियुग के पाप नाश करने वाली सरयू नदी बहती है। फिर मैं नगर के स्त्री-पुरुषो को नमस्कार करता हूँ जिन पर श्री रामचन्द्रजी की कृपा बहुत थी।

अर्थात्—जिस प्रकार इस रामरक्षा को श्री महादेवजी ने वालमीकिजी से स्वप्न मे कह सुनाई थी, उसी प्रकार उन्होंने प्रातःकाल उठकर लिख डाली।

१. बन्दौं अवधपुरी अति पावनि। सरयू सरि कलि कलुष नसावनि—अति पावनि कहने का यह अभिप्राय है कि और पवित्र स्थानों से यह पुरी श्रेष्ठ समझी गई है। कहा गया है—

यायोध्या सर्ववैकुंठानां मूलाधार: मूलप्रकृतेः परात्परा
तत्सद्ब्रह्म मया विरजोत्तरा दिव्यरत्नकोशाढ्या तस्यां नित्यमेव
सीताराम बिहारस्थलमस्तीति।

अर्थात्—जो अयोध्या सर्व वैकुण्ठों का मूल आधार है जो मूल प्रकृति से बहुत परे और तत्पद वाच्य सत्स्वरूप जो ब्रह्म तन्मय है और जो रजोगुण रहित पदार्थों मे श्रेष्ठ, उत्तम रत्न भंडारों से परिपूर्ण है उसीमे श्री सीता-रामचन्द्रजी सदैव बिहार करते हैं।

और भी—

रामचन्द्र भूषण अयोध्यापुरी की पवित्रता यों वर्णन की है—

सवैया—सूकर स्यार कुरंग मतंग मिलैं मुनि देवन की अवली मे।
जोगी जती तपसी लछिराम बरैं परी किन्नरी भाँति भली में॥
श्री रघुनाथ पुरी की प्रभा सरजू के तरंग तें संग गली मे।
सिद्ध सुरापी असन्त औ सन्त विमान चढ़े लसैं व्योम थली मे॥

इसके सिवाय उत्तरकाण्ड मे श्री रामचन्द्रजी ने अपने श्री मुँख से अयोध्यापुरी की अ महिमा कही है उसे भी देखिये। यथा—

'इहा भानुकूल कमल दिवाकर' से आरम्भ कर 'धन्य अवध जो राम बखानी' तक।

'सरयू सरि कलिकलुष नसावनि'—ब्रह्माजी ने कैलाश पर्वत पर मानसरोवर नामक सर बनाया। उस सर से यह नदी निकली है, इसी हेतु सरयू कहलाई। इसका माहात्म्य राम रसायन रामायण में यों लिखा है—

दोहा—पुनि बन्दौं सरयू सरित, राम रूप अभिराम।
सकल सरित की सीसमनि, बिसद बिदित गुनग्राम॥

और भी—

रामचन्द्र भूषण से—

सवैया—जाहि बिलोकि डरैं यमराजहु, दूत बिचारे बिचार अधीर में।
नाम न जानत हैं रघुवीर को, यौं लछिराम गुमान गँभीर में॥
साधन थोरे कहाँ लौं कहौं, सतवारे न डारत हैं पग नीर में।
तीर मे आवत ही सरज के फलैं फल चार्‌यो सुरापिन भीर में॥

सिय निन्दक अघ ओघ नसाये[१] । लोक बिसोक बनाइ बसाये ।।

शब्दार्थ—अघ ओघ=पाप समूह ।

अर्थ—(उदाहरण यह है कि) उन्होने सीताजी की निन्दा करने वाले (धोबी) के पाप-समूहो को नाश किया और उसे शोक-रहित कर वैकुठवास दिया । (देखो इसी काण्ड के २४ वे दोहे की टिप्पणी)'

दूसरा अर्थ —सीताजी की निन्दा करनेवाले लोगो के पाप-समूह नाश कर उन्हे विशोक अर्थात् शोक-रहित करके बसाया । (भाव यह है कि जो अयोध्यावासी लोग सीताजी का अग्नि द्वारा शुद्ध होना न देख सके थे, क्योकि यह कार्य बहुत दूर समुद्र के पार लका मे हुआ था, उनके चित्त की शुद्धि कर उनको सन्तुष्ट किया) ।

बन्दौ कौसल्या दिसि प्राची । कीरति जासु सकल जग मॉची ।।
प्रकटेउ जहँ रघुपति ससि चारू[२] । बिस्व सुखद खल कमल तुषारू ।।

शब्दार्थ—प्राची=पूर्व दिशा । मॉंची=फैली है ।

अर्थ—मैं कौशल्याजी को पूर्व दिशा के समान मान प्रणाम करता हूँ, क्योकि उनकी कीर्त्ति सब दिशाओ मे फैली हुई है । जहाँ से उत्तम चन्द्रमारूपी श्री रामचन्द्रजी प्रकट हुए, जो ससार को सुख देनेवाले और कमलस्वरूपी दुष्टो को नाश करने के हेतु शीत के समान है (भाव यह है कि चन्द्र पूर्व दिशा से उदय होकर सब लोगो को सुख देता है परन्तु अपनी विशेष शीतलता से कमलो को सुखा डालता है । इसी प्रकार कौशल्या से प्रकट हुए श्री रामचन्द्रजी सज्जनो के सुखदाता और दुष्टो के प्राणहर्त्ता हैं) ।

---

१. सिय निन्दक अघ ओघ नसाये—कथा है कि जिस समय श्री रामचन्द्रजी राज-गद्दी पर बैठे, उसके थोडे ही दिन पीछे वशिष्ठजी शृ गी ऋषि के आश्रम मे यज्ञ कराने को चले गये, परन्तु उन्होने श्री रामचन्द्रजी को यह सन्देशा भिजवाया कि आपका राज्य नया है "आपको चाहिये कि अपनी प्रजा को प्रसन्न करते रहे, उससे जो यश की प्राप्ति है वही अपना बडा धन है" इसके अनुसार जब श्री रामचन्द्रजी ने अपने विश्वासी दूत के द्वारा समाचार पाया कि कोई-कोई श्री सीताजी के अग्नि शुद्धि पर विश्वास नही करते क्योकि यह कार्य बहुत ही दूर समुद्र के पार लका मे हुआ था । इस हेतु उन्हे इसके देखने का अवसर न मिला था । श्री रामचन्द्रजी ने गर्भवती होने पर भी सीताजी का परित्याग वाल्मीकि ऋषि के आश्रम के निकट करा दिया । कुछ काल के अनन्तर वाल्मीकि ऋषि ने वन देवता, पृथ्वी देवी, अग्नि देव आदि के साथ सीताजी को उनके दो पुत्रो समेत भरी सभा मे श्री रामचन्द्रजी को सौप दिया और कहा—हम सब लोगो का कथन है कि श्री जानकीजी सर्वथा निर्दोष हैं । आपने इनका परित्याग कर प्रजा के लोगो अपना प्रेम दर्शाया सो उत्तम किया । अब अयोध्यावासी भी अपनी निर्मूल शका को मिटावें । इस प्रकार अयोध्यानिवासियों को शोक-रहित कर अन्त मे श्री रामचन्द्रजी ने उन्हे वैकुण्ठ वास दिया । (देखे अध्यात्म तथा वाल्मीकीय रामायण उत्तरकाण्ड)

२. बन्दौं कौसल्या दिसि प्राची···प्रकटेउ जहँ रघुपति शशि चारू—

(कवित्त)

अगम सनेह सिंधु उमँगो विलोकि जाहि, सज्जन चकोरन्ह के हीय सुख ह्वै गयौ।
रानी अनुमोदिनी कुमोदिनी विकासी मजु, भूप उर भूमि मे प्रकाश अति ही छयौ ।।
'रसिक बिहारी' पाप ताप तम टारी लोक-शोक हर शीत कर शीत करते दयौ ।
पूरन कला को शुद्धप्राचीदिशि कौशला ते स्वच्छ रामचन्द्र चारु चन्द्रमा उदय भयौ ।।

दसरथ राव सहित सबरानी । सुकृत सुमंगल मूरति मानी ।।
करौ प्रनाम करम मन बानी । करहु कृपा सुत सेवक जानी ।।
जिन्हहि बिरचि बड़ भयउ बिधाता । महिमा अवधि राम पितु माता ।।

अर्थ—रानियो समेत महाराजा दशरथजी को अच्छे कर्म और कल्याण स्वरूप मान मनसा, वाचा, कर्मणा मै प्रणाम करता हूँ, आप सब मुझे अपने पुत्रो का सेवक समझ कृपा कीजिये। जिनको उत्पन्न करके ब्रह्मा ने भी बडाई पाई, कारण सब महिमा की सीमा जो श्री रामचन्द्रजी है, उनके ये माता-पिता है।

'महिमा अवधि रामपितुमाता' इसका दूसरा अर्थ यह हो सकता है कि श्री रामचन्द्रजी के पिता और माता होने के कारण ये बडप्पन की हद हो चुके (अर्थात् इनसे बढकर महिमा किसीकी नही हो सकती क्योकि माता-पिता की महिमा तो बढकर होती ही है, फिर ये तो ईश्वरावतार श्री रामचन्द्रजी के माता-पिता थे)।

सोरठा—बन्दौ अवध भुआल, सत्य प्रेम जेहि रामपद ।
बिछुरत दीनदयाल, प्रियतनु तृनइव परिहरेउ[1] ।। १६ ।।

अर्थ—अवध के महाराजा दशरथजी को प्रणाम करता हूँ जिनका प्रेम श्री रामचन्द्र जी के चरणो मे अटल था (यहाँ तक कि) उन कृपासागर से बिछुडते ही उन्होंने अपने प्यारे शरीर को तिनका के तुल्य त्याग दिया (सत्यप्रेम का उदाहरण यही है। कविजी इस पर से यह शिक्षा निकालते है कि यदि रामजी के चरणो मे कोई प्रेम करे तो दशरथजी की नाईं करे)।

प्रणवौ परिजन[2] सहित बिदेहू । जाहि रामपद गूढ़ सनेहू ।।
जोग भोग महँ राखेउ गोई । राम बिलोकत प्रकटेउ सोई ।।

शब्दार्थ—बिदेहू (बि = नही + देह = शरीर) = जिसको अपने शरीर का कुछ भान नही था, केवल परमेश्वर का ध्यान था, अर्थात् राजा जनक। गोई = छिपाकर।

अर्थ—मैं राजा जनकजी की परिवार-समेत वन्दना करता हूँ जिन सबका गुप्त प्रेम श्री रामचन्द्रजी के चरणो मे था। उस प्रेम को उन्होने योग और भोग मे छिपाकर रखा था, परन्तु श्री रामचन्द्रजी को देखते ही वह प्रकट हो गया (अर्थात् विदेहजी तो रामप्रेम को अपने

१ बिछुरत दीनदयाल, प्रियतनु तृन इव परिहरेउ—

दोहा—सत्य रामपद प्रेम कर, परिहरि भोग बिलास।
राम बिरह सतप्त नृप, तन तजि गये अकास ।।

और भी—

श्री रामचन्द्रजी के वचन लक्ष्मण के प्रति—

दोहा—सत्य सनेही होत जो, प्रिय बिछुरे निज प्रान।
तृन सम त्यागत तात गति, लखौ कहौं कह आन ।।

पुत्र स्नेह, परन्तु विशेषकर प्रेमी के वियोग के कारण, दशरथजी ने प्राण त्याग कर प्रेमी भक्तो के लिए कैसा उत्तम उदाहरण दिखाया, जिसकी कुछ छटा कवि लाछरामजी यो दर्शाते है—

सवैया—मडल राव मुनीशन्ह के युवराजी कथा मुद मैं अकढे है।
त्यो लछिराम तिहूँपुर मे द्विज देवन्ह के मन मान बढे है ।।
तेई सबै पुर बीथिन मे अब केकइ के वरदान पढे है।
कानन राम पयान सुने दशरत्थ के प्रान विमान चढे है ।।

२. 'परिजन' का पाठान्तर 'पुरजन' भी है।

योग के अभ्यास के कारण प्रकट नही होने देते थे परन्तु श्री रामचन्द्रजी के दर्शन होते ही वह छिप न सका। प्रमाण—

'इनहिं बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा' और परिजन का प्रेम तो उनके भोग-विलास के कारण समझ न पडता था, सो वह भी राम दर्शन से प्रकट हो गया। जैसे—'पहिचान को केहि जान सबहि, अपान सुधि भोरी भई)।

प्रणवौ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम व्रत जाय न वरना[१] ।।
रामचरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजै न पासू[२] ।।

अर्थ—(श्री रामचन्द्रजी के तीन भाइयो मे से) पहले भरतजी के चरणो की मैं वदना करता हू जिनके नियम और व्रत का वर्णन नही किया जा सकता। जिनका मन श्री रामचन्द्रजी के कमलस्वरूपी चरणो मे भौरे की नाईं ऐसा लुभा रहा था कि साथ नही छोडता था।

बन्दौ लछिमन पद जलजाता। शीतल सुभग भक्त सुखदाता ।।
रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका[३] ।।

शब्दार्थ—जलजाता (जल=पानी+जात=उत्पन्न)=कमल। दड=बास या लडकी, जिस पर ध्वजा लगाई जाती है।

अर्थ—लक्ष्मणजी के कमलरूपी चरणो को मैं प्रणाम करता हूँ जो शान्ति देने वाले, सुन्दर और भक्तो को सुखदाई है। श्री रामचन्द्रजी की कीर्त्तिरूपी पवित्र झडे के लिए जिनका यश दड के समान हो गया (अर्थात् श्री रामचन्द्रजी की कीर्ति को बढ़ाने वाले लक्ष्मणजी हुए)।

---

१. जासु नेम व्रत जाय न बरना—भरतजी के नियम और व्रत का विस्तार सहित वर्णन अयोध्या काण्ड मे मिलेगा।

२. रामचरन पकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजै न पासू—इसकी छटा पं० रामनाथ तिवारी ओझाजी बादा-निवासी द्वारा प्राप्त कवित्त मे यो है—

कवित्त—श्याम घन तन पर बिज्जु से दशन पर माधुरी हँसन पर खिलत खगी रहै।
खौर वारे भाल पर लोचन विशाल पर उर बनमाल पर जगत जगी रहै ॥
जघ जुग जानु पर मजु मुरवान पर 'श्री पति सुजान' मति प्रेम सो पगी रहै।
नूपुर नगन पर कज से पगन पर आनँद मगन मेरी लगन लगी रहै ॥

'रामचरन पकज मन जासू'—यह बात भरतजी के वचनो से प्रकट होती है जिस समय उन्होने चित्रकूट जाते हुए गगाजी से वरदान माँगा था—

दोहा—धर्म न अर्थ न काम रुचि, पद न चहौ निर्वान।
जनम जनम रति रामपद, यह वरदान न आन ॥

३. दड, समान भयेउ यश जाका—श्री रामचन्द्रजी की कीर्ति तो सभी प्रकार से है परन्तु वह रावण, मेघनाद आदि सम्पूर्ण दुष्ट राक्षसो का वध करने से विशेष बढी। क्योकि अवतार ही मुख्य कर के इसी हेतु हुआ था और इसी की सहायता करने मे लक्ष्मणजी ने विशेष उद्योग किया था तथा १२ वर्ष तक नीद, नारी, भोजन का त्याग कर मेघनाद सरीखे बडे पराक्रमी योद्धा का स्वतः वध साधन कर अगणित राक्षसो को भी मारा था। इसी हेतु कविजी कहते हैं कि श्री रामचन्द्रजी की कीर्ति को ऊँचा कर थामने वाले लक्ष्मणजी हुए।

सेष सहस्त्र सीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय टारन।।
सदा सो सानुकूल रह मो पर। कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर[१]।।

अर्थ—जो हजार मस्तक वाले शेषनागजी पृथ्वी का भार उतारने के लिए ससार मे अवतरे है, ऐसे कृपासागर गुणआगर सुमित्रा-पुत्र मेरे ऊपर सदैव प्रसन्न रहे।

रिपुसूदन पद कमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी।।
महाबीर बिनवौ हनुमाना। रामजासु जस आप बखाना[२]।।

अर्थ—मैं शत्रुघ्न के चरणारविंदो को नमन करता हूँ जो योद्धा, सुन्दर स्वभाव वाले और भरतजी के साथी है। बडे बलवान् हनुमान्‌जी को भी प्रणाम करता हूँ जिनकी कीर्ति स्वत श्री रामचन्द्रजी ने वर्णन की है।

सोरठा—बन्दौ[३] पवनकुमार, खल बन पावक ज्ञानघन।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सर चाप धर।। १७ ।।

शब्दार्थ—आगार=स्थान, घर।

अर्थ—वायुपूत की मै वन्दना करता हूँ जो वन-स्वरूपी दुष्टों को दावानल के समान जलाने वाले है और ज्ञान से परिपूर्ण हैं (तभी तो) उनके हृदयरूपी घर मे श्री रामचन्द्रजी

---

१. कृपासिन्धु सौमित्रि गुनाकर—पहले 'लक्ष्मण' ऐसा नाम लिख कर फिर कृपासिन्धु सौमित्र कहा। इसका यह अभिप्राय है कि सौमित्र अर्थात् सुमित्रा के पुत्र और सुमित्रा अर्थात् उत्तम हित करने वाली ऐसा हुआ। जैसा अयोध्या काण्ड मे लिखा है—'सहज सुहृद बोली मृदु बानी' ऐसी माता का पुत्र भी कृपासिन्धु होना चाहिये।

२. राम जासु जस आप बखाना—

राग पीलू—भरत कपि से उऋण हम नाही।।

सौ योजन मर्याद सिन्धु की कूदि गये क्षण माही।
लका जारि सिया सुधि लाये, गरब नही मन माही।।
शक्तीबान लग्यौ लछिमन के, शोर भयौ दल माही।
द्रोणागिरि पर्वत लै आये, भोर होन नहिं पाई।।
अहिरावण की भुजा उखारी, बैठि रह्यौ मठ माही।
जो पै भरत हनुमत नहिं होते, को लावै जग माही।।
अज्ञा भग कबहुँ नहिं कीन्ही, जहँ पठयौ तहँ जाई।
'तुलसिदास' मारुतसुत महिमा, कहे न नेक सिराई।।

३. बन्दौ पवन कुमार, खल बन पावक ज्ञानघन—राग बिनोद से—

राग सहाना—

बन्दौं अंजनिसुत सुख दायक।
जेहि उर राम बसत नित प्रति ही धारे कर धनु सायक।।
पर्‌यौ आनि के सरण रावरी, जानि आपनो पायक।
करि के कृपा कोर कछु हेरौ, हौ प्रभु तुम सब लायक।।
महावीर तब नाम बखान्यौ निज मुख सो रघुनायक।
मगल करन अहौ नित प्रति ही दुख शत्रुन के घायक।।
होहु दयाल दया करि मेरे तुम ही हौ पितु मायक।
कीन्हों तब ब्रजचन्द आसरो सुमिरत मन बच कायक।।

धनुषबाण धारण किये हुए निवास करते है (अर्थात् शत्रुजित, बडे ज्ञानी हनुमान्‌जी अपने हृदय मे धनुषधारी अवधविहारीजी का ध्यान धरे रहते है)।

दूसरा अर्थ—'बसहिं राम शर चाप धर' इसमे यह अर्थ भी ध्वनित होता है कि श्री रामचन्द्रजी धनुषबाण को और स्थानो मे तो धारण किये ही रहते है परन्तु श्री महावीरजी ऐसे योद्धा और विश्वासपात्र परम भक्त हैं कि इनके हृदय में निवास करते समय श्री रामचन्द्रजी अपने धनुष-बाण को अलग धर देते है। (परमेश्वर का शुद्ध भक्त पर ऐसा ही अटल प्रेम रहता है)।

कपिपति रीछ निसाचर राजा। अंगदादि जे कीस समाजा[१] ॥
बन्दौं सबके चरन सोहाये। अधम सरीर राम जिन पाये ॥

शब्दार्थ— निशाचर (निशा = रात्रि + चर = चलने वाला) = राक्षस (योगरूढि)। कीस = वानर।

अर्थ—सुग्रीव, जामवन्त, विभीषण और अगद आदि वानरो की सेना। इन सबके सुन्दर चरणो की वन्दना करता हूँ कि जिन्होने अधम शरीर ही से श्री रामचन्दजी को पा लिया।

रघुपति चरन उपासक जेते। खग मृग सुर नर असुर समेते[२] ॥
बन्दौ पदसरोज सब केरे। जे बिन काम राम के चेरे ॥

अर्थ—श्री रघुनाथजी के चरणो की सेवा करने वाले जितने पक्षी, पशु, देवता, मनुष्य और राक्षस समेत है, इन सबके कमलस्वरूपी चरणो की वन्दना करता हूँ जो बिना कामना के श्री रामचन्द्रजी के सेवक हैं।

शुक[३] सनकादि[४] भक्तमुनि नारद। जे मुनिबर बिज्ञानबिसारद ॥
प्रणबौ सबहिं धरनि धरि सीसा। करहु कृपा जन जानि मुनीसा ॥

---

१. अगदादि जे कीस समाजा—

कवित्त—सुधर सुकण्ठ सो सहायक सुकण्ठ भूप,
अङ्गद सो अङ्गद अमोल अनुमानो मैं।
सेवक सबल हनुमान सों अभङ्ग जङ्ग,
हनूमान सेबक सबल सनमानो मैं॥
'लछिराम' कनक भवन सो कनक भौन,
राम गङ्ग सम राम गङ्ग मौज मानो मैं।
त्रिभुवन मौलि राव रामचन्द्र मैथिली लो,
राव रामचन्द्र मैथिली को परमानो मैं॥

२. खग मृग सुर नर असुर समेते—खगो मे जटायु आदि। मृगो मे वानर, रीछ आदि। सुरो मे सब देवता। असुरो मे विभीषण, शकसारन आदि। नरो मे बहुतेरे ऋषि-मुनि।

३. शुक —ये कृष्णद्वैपायन व्यास के पुत्र थे। शिवजी की कृपा से ये जन्म ही से ज्ञानवान् उत्पन्न हुए थे। परन्तु इन्हे अपने ज्ञान का थोड़ा-सा अभिमान था, इस हेतु व्यासजी ने इन्हे जनक राजा के पास भेजा था। वहाँ पर इनका ज्ञानाभिमान मिट गया था। व्यासजी ने अपनी बनाई हुई भागवत, शुकदेवजी को स्वत पढाई थी, जो कथा शुकदेवजी ने राजा परीक्षित को भली-भाँति सुनाई थी। इनकी तपस्या भग करने और इन्हे विषय की ओर झुकाने के लिए रभा के सब प्रयत्न निष्फल हुए थे। (देखें—रम्भा-शुक सम्वाद)

४. सनकादि अर्थात् सनक, सनदन, सनातन और सनत्कुमार ये चार ऋषि सम्पूर्ण महर्षियो→

अर्थ—शुकदेवजी, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, भक्त नारद मुनि और जो मुनियो मे श्रेष्ठ बडे ज्ञानी पडित है, उन सबको पृथ्वी पर शिर नवाकर नमन करता हूँ, हे मुनिश्वरो! मुझे अपना सेवक समझ कृपा कीजिये।

जनकसुता जगजननि जानकी[१]। अतिसय प्रिय करुनानिधान की ॥
ताके जुगपद कमल मनावउँ। जासु कृपा निर्मलमति पावउँ[२] ॥

अर्थ—जनक की पुत्री, ससार की माता और दयासागर (श्री रामचन्द्रजी) की बहुत ही प्राणप्यारी श्री जानकीजी है। मैं उनके कमलस्वरूपी दोनो चरणो की मानता करता हूँ, जिनकी कृपा से मुझे शुद्ध बुद्धि प्राप्त हो।

पुनि मन बचन करम रघुनायक। चरन कमल बन्दौं सब लायक ॥
राजिवनयन धरे धनुसायक[३]। भगत बिपतिभंजन सुखदायक ॥

अर्थ—फिर मनसा, वाचा, कर्मणा मैं सब प्रकार से सुयोग्य श्री रघुनाथजी के चरणारविंदो को प्रणाम करता हूँ। वे कमलनयन, धनुषबाणधारी, भक्तो की विपत्ति नाश करने वाले और सुख देने वाले है।

के पहले ब्रह्माजी के मानसपुत्र हुए। ये सदैव बालस्वरूप मे रहकर परमात्मा के ज्ञानी भक्तो मे है। परमेश्वर के द्वारपाल जय-विजय को इन्ही ने श्राप देकर राक्षस बना दिया था।

१ जनकसुता जगजननि जानकी आदि—इसमे यह शका हो सकती है कि जनकसुता और जानकी इन दोनो शब्दो से एक ही अर्थ सूचित होता है। अतएव पुनरुक्ति दोष दीख पडता है। उसका समाधान यह है कि एक तो जनकजी की दो पुत्री थी—एक जानकीजी और दूसरी उर्मिला (जिसका विवाह लक्ष्मणजी से हुआ था)। इस हेतु 'जानकी' इस शब्द के कहने से दूसरी जनकसुता का निषेध हुआ। दूसरे गोस्वामीजी ने बड़ी चतुराई के साथ ऐसे शब्दो का प्रयोग किया है जिनसे स्त्री की जो प्रसिद्धता तीन प्रकार से होती है उन तीनो की विशेषता सूचित करते हुए जानकीजी की विशेष प्रतिष्ठा दर्शाई है। सो यो –(१) पिता की प्रसिद्धता—जनकसुता से स्पष्ट हुई, (२) पुत्ररूपी सभी जगत कहने से बडे-बडे प्रतिष्ठित महात्माओ का पुत्र होना सूचित किया, और (३) श्री रामचन्द्रजी की प्रिया कहकर परमात्मा पति की प्रतिष्ठा से बढ़ कर और क्या कहा जा सकता है कि उनका सौभाग्य अटल है और किसी बात की कमी नही।

२. ताके युग पद कमल मनावउँ। जासु कृपा निर्मलमति पावउँ—
श्री शिवजी-कृत जानकीस्तवराज से—

श्लोक—वन्दे विदेहतनया पदपुडरीकं, कैशोरसौरभसमाहृतयोगिचित्तम्।
हन्तु त्रितापमनिश मुनिहंससेव्य, सन्मानसालिपरिपीतपरागपुंजम् ॥

अर्थ (सवैया मे)—

जे निज कोमल ताइ सुगन्ध से योगिन के चित चोर लिये हैं।
तीनहुँ ताप विनाशन को मुनिहस निरन्तर सेय रहे हैं ॥
सन्त सुमानस भृंग पराग पिये जिनके सब तौर छके हैं।
ते मिथिलेशलली पदकज दोऊ प्रणवौं अनुराग भरे हैं ॥

३. राजिवनयन धरे धनुसायक—

श्लोक—दूर्वादलद्युतितनु तरुणाब्जनेत्रहैमाम्बर वरविभूषणभूषितागम्।
कन्दर्पकोटिकमनीय किशोर मूर्त्ति, पूर्ति मनोरथभवा भज जानकीशम् ॥

दोहा—गिरा अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न[१] ।
बंदौ सीतारामपद, जिनहि परम प्रिय खिन्न ।। १८ ।।

शब्दार्थ बीचि = लहर । खिन्न = दुखी ।

अर्थ—सीता और राम को वाणी और अर्थ तथा जल और लहर ही के समान समझना चाहिए जो कहने मे तो भिन्न हैं परन्तु यथार्थ मे भिन्न है नही (अर्थात् जिस प्रकार वाणी और अर्थ कहने मे दो अलग-अलग शब्द है, परन्तु यथार्थ मे जो वाणी है सो अर्थ है, जो अर्थ है वही वाणी है। इनमे कुछ भी भेद नही। दोनो एक ही है। इसी प्रकार जल और उसकी लहर भी नाम के भिन्न, पर हैं एक ही। वैसे ही सीता और राम कहने को दो व्यक्ति, परन्तु दोनो एक ही है।) ऐसे सीतारामजी के चरणो की मै वन्दना करता हूँ जिन्हे दीन-दुखिया बहुत ही प्यारे है (सीता-रामजी को दीनदयाल, दीननाथ आदि जो विशेषण दिये गये है उनका यही अभिप्राय है कि जब मनुष्य सब प्रकार से अपने सब सहायको से निराश हो ईश्वर का स्मरण करता है तब तुरन्त ही वे उसकी सहायता करते है। यही अभिप्राय 'परम प्रिय खिन्न' का है) ।

सूचना--धन्य है गोसाईं तुलसीदासजी की शब्दयोजनाशक्ति, जिन्होने सीता-राम ऐसे शब्द के लिए 'गिरा अर्थ' की उपमा (स्त्रीलिग और पुल्लिग शब्दो ही से) दर्शाई तथा राम और सीता की उपमा 'जल-बीचि' (पुल्लिग और स्त्रीलिंग शब्दो) मे दरशा करके स्पष्ट कर दिया कि सीता-राम अथवा राम-सीता शब्द-रचना में कुछ भी अन्तर नही है और न उनमे पूर्वापर का विचार है। वे एक ही है, जैसा टिप्पणी के श्लोक मे कहा है।

(८. राम नाम की महिमा)

बन्दौ रामनाम रघुबर के[२] । हेतु कृसानु भानु हिमकर के ।।

अर्थात्—दूब के दल के समान शरीर वाले, नवीन कमल के समान नेत्र वाले, पीताम्बर तथा उत्तम आभूषणो से सुशोभित अग वाले करोडो कामदेव के समान छवि वाले किशोर अवस्था वाले भक्तो के मनोरथ पूर्तिरूप सीतापति का भजन करो।

१. गिरा अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न—इसी अभिप्राय को पुष्टि करने वाला यह वचन है 'रामस्सीता जानकी रामचन्द्रो, नित्याखडो ये च पश्यन्ति धीरा' भाव यह कि राम और सीता किंवा सीता और राम ये सदैव अभिन्न है जो इस प्रकार देखने वाले हैं वे ही पडित हैं (अर्थात् राम और सीता किंवा सीता और राम ये कहने मात्र को दो भिन्न-भिन्न शब्द है परन्तु इन दोनो का तत्व एक ही हैं)। जैसा कि सुन्दर काण्ड मे गोसाईंजी ने कहा है—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा ।।
सो मन रहत सदा तोहि पाही। जानु प्रीति रस इतनेहि माही ।।

और भी—

राम रत्नाकर रामायण मे लिखा है—

दोहा—जल तरग वाणी अरथ, भानु प्रभा महि गन्ध।
कहत विलग गन एक जिमि, राम सिया सम्बन्ध ।।

२. बन्दौ रामनाम रघुबर के—'रघुवर रामनाम' इस कथन से यह अभिप्राय है कि 'राम' ऐसा नाम तीन अवतार विशेष का है यथा परशुराम, रघुवर राम और बलराम। इन तीनो मे से केवल राम-नाम को अलग दर्शाने के लिये 'रघुवर राम' ऐसा लिखा है अर्थात् रघुकुल श्रेष्ठ श्री रामजी। इसमे कवि की चतुराई इसी प्रकार झलकती है जिस प्रकार 'जनकसुता जग जननि जानकी' इसके कथन में झलकती है (देखे—इस काण्ड की टिप्पणी।

शब्दार्थ—राम (रम्=खेलना)=जिसमे सम्पूर्ण प्राणी क्रीडा करते हैं और जो सभी मे रम रहा है।

अर्थ—मैं रघुकुलश्रेष्ठ श्री रामजी की वन्दना करता हूँ जो अग्नि, सूर्य और चन्द्र के कारण है (अर्थात् अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा जिनके बिना सब जगत् और उनके सब प्राणी रह नही सकते उनके, जो प्रसिद्ध उत्पत्ति-स्थान है ऐसे रामनाम की मैं वन्दना करता हूँ)। जैसा कहा है पुरुषसूक्त मे—

श्लोक—चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षो सूर्योऽजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥

अर्थात्—परमात्मा के मन से चन्द्र और नेत्रो से सूर्य उत्पन्न हुए, मुख से इन्द्र और अग्नि की उत्पत्ति हुई और श्वास से वायु की। भाव यह कि अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा के आदि-कारण श्रीराम ही है और उसी राम नाम की महिमा के बारे मे महारामायण मे यो कहा है—

श्लोक—परमेश्वर नामानि सत्यनेकानि पार्वति।
परन्तु रामनामेद सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ॥१॥
नारायणादिनामानि कीर्तितानि बहून्यपि।
आत्मा तेषाच सर्वेषा रामनामप्रकाशक. ॥

अर्थात्—(महादेवजी कहते है) हे पार्वती! परमेश्वर के अनेक नाम है परन्तु यह राम नाम सब नामो से बहुत ही उत्तम है। नारायण आदि नाम भी बहुत कहे गये हैं परन्तु उन सब नामो का प्रकाशक केवल राम नाम ही उनकी आत्मा के तुल्य जानो।

दूसरा अर्थ—मैं रघुकुल-श्रेष्ठ राम नामकी वदना करता हूँ जो कृशानु, भानु और हिमकर ससार के इन प्रसिद्ध पदार्थों के कारण भूत हैं (अर्थात् 'रकार' कृशानु शब्द मे यदि न रहे तो कशानु निरर्थक रह जावे, इसी प्रकार 'अकार' के न रहने से भानु शब्द का भनु तथा मकार के बिना हिमकर का हिकर दोनो निरर्थक हो)। भाव यह कि राम ही इन तीनो के हेतु हुए और ये तीनो ससार के चलाने वाले हैं जैसे (१) कृशानु से अन्नपाक, शीतदमन, रात्रि मे प्रकाश और जठराग्नि से प्राणियो का जीवन, (२) भानु से सब ब्रह्माण्ड की यथास्थान स्थिति, सबमे प्रकाश और जीव-पालन, तम-निवारण, प्राणियो का सरक्षण, जलशोषण और मेह-वर्षण आदि, ऐसे ही (३) हिमकर से रात्रि मे प्रकाश, तापदमन, शीतलता, वनस्पतिजीवन आदि ससार के बडे-बडे आवश्यक और हितकारी कार्य हुआ करते है।

तीसरा अर्थ—मैं रघुकुल-श्रेष्ठ राम के नामकी वन्दना करता हूँ जो कृशानु, भानु और हिमकर के हेतु बीजरूप है (अर्थात् इनके मत्रो मे रकार, अकार और मकार पारमार्थिक विचार से बीजरूप समझ गये है और उनके गुण भी महारामायण के नीचे लिखे हुए श्लोकों से स्पष्ट हैं। यथा—

श्लोक—रकारोऽनलबीज स्यात् ये सर्वे वाडवादय·।
कृत्वा मनोमल सर्वे भस्म कर्म शुभाशुभम् ॥१॥
अकारो भानु बीज स्यात् वेदशास्त्रप्रकाशकः।
नाशयत्येव सो दीप्त्या या विद्याहृदये तमः ॥२॥
मकारश्चन्द्र बीज स्याद्यदपा परिपूरणम्।
त्रैताप हरते नित्य शीतलत्व करोति च ॥३॥
रकारो हेतु वैराग्य परम यच्च कथ्यते।
अकारो ज्ञानहेतुश्च मकारो भक्तिहेतुक. ॥४॥

रकार उस अग्नि का बीज है जिसमे बाडव—जठराग्नि आदि सम्मिलित है, जो

सम्पूर्ण मन के विकार और शुभाशुभ कर्मों को जलाकर भस्म कर देता है ॥१॥ अकार भानु का बीज है जो वेद और शास्त्रो का प्रकाश करने वाला है और जो अपने प्रकाश से हृदय के अविद्या रूपी अधकार का नाश कर देता है ॥२॥ मकार चन्द्र बीज है जो पानी का बढाने वाला और सदैव तीनो तापो को दूर करके शीतलता देता है ॥३॥ फिर भी रकार उस वैराग्य का हेतु है जो सबमे श्रेष्ठ कहा जाता है। अकार ज्ञान का हेतु है और मकार भक्ति का हेतु है ॥४॥

तात्पर्य्य यह है कि गोस्वामीजी श्री रामचन्द्रजी को अग्नि का हेतु मान अपने हृदय के मोह को जलाना चाहते है, सूर्य का हेतु मान अपने हृदय के अधकार को नाश कर ज्ञान चाहते है और चन्द्रमा का हेतु मान हृदय मे शान्ति, शीतलता और भक्ति चाहते है जिससे राम-चरित कहने मे सामर्थ्यवान् हो जावे।

विधि हरि हर मय[१] बेद प्रान से[२] । अगुन अनूपम गुन निधान से ॥

अर्थ—राम नाम ब्रह्मा, विष्णु और महेशमय ही है (अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश सत्तात्मक है। भाव यह है कि रजोगुण स्वरूप ब्रह्मा का सृष्टि के उत्पन्न करने का काम, सतो-गुण- स्वरूप विष्णु का सृष्टि-पालन का काम और तमोगुण-स्वरूप शिवजी का सृष्टि-सहार का काम, इन सब कामो के कर्त्ता राम ही है) और राम ही वेद के प्राण-रूप है (अर्थात् जैसे प्राणो के बिना शरीर की स्थिति हो नही सकती, इसी प्रकार ओकरात्मक राम के बिना वेद की स्थिति नही। भाव यह कि वेद का मुख्य आधार ओम् ही है जो राम का दूसरा रूप ही है)। जो सत-रज-तम तीनो गुणो से परे, ब्रह्मरूप है और ऐसे ही उपमा-रहित तीनो गुणो से युक्त अवतार-रूप भी है (साराश यह है कि वही राम त्रिदेवरूप है, वही वेद-मूल है, वे ही निर्गुण ब्रह्म है, वे ही सगुण अवतार है)।

महामंत्र जोइ जपत महेसू[३] । कासी मुक्ति हेतु उपदेसू[४] ॥

---

१ विधि हरि हर मय—महारामायण से—

श्लोक—अकार प्रणवे सत्त्वमुकारश्च रजोगुण ।
तमो हल्च मकार· स्यात् त्रयोऽहकार-सभवा. ॥
प्रिये भगवतो रूप त्रिविध जायतेऽपि च ।
विष्णुर्विधिरह चैव त्रयो गुणविधारिण ॥

अर्थात्—ओम् मे अकर सत्वगुण है, उकार रजोगुण और हल् मकार तमोगुण है। ये तीनो अहकार के कारण है। हे प्रिये पार्वती ! भगवत का रूप तीन प्रकार का होता है। उनमे से विष्णु, ब्रह्मा और मै (शिव) तीनो रूप तीनो गुणो (अर्थात् क्रमानुसार सत, रज, तम) के धारण करने वाले है।

२ बेद प्रान से—महारामायण मे लिखा है—

श्लोक—रकारो गुरुराकारस्तथा वर्णविपर्य्यय. ।
मकार व्यजन चैव प्रणवश्चाभिधीयते ॥

अर्थात्—रकार और ह्रस्व अकार इन दोनो का लोट पटा करने से 'अर्' हो गया फिर उस अर्द्ध रकार का विसर्ग समझा गया । पुन अकार के पश्चात् विसर्ग उकार मे पलट गया। तब अ+उ=ओ हो गया उसके पश्चात् हलन्त मकार अनुस्वार के रूप मे लिखने से ओम् बन गया (भाव यह कि ओम् राम शब्द का रूपान्तर ही है) और अक्षरो के ये सब विकार व्याकरण के अनुसार होते है।

३. महामत्र जोइ जपत महेसू—'श्रीमन्नामायन' नामी ग्रन्थ मे लिखा है—

(१) श्लोक—जपत सर्ववेदशंच, सर्वमत्राश्च पार्वति ।
तस्मात् कोटिगुणं पुण्य, रामनाम्नैव लभ्यते ॥ →

अर्थ—जिस रामनाम के महामत्र को शिवजी जपते रहते है और जिसका उपदेश काशी पुरी मे सब प्राणियो को मुक्ति देने के निमित्त उनकी मृत्यु के पहले ही दिया जाता है (अर्थात् वह महामत्र यह है 'ओ३म् रामाय नम' जिसे शिवजी और सम्पूर्ण 'रामभक्त जपा करते है और इसी मत्र का उपदेश सब जीव-जतुओ को किया जाता है जिससे उनकी मुक्ति होती है। काशीजी मे जितने जीव मरते है वे सब मुक्त होते है, जो यह प्रभाव प्रसिद्ध है सो इस महामत्र ही के प्रताप से है)।

महिमा जासु जानि गनराऊ[1]। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ ।।

अर्थ—जिसका प्रताप गणेशजी जानते है (जो उसी) रामनाम के प्रभाव से (सब देवताओ की पूजा के समय) पहले पूजे जाते है (अर्थात् देवी-देवता आदि किसी का पूजन क्यो न करना हो, शास्त्र की विधि के अनुसार सबसे पहले "श्री मन्महागणाधिपतये नम" इत्यादि से पूजन का आरम्भ होता है)।

जानि आदिकबि नामप्रतापू। भयउ सुद्ध कर उलटा जापू[2] ।।

अर्थात्—हे पार्वती ! सम्पूर्ण वेदो का पाठ करने और सर्व मत्रो का जाप करने से जो पुण्य होता है, उससे कोटि गुणित पुण्य केवल रामनाम ही से प्राप्त होता है।

(२) श्लोक—सर्वेषा हरिनाम्ना वै, वैभव रामनामत.।
ज्ञात मया विशेषेण, तस्मात् श्रीनाम संजप ।।

अर्थ (चौपाई मे)—विभव प्रताप सकल हरि नामहिं। राम नाम ते सक नहिं यामहिं ।।
मो पहँ मर्म बिदित यह नीके। भजहिं सो धन्य लाल जननी के ।।

४. कासी मुक्ति हेतु उपदेसू—श्री शिवजी-प्रणीत 'राम-स्तोत्र' से—

श्लोक—अह भवन्नाम गुणै कृतार्थो, वसामि काश्यामनिश भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽह, दिशामि मत्र तव राम नाम ।।

अर्थात्—(शिवजी बोले—) हे श्री रामचन्द्रजी ! मैं आप ही के नाम के गुण से कृतार्थ होकर के दिन-रात काशी मे पार्वती के साथ निवास करता हू और वहा पर मरणहार प्राणियो की मुक्ति के निमित्त आप ही के नाम का मत्र सुनाया करता हूँ।

१ महिमा जासु जानि गनराऊ—इसकी कथा यो है कि एक समय ब्रह्मदेव ने सम्पूर्ण देवताओ से प्रश्न किया कि सब देवो मे प्रथम पूज्य कौन है ? देवताओ ने कुछ उत्तर नही दिया, परन्तु वे आपस मे प्रथम पूज्यपद के हेतु झगडने लगे। इस पर ब्रह्मा ने यह युक्ति निकाली कि जो देवता पृथ्वी की परिक्रमा करके मेरे पास पहले आएगा वही इस पद का अधिकारी होगा। सुनते ही सब देवता अपने-अपने वाहन पर सवार हो पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने को चले। गणेशजी का वाहन मूषक जल्दी न चल सका। इस हेतु वे बड़ी चिन्ता में पड़े, परन्तु नारदजी के कहने से उन्होने पृथ्वी पर राम नाम लिखकर उसकी प्रदक्षिणा की और सहज ही मे सबसे पहले ब्रह्मदेव के पास जा पहुँचे। निदान श्री रामचन्द्रजी के नाम का माहात्म्य तथा उनके रोम-रोम पर अनेक ब्रह्माण्डों का विचार कर विधाता ने गणेशजी को प्रथम पूज्यपद दे दिया। (देखे गणेशपुराण मे) श्री गणेशजी स्वतः अपने मुख से यो कहते है—

श्लोक—तदादि सर्वदेवाना, पूज्योस्मि मुनिसत्तम।
रामनामप्रभा दिव्या, राजते मे हृदिस्थले ।।

अर्थात्—हे मुनिश्रेष्ठ ! तब तो मैं सब देवताओ मे प्रथम पूज्यपद को पा गया। वह राम नाम का प्रभाव मेरे हृदय मे अभी तक प्रकाशित हो रहा है।

२. भयउ सुद्ध कर उलटा जापू—'मरा मरा' यदि जल्दी-जल्दी कहा जाए तो वह 'राम →

अर्थ—आदिकवि वाल्मीकिजी भी राम-नाम का माहात्म्य जान गये थे जो उल्टा जाप करते-करते (अर्थात् 'मरा-मरा' रटते-रटते) मुनि हो गये।

सहस नाम सम सुनि शिबबानी। जपि जेईं पिय संग भबानी[१] ।।

अर्थ—'राम' नाम विष्णुसहस्रनाम के समान है' शिवजी के ऐसे कथन को सुन पार्वतीजी राम-नाम जप कर अपने पति के साथ भोजन करने को बैठी।

हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तियभूषन ती को[२] ।।

अन्वय—हरही को हेतु हेरि हरषे। तियभूषण ती को भूषण किय।

अर्थ—महादेवजी पार्वतीजी के हृदय का आशय समझ ऐसे प्रसन्न हुए कि उन्होंने पतिव्रताओ मे शिरोमणि पार्वतीजी को अपने शरीर ही मे धारण कर लिया (अर्थात् जब शिवजी ने देख लिया कि मेरे कहने के अनुसार राम नाम को विष्णु-सहस्रनाम के बराबर मान लिया और उस पर विश्वास कर विष्णु-सहस्रनाम के पाठ के बदले केवल राम-नाम जप लिया और भोजनो को आ बैठी, तब वे ऐसे प्रसन्न हुए कि पार्वती को अपने शरीर ही मे धारण कर 'अर्ध-नारी-नटेश्वर' बन गये। भाव यह है कि जिस प्रकार स्त्री को पुरुष की अर्धांगिनी कहते है उसी प्रकार शिवजी ने ऐसा रूप ही धारण कर लिया कि जिसमे दाहिने अग शिवजी के और बाये अग पार्वतीजी के एक ही मूर्त्ति मे हो गये (देखें, अयोध्या काण्ड की श्री विनायकी टीका की दूसरी टिप्पणी, पृष्ठ १,२)।

राम' ही हो जाता है। उच्चारण करने से स्पष्ट हो जायगा। इसके बारे मे यो कथन है—

क०—जहा बालमीक भये व्याध ते मुनिन्द साधु मरा मरा जपे सिख सुन ऋषि सात की।
सिय कौ निवास लवकुश कौ जनम थल तुलसी छुवत छाँह ताप गरे गात की।।
विटप महीप सुर सरित समीप सो है सीतावंट पेखत पुनीत होत पताकी।
वारि पुर दिगपुर बीच बिलसत भूमि अकित सो जानकी चरण जलजात की।।

१. सहस नाम सम सुनि सिबबानी। जपि जेईं पिय सग भबानी—यही आशय प्रात स्मरणीय श्री वाल्मीकिजी के कथन मे है—

श्लोक—प्रातर्वदामि वचसा रघुनाथनाम, वाग्दोषहारि सकल शमल निहन्ति।
यत्पार्वती सपतिना सह भुक्तकामा, प्रीत्या सहस्र हरिनाम समजजाप।।

अर्थात्—प्रात काल मै अपनी वाणी से श्री रामचन्द्रजी के नाम का उच्चारण करता हूँ जो सम्पूर्ण वाणी के दोषो और पापो का नाश करने वाला है। जिस नाम को पार्वतीजी ने अपने स्वामी शिवजी के साथ भोजन करने की इच्छा से प्रेमपूर्वक विष्णु-सहस्र-नाम के तुल्य समझकर जपा था।

और भी—

स्वत शिवजी के वचन (पद्मपुराण से)—

राम रामेति रामेति, रमे रामे मनोरमे। सहस्र नाम तत्तुल्य राम नाम वरानने।।

अर्थात्—हे पार्वती ! राम राम औरफिर राम ऐसा जपकरते हुए मै मन के रमाने वाले राम मे रमता हूँ। हे सुमुखि ! राम नाम विष्णुसहस्र-नाम के तुल्य है।

२. किय भूषन तियभूषन ती को—इस पर अमरदास कवि-कृत छप्पय देखिये—

एक चरण मे पदम, एक पग झझन बजै।
एक हाथ मे डमरु, एक कर ककन सजै।।
एक ओर है चीर, लसै कटि मे मृगछाला।
एक कान मे बीर, कान इक मुद्रा आला।।
अध सीस अलक अध शिर जटा, गगा बेनी सीस धर।
अमरदास आसन भनै, अरधगी शकर गवर।।

दूसरा अर्थ—महादेवजी पार्वतजी के हृदय का भाव देख बहुत प्रसन्न हुए, इस हेतु उन्होने पार्वती को तिय-भूषण (अर्थात् स्त्रियो मे श्रेष्ठ लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवियो का भी भूषण-रूप) बना दिया। भाव यह कि उत्तम पतिव्रता स्त्रियो मे भी शिरोमणि बना दिया। जैसा सीताजी ने पुष्पवाटिका मे गौरी-पूजन के समय कहा था—

दोहा—पति देवता सुतीय महँ, मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न कहि सकत, सहस सारदा सेष॥

तीसरा अर्थ—महादेवजी पार्वतीजी के हृदय का आशय देख बहुत प्रसन्न हुए, इस हेतु उन्होने पार्वती को अपना भूषण बना (अर्थात् अपने शरीर मे भूषणो के बदले धारण करके) 'तियभूषन' नामधारी बन गये। साराश यह कि 'तियभूषन' नाम केवल शिवजी का ही है जिन्होने पार्वतीजी को अपने वचनो पर दृढ विश्वास वाली देख पतिव्रताओ मे श्रेष्ठ करने के निमित्त अग ही मे धारण कर उसी के अनुसार 'तियभूषन', 'अर्धनारीश्वर' और 'अर्धनारी नटेश्वर' कहलाये।

नामप्रभाब जान सिब नीको। कालकूट[१] फल दीन्ह अमी को॥

अर्थ—राम नाम का प्रभाव शिवजी तो भलीभाति जानते ही हैं कि जिससे कालकूट नामी विष ने अमृत सरीखा फल दिया (अर्थात् कालकूट विष खाने वाला मर जाता है पर राम नाम के प्रभाव से शिवजी उसे इस प्रकार पी गये, जिस प्रकार देवता अमृत को पीकर अमरत्व को प्राप्त हो गये)।

दोहा—बरषा ऋतु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास।
रामनाम बर बरनजुग, साबन भादौ मास[२]॥ १९॥

शब्दार्थ—सालि = धान।

अर्थ—तुलसीदासजी कहते है कि श्री रामचन्द्रजी की भक्ति वर्षा ऋतु के समान है, उत्तम भक्त धान के समान है और 'राम' इस नाम के दो अक्षर (अर्थात् 'रा और 'म' क्रमानु-

---

१. कालकूट फल दीन्ह अमी को—
गरलपान करने की कथा विस्तारपूर्वक किष्किन्धाकाण्ड की श्री विनायकी टीका की उस टिप्पणी मे मिलेगी, जो इस सोरठे पर लिखी गई है—'जरत सकल सुर बृन्द, बिषम गरल जेहि पान किय'—आदि—(विनयपत्रिका से) राग बिलावल—

को याचिये शम्भु तजि आन।
दीन दयाल भक्त आरति हर सब प्रकार समरथ भगवान॥
कालकूट ज्वर जरत सुरासुर निज पन लाग कियो बिष पान।
दारुन दनुज जगत दुख दायक जार्‌यौ त्रिपुर एक ही बान॥
सेवत सुलभ उदार कल्पतरु पारवती पति परम सुजान।
देहु कामरिपु रामचरन रति तुलसीदास कहँ कृपानिधान॥

२. बर्षा ऋतु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास···साबन भादौं मास—रामचन्द्रिका की भूमिका से—

छप्पय—परम प्रीति सिय जासु, सग दामिन सम सोहै।
सीस मुकुट बहु रग अग सुर धनु छबि रोहै॥
कौधनि हँसनि सुबैन बारि जगहित बरसावहिं।
निरखि सतजन मोर जोर जयशोर मचावहिं॥
मन चतुर किसान विचारि करि, नहिं उपाय देख्यौ बियौ।
घनश्याम राम उर आनि कर स्वमति सील सिंचन कियौ॥

सार) सावन और भादो के महीने है (भाव यह कि जिस प्रकार वर्षा ऋतु के दोनो महीनो मे अधिक पानी बरसने से धान विशेष बढकर पुष्ट होती है इसी प्रकार राम नाम के दो अक्षरो की विशेष भक्ति से उत्तम भक्तो की भक्ति-निष्ठा बढती और पुष्ट होती है)। साराश यह कि रामभजन से भक्तो का प्रेम पुष्ट होता है।

आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन बिलोचन जन जिय जोऊ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोकलाहु परलोक निबाहू[1]।

अर्थ—('र' और 'म' ये) दोनो अक्षर उच्चारण मे मधुर और देखने मे मनोहर है, सब अक्षरो के मानो नेत्र है और भक्तजनो के हृदय के भी नेत्र है (अर्थात् सब अक्षरो मे श्रेष्ठ है और भक्तो के हृदय का अधकार दूर करने वाले है)।

दूसरा अर्थ—रकार मधुर और मकार मनोहर तथा दोनो मधुर और मनोहर है जो अक्षर नेत्रो की नाई भक्तजनो के हृदयो को देखते रहते है—भाव यह कि भक्तो का प्रेम देख उनके कष्ट दूर कर उनकी अभिलाषाएँ पूर्ण किया करते है। जैसा कहा है—

'राम झरोखे बैठकर सबको मुजरा लेइ। जैसी जाकी चाकरी तैसौ बाको देइ॥

जिनका जपना सरल और सबको सुख देने वाला है, ससार मे लाभ और परलोक मे निर्वाह (अर्थात् मुक्ति) देने वाले है।

कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीब सम सहज सँघाती[2]॥

---

१. सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोकलाहु परलोक निबाहू—
राग माली गोड—हरि नाम ते सुख ऊपजे मन छाड आन उपाय रे।
तन कष्ट कर कर जो भ्रमे तो मरण दुख न जाय रे॥
गुरु ज्ञान को विश्वास गह जिन भ्रमे दूजी ठौर रे।
योग यज्ञ कलेश तप व्रत नाम तुल्य न और रे॥
सब सन्त यो ही कहत है श्रुति स्मृति ग्रन्थ पुराण रे।
दास सुन्दर नाम ते गति लहे पद निरवाण रे॥

२. ब्रह्म जीब सम सहज सँघाती—इसके विषय मे ऋग्वेद, अष्टक २ अध्याय ३, वर्ग १७ की ऋचा यो है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥

अर्थ—दो पक्षी साथ मिले हुए मित्र की नाईं है और अपने समान वृक्ष के सब ओर से सग है। उन दोनो में से एक तो फल को स्वादु मानकर खाता है और दूसरा न खाता हुआ साक्षी-मात्र है। भाव यह कि प्रकृति रूप एक वृक्ष है। इस मे दो पक्षी रहते है, ये परमात्मा और जीवात्मा है। वृक्ष जड असमर्थ होता है और पक्षी चेतन होते है, इसलिए इन दोनो आत्माओ को पक्षियो की उपमा दी गई है। वृक्ष को 'समान' इस अश मे कहा है कि वह भी अनादि है और ये दोनो व्याप्य-व्यापक भाव से एक-दूसरे से सयुक्त होने के कारण 'सयुज' कहे गये है तथा अनेक बातों मे एक से होने के कारण मित्र कहे गये है। दोनो मे बडा अन्तर तो यह है कि एक (जीव) वृक्ष के फल खाता है (अर्थात् कर्म और उनके फल भोगता है) और दूसरा (ब्रह्म) कर्म और उसके फल से रहित है, केवल साक्षी-मात्र है।

शब्दार्थ—सुठि (सुष्ठु)=अत्यत । बिलगाती=विशेष लग जाती अर्थात् (१) मिली रहती, (२) अलग हो जाती ।

अर्थ—कहने मे (जीभ को), सुनने मे (कानो को), और स्मरण करने मे (मन को) अत्यत प्रिय है । मुझ तुलसीदास को तो राम-लक्ष्मण के सदृश ही प्यारे है । इन अक्षरो का वर्णन करने मे विशेष प्रीति जुटी रहती है कारण ये ब्रह्म और जीव के समान सदा के सगी है ।

दूसरी पक्ति का दूसरा अर्थ—यदि रकार और मकार इन अक्षरो का अलग-अलग वर्णन करे तो उनके मेल मे भेद पडेगा, परन्तु ये तो ब्रह्म और जीव की नाई सदा साथ ही रहने वाले है (अर्थात् जैसे रकार का उच्चारण स्थान मूर्द्धा है और मकार का ओष्ठ है, परन्तु मुख्य उच्चारण स्थान मुँह ही है) । इसी प्रकार जीव ससारी और ब्रह्म निर्गुण है, तो भी ये दोनों परमात्मा के रूप-विशेष है ।

नरनारायण[1] सरिस सुभ्राता । जग पालक बिसेषि जनत्राता ।।
भक्ति सुतिय कल करन-बिभूषन । जगहित हेतु बिमल बिधु पूषन[2] ।।

शब्दार्थ—जनत्राता=भक्तो की रक्षा करने वाले । करन-बिभूषन=कर्णफूल । बिधु=चन्द्रमा । पूषन=सूर्य ।

अर्थ—नर नारायण के समान सुन्दर भाई-भाई हैं, ससार के पालने वाले तो है ही, परन्तु भक्तो की विशेष रक्षा करते है । भक्तिरूपी सौभाग्यवती स्त्री के ये मनोहर कर्णफूल हैं और ससार के लाभ के लिए ये चन्द्र तथा सूर्य के समान है ।

स्वाद तोष सम सुगति सुधा के[3] । कमठ सेष सम धर बसुधा के ।।

---

१. नरनारायण—किष्किन्धाकाण्ड की श्री विनायकी टीका की टि० पृ० ११ मे देखे ।

२. भक्ति सुतिय कल करन-बिभूषन । जगहित हेतु बिमल बिधु पूषन—शिवसहिता से—

श्लोक—मुक्ति स्त्री कर्णपूरौ मुनिहृदयपय पक्षती तीरभूमी
ससारापारसिधोः कलिकलुषतमस्तोमसोमार्कबिम्बौ ।
उन्मीलित्पुण्यपुज द्रुमललितदले लोचने न श्रुतीना
कामं रामेति वर्णौ समिह कलयता सततं सज्जनानाम् ।।

अर्थात्—मुक्तिरूपी स्त्री के मानो कर्णफूल है, मुनियो के जल प्रवाहरूपी हृदयो को दोनो किनारे, भवसागर के कलियुगी पापरूपी अन्धकार के नाश करने को सूर्य और चन्द्र, पुण्यरूपी अकुरित वृक्ष के मानो दो दल है और जो वेदो के नेत्र है । ऐसे रामनाम के दो अक्षर सदा सन्तजनो को आनन्द व शान्ति के देने वाले हैं ।

३. स्वाद तोष सम सुगति सुधा के—अमृत में उत्तम स्वाद तथा फिर भूख न लगने का सन्तोष भी है (शेष पदार्थों मे बहुधा खाने के समय स्वाद तो रहता है परन्तु सदा के लिये सन्तोष नही होता, खाने की इच्छा बार-बार होती है) इसी प्रकार सुगति अर्थात् मुक्ति के हेतु राम नाम के वर्ण स्वाद और सन्तोष दोनों की नाईं हैं (अर्थात् मुक्ति पा जाने से फिर लोगो को स्वर्ग आदि सुख भोग के पश्चात् फिर मर्त्य लोक मे आने का क्लेश बारम्बार नही उठाना पडता, वह तो स्वाद और सन्तोष से परिपूर्ण मुक्त बन बैठता है) । जैसा कहा है—

गजल—श्रीराम कहने का मजा जिस की जबां पर आ गया ।
मुक्त जीवन हो गया चारो पदारथ पा गया ।।
लूटा मजा प्रह्लाद ने उस नाम के परताप से ।
नरसिंह हो दरशन दिया तिहुँ लोक मे यश छा गया ।।
थी जो शबरी जाति भिलिनी नाम का सुमिरन किया ।
परमात्मा घर आ के उस के बेर जूठे खा गया ।। →

शब्दार्थ—स्वाद=रस का मजा। तोष=तृप्ति। सुगति=अच्छी गति अर्थात् मुक्ति। कमठ=कछुआ। बसुधा (बसु=धन+धा=रखना)=धन को धारण करने वाली, पृथ्वी।

अर्थ—मुक्तिरूपी अमृत के ये स्वाद और तृप्ति के समान है और पृथ्वी को धारण करने के हेतु कच्छप और शेषनाग के समान है।

जनमन मंजु कंज मधु[1] कर से। जीह जसोमति हरि हलधर से[2] ॥

शब्दार्थ—कज=कमल। मधु=पानी। कर=किरण (सूर्य की)। जीह=जीभ।

अर्थ—भक्तजनो के कमल-समान कोमल हृदयो को आनन्द देने वाले जल और सूर्य के समान है (अर्थात् जैसे जल से कमल की वृद्धि होती है और सूर्य से प्रसन्नता होती है, इसी प्रकार रकार मकार से भक्तजनो की प्रसन्नता बढती है)। यसोदारूपी जीभ को कृष्ण और बलदाऊ जी के समान आनन्ददाता है (अर्थात् जिस प्रकार यसोदाजी को कृष्ण-बलदाऊजी ने आकर सुख दिया था, इसी प्रकार रकार और मकार यदि जीभ पर आ बसे तो सब सुखो के देने वाले हो जाते है)।

दोहा—एक छत्र इक मुकुटमनि, सब बरनन पर जोउ[3]।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोउ ॥२०॥

कलिकाल मे जो भक्त है उनका भी है रुतबा बडा।
नरसी की हुँडी द्वारिका मे श्यामला सकरा गया ॥
छा रही कीरति विमल ऋतुराज सी ससार मे।
अब्र के मानिन्द तुलसी राम रस बरसा गया ॥

१ मधु—इसके अनेक अर्थ है, जैसे—

दोहा—मधु बसन्त मधु चैत्रमधु, मधु मदिरा मकरन्द।
मधु 'जल' मधु पय मधु सुधा, मधुसूदन गोविन्द ॥

२. जीह जसोमति हरि हलधर से—

राग सोरठ—यशुमति बार बार यह भाखै।
है कोऊ ब्रज हितू हमारो चलत गोपालहि राखै ॥
कहा काज मेरे छगन मगन को नृप मधुपुरी बुलाये।
सुफलकसुत मेरे प्राण हरण को कालरूप होय आये ॥
बरु यह गोधन कस लेय सब मोहि बन्दि लै मेलै।
इतनो माँगत कमलनयन मेरी आँखिन आगे खेलै ॥
को कर कमल मथानी गहि है को दधि माखन खै है।
बहुरो इन्द्र बरसिहै ब्रज पर को गिरि नख पर लै है ॥
बासर रैनि बिलोकत जीयो सग लागि हुलराऊँ।
हरि बिछुरत जो रहौ कर्मवश तो केहि कठ लगाऊँ ॥
टेरि टेरि धर परत यशोदा अधर बदन बिलखानी।
सूर सो दशा कहाँ लग बरणौ दुखित नन्द की रानी ॥

३. एक छत्र इक मुकुटमनि—

श्लोक—यन्नाम ससर्ग वशाद्विवर्णौ, नष्टस्वरौ मूर्ध्नि गतौ हसानाम्।
तद्रामपादौ हृदि सनिधाय, देही कथ नोर्ध्वं गतिं प्रयाति ॥

अर्थ—जिस नाम के ससर्ग से दो वर्ण (र् और म्) स्वर-रहित होने पर भी व्यजनो के शिर पर जा बैठते है ऐसे 'रामचन्द्र' के चरणो को हृदय मे धारण कर देह-धारी उच्चगति को क्यो न प्राप्त होगे (अर्थात् अवश्य होगें)।

अर्थ—एक (रकार) छत्ररूप होकर तथा दूसरा (मकार) मुकुट मे मणि की नाई होकर सब अक्षरो के माथे पर देखने मे आते है। तुलसीदासजी कहते है कि राम नाम के दो अक्षर (अर्थात् र और म) विशेष शोभायमान होते है (भाव यह है कि और सब व्यजन स्वर-रहित होने से शक्तिहीन समझे जाते है, परन्तु रकार और मकार स्वर-रहित होते ही शेष अक्षरो के माथे पर जा शोभते है। सो इस प्रकार कि रकार की रेफ मानो राजा का छत्र और मकार का अनुस्वार मानो राजाओ के मुकुट का हीरा है। यथा—'वर्णानामर्थसघाना' मे रकार रेफ और मकार अनुस्वार रूप अनेक बार आये है)।

(९. नामी से नाम की महिमा विशेष)

समझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी[१] ॥

अर्थ—नाम और नाम वाला ये दोनो एक ही समान समझ पडते है और इनका एक-दूसरे से ऐसा सम्बन्ध है जिस प्रकार स्वामी और सेवक का रहता है (अर्थात् कौन स्वामी और कौन सेवक, इसका भी ज्ञान कठिन है क्योकि उनका सम्बन्ध अटल है और वह उलट-पुलट भाव मे भी एक ही सा रहता है)।

दूसरा अर्थ—नाम और नाम वाले की आपस की प्रीति एक बराबर समझनी चाहिए और इन दोनो तथा ईश्वर की प्रीति सेवक और सेव्य की-सी है।

नाम रूप दोउ ईस उपाधी। अकथ अनादि सु सामुझि साधी[२] ॥

शब्दार्थ—उपाधि (उप=पास+आ=से+धा=रखना)=पास रखना वा रहना, धर्म की चिंता, पदवीविशेष और माया। अकथ=कहने मे न आवे। अनादि जिसका आदि न हो, अर्थात् जो सदैव से हो। साधी=सिद्ध करना, अभ्यास करना।

अर्थ—नाम और रूप को बहुतेरे ईश्वर की उपाधि मानते है, परन्तु ये वर्णन मे नही आ सकते और सनातन है। सूक्ष्म विचार से समझ मे आ सकते है (ये अर्थ वेदान्तियो के पक्ष मे है जिनका यह सिद्धान्त है कि ईश्वर का नाम और रूप नही, ये तो उसके माया के साथ अनेक रूपो मे होते ही उपाधि की रीति पर उसके साथ हो जाते हैं)।

दूसरा अर्थ—नाम और रूप दोनो ईश्वर की उपाधि (अर्थात् समीप करने वाले हैं)। नाम का प्रभाव कहने के योग्य नही और रूप सनातन है, तो भी अच्छी बुद्धि वाले इनका विचार कर सकते है (अर्थात् नाम के ग्रहण करने से सहज ही मे जीव ईश्वर के समीप पहुँच सकता है, परन्तु आकार का ध्यान कठिनाई तथा बडी बुद्धिमानी से विचार मे आता है।)

तीसरा अर्थ—नाम रूप ये दोनों उपाधि अर्थात् धर्मरक्षा के विचार से वाणी की पहुँच से बाहर सनातन परब्रह्म ने धारण किये हैं, यह बात ज्ञानवान् मुनि अपनी उत्तम समझ के अनुसार सिद्ध कर दिखाते है (अर्थात् निराकार ब्रह्म धर्म की रक्षा के हेतु साकार बन नाम रूप से प्रकट होते हैं)।

चौथा अर्थ—नाम और रूप ये दोनो ईश (अर्थात् सामर्थ्यवान् है)। इनकी उपाधि अकथ है (अर्थात् दोनो का भेद कहना कठिन है), क्योंकि नाम और रूप दोनों अनादि हैं, यह

---

१. समझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी—अरण्यकाण्ड रामायण की श्री विनायकी टीका मे 'सतत मोपर कृपा करेहू' की टिप्पणी देखें।

२. नाम रूप दोउ ईस उपाधी। अकथ अनादि सु सामुझि साधी—जैसा कि विजय-दोहावली मे कहा है—

दोहा—नाम जपत शकर थके, शेष न पायौ पार।
सब प्रकार सो अकथ है, महिमा अगम अपार॥

बात बडे ज्ञानवान् भक्तो ने साधी (अर्थात् समझी है)। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि नाम और रूप ये दोनो सर्व सामर्थ्य रखते है, ईश कोई इनसे भिन्न तीसरा पदार्थ नही है क्योकि यह प्रकरण केवल नाम और रूप ही का है।

को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेद समुझिहहि साधू ॥
देखिय रूप नाम आधीना। रूप ज्ञान नहि नाम बिहीना ॥

अर्थ—(नाम और रूप मे से) किसे बडा और किसे छोटा कहकर अपराधी बने, साधु लोग तो गुणो का भेद सुनते ही समझ लेवेगे (कि कौन बडा है और कौन छोटा है)। (भाव यह कि नाम और रूप दोनो को बराबर ही कहना चाहिए, परन्तु दोनो के लक्षण बारीकी से विचार करके साधु लोग आप ही समझ लेगे कि नाम मे विशेषता है)। रूप को नाम के अधीन ही देखते है क्योकि नाम के बिना रूप का ज्ञान नही होता (अर्थात् नाम लेने से वस्तु का अच्छी तरह से ज्ञान हो जाता है, तभी तो व्याकरण मे नाम को सज्ञा कहते है और सज्ञा शब्द का अर्थ 'अच्छी तरह से ज्ञान करने वाला' ऐसा होता है। सज्ञा को मराठी व्याकरण मे नाम कहते है)

रूप बिसेष नाम बिन जाने। करतल गत न परहि पहिचाने ॥
सुमिरिय नाम रूप बिन देखे। आवत हृदय सनेह बिसेखे ॥

अर्थ—नाम जाने बिना कोई विशेष रूप का पदार्थ अपनी हथेली मे भी हो तो उसे पहचान नही सकते (जैसे कोई अमोल वस्तु अपने हाथ मे हो और उसका नाम हीरा-पन्ना आदि न जानते हो, तो उस रत्न की विशेषता नही जान सकते। जिस प्रकार श्री रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी को हनुमानजी ऋष्यमूक पर्वत के समीप तब तक न पहचान सके थे जब तक उन्होने अपना नाम नही बताया था)। परन्तु रूप के बिना देखे ही यदि नाम का स्मरण किया जाए तो अधिक प्रेम के कारण रूप ध्यान मे आ ही जाता है (जिस प्रकार सुतीक्ष्ण मुनि को राम नाम जपने के कारण श्री रामचन्द्रजी ने पहले उनके हृदय मे दर्शन दिये थे और फिर वे साक्षात् सम्मुख उपस्थित हुए थे)।

नाम रूप गति अकथ कहानी[१]। समुझत सुखद न परति बखानी ॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी[२]। उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी ॥

शब्दार्थ—सुखद=सुख देने वाली। सुसाखी (सुसाक्षी)=उत्तम गवाह। प्रबोधक=भली भाँति समझाने वाला। दुभाखी (दु=दो+भाखी=भाषा जानने वाला)=दो भाषाएँ जानने वाला (अर्थात् ऐसा पुरुष, जो एक देश की भाषा न जानने वाले पुरुष को दूसरे देश की भाषा को उसी की बोली मे समझा दे, जैसे अग्रेजी, हिन्दी पढा हुआ मनुष्य किसी अग्रेज को हिन्दी वाले की बातचीत अग्रेजी मे समझा दे और अंग्रेज की बातचीत हिन्दी भाषा मे

---

१. नाम रूप गति अकथ कहानी—ईश्वर के निर्गुण और सगुण रूप तथा नाम का वर्णन करना कठिन है, जैसा कि तुलसीदासजी ने अरण्यकाण्ड मे लिखा है निर्गुण सगुण बिषम समरूप, ज्ञान गिरा गोतीतमनूपम्'।

२ अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी—निर्गुण परब्रह्म यद्यपि नाम रूप रहित है तो भी उसे किसी न किसी प्रकार के नाम ही से जानते है। जैसे निर्गुण, निराकार, अज, अलख आदि। याज्ञवल्क्य स्मृति मे कहा है—

श्लोक—परमात्मनमव्यक्तं, प्रधान पुरुषेश्वरम् ।
अनायासेन प्राप्नोति, कृते तन्नाम कीर्त्तने ॥

अर्थात् परमात्मा अलख और प्रधान पुरुष को भी लोग उसके नाम जपने से सहज ही मे पा लेते हैं।

हिन्दी वाले को समझा दे)।

अर्थ—नाम और रूप के गुणो की कथा कहने मे नही आती। वह समझने मे तो सुख की देने वाली है पर वर्णन नही की जा सकती। निर्गुण और सगुण ईश्वर के बीच मे नाम उत्तम साक्षी के समान है और दोनो को समझाने के निमित्त चतुर दुभाषियो का काम देता है (अर्थात् नाम ही से निर्गुण ब्रह्म का कुछ बोध हो जाता है और नाम ही से सगुण रूप का विशेष ज्ञान होता है)।

दोहा—राम नाम[१] मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहरहुँ, जो चाहसि उजियार ॥२१॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते है कि जो तुम अपने हृदय के नेत्रो तथा बाहरी नेत्रो मे प्रकाश चाहते हो, तो रामनामरूपी मणि के दीपक को (मुखरूपी) द्वार की जीभरूपी देहरी पर धारण करो (अर्थात्—जो हृदय के अज्ञान को दूर करना चाहो और बाहरी वस्तुओ को ईश्वरमयी देखना चाहो, तो दिन-रात अपनी जीभ से राम नाम को जपते रहो)।

सूचना—देहरी पर के दीपक से घर के भीतर और बाहर दोनो जगह उजेला होता है, इस हेतु राम नाम रूपी दीपक को जीभ-देहरी पर रखने को कहा और तेल आदि का दीपक तेल के न रहने से अथवा वायु के वेग आदि से बुझ जाता है परन्तु मणिरूप दीपक सदा प्रकाश किया करता है।

नाम जीह जपि जागहि जोगी[२]। बिरति बिरचि प्रपच बियोगी ॥
ब्रह्म सुखहि अनुभवहि[३] अनूपा। अकथ अनामय[४] नाम न रूपा ॥

---

१. राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार—जैसा कि रामसतसई मे लिखा है—

दोहा—हिय निर्गुन नयनन सगुन, रसना राम सुनाम।
मनहु पुरुट सपुट लसत, तुलसी ललित ललाम ॥

२. जागहि जोगी—ठीक यही आशय गोसाईंजी ने अयोध्याकाण्ड मे कहा है—

मोह निसा सब सोवनिहारा। देखिय स्वप्न अनेक प्रकारा ॥
इहि जग जामिनि जागहि जोगी। परमारथी प्रपच वियोगी ॥

[देखो अयोध्याकाण्ड रामायण की श्री विनायकी टीका की टि० पृ० १३८]
और भी—

गजल— दरश अपना जो रघुनन्दन, दिखा दोगे तो क्या होगा।
जगत भ्रम जाल से मुझ को, छुडा दोगे तो क्या होगा ॥
अब इस ससार सागर मे, मेरी नैया जो डूबै है।
कृपा करके किनारे पै, लगा दोगे तो क्या होगा ॥
हौ सोता माया रजनी मे, मुझे आते बहुत सपने।
ये गहिरी नीद सोते से, जगा दोगे तो क्या होगा ॥
लगी है प्यास 'खुशदिल' को तेरे दर्शन की हे भगवन्।
बूँद स्वाती की बरसा कर, बुझा दोगे तो क्या होगा ॥

३. अनुभव (अनु=पीछे+भू=होना)=देख भाल के पीछे ज्ञान-यथार्थ ज्ञान, साक्षात्कार। जैसा कि अमरकोष की टीका मे लिखा है, 'उपलभ. अनुभव साक्षात्कारस्य'।

४. अनामय (अन=नही+आमय=रोग)=नीरोग। लिखा है अमरकोष मे—'अनामय स्यादारोग्यम्'।
'अकथ अनामय नाम न रूपा' ऐसे ब्रह्म के सुख के बारे मे यो कहा है—
क०—रवि को प्रकाश जैसी देखियत मुकुर मध्य मुकुर को प्रकाश जैसे जल को अभास है।
जल के प्रकाश हूँ ते होत जो प्रकाश तो देख्यो परै मन्दिर के भीतर उजास है ॥
तैसे परमात्मा ते आत्मा विचार लीजै आत्मा ते मन मन ते जगत विलास है।
साक्षी परमात्मा अखण्डित सब ही के माहि सब ही ते न्यारो सदा आनद की रास है ॥

अर्थ—योगी जन ब्रह्मा के प्रपंच (अर्थात् संसार) से विरक्त हो अपनी जीभ से राम नाम जपकर (मोहरूपी रात्रि मे) जागते है (अर्थात् सब प्राणी ससार के मोह मे फँसे हुए मानो बेसुध बने रहते है परन्तु योगी जन ममता-मोह त्याग, चैतन्यता से रहकर परमात्मा के ध्यान मे लग जाते है)। वे उपमा-रहित, अकथनीय, रोग-रहित और नाम-रूप-विहीन ब्रह्म के सुख को अनुभव करते है (ये ज्ञानी भक्त है जैसे शकरजी, शुकदेव मुनि, नारदजी आदि)।

जाना चहहि गूढ़ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहि तेऊ[१] ॥
साधक नाम जपहि लब लाये[२]। होहि सिद्ध अनिमादिक[३] पाये ॥

अर्थ—जो लोग ईश्वर के गूढ तत्त्व को जानना चाहते है, वे भी राम नाम का उच्चारण अपनी जीभ से करके जान लेते है (अर्थात् जो जिज्ञासु भक्त निर्गुण ब्रह्म का प्रकृति के सम्बन्ध से नाना रूप धारण करने का भेद जानना चाहते है, उन्हे भी राम-नाम का आधार है जैसे पार्वती और राजा परीक्षित आदि)। जो अर्थ-सिद्धि चाहने वाले प्राणी मन लगाकर राम-नाथ जपते है वे अणिमा आदि अनेक सिद्धियाँ प्राप्त कर सिद्ध हो जाते है (ये अर्थार्थी भक्त है जो अपनी इष्ट-सिद्धि राम नाम जपकर पा लेते है, जैसे सुग्रीव-विभीषण आदि)।

जपहि नाम जन आरत भारी। मिटहि कुसकट होहि सुखारी ॥
रामभक्त जग चारि प्रकारा[४]। सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥

शब्दार्थ—अनघ (अन्=नही+अघ=पापा)=पाप-रहित।

अर्थ—जिन प्राणियो को अत्यत कष्ट हो और वे राम नाम का जाप करे तो उनका

---

१. नाम जीह जपि जानहिं तेऊ—जीभ से जपने और हृदय से जपने का अन्तर महारामायण मे यो समझाया है—

श्लोक—अन्तर्जपन्ति ये नाम, जीवन्मुक्ता भवन्ति ते।
तेषा न जायते भक्तिर्न च रामसमीपका ॥
जिह्वयाप्यतरेणैव रामनाम जपन्ति ये।
ते च प्रेमापराभक्त्या नित्य रामसमीपका ॥

अर्थात्—जो लोग राम नाम का जाप मन मे किया करते है वे जीवनमुक्त होते है परन्तु न उन्हे भक्ति मिलती है न वे राम के समीपी होते है। जो लोग राम नाम का जाप जीभ से करते है उन्हे प्रेमा परा भक्ति मिलती है और वे श्री रामचन्द्रजी के समीपी हो जाते है।

२. साधक नाम जपहिं लब लाये। होहि सिद्ध अनिमादिक पाये—रामचन्द्रिका से—

कविता—पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परि पूरण बतावे न बतावै और उक्ति को।
दरशन देत जिन्हे दरशन समुझै न नेति नेति कहै वेद छाडि भेद युक्ति को ॥
योनि यह केशौदास अनुदिन राम राम रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।
रूप देहि अणिमाहि गुण देहि गरिमाहि भक्ति देहि महिमाहि नाम देहि मुक्ति को ॥

३. अणिमादिक—अणिमा, आदि आठ सिद्धियाँ है। यथा—नाममजरी से—

दोहा—अणिमा महिमा गरुअता लघिमा प्रापति काम।
वशीकरण अरु ईशता अष्ट सिद्धि के नाम ॥

इन आठो सिद्धियो को विस्तारपूर्वक अयोध्याकाण्ड की श्री विनायकी टीका मे लिखा है। (देखे टि० पृ० ३१७)

४ रामभक्त जग चारि प्रकारा—चार प्रकार के भक्त ऊपर कह आये है। ये ही चार श्रीमद्भगवद्गीता मे कहे है—(अध्याय ७-१६)—

श्लोक—चतुर्विधा भजन्ते मा जना· सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥

कठिन कष्ट दूर होकर वे सुखी हो जाते है (ये आर्त भक्त है जो नाम-प्रताप से सुखी हो जाते है जैसे द्रौपदी, गजेन्द्र आदि)। ससार मे चार प्रकार के रामभक्त है। ये चारो सत्कर्मी, निष्पाप और परोपकारी है (तीन प्रकार के भक्त तो ऊपर लिख आये है अब चौथे प्रकार के भक्त का वर्णन नीचे के दोहे मे किया है)।

चहुँ चतुरन कहँ नाम अधारा। ज्ञानी प्रभुहि बिसेष पियारा[१] ॥
चहुँ युग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेष नहि आन उपाऊ[२] ॥

अर्थ—चारो प्रकार के चतुर भक्तो को नाम ही का भरोसा रहता है परतु ज्ञानी-भक्त परमेश्वर को परम प्रिय है। चारो युग और चारो वेदो मे नाम का प्रभाव कहा गया है परन्तु कलियुग मे विशेष करके (क्योकि यहाँ) दूसरा उपाय है ही नही।

दोहा—सकल कामना हीन जे, रामभक्ति रसलीन।
नाम सप्रेम पियूष ह्रद, तिनहुँ किये मन मीन ॥२२॥

शब्दार्थ—पियूष (शुद्ध रूप पीयूष) (पीय्=पीना)=अमृत। ह्रद=सरोवर। मीन=मछली।

अर्थ—जो लोग सम्पूर्ण इच्छाओ को छोड कर राम भक्ति के प्रेम मे मग्न हो जाते है वे भी तो राम नाम रूपी सुन्दर प्रेम के अमृतरूपी तालाब मे अपने मन को मछली बनाते है (भाव यह कि चौथे प्रकार के, अर्थात् ज्ञानी भक्त भी राम नाम के जपने ही मे तत्पर रहते है)।

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा[३]। अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥
मोरे मत बड़ नाम दुहूँते। किय जेहि जुग निज बस निज बूते ॥

अर्थ—परब्रह्म के निर्गुण और सगुण ऐसे दो रूप है जो वर्णन से परे, अथाह, आदि-रहित और उपमा-रहित है। मेरी समझ मे नाम दोनो से बडा है जिसने अपने बल से दोनो को अपने

अर्थात्—श्री कृष्णजी बोले हे अर्जुन! सत्कर्म करने वाले चार प्रकार के प्राणी जो मेरा भजन किया करते है, वे ये हैं (१) आर्त्त भक्त, (२) जिज्ञासु, (३) अर्थार्थीभक्त, और (४) ज्ञानीभक्त।

१. ज्ञानी प्रभुहि बिसेष पियारा—यथा—'वासुदेव. सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभ' अर्थात् जिसके भगवान् ही सब-कुछ है, ऐसा महात्मा अति दुर्लभ है।

२. कलि बिशेष नहिं आन उपाऊ—विनयपत्रिका से—

राम नाम के जपै पै जाय जिय की जरनि।
कलि काल अपर उपाय तें अपाय भये जैसे तम नाशिवे को चित्र के तरनि ॥
करम कलाप परिताप पाप साने सब ज्यों सुफूल फूले तरु फोकट फरनि।
दंभ लोभ लालच उपासना विनाशिनी के सुगति साधन भई उदर भरनि ॥
योग न समाधि निरुपाधिना विराग ज्ञान वचन विशेष वेष कहुँ न करनि।
कपट कुपथ कोटि कहिन रहनि खोटी सकल सराहैं निज निज आचरनि ॥
मति राम नाम ही सो रति राम नाम ही सो गति रामनाम ही की विपति हरनि।
राम नाम सो प्रतीत प्रीति राखै कबहूँ कै तुलसी ढरैंगे राम आपनी ढरनि ॥

३ अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा—

कवित्त—आपही के देखने को आप ही सगुण भयो, सतरज तम होय जग को पसारो है।
कोऊ ऊँच कोऊ नीच कोऊ राव कोऊ रक कहूँ दास कहूँ ठाकुर आपही पधारो है ॥
पुण्य पाप भाव कर कर्म को विभाग भयो कर्म उपासन कहूँ ज्ञान को विचारो है।
तीन गुण आप भयो तीनो ते बाहिर है 'हेमराज' आपमाहिं आप हैं न न्यारो है ॥

अधीन कर रक्खा है ।

प्रौढ़ सुजन जन[१] जानहिं जनकी । कहहुँ प्रतीति प्रीति रुचि मनकी ।।

अन्वय—प्रौढ सुजन जन जन की जानहिं (मै) मन की प्रतीति प्रीति रुचि कहहुँ ।

अर्थ—अनुभवी बुद्धिमान् लोग मनुष्य के मन की बात जान लेते है, मैं अपने मन के विश्वास, प्रेम और रुचि के अनुसार कहता हूँ (गोस्वामीजी ने निर्गुण और सगुण ब्रह्म से बढकर जो नाम को कहा है, उसके विषय मे वे यह दर्शाते है कि बहुधा लोगो के विचार मे 'नाम' केवल ईश्वर की उपाधि है), परन्तु मैं अपनी बुद्धि के अनुसार उसे (नाम को) निर्गुण और सगुण रूपो से बढकर सिद्ध करना चाहता हूँ ।

दूसरा अन्वय, अर्थ—'प्रौढि सुजन जनि जानहि जन की' इस पाठान्तर का ।

अन्वय—सुजन (मुझ) जन की प्रौढि जनि जानहि ।

अर्थ—बुद्धिमान् लोग मेरे इस कथन को (कि 'मोरे मत बड नाम दूहूँ ते') प्रौढि अर्थात् बढावे सहित दाम्भिक कथन न समझ बैठे (अर्थात् लोग यह न समझे कि मेरा कथन आग्रह और घमड का है) मैं तो समझता हूँ कि—

एक दारुगत देखिय एकू । पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू ।।

अर्थ—दोनो ब्रह्म का ज्ञान अग्नि के समान है, जो अग्नि एक तो लकडी के भीतर रहती है (रगडने से उत्पन्न होती है) और दूसरी जो दिखाई देती है (कोयला, ईधन आदि के जलते हुए रूप मे । इसी प्रकार ब्रह्म को आगे समझाया है) ।

उभय अगम जुग सुगम नाम ते । कहेउँ नाम बड़ ब्रह्म राम ते ।।

अर्थ—दोनो निर्गुण और सगुण की प्राप्ति कठिन है परन्तु नाम के द्वारा सुलभ हो जाती है तभी तो नाम को (निर्गुण) ब्रह्म और (सगुण) दोनो से बडा कहा ।

व्यापक एक ब्रह्म अबिनासी । सत चेतन घन आनंद रासी ।।
अस प्रभु हृदय अछत अबिकारी । सकल जीब जग दीन दुखारी[२] ।।
नाम निरूपन नाम जतन ते । सोउ प्रकटत जिमि मोल रतन ते[३] ।।

---

१. सुजन जन—यहाँ पर 'सुजन' शब्द के पीछे 'जन' शब्द फिर आने से पुनरुक्ति समझ पडता है परन्तु उसे बहुवचन का चिन्ह मान लेने से वह दोष दूर हो जाता है क्योकि व्याकरण का नियम है कि कही-कही 'गण' 'जन' 'जाति' 'सग' आदि के लगाने से बहु वचन बन जाता है, जैसे 'देवगण', 'बुधजन', 'दुष्यजाति', 'कबिलोग', 'पडित लोग' ।

२. अस प्रभु हृदय अछत अबिकारी । सकल जीव जग दीन दुखारी—कहा है कबीरदासजी ने—

भजन—पानी मे मीन पियासी, मोहि देखत आवै हाँसी ।
सुख सागर निज भरो रहत है, निशिदिन रहत निरासी ।।
योगी बनकर रहत जँगल मे, निशिदिन रहत उदासी ।
कस्तूरी बन मे मृग खोजत, सूँघ फिरत बहु घासी ।।
आतमज्ञान बिना नर भटकत, कोउ मथुरा कोउ कासी ।
कहत कबीर सुनौ भाई साधौ हर बिन कटत न फाँसी ।।

३. नाम निरूपन नाम जतन ते । सोऊ प्रकटत जिमि मोल रतन ते—
इस उदाहरण मे रतन मुख्य है । उसका मोल गौण है । इसी प्रकार नाम मुख्य है, रूप गौण है । अर्थात् नाम का प्रभाव रूप को प्रकट करने मे सर्वथा सामर्थ्यवान् है । जैसे प्रह्लाद भक्त के हृदय मे राम नाम ऐसा व्याप्त हो रहा था कि उसने अपने प्रभाव से प्रह्लाद →

अर्थ—एक नाश रहित, सत चेतन मय और आनद की राशि परब्रह्म घट-घट में भरा हुआ है। हृदय मे विकार रहित ऐसे परमात्मा के रहते हुए भी ससार के सब प्राणी इच्छाओ के कारण दीन और काम, क्रोध आदि के कारण दुखी हो रहे है (अर्थात् ब्रह्म तो सब मे व्याप्त हे परन्तु जीव अपने कर्मो के कारण दीन हो दु ख भोग रहे है। वे कस्तूरिया मृग की नाई भूल मे पड कर परमेश्वर को जो उन्ही के अतर्गत है, अनेक बाहरी स्थानों मे ढूँढते फिरते है जैसे कस्तूरी वाला मृग कस्तूरी को बाहर जगल मे ढूँढता फिरता है परन्तु वह नही जानता कि कस्तूरी मेरे अग ही मे है)। नाम का ठीक-ठीक निर्णय नाम ही के द्वारा उपाय करने से शुद्ध होता है। जैसे रत्न का मोल रत्न ही पर विचार करने से निश्चय जाना जाता है (अर्थात् ध्यान सहित नाम के जाप से शुद्ध आत्मज्ञान हो जाता है जैसे रत्न के रग, रूप आदि का विचार करने से उसके दामो का विचार किया जाता है)।

दोहा—निर्गुनते यहि भाँति बड़, नाम प्रभाव अपार।
कहउँ नाम बड़ राम ते, निज बिचार अनुसार ॥२३॥

अर्थ—इस प्रकार निर्गुण ब्रह्म से नाम का बडा भारी माहात्म्य कहा, अब अपनी समझ के अनुसार (सगुण) राम से भी नाम को बडा कहता हूँ।

सूचना—यहाँ पर कविजी बडी बुद्धिमानी से नाम का माहात्म्य बढा कर इस हेतु से कहते है कि जिसमे लोगो का चित्त रामनाम के उच्चारण करने मे लगे। इसमे भाव प्रधान है, वर्णन की भाषा का अक्षरश अर्थ न समझना चाहिये। यहाँ तो नाम की बडाई कर नाम वाले की विशेष शक्ति और माहात्म्य का प्रकाश किया है क्योकि यथार्थ में नाम और नाम वाला ये कुछ दो अलग-अलग नही है।

राम भक्त हित नर तनु धारी। सहि सकट किय साधु सुखारी॥
नाम सप्रेम जपत अनयासा। भक्त होहिं मुदमगल बासा॥

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी ने भक्तो के निमित्त मनुष्य का शरीर धारण करके सकट सहे तब कही साधुओ को सुखी कर पाया। परन्तु प्रीतिपूर्वक नाम का जप करने से भक्तजन सहज ही मे आनन्द और मगल के स्थान बन जाते है।

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
ऋषिहित राम सुकेतु सुता की। सहित सेन सुत कीन्ह बिबाकी॥

शब्दार्थ—बिबाकी (फा० बेबाक़)=जो बाकी न रहे, सर्वनाश।

अर्थ—राम (रूप) ने तो एकही तपस्वी की स्त्री अर्थात् अहल्या का उद्धार किया परन्तु (राम के) नाम ने तो करोडो दुष्टो की कुबुद्धि को सुधारा। विश्वामित्र ऋषि के हेतु राम ने तो सुकेतु गधर्व की लडकी अर्थात् ताड़का को उसके एक पुत्र सुबाहु और सम्पूर्ण सेना को निश्शेष कर दिया।

सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नाम जिमि रवि निशि नाशा॥
भंजेउ राम आप भव[1] चापू। भव[2] भय भजन नाम प्रतापू॥

को जल से, अग्नि से, पर्वत से और विष आदि से बचा लिया। निदान, उसी नाम के प्रभाव से परमेश्वर ने खभ से नरसिंह रूप प्रकट किया। साराश नाम से रूप प्रकट हुआ।

१. भव=महादेव। जैसे लिखा है अमर कोष मे—

व्योमकेशो भवोभीम स्थाणू रुद्र उमापति।

अर्थात्—व्योमकेश, भव, भीम, स्थाणु, रुद्र और उमापति ये सब शिवजी के नाम है। →

शब्दार्थ—दुराशा (दुर=बुरी+आशा=आस)=बुरी आशा । दलइ=नाश करे ।

अर्थ—दोष और दु खो के साथ-साथ भक्तो की बुरी वासनाओ को नाम इस प्रकार से नष्ट कर देता है जिस प्रकाश सूर्य अधकार को नाश कर देता है । स्वत राम ने महादेवजी का धनुष तोडा परन्तु नाम का प्रभाव तो ससार के भय को दूर करने वाला है (अर्थात् ससार के आवागमन से छुडाने वाला है) ।

दडक बन प्रभु कीन्ह सुहावन । जनमत अमित नाम किय पालन ॥
निशिचर निकर दलेउ रघुनंदन । नाम सकल कलिकलुष निकदन ॥

अर्थ—रामजी ने दडक बन को पवित्र किया । रघुनाथजी ने तो राक्षसो के समूह का नाश किया परन्तु नाम ने तो असख्य मनुष्यो के मन को पवित्र किया परन्तु नाम तो कलियुग के सम्पूर्ण पापो का दूर करने वाला है ।

दोहा—सबरी गीध सु सेबकनि, सुगति दीन्ह रघुनाथ[1] ।
नाम उधारे अमित खल, बेद बिदत गुनगाथ ॥ २४ ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी ने शबरी, जटायु सरीखे अच्छे भक्तो को मुक्ति दी और नाम ने तो बहुतेरे दुष्टो का उद्धार कर दिया जिनके गुणो की कथा वेद मे वर्णन की गई है ।

राम सुकठ विभीषन दोउ । राखे शरन जान सब कोऊ ॥
नाम अनेक गरीब निबाजे । लोक बेद बर बिरद बिराजे ॥

अर्थ—सब लोग जानते है कि श्री रामचन्द्रजी ने सुग्रीव और विभीषण इन दोनो को अपनी शरण मे रक्खा । परन्तु नाम ने तो बहुत से गरीबो को आश्रय दिया जिसकी उत्तम कीर्ति लोक और वेद में प्रसिद्ध है । (जैसे अजामील, सदन कसाई, रैदास आदि) ।

राम भालु कपि कटक बटोरा । सेतु हेतु श्रम कीन्ह न थोरा ॥
नाम लेत भव सिधु सुखाही । करहु बिचार सुजन मन माही ॥

अर्थ—श्री रामजी ने रीछ और बदरो की सेना इकट्ठी की और समुद्र का पुल बाँध ने मे कुछ कम श्रम न किया (अर्थात् बडे प्रयास से पुल बँधवाया) । हे सज्जनो ! मन मे

---

२ भव=ससार । जैसा मेदिनी कोश मे लिखा है—

भव क्षेमे च ससारे सत्ताया प्राप्ति जन्मन ।

अर्थात्—भव का अर्थ, (१) क्षेम, (२) ससार (३) सत्ता, और (४) जन्म मे आया हुआ (है) ।

१. सवरी गीध सु सेबकनि, सुगति दीन्ह रघुनाथ—विनय पत्रिका मे लिखा है—

रघुवर रावरि यहै बडाई ।
निदरि गनी आदर गरीब पर करत कृपा अधिकाई ॥
थके देव साधन अनेक करि सपनेहूँ नाहिं दई दिखाई ।
केवट कुटिल भालु कपि कौनप कियो सकुल सग भाई ॥
मिलि मुनि वृन्द फिरत दडक बन सो चरचौ न चलाई ।
बारहिबार गीध शबरी की वरनत प्रीति सुहाई ॥
स्वान कहे ते किये पुर बाहर यतिहि गयन्द चढाई ।
सियनिन्दक मतिमन्द प्रजारज निज नय नगर बसाई ॥
यह दरबार दीन को आदर रीति सदा चलिआई ।
दीन दयाल दीन तुलसी की काहु न सुरत कराई ॥

विचार करके तो देखो कि नाम लेते ही ससाररूपी समुद्र सूख जाता है (अर्थात् ससार स्वप्नवत् जान पडता है)।

राम सकुल रन रावन मारा। सीय सहित निजपुर पग धारा ॥
राजा राम अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनि बर बानी ॥

अर्थ—रघुवर ने सग्राम मे कुल सहित रावण को मार डाला और सीताजी को साथ ले अवध को लौटे। वहॉ पर श्री रामचन्द्रजी राजा और अवधपुरी उनकी राजधानी हुई, इन चरित्रो को देव और मुनि गण मधुर ध्वनि से गाते है।

सेवक सुमिरत नाम सप्रीती। बिनुश्रम प्रबल मोहदल जीती ॥
फिरत सनेह मगन सुख अपने[१]। नाम प्रसाद सोच नहिं सपने ॥

अर्थ—भक्तजन नाम का प्रेम सहित स्मरण कर बडी बलवती ममता की सेना को जीत लेते है और नाम के प्रभाव से उन्हे सोच नाम को भी नही रहता तथा वे अपने ही प्रेमरूपी आनन्द मे मग्न रहते है।

दोहा—ब्रह्म राम ते नाम बड़, बरदायक बरदानि[२]।
राम चरित सत कोटि महँ, लिय महेस जिय जानि[३] ॥२५॥

---

१. फिरत सनेह मगन सुख अपने—
सवैया—प्रभु सत्य करी प्रहलाद गिरा प्रगटे नर केहरि खभ महा।
झखराज ग्रस्यो गजराज कृपा ततकाल बिलब किये न तहाँ ॥
सुर साखि है राखि है पाँडुबधू पट लूटत कोटिक भूप जहाँ।
तुलसी भज सोच विमोचन को जन को प्रण राम न राखो कहाँ ॥

२. ब्रह्म राम ते नाम बड, बरदायक बरदानि—
राग पहाड—सब मत को मत यह उपदेसू।
मूलमत्र यह उचित सिखावन भजमन सुत अवधेसू ॥
अहिपुर नरपुर देवलोकपुर रक फकीर नरेसू।
जो जापक सियराम नाम को सो भव सिधु तरेसू ॥
जप तप सयम दान नेम मख तीरथ अमित करेसू।
तुलहिं न सीताराम नाम सम वेद पुराण कहेसू ॥
गावत शंभु आदि नारद मुनि व्यास विरचि गनेसू।
यह सब गावत नाम महातम काग भुशुडि खगेसू ॥
नाम प्रतीति राख हिरदे में उमा सो कह्यो महेसू।
तुलसिदास यह नाम की महिमा कलिमल सकल हरेसू ॥

३ रामचरित सत कोटि महँ, लिय महेस जिय जानि—कुण्डलिया रामायण से—
कुण्डलिया—राम चरित शत कोटि शेषशारद शिव भाखे।
नारद शुक सनकादि वेद कहि बीचहि राखे ॥
बीचहि राखे चरित पार कह पावत नाहिन।
कहि कहि हारे सकल रामयश कहत सिराहिन ॥
नहिं सिराहिं रघुवीर गुण सो तुलसी मन मे डरत।
भजन भाव वेदन कहा कहे चरित भवनिधि तरत ॥

शब्दार्थ—वरदायक=वरदान देनेवाला।

अर्थ—(इस प्रकार निर्गुण) ब्रह्म तथा (सगुण) राम से नाम बडा ठहरा और यह (देव, मुनि, ऋषि आदि) वरदान देने वालो को भी वरदान का देने वाला है। यही सब जान कर शिवजी ने सौ करोड रामायण मे से सार छाँट लिया।

नाम प्रसाद संभु अबिनाशी। साज अमंगल मंगलरासी॥
सुक सनकादि सिद्ध मुनि योगी। नाम प्रसाद ब्रह्म सुखभोगी॥

अर्थ—नाम ही के प्रताप से नाश रहित शकरजी सम्पूर्ण अमगल की सामग्री साथ लिए हुए भी मगलो से परिपूर्ण समझे जाते है। (ऐसे ही) शुकदेव मुनि, सनक, सनदन, सनातन सनत्कुमार, सिद्ध, मुनि और योगीश्वर सब के सब नाम ही के प्रभाव से ब्रह्मानन्द का अनुभव करते है।

नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हर हरि प्रिय आपू[1]॥
नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भक्त सिरोमणि भे प्रह्लादू[2]॥

अर्थ—नारद ने नाम का प्रभाव जाना है। देखो ससार को तो विष्णु और महादेवजी प्यारे है परन्तु विष्णु को नारद मुनि प्यारे हो रहे है। नाम के जपते ही परमेश्वर ने ऐसी कृपा की कि प्रहलादजी भक्तो के मुखिया बन गये।

श्री राम कहने का मजा जिसकी जवा पै आ गया।
मुक्त जीवन हो गया, चारो पदारथ पा गया॥
शभु ने सौ कोटि की तकसीम मे पाया इसे।
जिस पै कृपा उस नाम की, सतगुरु उसे दरशा गया॥

सौ कोटि की तकसीम का ब्यौरा यो है कि रामायण के विषय मे सौ करोड श्लोक है जिन्हे शिवजी ने तीनो लोक निवासियो को बाँट दिये। प्रत्येक लोक वालो को ३३३३३३३-३३ श्लोक मिले। बचा एक श्लोक जो अनुष्टप होने से ३२ अक्षरो का था। उसमे से दश २ अक्षर प्रत्येक लोकवासियो को और दिये तो दो अक्षर (अर्थात् रा और म) शेष रहे सो शिवजी ने ग्रहण किये।

१ नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हर हरि प्रिय आपू—शुद्ध हृदय अनन्य सेवक की सेवकाई को सुन्दरजी कैसी सुन्दर रीति से कहते है—

सवैया—सेवक सेव्य मिले रस पीवत भिन्न नही अरु भिन्न सदाही।
ज्यो जल बीच धर्‍यो जल पिंड सु पिंडरु नीर जुदे कछु नाही॥
ज्यो दृग मे पुतरी दृग एक नही कछु भिन्न न भिन्न दिखाही।
'सुन्दर' सेवक भाव सदा यह भक्ति परा परमेश्वर माही॥

'जगप्रिय हरि हर हरि प्रिय आपू' का पाठान्तर 'जगप्रिय परिहरि हरि प्रिय आपू' भी है जिसका अर्थ यह है कि नारदजी प्यारे ससार को छोडकर स्वत परमेश्वर के प्यारे बन बैठे।

२ भक्त सिरोमणि भे प्रहलादू—शिवसिंहसरोज से—

कवित्त—बैठे चटसार मे कुमार है हजार जहाँ वेदन को भेद भाति भातिन को रढिबो।
कहै 'गुणदेव' कोऊ लिखत ललित अक कोऊ करै बाद कोऊ बयान गुण गढिबो॥
तहा हरणाकुश को पुत्र मति धीर जाको दूजो और आखर सपत मुख कढिबो।
निरखि असार सब सार सुख जानि एक राममत्र सार प्रहलाद सीखो पढिबो॥

और भी—देखो अयोध्याकाण्ड रामायण की श्री विनायकी टीका की टिप्पणी पृ० ३९६।

ध्रुब सगलानि जपेउ हरिनामू[१] । पायेउ अचल अनूपम ठामू ।।
सुमिरि पबन सुत पाबन नामू[२] । अपने बश करि राखेउ रामू ।।

अर्थ—ध्रुव ने (अपनी विमाता और पिता के निरादर से) उदास होकर ईश्वर का नाम जपा तो ऐसा स्थान पाया जो कि उपमा रहित और अटल है। पवनपूत हनुमान्‌जी ने पवित्र रामनाम का स्मरण करने से श्री रामचन्द्रजी को अपने वश मे कर रक्खा है।

अपर अजामिल[३] गज[४] गनि काऊ। भये मुक्त हरि नाम प्रभाऊ ।।
कहउँ कहाँ लगि नाम बड़ाई । राम न सकहि नाम गुन गाई[५] ।।

अर्थ—इनके सिवाय अजामील, गजेन्द्र और गणिका भी राम नाम के प्रताप से मुक्त हो गये। (मै) नाम का प्रताप कहाँ तक कहूँ कदाचित् स्वत रामचन्द्रजी भी नाम के गुणानुवाद न कह सकेगे।

---

१. ध्रुब सगलानि जपेउ हरिनामू—ध्रुव की कथा अयोध्याकाण्ड रामायण की श्री विनायकी टीका की टिप्पणी पृ०-३५ मे है।

२. सुमिरि पबन सुत पाबन नामू—रामचन्द्र भूषण से—

सवैया—पावन देव पुरातन ब्रह्म है ध्यान धरै मन होत अशोक है।
शारद नारद शेष गणेश गन्यो शिर मौर महेश को थोक है ।।
वेद पुराणन्ह मे लछिराम यही चरचा कवि कल्पना को कहै।
श्री हनुमान हिये रघुनाथ बसै रघुनाथहि मे सब लोक है ।।

३. अपर अजामिल गज गनिकाऊ—

राग जगला—रघुवर चरण शरण सुख दायक क्यो न गहो मन मेरे।
कोटि जन्म के सचित सगरे पाप विनाशै तेरे ।।
जिन चरणन्ह की शरण गहे ते उधरे पतित घनेरे।
अजामील गणिका गज गीधन हरिपुर किये बसेरे ।।
जिन चरणन्ह की रेणु परस मुनि पत्नी तरी सबेरे।
भालु भील रजनीचर वानर काट गये भव फेरे ।।
कोटि कलक मिटे कुमतिन के जिन चरणन्ह के हेरे।
'रत्न हरी' हम जान भये है इन चरणन्ह के चेरे ।।

सूचना—अजामील, गज और गणिका की कथा पुरौनी मे है।

४. गज—राग देशकारी—हे गोविन्द राखु शरण अब तो जिवन हारे।
नीर पीवन हेतु गयो सिन्धु के किनारे ।।
सिन्धु बीच बसत ग्राह चरण गह पछारे।
लडत लडत साझ भई लै गयौ मझधारे ।।
नासिका लो बूडन लाग्यो कृष्ण को पुकारे।
द्वारिका मे शब्द भयो गरुड बिन पधारे ।।
ग्राह को तो मारि कै गजराज को उबारे।
सूरश्याम मगन भये नन्द के दुलारे ।।

५. कहउँ कहाँ लगि नाम बडाई। राम न सकहि नाम गुन गाई—
इसी आशय को श्री कृष्ण परमात्मा अपने भक्त अर्जुन से कहते है कि—
सुपच भगत मेरो जो होई। तेहि समान मो कहँ नहि कोई ।।
सुनहु पार्थ मैं कहौ बखानी। नाम कि महिमा हमहुँ न जानी ।।

दोहा—राम नाम को कल्पतरु, कलि कल्यान निवास।
जो सुमिरत भये भाँगते, तुलसी तुलसीदास[1] ॥२६॥

अर्थ—कल्पवृक्ष रूपी राम नाम कलियुग मे सम्पूर्ण मंगलो का धाम है जिसका स्मरण करते ही भाग सरीखे नष्ट वृक्ष से मैं तुलसीदास तुलसी पत्र के समान पवित्र हो गया (अर्थात् राम नाम के प्रताप से अति तुच्छ जीव मैं तुलसीदास इस लोक मे पूजनीय समझा गया)।

चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका[2]। भयेनाम जपि जीब बिसोका ॥
बेद पुरान संत मत येहू। सकल सुकृत फल नाम सनेहू ॥

अर्थ—चारो युग, तीन काल और तीनो लोक मे प्राणी राम नाम जप कर शोक से रहित हो गये। वेद, पुराण और सतो ने यही निर्णय किया है कि सम्पूर्ण सत्कर्मों का फल 'राम नाम मे प्रेम' ही है।

ध्यान प्रथम जुग मख बिधि दूजे। द्वापर परितोषत प्रभु पूजे[3] ॥
कलि केबल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना ॥

अर्थ—प्रथम युग अर्थात् सतयुग मे ईश्वर का ध्यान करने से, दूसरे युग अर्थात् त्रेता युग मे यज्ञ करने से और द्वापर मे पूजन करने से परमेश्वर प्रसन्न होते है। कलियुग केवल पाप की जड और अपवित्र है ऐसे पाप रूपी समुद्र मे मनुष्यो के मन मछली के समान हो रहे है।

---

१. जो सुमिरत भये भाँगते, तुलसी तुलसीदास—तुलसीदासजी को यथार्थ मे तुलसी ही की उपमा श्री मधुसूदन सरस्वतीजी ने प्रसन्न होकर यो कही है। यथा—

श्लोक—आनन्द कानने कश्चिज्जगमस्तुलसी तरु.।
कविता मजरी यस्य, राम भ्रमर भूषिता ॥

इसी का अनुवाद कवितावद्ध श्री काशीराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिहजी कृत भी सराहनीय है—

दोहा—तुलसी जगम तरु लसे, आनद कानन खेत।
कविता जाकी मजरी, राम भ्रमर रस लेत ॥

२ चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका—

छप्पय—शकर शुक सनकादि कपिल नारद हनुमाना।
विष्वक सेन प्रहलाद बलिरु भीषम जग जाना ॥
अर्जुन ध्रुव अँवरीष विभीषण महिमा भारी।
अनुरागी अक्रूर सदा ऊधौ अधिकारी ॥
भगवन्त भक्ति अवशिष्ट की कीरति कहत सुजान।
हरि प्रसाद रस स्वाद के भक्त इते परमान ॥

३ ध्यान प्रथम जुग मख बिधि दूजे। द्वापर परितोषत प्रभु पूजे—ठीक यही आशय विष्णु-पुराण मे लिखा है—

श्लोक—ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेताया द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौश्री नाम कीर्तनात् ॥

अर्थात्—सतयुग मे ध्यान करने से, त्रेता मे यज्ञ करने से और द्वापर मे जो फल पूजा करने से प्राप्त होता है वही फल कलियुग मे केवल नाम उच्चारण करने से प्राप्त होता है।

नाम कामतरु काल कराला[१] । सुमिरत समन सकल जग जाला ।।
राम नाम कलि अभिमत दाता । हित परलोक लोक पितु माता ।।

अर्थ—कराल काल अर्थात् कलियुग मे नाम कल्पवृक्ष के समान है कि जिसका स्मरण करते ही ससार के सब जजाल मिट जाते है। कलियुग मे रामनाम ही इच्छित फल का देने वाला है, इस ससार मे माता-पिता के समान है और परलोक मे कल्याण देने वाला है।

नहि कलिकरम न भक्ति बिबेकू[२] । राम नाम अबलंबन एकू ।।
कालनेमि कलि कपट निधानू । नाम सुमति समरथ हनुमानू ।।

अर्थ—कलियुग मे न तो कर्म, न भक्ति और न ज्ञान है केवल रामनाम ही का आधार है। कलियुग तो कालनेमि राक्षस के समान छल का भडार ही है और रामनाम तो बुद्धिमान् के हनुमान् के समान सामर्थ्यवान् है।

दोहा—राम नाम नरकेसरी, कनककसिपु कलिकाल ।
जापक जन प्रहलाद जिमि, पालहिं दलि सुरसाल ।।२७।।

शब्दार्थ—नरकेसरी (नर+केसरी=सिह)=नरसिह । कनककसिपु (कनक=हिरण्य+कशिपु=कश्यप)=हिरण्य कश्यप । जापक=जपने वाले, भक्त । सुरसाल (सुर=देवता+साल=बैरी)=देवताओ के बैरी अर्थात् राक्षस ।

अर्थ—रामनाम तो नरसिंह अवतार के समान है और कलियुग हिरण्यकश्यप की नाईं है तथा भक्त जन प्रहलाद सरीखे है, इनका पालन उस देव-बैरी को मार कर किया जाता है

---

१ नाम कामतरु काल कराला—

भजन— कलि नाम कामतरु राम को ।
दलनि हार दारिद दुकाल दुख दोष धार धन धाम को ।।
नाम लेत दाहिनो होत मन बाम विधाता वाम को ।
कहत मुनीश महेश महातम उलटे सूधे नाम को ।।
भलो लोक परलोक तासु जाके बल ललित ललाम को ।
तुलसी जग जानियत नाम ते सोच न कूच मुकाम को ।।

२. नहि कलि करम न भक्ति बिबेकू—जैसा कि गरुड पुराण मे लिखा है—

श्लोक—कलौ सकीर्तना देव सर्वं पाप व्यपोहति ।
तस्माच्छी राम नाम्नस्तु कार्यं सकीर्तन वरम् ।।

अर्थात्—कलियुग मे नाम के उच्चारण मात्र से सर्ब पाप दूर हो जाते हैं इस हेतु श्री राम नाम का जाप करना उत्तम है। और भी—

राग धनाश्री—कह्यो शुक श्री भागवत विचार ।।
हरि की भक्ति करो निशिवासर अल्प जिवन दिन चार ।
चिन्ता तजो परीक्षित राजा सुन सिख सीख हमार ।।
कमलनयन की लीला गावो मिटिहै कोटि विकार ।
हरि की भक्ति युगो युग वरणी आन धर्म दिन चार ।।
अष्टादश षट तीन चार मिल करते यही विचार ।
एको ब्रह्म सकल घट पूरन केवल नाम अधार ।।
सतयुग सत त्रेता तप सयम द्वापर पूजा चार ।
सूर भजन कलि केवल कीर्तन लज्जा कौन निवार ।।

(अर्थात जिस प्रकार नरसिंहजी ने देवताओ के बैरी हिरण्य कश्यप को मार प्रहलाद भक्त की रक्षा की उसी प्रकार रामनाम भक्तो के बैरी कलियुग को परास्त कर भक्तो की रक्षा करने वाला है)। इति नाम प्रभाव वर्णन।

(१०. सेव्य सेवक भाव)

भाय कुभाय अनख आलसहूं। नाम जपत मंगल दिसि दसहू[१] ॥
सुमिरि सो राम नाम गुन गाथा। करौ नाइ रघुनाथहि माथा ॥

शब्दार्थ—भाय (भाव)=अच्छे प्रेम से। कुभाय (कुभाव)=बैर आदि भाव से। अनख=तीख, क्रोध।

अर्थ—(तुलसीदासजी कहते है कि) प्रेम, बैर, क्रोध या आलस्य के कारण भी नाम जपने से दशो दिशाओ मे (अर्थात् सब जगह) आनन्द मगल ही होता है। ऐसे राम नाम का स्मरण कर तथा श्री रामचन्द्रजी को शिर नवाकर मैं उनके गुणानुवाद वर्णन करता हूँ।

मोरि सुधारिहि सो सब भाँती। जासु कृपा नहि कृपा अघाती ॥
राम सुस्वामि कुसेवक मो सो। निजदिसि देखिदयानिधि पोसो[२] ॥

शब्दार्थ—पोसो (पोषण)=पालन किया, रक्षा की।

अर्थ—जिनकी कृपा से कृपा को भी सन्तोष नही होता (अर्थात्—यदि कृपा को सजीव समझ लेगे तो वह भी श्री रामचन्द्रजी की कृपा चाहती ही रहती है) ऐसे श्री रामचन्द्रजी सभी प्रकार से मुझे सम्हाल लेगे।

---

१. भाय कुभाय अनख आलसहूँ। नाम जपत मगल दिसि दसहूँ—प्रीति से किवा बैर के कारण अथवा किसी प्रकार से रामनाम कहने वाले प्राणी का मगल होता ही है—स्कन्द पुराण मे लिखा है, यथा—

श्लोक—कामात्क्रोधाद्भयान्मोहान्मत्सरादपि यः स्मरेत।
पर ब्रह्मात्मक नाम राम इत्यक्षरद्वयम् ॥
येषा श्री राम चिन्नाम्नि परा प्रीतिरचचला।
तेषा सर्वार्थ लाभश्च सर्वदास्ति शृणु प्रिये ॥

अर्थात (शिवजी बोले कि) हे प्रिये! जो प्राणी काम, क्रोध, भय, मोह किवा मत्सरता से भी 'राम' इन दो अक्षरो वाले परब्रह्मात्मक नाम का स्मरण करता है और जिन प्राणियो की चचलता रहित परा प्रीति श्री रामनाम मे होती है उनके लिये सदैव सर्व अर्थो का लाभ होता है। जैसा विजय दोहावली मे लिखा है—

दोहा—भाव सहित शकर जप्यो, कहि कुभाव मुनि बाल।
कुभकरण आलस जग्यो, अनख जप्यो दश भाल ॥

और भी—प्रेमपीयूष धारा से—

राग यथा रुचि—राम सिया भजु राम सिया रे।
होत तरन तारन नर तेहि क्षण जो भूलेहु प्रभु नाम लिया रे ॥
जेहि पर रीझ्यो वश मे होइगो जेहि पर खीझयो सुगति दियारे।
मोहनिदाम भजै नहि मूरख तौ तू स्वान समान जिया रे ॥

२. राम सुस्वामि कुसेवक मो सो। निज दिसि देखि दयानिधि पोसो—

क०—मै तौ हूँ पतित आप पावन पतित नाथ पावन पतित हौ तौ पातक हरोईगे।
मै तौ महादीन आप दीनबधु दीनानाथ दीनबधु हौ तौ दया जी मे धरोई गे ॥
मै तौ हू गरीव आप तारक गरीबन के तारक गरीब हौ तौ विरद बरोई गे।
मेरी करनी पै कछु मुकर न कीजै कान्ह करुणा निधान हौ तौ करुणा करोई गे ॥

'जासु कृपा नहि कृपा अघाती' का **दूसरा अर्थ**—जिनकी अनेक भाँति की कृपा किसी एक प्राणी पर कृपा दर्शाते हुए भी सन्तोष को नही प्राप्त होती (अर्थात प्रभु के चित्त मे यह चाव बना ही रहता है कि जितनी कृपा मैंने इस प्राणी पर की है वह पूरी नही हुई। यदि और भी करता तो अच्छा होता। जैसा कहा है—

'जो सम्पति सिब राबणहि, दीन्हि दिये दस माथ।
सो सम्पदा बिभीषणहि, सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥'

ऐसे उत्तम स्वामी श्री रामचन्द्रजी ने मुझ सरीखे अधम सेवक की जो रक्षा की सो उन दया सागर ने अपनी ही ओर देख कर की (अर्थात् मुझ सरीखे अधम सेवक की कोई रक्षा न करता परन्तु श्री रामचन्द्रजी ने अपने ही स्वभाव 'दीन-पोषकता के विचारा से मुझे अपना बना लिया)।

लोकहुँ बेद सुसाहिब रीती। विनय सुनत पहिचानत प्रीती ॥
गनी गरीब ग्रामनर नागर। पंडित मूढ मलीन उजागर ॥
सुकबि कुकबि निजमति अनुहारी। नृपहि सराहत सब नर नारी[१] ॥

शब्दार्थ—गनी (अरबी, गनी)=धनवान्। ग्रामनर=देहाती लोग।

अर्थ—ससार मे तथा वेद मे अच्छे राजाओ की यह रीति कही है कि वे विनती को सुनकर प्रेम पहिचान लेते है। धनवान्, कगाल, देहाती लोग, चतुर मनुष्य, पडित, मूर्ख, बुरे और भले, प्रवीण कवि और साधारण कवि तथा सब स्त्री पुरुष अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार राजा की प्रशसा करते है।

साधु सुजान सुसील नृपाला। ईस अंस भव परम कृपाला[२] ॥
सुनि सनमानहिं सबहिसुबानी। भनित भक्ति नति गति पहिचानी ॥

---

१. सुकबि कुकबि निजमति अनुहारी। नृपहि सराहत सब नर नारी—
राजा भोज के समय सस्कृत और नागरी भाषा पढने पढाने का ऐसा उत्तेजन दिया जाता था कि ग्राम निवासी मूर्ख और पण्डित आदि सभी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार बुरी भली कविता बना कर राजा को सुनाते थे और राजा उनकी मूर्खता पर विचार न कर उनका प्रेम देख उन्हे पारितोषिक देते थे। जैसा कि पाँच मनुष्यो ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार राजा के यश की सफेदी का मिलान बेढगेपन से कवितावद्ध रच करै यो सुना कर पारितोषिक पाया था—

श्लोक—अस्थिवद्दधिवच्चैव, पिष्टवत्कुष्टिवत्तथा।
हे राजन् तव यशो भाति, शरच्चन्द्र मरीचिवत् ॥

अर्थात्—हे राजा! आपकी कीर्ति (१) हड्डी की नाईं, (२) दही के सदृश, (३) आटे के तुल्य, (४) कोढी की सी, और (५) शरदपूनो के चन्द्र की किरणो के समान स्वच्छ शोभायमान् हो रही है।

२ ईस अस भव परम कृपाला—जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीता मे श्री कृष्णजी ने कहा है—
नराणाच नराधिप—अर्थात् मनुष्यो मे जो राजा है उसमे मुझे विशेष कर समझो। और भी मनुस्मृति के ७वे अध्याय मे कहा है—

श्लोक—इन्द्रानिलयमर्काणामग्नेश्च वरुणस्यच।
चन्द्र वित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वती. ॥४॥
यस्मादेषा सुरेन्द्राणा मात्राभ्यो निर्मितो नृप.।
तस्मादभि भवत्येष सर्वे भूतानि तेजसा ॥५॥

→

अर्थ—क्योकि राजा लोग सज्जन, चतुर, शीलवान्, ईश्वर का अश और बडे दयालु होते है। ये सबकी सुनकर मधुर वचनो से उनका आदर करते है क्योकि वे उनकी उक्ति, भक्ति, नम्रता और पहुँच की जॉच रखते है।

यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ। जानि सिरोमणि कोसलराऊ॥
रीझत रामसनेह निसोते[1]। को जग मंदमलिन मति मो ते॥

शब्दार्थ—निसोते (स० निस्रोत। नि=लगातार=स्रोत=धार)=लगातार धार से, सदैव, अटूट।

अर्थ—यह तो साधारण राजाओ का स्वभाव है परन्तु कोशलराज रामचन्द्रजी तो सबमे शिरोमणि है सो अवश्य ही जानेगे। श्री रामचन्द्रजी तो अटूट प्रेम से प्रसन्न होते है और ससार मे मुझ सरीखा मूर्ख तथा कुबुद्धि कौन है ?

दोहा—सठ सेबक की प्रीति रुचि, रखिहहि रामकृपालु[2]।
उपल किये जलयान जेहि, सचिब सुमति कपि भालु॥

शब्दार्थ—उपल=पत्थर। जलयान (जल=पानी+यान=सवारी)=पानी की सवारी अर्थात् नाव।

अर्थ—मुझ मूर्ख सेवक के प्रेम को दयालु श्री रामचन्द्रजी निबाहेगे जिन्होने पत्थरो को (लका प्रवेश के पूर्व पुल बॉधने के समय) नौका की नाईं तैराया था और बन्दर तथा रीछो को चतुर मत्री बनाया था।

दोहा—हौहुँ कहाबत सब कहत, राम सहत उपहास।
साहिब सीतानाथ से, सेवक तुलसीदास[3]॥२८॥

अर्थात्—इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा और कुवेर इन आठो के सारभूत अश से ईश्वर ने राजा को बनाया है॥४॥ और जब कि इन सुर श्रेष्ठो के अश से राजा बनाया गया है तभी तो वह अपने तेज से सब प्राणियो पर अधिकार रखता है॥५॥

१. रीझत राम सनेह निसोते—

राग धनाश्री—सब से ऊँची प्रेम सगाई।
दुर्योधन की मेवा त्यागी साग विदुर घर पाई॥
जूठे फल शवरी के खाये बहुविधि प्रेम लगाई।
प्रेमहि वश नृप सेवा कीन्ही आप बने हर नाई॥
राजसूय मख पाडव कीन्ही ता मे जूठ उठाई।
प्रेम के वश अर्जुन रथ हाँक्यो भूल गये ठकुराई॥
ऐसी प्रीति बढी वृन्दावन गोपिन नाच नचाई।
सूर कूर इस लायक नाही कहँ लग करौ बडाई॥

२. सठ सेवक की प्रीति रुचि, रखिहहि रामकृपालु—

राग धनाश्री—मेरी सुध लीजो श्री ब्रजराज।
और नही जग मे कोउ मेरो तुमहि सुधारन काज॥
गणिका गीध अजामिल तारे औ शवरी गजराज।
सूर पतित तुम पतित उधारन बॉह गहे की लाज॥

३. साहिब सीतानाथ से, सेवक तुलसीदास—इसमे कोई-कोई पण्डित लोग 'राम सहत उपहास' इसके आधार पर यह अर्थ व्यजित करते है कि सीता के पति एक पत्नी व्रतधारी →

अर्थ—'सीतापति से स्वामी और तुलसीदास से सेवक' यह बात मैं लोगो से कहलवाता हूँ और सब लोग कहते भी है सो इस प्रकार की हँसी श्री रामचन्द्रजी महते है अर्थात् कहाँ तो सीता के नाथ और कहाँ तुलसी का दास, जो सीता के स्वामी है उनसे तुलसी के सेवक का क्या सम्बन्ध ? इसमे एक ध्वनि यह है कि सीता के सेवक पर सीता के पति का प्रेम स्वाभाविक है परन्तु तुलसी के सेवक पर सीता के पति का प्रेम कैसा ?) ।

अति बड़ मोर ढिठाई खोरी । सुनि अघ नरकहु नाक सिकोरी[१] ।।
समझि सहम मोहि अपडर अपने । सो सुधि राम कीन्हि नहि सपने ।।

अर्थ—मेरा बहुत बडा ढीठपन और दोष सुनकर पाप और नरक ने भी नाक सिकोड ली (अर्थात् मेरी ढिठाई से पाप भी मेरी निन्दा करने लगा और दोष से नरक भी दूषित होने के भय से घृणा करने लगा) । साराश यह कि मै बडा ढीठ और पापी हूँ जो सब प्रकार से अयोग्य होने पर भी राम-सेवक बना हूँ । मै अपने ही ढीठपन के कारण, अपने ही डर से वृथा लज्जित होता हूँ । उसका विचार तो श्री रामचन्द्रजी ने स्वप्न मे भी नही किया (क्योकि यदि करते तो मेरे चित्त मे क्षोभ होकर मै उनसे विमुख हो जाता) ।

बिन असुलोकि सुचित चख चाही । भक्ति मोरि मति स्वामि सराही ।।
कहत नसाइ होइ हिय नीकी । रीझत राम जानि जन जी की[२] ।।

अर्थ— (स्वप्न मे भी सुध न कीन्ह)—जब इस बात को सुना और देखा तब चैतन्य

श्री रामचन्द्रजी तुलसी के दास को अपना सेवक समझ कर अपने को 'तुलसी वल्लभ' नामधारी समझ उपहास समझते है और यह आशय गर्भित करते है कि तुलसी वल्लभ अर्थात् वृंदा राक्षसी जो तुलसी वृक्ष के रूप से अवतरी, उसके पति के नाम से परमेश्वर अपने को प्रसिद्ध कर चुके है और इसी के आधार से तुलसी के सेवक तुलसीदास को अपना दास मानते हैं तथा इसी आशय को पुष्ट करने के हेतु तुलसीसतसई का यह दोहा प्रमाण मे देते हैं, यथा—

दोहा—सहस नाम मुनि भनित सुनि, 'तुलसी वल्लभ' नाम ।
सकुचत हिय हँसि निरखि सिय, धर्म धुरधर राम ।।

इस शब्द चातुरी के रहस्य को सहृदय समझ लेवे ।

सुनि अघ नरकहु नाक सिकोरी—दोनो कवि शिरोमणि तुलसीदासजी तथा सूरदासजी अपने-अपने प्रभु श्री रामचन्द्रजी तथा श्री कृष्णचन्द्रजी के सन्मुख अपने को महा अधम समझ किस प्रकार विनय करते है—

भजन—विनती करत मरत हौ लाज ।।टेक।।
यह काया नखसिखलौ मेरी पापन्ह भरी जहाज ।।
आगे भयो न पाछे कबहूँ सब पतितन सिरताज ।
भागत नरक नाम सुनि मेरो पीठ देत यमराज ।।
गीध अजामिल गणिका तारी मेरे कौने काज ।
सूर अधम को जबहि तारि हौ तब बदिहौ ब्रजराज ।।

रीझत राम जानि जन जी की—

ग़ज़ल—क्यो दीननाथ मुझ पै तुम्हारी दया नही ।
आश्रित तेरा नही हूँ कि तेरी प्रजा नही ।।
मेरे तो नाथ कोई तुम्हारे सिवा नही ।
माता नही है बधु नही है पिता नही ।।

हो जो ज्ञान दृष्टि से विचार तो जाना कि प्रभुजी ने मेरी भक्ति की सराहना अपने मन से की। (क्योकि) कहते, चाहे न बने परन्तु हृदय मे ठीक बसी हो तो रामचन्द्रजी मनुष्य के हृदय की बात जान कर प्रसन्न होते है।

रहत न प्रभुचित चूक किये की। करत सुरति सौ बार हिये की[१] ।।
जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली। फिरि सुकठ सोई कीन्ह कुचाली ।।

शब्दार्थ—सुकठ=सुग्रीव।

अर्थ—रामचन्द्रजी के हृदय मे भक्तो के किये हुए दोष का विचार नही रहता, वे तो उनके हृदय की बात सौ-सौ बार स्मरण करते है (अर्थात रामचन्द्रजी अपने भक्तो के बुरे कर्मो को भूल कर उनके हृदय की भक्ति का बडा विचार रखते है)। (देखे) जिस पाप के कारण बहेलिये की नाईं छिपकर बालि का वध किया था, वही पाप सुग्रीव ने भी किया।

सोइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेहु सो न राम हिय हेरी[२] ।।
ते भरतहि भेटत सनमाने। राज सभा रघुवीर बखाने ।।

अर्थ—वैसा ही कर्म विभीषण ने भी किया उसका विचार रामचन्द्रजी ने स्वप्न मे भी न किया। वरन भरत मिलाप के समय उनका बडा आदर किया और राजदरबार मे श्री रामचन्द्रजी ने स्वत उनकी बडाई की।

दोहा—प्रभु तरुतर कपि डार पर, ते किय आपु समान[३]।
तुलसी कहूँ न राम से, साहिब सील निधान ।।

माना कि मेरे पाप बहुत है पै हे प्रभू।
कुछ उससे न्यूनतर तो तुम्हारी दया नही ।।
करुणा करोगे क्या मेरे आँसू ही देखकर।
जी का भी मेरे दुख तो तुम से छिपा नही ।।
तुम भी शरण न दोगे तो जाऊगा मै कहाँ।
अच्छा हूँ या बुरा हूँ किसी और का नही ।।

१. रहत न प्रभुचित चूक किये की। करत सुरति सौ बार हिये की ।।
राग बिलावल—माधो जू जो जन ते बिगरै।
सुन कृपाल करुणामय कबहूँ प्रभु नहि चित्त धरै ।।
ज्यो शिशु जननि जठर अन्तर गत शत अपराध करै।
तऊ तनय तन तोष पोष चित्त विहँसत अक भरै ।।
यदपि विटप जर हतन हेत कर कर कुठार पकरै।
तदपि स्वभाव सुशील सुशीतल रिपुतनु ताप हरै ।।
कारण करन अनन्त अजित कह केहि विधि चरण परै।
यह कलि काल चलत नहि मो पै सूर शरण उबरै ।।

२. सोइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेहु सो न राम हिय हेरी—
सवैया—शोक समुद्र निमज्जन काढि कपीश कियो जग जानत जैसो।
नीच निशाचर बैरी को बन्धु विभीषण किन्हो पुरन्दर तैसो ।।
नाम लिखे अपनाय लिये तुलसी सो कहो जग कौन अनैसो।
आरत आरति भँजन राम गरीब निवाज न दूसर ऐसो ।।

३. प्रभु तरुतर कपि डार पर, ते किय आपु समान—
गजल—वह नाथ अपनी दयालुता तुम्हे याद हो कि न याद हो।
वो जो कौल भक्तो से था किया तुम्हे याद हो कि न याद हो ।। →

अर्थ—देखो रामचन्द्रजी तो वृक्ष के नीचे बैठते थे और बानर उसी वृक्ष की डालियों पर बैठा करते थे, ऐसे शिष्टाचार रहित बन्दरो को भी अपने समान कर लिया (अर्थात् उनके देह जनित अपमान का विचार न कर उन्हे बैकुण्ठ का निवास दिया)। तुलसीदासजी कहते है कि रामचन्द्रजी सरीखे शील-सकोच करने वाले प्रभु कही है ही नही।

दोहा—राम निकाई राबरी, है सब ही को नीक।
जो यह साँची है सदा, तौ नीको तुलसीक[1] ॥३०॥

शब्दार्थ—तुलसीक=तुलसी को।

अर्थ—हे श्री रामचन्द्रजी ! आपका भलापन सब ही के लिए उत्तम है, यदि यह बात सदा सत्य ही है तो मुझ तुलसीदास को भी उत्तम होगी (इसमे कोई सन्देह नही)।

दोहा—इहि बिधि निज गुन दोष कहि, सबहि बहुरि सिर नाइ[2]।
बरनौ रघुबर बिसद जस, सुनि कलि कलुष नसाइ ॥२९॥

जो गीध था गणिका जो थी जो व्याध था मल्लाह था।
उन्हे तुमने ऊँचो का पद दिया तुम्हे याद हो कि न याद हो ॥
जिन वानरो मे न रूप था न तो गुण ही था न तो जात थी।
तिन्हे भाइयो कासा माननां तुम्हे याद हो कि न याद हो ॥
यह तुम्हारा ही हरिचन्द है गो फसाद मे जग के बन्द है।
है दास जन्म से आप का तुम्हे याद हो कि न याद हो ॥

१. राम निकाई रावरी, है सब ही को नीक।
जो यह साँची है सदा, सौ नीको तुलसीक ॥

क०—दया सिन्धु दीना नाथ आरत हरण भारी, द्रोपदी उबारी तैसे मोहू को उबार ल्यो।
गणिका उबारी गज सकट निवारी प्रहलाद हितकारी देख दारिद निवार ल्यो ॥
गौतम की तिया तारी पग निज रज धारी द्विज हित कारी भवसागर उधार ल्यो।
टेरै प्रभु नदलाल दीनबन्धु भक्तपाल कारुणी कृपाल लाल विरद सम्हार ल्यो ॥

२. इहि बिधि निज गुन दोष कहि—इसमे कोई-कोई यह शका कर बैठते है कि गोस्वामीजी ने अपने ही मुँह से अपने गुन का कथन क्यो किया ? उसका समाधान यह है कि उन्होने लोगो की कथन प्रणाली के अनुसार ऐसा कहा है। लोग प्राय प्रत्येक वस्तु के बारे मे प्रश्न करते समय उसके 'गुन-दोष' पूछते है, क्योकि गुन-दोष प्राय सभी मे पाये जाते है, जैसा कह आये है कि—'जड चेतन गुन दोषमय', 'बिश्व कीन्ह करतार' आदि। इसके सिवाय तुलसीदासजी ने भी अपनी कविता के बारे मे यो कहा है कि "भनित मोरि सब गुन रहित, बिश्व बिदित गुण एक" आदि। और वह गुण यह है कि 'इहि महँ रघुपति नाम उदारा'। बस इन्ही आधारो से कविजी अपने को श्री रामचन्द्रजी का सेवक समझ इस बात पर विश्वास कर लिखते है कि—

दोहा—'राम निकाई राबरी, है सब ही को नीक'।
जो यह साँची है सदा, तौ नीको तुलसीक ॥

भाव यह कि श्री रामचन्द्रजी ने मुझे अपना लिया है, नही तो मैं इस ग्रन्थ के लिखने मे सामर्थ्यवान् न हो सकता। वे मेरे चित्त मे ऐसे विचार उत्पन्न कर देते कि मै राम-चरित्रो को लिख ही न सकता। कारण कहा है—

दोहा—बोले बिहँसि महेस तब, ज्ञानी मूढ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब, सो तस तेहि क्षन होइ ॥

अर्थ—इस प्रकार अपने गुण और दोषो को बता कर तथा सब को शिर नवाकर मै श्री रामचन्द्रजी का निर्मल यश वर्णन करता हूँ जिसके सुनने से कलियुग के पाप नाश हो जाते है।

भावँ यह कि 'हम श्री राम जी के है' केवल इतना ही गुण कहा जा सकता है और दोष तो अनेक है जिनका कुछ वर्णन हो ही चुका है इतना कह कर नमतापूर्वक मै श्री राम कथा कहता हूँ जिसके प्रभीव से सम्पूर्ण दोष दूर हो जाते है।

याज्ञबल्क्य जो कथा सुहाई । भरद्वाज मुनिबरहि सुनाई ।।
कहिहउँ सो संबाद बखानी । सुनहुँ सकल सज्जन सुखमानी ।।

अर्थ—याज्ञवल्लयजी ने जो सुहावनी कथा भरद्वाज मुनि से कही थी उसी वार्तालाप का वर्णन करके कहूगा, हे सम्पूर्ण सत्पुरुषो ! इसे आनन्दपूर्वक सुनिये।

शंभु कीन्ह यह चरित सुहावा । बहुरि कृपाकरि उमहि सुनाबा ।।
सोइ सिब काग भुसुडिहि दीन्हा[१] । रामभक्त अधिकारी चीन्हा ।।

अर्थ—महादेवजी ने यह सुहावना चरित्र पहले बनाया फिर कृपा करके पार्वती को सुनाया, उसीको शिवजी ने जब जान लिया कि यह राम भक्त होने से कथा के अधिकारी है तब कागभुशुँडि को दिया।

तेहि सन याज्ञब्रल्क्य मुनि पाबा । तिन पुनि भरद्वाज प्रतिगाबा ।।
ते श्रोता बक्ता सम सीला । समदरसी जानहि हरि लीला ।।

अर्थ—कागभुशुडि से याज्ञवल्क्य मुनिजी ने पाया और फिर उन्होने भारद्वाजजी से वर्णन किया। वे सुनने वाले और कहने वाले एक स्वभाव के है, वे सबको समान दृष्टि से देखते है और ईश्वर के चरित्रो को जानते है।

जानहि तीन काल निज ज्ञाना । करतल गत आमलक समाना ।।
अउरउ जे हरि भक्त सुजाना । कहहि सुनहि समुझहि बिधि नाना ।।

अर्थ—वे अपने ही ज्ञान से भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान तीनो कालो का हाल जानते है जिस प्रकार लोग हाथ मे आये हुए आवले को समझ लेते है। और भी जो ईश्वर के चतुर भक्त है वे भी अनेक प्रकार से कहते, सुनते और समझते है।

---

१. सोइ सिब कागभुशुडिहि दीन्हा—शिवजी ने रामकथा पार्वतीजी को तो स्वत सुनाई थी परन्तु कागभुशुडिजी को लोमश ऋषि के द्वारा कहलाई थी जैसा कि उत्तरकाण्ड मे कहा है—जब कि शिवजी ने कागभुशुडिजी को शूद्र योनि मे श्राप दिया था और फिर उनके गुरु विप्रदेव की प्रार्थना से प्रसन्न होकर यह वरदान दिया था कि—

कबनेहु जन्म मिटिहि नहिं ज्ञाना । सुनहि शूद्र मम वचन प्रमाना ।।
रघुपतिपुरी जन्म तब भयऊ । पुनि तैं मम सेबा मन दयऊ ।।
पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरे । रामभक्ति उपजहि उर तोरे ।।

फिर कागभुशुडिजी के वचन लोमश ऋषि जी के विषय मे गरुड प्रति यो है—

मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा । राम चरित मानस तब भाखा ।।
सादर मोहि यह कथा सुनाई । पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई ।।
राम चरित सर गुप्त सुहाबा । शभु प्रसाद तात मैं पाबा ।।

(देखो उत्तरकाण्ड)

दोहा—मै पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा सु सूकर खेत[१] ।
समुझी नहि तस बालपन, तब अति रहेउँ अचेत ।।

अर्थ—(तुलसीदासजी कहते है कि) मैने अपने गुरु से बाराह क्षेत्र मे यह कथा सुनी थी परतु बाल अवस्था होने से ठीक-ठीक समझी नही क्योकि उस समय मै बहुत नादान था।

दोहा—श्रोता बक्ता ज्ञाननिधि, कथा राम की गूढ[२] ।
किमि समुझै यह जीब जड, कलिमल ग्रसित बिमूढ ।।३०।।

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी की कथा इतनी गूढ है कि उसके सुनने वाले और कहने वाले दोनो ज्ञान के भण्डार होना चाहिये फिर मुझ तुलसीदास सरीखा कलियुग के पापो मे फँसा हुआ महामूर्ख प्राणी उसको कैसे समझ सकता था ।

तदपि कही गुरु बारहि बारा । समुझि परी कछु मति अनुसारा ।।
भाषाबद्ध करब मै सोई[३] । मोरे मन प्रबोध जेहि होई ।।

---

१. सूकर खेत (सूकर=बाराह+खेत=क्षेत्र)=बाराहक्षेत्र, जो अयोध्यापुरी से १२ कोस पश्चिम की ओर सरयू नदी के किनारे है ।

२ श्रोता बक्ता ज्ञाननिधि, कथा राम की गूढ—बृहद्राग रत्नाकर से—

कुण्डलिया—बानी बहुत प्रकार है ताको नाही अन्त ।
जोई अपने काम की सोई सुने सिधान्त ।।
सोई सुने सिधान्त सन्त जन गावत होई ।
चित्त आन के ठौर सुने जो नित प्रति सोई ।।
यथा हस पय पिये रहे ज्यो को त्यो पानी ।
ऐसे लहै विचार शिष्य बहु विधि है बानी ।।

३. भाषाबद्ध करब मै सोई—इसमे कोई-कोई लोग यह शका कर बैठते है कि जब इस ग्रन्थ को भाषा मे लिखने का निश्चय किया गया तो फिर इसमे सस्कृत श्लोक, सस्कृत मिश्रित स्तुतियाँ तथा और भाषाओ के शब्द क्यो लिखे गये ? उसका समाधान यो है—काव्य प्रकाश मे लिखा है कि 'प्राधान्येन व्यपदेशा भवति' अर्थात् प्रधानता से नाम रक्खा जाता है जैसे 'मल्लानाम ग्रामोऽयम्' अर्थात् यह पहलवानो का गाँव है । इसके कहने से यह आशय है कि इस गाँव मे मल्लो की सख्या अधिक है । कुछ और लोगो का निषेध नही होता क्योकि उसी गाँव मे स्त्रियाँ, बालक और वृद्ध आदि साधारण लोग भी बसते है। इसी नियम के अनुसार इस रामायण को चौपैया रामायण कहते है । इससे दोहा, सोरठा, हरिगीतिका और श्लोक आदि का निषेध नही पाया जाता । अतएव इस रामायण मे कुछ सस्कृत किंवा दो एक शब्द फारसी, भोजपुरी आदि भाषाओ के होने से उसकी भाषाबद्धता मिटती नही, बनी ही रहती है।

भाषाबद्ध करब मैं सोई—यह कहने से कविजी का यह अभिप्राय है कि मै सस्कृत भाषा मे न लिखकर इसे हिन्दी भाषा ही मे लिखता हूँ जिसमें साधारण लोगो की समझ मे आ जाए। इसके सिवाय भाषा मे भी तो उत्तम ग्रन्थ लिखे गये है जिनके बारे मे मणिदेव कवि बनारसी ने यो कहा है—

याहू माहि शकर बनाये सिद्ध मत्र सब तिन सो भयंकर बिलात लखि दुन्द को ।
मोहनादि होत सब तिन सो सहज मानि दूरि करै कठिन कलेशन्ह के कन्द को ।। →

अर्थ—तो भी गुरुजी ने बारम्बार उसे कहा तब अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ मेरी समझ मे आ गई। उसी को मै हिन्दी भाषा की कविता मे लिखूंगा जिससे मेरे चित्त को समाधान हो।

जस कछु बुधि बिबक बल मेरे। तस कहिहउँ हिय हरि के प्रेरे[१] ॥
निज सन्देह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भवसरिता तरनी ॥

अर्थ—मुझ मे जो कुछ बुद्धि का बल और ज्ञान का बल है तथा हृदय मे जिस प्रकार ईश्वर की प्रेरणा होगी उसी प्रकार वर्णन करूँगा। मैं उस कथा का वर्णन करूँगा जिससे मेरा मोह और अज्ञान दूर हो तथा जो ससाररूपी नदी से पार उतरने के हेतु नौका के समान है।

बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलि कलुष विभजनि[२] ॥
रामकथा कलि पन्नग भरनी[३]। पुनि बिबेक पाबक कहँ अरनी ॥

और सुनौ तुलसी गोसाईं सूर आदिन की कविता सो भाषै 'मणिदेव' बुध वृन्द को।
मन को लगाइ सुनौ मेरी बात भाषा अति लागतिहै प्यारी रघुनन्द ब्रज चन्द को ॥
'भाषाबद्ध' का पाठान्तर 'भाषा बन्ध' भी है।

मोरे मन प्रबोध जेहि होई—इसमे कोई-कोई लोग यह शका कर बैठते है कि गुरुजी के कहने से क्या प्रबोध नही हुआ जो गोसाई जी भाषा मे राम कथा को लिख कर अपने मन का प्रबोध किया चाहते है? समाधान—कविजी का यह अभिप्राय नही है कि गुरु जी के कथन से प्रबोध नही हुआ। वे तो यह कहते है कि जो कुछ गुरुजी ने बारम्बार कह कर मुझे समझाया, उसीको मै लिखता हूँ। इस अभिप्राय से कि 'सुनी हुई बात ठीक ठीक समझ मे आ गई'। ऐसा तभी सिद्ध होता है जब उसे लिख डाले। क्योकि लिखने मे पूर्वा पर विचार, भाषा की रचना, कथा का भाव आदि अनेक बातो का विचार करना पडता है। इसीसे भाषाबद्ध करने पर मेरे मन को प्रबोध होगा। यह स्वामीजी का यथार्थ कथन है, कुछ आत्मस्तुति के निमित्त नही है।

१. तस कहिहउँ हिय हरि के प्रेरे—श्री मद्भगवद्गीता के १०वे अध्याय मे श्री कृष्णजी के वचन यो है—

श्लोक—अहमात्मा गुडाकेश सर्व भूताशयस्थित।
अहमादिश्च मध्य च भूतानामत एवच् ॥२०॥

अर्थात्—हे अर्जुन! सब प्राणियो के अन्त करण मे आत्मारूप मै ही स्थिति हूँ और मैं ही सब प्राणियो के आदि, मध्य और अन्त मे बना रहता हू। इसी हेतु—

श्लोक—अहिसा समता तुष्टि स्तपोदान यशोऽयश।
भवन्ति भावा भूताना मत्त एव पृथग्विधा ॥५॥

अर्थात्—अहिसा, समता, सन्तोष, तप, दान, यश और अपयश आदि प्राणियो के ये सब प्रकार के विचार पृथक्-पृथक् मेरी ही प्रेरणा से होते है।

२. बुध विश्राम सकल जन रजनि। रामकथा कलि कलुष विभजनि—नवपचामृत रामायण से—

क०—काटि यम फासी जग करत खलासी कलि, कलुष प्रवासी पनकासी सहिता है जू।
चन्द्र चन्द्रकासी पुण्य पुजन प्रकासीगन, विघन विनासी गरिमासी लसिता है जू ॥
मधुर सुधासी साधु रसना निवासी हरि, सुयश बिलासी बिमलासी उदिता है जू।
कल्पकी लतासी मानो मुक्तिमुदितासी विधि, वाक बनितासी तुलसीकी कविता है जू ॥

३. भरनी=मयूरी। जैसा कहा है—

भरणी मयूर पत्नी स्यात् वरटा हस योषिता।

अर्थात्—भरणी तो मोर की स्त्री अथवा लिड़ोर है और वरटा हसी को कहते है।

शब्दार्थ—पन्नग (पद=पैर+न=नही+गम्=जाना)=जो पैर से न चले अर्थात् सर्प। अरनी (अरणि)=एक प्रकार की लकडी जिसको आपस मे रगडकर यज्ञ की अग्नि उत्पन्न करते है।

अर्थ—रामकथा बुद्धिमानो को शान्ति देने वाली और सम्पूर्ण मनुष्यो को आनन्द देने वाली है तथा कलियुग के पापो का नाश करने वाली है। रामकथा कलियुगरूपी सर्प को मयूरी के समान नाश करने वाली है। इसी प्रकार विवेकरूपी अग्नि को बढाने के लिए अरनी लडकी के समान है।

रामकथा कलि कामद गाई[1]। सुजन सजीबनि मूरि सुहाई॥
सोइ बसुधा तल सुधा तरंगिनि। भब भंजनि भ्रम भेकभुअंगिनि॥

शब्दार्थ—कामदगाई (काम=इच्छा+दा=देना+गाई=गौ)=इच्छा पूर्ण करने वाली गौ अर्थात् कामधेनु। वसुधा (वसु=धन+धा=रखना)=पृथ्वी। तरगिनि= नदी। भेक- मेढक। भुअगिनि=सर्पिणी।

अर्थ—कलियुग मे राम कथा कामधेनु के समान है (अर्थात् जो कुछ इच्छा करके मनुष्य इस कथा का श्रवण कीर्त्तन करे उसकी वह कामना पूर्ण हो जाती है) और सत्यपुरुषो के लिये तो यह कथा सुन्दर सजीवन बूटी है। वही कथा पृथ्वी पर मानो अमृत की नदी की नाई है और वही ससार को मिटाने वाली है (अर्थात् इससे यह ज्ञान हो जाता है कि यह ससार झूठा है) भ्रम रूपी मेढक को सर्पिणी के समान है।

असुरसेन सम नरकनिकंदिनि। साधुविबुध कुल हितगिरिनदिनि[2]॥

---

१. रामकथा कलि कामद गाई—कहा है—

श्लोक—तस्माच्छृणुध्व विप्रेन्द्र, देव देवस्य चक्रिण।
रामायण कथा चसा, कामधेनूपमा स्मृता॥

अर्थात्—(नारदमुनि जी का कथन सनत्कुमार प्रति यह है कि) हे विप्र श्रेष्ठ! आप लोग इस हेतु से चक्रधारी देवन के देव श्री रामचन्द्रजी की इस कथा को सुनिये जो कामधेनु की नाई है।

२ असुरसेन सम नरकनिकदिनि। साधु बिबुध कुल हित गिरिनदिनि। ठीक यही आशय भक्त शिरोमणि प्रह्लादजी के वचनो मे झलकता है, यथा—

श्लोक—न गगा न गया सेतुर्न काशी न च पुष्कर.।
जिव्हाग्रे वसते यस्य हरि रित्यक्षरद्वयम्॥

अर्थात्—जिसकी जीभ पर 'राम' ये दो अक्षर बने रहते है उसको गगाजी, गयाजी सेतुबधरामेश्वरजी, काशीजी तथा पुष्करजी की आवश्यकता नही। असुर सेन=गया तीर्थ। यह स्थान बिहार प्रान्त मे है। ब्रह्माजी ने सृष्टि उत्पन्न करते समय गयासुर एक भारी दानव बनाया। इस दानव ने बडी तपस्या कर विष्णुजी से यह वरदान पाया कि कोई भी प्राणी सुर, असुर, ऋषि, मुनि आदि जो मेरे शरीर को स्पर्श करे सो पवित्र हो कर मुक्ति पा जाए। ब्रह्माजी ने गयासुर की पीठ पर धर्म शिला रख कर यज्ञ किया इसी कारण यह तीर्थ 'गया' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ब्रह्मदेव के यज्ञ मे सम्पूर्ण देवता पधारे थे और सब तीर्थस्थान भी रूप धारण कर आये थे। साक्षात् विष्णुजी गदा धारण कर यहाँ उपस्थित हुए थे। यहाँ पर फल्गू नदी बहती है। इस नदी मे स्नान करने से सम्पूर्ण तीर्थो मे स्नान करने का फल होता है। यहा विष्णु पद पर पिंडदान करने से अगणित पुरखा तर जाते है। इसी प्रकार काश्यप पद, रुद्रपद और ब्रह्मपद का भी भारी माहात्म्य है (देखें—वायु पुराण अथवा गया माहात्म्य)।

सत समाज पयोधि रमासी । विश्व भार धर[१] अचल क्षमा सी ।।

शब्दार्थ - असुरसेन = गया तीर्थ । निकदिनि = नाश करने वाली । बिबुध - देवता । गिरिनदिनि (गिर = पर्वत + नदिनि = पुत्री) = गगाजी । क्षमा = पृथ्वी ।

अर्थ—वही कथा गया तीर्थ के समान नरक का नाश करनेवाली और सज्जन तथा देवताओ के समूहो का हित करने मे गगाजी के समान है । सतो की समाज रूपी समुद्र को लक्ष्मी के समान और ससार का बोझ सम्हालने के लिए अचल पृथ्वी के समान है ।

जमगन मुँह मसि जग जमुना सी[२] । जीवनमुक्ति हेतु जनु कासी[३] ।।
रामहि प्रिय पाबनि तुलसी सी । तुलसिदास हिय हिय हुलसी सी ।।

शब्दार्थ—मसि = स्याही । हुलसी = तुलसीदास की माता का नाम, हुल्लास ।

अर्थ यमदूतो के मुँह पर स्याही फेरने के लिए यमुना नदी के समान है (अर्थात् यमुना मे नहाने से जिस प्रकार प्राणी मुक्त हो जाते है और यमदूत उन प्राणियो को देखकर अपना-सा मुँह लिए रह जाते है इसी प्रकार रामकथा के सुनने से प्राणियो की मुक्ति हो जाती है और यमदूतो का काला मुँह हो जाता है) और जीवो की मुक्ति के लिए काशीजी के समान है ।

श्री रामचन्द्रजी के विचार मे तुलसी के समान पवित्र है और मुझ तुलसीदास के हित के लिए दयालु हुलसी माता के समान है ।

दूसरा अर्थ—'तुलसिदास हित हिय हुलसी सी' का यह अर्थ भी हो सकता है कि तुलसीदासजी का हित करने के लिए उनका हृदय हुल्लास रूपी है ।

सिवप्रिय मेकलसैलसुता[४] सी । सकल सिद्धि सुख सपति रासी ।।
सद्‌गुण सुरगनअंब अदिति सी । रघुबरभक्ति प्रेम परमिति सी ।।

---

१ 'विश्व भार धर' का पाठान्तर 'विश्व भार भर' भी है ।

२. जमगन मुँह मसि जग जमुना सी—राम तत्व बोधिनी से—

क०— तुलसी प्रसाद हिय हुलसी श्री राम कृपा सोई भव सागर के पुलसी ह्वै लसी है ।
जाकी कविताई अनरथ तरु टगा सम गगा की सी धार भक्त जन मन धसी है ।।
परम धरम मारतड उर व्योम उग्यो काम क्रोध लोभ मोह तम निशि नसी है ।
वाही के प्रकाश यम गण मुँह मसिलाई अति सुख पाय जिय मेरे आय बसी है ।।

जमुना—विवस्वान सूर्य को सज्ञा नाम की पत्नी से एक जुडेलू बालको का जन्म हुआ था । उसमे एक कन्या और एक पुत्र था । कन्या का नाम जमुना और पुत्र का नाम जम । इस प्रकार जमुना जम की बहिन है और यही जमुना नदी की अधिष्ठात्री देवी समझी जाती है । इनका माहात्म्य यो है कि—

क०—रवि की कुमारी जाके पीतम मुरारी सो तौ इन्दिरादि नारिन मे सरदारि नारि है ।
जोई उरधारी ले है ताहि निसतारि दे है ध्रुव को सँभार्‌यो तैसे तोहू पार पारि है ।।
कहैं रघुराय ताहि गाय चितुलाय नीके जाकी वारि पापन को वारि वारि डारि है ।
जमना विसारि है तौ जम ना विसारि है जो जमना सँभारि है तौ जम ना सभारि है ।।

३ जीवनमुक्ति हेतु जनु कासी—देखो किष्किन्धा काण्ड की श्रीविनायकी टीका ।

४. मेकलसैलसुता—जैसा कि अमर कोश में लिखा है—'रेवातु नर्मदा सोमोद्‌भवा मेकल कन्यका' अर्थात् रेवा, नर्मदा, सोमोद्‌भवा और मेकल कन्यका किंवा मेकल शैल सुता→

शब्दार्थ—मेकलसैलसुता = नर्मदा नदी। अब = माता। परमिति = हद्द।

अर्थ—शिवजी को नर्मदा नदी के समान प्यारी है और सम्पूर्ण सिद्धि, सुख तथा सपत्तियो की ढेरी है। सद्‌गुणरूपी देवताओ को माता अदिति के समान है और श्री रामचन्द्र-जी की भक्ति प्रेम की हद्द है।

दोहा—रामकथा मंदाकिनी, चित्रकूट चितचारु[१]।
तुलसी सुभग सनेह बन, सिय रघुबीर बिहारु ॥३१॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते है कि रामकथा मदाकिनी नदी के समान है उसमे शुद्ध चित्त चित्रकूट की नाई है और उसमे उत्तम प्रेम यही सीतारामजी का बिहार वन है।

राम चरित चिन्तामनि चारू[२]। संत सुमति तिय सुभग सिगारू ॥
जग मगल गुनग्राम राम के। दानि मुक्ति धन धरम धाम के ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी के चरित्र सुन्दर चितामणि रत्न के समान है जो सज्जनो की बुद्धिरूपी स्त्री का सुन्दर आभूषण है। (अर्थात् जिस प्रकार चितामणि मे (१) अधकार नाशन, (२) दारिद्र दूरी करन, (३) विघ्न विनाशन, और (४) रोगदमन ये चार गुण हैं, इसी प्रकार रामकथारूपी मणि मे भी है जैसा कि उत्तर काण्ड मे लिखा है 'राम भक्ति चिता-मणि सुन्दर' इत्यादि। चितामणि के गुण—(१) चौ०—परम प्रकाश रूप दिन राती, (२) मोह दरिद्र निकट नहिं आवहिं, (३) खल कामादि निकट नहिं जाही, और (४) व्यापहि मानस रोग न भारी।

(अर्थात् मेकल नाम के पहाड से निकली हुई नदी) अथवा वह नदी जो मडला जिले मे मेकल पहाड से निकलकर पश्चिम की ओर बहती हुई खबात की खाडी मे गिरी है। इसके किनारे बडे-बडे ऋषि-मुनियो ने तपस्या और यज्ञ किये है। शिवजी को यह बहुत ही प्रिय है। तभी तो इसके किनारे ओकारमान्धता, आदि बडे-बडे शिवालय बने है और एक कहावत यह भी प्रसिद्ध है कि नर्मदा के ककर सब शकर समान है।

१. राम कथा मदाकिनी, चित्रकूट चित चारु प्रयाग रामा गमन नाम की पुस्तक से—
हरिगीतिका छन्द—सम सुखद सब ऋतु मे रह जो, शैल मन भावन बना।
स्वादिष्ट फल सुरभित सुमन सकुल द्रुमावली के थना ॥
लपटी मनोहर लता जिन पर वर विहगम बोलते।
जिन के निकुजो मे प्रमत्त मतग मृग नित डोलते ॥
किलुकारते वानर लँगूर बराह सिंह डकारते।
कूकै कलापी नृत्य कर कोकिल निहार सराहते ॥
मधु से मधुर अति बलप्रद बहु कन्द मूल मिलै जहाँ।
शीतल अमल मदाकिनी अति मोहती है मन जहाँ ॥

२. राम चरित चिन्तामनि चारू—
भजन—अब लौ नसानी अब ना नसैहौ।
राम कृपा भव निशा सिरानी जागे फिर न डसैहौ ॥
पायो नाम चारु चिन्तामणि उर कर ते न खसैहौं।
श्याम रूप शिशु रुचिर कसौटी चित कचनहिं कसैहौ ॥
पर वश जानि हँस्यो इन इन्द्रिन निज वश ह्वै न हँसैहौ।
मन मधुकर पन करि तुलसी रघुपति पद कमल बसैहौ ॥

श्री रामचन्द्रजी के गुणानुवाद ससार मे मगल के दाता है और अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष के देने वाले है।

सद्‌गुरु ज्ञान विराग योग के। विबुधवैद्य भव भीम रोग के[1] ।।
जननि जनक सिय राम प्रेम के। बीज सकल व्रत धर्म नेम के ।।

शब्दार्थ—विबुध वैद्य (विबुध = देवता + वैद्य) = देवताओ के वैद्य अर्थात् अश्विनी कुमार।

अर्थ—(ये राम गुण ग्राम) ज्ञान, वैराग्य और योग के सच्चे गुरु है (अर्थात् ज्ञान, वैराग्य और योग की शिक्षा राम चरित्रो से मिलती है)। ससार के बडे भारी रोग (अर्थात् जन्म-मरण) को ये अश्विनी कुमार के तुल्य है। ये सीता और राम के प्रेम के मानो माता-पिता है (अर्थात् सीता-रामजी के चरणो मे प्रीति के उपजाने वाले है) और सम्पूर्ण व्रत-धर्म-उपासना के आदि कारण है।

शमन पाप सताप शोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के ।।
सचिव सुभट भूपति विचार के। कुभज लोभ उदधि अपार के ।।

अर्थ—पाप, ताप और शोक के नाश कर्त्ता, तथा इस लोक और परलोक मे भी प्रेम सहित पालने वाले है (भाव यह है कि ये ससार के पाप, त्रास और दु खो को दूर कर इस लोक मे सुख देते है और मोक्ष के भी दाता है)। उत्तम विचाररूपी राजा के मत्री और योद्धा भी हैं (अर्थात् सद् विचारो को बढाने मे मत्री की नाईं सहायता करते है) और कुविचारो को दबाने के लिए बडे योद्धा बनकर सहायता करते हैं। साराश यह है कि सुविचारो को बढाते और कुविचारो को दबाते है, ऐसे ही अपार समुद्र रूपी लोभ को मिटाने के हेतु अगस्त्य ऋषि है (अर्थात् जिस प्रकार अगस्त्य ऋषि ने तीन ही आचमन से समुद्र को पी लिया था, इसी प्रकार रामगुण लोभ को नाश कर सतोष प्रदान करते है। अगस्त्य ऋषि की कथा अरण्य-काण्ड की श्री विनायकी टीका मे है)।

काम कोह कलिमल करिगण के। केहरि शावक जन मन बन के ।।
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के ।।

अर्थ—भक्तो के मनरूपी वन मे काम, क्रोध आदि कलियुग के पापरूपी हाथियो के समूह को नष्ट करने के हेतु सिंह के बच्चे के समान हैं। महादेवजी को बहुत ही प्यारे पाहुने के समान आदरणीय है और दरिद्ररूपी वन की अग्नि को शात करने के निमित्त इच्छानुसार देने वाले मेघ के समान है। (साराश यह है कि भक्तो के पापनाशक, शिवजी के परम प्रिय और सेवको के दारिद्र-नाशक तथा कामना पूर्ण करने वाले है)।

---

१ विबुधवैद्य भव भीम रोग के—जैसा कि नारायण रहस्य मे कहा है—

श्लोक—यथौषध श्रेष्ठतम महामुने, अजानतोप्यात्मगुण करोति हि।
प्रयोगतो राघव नाम्न आरात्, परपद याति जन कलौ खलु ।।

अर्थात्—हे महामुनि ! जिस प्रकार उत्तम औषधि का सेवन बिना जाने ही किया जाए तो भी वह अपना असर करती ही है, इसी प्रकार श्री रामचन्द्रजी का नाम लेने वाला प्राणी अवश्य मोक्ष को पाता है।

मंत्रमहामणि विषय व्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के[१] ॥
हरन मोहतम दिनकरकर से। सेवक शालि पाल जलधर से[२] ॥

अर्थ—विषयरूपी सर्प को महामत्र तथा महामणि के सदृश है (अर्थात् जिस प्रकार सर्प का विष मत्र पढने से अथवा विष उतारने वाली मणि के लगाने से दूर हो जाता है इसी प्रकार रामगुण से विषय-वासना दूर भागती है) ये कपाल के लिखे हुए बुरे अको को मिटाते है (भाव यह है कि भाग्य के लिखे होनहार बुरे फलो के स्थान मे उत्तम फलो की प्राप्ति करा सकते है)। मोहरूपी अधकार को नाश करने के हेतु सूर्य की किरणो के समान है और भक्ति-रूपी धान को पुष्ट करने के हेतु मेघ के समान है।

अभिमत दानि देवतरुबर से। सेवत सुलभ सुखद हरिहर से ॥
सुकवि शरद नभ मन उडुगन से। रामभक्त जन जीवनधन से ॥

अर्थ – (ये) मनवाछित फल देने के निमित्त कल्पवृक्ष के समान है और सेवा करने पर शिव तथा विष्णुजी के समान सहज ही मे सुख देने वाले है। श्रेष्ठ कवियो के शरद ऋतु के आकाशरूपी हृदय मे तारागणो के समान है और रामभक्तो को जीवनधन के तुल्य है।

सकल सुकृत फल भूरि भोग से। जगहित निरुपधि साधुलोक से ॥
सेवक मनमानस मराल से। पावन गंग तरग माल से[३] ॥

अर्थ – सम्पूर्ण सत्कर्मों के फलो के उपभोग के समान हैं और ससार का हित करने के हेतु छल रहित साधुओं के सदृश है। सेवको के मनरूपी मानसरोवर मे हस के तुल्य और पवित्र करने मे गगाजी की लहरो की नाईं हैं।

दोहा—कुपथ कुतर्क कुचालि कलि, कपट दंभ पाखंड।
दहन रामगुणग्राम इमि, इंधन अनल प्रचड[४] ॥

---

१. मेटत कठिन कुअक भाल के—रामचन्द्र भूषण से—

सवैया—साखै भुजा फरकीली बहार मे, पल्लव हैं कर त्यो अरुणारे।
ये सुमनावलि है नख वृन्द, मलिन्द सुरूप त्रिलोक निहारे॥
मेटि ललाट कुअक विरञ्चि, सदा रस एक समोज सँवारे।
कामना आठऊ थाम फलै, कलपद्रुम राम नरेश हमारे॥

२. सेवक शालि पाल जलधर से—'याही से घनश्याम कहावत' - आदि (देखें अयोध्याकाण्ड रामायण की श्री विनायकी टीका की टि० पृ०—१६६)

३ पावन गग तरग माल से—

श्लोक—ये पठन्तीदमाख्यानं, भक्त्या शृण्वन्ति वा नरा॰।
गगास्नानफल पुण्यं, तेषा संजायते नवम् ॥

अर्थात्—जो मनुष्य रामकथा को भक्ति पूर्वक पढ़ते अथवा सुनते हैं उन्हे गगा स्नान का नवीन फल प्राप्त होता है।

४. कुपथ कुतर्क कुचालि कलि, कपट दभ पाखड। दहन राम···इत्यादि—

(म० छ०)

रहुरे कलकी कलि कपटी कुचाली मूढ, भागु भागु नातो गहि पटकि पछारौगो।
तुलसी गोसाईं जू के काव्य के किला सो काढि, दोहरा दुनाली सी बन्दूकन सो मारौगो॥
कहै कवि अम्बादत्त सोरठा के सैफ साफ करि, छन्दन के छरी सो गरब गहि गारौगो।
चारु चउपाइन के चोखे चोखे चाकू लेइ, आजु तोहिं टूक टूक काटि काटि डारौंगो॥

अर्थ—बुरे मार्ग से चलना, बुरे विचार रखना, बुरी चाल चलना, छल आडम्बर और पाखड—इन कलियुग के ईंधनरूपी सामग्री को श्री रामचन्द्रजी के गुणानुवाद भारी अग्नि के समान भस्म करने वाले है।

दोहा—रामचरित राकेशकर, सरिस सुखद सब काहु[1]।
सज्जन कुमुद चकोर चित, हित विशेष बड लाहु ॥३२॥

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी के चरित्र पूर्णिमा के चन्द्र की किरणो के समान सब ही को सुख देने वाले है। परन्तु सज्जनरूपी मुकुदिनी को तथा उनके चित्तरूपी चकोरो को विशेष हितकारी और बडे लाभदायक है।

कीन्ह प्रश्न जेहि भाति भवानी। जेहि विधि शकर कहा बखानी ॥
सो सब हेतु कहब मै गाई। कथा प्रबध विचित्र बनाई ॥

अर्थ—जिस प्रकार पार्वतीजी ने प्रश्न किये और जिस प्रकार शिवजी ने उनके उत्तर विस्तार सहित कहे, मै उसके कारण को कथा का प्रबन्ध अनूठा रच के कहूँगा।

जेइ यह कथा सुनी नहि होई। जनि आचरज करइ सुनि सोई ॥
कथा अलौकिक सुनहि जे ज्ञानी। नहि आचरज करहि अस जानी ॥

अर्थ—जिसने यह कथा नही सुनी है वह सुनकर आश्चर्य न करे। जो ज्ञानवान् पुरुष इस अद्भुत कथा को सुनते है वे ऐसा विचार कर अचरज नही करते। क्योकि—

रामकथा कैमिति जग नाही। अस प्रतीति तिन के मन माही ॥
नाना भांति रामअवतारा। रामायण शतकोटि अपारा ॥

अर्थ—उनके मन मे यह निश्चय हो गया है कि ससार मे श्री रामचन्द्रजी की कथा की हद नही है। श्री रामचन्द्रजी के अवतार अनेक प्रकार से हुए है और रामायण भी तो सौ करोड और अनन्त है (जैसा आगे कहा है)—

कल्प[2] भेद हरिचरित सुहाये। भाति अनेक मुनीशन्ह गाये ॥
करिय न सशय अस उर आनी। सुनिय कथा सादर रति मानी ॥

अर्थ—मुनि लोगो ने प्रत्येक कल्प मे श्री रामचन्द्रजी के सुहावने चरित्रो को अनेक प्रकार से वर्णन किया है। हृदय मे ऐसा विचार कर सदेह न करना चाहिये और आदरपूर्वक प्रेम से कथा सुननी चाहिए।

---

१. रामचरित राकेशकर, सरिस सुखद सब काहु—
राग विहाग ताल त्योरा—छल तजि भजौ दशरथ नन्द।
परम परमावान जन हित जगत आनन्द कन्द ॥
विषय विष तजि भरे भावन जानि कै मुख चन्द।
छवि सुधा लहि दृग चकौरन्ह देहु अति आनन्द ॥
पापरत भवतापता ये मन्द ते जे मन्द।
कामतरु सम नाम जपि के हरत भव के फन्द ॥
पतित पावन बानि सुनि के दूरि कै दुख द्वन्द।
शरण तकि 'बलभद्र' आयो भक्ति चहत अमन्द ॥

२. कल्प—चारो युगो की एक चौकडी और १००० चौकडी का एक कल्प होता है, उसी को ब्रह्मा का एक दिन कहा जाता है। जैसा कहा है—
'चतुर्युगसहस्त्राणि दिनमेक पितामहः'।

दोहा—राम अनत अनंत गुन, अमित कथा विस्तार[1] ।
सुनि आचरज न मानिहहि, जिनके विमल विचार ।।३३।।

अर्थ—रामजी पारावार रहित है, उनके गुण गिनती मे नही आते। अतएव कथा का वर्णन भी अगणित प्रकार से है। यह सुनकर वे लोग आश्चर्य न करेंगे जिनके विचार शुद्ध है।

इहि विधि सब संशय कर दूरी । शिर धरि गुरुपदपकज धूरी ।।
पुनि सबही बिनवउँ कर जोरी । करत कथा जेहि लाग न खोरी ।।

अर्थ—इस प्रकार सब सदेहो को दूर कर गुरुजी के कमलस्वरूपी चरणो के पराग को सिर पर धारण करता हूँ। फिर भी सबसे हाथ जोडकर विनती करता हूँ जिससे कथा के कहने मे दोष न लगे।

(११ **कथा का आरम्भ**)

सादर शिवहि नाइ अब माथा । बरनउँ विशद रामगुण गाथा ।।
संवत सोरह सौ इकतीसा । करउँ कथा हरिपद धरि सीसा ।।

अर्थ अब श्री शकरजी को आदर सहित सिर नवाकर श्री रामचन्द्रजी के निर्मल गुणानुवाद वर्णन करता हूँ। (विक्रम) सवत् १६३१ मे श्री रामचन्द्रजी के चरणो पर मस्तक नवाकर मैं कथा का आरभ करता हूँ।

नौमी भौमवार मधुमासा[2] । अवधपुरी यह चरित प्रकासा ।।

---

१. राम अनन्त अनन्त गुन, अमित कथा विस्तार। इत्यादि—

सवैया—या जग जानकिजीवन को यश, क्यों इक आनन गाइ अघैये।
ज्यो पदमाकर मारग है बहु, है पद पाइ कितै कित जैये।।
नाम अनन्त अनन्त कहै ते, कहै न परै कहि काहि जतैये।
राम की रूरी कथा सुनिवे को, करोरन्ह कान कहो कहुँ पैये।।

२. नौमी भौमवार मधुमासा—इसमे यह प्रश्न हो सकता है कि नौमी तो रिक्ता तिथि है इसमे ग्रन्थ का आरभ क्यो किया गया ? इसका उत्तर यह है कि जिस तिथि को ईश्वर ने जन्म धारण किया। वह तो सर्वश्रेष्ठ और सकल मगलदायक हो चुकी। उसमे दोष कहाँ रहे ? और कहा भी है, यथा—'सुयोगे कुयोगोऽपि चेत्स्यात्तदानीम्, कुयोग निहन्त्यैव सिद्धि तनोति'।

अर्थात्—सुयोग मे जो कदाचित् कुयोग भी आ पड़े तो वह सुयोग कुयोग का नाश करके सिद्धि देता है। इसी प्रकार यद्यपि मगलवार को कोई-कोई दूषित समझते है तो भी वह परमभक्त पवनपूत रामदूत का जन्म दिन है। इसके सिवाय इस वार को दिन के समय ग्रन्थ का आरम्भ किया गया, सो शुभ ही है, जैसा कहा है—

श्लोक—न वार दोषा प्रभवन्ति रात्रौ, देवेज्यदैत्येज्य दिवाकराणाम्।
दिवा शशाकार्कज भूसुतानाम्, सर्वत्र निंद्यो बुधवार दोषः।।

अर्थात्—गुरुवार, शुक्रवार और रविवार इनका रात्रि मे दोष नही तथा दिन मे सोमवार, शनिवार और मंगलवार का दोष नही होता, परन्तु बुधवार दिन तथा रात्रि मे दूषित ही है।

तुलसीदासजी भी तो स्वत लिखते हैं कि अवधपुरी मे रामनौमी को इस ग्रन्थ का आरम्भ हुआ जिस समय वहाँ सब तीर्थ एकत्र होते हैं। निदान 'कर कगन को आरसी ही क्या'→

जेहि दिन रामजन्म श्रुति गावहिं । तीरथ सकल तहाँ चलि आवहि[१] ।।

अर्थ—नौमी तिथि मगलवार चैत्र के महीने मे अयोध्या नगर के मध्य इस राम चरित्र का आरम्भ किया। इस दिन वेद के अनुसार श्री रामचन्द्रजी का जन्म वर्णन किया गया है (उस दिन) सम्पूर्ण तीर्थ अवधपुरी मे आ जाते है।

असुर नाग खग नर मुनि देवा । आइ करहि रघुनायक सेवा ।।
जन्म महोत्सव रचहि सुजाना । करहि रामकल कीरति गाना ।।

अर्थ—प्रह्लाद, विभीषण आदि असुर, वासुकी आदि नाग, कागभुशुंडि, गरुड, आदि पक्षी, भक्तजन नारदादि मुनि, शिव, ब्रह्मा आदि देवता, ये सब आकर श्री रामचन्द्रजी की सेवा करते है। ये सब ज्ञानी रामजन्म का बडा भारी उत्सव मनाते है और श्री रामचन्द्रजी का सुदर यश गाते है।

दोहा—मज्जहि सज्जन वृंद बहु, पावन सरजू नीर ।
जपहि राम धरि ध्यान उर, सुन्दर श्याम शरीर ।।३४।।

अर्थ - सरयू नदी के पवित्र जल मे सत्पुरुषो के झुड के झुड स्नान करते है और छबीले श्यामले शरीर वाले श्री रामजी का हृदय मे ध्यान कर रामनाम का जाप करते हैं।

दरस परस मज्जन अरु पाना । हरै पाप कह वेद पुराना ।।
नदी पुनीत अमित महिमा अति[२] । कहि न सकै शारदा विमलमति ।।

अर्थ—वेद और पुराणो मे कहा है कि सरयू नदी के दर्शन, स्पर्श, स्नान और जलपान पाप के हरने वाले है। इस पवित्र नदी के बडे भारी माहात्म्य को शुद्ध चित्त वाली सरस्वतीजी भी कह नही सकती।

रामधामदा पुरी सुहावनि । लोक समस्त विदित जग पावनि ।।
चारि खानि जगजीव अपारा । अवध तजे तनु नहिं ससारा ।।

शब्दार्थ – रामधामदा (रामधाम = बैकुठ + दा = देने वाली) = बैकुठ देने वाली। चारि खानि = चार प्रकार के जीव, यथा (१) पिडज जैसे मनुष्य, पशु आदि (२) अडन जैसे पक्षी (३) स्वेदज जैसे जूआ, चीलड, खटमल आदि और (४) उद्भिज जैसे वनस्पति जिनके ८४ लाख भेद हैं (देखे पृ० ५१ की टिप्पणी)

अर्थ—रमणीय अयोध्यापुरी बैकुठ की देने वाली है यह बात सब ससार मे प्रसिद्ध है कि यह जगत को पवित्र करने वाली है। ससार मे अनत जीव जिनके चार मुख्य भेद है, उनमे से कोई भी यदि अयोध्या मे प्राण त्याग करे तो वह ससार के आवागमन से छूट जाता है।

सभी जानते है कि उक्त तिथि और वार का लिखा हुआ यह ग्रन्थ ऐसा जगत प्रसिद्ध हो रहा है कि 'न भूतो न भविष्यति'।

मधुमास—जैसा कि अमर कोश मे लिखा है 'स्याच्चैत्रे चैत्रिको मधु' अर्थात् चैत्र महीने को चैत्रिक और मधु भी कहते हैं।

१. जेहि दिन रामजन्म श्रुति गावहिं । तीरथ सकल तहाँ चलि आवहि—

श्लोक—तत्रैव गगा यमुना च तत्र गोदावरी सिंधु सरस्वती च।
सर्वाणि तीर्थानि वसतितत्र, यत्राच्युतोदारकथाप्रसग. ।।

अर्थ—गगा यमुना गोदावरी, सिंधु सरस्वति सग।
सकल तीर्थ तहँ बसत है, जहाँ हरिकथा प्रसग ।।

२. नदी पुनीत अमित महिमा अति—(देखे टि० पृ० ७३)

सब विधि पुरी मनोहर जानी[१] । सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी ।।
विमल कथा कर कीन्ह अरम्भा । सुनत नशाहि काम मद दभा ।।

अर्थ—यह जान कर कि अयोध्यापुरी सब प्रकार से रमणीय, सब सिद्धियो की देनेवाली और सम्पूर्ण मगलो से परिपूर्ण है। (यही पर) पवित्र कथा का आरम्भ किया है जिसे सुनकर काम, मद और पाखण्ड नाश हो जाते है।

(१२ रामचरितमानस फल वर्णन)

रामचरितमानस इहि नामा । सुनत श्रवण पाइय विश्रामा ।।
मन कर विषय अनल बन जरई[२] । होइ सुखी जो इहि सर परई ।।

अर्थ—इस कथा का नाम 'रामचरितमानस' है, जिसको कान लगाकर सुनने से शान्ति मिलती है। मनरूपी हाथी जो विषयरूपी अग्नि से ससाररूपी बन मे जल रहा है यदि इस तालाब मे धसे तो वह आनद को प्राप्त हो (अर्थात् ससार के दु खो से पीडित मनुष्य यदि रामकथा श्रवण करे तो वह आनद को प्राप्त हो)।

---

१ सब विधि पुरी मनोहर जानी— राम स्वयम्बर से—

चौबोला— सरयू तीर सोहावन कोशल नगर बसत अति पावन।
निज छवि अमरावती लजावन सुरन मोद उपजावन ।।
द्वादश योजन लव मान तेहि योजन त्रय विस्तारा।
कनक कोट अति मोट छोट नहि विमल बिशाल बजारा ।।
गली चारु चौडी अमली सब मन्दिर सुन्दर तुंगा।
अमित कताके लसत पताके मानहुँ रच्यो अभगा ।।
परम मनोहर राजगली मृदु फूलन ते छवि छाई।
लगी कनक नलिका तिनही के सलिल सुगध सिंचाई ।।
बसत चक्रवर्ती दशरथ जहँ जिमि दिवि देव अधीशा।
पालित प्रजा वृद्धि सुख पावत लहि प्रताप जगदीशा ।।
बाट बाट बहु द्वार विराजत चामीकर महरावै।
हाटक ठाट कपाट ठटे वर घाटन्ह घाट सुहावै ।।
सरयूतीर हेम सोपानित सब थल करहिं प्रकाशा।
गुर्ज मेरु मन्दिर सम मडित जेहि लखि दुवन निराशा ।।
भिन्न भिन्न सब भौन भौन की गली न कछु सकेतू।
अति विचित्र वर कनक रजत के निरमित सकल निकेतू ।।
दोहा—ऊँची अटा घटान इव, छहर छटा छिति छोर।
मनहुँ स्वर्ग सोपान की, अवली लसै करोर ।।

२. मन कर विषय अनल बन जरई—जैसा कि भामिनी विलास मे लिखा है—

श्लोक—विशालविषयावलीवलयलग्नदावानल—
प्रसृत्वरशिखावलीकवलित मदीय मन.।
अमन्दमिलदिन्दिरे निखिलमाधुरीमन्दिरे—
मुकुन्दमुखचन्दिरे चिरमिद चकोरायताम् ।।

अर्थात्—विषय की बडी पक्ति जो चक्राकार दावानल की नाई प्रज्ज्वलित हो ज्वालायें फैला रही है, उससे मेरा मन व्याकुल हो रहा है। ऐसे मन को चाहिये कि वह विशेष प्रभायुक्त सम्पूर्ण मधुरता के भडार मुकुन्द भगवान के मुखचन्द्र मे चकोर की नाईं लग जाए।

रामचरितमानस मुनि भावन। बिरचेउ शम्भु सुहावन पावन ।।
त्रिविध दोष दुख दारिद दावन। कलि कुचाल कुलिकलुष नशावन ।।

अर्थ—(नाम का फल कहा जाता है) यह रामचरितमानस मुनियो को प्रिय है, इसे शिवजी ने सुहावना और पवित्र जानकर रचा है। यह तीनो प्रकार के दोष (अर्थात् कायिक, वाचिक और मानसिक), तीनो प्रकार के दुख (अर्थात् दैहिक, दैविक और भौतिक) और तीनो प्रकार के दरिद्र (अर्थात् तन, मन और धन सम्बन्धी) को दूर करने वाला है तथा कलियुग की बुरी रीतियो और सम्पूर्ण पापो का नाश करने वाला है।

रचि महेश निज मानस राखा। पाइ सुसमय शिवासन भाखा ।।
ताते राम चरित मानस वर। धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर ।।
कहौ कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई ।।

अर्थ—इसे रचकर महादेवजी ने अपने मन मे रख छोडा था, फिर सुअवसर पाकर पार्वतीजी को सुनाया था। इसी हेतु शिवजी ने अपने हृदय मे विचार कर आनन्दपूर्वक इसका नाम सुन्दर 'रामचरितमानस' रक्खा (भाव यह कि जो रामचरितनमास मे रख छोडा गया था, उसी का 'रामचरितमानस' ऐसा नाम दे दिया गया)। मैं वही सुखदायिनी सुहावनी कथा कहता हूँ। हे सत्पुरुषो! आप चित्त लगाकर सुनिये।

(१३. रामचरितमानस की उत्पत्ति, आदि)

दोहा—जस मानस जेहि विधि भयेउ, जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहौ प्रसंग सब, सुमिरि उमा वृषकेतु ।।३५।।

अर्थ—जैसा 'मानस' का स्वरूप है, जिस प्रकार 'मानस' बना है और जिस रीति से ससार मे इसकी प्रसिद्धि हुई है, वही सब प्रसग श्री पार्वती और शिवजी का स्मरण कर कहता हूँ।

शंभुप्रसाद सुमति हिय हुलसी। रामचरितमानस कवि तुलसी[१] ।।
करै मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनिलेहु सुधारी ।।

अर्थ—शिवजी की कृपा से हृदय मे अच्छी बुद्धि का आविर्भाव हुआ तो इस रामचरितमानस का कवि मै तुलसीदास हुआ। अपनी बुद्धि के अनुसार तो उसे रुचि कर बनाता हूँ,

---

१ रामचरित मानस कवि तुलसी—इसमे यह शका उठती है कि पहले तुलसीदासजी लिख चुके है कि 'कवि न होउँ नहिं चतुर कहावौं' और आप अपने को 'रामचरितमानस के कवि' लिखते है तथा और भी चलकर कहते है कि 'सुमिरि भवानी शकरहि, कह कवि कथा सुहाइ'। इसका समाधान यह है कि अन्तिम दो स्थानो मे कवि शब्द का यथार्थ अभिप्राय ग्रन्थ बनाने वाले का है, कवि के सम्पूर्ण गुणो से परिपूर्ण होने का दावा करने का नही है। इसके सिवाय दोनो अन्तिम स्थानो मे महादेव पार्वतीजी के प्रसाद से अपने को कवि अर्थात् रचयिता कहा है। जब तक उनकी कृपा का विश्वास उनके चित्त मे न आया था, तब तक अपने को कवि कहने के योग्य न समझा। जैसे अरण्यकाण्ड मे सुतीक्ष्ण मुनि ने श्री रामचन्द्रजी से कहा था कि 'मैं वर कबहुँ न याँचा' परन्तु रामचन्द्रजी के प्रसाद से उन्हे ज्ञान हुआ तब कहने लगे कि 'प्रभु जो दीन्ह सो वर मैं पावा। अब सो देहु मोहि जो भावा' (देखे अरण्यकाण्ड रामचरितमानस की श्री विनायकी, टीका की आवृत्ति दूसरी)।

हे सत्पुरुषो ! आप शुद्धचित्त से उसे सुधार लीजिये। (भाव यह कि जहाँ मुझ से न बने वहाँ आप लोग कृपापूर्वक उसे सुधार ले)।

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। वेद पुराण उदधि घन साधू[१] ।।
वर्षहि राम सुयश वर वारी। मधुर मनोहर मगलकारी ।।

अर्थ—(अब रामचरितमानस की रचना कहते है) उत्तम बुद्धि यही भूमि है और हृदय गहरापन है, वेद और पुराण समुद्र है तथा सन्तजन मेघ हैं। वे श्री रामचन्द्रजी के सच्चरित्ररूपी उत्तम जल को बरसते है जो (जल) स्वादिष्ट, सुहावना और मगल देने वाला है (अर्थात् जिस प्रकार गहरे समुद्र से जल भाफ द्वारा शुद्ध होकर मेघ द्वारा बरसता है, उसी प्रकार वेद और पुराणो से सन्त लोग रामचरित्र चुनकर सुनाते है जो रामयश मेघ जल की नाई सुनने मे मधुर, समझने मे मनोहर और लोक-परलोक मे मगल करने वाला हो जाता है)।

लीला सगुन जो कहहि बखानी। सोई स्वच्छता करै मल हानी ।।
प्रेमभक्ति जो बरनि न जाई। सोई मधुरता शीतलताई ।।

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी सगुण लीला (अर्थात् अवतार चरित्र) जो वर्णन किए जाते है, वही स्वच्छता है जो मैल को दूर करती है। प्रेम सहित भक्ति जिस का वर्णन नही हो सकता, वही मधुरता लिए हुए जल का ठडापन है।

सूचना—प्रेम मे मधुरता व शीतलता उस जल के साथ की मधुरता और शीतलता के साथ मिलाई गई है जो मेघ से गिरे हुए जल की है और यह मधुरता तथा शीतलता केवल स्वाद से जानी जाती है, कहने मे नही आती। इसी प्रकार प्रेम और भक्ति कहने मे नही आती।

सो जल सुकृत शालिहित होई। रामभक्तजन जीवन सोई ।।
मेघा महिगत सो जल पावन। सकिलि श्रवण मग चलेउ सुहावन ।।
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद शीत रुचि चारु चिराना ।।

अर्थ—वही जल सत्कर्मरूपी धान का बढाने वाला होता है और वही श्री रामचन्द्रजी के भक्तो को जिलाने वाला हो जाता है (अर्थात् जिस प्रकार वर्षा का जल धान को बढाता है और ससार के लिये जीवन देने वाला हो जाता है। उसी प्रकार भक्ति से सुकृत बढती है और भक्तो का जीवन होता है)। वही जल बुद्धिरूपी भूमि में पैठकर पवित्र हो जाता है और फिर वही मनोहर जल एकत्र हो कानरूपी मार्ग से चला और उत्तम मनरूपी योग्य स्थान को पाकर स्थिर हुआ और रुचिरूपी शरद को पाकर तथा पुराना होकर सुखदाई हुआ।

(भाव यह है कि जिस प्रकार पानी किसी जलाशय मे भरकर स्थिर हो जाता है और फिर बहुत समय का हो जाने के कारण सुखदाई, शीतल, रुचिकर और स्वच्छ हो जाता है, इसी प्रकार श्री रामभक्ति भी उत्तम हृदयो मे भरकर स्थिरतापूर्वक विचार करने से वासनारहित

---

१. सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। वेद पुराण उदधि धन साधू—
सुमति अर्थात् सुबुद्धि के आठ गुण है, । (देखे न्यायशास्त्र)
श्लोक—शुश्रूषा श्रवण चैव, ग्रहण धारण तथा।
ऊहापोहार्थविज्ञान, तत्त्वज्ञान च धीगुणा ।।
अर्थात्—(१) सेवा (२) सुनना (३) सीखना (४) व्यवहार मे लाना (५) तर्क (६) वितर्क (७) विज्ञान, और (८) तत्त्वज्ञान—बुद्धि के ये आठ गुण है।

होकर मनन और निदध्यास से सुखदाई, शान्ति देनेवाली, रुचिकर और निष्कपट हो जाती है) ।

दोहा—सुठि सुन्दर संवाद वर, विरचे बुद्धि विचारि ।
तेइ इहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि[1] ॥३६॥

अर्थ—बहुत ही सुन्दर श्रेष्ठ सम्वाद जो बुद्धि विचार कर बनाये गये है, वे ही इस पवित्र सुन्दर तालाव के सुहावने चार घाट है।

सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना[2] । ज्ञान नयन निरखत मन माना ॥
रघुपति महिमा अगुन अबाधा । बरनब सोइ वर वारि अगाधा ॥

अर्थ—सात काण्ड ही मानो उत्तम सात सीढियाँ है जिन्हे ज्ञानरूपी नेत्रो से देखकर मन प्रसन्न हो जाता है। श्री रामचन्द्रजी के गुणो से परे और उपाधि रहित जो महिमा है वही उस स्वच्छ पानी की गहराई वर्णन करता हूँ (अर्थात् निर्गुण ब्रह्म की महिमा तालाब की अथाह गहराई है)।

---

१ सुठि सुन्दर सवाद वर · घाट मनोहर चारि—चारो सवाद जिन्हे गोसाईजी मानसरोवर के चारो घाट कहते है। सो ये है—

(१) शिवजी और पार्वतजी का सवाद। जैसे—

'शम्भु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा कर उमहि सुनावा'।

यह राजघाट के तुल्य है, जहाँ पर सत और श्रेष्ठजन स्नान किया करते है क्योंकि शिव-पार्वती सवाद मे यद्यपि सब रामकथा का वर्णन है, तथापि इसमे ज्ञान की चर्चा विशेष है। जैसे—

जे जाने जग जाइ हिराई। जागे यथा स्वप्न भ्रम जाई॥
जासु सत्यता ते जड माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥

(२) याज्ञवल्क्य और भरद्वाज का सवाद। जैसे—

'याज्ञवल्कय जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनवरहि सुनाई'।

यह पचायती घाट है जिसमे सर्वसाधारण लोग स्नान कर सकते है अर्थात् इस मे कर्मकाण्ड को श्रेष्ठता दी है। जैसे—सब मुनियो का मकर सक्रान्त के समय स्नानो के लिये एकत्र होना, आदि।

(३) कागभुशडि और गरुडजी का सवाद। जैसे—

'कहा भुशडि बखानि, सुनौ विहँगनायक गरुड'।

यह पनघट है जहाँ पर भक्ति को विशेषता दी गई है और यही मुक्ति का सहज उपाय है, जो स्त्री, बालक आदि को भी सुलभ है।

(४) गोसाईंजी और सन्तजनो का सवाद। जैसे—

'स्वान्त सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा'।
'सुमिरि भवानी शकरहि, कह कवि कथा सुहाय'।

यह गौ घाट है जहाँ पर ढोरो की नाईं मूर्ख, अधकचरे, अपग तथा अविश्व सी अपर मतावलम्बी भी कथा और भाषा की रचना पर नीति शिक्षा आदि से मुग्ध हो जाते है।

२. सप्त प्रबध सुभग सोपाना—सातो प्रबध (अर्थात् सातो काण्डो) का क्रम यह है कि सब से नीचे की सीढी बडी भारी होनी चाहिये सो बालकाण्ड सब काण्डो मे बडा है और उसी मे सब प्रबधो का आधार है। उससे छोटा अयोध्या, उससे भी छोटा अरण्यकाण्ड और सब से छोटा किष्किन्धाकाण्ड है। इसके पश्चात् सुन्दरकाण्ड, लकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड क्रमानुसार बढ़ते हुए है। स्मरण रहे कि सीढिया नीचे से बाँधी जाती है।

राम सीय यश सलिल सुधा सम। उपमा बीचि विलास मनोरम ।।
पुरइनि सघन चारु चौपाई। युक्ति मंजु मणि सीप सुहाई ।।

अर्थ—उसमे सीता और श्री रामचन्द्रजी की लीला ही अमृत के समान जल है जिस मे उपमा अलकार मनोहर तरगो का कल्लोल है। (उपमा अलकार का वर्णन उदाहरण सहित अयोध्याकाण्ड रामचरितमानस की श्री वि० टी० की पुरौनी मे है)। सुन्दर चौपाइयाँ घनी पुरइन है और कविता की युक्तियाँ उज्ज्वल मोती की सुन्दर सीपे हैं (अर्थात् जिस प्रकार पुरइन से पानी ढँका रहता है इसी प्रकार श्री रामायण की कथा का प्राय सम्पूर्ण भाग चौपाइयो ही से कथन किया गया है और युक्तिपूर्वक कथा भाग का वर्णन ही मोतियो से परिपूर्ण सीपियो की नाई इस हेतु किया गया है कि वह बहुत ही मनोहर और चमत्कारी है) यथा (१) बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूप किशोर देख किन लेहू ।। (२) पुनि आउव इहि बिरिया काली।

छन्द सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरग कमल कुल सोहा[1] ।।
अर्थ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरन्द सुबासा ।।

अर्थ—छन्द, सोरठा और सुन्दर दोहा ये ही मानो रग-बिरगे कमलो के समूह सोभायमान है। कविता का उपमा रहित अर्थ, सुन्दर भाव और ललित भाषा यही क्रमानुसार (कमल के फूलो का) पराग, रस और सुगन्धि है।

सुकृत पुँज मजुल अलि माला। ज्ञान विराग विचार मराला ।।
ध्वनि अवरेव कवित गुण जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती[2] ।।

---

१ छन्द सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरग कमल कुल सोहा—सतोगुण का वर्णन जिन छन्दों, सोरठाओ व दोहो मे है, वे सफेद रग के कमल है और जिनमे रजोगुण का वर्णन है, उन्हे लाल रग के कमल समझो तथा तमोगुण वर्णन वाले नीलकमल की नाईं जानो। इनकी मनोहरता को कवि अम्बादत्तजी मनहर छन्द मे यो वर्णन करते है—

(कवित्त)

वेद और पुराणन्ह के सार सो गढे से सुठि, गुनि रीति नीतन्ह के धारे जनु मोहरा।
पढत सुनत जिन्हे पुलकि पसीजत है कवि अम्बादत्त बडे बूढे अरु छोहरा।।
अति ही कठिन अरु अति ही सहज अहैं, बरन बरन बीच आनन्द के पोहरा।
रसन सो साने विनै प्रेम सरसाने भक्ति, धारा बरसाने लसै तुलसी के दोहरा।।

२. ध्वनि अवरेव कवित गुण जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती—

(१) ध्वनि—जहाँ पर वाच्यार्थ और व्यग्यार्थ से कुछ अधिक चमत्कार हो उसे ध्वनि कहते है। जैसे 'पुनि आउब इहि बिरिया काली'।

(अर्थ की विशेषता इसी की टीका मे दी है।)

(२) अवरेव—जहाँ दूषण भी किसी कारण से भूषण समझा जाए। जैसे—'रामकृपा अवरेव सुधारी। विवुध धारि भइ गुणद गुहारी'। (देखे अयोध्याकाण्ड की श्री विनायकी टीका मे)

(३) गुण—अनुप्रास वाले काव्य की उत्तम रचना को गुण कहते है, उसके मुख्य तीन प्रकार है

(१) 'माधुर्य्य' जैसे—रामचन्द्र मुख चन्द्र छवि, लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल, प्रेम प्रमोद न थोर।।

→

अर्थ—सत्कर्मियो के समूह ही उत्तम भौरो की पंक्तियाँ है, ज्ञान और वैराग्य का विचार ये ही हस है (अर्थात् सत्कर्मो के समूह भौरो की नाईं कमलो की शोभा बढाकर उसका मधुर रस पान करते है और ज्ञान वैराग्य का निर्णय हस की नाईं किया जाता है। तात्पर्य यह है कि दूध का दूध और पानी का पानी अलगा दिया जाता है)। ध्वनि, अवरेव, गुण और जाति ये कविता के चार भेद मानो सुन्दर अनेक प्रकार की मछलिया है।

अर्थ धर्म कामादिक चारी। कहब ज्ञान विज्ञान विचारी[1] ॥
नव रस जप तप योग विरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा ॥

अर्थ—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, ज्ञान, विज्ञान का विचार, नौरस, जप, तप, योग और वैराग्य इन सब सुन्दर तालाब के रहने वाले जलचारी जीवो का वर्णन करूँगा।

सूचना—ऊपर ध्वनि, अवरेव, कवित्त, गुण, जाति इन सबको सरोवर की मछलियाँ कह आये है और अब उन्नीस प्रकार के जलचर अलग लखाते है सो मछलियो को तो केवल पानी का विशेष आधार है, उसके बिना इनका जीना हो ही नही सकता। इसी प्रकार ध्वनि, अवरेव आदि पूर्ण रूप से कविता के अधीन ही है परन्तु शेष उन्नीस प्रकार के जलचर मगर, कच्छ, घडियाल आदि के रूप से हैं जो कभी जल मे और कभी थल पर भी रह सकते है।

सुकृति साधु नाम गुण गाना। ते विचित्र जल विहँग समाना ॥
सन्त सभा चहुँ दिशि अँबराई। श्रद्धा ऋतु बसन्त सम गाई ॥

अर्थ—सत्कर्मी साधुओ के द्वारा (अनेक प्रकार से) जो रामनाम के गुण वर्णन है वे ही रग-बिरग के जलपक्षी है (जैसे वाल्मीकिजी और तुलसीदासजी द्वारा साधुओ के गुणो का वर्णन उनकी रामायणो मे है)।

दूसरा अर्थ—धर्मात्मा साधुओ के नाम और गुणो का वर्णन यही नाना भाँति के जल कुक्कुट है। जैसे शरभग, विश्वामित्र आदि।

तीसरा अर्थ—(१) सत्कर्मियो के गुणो का वर्णन, (२) साधुओ के गुणो का वर्णन, और (३) नाम के गुणो का वर्णन ये तीनो भाँति-भाँति के जलपक्षी है जैसे पनडुब्बी, बतख आदि। उदाहरण तीनो के क्रमानुसार (१) भरत के गुणो का वर्णन अयोध्याकाण्ड मे, (२) साधुओ के गुणो का वर्णन विशेष कर बाल, अरण्य और उत्तरकाण्ड मे, और (३) नाम के गुणो का वर्णन

---

(२) 'ओज' जैसे—'धृक धर्मध्वज धधक धोरी'।
(३) 'प्रसाद' जैसे—'गाथे महामणि और मजुल, अग सब चित चोरही' इनका विस्तार पूर्वक वर्णन पुरौनी मे मिलेगा।
(४) जाति—मात्रिक छन्दो को जाति कहते हैं। जैसे चौपाई, दोहा, सोरठा आदि।
सूचना—प्राय बहुतेरी रामायणो मे 'ध्वनि अवरेव कवित गुण जाती' यही पाठ मिलता है परन्तु किसी-किसी का मत है कि 'गुण' के स्थान मे यदि 'गण' शब्द हो तो 'जाती' शब्द के सहित दोनो शब्द सभी प्रकार के छन्दो के सूचक हो जाए अर्थात् 'गण' शब्द से वर्णिक छन्द और 'जाती' से मात्रिक छन्द समझे जाएगे क्योकि रामचरितमानस मे दोनो प्रकार के छन्दो की रचना है।

१. अर्थ धर्म कामादिक चारी। कहब ज्ञान विज्ञान विचारी—मनहर छन्द मे—
विद्या को वितान है कि वेद को विधान है कि नीति को निधान है कि शास्त्र को प्रमान है।
विपति विहान है कि सम्पति मकान है कि कलि को कृशानु है कि भाषत 'प्रधान' है ॥
भक्ति खरिहान है कि मुक्ति को निशान है कि धर्म की दुकान है कि जगत को त्रान है।
सन्तन को प्राण है कि शकर को ध्यान है कि रामरूप मान कि गुसाईं की जबान है ॥

तो प्राय प्रत्येक काण्ड मे है ही, परन्तु विस्तारपूर्वक विशेषकर इसी काण्ड मे है।

सज्जनो के समाज चारो ओर आम के बगीचे है, कथा मे विश्वास रखना यह बसन्त ऋतु वर्णन की नाईं है।

भक्ति निरूपण विविध विधाना। क्षमा दया द्रुम लता बिताना ।।
सयम नियम[1] फूल फल ज्ञाना। हरिपदरति रस वेद बखाना ।।

अर्थ—नाना प्रकार की भक्ति (अर्थात् नवधा, प्रेमा, परा आदि) का वर्णन करना ये ही अनेक वृक्ष है, क्षमा बेलि है और दया मानो चँदेवारूप हो रही है (अर्थात् जिस प्रकार वृक्षो पर लता फैलकर चँदेवारूप हो रहती है उसी प्रकार भक्ति के आधार से क्षमा-दया से परिपूर्ण हो रहती है)। सयम, नियम ये सब फूल है और इनसे जो ज्ञान की प्राप्ति है वही फल है तथा श्री रामचन्द्रजी के चरणो मे प्रेम होना इसी को वेदो मे रस माना है।

औरउ कथा अनेक प्रसंगा। तेइ शुक पिक बहु बरन विहंगा ।।

अर्थ समय-समय पर जो अनेक दूसरी कथाये वर्णन की गई है वे ही तोता, कोयल आदि अनेक रग के पक्षी है।

दोहा—पुलक बाटिका बाग बन, सुख सुविहग बिहारु[2]।
माली सुमन सनेह जल, सीचत लोचन चारु ।।३७।।

---

१. सयम नियम—योग के आठ अग ये है—(१) सयम अथवा यम, (२) नियम, (३) आसन, (४) प्राणायाम, (५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान, और (८) समाधि।

यम—यथा—'शरीर साधनापेक्ष, नित्य यत्कर्म तद्यम'।

अर्थात्—शरीर मात्र ही से जिसका साधन हो ऐसा जो नित्य कर्म है उसी को 'यम' कहते हैं और ये दश प्रकार के है, यथा—

श्लोक—अहिंसा सत्यमस्तेय, ब्रह्मचर्यं दयार्जवम्।
क्षमा धृतिर्मिताहार, शौच चैव यमा दश ।।

अर्थात् (१) हिंसा न करना, (२) सत्य बोलना, (३) चोरी न करना, (४) ब्रह्मचर्य से रहना, (५) दया करना, (६) नम्रता, (७) क्षमा, (८) धीरज, (९) थोडा भोजन करना, और (१०) शुद्धता—ये दश 'यम' है। कोई-कोई इनमे से पहले पाँच ही को 'यम' कहते है।

नियम—यथा—'नियमस्तु स यत्कर्म, नित्यमागन्तु साधनम्'।

अर्थात्—नियम वह कर्म है जो बाहरी पदार्थों के सहारे से सिद्ध किया जाए (भाव यह कि जिस कार्य की सिद्धि जल, मिट्टी आदि की सहायता से हो)। नियम भी दश हैं, यथा—

श्लोक—शौचमिज्या तपो दान, स्वाध्यायोपस्थ निग्रह।
व्रत मौनोपवास च, स्नानं च नियमा दश ।। (अत्रि)

अर्थात्—(१) शौच, (२) यज्ञ, (३) तप, (४) दान, (५) वेद पढना, (६) इन्द्रियो को जीतना, (७) व्रत, (८) मौन रहना, (९) उपवास, और (१०) स्नान करना—ये दस नियम है। कोई कोई शौच, सन्तोष, तप, वेद पढना और ईश्वर का भजन इन पाँच ही को नियम मानते हैं।

२. पुलक बाटिका बाग बन, सुख सुविहग बिहारु—

जै जै प्राणेश्वर प्रिय अनन्त। जग जासु विभव प्रगटित बसत ।।
जाके यश की परसत सुबात, मन की कलिका वर विकसि जात।
चहुँ दिशि करि सुख युत स्वर विधान, कवि कोकिल कूजत साम गान ।। →

अर्थ—(कथा के कहने-सुनने से) जो शरीर के रोम खडे हो जाते है वे ही मानो फुल-बगिया, बाग और उपवन है और आनन्द ये ही सुन्दर पक्षियो की किलोले है, उत्तम मन यही माली है जो सुन्दर नेत्रो द्वारा स्नेहरूपी जल को सीचता है (अर्थात् जिस प्रकार माली बगिया आदि को सीचकर हरा-भरा रखता है और उसमे सब प्रकार के पक्षी किलोले करते है, इसी प्रकार भक्तो को कथा श्रवण से पूर्ण आनन्द होकर रोमाच और अश्रुपात होने लगता है)।

जे गावहि यह चरित सँभारे। ते इहि ताल चतुर रखवारे ॥
सदा सुनहि सादर नर नारी। ते सुर वर मानस अधिकारी ॥

अर्थ—जो लोग इस रामचरित्र को चतुराई से (पूर्वा पर सन्दर्भ विचार कर वर्णन करते है वे ही लोग इस तालाब के चतुर रखवाले हैं। जो स्त्री-पुरुष इस रामकथा को) सदैव आदर सहित सुना करते है, वे ही इस मानसरोवर पर देवता तुल्य अधिकार रखने वाले है।

अति खल जे विषयी बक कागा। इहि सर निकट न जाहि अभागा ॥
सबुक भेक सिवार समाना[१]। इहाँ न विषय कथा रस नाना ॥

शब्दार्थ—सबुक = घोघा। भेक = मेढक। सिवार (शैवाल) = हरी-हरी काई सी चीज जो तालाबो के पेदो मे ऊगती है, चोई।

अर्थ—बडे दुष्ट, विषय लपट पुरुष जो बगुले और कौए के समान है, वे भाग्यहीन इस तालाब के समीप ही नही जाते। क्योकि इसमे घोघे, मेढक और सिवाररूपी भाँति-भांति की रसभरी कथाये नही है।

तेहि कारण आवत हिय हारे। कामी काक बलाक बेचारे[२] ॥
आवत इहि सर अति कठिनाई। रामकृपा बिन आइ न जाई ॥

अर्थ—इसी कारण से बेचारे काम के चेरे कौए और बगुले हृदय मे हार मान लेते है।

दूसरा अर्थ—इसी कारण कौए और बगुले के समान कामातुर प्राणी यहाँ आकर

मुनि जासु प्रेम रस मत्त भौर, आनन्दित गुंजत ठौर ठौर।
तकि जासु अनुग्रह इन्दु ओर, अति मुदित रहत आश्रित चकोर ॥
सज्जन समाज वाटिका रूप, लहि जाहि लहत शोभा अनूप।
जाके सुमिरत उपजत अनन्द, सब फलत मनोरथ विटप वृन्द ॥
सोई जन ऐसे प्रभुहि भूलि, सरसौ जिन के दृग रही फूलि।
निशि दिवस ताहि भजिये 'प्रताप', जो देत शान्ति नाशत त्रिताप ॥

१ सबुक भेक सिवार समाना—आदि विषयी लोगो का तालाब नीचे लिखे अनुसार है—

(कवित्त)

सारस के नादन को बाद ना सुनात कहू, नाहक ही बकवाद दादुर महा करै।
श्री पति सुकवि जहाँ ओज ना सरोजन की, फुलना फजूल जाहि चित्त दै चहा करै ॥
बकन की बानी की विराजत है राजधानी, काई सो कलित पानी हेरत हहा करै।
घोघन के जाल जामे नरई सिवार व्याल, ऐसे पापी ताल को मराल लै कहा करै ॥

२ तेहि कारण आवत हिय हारे। कामी काक बलाक बेचारे—

सवैया—पुत्र कलत्र सुमित्र चरित्र धरा धन धाम है बधन जी को।
बारहिबार विषै फल खात अघात न जात मनोरथ जी को ॥
आनहु ज्ञान तजौ अभिमान कही सुन 'कान्ह' भजौ सियगी को।
पाइ परम्पद हाथ से जात गई सो गई अब राखु रही को ॥

बेचारे अर्थात् बिना अपना चारा (भोजन घोघा, मेढक आदि) पाये हुए हृदय मे हार मान लेते है और फिर नही आते क्योकि यहाँ पर विषय रस की कथाये तो हैं ही नही।

इस तालाब के समीप आने मे अनेक अडचने है, क्योकि यहाँ श्री रामचन्द्रजी की कृपा बिना आ ही नही सकते।

कठिन कुसग कुपथ कराला। तिनके बचन बाघ हरि व्याला ।।
गृह कारज नाना जजाला[१]। तेइ अति दुर्गम शैल विशाला ।।
बन बहु विषम मोह मद माना। नदी कुतर्क भयकर नाना ।।

अर्थ—बुरी सगति ही यहाँ आने के लिए दुर्गम मार्ग है जिसमे दुष्टो के वचन ही बाघ, सिंह और सर्प की नाई है (अर्थात् बुरी सगति और दुष्ट लोगो के कुतर्क से भरे हुए वचन लोगो को राम कथा के समीप जाने मे बाधा डालते है)। गृहस्थी के काम और दूसरे झमेले ये ही मानो भारी पर्वत है जिनका उल्लघन करना कठिन है। (भाव यह कि भोजन का उपार्जन, गृहस्थी का निर्वाह आदि मे फँसा हुआ मनुष्य राम कथा के पढने-सुनने के निमित्त अवकाश ही नही पाता)। भाँति-भाँति के ममता, मोह और अभिमान ये ही घने जगल है और अनेक भाँति के बुरे विचार ही मानो भयावनी नदियाँ है (अर्थात् ममता, मोह, अभिमान और बुरे विचारो के कारण ही रामकथारूपीमानस तक पहुँचना दुर्लभ है)।

दोहा—जे श्रद्धा सम्बल रहित, नहि संतन्ह कर साथ।
तिन कहँ मानस अगम अति, जिनहिं न प्रिय रघुनाथ[२] ।।३८।।

शब्दार्थ—सम्बल = राह-खर्च।

अर्थ—ये लोग विश्वासरूपी राह-खर्च से रहित हैं और जिन्हे सन्तों की सगति भी नही है तथा जिन्हे श्री रामचन्द्रजी प्यारे नही है तिनके लिए तालाब का मार्ग बहुत ही कठिन है (अर्थात् किसी भी स्थान मे जाने के लिए राह-खर्च और साथी तथा दृढ निश्चय न होने से पहुँचना हो ही नही सकता, इसी प्रकार कथा मे विश्वास, सज्जनो की सगति और श्री रामचन्द्रजी की भक्ति जिन्हे नही है, वे रामचरित सुनने को कैसे जा सकेगे ?)।

जो करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहि नीद जुड़ाई होई[३] ।।

---

१. गृह कारज नाना जंजाला—

सवैया—जिन वेद पुराण पढे सगरे बिगरे सब पेट उबारन मे।
दिन रैन भ्रमे चहुँ ओर वृथा बहु बातन्ह की चतुराइन मे ।।
दिन रात खुशामद पाजिन की अपनो परलोक बिगारन मे।
तुलसी विसराम मिलो न कहूँ विसराम है राम के पायन मे ।।

२. जिनहिं न प्रिय रघुनाथ—

सवैया—पाइ नसीब ते मानुष देह फस्यो तरुणीन के हाइन भाइन।
भाइन मे कियो रागरु द्वेष न काहू गन्यो अपनी ही बडाइन ।।
डाइन सी तृष्णा के लिए कल्पद्रुम छोडि के सेवैं बकाइन।
का इन की गति हू है दई जिन की नहिं प्रीति सियापति पाइन ।।

३. जो करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहिं नीद जुडाई होई—

(कवित्त)

भक्तन के सग एक आलसी सकोच वश राम यश सुनबे को गयो काहू प्राणी के।
तहा जाइ सोयो परचूनी की दुकान धरी आटो दियो गाहक तराजू तौल पानी के ।।
काशी राम तौलौ एक गाय तहा धाय आई लागी दार खान चढी चित्त अभिमानी के।
लाठी को उठाय टिटकारी ललकारि पुनि टाली कह घाली दुष्ट पीठ मे पुरानी के ।।

जडता जाड विषम उर लागा । गयहु न मज्जन पाव अभागा[1] ।।

अर्थ—इतने पर भी जो कोई दुख सहकर वहाँ जाए भी तो वहाँ पहुँचते ही उसे नीद रूपी ज्वर चढ आता है (अर्थात् कथा सुनने को किसी न किसी प्रकार पहुँच भी गए तो वहाँ जाकर नीद आ जाती है फिर कथा कौन सुने) और हृदय मे मूर्खता रूपी असह्य जाडा लगने लगता है जिससे वह अभागा वहाँ पहुँचकर भी स्नान नही कर पाता (अर्थात् ज्वर आने के पूर्व जो भारी जाडा लगने लगता है, वही श्रोता के लिए मूर्खता है जिसके कारण कथा पर ध्यान न देने से नीदवश हो कथा नही सुन पाता जैसे ज्वर की ठंड के कारण लोग स्नान नही कर सकते) ।

करि न जाइ सर मज्जन पाना । फिरि आवै समेत अभिमाना[2] ।।
जो बहोरि कोउ पूछन आवा । सर निदा कर ताहि बुझावा[3] ।।

अर्थ—न तो तालाब के स्नान और न उसके पानी का पीना हो सकता है वह घमड के साथ लौट आता है । फिर जो कोई वहाँ का हाल पूछने को आया तो उसे तालाब की बुराई कर सुनाई ।

सकल विघ्न व्यापहि नहि तेही । राम सुकृपा विलोकहि जेही ।।
सोइ सादर सर मज्जन करई । महाघोर त्रय ताप न जरई ।।

अर्थ—जिसे श्री रामचन्द्रजी बडी कृपा से देखते है, उसे कोई भी विघ्न बाधा नही कर सकते । वही आदरपूर्वक तालाब मे स्नान करता है और उसी को तीनो बडे भारी ताप भी नही सताते ।

ते नर यह सर तजहि न काऊ । जिनके रामचरण भल भाऊ[4] ।।
जो नहाइ चह इहि सर भाई । तौ सतसग करौ मन लाई ।।

---

१. जडता जाड विषम उर लागा । गयहु न मज्जन पाव अभागा—भाग्यहीन पुरुष मूर्खता-वश ईश्वर के गुणानुवाद सुनते-समझते नही । कहा भी तो है—

दोहा—मूरख गुण समझै नही, तौ न गुणी मे चूक ।
कहा भई दिन की विभौ, देखी जो न उलूक ।।

२. करि न जाइ सर मज्जन पाना । फिरि आवै समेत अभिमाना—

भजन—काया हरि के काम न आई ।।

भाव भक्ति जहँ हरियश सुनियत तहा जात अलसाई ।
लोभातुर ह्वै काम मनोरथ तहाँ सुनत उठि धाई ।।
जब लगि श्याम अग नहिं परसत आँधर ज्यो भरभाई ।
'सूरदास' भगवन्त भजन बिन विषय परम विष खाई ।।

३. सर निंदा कर ताहि बुझावा—

(कवित्त)

गुण को न पूछे कोऊ औगुण की बात पूछै कहा भयो दई कलियुग यो खरानो है ।
पोथी औ पुरान ज्ञान ठट्ठन मे डार देत चुगुल चबाइन को मान ठहरानो है ।।
'कादर' कहत जासो कछु कहिबे की नाहिं जगत की रीति देखि चुप मन मानो है ।
खोलि देखो हियो सब भाँतिन सो भाँति भाय गुणना हिरानो गुण गाहक हिरानो है ।।

४. ते नर यह सर तजहिं न काऊ । जिनके रामचरण भल भाऊ—

राम चरण रत प्राणियो का बहुधा यह मत है कि— →

अर्थ—वे लोग कभी भी इस मानसरोवर को नही छोडते जिनकी उत्तम प्रीति श्री रामचन्द्रजी के चरणो मे है। हे भाई ! यदि आप लोग इस तालाब मे स्नान करना चाहे तो चित्त लगाकर सज्जनो की सगति करे।

अस मानस मानस चष चाही। भइ कवि बुद्धि विमल अवगाही ॥
भयउ हृदय आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू[1] ॥

अर्थ—ऐसे मान सरोवर को मन के नेत्रो से देखकर कवि की बुद्धि निर्मल और गभीर हो गई। हृदय मे आनद की लहर उठी और प्रेम तथा आल्हाद की धारा उमड उठी।

चली सुभग कविता सरिता सी। राम विमल यश जलभरिता सी[2] ॥
सरयू नाम सुमंगल मूला। लोक वेद मत मंजुल कूला[3] ॥

सवैया—गहु रे हरि के पदपकज तू परि पूरो सिखावन है यहु रे।
यहु रे जग झूठो है देखु चितै हरि नाम है सत्य सोई कहु रे ॥
कहु रे न कहूँ पर द्रोह कि बात 'सुवश' कहै कोउ सो सहु रे ॥
सहु रे मन तो सौ करौ विनती रघुनाथ निरन्तर को गहु रे ॥

१. भयऊ हृदय आनद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू—
स्मरण रहे कि गोसाईंजी ने जो रामकथा अपने गुरुजी से बारम्बार सुनी थी उसीसे इनका मानस रूपी तालाब जल से भर गया था। जब अनेक सन्तो के मुख से इन्होने (कई) कई प्रकार से यह कथा सुनी तो इनके मानस तालाब मे मानो वर्षा ऋतु का बहुत-सा नवीन मेघ जल आकर भर गया और जब गोस्वामीजी ने इस पर विशेष विचार किया तो इनका हृदय उस राम कथा के जल से इतना परिपूर्ण हो गया कि वह रामायणरूपी कविता नदी द्वारा बह निकला। उत्तर रामचरित मे लिखा है कि 'पूरोत्पीड़े तड़ागस्य परिवाह प्रतिक्रिया' अर्थात् जल स्थान यदि पानी से विशेष भर जाए तो उसे बहा देना ही उत्तम उपाय है। साराश यह है कि शिक्षा और सत-कथन को सुनकर विचारपूर्वक गोस्वामीजी ने रामायण ग्रथ का निर्माण किया।

२. चली सुभग कविता सरिता सी। राम विमल यश जलभरिता सी—

(कवित्त)

धनिक भिखारिन की नर अरु नारिन की, कूढ कार बारिन की छाती सरसातो कौन।
कहैं कवि अम्बादत्त बूढन ते बालन लो, राम जय हल्लन सो हीय हरषातो कौन ॥
नये मतवारे मतवारन के कान काटि, कलिहू मे रीति नीति प्रीति दरसातो कौन।
होतो जो न तुलसी गोसाईं कविराज आज, रामायण परम पियूष बरसातो कौन ॥

३. लोक वेद मत मजुल कूला—
जिस प्रकार सरयू नदी के दो किनारे है—एक दाहिना, दूसरा बायाँ। इसी प्रकार कविता-रूपी सरयू के भी दो किनारे है -एक वेद मत किनारा और दूसरा लोकमत किनारा। भाव यह है कि कवितारूपी सरयू नदी वेदमत और लोकमत के भीतर ही है, इन दोनों मतो का उल्लघन उसमे नही है, यदि है भी तो वह राक्षसो के अत्याचार रूपी अतिवृष्टि की बाढ समझनी चाहिए। बेनी कवि ने इसकी छटा यो उतारी है—

क० ' वेदमत शोधि शोधि बोध के पुराण सबै, सन्त औ असन्तन को भेद को बतावतो।
कपटी कुराही कूर कलि के कुचाली जीव, कौन राम नाम हू की चरचा चलावतो ॥
वेनी कवि कहैं मानौ मानौ हो प्रतीत यह, पाहन हिये मे कौन प्रेम भगावतो।
भारी भवसागर उतारतो कवन पार, जो पै यह रामयश तुलसी न गावतो ॥

नदी पुनीत सुमानस नंदिनि । कलिमल तृण तरु मूल निकंदिनि ।।

अर्थ—उसमे से कवितारूपी सुन्दर नदी बह निकली जिसमे श्री रामचन्द्रजी की निर्मल कीर्तिरूपी जल भरा है। वही सरयू नाम की नदी सम्पूर्ण मगलो की जड है और लोकमत तथा वेदमत उसके दोनो किनारे है । मानसरोवर से उत्पन्न हुई, यह पवित्र नदी कलियुग के पाप रूपी तिनकाओं और वृक्षो की जडो को नाश करनेवाली हुई ।

दोहा—श्रोता त्रिविधि[1] समाज पुर, ग्राम नगर दुहुँ कूल ।
सन्त सभा अनुपम अवध, सकल सुमंगल मूल ।।३९।।

अर्थ—उत्तम, मध्यम और लघु ऐसे तीन प्रकार के श्रोताओ की समाज मानो नदी के किनारे पर क्रमानुसार नगर, गाँव और पुर है तथा सज्जनो की सभा उपमा रहित अयोध्यापुरी के समान है जो सम्पूर्ण उत्तम मगल की देने वाली है ।

सूचना—मिलान बडी बुद्धिमानी से किया है, उत्तम श्रोता बहुत कम रहते है सो नगर भी भूमि पर बहुत कम होते है, मध्यम श्रोता कुछ अधिक होते है सो गाँव भी नगरो से अधिक पाये जाते है और लघु श्रोता बहुत रहते है इसी प्रकार पुर भी बहुतायत से मिलते है ।

रामभक्ति सुरसरि तहँ आई । मिली सुकीरति सरजु सुहाई ।।
सानुज राम समर यश पावन । मिलेउ महानद सोन सुहावन ।।

अर्थ—रामभक्ति रूपी गगाजी मे आकर रामकीर्ति रूपी सुहावनी सरयू मिली है ।

सूचना—(१) रामभक्ति रूपी गगा जो अन्यत्र से बहती आई है और जिसमे सरयू मिली है। उसका लक्ष्य १४४वें दोहे के आगे 'विधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहु बारा' आदि है । इसमे पूर्ण रामभक्ति दर्शाई गई है कि मनु-शतरूपा ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश के अनेक बार आने पर भी उनसे वर न माँगा, श्री रामरूप को देख उन्ही से वरदान माँगा ।

---

१. श्रोता त्रिविधि—

(१) उत्तम श्रोता—जो ध्यान लगाकर प्रेम से परमेश्वर के गुणानुवाद सुनकर हृदय मे धारण कर लेते है । जैसे—

दोहा—सूपा छेरी बाछरा, भँवर चकोर मराल ।
ये षट उत्तम जानिये, रस पावे गोपाल ।।

(२) मध्यम श्रोता—जो अवसर पाकर कभी-कभी कुछ रामकथा सुन लिया करता है (कभी लोगो के दबाव से और कभी दिखाने के हेतु) । जैसे—

दोहा—मृतिका चलनी चीचरा (किल्ली), भैसा मत्सर घूर (अरवा) ।
ये षट मध्यम जानिये, रस ना पावै मूर ।।

(३) लघु श्रोता के बारे मे कथा है कि एक बजाज को दूकान के काम मे दिन-रात व्यग्रता से लगे रहने के कारण बडी रात तक फुर्सत ही न मिलती थी । किसी दिन अपने मित्रो के दबाव मे पडकर वह ज्यो-त्यो करके किसी के यहाँ कथा सुनने को गया और पौराणिकजी के पास ही जा डटा। थोडे ही समय मे थकावट के मारे निद्रावश हो वह स्वप्न देखने लगा कि मुझे किसी ग्राहक को मारकीन फाडकर देना है । दैवयोग से पुराणी जी की बनात के छोडकर उसके हाथ पड गए । स्वप्न ही मे उसी को मारकीन समझकर 'चर्र' से फाड दिया । यह कौतुक देखकर श्रोतागण हँस पडे और पुराणीजी बेचारे चकराये तथा बजाजराम का कहना ही क्या—वे तो घबराहट, लज्जा और अपराध के कारण भौचक्के से रह गए ।

(२) **रामकीर्ति का लक्ष्य**— शिवजी के वाक्य पार्वती प्रति ११५वे दोहे के पश्चात् 'अगुर्णहिं सगुणहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुराण बुध वेदा' से लगाकर पूर्ण ३७ पक्ति अर्थात् 'सुनि शिव के भ्रम भजन बचना। मिटि गइ सब कुतर्क की रचना' तक। लक्ष्मण समेत श्री रामचन्द्रजी का युद्ध मे यश प्राप्त करना यही सुहावना सोनभद्र नामका बडा नद उनमे आ मिला है।

युग बिच भक्ति देबधुनि धारा। सोहत सहित सुबिरति बिचारा ॥
त्रिबिधि ताप त्रासक तिमुहानी। रामसरूप सिन्धु समुहानी ॥

अर्थ—दोनो के बीच मे गगाजी कैसी शोभायमान लगती है जैसे ज्ञान और वैराग्य के बीच मे भक्ति। इस प्रकार तीनो प्रकार के तापों को मिटाने वाली त्रय सगम वाली नदी श्री रामचन्द्रजी के स्वरूपरूपी समुद्र की ओर बढी।

मानसमूल मिली सुरसरिही[1]। सुनत सुजन मन पावन करही ॥
बिच बिच कथा विचित्र विभागा। जनु सरि तीर तीर बन बागा[2] ॥

अर्थ—इसका उद्‌गम स्थान रामचरितमानस है और सगम गगाजी मे है इसी हेतु यह सुनने वाले बुद्धिमानो के हृदय को पवित्र करती है (भाव यह कि जिसकी उत्पत्ति शुद्ध है और जिसके चरित्र अन्त तक शुद्ध रहते है वह दूसरो के आचरण सुधारने मे सर्वथा समर्थ है)।

दूसरा अर्थ—जो कथा शुद्ध मन से कही जाती है और जिसका परिणाम मुक्ति है। उसके सुनने ही से लोग सुजन (अर्थात् सदाचारी और शुद्ध चित्त वाले) हो जाते है।

बीच-बीच मे जो अद्‌भुत कथाओ का प्रसग है वही मानो नदी के किनारो पर के बन और बगीचे हैं।

उमा महेश विवाह बराती। ते जलचर अगणित बहु भांती ॥
रघुवर जन्म अनन्द बधाई[3]। भँवर तरंग मनोहरताई[4] ॥

१. मानसमूल मिली सुरसरिही—उत्तर रामचरित मे कहा है—

श्लोक—उत्पत्ति परिपूताया किमस्या पावनान्तरै।
तीर्थोदक च वन्हिश्च नान्यत शुद्धि मर्हत ॥

अर्थात्—जिन सीताजी की उत्पत्ति ही पवित्र है उन्हे और कोई क्या पवित्र करेगा? जैसे गगा आदि तीर्थस्थानो का जल और अग्नि इन्हे पवित्र करने वाला दूसरा कोई नही है।

२. बिच बिच कथा विचित्र विभागा। जनु सरि तीर तीर बन बागा—(अ) कविता रूपी नदी के किनारे के बन अर्थात् विषम वार्त्तायुक्त कथाएँ, जैसे—(१) सतीजी का मोह, (२) सतीजी का तन-त्याग, (३) नारद-मोह, (४) राजा प्रतापभानु की कथा, (५) रावण आदि तीन भाइयो का जन्म वृत्तान्त, और (६) रावण का पराक्रम।
(ब) कविता रूपी नदी के किनारे बाग अर्थात् उत्तम वार्त्ताएँ जैसे - (१) याज्ञवल्क्य और भरद्वाज मुनि का सवाद, (२) पार्वतीजी का जन्म, (३) शिव-पार्वती का विवाह, (४) शिव-पार्वती का सवाद, (५) स्वायम्भू और शतरूप की कथा।

३. रघुवर जन्म अनन्द बधाई—

क० —बेलि फल गई कौशिला के कामना की कल, फैल्यो भाग नागनर सूरज सुमन को।
'लछिराम' जाग्यो दशरथ को अखड ओज, मडित भुवन दल्यो दावा दुशमन को ॥
रामचन्द्र भरत लषन शत्रुहन चारु, ब्रह्म अवतार भार भूतल दमन को।
गाज्यो रघुवश अवतश अमरेश राज्यो, औधअंश ढेर मे सुमेर त्रिभुवन को ॥

४. भँवर तरग मनोहरताई—आनन्द बधाई की तुलना जो भँवर से की गई है उसका यह→

अर्थ—शिव और पार्वतीजी के विवाह के समय के जो बराती थे वे ही मानो नाना प्रकार के हर एक जल जतु है। श्री रामचन्द्रजी के जन्म दिन की जो आनन्द बधाइयाँ हैं वे ही मानो मन हरण नदी के भँवर और लहरें है।

दोहा—बालचरित चहुँ बंधु के,[१] वनज विपुल बहुरंग।
नृपरानी परिजन सुकृत, मधुकर बारि विहंग ॥४०॥

अर्थ—चारो भाइयो के बालचरित्र ये ही मानो कविता नदी के बहुत से रग-बिरगे कमल है और राजा, रानी तथा कुटुम्बी लोगो का पुण्य ये ही मानो भौरे और जल-पक्षी है।

सीय स्वयम्बर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छवि छाई ॥
नदी नाव पटु प्रश्न अनेका। केवट कुशल उतर सविवेका ॥

अर्थ—सीताजी के स्वयम्बर की जो मनोहर कथा है वही मानो उस मनोहर नदी की शोभा फैल रही है। कथा मे जो बहुतेरे प्रश्न है वे ही उस नदी मे नाव के तुल्य हैं और प्रश्नो के जो विचार सहित उत्तर है वे मानो चतुर केवट है।

सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिक समाज सोह सरि सोई ॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी[२]। घाट सुबंध राम वर बानी ॥

अर्थ—कथा सुनकर जो पीछे से आपस मे बातचीत होती है वही मानो नदी के किनारे पर यात्रियो का समाज है। परशुरामजी का क्रोध ये ही तीक्ष्ण धारा है, उसमे श्री रामचन्द्रजी के समयोचित वचन उत्तम बँधे हुए घाट है।

सानुज राम विवाह उछाहू। सो शुभ उमग सुखद सब काहू ॥
कहत सुनत हर्षहि पुलकाही। ते सुकृती मन मुदित नहाही ॥

अर्थ—सब भाइयो समेत श्री रामचन्द्रजी के विवाह का उत्सव यही मानो सबको सुख देने वाली पानी की बाढ है। जो सत्कर्मी पुरुष कथा के कहने अथवा सुनने से प्रसन्न हो कर रोमाचित होते है वे ही मानो आनन्द पाकर उस तालाब मे स्नान करते है।

रामतिलक हित मगल साजा[३]। पर्व योग जनु जुरे समाजा ॥

कारण है कि नदी मे भँवर सुहावने दिखाई पडते है परन्तु उसमे पडने वाला जीव उसी मे डूब जाता है। इसी प्रकार श्रीराम जन्मोत्सव के आनन्द मे लोग ऐसे मग्न हो गये थे कि उन्हे अपने तन-बदन की भी सुध-बुध भूल गई थी और आनन्द बधाई की तरगे तो लोक प्रसिद्ध ही है।

१. बालचरित चहुँ बन्धु के—

कवित्त—काछनी कमर लसै छोरै पटुका की पीरे फहरै बसन हीरेलाल गुणगथ के।
'लछिराम' ललित हरीरे धनुबान कर, लोचन विशाल भाल भाग समरथ के ॥
रामचन्द्र भरत लखन रिपुसूदन पै, वै रहे अपार ओज आनन्द अकथ के।
करत बिहार सग तीर सरयू पै चारो फल से कुमार महाराज दशरथ के ॥

२. घोर धार भृगुनाथ रिसानी—कविता प्रचारक मासिक पत्र से—

सवैया—सीस जटा बिचभाल त्रिपुड्र प्रभा सो सबै अँग भूति धरे हौ।
पाणि पवित्र कमडल मडित चारु जनेऊ सु शान्त अरे हौ ॥
उज्ज्वल वश प्रशसित ह्वै यह बान शरासन हूँ जकरे हौ।
है महिमाँह किते वर वीर तू क्यो भृगुनन्द जरूर भरे हौ ॥

३. रामतिलक हित मगल साजा—कुडलियाँ रामायण से—

→

परी जासु फल बिपति घनेरी। काई कुमति कैकयी केरी[1] ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी के राजतिलक के लिये जो शुभ तैयारियाँ हुई थी वे ही पुण्य-काल मे मानो यात्रियो की भीड है, उसमे कैकेयी की दुर्बुद्धि काई के समान हो गई, जिसके कारण भारी बिपत्ति आ पडी।

दोहा—शमन अमित उतपात सब, भरतचरित जप याग।
कलिअघ खल अवगुण कथन, ते जलमल बक काग ॥४१॥

अर्थ—भरतजी के चरित्र ही जप और यज्ञ के समान सपूर्ण उपद्रवो को शान्ति करने वाले है, कलियुग के पाप और दुष्टो के अवगुणो का वर्णन यही मानो जल के मलीन पक्षी बगुले और कौए है (जो उत्तरकाण्ड के अत मे और इसी काण्ड के आरम्भ मे मिलेगे)।

कीरति सरित छहूँ ऋतु रूरी। समय सुहावनि पावनि भूरी[2] ॥
हिम हिमशैलसुता शिव ब्याहू[3]। शिशिर सुखद प्रभु जन्म उछाहू[4] ॥

नृप बातें प्रकटी सबै, मुनि रघुवर समुझाय।
नेम क्रिया व्रत धर्म नृप, तिलक भेद विधि गाय ॥
तिलक भेद विधि गाय, कहेउ भूपतिहि बुलाई।
मगल वस्तु मँगाय तिलक की घरी सुहाई ॥
घरी सुहाई कालि है राम राज्य बैठहि जबै।
बाजे बिपुल बधाव पुर नृप बातै प्रकटी सबै ॥

१. काई कुमति कैकयी केरी—

सवैया—ऐसे नरेश रहे अवधेश सुरेशहु की जिन कीन्ह सहाई।
और महत्व कहा लौ कहौ करुणानिधि से सुत गोद खिलाई ॥
ते मतिमन्द छली तिरिया रघुनदन को बन पेलि पठाई।
राम सो बेटा बिछोहत ही हिय फाटि गयो पै दरार न आई ॥

(पृ० ७४ की टिप्पणी भी देखने योग्य है।)

२ कीरति सरित छहूँ ऋतु रूरी। समय सुहावनि पावनि भूरी—और नदी नाले कोई तो कभी-कभी सूख जाते है, कोई-कोई शोभा हीन हो जाते है और कभी-कभी अपवित्र भी हो जाते है परन्तु कीर्त्ति रूपी नदी सदा भरी-पूरी, शोभा युक्त तथा पवित्र ही बनी रहती है। जैसा कहा है—

कवित्त—जार परे जोर जात गर्व परे भूमि जात जोबन अनग रस रस है।
गढ ढहि जात गरुआई औ गरब जात जात सुख साहिबी समूह सरबस है ॥
कहै 'हेमनाथ' धनसपति बिपति जात जात दुख दारिद दरुन दर बस है।
बाग कटि जात कुआँ ताल पटि जात नदी नद घटि जात पै न जात जग जस है ॥

३ हिम हिमशैलसुता शिव ब्याहू—ऋतुओ के मिलान की उत्तमता विचारणीय है—

(क) हिमऋतु (अर्थात् अगहन, पूस) में अनेक स्थानो मे हिम पडता है ऐसे ही राम कथा रूपी सरित मे विशेष हिम के स्थान हिमालय की पुत्री का विवाह वर्णित है।

(ख) हेमत ऋतु मे ठड के कारण लोगो के हृदय काप उठते है, यहाँ पर स्त्रियो, बालको तथा अज्ञानी पुरुषो का शिवजी की बरात देखकर भयभीत होना सूचित है।

(ग) पाला का कसाला उन्हे नही सालता जिनके पास इससे बचने का मसाला दुशाला आदि के रूप से रहता है। इसी प्रकार देवताओ और सज्जनो को शिवजी के विवाह से आनन्द ही हुआ।

४. शिशिर सुखद प्रभु जन्म उछाहू—शिशिर ऋतु (अर्थात् माघ-फागुन) मे मकर सक्रान्त→

अर्थ—(अब नदी मे छओं ऋतुओ का समावेश कर रामायण की कथा को दुहराते है) कीर्ति रूपी नदी छ ऋतुओ मे भरी-पूरी रहती है तो भी समय-समय पर विशेष सुहावनी और पवित्र हो जाती है। इस नदी मे हेमन्त ऋतु मानो हिमाद्रिसुता पार्वतीजी और शिवजी का विवाह है तथा श्री रामचन्द्रजी के जन्म का उत्सव सुख देने वाली शिशिर ऋतु है।

बरनब राम विबाह समाजू। सो मुद मगलमय ऋतुराजू[1] ।।
ग्रीषम दुसह रामबनगमनू। पंथ कथा खर आतप पवनू ।।

अर्थ– श्री रामचन्द्रजी के विवाह के ठाट-बाट का वर्णन यही मानो आनन्द मगल की देने वाली वसत ऋतु है। (भाव यह कि जिस प्रकार वसत ऋतु मे प्राय बहुतेरे रग-बिरग के वृक्ष फूलते-फलते तथा हरे-भरे रहते है, इसी प्रकार श्री रामचन्द्रजी के विवाह के समय सम्पूर्ण अयोध्या और जनकपुर निवासी तथा अन्य भक्तजन भी प्रसन्न चित्त तथा नये-नये रग-बिरगे वस्त्र आभूषणो से सुशोभित हुए थे तथा उन्होने गली, कूचे समेत नगरो को भी सुसज्जित किया था)।

श्री रामचन्द्रजी का वनवास ही दु खदाई ग्रीष्म ऋतु है जिसमे मार्ग की कथा तेज धूप और हवा है। तात्पर्य यह है कि जैसे जेठ मे इतनी कडी धूप पडती है कि जिससे सभी प्राणी व्याकुल हो जाते है उसी प्रकार श्री रामचन्द्रजी के वनगमन से अयोध्यावासी बहुत ही व्याकुल हुए और उनके लौटने तक व्याकुल बने रहे। कहा है 'देखि दुपहरी जेठ की, छाहौ चाहत छाँह'।

वर्षा घोर निशाचर रारी। सुरकुल शालि सुमंगलकारी ।।
रामराजसुखविनय बडाई[2]। बिशद सुखद सोइ शरद सुहाई ।।

अर्थ—भयकर राक्षसो से तकरार यही वर्षा ऋतु है जो धानरूपी देवबश के लिये मगल देने वाली है (अर्थात् असख्य राक्षसो के मारे जाने से देवगणो को आनन्द प्राप्त हुआ)। श्री रामचन्द्रजी के राज्य का सुख, नम्रता और बडाई यही सुख देने वाली स्वच्छ और सुहावनी शरद ऋतु है।

सतीशिरोमणि सियगुण गाथा[3]। सोइ गुण अमल अनूपम पाथा ।।
भरत सुभाव सुशीतलताई। सदा एक रस बरणि न जाई ।।

के अनेक तीर्थ स्थानो की समाज तथा फागुन मे होली होती है। इसी प्रकार रामजन्मोत्सब के समाज और उस समय 'मृगमद चन्दन कुकुम कीचा। मैत्री सकल वीथिन बिच बीचा' का मिलान यथा योग्य ही है।

१ सो मुद मगलमय ऋतुराजू—
राग वसत—नवल रघुनाथ नव नवल श्री जानकी नवल ऋतुकत वसत आई।
नवल कुसुमावली फूल चहु दिशि रही नवल मारुत नव सुगध छाई ।।
नवल भूषण बसन पहन दोउ रँग मगे नवल पिया सखी निरखे सुहाई।
नवल गुण रूप यौवन जडत नित नयो 'रतन हरी' देत आशिष बधाई ।।

२. रामराज सुख विनय बडाई—काव्य सरोज से —
क०—फेन सो भटिक सो फणीश सो फिरत फूलो सुयश तिहारो राम फूलो कुन्द फूल सौ।
तार सो तुषार सो तपोबल सो तीरथ सो तरासो तमीपति सो तूलिका सो तूल सो ।।
श्रीपति महा मुनीश मन सो मराल सो मराल जान मान सो मनोजतरु मूल सो।
गौरी सो गिरा सो गज बदन गजाधर सो गगा सो गऊ सो गगधरा सो गधूल सो ।।

३. सती शिरोमणि सियगुण गाथा—श्री सीताजी के गुणानुवाद अयोध्याकाण्ड तथा सुन्दर→

अर्थ—पतिव्रताओ मे श्रेष्ठ सीताजी के गुणानुवाद वही पानी के उपमा रहित और निर्मल गुण है। भरतजी का स्वभाव पानी की शीतलता है जो सदैव एक-सी बनी रहती है और जिसका वर्णन नही हो सकता है।

दोहा—अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परस्पर हास[1]।
भायप भलि चहुँ बधु की, जल माधुरी सुबास ॥४२॥

अर्थ—चारो भाइयो का आपस मे देखना, बोलना, मिलना, हँसना और सुन्दर भाई-पना यही जल की मिठास और सुगधि है।

आरति विनय दीनता मोरी[2]। लघुता ललित सुवारि न खोरी ॥
अद्भुत सलिल सुनत गुणकारी। आस पियास मनोमलहारी ॥

अर्थ—मेरी घबराहट, नम्रता और गरीबी ही सुन्दर जल को हलकापन है, कुछ दूषण नही। ये जल बडा अनोखा है कि जिसके सुनने ही से गुण होता है और जो आशारूपी प्यास तथा मन के दोषो को मिटाने वाला है।

रामसुप्रेमहि पोषतपानी। हरत सकल कलिकलुष गलानी ॥
भव श्रम शोषक तोषक तोषा। शमन दुरित दुख दारिद दोषा[3] ॥

काण्ड रामायण की श्री विनायकी टीका और पुरौनी मे विस्तार सहित वर्णन किये गये है। तथापि पतिव्रताओ की दिनचर्या सक्षेप मे यो है—

दोहा—खान पान पीछू करत, सोवति पिछले छोर।
प्रान पियारे ते प्रथम, जगति भावती भोर ॥

१. अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परस्पर हास, इत्यादि—सूर सगीत से—

राग बिलावल—धनुही बान लिये कर डोलत।
चारो वीर सग इक सोहत वचन मनोहर बोलत ॥
लक्षमन भरत शत्रुघन सुन्दर राजिवलोचन राम।
अति सुकुमार परम पुरुषारथ मुक्ति धर्म धन काम ॥
कटि पटपीतपिछौरी बाँधे काकपक्ष शिष सीस।
शर क्रीडा दिन देखन आवत नारद सुर तेंतीस ॥
शिव मन सोच इन्द्र मन आनन्द सुख दुख ब्रह्म समान।
दिति दुर्बल अति अदिति दृष्ट चित देखि सूर सधान ॥

२. आरति विनय दीनता मोरी—

क० 'जनम गमायो राम नाम को न गायो कछू कीन्हो ना उपाय भवसिन्धु के तरन को।
शरन मे जैहौ कौन वदन दिखैहौ हाय औगुण भरो हौ गुण एकौ ना शरन को ॥
'रसिक विहारी' है न आपनो भरोसो रच को सहाय शोक नद पार के करन को।
परो मझधार बीच हौ तो निराधार अब एक ही अधार रघुराय के चरन को ॥

३. भव श्रम शोषक तोषक तोषा। शमन दुरित दु:ख दारिद दोषा—

जैसा कि महात्मा कपिंजल ने कहा है—

श्लोक—रामेति कीर्तन राजन् सर्वरोगविनाशनम्।
प्रायश्चित्त हि पापाना मुक्ति द सर्व देहिनाम् ॥

अर्थात्—हे राजन्! 'राम' इस नाम का कीर्तन सकल रोगो का नाश करता है, यही सब पापो का प्रायश्चित्त है, और यही सम्पूर्ण प्राणियो को मुक्ति देने वाला है।

अर्थ—यह जल श्री रामचन्द्रजी के प्रेम को पुष्ट करता है और कलियुग के सम्पूर्ण पापो की घृणा को नाश करता है। यह जल ससार के आवागमन के श्रम को मिटाता है और सतोष को भी सतोष देने वाला है तथा घोर दु ख और दरिद्रता के दोषो को दूर कर देता है।

काम कोह मद मोह नसावन। बिमल बिवेक बिराग बढ़ावन ।।
सादर मज्जन पान किये ते। मिटहि पाप परिताप हिये ते ।।

अर्थ—काम, क्रोध, मद और मोह का नाश करने वाला तथा निर्मल विवेक और वैराग्य का बढाने वाला है। यदि यह आदरपूर्वक नहाने और पीने के काम मे लाया जाए तो हृदय के पाप और दु ख मिट जाए।

जिन इहि वारि न मानस धोये। ते कायर कलिकाल बिगोये[1] ।।
तृषित निरखि रवि कर भव वारी[2] । फिरहि मृगा जिमि जीव दुखारी ।।

अर्थ—जिन्होने इस जल से अपने मन को पवित्र नही किया, उन कायरो को कलियुग ने नाश कर दिया है। प्राणी इस प्रकार से दु खित होकर भटकते फिरते है जिस प्रकार प्यास का मारा हिरन सूर्य की किरणो से उत्पन्न भ्रमरूप पानी (अर्थात् मृगजल) को देखकर दौडता फिरता है।

दोहा—मति अनुहारि सुवारि वर, गुन गन मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी शंकरहि, कह कवि कथा सुहाइ ।।

अर्थ—अपनी बुद्धि के अनुसार इस उत्तम जल के गुण समूहो मे अपने मन को स्नान करा कर तथा शिव-पार्वतीजी का स्मरण कर मैं तुलसीदास सुन्दर कथा का वर्णन करता हूँ।

सूचना—३५वे दोहे से आरम्भ करके इसी दोहे के अन्त तक के नौ दोहे श्री भवानी और शकरजी के नाम से सपुटित है। इस हेतु भक्तिपूर्वक इनका पाठ करने से अनेक मनो-कामनाये सिद्ध हो सकती है।

दोहा—अब रघुपति पद पंकरुह, हिय धरि पाइ प्रसाद[3] ।
कहौ युगल मुनिवर्य कर, मिलन सुभग संवाद[4] ।।४३।।

---

१ जिन इहि वारि न मानस धोये। ते कायर कलिकाल बिगोये—

(कवित्त)

मानुष जनम करतार तोहि दीन्हो कूर ताकी रे कृतघ्नि शरण तू न पर्‌यो रहै।
चौरासी भ्रम्यो है कहूँ नेक न ब्रम्यो है भाजा भाज यो श्रम्यो है अघ ओघने भर्‌यो रहै।।
पाँचन सौ मिलि खपरा मे मगरूर बैठि जो न करै काम जासो कारज सर्‌यो रहै।
नाम सो न भेट्‌यो 'विश्वनाथ' यो ही बूडि गयो सुलोहे मध्य पीजरा मे पारस धर्‌यो रहै ।।

२. तृषित निरखि रवि कर भव वारी—जैसाकि कहा है—

श्लोक—वासुदेव परित्यज्य योऽन्य देव मुपासते।
तृषितो जान्हवी तीरे कूपखनति दुर्मति ।।

अर्थात्—जो मनुष्य परमेश्वर को छोडकर दूसरे देव की उपासना करता है वह मूर्ख मानो प्यासा होने पर गगाजी के किनारे कुआँ खोदता है।

३. अब रघुपति पद पकरुह, हिय धरि पाइ प्रसाद—

→

अर्थ—अब श्री रामचन्द्रजी के कमल स्वरूपी चरणो को हृदय मे धारण कर और उनकी प्रसन्नता को पाकर दोनो श्रेष्ठ मुनियो की भेट तथा मनोहर वार्त्तालाप कहता हूँ ।

भरद्वाज मुनि बसहि प्रयागा[१] । तिनहि रामपद अति अनुरागा ।।
तापस शम दम दयानिधाना । परमारथ पथ परम सुजाना ।।

अर्थ—भरद्वाज मुनिजी प्रयाग मे रहते थे, उनका बडा प्रेम श्री रामचन्द्रजी के चरणो मे था । ये तपस्वी, शम, दम और कृपा से परिपूर्ण तथा मुक्ति के मार्ग दर्शाने मे बडे चतुर थे ।

माघ मकर गति रवि जब होई[२] । तीरथपतिहि आव सब कोई ।।
देव दनुज किन्नर नर श्रेणी । सादर मज्जहि सकल त्रिवेणी ।।

शब्दार्थ—मकर=बारह राशियो मे १० वी राशि ।

अर्थ—माघ के महीने मे जब सूर्य मकर राशि मे आते है (अर्थात् जब मकर सक्रान्त लगती है) तब सब लोग प्रयाग मे आते है । देवताओ, राक्षसो, किन्नरो और मनुष्यो के झुण्ड के झुण्ड त्रिवेणी मे भक्तिपूर्वक स्नान करते है ।

पूजहि माधवपदजलजाता[३] । परसि अछयबट हर्षहि गाता ।।

भैरवी—दृगन नहिं दरशत दूजो द्वार ।
जाउँ कहाँ तजि दीन दयानिधि यदुपति की सरकार ।।
सुर नर नाग असुर किन्नर मुनि जलचर जीव अपार ।
माया मोहित भ्रमत रहत जब का करिहै उपकार ।।
वेद पुराण सुन्यो निज कानन्ह कह्यो अमित उपचार ।
मिटै न भवरुज और भाँति ते बिन हुइ गये तुम्हार ।।
प्रीति पूछ पहिचान दीन की रीति यहै दरबार ।
आयो शरण समझि ताही ते अघमन को सरदार ।।
अधम उच्चारन नाम रावरो हमरो परम अधार ।
अब 'रघुराज' लाज तुम्हरे कर श्री वसुदेव कुमार ।।

४. किसी-किसी प्रति मे इस दोहे के पश्चात् नीचे लिखा दोहा मिलता है—
दोहा—भरद्वाज जिमि प्रश्न किय, याज्ञवलिक मुनि पाय ।
प्रथम मुख्य सवाद सोइ, कहिहौ हेतु बुझाय ।।

१. भरद्वाज मुनि बसहि प्रयागा—
(देखे अयोध्याकाण्ड रामायण की श्री विनायकी टीका की टि० पृ० १३८ ।)

२. माघ मकर गति रवि जब होई—बारहों राशियो के नाम ये है—
दोहा—मेष वृषभ अरु मिथुन पुनि, कर्क सिंह कन्याहि ।
तुला वृश्चिक धन मकर कुंभ, मीन राशि सब आहि ।।
मकर अर्थात् १०वी राशि से उत्तरायण सूर्य समझे जाते है ।
माघ के महीने मे बहुधा सूर्य मकर राशि पर आ जाते है और एक मास तक उस राशि पर रहते है । उसी सक्रान्त के समय प्रयाग मे रहकर स्नान-ध्यान आदि के करने से मनुष्य मुक्ति का भागी हो जाता है । जैसा कहा है—
दोहा—माघ मास भर प्राग नर, करहिं वास असनान ।
इह सुख लहि सुर लोक पुनि, जाबहि बैठि विमान ।।

३. माधवपदजलजाता—माघ महीने मे माधव नामधारी परमेश्वर का पूजन विशेषकर होता

भरद्वाज आश्रम अतिपावन । परम रम्य मुनिवर मन भावन ।।

अर्थ - वहाँ पर (माघ महीने के स्वामी) बेनी माधोजी के कमलस्वरूपी चरणो का पूजन करते है और अक्षयवट को छूकर के प्रसन्न चित्त होते है। वहाँ पर बहुत ही रमणीक और अति पवित्र श्रेष्ठ मुनियो का भी मन मोहने वाला भरद्वाज मुनि का आश्रम था।

तहाँ होइ मुनि ऋषय समाजा । जाहि जे मज्जन तीरथराजा ।।
मज्जहि प्रात समेत उछाहा । कहहि परस्पर हरिगुनगाहा ।।

अर्थ – वहाँ पर वे ऋषिमुनि गण जो प्रयाग मे स्नान करने जाते है, ठहर जाते है। बडी उमग से सबेरे ही स्नान कर लेते है और आपस मे रामचरित की कथाये कहा करते है।

दोहा—ब्रह्मनिरूपण धर्मविधि, बरनहि तत्वविभाग[१] ।
कहहि भक्ति भगवंत की, सयुत ज्ञान विराग ।।४४।।

है क्योकि वे उस महीने के स्वामी और पूज्य समझे जाते हैं उसका कारण यह है कि द्वादश महीने के महात्म्य मेपरमेश्वर जिन कामो से पूज्य समझे गये है। वे नीचे लिखे जाते हैं और महीनो का क्रम प्राचीन प्रथा के अनुसार अगहन महीने से आरम्भ होता था और यह बात 'अगहन' इस नाम ही से सिद्ध होती है। कारण अगहन शुद्ध रूप अग्रहायण (अग्र=पहिले+हायण=वर्ष)=वर्ष का पहिला महीना है। (१) अगहन मे केशवनाम-धारी (२) पूस मे नारायण, (३) माघ मे माधव, (४) फागुन मे गोविद, (५) चैत मे विष्णु, (६) बैसाख मे मधुसूदन, (७) जेठ मे त्रिविक्रम, (८) आसाढ मे वामन, (९) सावन मे श्रीधर, (१०) भादो मे ऋषिकेश, (११) कुवार मे पद्मनाभ, और(१२) कार्तिक मे दामोदर का, विशेष माहात्म्य समझा गया है।

१. (क) ब्रह्म निरूपण – परब्रह्म परमात्मा के विषय मे नाना प्रकार से जो कथन प्रयोग मे हुआ करता था, उसका थोडे मे वर्णन करना तो अशक्य ही है तथापि बहुत ही सक्षेप मे उदाहरण की रीति पर वेदात ज्ञान के मुख्य ग्रन्थ चन्द्रकान्त से कुछ उद्धृत किया जाता है—

श्लोक—सति सक्तो नरो याति, सद्भाव ह्येकनिष्ठया।
कीटको भ्रमरी ध्यायन्, भ्रमरत्वाय कल्पते ।।

अर्थात्—एक निष्ठा से ब्रह्म का ध्यान धरने मे रत पुरुष ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है जिस प्रकार भ्रमरी का ध्यान करते-करते कीट भ्रमरत्व को प्राप्त होता है।

यह सोचना चाहिए कि जीव चौरासी लाख योनियो मे भ्रमण करते-करते इस दुर्लभ नर देह को पाता है। मनुष्य को चाहिए कि इस देह को सार्थक ही करे (अर्थात् रात-दिन आत्मा का चिन्तन करके उसके स्वरूप को पहचाने)। इसमे यह प्रश्न उठता है कि मनुष्य को भोजन, आच्छादन आदि की चिन्ता मे लगे रहने से रात-दिन आत्मा का चिन्तन कैसे हो सकेगा? उसे एक दृष्टान्त से स्पष्ट करते है—

जिस प्रकार नये प्रसव हुए बछडे का हित उसकी माता ही मे समाया रहता है (अर्थात् उसकी माता के दुग्ध पान ही से उसका सर्वथा पोषण होने वाला है) इसी प्रकार गौ को भी अपने बछडे पर अत्यन्त प्रीति होने से उसके बिना एक पल भी चैन नही पडती, परन्तु गौ दिन भर अपने बछडे के पास रह नही सकती, क्योकि उसको वन मे चारा चरने के लिए जाना पडता है। अथवा यो कहिये कि जैसे गौ सबेरे अपने बछड़े को दूध पिलाकर उसे घर पर छोड जाती है और आप वन मे जाकर चलती फिरती है,→

शब्दार्थ— निरूपण = निर्णय, विचार।

अर्थ—वे लोग वहाँ पर निर्गुण ब्रह्म का निरूपण (अर्थात् वेदान्त) और धर्म का विधान (अर्थात् कर्मकाण्ड) तथा तत्त्वो का भेद (अर्थात् साख्य शास्त्र) वर्णन करते है और ज्ञान तथा वैराग्य सहित परमेश्वर की भक्ति का वर्णन करते है।

घास चरती है, पानी पीती है, अपने समूह मे जा बैठती है, ठडी छाया मे विश्राम लेती है, तो भी उसका चित्त उसके बछडे ही मे रहता है जिससे सध्या समय जब वह घर की ओर फिरती है तो बडी आतुरता से उत्कठापूर्वक बछडे की ओर रम्हाती हुई आती है। फिर बछडे को दूध पिलाती है। इसी प्रकार मनुष्य भी प्रात काल अपना नित्य नियम करके दिन भर इधर-उधर फिर कर आजीविका के अर्थ अनेक कार्य करता है, खाता है, पीता है, घर रूपी वृक्ष की छाया मे निवास कर स्त्री-पुत्रादिक रूप अपने समूह मे बैठकर निश्चिन्तता से विश्राम लेता है तो भी उसे चाहिए कि वह अपने मन को ईश्वर की ओर लगाये ही रहे और फिर सध्या समय होने पर तुरन्त तैयार होकर अपना नित्य कृत्य करने मे तत्पर हो जाए। इस प्रकार ससार के व्यवहारो मे निरन्तर विचरते रहने पर भी गौ की नाई जिसका चित्त परमेश्वर ही मे लगा रहता है, वह मनुष्य महात्मा पुरुषो के पास से परब्रह्म स्वरूप के ज्ञान का श्रवण करके उसी का मनन करता रहता है और मनन करने के अनन्तर उसी के निदिध्यासन से परिणाम मे भगवत्स्वरूप प्राप्त करता है। ऐसा जीव ससार के बन्धनो से मुक्त हो जाता है और उसको माता-पिता स्त्री, पुत्र आदि पोष्य बल को दु:ख मे तडपते हुए छोडकर वैरागी होने तथा भस्म रमाने की आवश्यकता नही रहती है।

साराश यह है कि ससार के कार्य करते हुए भी मनुष्य को चाहिए कि वह अपना चित्त ईश्वर मे इस प्रकार लगाये रहे जिस प्रकार पनिहारी अपने सिर पर पानी का घडा सम्हाले रहती है यद्यपि वह मार्ग मे और स्त्रियो से बातचीत करती हुई चलती जाती है। जैसा कहा है—

'रसखानि गोविंदहु यो भजिये, ज्यो नागरि को चित्त गागरि मे'।

(ख) धर्म विधि—राजशिक्षा सोपान नाम की पुस्तक से—

शास्त्रो के अनुसार धर्म की अनेक परिभाषाये हैं सो यो कि—

(१) वेद प्रणिहित कर्म, धर्मस्तन्मगल परम्।
प्रतिषिद्ध क्रिया साध्य, सगुणोऽधर्म उच्यते॥

अर्थात् जो परममङ्गलकारी कर्म वेद विहित है वह 'धर्म' और वेद मे जिसका निषेध किया है वह 'अधर्म' कहाता है।

(२) प्राप्नुवन्ति यत· स्वर्ग, मोक्षो धर्म परायणे।
मानवा मुनिभिर्नून, स धर्म इति कथ्यते॥

अर्थात् जिस कर्म के द्वारा मनुष्य स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त होते है। पूज्यपाद महर्षियो ने उसको धर्म कहा है।

(३) सत्त्व वृद्धि करोयोऽव, पुरुषार्थोऽस्ति केवल।
धर्म शीले तमेवाहु, धर्म केचिन्महर्षय॥

अर्थात् जो पुरुषार्थ सत्त्वगुण को बढाने वाला हो, कोई-कोई महर्षि उसको धर्म कहते है।

(४) या विभर्ति जगत्सर्वं, मीश्वरेच्छा ह्यलौकिकी।
सैव धर्मोहि सुभगे, नेह कश्चन सशय॥

अर्थात् जो अलौकिकी ईश्वरेच्छा इस जगत को धारण करती है, वही धर्म है। इन सब→

इहि प्रकार भरि मकर नहाही। पुनि सब निज निज आश्रम जाही ।।
प्रति सवत अस होइ अनंदा। मकर मज्जि गवनहि मुनि वृंदा ।।

अर्थ—इस प्रकार से मकर सक्राति भर (अर्थात् एक महीने तक) स्नान करते रहते हैं फिर सब लोग अपने-अपने स्थान को लौट जाते है, हर साल इसी प्रकार का आनन्द हुआ करता है और मकर स्नान के पश्चात् मुनिगण चले जाते है।

वचनो का तात्पर्य यह है कि जिन शारीरिक, वाचनिक और मानसिक कर्मों के द्वारा सत्व-गुण की वृद्धि हो उनको धर्म कहते है और जिनके द्वारा तमोगुण की वृद्धि हो उन्हे अधर्म कहते है। यथा --

श्लोक—अहिसा सत्यमस्तेय शौचमिन्द्रियनिग्रह ।
एतत्सामासिक धर्म, चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनु ।।

अर्थात् प्राणी मात्र पर दया, सत्य, चोरी न करना, शुद्धता और इन्द्रियो को अपने वश मे रखना, ये सक्षेप से चारो वर्ण के धर्म मनुजी ने कहे है।

(ग) तत्त्वविभाग—साख्य दर्शन के अनुसार तत्त्व २५ है। उनके विषय मे ईश्वर कृष्ण की कारिका यो है कि—

मूलप्रकृतिर्विकृतिर्महदाद्या प्रकृतिविकृतिय सप्त ।
पोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्मविकृति पुरुष ।।

अर्थ—(१) मूल प्रकृति (जो किसी का विकार नही), महदादि तत्त्व (जैसे महत्तत्त्व अहकार) पचतन्मात्रा अर्थात् (१) शब्द, (२) स्पर्श, (३) रूप, (४) रस, (५) गध, इनकी तन्मात्रा जो प्रकृति और विकृति दोनो होती है, और १६ तत्त्व जो केवल विकार मात्र ही है जैसे पचमहाभूत अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और ग्यारह इन्द्रियाँ अर्थात् पाँच ज्ञानेन्द्रिय जैसे चक्षु, श्रोत, घ्राण, रसना, त्वक् और पाँच कर्मेन्द्रिय जैसे मुख, वाणी पाद, पायु, उपस्थ और ग्यारहवाँ मन तथा पुरुष जो न प्रकृति है न विकृति है ऐसे १ + ७ + १६ + १ = २५ तत्त्व हुए।

(घ) कहहिं भक्ति भगवत की, सयुक्त ज्ञान विराग—

ज्ञान और वैराग्य सहित भक्ति तथा उसके द्वारा मुक्ति के कथन के बारे मे एक दृष्टान्त है (देखो श्रीमद्भागवत माहात्म्य)—

एक बार विचरते हुए नारद मुनि ने मथुरा मे एक खिन्न तरुण स्त्री को विलाप करते हुए देखा, जिसके पास दो आलस युक्त पुरुष चेष्टाहीन पडे थे। मुनिजी के पूछने पर स्त्री बोली कि मै भक्ति हूँ और कलिकाल के कारण अचेत हुए ज्ञान और वैराग्य नाम वाले मेरे ये दोनो प्रिय पुत्र है। मेरा वृत्तान्त यो है कि मैं द्रविड देश मे उत्पन्न होकर कर्नाटक देश मे बढी और महाराष्ट्र देश मे कही-कही थी, परन्तु गुजरात देश मे जाते ही अति दुर्बल हो गई। फिर यहाँ वृन्दावन मे आते ही मैं तो ज्यो की त्यो हो गई (भाव यह है कि भक्ति का प्रचार द्रविड देश से आरम्भ होकर कर्नाटक मे बढा, महाराष्ट्र देश मे साधारणत रहा परन्तु गुजरात मे बिलकुल क्षीण हो गया, वही फिर से वृन्दावन मे विशेष रूप से हुआ,) परन्तु मेरे पुत्र अभी वैसे ही अचेत पडे है, इसका कारण कृपा कर समझाइये? नारद मुनि ने कहा कि करालकलिकाल मे १ सदाचार, ५ योगमार्ग और ३ तप का लोप हो गया है। सकल लोक शठता और दुष्कर्म करने वाले होकर पापात्मा दैत्यो के समान आचरण करने लगे है। सज्जन तो प्राय दु.खित दिखाई देते है परन्तु पापात्मा पाखडी पुरुष प्रसन्न दृष्टि पडते हैं। जो बुद्धिमान् धीरज धरता है वही इस लोक मे धीर और पडित कहलाता है। इस समय ज्ञानी-बैराग्यवान् तो कोई है ही नही, परन्तु भक्ति→

एक बार भरि मकर नहाये । सब मुनीश आश्रमनि सिधाये ।।
याज्ञवल्क्य[१] मुनि परम विवेकी । भरद्वाज राखेउ पद टेकी ।।

अर्थ—एक समय मकर सक्राति भर स्नान कर जब सब मुनिगण अपने-अपने आश्रम को जाने लगे, तब परम ज्ञानवान् याज्ञवल्क्य मुनि की चरण वदना कर भरद्वाज मुनि ने उन्हे रख छोडा ।

करने वाले भी कम मिलते है । इसी से तुम तीनो की ऐसी दशा हुई है । हाँ, श्री वृन्दावन मे भक्ति भावना विशेष होने के कारण तू चैतन्य और तरुण-सी हो गई है तो भी यहाँ पर ज्ञान और वैराग्य की विशेष रुचि न होने से ये तेरे पुत्र चैतन्य नही होते । यद्यपि राजा परीक्षित ने कलियुग के पापो का विचार कर उसे रहने को स्थान तो बता दिया था परन्तु प्रभु कीर्त्तन के आधार से उसे यहाँ रहने दिया था । सम्पूर्ण अधर्म युग के प्रभाव से हो रहे है (कलियुग के कारण लोगो के आचरण आदि उत्तरकाण्ड मे विस्तार से मिलेगे) सत्ययुग, त्रेता और द्वापर मे ज्ञान तथा वैराग्य मुक्ति के साधन थे, परन्तु कलियुग मे भक्ति ही मुक्ति की देने वाली है । कलियुग मे लोगो ने ज्ञान और वैराग्य की उपेक्षा की । इस कारण यह तेरे पुत्र आलसी हो गये है । तथापि तू चिन्ता न कर । सनत्कुमार आदि महर्षियो का यह उपदेश है कि हरिकीर्तन से भक्ति, ज्ञान और वैराग्य मे बडा भारी बल आकर ज्ञान और वैराग्य दोनो के क्लेश नष्ट होगे और उससे भक्ति को भी सुख होगा ।

भाव यह कि ज्ञान और वैराग्य युक्त भक्ति से मनुष्यो को मुक्ति मिलेगी ।

१. याज्ञवल्क्य—ये ऋषि वशिष्ठजी के कुल मे उत्पन्न यज्ञवल्क के पुत्र थे । स्वायभू व्यास के चारो वेद के पृथक्-पृथक् शिष्यो मे से यजुर्वेद पाठी वैशपायन ऋषि के पास इन्होने विद्या अध्ययन किया था । ये वैशपायन के भानजे भी थे । यजुर्वेद की ८६ शाखाओ मे से मुख्य तैत्तिरीय शाखा प्राय सम्पूर्ण यजुर्वेद के तुल्य ही है - वैशपायन ने याज्ञवल्क्य को पढाई थी और वैशपायन के क्रुध हो जाने पर इन्होने तपस्या कर सूर्य देव को प्रसन्न किया और उनसे वाजसनी नाम की वेद शाखा तथा ब्रह्मविद्या पढी । इन्होने कात्यायनी और मैत्रेयी नाम की दो स्त्रियो से विवाह किया था । परन्तु मैत्रेयी ही को इन्होने ब्रह्म-विद्या आपस मे बातचीत की रीति पर पढाई थी । (देखे अरण्यकाण्ड रामायण की श्री विनायकी टीका की 'निगमनेति शिव ध्यान न पावा' पर ।

इन्होने वाजसनी शाखा बहुत से शिष्यो को पढाई थी, परन्तु इससे उनकी प्रसिद्धि इतनी न हुई जितनी कि इनकी ब्रह्म विद्या से हुई ।

उस समय के जनकराज ने ब्रह्मविद्या उपार्जन के निमित्त याज्ञवल्क्य को बुलाया था । याज्ञवल्क्य ऋषि शुक्ल यजुर्वेद, शतपथ ब्राह्मण और वृहदारण्यक उपनिषद के द्रष्टा समझे जाते है । इन्होने एक स्मृति भी बनाई है जो याज्ञवल्क्य स्मृति के नाम से प्रसिद्ध है । यह मनुस्मृति से कुछ कम समझी जाती है तो भी यह मिताक्षरा टीका के कारण हिन्दुस्तान भर मे (खा़स बगाल को छोडकर) प्रचलित है । कहते हैं कि यह सन् ईस्वी के दूसरे शतक (या सदी) मे बनाई गई थी । इसका उल्था अँगरेजी मे और जर्मनी भाषा मे भी हो गया है ।

इनका मत यह था कि धर्मानुसार एकान्त वास मे परब्रह्म का ध्यान करना आवश्यक है । इसी हेतु ये योगविद्या के आदि कारण समझे जाते हैं । इन्होने रामतत्त्व को कथा रूप से भरद्वाज मुनि के प्रति वर्णन किया था ।

सादर चरण सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे ॥
करि पूजा मुनि सुयश बखानी। बोले अति पुनीत मृदुबानी ॥

अर्थ—आदरपूर्वक उनके कमलस्वरूपी चरणो को धोकर बहुत ही पवित्र आसन पर बिठलाया। फिर मुनि का पूजन कर उनकी उत्तम कीर्ति वर्णन की और फिर निष्कपट मधुर वचनो से प्रार्थना की।

नाथ एक सशय बड मोरे। करतल वेद तत्त्व सब तोरे[1] ॥
कहत मोहि लागत भय लाजा। जो न कहउँ बड होइ अकाजा ॥

शब्दार्थ - करतल वेद हथेली पर वेद, यह मुहावरा है जिसका यह अर्थ है – जिस प्रकार हथेली मे रक्खी हुई वस्तु को मनुष्य भलीभाँति देख-भालकर जान लेता है उसी प्रकार वेद आपका भलीभाँति समझा हुआ है।

अर्थ—हे प्रभु ! वेदो का सार आपको भली-भाँति ज्ञात है और मुझे एक बडा भारी सन्देह है जिसके कहने मे मुझे डर और लज्जा आती है और जो नही कहता हूँ तो बडा अनर्थ होता है (भाव यह कि मै पूछने मे भय करता हूँ कि कदाचित् आप यह न समझ बैठे कि मेरी परीक्षा लेना चाहते है और लाज इस बात की कि इतनी अवस्था वाले भी अभी तक ये बाते नही जानते)।

दोहा—सन्त कहहि अस नीति प्रभु, श्रुति पुराण जो गाव।
होइ न विमल विवेक उर, गुरुसन किये दुराव[2] ॥४५ ॥

अर्थ—हे प्रभु ! सज्जन ऐसी ही नीति बतलाते है जैसी कि वेद और पुराण मे कही हुई है (सो यो) कि गुरु से छिपाने से हृदय मे शुद्ध विचार नही जमते (अर्थात् गुरु से छल रखने वाले की बुद्धि शुद्ध नही होती)।

अस विचार प्रकटौ निज मोहू। हरहु नाथ करि जन पर छोहू ॥
राम नाम कर अमित प्रभावा[3]। सन्त पुराण उपनिषद गावा ॥

---

१ करतल वेद तत्त्व सब तोरे—श्री मद्‌भागवत से —

श्लोक—नारायण परा विप्रा धर्म गुह्य पर विदु।
करुणासिंधव शान्ता स्त्वद्विधा न तथा परे ॥

अर्थात् जो ब्राह्मण भगवत्परायण होते है वे गुह्य परम धर्म को जानते है तो भी तुम्हारी नाई दया सागर और शान्त दूसरे कोई नही है।

२ होइ न विमल विवेक उर, गुरुसन किये दुराव—रामरसायन रामायण मे लिखा है कि—

दोहा—सुनि सुयज्ञ वोले मधुर, हरि गुरु कृपा विहाय।
कोटि जतन कोऊ करै, तऊ न दुरित नशाय ॥
जो कोऊ गुरु विमुख हो, अथवा गुरू न कीन।
कृपा आस प्रभु की धरै, सोई है मति हीन ॥

सवैया—ढेर सुमेरु सो कचन दान करै नित जाय के क्षेत्र कुरू।
धेनु अलकृत कोटिन देतन अक्षत नीर से रीते चुरू ॥
मान प्रमान यही रसिकेश चहूँ युग भाषत धर्म धुरू।
कैसहु राम न रीझत काहु पै तौ लग जौ लो द्रवै न गुरू ॥

३. राम नाम कर अमित प्रभावा—स्मरण रहे कि राम कथा यही से प्रश्न रूप मे 'राम' इस→

अर्थ—ऐसा समझकर मैं अपना सन्देह कहता हूँ, हे प्रभु ! मुझ अपने सेवक पर कृपा करके उस सन्देह को दूर कीजिए। राम नाम का भारी प्रताप सज्जनो, पुराणों और उपनिषदो ने वर्णन किया है।

सतत जपत शंभु अविनाशी। शिव भगवान ज्ञान गुणराशी॥
आकर चारि जीव जग अहही। काशी मरत परमपद लहही॥

अर्थ—(जिस राम नाम को) नाश रहित, शकरजी जो कल्याणदाता, षडैश्वर्ययुक्त और ज्ञान तथा गुणो से परिपूर्ण है, सदैव भजते रहते है। ससार मे जीव चार प्रकार के हैं उनमे से जो काशीजी मे प्राण त्यागते है, वे मुक्ति पा जाते है।

सोपि राममहिमा मुनिराया। शिव उपदेश करत कर दाया[१]॥
राम कवन प्रभु पूछहुँ तोही। कहिय बुझाइ कृपानिधि मोही॥

अर्थ—हे मुनिवर ! शिवजी भी कृपा करके यही उपदेश करते है कि ये सब श्री रामचन्द्र जी की महिमा है। हे दयासागर प्रभु ! मुझे समझा कर कहिये, मैं आपसे पूछता हूँ कि वे राम कौन हैं ?

एक राम अवधेशकुमारा[२]। तिन कर चरित विदित संसारा॥
नारि विरह दुख लहेउ अपारा। भयेउ रोष रण रावण मारा॥

अर्थ—एक रामचन्द्रजी तो अयोध्या नगरी के राजा दशरथ के लडके है जिनका हाल सब ससार मे प्रसिद्ध है कि उन्होने स्त्री के बिछोह से बडा भारी कष्ट पाया और फिर जो

शब्द से आरभ होकर उत्तरकाण्ड के अन्त मे 'प्रिय लागहु मोहि राम' तक कही गई है। अतएव राम नाम से सपुटित होने के कारण मगलीक है। किसी भी कार्य सिद्धि के हेतु लोग विश्वासपूर्वक यदि वही से पढना आरम्भ कर अन्त तक पढ जाएँ तो अवश्य सफल मनोरथ होवें।

राम नाम के प्रभाव के विषय मे गिरिधर कवि ने यों कहा है—

राग जगला— मेरे मन राम को नाम अधारा।
शिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक निशि दिन करत विचारा।
जाके जपत कटत दुख दारुण उतर जात भव पारा॥
शवरी गीध अजामिल से खल तिनहूँ को प्रभु तारा।
जिन जिन शरण लीन्ह सकट मे तिन को आप सुधारा॥
नाम महातम को बरनै सब पाप कटन को आरा।
प्रेम लाय जो ध्यान लगावै सो पावै सुख सारा॥
आयो तव पद शरण नाथ मै, अवगुण अमित अपारा।
'गिरिधर' पार उतारौ मो को लै हौ नाम तुम्हारा॥

१. सोपि राममहिमा मुनिराया। शिव उपदेश करत कर दाया—
जैसा कि हारीत स्मृति मे लिखा है—
श्लोक—अद्यापि रुद्र काश्यां वै सर्वेषा त्यक्त जीविनाम्।
दिशत्येतंन्महामत्र तारक ब्रह्म नामकम्॥
अर्थात् अभी तक काशीजी मे शिवजी सब प्राणियों को उनकी मृत्यु के समय निश्चय पूर्वक 'राम नाम' इसी मुक्तिदाता मंत्र का उपदेश किया करते है।

२ एक राम अवधेशकुमारा—भरद्वाज मुनि बडी चतुराई से प्रश्न करते हैं कि एक राम तो राजा दशरथ के लड़के हैं वही राम परमेश्वर हैं या परमेश्वर रूपी कोई दूसरे राम हैं।

क्रोध आया तो सग्राम मे रावण को मार गिराया ।

दोहा—प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि ।
सत्यधाम सर्वज्ञ तुम, कहहु विवेक विचारि ॥४६॥

अर्थ—हे स्वामी ! क्या ये वही राम है कि जिन्हे महादेवजी जपा करते है, आप सत्यवान् सब जाननहार हैं सो ज्ञान से विचार कर कहिये ।

जैसे मिटइ मोर भ्रम भारी । कहहु सो कथा नाथ विस्तारी ॥
याज्ञवल्क्य बोले मुसुकाई । तुमहि विदित रघुपति प्रभुताई ॥

अर्थ—जिससे मेरा भारी सदेह दूर हो सो हे प्रभु ! वही कथा ब्यौरेबार कहिये । तब याज्ञवल्क्यजी हँसकर कहने लगे कि तुम्हे श्री रामचन्द्रजी का प्रताप ज्ञात ही है ।

राम भक्त तुम मन क्रम बानी । चतुराई तुम्हारि मै जानी ॥
चाहहु सुनै रामगुण गूढ़ा । कीन्हेउ प्रश्न मनहुँ अति मूढ़ा ॥

अर्थ—तुम मनसा, वाचा, कर्मणा से श्री रामचन्द्रजी के भक्त हो । मैंने तुम्हारी चतुरता जान ली । तुम श्री रामचन्द्रजी के गुप्त चरित्रो को सुनना चाहते हो परन्तु प्रश्न इस रीति से करते हो कि मानो बडे अज्ञानी हो ।

तात सुनहु सादर मन लाई । कहहुँ राम की कथा सुहाई ॥
महामोह महिषेश बिशाला[१] । रामकथा कालिका कराला ॥

शब्दार्थ—महामोह=ईश्वर के चरित्रो मे सन्देह होना ।

अर्थ—हे भाई ! आदरपूर्वक चित्त देकर सुनो मैं श्री रामचन्द्रजी की सुहावनी कथा कहता हूँ । ईश्वर के चरित्रो मे भारी अज्ञान विशाल महिषासुर के समान है (और उसके निमित्त) रामकथा भयकर कालिका देवी है (अर्थात् जिस प्रकार काली देवी दुष्ट महिषासुर का वध करने मे समर्थ हुई उसी प्रकार रामकथा प्राणियो के महामोह को नाश करने वाली है) ।

रामकथा शशिकिरण समाना । सत चकोर करहि तेहि पाना ॥
ऐसेइ संशय कीन्ह भवानी । महादेव तब कहा बखानी ॥

अर्थ—रामकथा चद्रमा की किरण के समान है जिसे चकोररूपी सज्जन हृदय मे धारण करते है । पार्वतीजी ने भी इसी प्रकार का सन्देह किया था तब महादेवजी ने विस्तार सहित वर्णन किया था ।

दोहा—कहहुँ सो मति अनुहारि अब, उमा शंभु संवाद ।
भयउ समय जेहि हेतु यह, सुनि मुनि मिटहि विषाद ॥४७॥

अर्थ—जिस समय मे और जिस कारण से वह शिव-पार्वतीजी का सवाद हुआ था वह सब अपनी बुद्धि के अनुसार अब कहता हूँ । हे मुनि ! उसके सुनने से तुम्हारा सब भ्रम भाग जायगा ।

(१४. शिव-पार्वती सम्वादरूपी रामकथा)

एक बार त्रेतायुग माही । शम्भु[२] गये कुम्भज ऋषि पाही ॥

---

१. महामोह महिषेश बिशाला—देखें टि० पृ० ४० ।

२. 'शम्भु' की कथा पुरौनी मे 'हरिहर' शीर्षक कंथन मे है ।

संग सती[१] जग जननि भवानी । पूजे ऋषि अखिलेश्वर जानी ।।

शब्दार्थ—कुम्भज = अगस्त्यजी । अखिलेश्वर (अखिल = सब + ईश्वर = स्वामी) = सब के स्वामी ।

अर्थ—त्रेतायुग मे एक समय शिवजी अगस्त्य ऋषि के पास गये । उनके साथ मे जगदम्बा शिवपत्नी सतीजी भी थी । अगस्त्य ऋषि ने सबके स्वामी जान उन (दोनो) का पूजन किया ।

रामकथा मुनिवर्य बखानी । सुनी महेश परम सुख मानी ।।
ऋषि पूछी हरि भक्ति सुहाई । कही शम्भु अधिकारी पाई[२] ।।

अर्थ—श्रेष्ठ मुनिजी ने रामकथा का वर्णन किया, महादेवजी ने बडी प्रसन्नतापूर्वक उसे सुना । फिर ऋषिजी ने ईश्वर की भक्ति के विषय मे प्रश्न किया, शिवजी ने सुयोग्य श्रोता समझ भक्ति का कथन किया ।

कहत सुनत रघुपतिगुणगाथा । कछु दिन तहा रहे गिरिनाथा ।।
मुनि सन बिदा मांगि त्रिपुरारी । चले भवन सँग दक्षकुमारी ।।

शब्दार्थ—गिरिनाथ (गिरि = पर्वत + नाथ = स्वामी) = पर्वत के स्वामी अर्थात् शिवजी (योगरूढि) । त्रिपुरारि (त्रिपुर = राक्षस का नाम + अरि = वैरी) = त्रिपुर नाम राक्षस के बैरी अर्थात् शिवजी, जिन्होने त्रिपुर नामक दैत्य का बध किया था । दक्षकुमारी = दक्ष (प्रजापति) की पुत्री अर्थात् सती ।

अर्थ—(इस प्रकार) श्री रामचन्द्रजी के गुणानुवाद कहते-सुनते शिवजी थोडे दिन वहाँ ठहरे रहे । त्रिपुर नाम राक्षस के शत्रु शिवजी मुनि से विदा हो सती सहित कैलाश की ओर चले ।

तेहि अवसर भंजन महिभारा । हरि रघुवंश लीन्ह अवतारा ।।
पिता वचन तजि राज उदासी । दंडकवन विचरत अविनासी ।।

अर्थ—उसी समय पृथ्वी का भार उतारने के हेतु परमेश्वर ने रघुवश मे अवतार धारण किया । सो ऐसे नाश रहित प्रभु पिता की आज्ञा से राज्य त्याग उदासी बन दडकवन मे घूमने लगे ।

दोहा—हृदय विचारत जात हर, केहि विधि दर्शन होइ ।
गुप्तरूप अवतरेउ प्रभु, गये जान सब कोइ ।।४८।।

अर्थ—शिवजी अपने मन मे यह विचारते जा रहे थे कि किस प्रकार दर्शन मिलें ।

---

१. सती—ब्रह्मा के एक मानस पुत्र दक्ष प्रजापति भी थे । इनकी १६ लडकियो मे से सबसे छोटी का नाम सती था । इनका ब्याह शिवजी से हुआ था ।

२ कही शम्भु अधिकारी पाई—विष्णु पुराण के तीसरे अश के ७वें अध्याय मे विष्णु भक्त के लक्षण यो लिखे हैं कि—

(१) जो निज धर्म नही छोडता है, (२) जो अपने शत्रु मित्र को सम भाव से देखता है, (३) जो पराये द्रव्य को नही हरता है, (४) जो किसी जीव की हिंसा नही करता है, (५) जिसका अन्त करण राग-द्वेष आदि से रहित होकर शुद्ध हो गया हो, (६) जो मोह रहित हो सर्वदा ईश्वर का ध्यान करता हो, (७) जो परधन और परदारा से दूर भागता है, ऐसे पुरुष को विष्णुभक्त समझ कथा का अधिकारी जानो । और भी कथा के अनधिकारी और अधिकारियो की विवेचना उत्तरकाण्ड के अन्त मे मिलेगी ।

परमेश्वर ने तो छिपे रूप से अवतार लिया है (यदि मैं उनके समीप) जाऊ तो सब लोग (भेद) जान जाएगे।

सोरठा—शंकर उर अति क्षोभ, सती न जानहि मरम सोइ।
तुलसी दरसन लोभ, मन डर लोचन लालची ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ—क्षोभ=सोच-विचार, शोकाविचारी।

अर्थ—शकरजी के हृदय मे तो बडा सोच-विचार पड रहा था, परन्तु सती को यह भेद न समझ पडा। तुलसीदासजी कहते है कि (शिवजी की दशा ऐसी थी कि) दर्शनो की लालसा, मन मे डर और लोचनो का ललचाना, सब एक ही साथ हो रहे थे (अर्थात् दर्शनो की इच्छा तो मानो उन्हे भेंट करने की उत्तेजना दे रही थी, परन्तु मन मे यह डर था कि मेरी भेंट और बर्ताव से राम अवतार का भेद खुल जाएगा, तो भी नेत्रो को दर्शनो की उत्कठा बनी ही थी)।

रावण मरण मनुज कर याँचा[1]। प्रभु विधि वचन कीन्ह चह साँचा ॥
जो नहि जाउँ रहै पछितावा[2]। करत विचार न बनत बनावा ॥

अर्थ—रावण ने अपनी मौत मनुष्य के हाथ माँगी है, सो परमेश्वर ब्रह्मा के वचनों को सत्य करना चाहते है (इसी हेतु दशरथ-सुत बनकर वन-वन मे फिर रहे है) यदि मैं (श्री रामचन्द्र जी से भेंट करने को) न जाऊँ तो पछतावा बना रहेगा। इस प्रकार विचार तो कर रहे थे परन्तु कुछ निश्चय नही कर सके।

इहि विधि भये सोच वश ईशा। तेही समय जाय दशशीशा ॥
लीन्ह नीच मारीचहि संगा। भयउ तुरत सो कपट कुरंगा ॥

अर्थ—इस प्रकार शिवजी सोच-विचार मे पड गये। इतने मे (यहाँ क्या हुआ कि) रावण (समुद्र के पार आया) उस नीच ने मारीच राक्षस को अपने साथ ले लिया जो जल्दी से माया का मृग बन गया।

करि छल मूढ हरी वैदेहि। प्रभु प्रभाव तस विदित न तेही ॥
मृग बधि बन्धु सहित हरि आये। आश्रम देखि नयन जल छाये ॥

अर्थ—उस मूर्ख ने धोखा दे सीताजी का हरण किया। ईश्वर का जैसा प्रताप था वैसा वह न जान सका। जब श्री रामचन्द्रजी मृग को मार भाई के साथ लौटे तब पर्णकुटी को (सीता रहित) देख उनके नेत्रो मे आसू भर आये।

---

१ रावण मरण मनुज कर याँचा—आगे इसी काण्ड मे लिखा है कि रावण ने बडी कठिन तपस्या कर ब्रह्माजी से वरदान माँगा था कि हम अमर हो जाए। ब्रह्माजी ने कहा कि ऐसा नही हो सकता। तब वह बोला कि तो फिर ऐसा वर दीजिये कि मनुष्य और बन्दर जो हमारे भोजन है, इनको छोड हम किसी के हाथ न मरे। ब्रह्माजी एवमस्तु कह अतर्ध्यान हो गये। इससे सार यह निकला कि मनुष्य के हाथ से ही मानो रावण ने अपनी मौत माँगी थी।

२. जो नहि जाउँ रहै पछितावा—शकरजी पूर्ण रामभक्त हैं सो वे सदैव जब-जब राम अवतार होता है तभी-तभी वे उनका जन्मोत्सव देखने को जाया करते है और बीच मे भी जब कभी ऐसी सधि आन पडे जैसा कि यहाँ कहा गया है, तब भी भेंट कर ही लेते है। कागभुशुडिजी भी अवध मे जन्म के समय से उनकी ५ वर्ष की अवस्था तक उनकी बाल-क्रीड़ा देखा करते है।

विरह विकल नर इव रघुराई। खोजत विपिन फिरत दोउ भाई ।।
कबहूँ योग वियोग न जाके। देखा प्रकट विरह दुख ताके ।।

अर्थ—रघुकुल श्रेष्ठ दोनो भाई विरह से व्याकुल मनुष्य की नाई वन मे ढूंढते फिरते थे। जिन्हें न तो मिलने से सुख और न बिछुरने से दुःख कभी होता है सो देखने मे बिछोह का दुःख दर्शा रहे थे।

दोहा—अति विचित्र रघुपति चरित[1], जानहि परम सुजान।
जे मतिमद विमोहवश, हृदय धरहि कछु आन ।।४६।।

अर्थ— श्री रामचन्द्रजी के चरित्र अद्भुत है। जो बड़े ज्ञानवान् है, वे ही उन्हे जानते है। जो मूर्ख है वे मोह के कारण मन मे कुछ और ही विचारते है।

शम्भु समय तेहि रामहि देखा। उपजा हिय अति हर्ष बिसेखा ।।
भरि लोचन छवि सिन्धु निहारी। कुसमय जानि न कीन्ह चिन्हारी ।।

अर्थ—महादेवजी ने श्री रामचन्द्रजी को उस समय देखा (जब कि वे सीताजी की खोज का नाट्य कर रहे थे) उनके हृदय मे तो बड़ा ही विशेष आनन्द उत्पन्न हुआ। उन्होने अति छबीले श्री रामचन्द्रजी को नयन भर देखा तो सही परन्तु मिलन का ठीक अवसर न देख जान-पहचान न निकाली।

जय सच्चिदानन्द जगपावन। अस कहि चलेउ मनोज नशावन[2] ।।
चले जात शिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकित कृपानिकेता ।।

अर्थ—'जगत को पवित्र करने वाले सच्चिदानन्द प्रभु की जय' ऐसा कहकर कामदेव को भस्म करने वाले शिवजी चले। सतीजी के सग मार्ग मे जाते हुए कृपा सिन्धु शिवजी बार-बार रोमाचित हो उठते थे।

(१५. सती मोह)

सती सो दशा शंभु की देखी। उर उपजा सदेह बिसेखी ।।

---

१. अति विचित्र रघुपति चरित…आदि—
रागधनाश्री—अविगति गति जानी न परै ।।
मन वच अगम अगाध अगोचर केहि विधि बुधि सचरै।
अति प्रचंड पौरुष सो मातो केहरि भूख मरै ।।
तजि उद्यम अकाश कर बैठ्यो अजगर उदर भरै।
कबहुँक तृण बूडत पानी मे कबहुँक शिला तरै ।।
बागर से सागर कर राखे चहुँ दिश नीर भरै।
पाहन बीच कमल विकसाही जल मे अग्नि जरै ।।
राजा रंक रंक ते राजा ले शिर छत्र धरै।
'सूर' पतित तर जाय छिनक मे जो प्रभु टेक करै ।।

२. अस कहि चलेउ मनोज नशावन—यहाँ पर यह सदेह हो सकता है कि शिवजी ने कामदेव का तो भस्म पार्वतीजी के अवतार हो जाने के पश्चात् किया। अभी से यह विशेषण कैसे—उसका समाधान यह है कि अवतार अनेक कल्पो मे हुआ करते है जिनके चरित्र प्राय एक ही से होते हैं। उन्ही के अनुसंधान से महात्मा और भक्तजन प्रभु को ऐसे विशेषण दे देते हैं। (अरण्यकाण्ड रामायण की श्री विनायकी टीका की टिप्पणी मे 'खरारी' शब्द पर टिप्पणी देखें)।

शंकर जगत वंद्य जगदीसा । सुर नर मुनि सब नावत सीसा ।।

अर्थ—सतीजी ने शिवजी की ऐसी दशा देखी तब तो उनके हृदय मे भारी सदेह उत्पन्न हुआ (क्योकि) शिवजी तो ससार से वदना करने के योग्य है क्योकि ये जगत् के स्वामी हैं और देवता, मनुष्य, मुनि आदि सब इनके आगे सिर झुकाते हैं।

तिन नृप सुतहिं कीन्ह परनामा । कहि सच्चिदानन्द परधामा ।।

भये मगन छबि तासु विलोकी । अजहुँ प्रीति उर रहत न रोकी ।।

अर्थ—ऐसे शिवजी ने राजा के पुत्र को प्रणाम किया और कहा है सच्चिदानन्द, हे परब्रह्म ! और उनकी छवि को देख ऐसे प्रेम मे डूब गये कि वह प्रेम अभी तक उनके हृदय मे नही समाता ।

दोहा—ब्रह्म जो व्यापक विरज अज, अकल अनीह अभेद ।

सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत वेद ।। ५० ।।

शब्दार्थ—व्यापक=घट-घट वासी । विरज=माया रहित । अज=जन्म रहित । अकल=कला रहित । अनीह=इच्छा रहित । अभेद=अखड ।

अर्थ—(यदि मान ले कि वे ब्रह्म है तो) ब्रह्म तो घट-घट वासी, माया रहित, जन्म रहित, कला रहित, इच्छा रहित, अखड है और उसे वेद भी नही जानते सो क्या देह धारण कर मनुष्य बनेंगे ? (अर्थात् यह विचार बांधा कि परब्रह्म काहे का मनुष्य रूप धारण करेंगे)।

विष्णु जो सुरहित नरतनु धारी । सोउ सर्वज्ञ यथा त्रिपुरारी ।।

खोजइ सोकि अज्ञ इव नारी । ज्ञानवान श्रीपति असुरारी ।।

अर्थ—(जो कहे कि) ये विष्णुजी है जिन्होने देवताओ के हेतु मनुष्य रूप धारण किया है तो वे भी तो शिवजी के समान सर्वज्ञ है। वे क्या अज्ञानी की नाईं अपनी स्त्री को ढूंढते फिरेंगे ? क्योकि राक्षसो के बैरी तथा लक्ष्मी के पति वे तो ज्ञान से परिपूर्ण है।

शंभुगिग पुनि मृषा न होई । शिवसर्वज्ञ जान सब कोई ।।

अस सशय मन भयउ अपारा । होइ न हृदय प्रबोध प्रचारा ।।

शब्दार्थ—मृषा=झूठ ।

अर्थ—फिर शिवजी के वचन भी झूठ नही हो सकते क्योकि सब लोग जानते हैं कि शिवजी सर्वज्ञ है। इसी प्रकार मन मे बडा भारी सदेह उठा, हृदय मे कुछ समाधान नही होता था।

यद्यपि प्रकट न कहेउ भवानी । हर अतरयामी सब जानी ।।

सुनहु सती तव नारि सुभाऊ । संशय अस न धरिय उर काऊ ।।

शब्दार्थ—अतरयामी=(अतर्यामी) हृदय की जानने वाले ।

अर्थ—यद्यपि सतीजी ने स्पष्ट रूप से नही कहा परन्तु घटघट वासी कैलाश-निवासी सब जान गये। (और बोले) हे सती ! सुनो यह तो तुम्हारा स्त्री स्वभाव है, ऐसा सदेह अपने हृदय मे कभी न करना।

जासु कथा कुभज ऋषि गाई । भक्ति जासु मैं मुनिहि सुनाई ।।

सोइ मम इष्टदेव रघुवीरा । सेवत जाहि सदा मुनि धीरा ।।

अर्थ—जिनकी कथा अगस्त्य ऋषि ने सुनाई थी और जिनकी भक्ति का वर्णन मैंने

मुनिजी से किया था। वही श्री रामचन्द्रजी मेरे इष्टदेव हैं जिनकी सेवा बडे-बडे धीरजवान् मुनि भी किया करते है।

छंद—मुनिधीर योगी सिद्ध संतत विमल मन जेहि ध्यावही[1]।
कहि नेति निगम पुराण आगम जासु कीरति गावही ।।
सोइ राम व्यापक ब्रह्मभुवननिकायपति मायाधनी।
अवतरेउ अपने भक्त हित निज तंत्र नित रघुकुलमनी[2] ।।

अर्थ—धैर्यवान् मुनिगण (सनकादि) योगी जन (पतजलि आदि) और सिद्ध (व्यासादि) जिनका शुद्ध चित्त से सदा ध्यान करते है और जिनके गुणानुवाद वेद, पुराण और शास्त्र गाते-गाते कह देते है कि 'नेति-नेति' (अर्थात् इनका अत नही, इनका अत नही) वे ही श्री रामचन्द्रजी घटघट वासी परमात्मा ब्रह्माड समूहो के स्वामी, माया के पति, सदा स्वतन्त्र अपने भक्त (मनु-शतरूपा आदि) के हेतु रघुवशियो मे श्रेष्ठ अवतार लेकर आये है।

सोरठा—लाग न उर उपदेश, यदपि कहेउ शिव बार बहु।
बोले विहँसि महेश, हरि माया बल जानि जिय[3] ।।५१।।

अर्थ—यद्यपि शिवजी ने अनेक बार समझाया तो भी वह सिखावन सती के हृदय मे न आया। तब तो महादेवजी रामजी की माया का प्रभाव मन से विचार मुसकराते हुए बोले—

जो तुम्हरे मन अति सन्देहू। तो किन जाय परीक्षा लेहू ।।
तब लगि बैठ अहौं वट छाहीं। जब लगि तुम ऐहहु मोहि पाहीं ।।

अर्थ—जो तुम्हारे मन मे बडी शका है तो जाकर परीक्षा क्यो नही कर लेती ? जब तक तुम मेरे पास फिर आओगी तब तक मैं इस बड की छाया मे बैठा हूँ।

---

१. मुनिधीर योगी सिद्ध सतत विमल मन जेहि ध्यावही—

सवैया—लाय समाधि रहे ब्रह्मादिक योगी भये पर अन्त न पाये।
साँझ से भोरहिं भोर से साँझहिं शेषसदा नित नाम जपाये ।।
ढूँढ फिरे त्रैलोकी मे साखी नारद लेकर बीन बजाये।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचाये ।।

२. निज तन्त्र नित रघुकुलमनी—जैसा कि महाभारत मे लिखा है—

श्लोक—रुद्र समाश्रिता देवा रुद्रो ब्रह्माणमाश्रितः।
ब्रह्मा ममाश्रितो नित्यं नाह कश्चिदुपाश्रितः ।।

अर्थात्—सम्पूर्ण देवता तो शिवजी के आधीन हैं और शिवजी ब्रह्मा के आश्रित हैं तथा ब्रह्मा मेरे आधार से हैं परन्तु मैं किसी के आश्रय से नही हूँ (अर्थात् स्वतन्त्र हूँ)।

३. हरि माया बल जानि जिय—

राग सोरठ—हरि की गति नहिं कोऊ जाने।
योगी यती तपी पचहारे अरु बहुलोग सयाने ।।
छिन मे राव रक को करही राव रक कर डारे।
रीते भरे भरे ढरकावे यह ताको व्यवहारे ।।
अपनी माया आप पसारे आपै देखन हारा।
नानारूप करै बहुरङ्गी सब से रहत नियारा ।।
अमित अपार अलक्ष निरंजन जिन सब जग भरमाया।
सकल भरम तज 'नानक' प्राणी चरण ताहि चित लाया ।।

जैसे जाय मोह भ्रम भारी । करहु सो यतन विवेक विचारी ।।
चली सती शिव आयसु पाई । करइ विचार करौ का भाई ।।

अर्थ—जिस प्रकार से तुम्हारा मोहरूपी भारी सन्देह दूर हो वही उपाय समझ-बूझकर करना । सतीजी शिवजी की आज्ञा पाकर चली । वे यह सोचती जाती थी कि भाई, अब क्या करूँ ?

इहां शंभु अस मन अनुमाना । दक्षसुता कर नहि कल्याना ।।
मोरेहु कहे न संशय जाही । विधि विपरीत भलाई नाहीं ।।

अर्थ—यहाँ पर (वट वृक्ष के नीचे) शिवजी मन मे अटकल बाँधने लगे कि सतीजी की कुशल नही दीख पडती । मेरे कहने पर भी जब कि उनके सन्देह नही मिटते तो (समझ पडता है कि) दैव ने पलटा खाया, कुछ भला होने वाला नही है ।

होइहि सोइ जो राम रचि राखा । को करि तर्क बढावहि शाखा[1] ।।
अस कहि लगे जपन हरि नामा । गई सती जहँ प्रभु सुखधामा ।।

अर्थ—'वही होगा जो रामजी ने रच रखा है' इसमे तर्क-वितर्क कर कल्पना काहे को बढावें (अर्थात् होनहार अवश्य होगा, इसकी उधेडबुन वृथा है)। इतना कह वे राम-नाम जपने लगे । सतीजी वहाँ पहुँची जहाँ आनन्द के स्थान श्री रामजी थे ।

दोहा—पुनि पुनि हृदय विचार करि, धरि सीता कर रूप ।
आगे हुइ चलि पंथ तेहि, जेहि आवत नरभूप ।। ५२ ।।

अर्थ—हृदय मे बारम्बार विचार बाँध सती ने सीताजी का स्वरूप धारण किया और उसी मार्ग मे आगे-आगे चलने लगी जिस मार्ग से नरश्रेष्ठ श्री रामचन्द्रजी आ रहे थे ।

लक्ष्मण दीख उमाकृत वेषा । चकित भये भ्रम हृदय विशेषा[2] ।।
कहि न सकत कछु अति गभीरा । प्रभु प्रभाव जानत मतिधीरा ।।

---

१. होइहि सोइ जो राम रचि राखा । को करि तर्क बढावै शाखा—
राग सारग—भावी काहू सो न टरै ।
कहँ वह राहु कहाँ वह रविशशि आनि सँयोग परै ।।
मुनि वशिष्ठ पण्डित अति ज्ञानी रचि पचि लग्न धरै ।
तात मरन सिय हरन राम वन वपु धरि विपत्ति भरै ।।
रावण जीति कोटि तेंतीसो त्रिभुवन राज्य करै ।
मृत्यू बाँधि कूप मे राखै भावीवश सिगरै ।।
अर्जुन के हरि हितू सारथी सोऊ वन निकरै ।
द्रुपदसुता के राजसभा दुस्सासन चीर हरै ।।
हरिश्चन्द्र सो को जगदाता सो घर नीच चरै ।
जो गृह छाँडि देश बहु धावै तउ वह सग फिरै ।।
भावी के वश तीन लोक है सुर नर देह धरै ।
'सूरदास' प्रभु रची सु हुइहैं को करि सोच मरै ।।

२. चकित भये भ्रम हृदय विशेषा—चकित होने का यह कारण समझ पडता है कि सीतारूप धारिणी कोई स्त्री बिछोह दु ख से विशेष व्याकुल न होती हुई साधारण रीति से अकेली वन मे विचर रही थी और इसी हेतु यह भ्रम भी हुआ कि सीताजी का मिलाप रावण-वध के पहले कैसे सम्भव हुआ ।

अर्थ-- लक्ष्मण ने सतीजी को सीता के बनावटी भेष मे देखा, वे चकित हुए और उनके हृदय मे भारी सन्देह हो गया। बडे गम्भीर और धैर्यवान् तो थे ही, श्री रामचन्द्रजी के प्रभाव को समझ कुछ कह न सके।

सती कपट जानेउ सुरस्वामी। समदरशी सब अतरयामी।।
सुमिरत जाहि मिटै अज्ञाना। सोइ सर्वज्ञ राम भगवाना।।

अर्थ—देवताओ के स्वामी श्री रामचन्द्रजी ने सतीजी के छल को जान लिया क्योकि वे तो समान दृष्टि वाले घट-घटवासी है जिनके स्मरण करने ही से अज्ञान मिट जाता है, वही तो सब कुछ जानने वाले षडैश्वर्यशाली रामचन्द्रजी है।

सती कीन्ह चह तहहुँ दुराऊ। देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ[१]।।
निज माया बल हृदय बखानी। बोले विहँसि राम मृदुबानी।।

अर्थ—सतीजी वहाँ (ऐसे श्री रामचन्द्रजी से) भी छल करना चाहती थी, स्त्री के स्वभाव की महिमा तो देखो? अपनी माया का अधिकार मन-ही-मन सराहते हुए श्री रामचन्द्र जी हँसकर मीठी बानी बोले—

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू।।
कहेउ बहोरि कहां वृषकेतू[२]। विपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू।।

अर्थ—प्रभु ने हाथ जोडकर प्रणाम किया और कहा, मैं दशरथ पुत्र रामचन्द्र हूँ और फिर कहने लगे कि महादेवजी कहाँ हैं तथा आप जगल मे अकेली क्यो फिरती हो।

दोहा—रामवचन मृदु गूढ सुनि,[३] उपजा अति संकोच।
सती सभीत महेश पहँ, चली हृदय बड़ सोच।। ५३।।

---

१. देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ —ब्रह्म वैवर्त्त पुराण—गणेश खड के ६वें अध्याय मे लिखा है—
श्लोक—दुर्निवार्यश्च सर्वेशा स्त्री स्वभावश्च चापल.।
दुस्त्याज्य योगि भिः सिद्ध रस्माभिश्च तपस्विभि॰।।
भाव यह कि स्त्रियो का स्वभ।व चचल होता है उससे किसी का बचाव नही होता, उसे योगी, सिद्ध तथा हम सरीखे तपस्वी भी कठिनाई से त्याग सकते है।

२. कहा वृषकेतू—इसमे यह ध्वनि निकलती है कि धर्म के पताका श्री शकरजी जो तुम्हारे पति है सो इस समय कहाँ है? (अर्थात् तुमने उन्हे वट वृक्ष के नीचे क्यों छोड दिया?)।

३. रामवचन मृदु गूढ सुनि—मृदु का लक्ष्य यह कि उन्होने उन्हे परम पूज्य मान शिष्टाचार की रीति से हाथ जोडकर अपना तथा अपने पिता का नाम बताया जैसा कि पूज्य पुरुषो के सामने करना उचित है। मूढ का लक्ष्य यह कि वृषकेतु (अर्थात् धर्म की मर्यादारूप शिवजी) कहाँ है? इससे यह सूचित किया कि हम तुम्हारे कपट भेष को पहचान गये। तुम सीता नही हो, सती हो और जगल मे अकेली क्यों फिरती हो? इसमे यह सूचित किया कि हमारे स्त्रीवियोग का कारण तो हमारी इच्छानुसार है तुमने तो पति के सिखावन पर विचार न कर जगल मे अकेली फिरना स्वीकार किया है जो कर्म पतिव्रता स्त्रियो को उचित नही है। नीतिशास्त्र मे भी तो यो कहा है—
श्लोक—भ्रमन् सपूज्यते राजा भ्रमन्सपूज्यतेद्विज।
भ्रमन् सपूज्यतेयोगी स्त्री भ्रमन्ती विनश्यति।।
अर्थात् भ्रमण करने वाले राजा, ब्राह्मण और योगी पूजित होते है परन्तु स्त्री घूमने से भ्रष्ट हो जाती है।

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी के मधुर और गम्भीर वचनो को सुनकर हृदय मे भारी लज्जा उत्पन्न हुई। तब सतीजी डरती-डरती शिवजी के पास चली परन्तु हृदय मे बडी चिन्ता लग रही थी। (क्योकि)—

मै शकर कर कहा न माना। निज अज्ञान राम पर आना ॥
जाय उतर अब दैहौ काहा। उर उपजा अति दारुण दाहा ॥

अर्थ—मैने शिवजी का सिखावन न माना और अपनी मूर्खता श्री रामचन्द्रजी के विषय मे प्रकट की। अब मै शिवजी को क्या उत्तर दे दूगी (ऐसे ही विचारो से) उनके हृदय मे बडी भारी चिन्ता उत्पन्न हुई।

जाना राम सती दुख पावा। निज प्रभाव कछु प्रकट जनावा ॥
सती दीख कौतुक मग जाता। आगे राम सहित सिय भ्राता ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी जान गये कि सती के चित्त मे चिन्ता हुई इस हेतु उन्होने अपनी कुछ महिमा प्रकट दिखाई। मार्ग मे चलते-चलते सतीजी क्या देखती है कि आगे रामचन्द्रजी, सीता और लक्ष्मण समेत जा रहे है।

फिरि चितवा पाछे प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुन्दर बेखा ॥
जहँ चितवहि तहँ प्रभु आसीना। सेवहि सिद्ध मुनीश प्रवीना ॥

अर्थ—जो लौटकर देखने लगी तो पीछे भी रामचन्द्रजी को अपने भाई तथा सीता समेत सुन्दर वस्त्र आभूषण धारण किये हुए देखा। जहाँ देखती थी वहाँ रामचन्द्रजी आनन्द से बैठे हुए और उनकी सेवा सिद्ध तथा चतुर मुनि श्रेष्ठ करते हुए दिखाई देते थे।

देखे शिव विधि विष्णु अनेका। अमित प्रभाव एक ते एका ॥
वदत चरण करत प्रभु सेवा। विविध वेष देखे सब देवा ॥

अर्थ—बहुतेरे शिव, ब्रह्मा तथा विष्णु भी देखे जो एक से एक बढकर प्रतापशाली होने पर भी रामचन्द्रजी के चरणो की वन्दना कर रहे थे और सम्पूर्ण देवताओ को भी नाना भेष धारण किये हुए प्रभु की सेवा मे तत्पर देखा।

दोहा—सती विधात्री इंदिरा, देखी अमित अनूप।
जेहि जेहि वेष अजादि सुर, तेहि तेहि तन अनुरूप ॥ ५४ ॥

अर्थ—(अनेक शिव, ब्रह्मा और विष्णु आदि के अनुसार ही) अनेक सती, ब्रह्माणी और लक्ष्मी अनूठी-अनूठी देखी (अर्थात् जिस अनूठे रूप से ब्रह्मा आदि त्रिदेव थे उसी रूप के अनुसार देखी)।

देखे जँह तहँ रघुपति जेते। शक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते ॥
जीव चराचर जो संसारा। देखे सकल अनेक प्रकारा ॥

अर्थ—जिस स्थान मे जितने रामचन्द्रजी दिखाई दिये उस स्थान मे उतने ही देवता सब-के-सब अपनी-अपनी शक्तियो समेत दृष्टि पडे। (और भी) ससार के जितने जड-चैतन्य जीव हैं सो सब नाना प्रकार के देखने मे आये।

पूजहि प्रभुहि देव बहु भेखा। राम रूप दूसर नहि देखा ॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न वेष घनेरे ॥

(अन्वय दूसरी लकीर का) बहुतेरे रघुपति सीता सहित अवलोके, वेष घनेरे न (अवलोके)।

अर्थ—देवता तो अनेक भेष धारण किये हुए श्री रामचन्द्रजी का पूजन करते दिखाई पड़े परन्तु रामरूप एक ही-सा बना रहा। दूसरे प्रकार का न दिखाई दिया। (सो इस प्रकार कि) रामचन्द्रजी तो बहुत से देखे सो सब सीता-सहित देखे परन्तु उनका रूप अनेक भेष मे न था (अर्थात् केवल शुद्ध एक ही प्रकार का वही रामरूप था)।

सोइ रघुवर सोइ लक्ष्मण सीता[१]। देखि सती अति भई सभीता ।।
हृदय कप तन सुधि कछु नाही। नयन मूँदि बैठी मग माही ।।

अर्थ—वे ही रामचन्द्रजी, वे ही लक्ष्मणजी और वही सीता जी (तीनो का ज्यो का त्यो अटल सहचारी सयोग) देखते-देखते सतीजी बहुत ही डर गयी। हृदय काँप उठा और शरीर की सुधि न रही, तब तो वे नेत्र बन्द कर मार्ग मे ही बैठ गयी।

बहुरि विलोकेउ नयन उघारी। कछु न दीख तहँ दक्षकुमारी ।।
पुनि पुनि नाइ रामपद शीशा। चली तहाँ जहँ रहे गिरीशा ।।

अर्थ—(चैतन्य होने पर) जब फिर आँख खोलकर देखा तो सतीजी को वहाँ कुछ भी न दिखाई दिया। बारम्बार श्री रामचन्द्रजी के चरणो को शीश नवा कर वे उस ओर चली जहाँ शिवजी थे।

दोहा—गई समीप महेश तब, हँसि पूछी कुशलात।
लीन्हि परीक्षा कवन विधि, कहहु सत्य सब बात ।। ५५ ।।

अर्थ—जब सती समीप आ गयी तब शिवजी ने हँसकर पूछा कि कुशल तो है? तुमने किस प्रकार जाँच की? सब हाल ठीक-ठीक कहो।

सती समुझि रघुवीर प्रभाऊ। भयवश शिव सन कीन्ह दुराऊ ।।
कछु न परीक्षा लीन्ह गोसाई। कीन्ह प्रणाम तुम्हारिहि नाई ।।

अर्थ—सतीजी ने श्री रामचन्द्रजी का प्रभाव समझ भय के कारण शिवजी से बात छिपानी चाही। हे स्वामी! मैंने कुछ भी परीक्षा नही ली, मैंने तो आप ही की तरह प्रणाम किया।

जो तुम कहा सो मृषा न होई। मोरे मन प्रतीति अस सोई ।।
तब शंकर देखे धरि ध्याना। सती जो कीन्ह चरित सब जाना ।।

अर्थ—जो आपने कहा सो झूठ नही हो सकता, मेरे हृदय मे भी ऐसा ही भरोसा है। (सीताजी की चेष्टा और बातचीत से शंकरजी के मन मे शका हुई इस हेतु) तब तो शिवजी ने ध्यान धर के देखा तो जो कुछ चरित्र सतीजी ने किये थे सो सब जान लिए।

बहुरि राम मायहि शिर नावा। प्रेरि सतिहि जेहि झूठ कहावा ।।

---

१. सोइ रघुवर सोइ लक्ष्मण सीता—यहाँ भी रामचन्द्रजी, लक्ष्मण और सीताजी तीनो का निरन्तर अटल सम्बन्ध दर्शाया है कि ये तीनो सदैव एकत्र रहते हैं, इनका परस्पर वियोग होता ही नही। दूसरे यहाँ पर गोस्वामीजी ने चतुराई से मनुष्यो के तीन प्रकार के मत भी दर्शाये हैं क्योकि (१) विशिष्टाद्वैत जिसमे लोग परमात्मा, माया और जीव इन इन तीनों को सनातन, सदैव रहने वाले मानते है, (२) द्वैत मत जिसमे केवल परमात्मा और माया (सीता) ये ही नित्य माने जाते हैं, और (३) अद्वैत या शुद्ध वेदान्त मत जिसमे केवल परमात्मा ही नित्य रहने वाला समझा जाता है और शेष सब कुशल है।

हरि इच्छा भावी बलवाना[१] । हृदय विचारत शंभु सुजाना ।।

अर्थ—फिर शकरजी ने श्री रामजी की माया को सिर नवाया जिसने साक्षात् सती से भी प्रेरणा करके झूठ कहलवाया । (निदान) ज्ञानवान् शिवजी के हृदय मे यह विचार आया कि ईश्वर की इच्छा जो होनहार रूप से दृष्टि पडती है, वह बलवती है (अर्थात् मनुष्य के कर्म जो फलोन्मुख हो भविष्य मे फल के देने वाले है उनके विषय मे ईश्वर का कर्त्तव्य अमिट है) ।

सती कीन्ह सीता कर वेषा । शिव उर भयउ विषाद विशेषा ।।
जो अब करौ सती मन प्रीती । मिटै भक्तिपथ होइ अनीती ।।

अर्थ— सती ने सीता का रूप धारण किया इस हेतु शिवजी के हृदय मे विशेष दु.ख हुआ । (वे विचारने लगे) कि जो अब सती पर पत्नी की नाई प्रेम करूँ तो भक्ति का मार्ग नष्ट हो जाय और अधर्म हो ।

सूचना—विशेष विषाद के कारण ये है—(१) शिवजी के कहने पर विश्वास न करना (२) झूठ बोलना (३) सीता का भेष धारण करना । अन्तिम कारण ऐसा विपरीत बन पडा कि जिन सीता के स्वरूप पर शकरजी मातृभाव रखते थे वही रूप जब सती धारण कर चुकी तो उन पर स्त्री भाव रखना अधर्म होगा, ऐसा विचार शकरजी का हुआ ।

दोहा—परम प्रेम नहि जाइ तजि, किये प्रेम बड़ पाप[२] ।
प्रकट न कहत महेश कछु, हृदय अधिक संताप ।।५६।।

अर्थ—अधिक प्रेम का त्याग करते नही बनता था और उनके साथ स्त्री प्रेम का निर्वाह भी बडा पाप था, इस हेतु शकरजी कुछ स्पष्ट रूप से नही कहते थे । उनके हृदय मे बडी चिन्ता हुई ।

तब शंकर प्रभुपद शिर नावा । सुमिरत राम हृदय अस आवा ।।

---

१. हरि इच्छा भावी बलवाना—
राग रामकली—ऊधो कर्मन की गति न्यारी ।
सब नदियाँ मीठा जल रहियाँ सागर किस विधि खारी ।।
उज्ज्वल पख दिये बगुला को कोयल कित गुण कारी ।
सुन्दर नैन मृगा को दीन्हे वन-वन फिरत उजारी ।।
बहुतक मूरख राज करत है पडित फिरत भिखारी ।
सूर श्याम मिलवे की आशा छिन-छिन बीतत भारी ।।

और भी—
श्लोक—ब्रह्मात्मजे नापि विचार्यदत्ते पदभिषेकाय पर मुहूर्त्तम् ।
ते नै व रामो विगतो वनान्ते, वलीयसी केवलमीश्वरेच्छा ।।

अर्थात् ब्रह्मा के पुत्र वशिष्ठजी ने विचार से श्री रामचन्द्रजी को युवराज होने के निमित्त जो मुहूर्त्त दिया था उसी मुहूर्त्त मे श्री रामचन्द्रजी वनवासी हुए (इससे प्रकट है कि) केवल ईश्वर इच्छा ही बलवती है।

२ परम प्रेम नहि जाइ तजि, किये प्रेम बड पाप---शिवजी की दशा उस समय ऐसी हो रही थी जैसी हितोपदेश के श्लोक मे दर्शाई गयी है—
श्लोक—मज्जन्नपि पयोराशौ, लब्ध्वा सर्पावलवन ।
न मुचति न चादत्ते, तथा मुग्धोऽस्मि सपति ।।

अर्थात् (दमनक बोला) समुद्र मे डूबता हुआ मनुष्य सर्प का अवलब पाकर न तो उसे छोड़ता है, न उसे पकडता है वैसा मैं इस समय असमजस मे पड़ा हूँ ।

इहि तनु सतिहि भेट मोहि नाहीं। शिव संकल्प कीन्ह मन माही ।।

अर्थ – तब शिवजी ने अपने प्रभु श्री रामचन्द्रजी को सिर नवाया और उनका स्मरण करते ही इनके हृदय मे ऐसा विचार उठा कि 'इस सती के शरीर से अब मेरा सम्बन्ध न होगा' ऐसा दृढ निश्चय शिवजी ने अपने मन मे ठान लिया।

अस विचार शंकर मति धीरा। चले भवन सुमिरत रघुवीरा ।।
चलत गगन भइ गिरा सुहाई। जय महेश भलि भक्ति दृढाई ।।
अस प्रण तुम बिन करै को आना। रामभक्त समरथ भगवाना[1] ।।

अर्थ—यह निश्चय कर बडे धीरज वाले शंकरजी श्री रामचन्द्रजी का स्मरण करते हुए कैलाश की ओर बढे। चलते समय सुहावनी आकाशवाणी हुई कि 'हे महादेवजी आपने अपनी भक्ति भलीभाँति पुष्टि की, आपकी जय हो। आपके सिवाय और कौन दूसरा ऐसा प्रण कर सकता है? हे षडैश्वर्य सम्पन्न! आप ही रामभक्तो मे श्रेष्ठ है।"

सुनि नभ गिरा सती उर सोचू। पूछा शिवहि समेत सकोचू ।।
कीन्ह कवन प्रण कहहु कृपाला। सत्यधाम प्रभु दीनदयाला ।।
यदपि सती पूछा बहु भाँती। तदपि न कहेउ त्रिपुरआराती[2] ।।

शब्दार्थ— त्रिपुरआराती=त्रिपुर नामक राक्षस के बैरी।

अर्थ—आकाशवाणी को सुनकर सतीजी के हृदय मे चिन्ता उत्पन्न हुई। उन्होने डरते-डरते शिवजी से पूछा कि हे दयाल! आपने कौनसा प्रण किया सो कहिये। हे दीनो पर दया करने वाले स्वामी! आप तो सत्यवान् है। यद्यपि सतीजी ने कई प्रकार से पूछा तो भी त्रिपुर नामक राक्षस के शत्रु शिवजी ने कुछ बतलाया नही।

दोहा—सती हृदय अनुमान किय, सब जानेउ सर्वज्ञ।
कीन्ह कपट मे शंभु सन, नारि सहज जड़ अज्ञ ।।

अर्थ—सतीजी ने हृदय से सोच लिया कि सर्वज्ञ श्री शकरजी सब समझ गये। (देखो) मैने महादेवजी से छल किया (क्यो न हो), स्त्री स्वभाव ही से वज्र मूर्ख होती है।

सोरठा—जल पय सरिस बिकाय, देखहु प्रीति कि रीति भल[3]।
विलग होइ रस जाय, कपट खटाई परत ही[4] ।।५७।।

---

१ अस प्रण तुम बिन करै को आना। रामभक्त समरथ भगवाना—

दोहा—रा हिरदै अरु मा बदन, विधुहि धरे जेहि भाल।
तुलसी पूरण नाम बल, गहे काल के काल ।।

भाव यह है कि हृदय और मुख से राम-नाम की रट लगाये हुए शिवजी ऐसे पराक्रमी हुए हैं कि वे टेढे चन्द्र को भी मस्तक मे धारण कर उसे लोक वन्दनीय कर चुके है तथा आप भी सहारकारी काल को भी सहार करने वाले हो गये हैं।

२. तदपि न कहेउ त्रिपुरआराती—

श्लोक—सत्य ब्रूयात् प्रिय ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रिय च नाऽनृत ब्रूयात् देष धर्मं सनातनः ।।

अर्थात् सत्य कहना चाहिए और प्रिय भी बोलना चाहिए (परन्तु) अप्रियकारी सत्य को न कहना चाहिए। तो भी प्रियकारी असत्य भी न बोलना चाहिए यही सनातन धर्म की रीति है।

३. जल पय सरिस बिकाय'''इत्यादि—क्या कहिए भिखारीदासजी ने भी इसी आशय को→

अर्थ—उत्तम प्रीति की यही रीति है कि पानी भी (दूध के साथ मिलकर) दूध ही के भाव बिकता है। परन्तु खटाई के पडने से दूध का स्वाद जाता रहता है। ऐसे ही कपट के कारण प्रीति नीरस हो जाती है।

हृदय सोच समुझत निज करनी। चिता अमित जाइ नहि बरनी ॥
कृपासिधु शिव परम अगाधा। प्रकट न कहेउ मोर अपराधा ॥

अर्थ—अपनी करतूत पर विचार कर हृदय से ऐसी दुःखित हुईं कि जिसका वर्णन नही किया जा सकता। वे सोचने लगी कि दयासागर शिवजी तो बडे गम्भीर है, इस हेतु उन्होने मेरे अपराध स्पष्ट नही कह सुनाये।

शंकर रुख अवलोकि भवानी। प्रभु मोहि तजेउ हृदय अकुलानी ॥
निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपै अवा इव उर अधिकाई[१] ॥

शब्दार्थ—रुख=चेष्टा। अवा=कुम्हार की भट्टी जो भीतर ही भीतर धधकती रहती है।

अर्थ—सतीजी ने शकरजी का बर्ताव देख-समझ लिया कि स्वामी ने मेरा परित्याग कर दिया है, इस हेतु वे हृदय मे बहुत ही घबडाईं। अपने अपराध का विचार कर कुछ कह तो सकती ही न थी परन्तु हृदय मे (कुम्हार के) अवा की नाईं अधिक से अधिक सतप्त होती जाती थी।

सतिहि ससोच जानि वृषकेतू। कहो कथा सुदर सुखहेतू ॥
बरनत पंथ विविध इतिहासा। विश्वनाथ पहुँचे कैलासा ॥

अर्थ—धर्म की पताका वाले शिवजी सती को दुःखित जान (दया करके) उन्हे सुखी करने के हेतु सुन्दर कथा कहने लगे। मार्ग मे अनेक कथा वार्ता कहते-कहते शिवजी कैलाश मे जा पहुँचे।

तहँ पुनि शभु समुझि प्रण आपन। बैठे वट तर करि कमलासन ॥
शंकर सहज सरूप सँभारा। लागि समाधि अखंड अपारा[२] ॥

बडी उत्तमता से दर्शाया है—

सवैया—दास परस्पर प्रीति लखौ जिमि क्षीर व नीर मिले सरसात है।
नीर बिचावत आपन मोल जहाँ जहँ जाय के क्षीर बिकात है ॥
पावक जारन क्षीर लगै तब नीर जरावत आपन गात है।
नीर की पीर मिटावन काज उफानहि क्षीर मिले रहि जात है ॥

४. कपट खटाई परत ही—

दोहा— सुघरी बिगरै बेगही, बिगरी फिर सुधरै न।
दूध फटे काँजी परे, सो फिर दूध बनै न ॥

१. तपै अवा इव उर अधिकाई—चिन्ता के कारण मनुष्य की जो दशा हो जाती है उसको गिरधर कविराय ने यो कहा है—

कुडलिया—चिन्ता ज्वाल शरीर बन, दावा लगि लगि जाय।
प्रकट धुआँ नहिं देखिये, उर अन्तर धुँधुआय ॥
उर अन्तर धुँधुआय, जरै ज्यो काँच की भट्टी।
रक्त मास जरि जाय, रहै पाँजर की टट्टी ॥
कहँ गिरधर कविराय, सुनौ हे मेरे मिन्ता।
वे नर कैसे जियें, जिन्है तन व्यापै चिन्ता ॥ →

अर्थ—वहाँ पर महादेवजी अपने दृढ निश्चय के विचार से वट वृक्ष के नीचे कमलासन लगाकर बैठ गये। शिवजी ने अपने स्वाभाविक स्वरूप का ध्यान बाँधा तो अटूट और दीर्घ-काल के लिए समाधि लग गयी। (अर्थात् सती का मन से परित्याग कर शिवजी पद्मासन बाँध आत्मतत्व का विचार करते ही समाधि लगा बैठे)।

दोहा—सती बसहि कैलास तब, अधिक सोच मन माहि।
मरम न कोऊ जान कछु, युग सम दिवस सिराहि ॥५८॥

अर्थ—तब सतीजी कैलास मे बनी रही परन्तु उनके हृदय मे भारी सोच था। इसका भेद तो कोई कुछ भी न समझा, एक-एक दिन एक-एक युग के समान बीतता था।

नित नव सोच सती उर भारा। कब जैहौ दुखसागर पारा ॥
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना। पुनि पतिवचन मृषा करि जाना ॥

अर्थ—सतीजी के हृदय मे दिनो दिन नया भारी सोच होता था (वे विचारती थी कि) मैं कब इस दुःखरूपी समुद्र के पार जाऊँगी (अर्थात् मेरा दुःख कब दूर होगा) जो मैंने रामचन्द्रजी का निरादर किया और अपने पति के वचनो को भी झूठ समझा।

सो फल मोहि विधाता दीन्हा। जो कछु उचित रहा सो कीन्हा ॥
अब विधि अस बूझिय नहि तोही। शंकर विमुख जियावसि मोही ॥

अर्थ—उसका फल ब्रह्मा ने मुझे दिया सो जो कुछ योग्य था वही उसने किया। परन्तु हे विधाता! अब तुमको ऐसा न चाहिए कि जो तुम मुझे शकरजी के विमुख जिया रहे हो।

कहि न जाय कछु हृदय गलानी। मन मह रामहिं सुमिरि सयानी ॥
जो प्रभु दीनदयाल कहावा। आरति हरण वेद यश गावा ॥
तौ मै विनय करौ करजोरी। छूटँ बेगि देह यह मोरी ॥

अर्थ—मन का खेद कुछ कहा नही जाता था, तब तो चतुर सतीजी श्री रामचन्द्रजी का स्मरण यो करने लगी। हे प्रभु! जब कि आप दीनदयाल कहलाते हो और वेद आपकी बडाई 'आरति हरण' कहकर गाते है। तब ही तो मैं हाथ जोडकर विनती करती हूँ कि यह मेरा शरीर जल्दी से छूट जाय।

जो मेरे शिवचरण सनेहू। मन क्रम वचन सत्यव्रत एहू ॥

अर्थ—जो मेरा प्रेम शिवजी के चरणो मे हो और मनसा, वाचा, कर्मणा से यही पक्का व्रत हो।

दोहा—तौ समदरशी सुनिय प्रभु, करौ सो वेगि उपाय।
होय मरण ज्यहि बिनहि श्रम, दुःसह विपत्ति विहाय ॥५६॥

अर्थ—तो सबको एक-सा देखने वाले हे प्रभु! वही उपाय जल्दी से कीजिये जिसमे

---

२ शकर सहज स्वरूप सँवारा। लागि समाधि अखड अपारा—कुमार सभव सर्ग ३—
श्लोक—मनो नवद्वारनिषिद्धवृत्ति, हृदि व्यवस्थाप्य समाधिवश्यम्।
यमक्षर क्षेत्रविदा विदुस्त, मात्मानमात्मन्यवलोकयन्तम् ॥ ५० ॥
अर्थात् मन की वृत्ति को शरीर के नव द्वारो से रोककर उसे समाधियुक्त कर हृदय कमल मे स्थित किया। जिस अविनाशी परमात्मा का क्षेत्रविद् लोग ध्यान करते रहते है उसी आत्मस्वरूप को अपने स्वरूप ही मे देखने लगे।

बिना ही अड़चन के मेरी मृत्यु हो जाय और यह असह्य दुख दूर हो।

इहि विधि दुखित प्रजेशकुमारी। अकथनीय दारुण दुख भारी ।।
बीते संबत सहस सतासी। तजी समाधि शभु अविनासी ।।

अर्थ—इस प्रकार दक्ष प्रजापति की पुत्री (अर्थात् सतीजी) चिन्तातुर रहती थी। उनको इतना भारी दुख था कि उसका वर्णन नही हो सकता। जब सतासी हजार वर्ष बीत गये तब अविनाशी शकरजी की समाधि खुली।

राम नाम शिव सुमिरन लागे। जानेउ सती जगतपति जागे ।।
जाय शम्भु पद वंदन कीन्हा। सन्मुख शंकर आसन दीन्हा ।।

अर्थ—शिवजी राम-नाम का उच्चारण करने लगे तब सतीजी ने जान लिया कि जगत के स्वामी श्री शकरजी की समाधि खुली। उन्होने जाकर शिवजी के चरणो की वदना की और शकरजी ने उन्हें अपने सामने बैठने के हेतु आसन दिया (स्मरण रहे कि सदाशिवजी ने सदा की नाईं उन्हे बाईं ओर न बिठलाया परन्तु सीता का भेष धारण करने के दोष से उन्हे अपने सामने बिठाया जैसा किसी प्रतिष्ठित या पूज्य प्राणी को बिठाते है)।

(१६. दक्ष का यज्ञ)

लगे कहन हरि कथा रसाला। दक्ष[1] प्रजेश भये तेहि काला ।।
देखा विधि विचार सब लायक। दक्षहि कीन्ह प्रजापति नायक ।।

---

१ दक्ष—ब्रह्मा के दश मानस पुत्रो मे से एक दक्षजी थे। ये ब्रह्मदेव के दाहिने अगूठे से उत्पन्न होने के कारण सम्पूर्ण प्रजापतियो के मुखिया थे। स्वायम्भूमनु ने प्रसूती नामकी अपनी कन्या इन्हे ब्याह दी। इस जोडे से (१) श्रद्धा (२) मैत्री (३) दया (४) शाति (५) तुष्टि (६) पुष्टि (७) क्रिया (८) उन्नति (९) बुद्धि (१०) मेधा (११) तितिक्षा (१२) ह्री (१३) मूर्त्ति (१४) स्वाहा (१५) स्वधा, और (१६) सती ये कन्यायें उत्पन्न हुईं। दक्ष के पुत्र और पुत्रियो का हाल अन्यत्र 'दक्ष सुतन्ह उपदेशेहु जाई' की टिप्पणी मे आगे मिलेगा। एक समय ब्रह्मा, शिव, मरीचि आदि महर्षि और सम्पूर्ण देवताओ की सभा मे दक्षप्रजापति जा पहुँचे। उस समय ब्रह्मा और शिवजी के सिवाय सबने उठकर आदर से इन्हे प्रणाम किया। ब्रह्माजी तो पितामह तथा दक्ष के उत्पन्नकर्ता थे परन्तु शिवजी को अपना दामाद समझ उनसे भी आदर न पाकर दक्षजी ने अप्रसन्न हो उनसे अनेक दुर्वचन कहे और तभी से उनसे बैर भी ठान लिया। जिस समय दक्ष ने यज्ञ आरम्भ किया, उस समय इन्होने अपनी सब कन्याओ को तो बुलाया परन्तु शिवजी और सती को बुलावा तक न भेजा। सती शिवजी के बरजने पर भी बिना बुलाये यज्ञ मे गयी परन्तु वहाँ पर दक्ष द्वारा शिवजी का अपमान और निरादर देख ऐसी दुखी हुईं कि उन्होने योगाग्नि से अपना शरीर भस्म कर दिया। इस समाचार के सुनते ही शिवजी क्रोधित हुए और उन्होने अपनी जटा की फटकार से वीरभद्र नाम के बडे पराक्रमी वीर को सहायक गणो समेत उत्पन्न किया। वीरभद्र ने जाकर सब यज्ञ विध्वस करके अनेक देवताओ को भाँति-भाँति के दण्ड देकर वहाँ से भगा दिया और दक्ष का सिर काटकर अग्निकुण्ड मे डाल दिया। पीछे से देवताओ की विनय सुनकर भोलानाथजी प्रसन्न हुए और उन्होने यज्ञस्थल मे आकर दक्ष को जिलाना चाहा परन्तु उसका मस्तक तो भस्म हो गया था, इस हेतु बकरे का सिर दक्ष के धड़ पर जमाकर उसे जीवित किया (कहते हैं कि जब बकरे की नाईं गिड़गिड़ाकर दक्ष ने शिवजी को प्रणाम किया तब उस→

अर्थ—वे श्री रामचन्द्रजी की माधुर्य रस से भरी हुई कथाएँ कहने लगे। उसी समय दक्षजी को प्रजापति का पद व अधिकार दिया गया (और फिर) जब ब्रह्मा ने विचार से देखा कि दक्षजी सब प्रकार से योग्य है तब तो उन्हे प्रजापतियो का मुखिया बना दिया।

बड़ अधिकार दक्ष जब पावा। अति अभिमान हृदय तब आवा॥
नहि कोउ अस जन्मेउ जग माही। प्रभुता पाइ जाहि मद नाही[1]॥

अर्थ—जब दक्षजी को ऐसा बडा अधिकार मिला तब तो उनके हृदय मे बडा घमण्ड आ गया। (क्योकि) ससार मे ऐसा कोई भी प्राणी जन्म लेकर नही आया कि जिसे अधिकार मिलने पर घमण्ड न आता हो।

दोहा—दक्ष लिये मुनि बोलि सब, करन लगे बड़ याग[2]।
नेवते सादर सकल सुर, जे पावत मख भाग॥६०॥

अर्थ—दक्षजी ने सब मुनियो को बुलवा लिया, वे बडा यज्ञ करने लगे। यज्ञ मे उन्होने आदरपूर्वक सब देवताओ को भी न्यौता भेजा जो यज्ञ मे भाग पाते थे।

किन्नर नाग सिद्ध गन्धर्वा। वधुन समेत चले सुरसर्वा॥
विष्णु विरंचि महेश बिहाई[3]। चले सकल सुर यान बनाई॥

अर्थ—किन्नर, नाग, सिद्ध और गन्धर्व तथा सम्पूर्ण देवता अपनी-अपनी स्त्रियो को साथ लेकर चले। विष्णु, ब्रह्मा और महादेव को छोड सब देवता अपने-अपने विमान सजाकर चले।

सूचना—ब्रह्मा और विष्णुजी को निमन्त्रण तो गया था परन्तु शिवजी को निमन्त्रण न जाने के कारण ये दोनो भी न गये।

सती विलोके ब्योम विमाना। जात चले सुन्दर विधि नाना॥

बोली से शिवजी बहुत प्रसन्न हुए और यह वरदान दिया कि इसी प्रकार बकरे की नाईं ध्वनि करने वालो से मै दक्षजी के विचार से सदैव प्रसन्न रहूँगा। तभी से अब लोगो का ध्यान जम गया है कि वे शिवालय मे जाकर ऐसी ध्वनि करते है और कहते है कि गाल बजाने से भोलानाथजी प्रसन्न होते है)।

१. प्रभुता पाइ जाहि मद नाही—ठीक ही कहा है कि—'कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितो विषायिन: कस्यापदो ना गता.' अर्थात् धन आदि ऐश्वर्य पाकर के किसको गर्व नही हुआ और किस विषयासक्त को आपत्तियाँ नही आईं (अर्थात् ऐश्वर्यवान् गर्व को और विषयी दु ख को प्राप्त होते ही हैं)।

२. करन लगे बड याग—श्री मद्भागवत् के चतुर्थ स्कन्ध के तीसरे अध्याय मे लिखा है—

श्लोक—इष्ट्वा स वाजपेयेन ब्रह्मिष्ठानभि मूय च।
बृहस्पति सव नाम समारेभे क्रतूत्तमम्॥ ३॥

अर्थात् दक्षजी ने शास्त्र की आज्ञानुसार प्रथम वाजपेय यज्ञ करके तदनन्तर 'बृहस्पति सव' नामक उत्तम यज्ञ करने का आरम्भ किया।

३. विष्णु विरचि महेश विहाई—श्री मद्भागवत् स्कन्ध ४ अध्याय ६ मे यो लिखा है—

श्लोक—उपलभ्य पुरै वैतद्भगवानब्जसम्भव·।
नारायणश्च विश्वात्मा न कस्याध्वरमीयतु·॥३॥

अर्थात् वह भगवान ब्रह्माजी और सर्वव्यापी श्री नारायण इस होनी को प्रथम से ही समझ कर दक्ष प्रजापति कि यज्ञ में नही गये थे।

सुर सुन्दरी करहि कलगाना। सुनत श्रवण छूटहि मुनि ध्याना ।।

शब्दार्थ—व्योम=आकाश।

अर्थ—सतीजी ने आकाश मे देखा कि नाना प्रकार के सुन्दर विमान जा रहे है। देवताओ की स्त्रियाँ मधुर स्वर मे गाती जा रही थी। गीतो के सुनते ही मुनियो की समाधि छूट जाती थी।

पूछेउ तब शिव कहेउ बखानी। पिता यज्ञ सुनि कछु हरषानी ।।
जो महेश मोहि आयसु देही। कछु दिन जाय रहौ मिस एही ।।

अर्थ—पूछने से शिवजी ने हाल कह सुनाया तो अपने पिता के घर यज्ञ का होना सुन कुछ प्रसन्न हुई। (और विचारने लगी) जो शिवजी मुझे आज्ञा दे तो इसी बहाने से कुछ दिन (मायके मे) जा रहूँ।

पति परित्याग हृदय दुख भारी। कहै न निज अपराध विचारी ।।
बोली सती मनोहर बानी। भय सकोच प्रेम रस सानी ।।

अर्थ—पति से त्याग दिये जाने का हृदय मे भारी दु ख था, उसे अपना ही दोष समझ कर कहती न थी। (निदान पक्का जी करके) सतीजी मनभावने वचन बोली, जिनमे भय, लज्जा और प्रेम झलक रहे थे।

दोहा—पिताभवन उत्सव परम, जो प्रभु आयसु होय।
तौ मै जाउँ कृपायतन, सादर देखन सोय ।।६१।।

अर्थ—हे कृपा के धाम (शिवजी) मेरे पिताजी के घर बडा उत्सव है जो आपकी आज्ञा पाऊँ तो आदर सहित उसे देखने को जाऊँ।

कहेउ नीक मोरे मन भावा। यह अनुचित नहि नेवत पठावा ।।
दक्ष सकल निज सुता बुलाई। हमरे बैर तुमहि बिसराई ।।

अर्थ—तुमने अच्छा कहा और यह मेरे मन को भी अच्छा लगा परन्तु यह उचित नही किया जो (दक्ष ने) नेवता नही भेजा। (देखो) दक्ष ने अपनी और सब पुत्रियो को तो बुला भेजा परन्तु हम से बैर होने के कारण तुम्हे भुला दिया।

ब्रह्मसभा हम सन दुख माना। तेहिते अजहुँ करहि अपमाना ।।
जो बिन बोले जाहु भवानी। रहै न शील सनेह न कानी ।।

शब्दार्थ—कानी=मर्यादा।

अर्थ—उन्होने ब्रह्मसभा मे हमसे बुराई मानी थी (देखें दक्ष का जीवन चरित्र)। इसी से अभी तक हमारा अनादर करते है। हे सती ! जो बिना बुलाये जाओगी तो न आदर, न प्रेम और न मर्यादा रहेगी।

यदपि मित्र प्रभु पितु गुरु गेहा। जाइय बिन बोले न संदेहा ।।
तदपि विरोध मान जहँ कोई। तहाँ गये कल्याण न होई[1] ।।

अर्थ—यद्यपि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर बिना बुलाये जाना चाहिए, इसमे कुछ सन्देह नही। तो भी जहाँ इनमे से कोई भी बैर-भाव रखे उसके यहाँ जाने से भलाई नहीं होती।

---

१. तदपि विरोध मान जहँ कोई। तहाँ गये कल्याण न होई—श्रीमद्भागवत, ४ स्कन्ध, ३ अध्याय। →

भाँति अनेक शंभु समुझावा। भावीवश न ज्ञान उर आवा[1] ॥
कह प्रभु जाहु जो बिनहि बुलाये। नहि भलि बात हमारे भाये ॥

अर्थ—शिवजी ने कई प्रकार से समझाया परन्तु होनहार के कारण हृदय मे कुछ बोध न हुआ। तब तो प्रभु कहने लगे कि जो बिना बुलाये जाओगी तो मै समझता हूँ कि यह काम ठीक नही।

दोहा—कहि देखा हर यतन बहु, रहै न दक्ष कुमारि।
दिये मुख्यगण सग तब, बिदा कीन्ह त्रिपुरारि ॥६२॥

अर्थ—शिवजी ने बहुत उपाय कर देखे परन्तु सतीजी रहना नही चाहती थी, तब महादेवजी ने अपने कुछ प्रधान गणो के साथ उनको बिदा कर दी।

पिता भवन जब गई भवानी। दक्ष त्रास काहु न सन्मानी।
सादर भलेहि मिली इक माता। भगिनी मिली बहुत मुसकाता[2] ॥

अर्थ—जब सतीजी अपने पिता के घर पहुँची तो दक्ष के डर के मारे किसी ने उनका आदर नही किया। हाँ, केवल उनकी माता तो उनसे आदर सहित मिली परन्तु बहिने तो बहुत कुछ मुसकराती-मुसकराती मिली।

दक्ष न कछु पूछी कुशलाता। सतिहि विलोकि जरे सब गाता ॥
सती जाय देखेउ तब यागा। कतहुँ न दीख शंभु कर भागा ॥

शब्दार्थ—यागा (यज्=पूजना)=यज्ञ, हवन।

अर्थ—दक्ष ने कुशल प्रश्न तक न किया वरन् सती को देखते ही उनका शरीर (क्रोध से) जल उठा। इतने मे सती ने जाकर जो हवन स्थान को देखा तो वहाँ शिवजी के निमित्त कोई यज्ञ भाग न दिखाई दिया।

तब चित चढेउ जो शकर कहेऊ। प्रभु अपमान समुझि उर दहेऊ ॥
पाछिल दुख न हृदय अस व्यापा। जस यह भयउ महा परितापा ॥

अर्थ—तब उसी बात की सुध आ गई जो शकरजी ने कही थी (कि "तदपि विरोध मान जहँ कोई। तहाँ गये कल्याण न होई") इसके सिवाय पति का निरादर समझ हृदय मे जलन

श्लोक—त्वयोदित शोभनमेव शोभने, अनाहुता अप्यभियन्ति बन्धुषु।
ते यद्यनुत्पादित दोष दृष्टयो, बली यसाऽनात्म्यमदेन मन्युना ॥१६॥

अर्थात् (शिवजी बोले) हे सती! सज्जन पुरुष बिना बुलाये भी अपने सबधियो के घर जाते है, यह तुम्हारा कहना उचित ही है परन्तु वे लोग यदि अपनी प्रभुता आदि के घमड मे आकर क्रोध से दोष-दृष्टि रखते हो तो उनके घर जाने से कल्याण न होगा।

१. भावीवश न ज्ञान उर आवा—देखें टि० पृ० १५३।

२. सादर भलेहि मिली इक माता। भगिनी मिली बहुत मुसकाता—पहले तो दक्ष का क्रोध, तो भी माता की दया और साधारण दशा मे बिना बुलाई आने के कारण बहिनों का निरादर से हँसना उस बुद्धिवान् फकीर के लेख का स्मरण कराता है कि जिसे उसने लाख रुपये मे बेचा था और जिसे मोल लेने के कारण एक बादशाह ने अपने बेटे को घर से निकाल दिया था और जिसने इन सब नसीहतो को अजमाया था। सो यो कि (१) खफगी पिता की, (२) दया माता की, (३) होती की बहिन, (४) अनहोती का यार, (५) आँख की तिरिया, (६) गाँठी का दाम, जब तब आवे काम, (७) अनूठा शहर सोवै सो खोवै और जागै सो पावै।

उठी। (शिवद्वारा परित्याग किये जाने का) पहला दुःख इतना न आँसा जितना कि ये दु ख अधिक व्यापा।

यद्यपि जग दारुण दुख नाना। सब ते कठिन जाति अपमाना[१] ॥
समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा। बहु विधि जननी कीन्ह प्रबोधा ॥

अर्थ—यद्यपि ससार मे बहुतेरे कठिन दु ख है तो भी अपने जाति-भाइयो के द्वारा निरादर सबसे कठिन है। यह समझकर सती को और भी अधिक क्रोध हुआ (जिसे देख) माता ने अनेक प्रकार से समझाया।

दोहा—शिव अपमान न जाय सहि, हृदय न होत प्रबोध।
सकल सभहि हठि हटकि तब, बोली बचन सक्रोध[२] ॥६३॥

अर्थ—शिवजी का अनादर सहा नही जाता था और इसी से हृदय मे कुछ शान्ति नही होती थी। तब वे सम्पूर्ण सभा वालो से डॉट-डपटकर क्रोध भरे वचन बोली—

सुनहु सभासद सकल मुनिदा। कही सुनी जिन शकरनिदा ॥
सो फल तुरत लहव सब काहू। भली भाँति पछिताव पिताहू ॥

शब्दार्थ—मुनिदा (स० मुनीन्द्र)=मुनियो मे श्रेष्ठ।

अर्थ—हे सभा वालो तथा सब मुनि श्रेष्ठजन, सुनिये ! जिन-जिन ने शिवजी की निदा की है अथवा सुनी है। सो सब के सब उसका फल अभी पाओगे और पिताजी भी अच्छी तरह पछतावेगे।

सत शभु श्रीपति अपवादा। सुनिय जहाँ तहँ अस मर्यादा[३] ॥
काटिय जीभ जु तासु बराई। श्रवण मूँदि न त चलिय पराई ॥

शब्दार्थ—श्रीपति (श्री=लक्ष्मी+पति=स्वामी)=लक्ष्मीपति, विष्णु। अपवाद (अप=बुरा+वद=कहना)=बुरा कहना अर्थात् निंदा करना।

अर्थ—किसी भी सत्पुरुष की, शिवजी की अथवा लक्ष्मीपति भगवान आदि की निन्दा जहाँ सुनाई दे तहाँ शास्त्र पद्धति तो यो है कि जो अपना अधिकार चले तो उसकी जीभ काट डाले, नही तो अपने कान बद करके वहाँ से भाग जाए।

दूसरा अर्थ—किसी भी सत्पुरुष की, शिवजी की अथवा लक्ष्मीपति भगवान आदि की

---

१ सब ते कठिन जाति अपमाना—जैसा कि श्रीमद्भागवत मे लिखा है—
'सभावितस्य स्वजनात्परा भवो यदा सद्यो मरणाय कल्पते'
अर्थात् प्रतिष्ठित पुरुष का यदि उसके सबधियो से अपमान हो जाय तो यह तत्काल उसके मरण का कारण हो जाता है।

२ बोली वचन सक्रोध—
श्लोक—पैशून्य साहस द्रोह ईर्षासूयार्थ दूषणम्।
वाग्दण्डभ च पारुष्य क्रोधजोपि गणोष्टका ॥
अर्थात् निन्दकता, साहस, बुरा चीतना, ईर्षा, दूषण ढूंढना, हानि पहुँचाना, कटु वचन और कठोरता क्रोध के ये आठ सघाती है।

३. मर्यादा=सस्था, शास्त्र पद्धति जैसा कि उत्तर रामचरित के पाचवे सर्ग मे इस शब्द का इसी अर्थ मे उपयोग किया गया है। यथा—'आ तातापवाद भिन्न मर्याद अतिहि नाम प्रगल्भ से' अर्थात् अरे ! जेठो की निन्दा करके शास्त्र पद्धति उल्लघन करने वाला तू बडी ढिठाई से बोलता है।

निन्दा जहाँ सुनाई दे तहाँ शास्त्र पद्धति तो यो है कि "तासु जीभ जु बसाई" अर्थात् उसकी जीभ को जो ऐसी दुर्गंधिनवार्त्ता करती हो 'काटिय' अर्थात् शास्त्र प्रमाण और युक्ति से उसके कथन को काटना चाहिए और यदि इतनी बुद्धि न हो तो या तो कान बन्द करके रह जाय (अर्थात् उसकी बातचीत पर ध्यान न दे) अथवा वहाँ से हट जाय।

जगदातमा[१] महेश[२] पुरारी[३] । जगतजनक[४] सबके हितकारी ॥
पिता मदमति निंदत तेही । दक्षशुक्रसभव यह देही[५] ॥

शब्दार्थ— जगदातमा (जगत=ससार+आत्मा=आधार)=ससार के आधार। शुक्र=वीर्य।

अर्थ – महादेवजी ससार के आधार और त्रिपुर राक्षस के मारने वाले, ससार के रचने वाले और सबका हित करने वाले है। ऐसे शिवजी का इस मतिहीन पिता ने निरादर किया और जब कि यह मेरा शरीर इन्ही दक्ष के वीर्य से उत्पन्न है।

तजिहौ तुरत देह तेहि हेतू । उर धरि चद्रमौलि वृषकेतू[६] ॥
अस कहि योगअग्नि तनु जारा[७] । भयउ सकल मख हाहाकारा ॥

---

१. जगदातमा—इस विशेषण से यह सूचित किया कि शिवजी ही ससार के आधारभूत है, कारण ये सहारकर्त्ता है।

२. महेश से सब देवताओ मे महत्त्व वाले दर्शाये।

३ पुरारी से स्पष्ट जताया है कि बडे प्रतापी त्रिपुर नाम राक्षस के वधकर्त्ता है।

४. जगतजनक से आदरणीय और सबके हितकारी कहकर यह बतलाया कि दयालु और उदार-चित्त वाले भी है—यहाँ तक कि 'भाविहु मेटि सकहि त्रिपुरारी'।

५. दक्षशुक्रसभव यह देही। इत्यादि—श्रीमद्भागवत से—

श्लोक—अतस्तवोत्पन्नमिद कलेवर न धारयिष्ये शितिकठ गर्हिश ।
जग्धस्य मोहाद्धि विशुद्धि मधसो, जुगुप्सितस्योद्धरण प्रचक्षते॥

अर्थात् इस कारण नीलकठ शिवजी की निन्दा करने वाले तुझसे उत्पन्न हुए इस शरीर को अब मैं धारण नही करूँगी। क्योकि भ्रम से भक्षण किये हुए अपवित्र अन्न को वमन करके निकाल देना ही पुरुष की शुद्धि का कारण कहा गया है।

६ चद्रमौलि—इस विशेषण से शीतलता देते हुए अमृत बरसाने वाले तथा 'वृषकेतु' से धर्म की मर्यादा रखने वाले प्रकट कर उन्हे हृदय मे धारण कर पार्वतीजी ने जो प्राण त्यागे तो तुरत ही हिमाचल के यहाँ जन्म ले धर्म की मर्यादा से शिवजी के साथ ही विवाह कर उनसे अमरकथा सुनकर अमरत्व को प्राप्त हुई।

७. अस कहि योगअग्नि तनु जारा—योगाग्नि को उत्पन्न कर अपने शरीर को भस्म करने की विधि जो श्रीमद्भागवत मे लिखी है उसका थोडा-सा ब्यौरा लिखा जाता है—

पीला वस्त्र धारण कर मौन हो उत्तर दिशा की ओर मुख करके आसन लगा के फिर नेत्र मूँदकर समाधि लगावे अर्थात् ऊर्ध्व गति प्राण वायु और अधोगति अपान वायु को नाभि चक्र मे एक स्थान पर स्थिर करे। फिर उन दोनो प्रकार की वायु ऊर्ध्व गति करके नाभि चक्र से ऊपर हृदय मे पहुँचाये, फिर हृदय मे स्थिर की हुई उस वायु को धीरे-धीरे कठ मार्ग से भृकुटियो के मध्य मे ललाट स्थान पर पहुँचाये। इस प्रकार योगमार्ग मे प्रवीण महात्मा लोग अपना शरीर त्यागने के निमित्त से एकचित हो साथ ही साथ अपने शरीर मे वायु और अग्नि को धारणा करे। ऐसा करने से परमात्मा मे चित्त लगाते ही अग्नि आप ही आप प्रदीप्त होकर शरीर को भस्म कर देती है (स्मरण रहे कि यह योग-क्रिया उन्ही महात्माओ से हो सकती है जो पूर्णतया समाधि लगाने मे प्रवीण हो चुके हो)।

शब्दार्थ—चद्रमौलि (चन्द्र=चन्द्रमा+मौलि=सीस)=जिसके सीस पर चद्रमा है अर्थात् शिवजी।

अर्थ—इस हेतु चद्रमा को सीस पर धारण करने वाले धर्म मे श्रेष्ठ शिवजी को हृदय मे धारण कर मै अपने शरीर को त्यागे देती हूँ। इतना कहकर उन्होने योग बल से अग्नि उत्पन्न कर शरीर को जला दिया तब तो सम्पूर्ण यज्ञशाला मे हाहाकार मच गया।

दोहा—सतीमरण सुनि शम्भु गण, लगे करन मख खीस।
यज्ञबिधंस बिलोकि भृगु, रक्षा कीन्ह मुनीस[1] ॥ ६४ ॥

अर्थ—सतीजी का मरन सुनते ही शिवजी के गण यज्ञ को तहस-नहस करने लगे। तब यज्ञ का नाश होते देख मुनिश्रेष्ठ भृगुजी ने (यत्र बल से) रक्षा की।

समाचार जब शकर पाये। वीरभद्र कर कोप पठाये[2] ॥
यज्ञबिधस जाइ तिन कीन्हा। सकल सुरन्ह विधिवत फल दीन्हा ॥

अर्थ—(सतीजी के प्राण त्याग आदि का) हाल जब शकरजी को विदित हुआ तब तो उन्होने क्रोधित होकर वीरभद्र नाम के अपने गण को भेजा। उसने जाकर यज्ञ को भ्रष्ट कर डाला और सब देवताओ को यथायोग्य दड दिया।

भइ जग विदित दक्षगति सोई। जस कछु शम्भु विमुख की होई ॥
यह इतिहास सकल जग जाना[3]। ता ते मै सक्षेप बखाना ॥

अर्थ—दक्ष की वही जगत प्रसिद्ध दशा हुई जो कुछ कि शिव के विरोधी की होती है (अर्थात् दक्ष का सिर काट डाला गया)। यह वार्त्ता सब लोगो को विदित ही है, इसी से मैंने उसका वर्णन थोडे ही मे कर दिया।

---

१ यज्ञ बिधस विलोकि भृगु, रक्षा कीन्ह मुनीस—
मनुजी के मानस पुत्रो मे से भृगुजी एक प्रजापति और महर्षि है जिस वश मे जमदग्नि और परशुराम प्रसिद्ध हो गये है, उस भार्गव वश के ये पुरुष है। भागवत मे कथा है कि जिस समय दक्षप्रजापति ने यज्ञ किया था जिसमे सतीजी ने प्राण-त्याग किये थे और जिसे शिवजी के गणो ने पहले विध्वस करना चाहा था उसकी रक्षा मत्र बल से इन्ही भृगुजी ने की थी परन्तु पीछे से शिवजी के भेजे हुए वीरभद्र द्वारा इनका अपमान हुआ था क्योकि इन्होने पहले ब्रह्मदेव के यहाँ शिवजी की निन्दा करने वाले दक्ष को सहायता दी थी।
भृगुजी द्वारा ब्राह्मण पूज्य देवता की जॉच की कथा अन्यत्र है।

२. समाचार जब शकर पाये। वीरभद्र कर कोप पठाये—कथा प्रसिद्ध है कि सतीजी के तनत्याग की वार्त्ता तथा भृगु मुनि के मत्रबल से उत्पन्न हुए ऋभु नामक सहस्रो देवताओ से पराजित किये हुए प्रथम के रुद्रगणो का हाल नारदजी से जब शिवजी ने सुना तब उन्होने क्रोध करके अपनी एक जटा फटकारी तो उसमे से वीरभद्र नामक एक भव्यपुरुष उत्पन्न हुआ। उसका बडा भारी शरीर मेघ के समान श्यामवर्ण था। अनेक आयुध धारण किये हुए सहस्र भुजा वाले इस पुरुष के तीन नेत्र और अग्नि के समान केश थे। उसके गले मे मुण्डमाल थी और वह बडा ही शूरवीर तथा तेजस्वी था।

३. यह इतिहास सकल जग जाना' 'आदि—दक्ष यज्ञ की कथा श्रीमद्भागवत के चौथे स्कन्ध ही के आधार से गोस्वामीजी ने लिखी है। उसका परिणाम पृ० १५७ की टिप्पणी मे दक्ष के जीवन चरित्र मे लिखा है। श्री रामचन्द्रजी से सती समेत शिवजी की बन मे भेट तथा सतीमोह की कथा भागवत मे नही है।

सती मरत हरि सन वर माँगा। जन्म जन्म शिवपद अनुरागा ॥
तेहि कारण हिमगिरि गृह जाई। जन्मी पारवती तनु पाई[1] ॥

अर्थ—शरीर छोडने के समय सतीजी ने ईश्वर से यह वरदान माँग लिया था कि मेरा प्रेम प्रत्येक जन्म मे शिवजी के चरणो मे लगा रहे। इसी हेतु उसने हिमाचल के घर जा पार्वती रूप से जन्म लिया।

(१७. पार्वती की कथा)

जब ते उमा शैलगृह आई। सकल सिद्धि सम्पति तहँ छाई ॥
जहँ तहँ मुनिन सु आश्रम कीन्हे। उचित वास हिम भूधर दीन्हे ॥

अर्थ—जिस समय मे पार्वती हिमाचल के घर मे जन्मी, तभी से वहाँ पर सपूर्ण सिद्धियाँ और ऐश्वर्य जा पहुँचे। ठौक-ठौर पर मुनियो ने सुन्दर आश्रम बना लिये जिनके हेतु हिमाचल पर्वत ने यथायोग्य स्थान भी प्रदान किये थे।

दोहा—सदा सुमन फल सहित सब, द्रुम नव नाना जाति।
प्रकटी सुन्दर शैल पर, मणि आकर बहु भाँति ॥ ६५ ॥

अर्थ—भाँति-भाँति के नये वृक्ष सबके सब सदा फूलने-फलने लगे और उस मनोहर पर्वत पर नाना प्रकार की मणियो की खदाने प्रकट हो गई।

सरिता सब पुनीत जल बहही। खग मृग मधुप सुखी सब रहही ॥
सहज बैर सब जीवन त्यागा। गिरि पर सकल करहि अनुरागा ॥

अर्थ—(हिमालय से निकली हुई) सब नदियो मे पवित्र जल बहने लगा और सम्पूर्ण पक्षी-पशु और भौंरे आनद से रहने लगे। सब जीवधारियो ने अपना स्वाभाविक बैर छोड दिया और सब हिल-मिलकर पर्वत पर सुख-चैन से रहने लगे।

सोह शैल गिरिजा गृह आये। जिमि जन रामभक्ति के पाये ॥
नित नूतन मगल गृह तासू। ब्रह्मादिक गावहि यश जासू[2] ॥

शब्दार्थ—नूतन = नया।

अर्थ—पार्वतीजी के जन्म लेने से हिमालय इस प्रकार शोभायुक्त हो गया जिस प्रकार प्राणी रामभक्ति पाने से हो जाता है। उनके घर दिनो दिन नये-नये उत्सव होने लगे और ब्रह्मा आदि सब देव उनकी कीर्ति का वर्णन करने लगे।

---

१. तेहि कारण हिमगिरि गृह जाई। जन्मी पारवती तनु पाई—कुमारसभव सर्ग १—
श्लोक—अथावमानेन पितु प्रयुक्ता, दक्षस्यकन्या भवपूर्वपत्नी।
सतीसती योगविसृष्ट देहा, ताजन्मने शैलवधू प्रपेदे ॥ २१ ॥
अर्थात् (मैनाक जन्म के पश्चात्) दक्ष की कन्या शिवजी की पहली पत्नी पतिव्रता सती नामकी स्त्री ने पिता द्वारा पाये हुए अपमान के कारण योगबल से देह त्याग कर हिमाचल के यहाँ जन्म लिया।

२. नित नूतन मगल गृह तासू। ब्रह्मादिक गावहि यश जासू—पार्वती मगल से—
छन्द—नित नव सकल कल्याण मगन मोदमय मुनि मानही।
ब्रह्मादि सुरनर नाग अति अनुराग भाग बखानही ॥
पितु मातु प्रिय परिवार हरषहि निरखि पालहि लालही।
सित पाख बाढ़ति चन्द्रिका जनु चद्र भूषण भालही ॥

नारद समाचार सब पाये। कौतुक ही गिरिगेह सिधाये।।
शैलराज बड़ आदर कीन्हा। पद पखारि वर आसन दीन्हा[१] ।।

अर्थ—जब नारदजी को यह हाल मालूम हुआ तब वे चित्त विनोद के लिए हिमाचल के महलो मे पधारे। गिरिराज ने उनका बडा सत्कार किया, उनके चरण धोये और उत्तम आसन बैठने को दिया।

नारि सहित मुनिपद शिर नावा। चरणसलिल सब भवन सिचावा[२] ।।
निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना[३] । सुता बोलि मेली मुनिचरना ।।

शब्दार्थ—सलिल=जल।

अर्थ—हिमवान् ने मैना रानी के साथ नारदजी के चरणो पर सीस नवाया और उनका चरणोदक अपने महलो मे छिडकवा दिया। पर्वतराज ने अपने भाग्य की बहुत बडाई की (मो यो कि धन्य है मेरे भाग्य कि देवऋषिजी ने आकर मेरे गृह को पवित्र किया और मुझे भी कृतार्थ किया) फिर उन्होने पार्वती को बुला मुनिजी के चरणो मे डाल दिया।

दोहा—त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ तुम, गति सर्वत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोष गुण, मुनिवर हृदय विचारि।। ६६ ।।

शब्दार्थ—त्रिकालज्ञ (त्रि=तीन+काल=समय+ज्ञ=जानना)=तीनो काल (भूत, भविष्यत्, वर्तमान) के जानने वाले।

अर्थ—हे श्रेष्ठ मुनिजी! आप तीनो काल का हाल जानते है और सब बाते समझते है तथा आप सब स्थानो मे विचरते है। इस हेतु मन मे विचार कर पुत्री के गुण-दोष कहिये।

कह मुनि विहँसि गूढ मृदु बानी। सुता तुम्हारि सकल गुनखानी[४] ।।

---

१ पद पखारि वर आसन दीन्हा—ब्रह्मवैवर्त्त पुराण—गणेशखड के चौथे अध्याय से—

श्लोक—आसन स्वागतम् पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्।
मधुपर्कश्च स्नानीय वस्त्राणि भूषणानिच ।।
सुगन्धि पुष्प धूपच दीप नैवेद्य चन्दनम्।
यज्ञसूत्र चताम्बूल कर्पूरादि सुवासितम् ।।
द्रव्याण्ये ये तानि पूजा याश्चागरूपाणि सुन्दरि ।।

अर्थात्—हे सुन्दरी! आदरपूर्वक आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्र, आभूषण, सुगध, फूल, धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दन, यज्ञोपवीत, मसालेदार पान—ये पदार्थ पूजा के निमित्त होना चाहिए।

२ चरणसलिल सब भवन सिचावा—चाणक्य नीति मे लिखा है—

श्लोक—न विप्रपादोदक कर्दमानि, न वेद शास्त्र ध्वनि गर्जितानि।
स्वाहा स्वधाकार विवर्जितानि, श्मशान तुल्यानि गृहाणि तानि।।

अर्थ—जिन घरो मे ब्राह्मण के पाँवो के जल से कीचड न हुआ हो और न वेद शास्त्र के शब्द की ध्वनि हुई हो तथा जो गृह स्वाहा-स्वधा से रहित हो, उनको श्मशान के समान जानना चाहिए। भाव यह कि जिस घर मे ब्राह्मण के चरण न पखारे जाए, जिसमे वेद का पठन न हो और जिसमे यज्ञ तथा श्राद्ध न किये जाए, वे घर अपवित्र है।

३ निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना—कहावत प्रसिद्ध ही है कि
'धन्य वाके भाग जाके साधू आये पाहुने।'

४ कह मुनि विहँसि गूढ मृदु बानी। सुता तुम्हारि सकल गुनखानी—
नारद जी के हँसने का यह कारण जँचता है कि हिमाचल ने पुत्री के गुण-दोष साधारण→

सुन्दर सहज सुशील सयानी। नाम उमा अबिका भवानी ।।

अर्थ—नारद मुनि हँसकर के गूढ और मधुर वचन बोले कि तुम्हारी पुत्री सब गुणो से परिपूर्ण है। रूपवती स्वभाव ही से शीलवती और सयानी है और इसके नाम उमा, अम्बिका तथा भवानी हैं।

सब लक्षण सपन्न कुमारी। होइहि सतति पियहि पियारी ।।
सदा अचल इहि कर अहिवाता। इहि ते यश पैहहि पितुमाता[1] ।।

शब्दार्थ—अहिवात (स० अस्तिपति=है पति जिसका) =सुहाग।

अर्थ—तुम्हारी सुता सब लक्षणो से युक्त है (इस हेतु) अपने पति को सदा प्यारी रहेगी। इसका सुहाग सदा अटल रहेगा और माता-पिता भी इससे बड़ाई पाएगे।

होइहि पूज्य सकल जग माही। इहि सेवत कछु दुर्लभ नाही ।।
इहि कर नाम सुमिरि ससारा। तियच ढ़िहहि पतिव्रत असिधारा ।।

अर्थ—यह सब ससार मे पूजनीय होगी और इसकी सेवा करने से कुछ भी दुर्लभ न रहेगा (अर्थात् सब कुछ मिल सकेगा)। इसका नाम स्मरण करके पतिव्रता स्त्रियाँ पतिव्रत-धर्मरूपी तलवार की धार पर चढेगी। (अर्थात् जो स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म को धारण करना चाहेगी जो कि ऐसा कठिन है कि मानो तलवार की धार पर चढ़ना है, वे इन्ही का नाम लेकर सफल मनोरथ होगी)।

शैल सुलक्षणि सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुण दुइ चारी ।।
अगुण अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब सशय छीना ।।

अर्थ—हे गिरिराज! तुम्हारी सुता सुलक्षणा है तो भी अब जो दो-चार दुर्गुण उसमे है सो भी सुनो कि गुण रहित, मान रहित, मात-पिता विहीन, ससार त्यागी और बेफिक्र—

दोहा—योगी जटिल अकाम मन, नगन अमगल भेख।
अस स्वामी इहि कहँ मिलिहि, परी हस्त अस रेख[2] ।। ६७ ।।

पुत्री की नाई पूछे परन्तु यह न जाना कि ये सम्पूर्ण सुलक्षणो से परिपूर्ण है, इनमे दोष नही है और गूढ मृदुबानी यह कि 'उमा' नाम से बडी तपस्विनी, 'अबिका' नाम से जगत-माता, और 'भवानी' नाम से शिवजी की पत्नी होगी, ऐसा इगित किया।

१. इहि ते यश पैहहि पितु माता—

दोहा—स्वर्गी पतित प्रसून से, तथा न गगाधार।
हिम गिरि अस पावन भयो, जस पुत्री आचार ।।

२. अस स्वामी इहि कहँ मिलिहि···आदि—इस कथन का नारदजी के अनुसार प्रत्यक्ष दूषित अर्थ और यथार्थ गूढार्थ नीचे के कोष्टक से स्पष्ट होगा·

शब्द	नारद अनुसार देखने मे दूषित अर्थ	गूढ आशय
१. अगुण	गुणहीन ···	सत, रज, तम—इन तीनों से परे अर्थात्, निर्गुण ब्रह्म।
२. अमान	मानरहित ··	बेप्रमाण ऐश्वर्ययुक्त।
३. मातुपितु-हीना	माता-पिता विहीन ···	सबके माता पिता अतएव माता-पिताहीन क्योकि अनादि है।
४. उदासीन	ससार-त्यागी ···	शत्रु-मित्र को एक-सा समझने वाले अर्थात् समदर्शी।

→

अर्थ—योगी, वैरागी, जटाधारी, बेकाम, वस्त्रहीन और अशुभ भेष धारी—ऐसा पति इसको मिलेगा, इसके हाथ मे ऐसी ही रेखा पडी है।

सुनि मुनि गिरा सत्य जिय जानी। दुख दपतहि उमा हरषानी[1] ॥
नारद हू यह भेद न जाना। दशा एक समुझब बिलगाना[2] ॥

अर्थ—मुनिजी के वचनो को सुन और उन्हे हृदय मे सत्य समझ माता-पिता को तो दुख हुआ परन्तु पार्वती प्रसन्न हुई। यह बात नारदजी भी न समझ सके कि सब सुनने वालो का देह विकार तो एक ही-सा दिखाई दिया परन्तु उनमे समझ का भेद था (अर्थात् सबके शरीर रोमाचित हुए और नेत्रो मे आँसू भर आये परन्तु दपति को तो दुख के कारण ऐसा हुआ और पार्वती को सुख के कारण) इस दशा भेद को नारदजी भी न समझे।

सकल सखी गिरिजा गिरि मयना। पुलक शरीर भरे जल नयना ॥
होइ न मृषा देवऋषि भाखा। उमा सो वचन हृदय धरि राखा ॥

अर्थ—सब सखियो के साथ पार्वती, हिमाचल और मयना के रोम खडे हो आये और नेत्रो मे आँसू भर आये। जो नारद मुनिजी ने कहा है सो झूठ नही हो सकता, इस हेतु उन वचनो को सुनकर पार्वती ने हृदय मे रख लिया।

उपजेउ शिवपदकमल सनेहू। मिलन कठिन मान भा सदेहू ॥
जानि कुअवसर प्रीति दुराई। सखी उछग बैठि पुनि जाई ॥

शब्दार्थ—उछग (स० उत्सग) = गोदी।

अर्थ—शिवजी के कमल स्वरूपी चरणो मे उनका प्रेम उत्पन्न हुआ परन्तु मन मे यह सदेह उठा कि शिवजी का मिलना कठिन है। कुसमय जान कर प्रीति को छिपाया और फिर वे अपनी सखी की गोद मे जा बैठी।

झूठ न होइ देवऋषि वानी। सोचहि दपति सखी सयानी ॥
उर धरि धीर कहै गिरिराऊ। कहहु नाथ का करिय उपाऊ ॥

---

५. सब सशय छीना	बेफिक्र	···	सब सन्देहो के मिटाने वाले।
६. योगी	वैरागी	··	योग साधन करने वाले।
७ जटिल	जटाधारी	·	ऐसी जटाओ के धारण करने वाले कि जिनमे गगाजी बिला गई थी।
८ अकाम मन	बेकाम	···	सब इच्छाओ से रहित।
९. नगन	वस्त्रहीन	··	दिगम्बर, किंवा जिन्हे गणो की कुछ आवश्यकता नही।
१०. अमगल भेष	अशुभ भेषधारी	···	विभूति भ्राजित।

१ उमा हरषानी—पार्वतीजी को शिवजी पर शुद्ध भक्ति हो उठने से उनकी दशा ऐसी हो गई जैसी कि शुद्ध भक्ति वाले की होती है। यथा—

श्लोक—विनागद् गद्या वाचा द्रवता चेतसा विना।
विनाऽनदाश्रुकलयाऽशुद्धोभक्त्याविनाऽशय ॥

अर्थ—जब तक गद्गद वाणी, द्रवीभूत वित्त और नेत्रो से आनद के अश्रुपात न हो तब तक प्राणी का हृदय भक्ति के न होने से अशुद्ध है (अर्थात् छ विकारो से युक्त है)।

२ दशा एक समुझब बिलगाना—स्मरण रहे कि रोमाच और अश्रुप्रवाह जिस प्रकार अधिक दुख मे होते है उसी प्रकार अधिक सुख मे भी होते है।

अर्थ—नारदजी के वचन झूठे नही होते—इस प्रकार राजा, रानी और चतुर सखियाँ चिता करने लगी। फिर हिमवान् धीरज धर कहने लगे, हे स्वामी ! कहिये अब क्या उपाय करे ?

दोहा—कह मुनीश हिमवत सुन, जो विधि लिखा लिलार[१] ।
देव दनुज नर नाग मुनि, कोउ न मेटनहार ॥ ६८ ॥

अर्थ—श्रेष्ठ मुनि कहने लगे कि हे गिरिराज, सुनिये ! ब्रह्मा न जो कुछ भाग्य मे लिख दिया है उसे देवता, राक्षस, मनुष्य, सर्प अथवा मुनि कोई भी मिटा नही सकता।

तदपि एक मै कहौ उपाई। होइ करै जो दैव सहाई॥
जस वर मै वरनेउ तुम पाही। मिलिहि उमहि कछु सशय नाही॥

अर्थ—तो भी मैं एक उपाय बतलाता हूँ जो ईश्वर सहायता करे तो सिद्ध हो जाय। जैसे पति का मैने तुम से वर्णन किया है वैसा ही पार्वती को मिलेगा। इसमे कुछ सदेह नही।

जे जे वर के दोष बखाने। ते सब शिव पहँ मै अनुमाने॥
जो विवाह शकर सन होई। दोषौ गुण सम कह सब कोई[२]॥

अर्थ—जितने वर के दोष वर्णन किये ते सब मैने शकरजी मे विचार किये है (इस हेतु कुमारी का) विवाह जो शकरजी के साथ हो तो वे सब लोग उन दोषो को भी गुण कहने लगेगे।

जो अहिसेज शयन हरि करही[३]। बुध कछु तिन कहँ दोष न धरही॥
भानु कृशानु सर्व रस खाही। तिन कहँ मन्द कहत कोउ नाही॥

अर्थ—जो विष्णुजी सर्प की शय्या पर सोते है तो बुद्धिमान लोग उन्हे दोष नही लगाते (अर्थात् निदनीय विषहर सर्प पर यदि कोई साधारण प्राणी सोवे तो लोग उसे दूषित ठहरावे परन्तु सर्व शक्तिवान विष्णुजी का वही नाम सराहते हुए कहा करते है कि शेषशायीहि भगवान) सूर्य और अग्नि बुरे-भले पदार्थों का रस खीचते है तो भी लोग उन्हे बुरा नही कहते।

शुभ अरु अशुभ सलिल सब बहही। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहही॥

---

१ कह मुनीश हिमवत सुन, जो विधि लिखा लिलार—

सवैया—नृपज्ञान शिरोमणि बात सुनो न गुनो उर सोच अकामहि सो।
जहँ लै जग जीव भरे सबरे बँधे डोलत कर्म के दामहि सो॥
द्विज 'बन्दि' यथा करणी ज्यहि की तस पावत दुःख अरामहि सो।
सनबध निबध तथा विधि सो विधि देत है नाम को नामहि सो॥

और भी—

सवैया—या जग जीवन को है यहै फल जो छल छाड़ि भजै रघुराई।
शोधि के सन्त महतन हूँ 'पद्माकर' बात यही ठहराई॥
ह्वै रहै होनी प्रयास बिना अनहोनी न ह्वै सकै कोटि उपाई।
जो विधि भाल मे लीक लिखी सो बढाई बढै न घटै न घटाई॥

२. दोषौ गुण सम कह सब कोई—
६७वे दोहे की टिप्पणी मे देखे।

३ जो अहिसेज शयन हरि करही—जैसा कहा है—
श्लोक—नग्नत्व नील कठस्य महाऽहि शयन हरे।
अर्थात्—शिवजी का दिगम्बर रूप से रहना और विष्णुजी का शेषनाग की शय्या पर सोना दूषित नही समझा जाता।

समरथ कहँ नहि दोष गोसाई[1] । रवि पावक सुरसरि की नाई ।।

अर्थ—सब प्रकार का भला-बुरा पानी बहा करता है तो भी गगाजी को कोई अपवित्र नही कहता। हे पर्वताधिराज ! सामर्थ्यवान् को कोई दोष नही लगता जिस प्रकार सूर्य अग्नि और गगाजी जिनके बारे मे ऊपर कह आये है।

दोहा—जो अस हिसिका करहि नर, जड़ विवेक अभिमान ।
परहि कल्प भरि नरक महँ, जीव कि ईश समान[2] ।। ६९ ।।

शब्दार्थ—हिसिका (हिसका)=बराबरी।

अर्थ—जो मूर्ख मनुष्य बुद्धि के घमड से सामर्थ्यवान की बराबरी करते है, वे हजार चौयुगी तक नरक मे पडते है। क्या जीव ईश्वर के समान हो सकता है ? जैसा कहा है "परवश जीव स्ववश भगवन्ता"।

सुरसरि जलकृत वारुणि जाना । कबहुँ न सत करहि तेहि पाना ।।
सुरसरि मिले सुपावन जैसे । ईश अनीशहि अन्तर तैसे ।।

अर्थ—गगाजी के जल से बनाई हुई मदिरा को जान-बूझकर सन्तजन कभी न पियेगे। वही मदिरा गगाजी मे मिलने से इस प्रकार पवित्र हो जाती है जिस प्रकार परमेश्वर और जीव मे भेद है। (भाव यह कि जीव ईश्वर से जब तक अलग रहता है तब तक दूषित है जब उनमे मिल जाता है तब जीव ईश्वर ही हो रहता है)।

शभु सहज समरथ भगवाना । इहि विवाह सब विधि कल्याना ।।
दुराराध्य पै अहहि महेशू । आशुतोष पुनि किये कलेशू ।।

शब्दार्थ—दुराराध्य (दु = कठिनाई से + आराध्य = सेवा करने के योग्य) = कठिनाई से सेवा किये जाने के योग्य। आशुतोप (आशु = जल्दी + तोष = प्रसन्नता) = जल्दी से प्रसन्न होने वाले।

अर्थ—महादेवजी स्वभाव ही से सामर्थ्यवान है और षडश्वर्यशाली है। उनके साथ विवाह होने से सब प्रकार से भला है परन्तु शिवजी कठिनाई से मिल सकते है तो भी यदि कुछ कष्ट उठाया जाय तो प्रसन्न भी जल्दी हो जाते है।

जो तप करै कुमारि तुम्हारी । भाविउ मेटि सकहि त्रिपुरारी[3] ।।

---

१ समरथ कहँ नहि दोष गोसाई—टुक सोचना चाहिए कि थोडी-सी सपत्ति किंवा प्रभुता को पाकर लोग अपने को समर्थ मान बैठते है और अनुचित कार्य कर डालते है तथा उस की पुष्टि मे गोसाईजी की यही पक्ति कह देते है। उनका यह कहना ठीक नही है क्योकि सच्चा सामर्थ्य तो और ही बात है और वह नीचे की कविता से स्पष्ट होता है—

तब शुक बोले गिरा सुहाई । समरथ को बड साहस राई ।।
धर्मसेतु लाँघत है सोई । तेजस्वी कहँ दोष न होई ।।
जिमि सब वस्तु अग्नि महँ जाई । जरतहु कछु न अबार लगाई ।।
कर्म समर्थन के लखि लीजे । मनहूँ तै पर तस न करीजे ।।
यदपि मूढता धरि मन कोई । करै नाश पावै तहँ सोई ।।
जलधि ज्ञान विष करै जु पाना । बिना रुद्र नाशै निज प्राना ।।

२ जीव कि ईश समान—अरण्यकाण्ड रामायण को श्री विनायकी टीका देखे, दोहा—माया ईश न आपु कहँ, न कहिय सो जीव ''इत्यादि का अर्थ।

३. भाविउ मेटि सकहि त्रिपुरारी—इसकी उत्तम भावना विनय पत्रिका मे गोसाईजी ने भलीभाँति दर्शाई है। →

यद्यपि वर अनेक जग माही । इहि कहँ शिव तजि दूसर नाही[१] ।।

अर्थ—जो तुम्हारी पुत्री तपस्या करे तो शिवजी होनहार को भी मेट सकते है । यद्यपि ससार मे बहुतेरे वर है तो भी इसको शिव के सिवाय दूसरा योग्य नही ।

वरदायक प्रणतारति भजन[२] । कृपासिधु सेवक मन रजन ।।
इच्छित फल बिन शिव आराधे । लहिय न कोटि योग जप साधे ।।

अर्थ—वे वरदान देने वाले, शरणागत के दुख को दूर करने वाले, दयानिधान और भक्तो के चित्त को प्रसन्न करने वाले है । शिवजी की सेवा किये बिना अनगिनती योग साधना व तपस्या करने पर भी मनचाही सिद्धि मिल नही सकती ।

दोहा—अस कहि नारद सुमिरि हरि, गिरिजहि दीन्ह अशीश ।
होइहि सब कल्याण अब, सशय तजहु गिरीश ।। ७० ।।

अर्थ—इतना कह के नारद ने ईश्वर का स्मरण किया और पार्वती को आशीर्वाद दिया । (बोले—हे गिरिराज ! अब सब प्रकार आनद ही होगा, आप चिंता न कीजिये ।)

अस कहि ब्रह्मभवन मुनि गयऊ । आगिल चरित सुनहु जस भयऊ ।।
पतहि इकात पाय कह मयना । नाथ न मै समझिउ मुनिबयना ।।

बावरो रावरो नाह भवानी ।
दानि बडो दिन देत दिये बिन वेद बडाई भानी ।।
निज घर की बरबात विलोकहु हौ तुम परम सयानी ।
शिव की दई सम्पदा देखत श्री शारदा सिहानी ।।
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नही निशानी ।
तिन रकन को नाक सँवारत हौ आयो नक वानी ।।
दुखी दीनता दुखियन के दुख याचकता अकुलानी ।
यह अधिकार सौपिये औरहि भीख भली मै जानी ।।
प्रेम प्रशसा विनय व्यग युत सुनि विधि की वरबानी ।
तुलसी मुदित महेश मनहि मन जगतमात मुसकानी ।।

साराश यह है कि ब्रह्माजी कहते है कि जो कुछ दुख कोई-कोई प्राणियों को उनके बुरे कर्मों के कारण उनके भाग्य मे लिख देता हूँ, उन्हे बैकुठ पहुँचाकर शिवजी सब सुख दे डालते है ।

१ यद्यपि वर अनेक जग माही । इहि कहँ शिव तजि दूसर नाही—
यही भाव कविवर कालिदासजी ने कुमार सभव मे यो कहा है (सर्ग १)—

श्लोक—ता नारद कामचर: कदाचित्, कन्याकिल प्रेक्ष्य पितु: समीपे ।
समादिदेशैकवधू, भवित्री, प्रेम्णा शरीरार्द्धहरा हरस्य ।। ५० ।।

भाव यह है कि विचरते हुए नारद मुनि ने हिमाचल के समीप पार्वती को देखकर यह कहा था कि शिवजा प्रेम के कारण इसे अपनी अर्द्धांगिनी बनावेगे जो शिवजी केवल एक पत्नी व्रतधारी है ।

२ वरदायक प्रणतारति भजन—कविवर भिखारीदासजी का विश्वास यथार्थ है—

सवैया—राखत है जग को परदा कहँ आप सजे दिगअबर राखे ।
भाँग विभूति भँडार भरो है भरै गृह दास को जो अभिलाखे ।।
छाँह करै सब को हर जू निज छाँह को चाहत है बट साखे ।
चाहत है बरदा इक पै वरदा इक वाजि औ बारन लाखे ।।

अर्थ—ऐसा कहकर मुनिजी ब्रह्मलोक को सिधारे। अब आगे जो हाल हुआ सो सुने। अपने पति को अकेला पाकर मयना रानी कहने लगी—हे स्वामी ! मै मुनि के वचनो को समझी नही।

जौं घर वर कुल होइ अनूपा[१] । करिय विवाह सुता अनुरूपा ।।
नतु कन्या बरु रहै कुमारी । कन्त उमा मम प्राणपियारी ।।

अर्थ—जो घर दूल्हा और कुल उमा रहित और पुत्री के योग्य हो तो विवाह करना उचित है। (क्योकि) हे नाथ ! उमा तो मुझे प्राणो की नाईं प्यारी है।

जो न मिलिहि वर गिरिजहि योगू । गिरि जड सहज कहहि सब लोगू ।।
सो विचारि पति करहु विवाहू[२] । जेहि न बहोरि होइ उर दाहू ।।

अर्थ—जो वर पार्वती के योग्य न मिला तो सब लोग कहेगे कि स्वभाव ही से जड पर्वत तो ठहरे। सो हे कत ! वही सब विचार करके विवाह करो जिससे फिर हृदय मे जलन न हो।

अस कहि परी चरण धर शीशा । बोले सहित सनेह गिरीशा ।।
वरु पावक प्रगटै शशि माही । नारद वचन अन्यथा नाही ।।

अर्थ—इतना कहते-कहते उसने उसके चरणो पर मस्तक धर दिया तब तो पर्वताधिराज प्रेम सहित कहने लगे—चाहे चन्द्रमा मे अग्नि उत्पन्न हो जाय परन्तु नारद के वचन झूठ नही हो सकते।

दोहा—प्रिया सोच परिहरहु सब, सुमिरहु श्री भगवान[३] ।
पारवतिहि जिन निर्मयउ, सो करिहहि कल्यान ।। ७१ ।।

अर्थ—हे प्यारी ! सब चिन्ता दूर करो और परमेश्वर का स्मरण करो, जिन्होने पार्वती को उत्पन्न किया है, वे ही सब भला करेगे।

अब जो तुमहि सुता पर नेहू । तौ अस जाय सिखावन देहू ।।
करै सो तप जेहि मिलहि महेशू । आन उपाय न मिटिहि कलेशू ।।

अर्थ—अब जो तुम्हारा प्रेम पुत्री पर है तो जाकर उसे ऐसा सिखावन दो जिसमे

---

१. जो घर वर कुल होइ अनूपा—
दोहा—कन्या सुन्दर वर चहै, मातु चहै धनवान।
पिता कीर्ति युत स्वजन कुल, अपर लोग मिष्टान ।।

२. सो विचारि पति करहु विवाहू । जेहि न बहोरि होइ उर दाहू—
दोहा—पहिले लखि के दोष गुण, फेर अरम्भो काज।
जाते मन को हो न दुःख, लहो न जग मे खाज ।।

३. प्रिया सोच परिहरहु सब, सुमिरहु श्री भगवान—
दोहा—शिष्टा वाकी होयगी, जासे जहँ जेहि ठाँय।
बिन उपाय सो आपही, अवसि मिलैगो आय ।।

और भी (टीकाकार-कृत)
लोग सोच कन्या विवाह का, वृथा हृदय मे धरते है।
सर्व शक्ति युत ईश कृपानिधि, जोडी निरमित करते है ।।
भावी वर को जन्म प्रथम दे, कन्या पीछे रचते है।
हे रानी तुम सोच करो मत, विधि के अक न बचते है ।।

वह ऐसी तपस्या करे कि महादेव मिल जाए और दूसरे उपाय से दु ख दूर न होगा ।

नारद वचन सगर्भ सहेतू । सुन्दर सब गुण निधि वृषकेतू ।।
अस विचारि तुम तजहु अशका । सबहि भॉति शकर अकलका ।।

अर्थ—नारदजी के वचन अभिप्राय सहित और कारण युक्त है । महादेवजी उत्तम और सब गुणो के निधान है। ऐसा विचार करके तुम अनुचित चिन्ता त्याग दो क्योकि शिवजी तो सब ही प्रकार के दोषरहित है।

सुनि पतिवचन हर्ष मन माही । गई तुरत उठि गिरिजा पाही ।।
उमहि विलोकि नयन भरि वारी । सहित सनेह गोद बैठारी ।।

अर्थ—पति के वचन सुनते ही (मैना रानी जी के) हृदय मे आनन्द हुआ और वे जल्दी से पार्वती के पास गई। उमा को देखते ही नेत्रो मे आँसू भर आये और उन्होने बडे प्रेम से उसे गोदी मे बिठला लिया ।

बारहिबार लेति उर लाई । गदगद कठ न कछु कहि जाई ।।
जगत मातु सर्वज्ञ भवानी । मातु सुखद बोली मृदुबानी ।।

अर्थ—उसे अनेक बार अपने हृदय से लगाया तब तो उनका गला इस प्रकार से भर आया कि कुछ बोलते न बना । इतने मे जगदबा सब जानने वाली पार्वती अपनी माता को सुख उपजाने वाली मधुर वाणी बोली—

दोहा—सुनहु मातु मै दीख अस, स्वप्न सुनाऊँ तोहि ।
सुन्दर गौर सुविप्रवर, अस उपदेशेउ मोहि ।। ७२ ।।

अर्थ—हे माता ! मैंने ऐसा स्वप्न देखा सो तुम्हे सुनाती हूँ कि उत्तम गौर वर्ण ब्राह्मण-श्रेष्ठ ने मुझे ऐसा उपदेश दिया कि—

करहु जाय तप शैलकुमारी । नारद कहा सो सत्य विचारी ।।
मातपितहि पुनि यह मत भावा । तप सुखप्रद दुख दोष नसावा ।।

अर्थ—"हे गिरिनदिनी ! जो कुछ नारदजी ने कहा है उसे सत्य समझकर तपस्या जा करो ।" फिर माता-पिता को भी यह बात अच्छी लगी है क्योकि तप सुख का देने वाला तथा दु ख और दोषो का नाश करने वाला है।

तपबल रचै प्रपंच विधाता[1] । तपबल विष्णु सकल जगत्राता ।।
तपबल शंभु करहि सहारा । तपबल शेष धरहि महिभारा ।।

अर्थ—ब्रह्मदेव तप ही के बल से सृष्टि की रचना करते है । तप ही के बल से विष्णु सब ससार की रक्षा करते है। महादेवजी तप ही के बल से ससार का नाश करते है और तप ही के

---

१ तपबल रचै प्रपच विधाता आदि—
श्रीमद्भागवत के दूसरे स्कन्ध के नवे अध्याय मे यो लिखा है—
श्लोक—सृजामि तपसैं वेद गृसामि तपसा पुन ।
विभर्मि तपसा विश्व, वीर्यं मे दुश्चर तपः ।।
अर्थात् (परमात्मा के वचन ब्रह्मदेव प्रति) इस चराचर जगत् को मै तप से ही उत्पन्न करता हूँ और तप से ही इसका सहार करता हूँ, तथा तप से ही इसका पालन भी करता हूँ। कठिन तप ही मेरी शक्ति है । (भाव यह कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप से मैं क्रमानुसार सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और सहार किया करता हूँ।

बल से शेषनाग पृथ्वी का बोझ सभालते है ।

तपअधार सब सृष्टि भवानी । करहु जाइ तप अस जिय जानी ।।
सुनत वचन विस्मित महतारी । स्वप्न सुनायउ गिरिहि हँकारी ।।

अर्थ—(कहाँ तक कहूँ) हे भवानी ! सब ससार ही तपस्या के आसरे पर है। इस प्रकार जी मे विचार कर जाओ और तपस्या करो। इन वचनो को सुनते ही मैना रानी को बडा अचम्भा हुआ, उन्होने राजाजी को बुलाकर सपने का हाल कह सुनाया ।

मातुपितहि बहु विधि समझाई । चली उमा तप हित हरषाई ।।
प्रिय परिवार पिता अरु माता । भये विकल मुख आव न बाता ।।

अर्थ—माता-पिता को अनेक प्रकार से समाधान कर पार्वती तपस्या के हेतु आनन्द से चल निकली । प्यारे कुटुम्बी, पिता और माता ऐसे व्याकुल हुए कि उनके मुख से बात भी न निकलती थी ।

दोहा—वेदशिरा[1] मुनि आइ तब, सबहि कहा समझाय ।
पारवतीमहिमा सुनत, रहे प्रबोधहि पाय ।। ७३ ।।

अर्थ – उसी समय वेदशिरा नाम के मुनि ने आकर सबसे समझाकर कहा । सो सब पार्वती के प्रभाव को ध्यान मे धर उपदेश पाकर शान्तचित्त हो गये ।

उर धरि उमा प्राणपति चरना । जाइ विपिन लागी तप करना ।।
अति सुकुमार न तनु तप योगू । पतिपद सुमिरि तजेउ सब भोगू[2] ।।

अर्थ—पार्वतीजी अपने प्राणेश महेशजी के चरणो को हृदय मे धारण कर बन मे गई और उन्होने तपस्या करना आरम्भ कर दिया। शरीर अति ही कोमल होने के कारण तपस्या के योग्य न था, तो भी उन्होने पति के चरणो का ध्यान कर सब भोग-विलास त्याग दिये ।

नित नव चरण उपज अनुरागा । बिसरी देह तपहि मन लागा ।।
सवत सहस मूल फल खाये । शाक खाय शत वर्ष गँवाये[3] ।।

अर्थ—प्रतिदिन चरणो मे नई प्रीति उपजने लगी, शरीर का भान भूल गया और

---

१ वेदशिरा—ये ऋषि भृगु ऋषि के लडके विधाता नाम के पुत्र के नाती थे । इनके पिता का नाम प्राण ऋषि था ।

२ अति सुकुमार न तनु तप योगू । पतिपद सुमिरि तजेउ सब भोगू—
(कुमार सम्भव सर्ग ५-१२)—
श्लोक—महार्हशय्या परिवर्तनच्युतै स्वकेश पुष्पै रपि यास्म दूयते ।
अशेत साबाहुलतोपधायिनी, निषदुषी स्थडिल एव केवले ।।
अर्थात्—जो पार्वतीजी बहु मूल्य शय्या पर अपने बालो से भरे हुए फूलो से भी दुःखित हो उठती थी, वे ही अब अपनी बाँह का तकिया बनाकर भूमि पर ही बिना बिस्तर के लेटती थी ।

३. शाक खाय शत वर्ष गँवाये—
श्लोक—पत्र पुष्प फल कन्द स्व स्वेदज तथा ।
शाक षड्विधमुद्दिष्ट गुरु विद्याद्यथोत्तरम् ।।
भाव यह है कि शाक छ प्रकार के होते है अर्थात् (१) पत्ते, (२) फूल, (३) फल, (४) डडी, (५) कन्द, और (६) नये-नये अकुर ।

तपस्या मे चित्त चुभ गया। हजार वर्ष तक फल-फूल खाकर रही और शाक खाकर सौ वर्ष व्यतीत किये।

कछु दिन भोजन वारि बतासा। किये कठिन कछु दिन उपवासा[1] ।।
बेलपात महि परेउ सुखाई। तीन सहस सवत सो खाई[2] ।।

अर्थ—कुछ दिन तक तो पानी के बलबूले ही खाकर रही (अर्थात् थोडे पानी के आधार से रही) और कुछ दिन कठिन निर्जल उपवास किये (जब पार्वती ने इतनी तपस्या का फल मिलते न देखा तब तो उन्होने फिर से कठिन तपस्या आरभ क्योकि) जो पृथ्वी पर गिरे हुए बेल के सूखे पत्ते थे, उन्हे खाकर तीन हजार वर्ष तक तपस्या की।

पुनि परिहरेउ सुखानेउ पर्णा[3] । उमहि नाम तब भयो अपर्णा ।।
देखि उमहि तप खिन्न शरीरा। ब्रह्मगिरा भइ गगन गँभीरा ।।

अर्थ—फिर उन सूखे पत्तो का खाना भी छोड दिया, तब तो उमा का नाम अपर्णा पडा (अर्थात् अ=नही + पर्णा=पत्ते वाली)=जो पत्ते बिना खाये ही रहे। पार्वतीजी को तपस्या के कारण दुर्बल देख आकाश से गभीर ब्रह्मवाणी सुनाई दी—

---

१ कछु दिन भोजन वारि बतासा। किये कठिन कछु दिन उपवासा—
कुमार सभव (सर्ग ५-१२)—
श्लोक—अयाचितोपस्थित मम्बुकेवल, रसात्मकस्योडुपतेश्च रश्मय।
बभूवतस्या किल पारणाविधिर्नवृक्ष वृत्तिव्यतिरिक्त साधन ।।
अर्थात् आप ही आप प्राप्त हुआ केवल जल तथा रस से भरी हुई चन्द्रमा की किरणे ये ही पार्वतीजी के शरीर पोषण के पदार्थ थे। उनकी वृत्ति वृक्षो से कुछ भिन्न न थी (भाव यह कि जिस प्रकार वृक्ष केवल वर्षा के पानी और चन्द्र की शीतलता से जीवित रहते हैं उसी प्रकार इन्ही दोनो पदार्थों का आधार पार्वतीजी को था)।

२ बेलपात महि परेउ सुखाई। तीन सहस सवत सो खाई—
टुक सोचना चाहिए कि पहले एक हजार वर्ष तक मूल फल खाये फिर उसका दशाश १०० वर्ष तक शाक खाई। फिर कदाचित् उसका भी दशाश दस वर्ष तक पानी पीकर रही। फिर कदाचित् उसका भी दशाश एक वर्ष तक कठिन उपवास किये तो भी तपस्या की सिद्धि न समझ पडी। तब फिर अधिक वर्षों तक का कठिन तप आरभ किया। वही कुमार सभव मे लिखा है कि—
श्लोक—यदा फल पूर्व तपःसमाधिना न तावता लभ्य ममस्त काक्षितम्।
तदान पेक्ष्य स्वशरीर मार्दव, तपो महत् सा चरितु प्रचक्रमे ।।
अर्थात् जब पार्वती ने देखा कि मेरी इस तपस्या का मनमाना फल मिलते नही दिखता तब तो उन्होने अपने शरीर की सुकुमारता का विचार न कर और भी भारी तपस्या करनी आरभ की।
सो यो कि ३००० वर्ष तक सूखी बेलपत्री खाकर रही और फिर उसको भी खाना छोड दिया।

३. पुनि परिहरेउ सुखानेउ पर्णा। उमहि नाम तब भयो अपर्णा—पार्वती मगल से—
बरवा—कन्द मूल फल अशन, कबहुँ जल पवनहि।
सूखे बेल के पात, खात दिन गवनहिं ।।
नाम अपर्णा भयो, पर्ण जब परिहरे।
नवल धवल कल कीरति, सकल भुवन भरे ।।

दोहा—भयो मनोरथ सफल तब, सुनु गिरिराजकुमारि ।
परिहरु दुसह कलेश सब, अब मिलिहहि त्रिपुरारि ।। ७४ ।।

अर्थ—हे गिरीशनन्दिनी ! तुम्हारा मनोरथ अब सिद्ध हुआ । सम्पूर्ण असह्य कष्टो को छोडो, अब शिवजी तुम्हे मिल जाएगे ।

अस तप काहु न कीन्ह भवानी । भये अनेक धीर मुनि ज्ञानी[१] ।।
अब उर धरहु ब्रह्म वर बानी । सत्य सदा सतत सुचि जानी ।।

अर्थ—हे भवानी ! बहुत से धीरजवान् और ज्ञानवान् मुनि हो गये है परन्तु ऐसी तपस्या किसी ने नही की । अब तुम इस श्रेष्ठ आकाशवाणी को सदैव सत्य और नित्य पवित्र जान कर अपने हृदय मे धारण करो ।

आवहि पिता बुलावन जबही । हठ परिहरि घर जायहु तबही ।।
मिलहि तुमहि जब सप्तऋषीशा । जानेहु तब प्रमाण वागीशा ।।

शब्दार्थ—वागीशा (वाक्=वाणी+ईश=मालिक)=वाणी का मालिक, ब्रह्मा ।

अर्थ—जब तुम्हारे पिताजी बुलाने को आए तब हठ को छोड घर लौट जाना और जिस समय तुम्हे सप्तऋषि मिले उसी समय ब्रह्मवाणी की सत्यता का प्रमाण समझ लेना ।

सुनत गिरा विधि गगन बखानी । पुलक गात गिरजा हरषानी ।।
उमा चरित मै सुन्दर गावा । सुनहु शभुकर चरित सुहावा ।।

अर्थ—आकाश से उत्पन्न हुई ब्रह्मवाणी को सुनते ही पार्वतीजी प्रसन्न हुई और उनके शरीर के रोम खडे हो आये । मैने पार्वतीजी का उत्तम चरित्र वर्णन किया । अब शकर जी का सुहावना चरित्र सुनो ।

(१८. सतीजी के देह त्याग के पश्चात् शिव-चरित्र)

जब ते सती जाइ तन त्यागा । तब ते शिव मन भयेउ विरागा ।।
जपहि सदा रघुनायक नामा । जहँ तहँ सुनहि रामगुणग्रामा ।।

अर्थ—जबसे सतीजी ने (पिता के घर) जाय शरीर त्याग दिया, तब से शिवजी के मन मे वैराग्य भर गया । वे दिन-रात राम-नाम जपा करते थे और जहाँ कही राम गुण चर्चा होती थी तहाँ जाकर सुनते थे ।

दोहा—चिदानद सुखधाम शिव, विगतमोहमद काम ।
विचरहि महि धरि हृदय हरि, सकल लोक अभिराम ।।७५।।

शब्दार्थ—अभिराम (अभि=साम्हने+रम्=खेलना)=प्यारा, मनोहर ।

अर्थ—चैतन्य और आनन्दरूपी शिवजी जो सुख के देने वाले तथा ममता, मोह और कामना रहित है, सम्पूर्ण मनुष्यो को मनोहर ऐसे श्री हरि को अपने हृदय मे धारण कर भूमि पर भ्रमण करने लगे ।

---

१ अस तप काहु न कीन्ह भवानी । भये अनेक धीर मुनि ज्ञानी—
यही आशय कुमार संभव के ५वे सर्ग के २९वे श्लोक मे लिखा है । उसका भाव यह है—(टीकाकार-कृत)—

दोहा—गिरि कुमारि सुकुमारि अस, उग्र तपस्या कीन्ह ।
जेहि तपसिन्ह कै कठिन तप, जनु पासँग कर दीन्ह ।।

कतहुँ मुनिन्ह उपदेशहि ज्ञाना । कतहुँ राम गुण करहिं बखाना ।।
यदपि अकाम तदपि भगवाना । भक्तविरह दुख दुखित सुजाना ।।

अर्थ—कही तो मुनियो को ज्ञान की शिक्षा करते थे और कही रामचन्द्रजी के गुण गाते थे । यद्यपि कामना रहित और पडैश्वर्य सम्पन्न है तो भी ज्ञानी प्रभु अपने भक्त के बिछोह रूपी दुख मे दुख मानते है ।

इहि विधि गयेउ काल बहु बीती । नित नव होय रामपद प्रीती ।।
नेम प्रेम शकर कर देखा । अविचल हृदय भक्ति की रेखा ।।

अर्थ—इस प्रकार बहुत-सा समय व्यतीत हो गया । शिवजी का प्रेम रामचन्द्रजी के चरणो मे दिन-दिन बढता ही गया । शिवजी का कठिन प्रण और अपने ऊपर प्रेम देख तथा उनके हृदय मे भक्ति का अटल विश्वास लख—

प्रकटे राम कृतज्ञ कृपाला । रूपशीलनिधि तेज विशाला ।।
बहु प्रकार शकरहि सराहा । तुम बिन अस व्रत को निरबाहा ।।

अर्थ—किये हुए कर्मों को जानने वाले दयालु स्वरूपवान् शीलनिधान बडे ही प्रतापवान् श्री रामजी प्रकट हुए । उन्होने अनेक प्रकार से शिवजी की प्रशसा की और कहा कि तुम्हारे सिवाय इस प्रकार की कठिन साधना कौन पूरी कर सकता है ?

बहु बिधि राम शिवहि समझावा । पारवती कर जन्म सुनावा ।।
अति पुनीत गिरिजा की करणी । विस्तर सहित कृपानिधि वरणी ।।

अर्थ—रामचन्द्रजी ने शिवजी को अनेक प्रकार की बातें सुझाई और पार्वतीजी का जन्म कह सुनाया । दयासागर श्री रामचन्द्रजी ने पार्वतीजी की परम पवित्र करतूत को विस्तार सहित वर्णन किया ।

दोहा—अब विनती मम सुनहु शिव, जो मो पर निज नेहु ।
जाव विवाहहु शैलजहि, यह मोहि मागे देहु ।।७६।।

शब्दार्थ—शैलजहि (स० शैलजा) (शैल=पर्वत+जा=उत्पन्न)=पर्वत से उत्पन्न अर्थात् पार्वती (को) ।

अर्थ—हे शिवजी ! जो आपका प्रेम मुझ पर है तो मेरी यह विनय सुनिये कि जाकर पार्वती से विवाह कर लाइये । यह मै मागता हू सो मुझे दीजिये ।

कह शिव यदपि उचित अस नाही[1] । नाथवचन पुन मेटि न जाहीं ।।

---

१. यदपि उचित अस नाही—इसमे यह शका उठती है कि कौनसी बात उचित नही, उसके समाधान मे यदि कहा जाय कि विवाह करके फिर से बधन मे पडना उचित नही तो वह बात ऊपर के कथन मे विरोध पाती है कि "भक्त विरह दुख दुखित सुजाना" अर्थात् जो भक्तो के बिछोह से यदि दुखी है तो उनका अगीकार क्यो न करे । क्योकि कहा गया है कि 'भक्त विरह कातर करुणामय डोलत पाछे लागे । सूरदास ऐसे प्रभु को कत दीजित पीठ अभागे ।' इस कारण 'कह शिव यदपि उचित अस नाही' से यही अभिप्राय जचता है कि जो रामचन्द्रजी ने कहा था कि 'अब विनती मम सुनहु शिव' इस कथन को अनुचित कहा । शिवजी का विचार था कि रामचन्द्रजी मेरे स्वामी है । उन्हे चाहिए था कि वे मुझे आज्ञा करते न कि मुझसे विनती करते । भाव कि आज्ञा देने के अधिकारी को विनती करना उचित नही । जैसा कि आगे कहा है—

शिर धरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा ॥

अर्थ—शिवजी बोले कि यद्यपि यह योग्य नही दिखता फिर भी आपके वचन मेटे नही जा सकते। हे स्वामी ! यह हमारा बडा धर्म ही है कि आपकी आज्ञा को सिर पर धारण कर मान्य करें।

मात पिता गुरु प्रभु की बानी। बिनहि विचार करिय शुभ जानी[1] ॥
तुम सब भाँति परम हितकारी। आज्ञा सिर पर नाथ तुम्हारी ॥

अर्थ--माता, पिता, गुरु और मालिक के वचन लाभकारी समझ बिना ही विचारे मान लेना चाहिए। आप तो सब ही प्रकार मेरा हित चाहने वाले हो। हे प्रभु ! आपकी आज्ञा मैं अपने सिर पर धारण करता हू।

प्रभु तोषेउ सुन शकरवचना। भक्ति विवेक धर्मयुत रचना ॥
कह प्रभु हर तुम्हार प्रन रहेऊ। अब उर राखेउ जो हम कहेऊ ॥

अर्थ—रामचन्द्रजी शकरजी के वचनो को सुनकर सतुष्ट हुए क्योकि उनमे भक्ति, चतुराई और धर्म का सम्मेलन था। रामचन्द्रजी कहने लगे कि शकरजी आपकी टेक रह गई, अब जो बात हमने कही, उसे भी हृदय मे रखिये।

अंतरध्यान भये अस भाखी। शंकर सोइ मूरत उर राखी ॥
तबहि सप्त ऋषि[2] शिव पहँ आये। बोले प्रभू अति वचन सुहाये ॥

अर्थ—इतना कह श्री रामजी अन्तर्ध्यान हो गये। शिवजी ने वही मूर्ति मानो हृदय मे रख छोडी। इतने मे सप्त ऋषि शिवजी के पास आये। उनसे शिवजी ने ये सुहावने वचन कहे—

दोहा—पार्वती पहँ जाय तुम, प्रेमपरीक्षा लेहु।
गिरिहि प्रेरि पठवहु भवन, दूर करहु संदेहु ॥७७॥

अर्थ—आप लोग पार्वती के पास जाइये और उनके प्रेम की जाँच कर सदेह मिटाइये तथा हिमाचल से कहलवा कर पार्वती को घर भिजवा दीजिये।

ऋषिन गौरि देखी तहँ कैसी। मूरतिवंत तपस्या जैसी[3] ॥

---

१. मात पिता गुरु प्रभु की बानी। बिनहि विचार करि शुभ जानी—कितनी उत्तम शिक्षा है। हम सबको चाहिए कि इस पर विशेष ध्यान दें। प्राय देखने मे आता है कि आज-कल के लडके यह मान लेते है कि माता-पिता को बहुधा इतनी समझ कहा कि वे हमे उपदेश करें, वे नही विचारते कि उनका अनुभव कितना अधिक रहता है। इसके सिवाय वे बालको के हित चाहने वाले होते हैं। इस हेतु उनकी आज्ञा अवश्य माननी चाहिए। हा, गुरुजी की आज्ञा तो कोई-कोई मानते भी है, नही तो दड पावें और प्रभु को न माने तो भी बर्बाद होवें। साराश यह है कि भयवश आज्ञा-पालन कुछ उत्तम श्रेणी मे नही है। अपना धर्म तथा लाभ के विचार से माता, पिता, गुरु और प्रभु की आज्ञा-पालन करना चाहिए। इसी को गोसाईंजी अयोध्याकाण्ड मे यो समझाते है—

गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करयि भल जानी ॥
उचित कि अनुचित किये विचारू। धर्म जाइ शिर पातक भारू ॥

२. सप्त ऋषि—ऋषि सात है। उनके नाम महाभारत के अनुसार ये है—मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य और वशिष्ठ। कल्प भेद से भिन्न-भिन्न सप्त ऋषि है।

३. ऋषिन गौरि देखी तहँ कैसी। मूरतिवन्त तपस्या जैसी—
कुमार सभव से (सर्ग ५-६)—

बोले मुनि सुनु शैलकुमारी । करहु कवन कारण तप भारी ॥

अर्थ—सप्त ऋषियो ने वहा पार्वतीजी को इस प्रकार देखा कि मानो तपस्या ही मूर्ति धारण करके बैठी हो । मुनि कहने लगे कि हे गिरिनदिनी! सुनो, किस हेतु तुम ऐसी भारी तपस्या करती हो ?

केहि आराधहु का तुम चहहू । हम सन सत्य मरम किन कहहू ॥
सुनत ऋषिन के बचन भवानी । बोली गूढ मनोहर बानी ॥

अर्थ—तुम किसका भजन करती हो और क्या चाहती हो, हमसे अपना ठीक-ठीक भेद क्यो नही कहती । ऋषियो के वचन सुनते ही पार्वती गूढ मनभावने वचन बोली (अर्थात् उन्होने अपने मन की इच्छा प्रकट करने वाले वचन इस प्रकार से कहे कि उनका भाव कुछ गुप्त था)—

कहत मरम मन अति सकुचाई । हँसिहहु सुनि हमारि जडताई ॥
मन हठ परा न सुनइ सिखावा[१] । चहत वारि पर भीत उठावा ॥

अर्थ—मन का भाव कहने मे बडी लज्जा होती है, आप लोग हमारी मूर्खता को सुनकर हँसोगे । मेरा मन हठ पकड गया है, वह सिखावन को नही मानता, वह तो पानी पर भीत बनाना चाहता है (अर्थात् हठ के मारे मन असभव काम करना चाहता है) ।

नारद कहा सत्य सोइ जाना । बिन पखन हम चहहि उडाना ॥
देखहु मुनि अविवेक हमारा । चाहिय सदाशिवहि भरतारा ॥

शब्दार्थ—सदाशिव = (१) शकरजी, (२) सदा के लिए शकरजी ।

अर्थ—नारदजी ने जो कहा वही मैने सत्य मान लिया (सो मानो) बिना पखो के मैं उडना चाहती हूँ । हे मुनिगण ! मेरा अज्ञान तो देखिये, मै सदाशिव अर्थात् शकरजी से पति-सम्बन्ध चाहती हूँ अथवा शिवजी से सदा के लिए पति-सम्बन्ध चाहती हूँ (भाव यह कि सती की नाईं फिर देहत्याग आदि का कष्ट न सहना पड़े) ।

दोहा—सुनत वचन विहँसे ऋषय, गिरिसम्भव तव देह[२] ।
नारद कर उपदेश सुनि, कहहु बसेउ को गेह ॥७८॥

श्लोक—यथा प्रसिद्धैर्मधुर शिरोरुहैर्जटा, भिरप्येवमभूत्तदाननम् ।
न षट् पद श्रेणि भिरे व पकज, सशैवलासगमपि प्रकाशते ॥

अर्थात् जिस प्रकार उत्तम कोमल बालो से उसका मुख शोभायमान होता था, उसी प्रकार जटाओ से सुशोभित हुआ कमल का फूल केवल भौरे के बैठने से सुशोभित नही होता, वह तो काई के ससर्ग से भी शोभा को प्राप्त होता ही है ।

किसी-किसी प्रति मे पहली और किसी-किसी में नीचे लिखी हुई लकीर क्षेपक है—

सुनि शिव वचन परम सुख मानी । चले हर्षि जहँ रही भवानी ॥
तब ऋषि तुरत गौरि पहँ गयऊ । देखि दशा मन विस्मय भयऊ ॥

१. मन हठ परा न सुनइ सिखावा—

क० देखिवै को दौरे तो भटक जाय वाही ओर सुनिवे को दौरे तो रसिक सिरताज है ।
सूंघवे जो दौरे तो अघाय ना सुगन्ध कर खायवे को दौरे तो न धीपै महराज है ॥
भोग ही को दौरे तो न नृपति हूँ न क्यो ही होय सुन्दर कहत पाहि नेकहु ना लाज है ।
काहू को न कह्यौ करै आपनी ही टेक धरै मन सो न कोऊ हम देरपो दगाबाज है ॥

२. गिरि सम्भव तव देह—ऋषियो ने यह बात पार्वतीजी के सम्बन्ध मे अनादर सूचित →

अर्थ—वचनो को सुनकर ऋषिगण हँस उठे (और बोले), तुम्हारा शरीर ही तो पहाड से उत्पन्न है (भाव यह कि पहाड अथवा पत्थर से तो तुम उत्पन्न हुई हो सो तुम्हारी मति भी पत्थर ही की नाईं जड अवश्य होनी चाहिए)। भला नारद का सिखावन सुन कौन घर मे रह सका ? (अर्थात् कोई नही, यह बात उदाहरणो से स्पष्ट करते है)।

दक्ष सुतन्ह[१] उपदेशेउ जाई। तिन फिर भवन न देखा आई ॥
चित्रकेतु कर घर उन घाला। कनककशिपु[२] कर पुनि अस हाला ॥

करने को कही थी, ऐसा ही आशय एक स्थान मे कवि घासीरामजी ने भी लिखा है, जैसे—

क० : दोषाकर भाल बहुजानत भलाई कहा कठ मे द्विजीभ सो कुटिल दुख भानै का।
'पाथर की तनया तौ सहजै कठोर' अरु बाहन बरद पर पीर उर आनै का ॥
घासीराम सुकवि मुमाहब सकल भूत अरज गरीब को तिहारे कान ठानै को।
तुमहूँ त्रिलोचन जो मूँदि बैठे लोचन तो दाम दुख मोचन की आस पहिचानै को ॥

१. दक्ष सुतन्ह—दक्ष प्रजापति की दो स्त्रियाँ थी। एक का नाम पाँचजनी और दूसरी का वीरिणी था। दक्षजी ने पहली स्त्री से हर्यस्व आदि दस हजार पुत्र उत्पन्न करके सृष्टि का क्रम चलाना चाहा परन्तु नारद मुनि ने आकर उन पुत्रो को ब्रह्मज्ञान का उपदेश देकर गृहस्थ धर्म मे प्रवृत्त न होने दिया। वे सब के सब कहाँ गये उनका पता भी न लगा। जब यह हाल दक्ष को विदित हुआ तब इन्होने दूसरी स्त्री से शबल आदि दस हजार पुत्र फिर उत्पन्न किये। नारद ने आकर उनकी भी वही दशा की, तब दक्ष ने नारद को श्राप दिया कि तुम्हारा यह शरीर न रहे और फिर मानस पुत्र तो उत्पन्न न किये परन्तु मैथुन कर्म से ६० कन्या उत्पन्न की, उनमे से अदिति आदि १३ कश्यप को ब्याह दी। मरुत्वती आदि १० कन्यायें धर्म को ब्याह दी। अश्वनी आदि २७ चन्द्रमा को ब्याह दी। चार अरिष्ठ नेमि को, भृगु के भूत नामपूत को दो, कृशाश्व ऋषि को दो, दो अगिरा ऋषि को। इस प्रकार दे करके उन कन्याओ के द्वारा मैथुनी सृष्टि की जड जमाई (मत्स्य पुराण अध्याय ५-२)।

२ चित्रकेतु, कनककशिपु—चित्रकेतु शूरसेन देश का राजा था। कहते है कि इसकी एक करोड रानियाँ थी। कदाचित् इसी हेतु किसी की कोई सन्तान नही थी। निपुत्री होने के कारण राजा बहुत ही दुखी रहता था। एक बार अगिरा ऋषि से इसने अपना दु.ख कह सुनाया। ऋषिजी को दया आ गई। उन्होने हवि सिद्ध करके राजा को दिया, जिसके खाने से कृति द्युति से पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। सपूर्ण सौतो ने डाह खाकर बेचारे बच्चे को विष देकर मार डाला। कहा है—'सौतिया माटिहु की खोटी'। राजा पुत्र शोक से बहुत विह्वल थे कि इतने मे अगिराजी के साथ नारद मुनि आ पहुँचे। मुनिजी ने उस बालक को चैतन्य कर दिया परन्तु वह अपनी माताओ तथा पिता को उपदेश करने लगा कि आप सब वृथा शोक करते है। समार का प्रपच ऐसा ही है, न कोई किसी का पुत्र है और न कोई किसी का पिता तथा इसके लिए किसी को कोई दोष देना उचित नही। वह सब भाग्य का खेल है। जैसे—

गजल—ससार सार सागर जलवा दिखा रहा है।
पैदा है कोई कोई मरघट को जा रहा है ॥
कोई अमीर देखा कोई फकीर देखा।
दुनियाँ का सिलसिला ये यो ही सदा रहा है ॥
हिसो हवास जहाँ की ऐ दिल तू छोड दे अब।
सिर पर तेरे नकारा बज काल का रहा है ॥

→

अर्थ—दक्षप्रजापति के २० हजार पुत्रो को (उन्होने) जाकर उपदेश दिया, उन पुत्रों ने फिर अपना घर न देख पाया (अर्थात् विरक्त हो जगल मे जा बसे फिर न लौटे)। चित्रकेतु का घर उन्ही (नारदजी) ने नाश किया, हिरण्यकश्यप का ऐसा ही हाल हुआ।

नारद सिख जु सुनहि नर नारी। अवशि भवन तजि होहि भिखारी ॥
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आप सरिस सब ही चह कीन्हा ॥

अर्थ—स्त्री-पुरुष जो कोई नारदजी की सीख सुनते है सो अवश्य ही घर छोड के भिखारी हो जाते हैं। (उन नारदजी का) मन तो कपटी है परन्तु शरीर मे सन्तो के चिह्न दिखाई देते है। वे अपने ही समान सबको बनाना चाहते हैं (अर्थात् वे स्वत स्त्री-पुत्र आदि रहित है कि 'जोरू न जाँता, खुदा से नाता')।

तेहि के वचन मानि विश्वासा। तुम चाहहु पति सहज उदासा ॥

बैदो हकीम हू की हिकमत चलै न बैदी।
जो कोइ बिगारै तन को वोई बना रहा है॥
हैगी गिरँद बुराई ईश्वर को दोष देना।
जो भाग का लिखा है बस वोई पा रहा है॥

इस प्रकार उपदेश कर उस लडके की आत्मा अन्तर्ध्यान हो गई। चित्रकेतु को इस प्रकार उसी के मृतक पुत्र द्वारा उपदेश कराकर नारद मुनि ने राजा की मति ऐसी फेर दी कि वह इन्ही मुनिजी से फिर उपदेश लेकर राज्य को त्याग वन मे तपस्या हेतु चला गया। इस प्रकार मानो नारदजी ने चित्रकेतु का घर छुडवा दिया।

कनककशिपु=हिरण्यकश्यप—यह कश्यप की स्त्री दिति से उत्पन्न हुआ था, इसने ब्रह्मदेव की बहुत समय तक तपस्या कर यह वरदान माँगा था कि मैं (१) घर के भीतर न बाहर (२) न दिन को न रात्रि को (३) न मनुष्य से न पशु से (४) न अस्त्र से न शस्त्र से (५) और न जीते से न मरे से मृत्यु को प्राप्त होऊँ। ब्रह्मदेव ने कहा ऐसा ही हो। वह क्रम-क्रम से सब लोगो को जीतकर देवताओ तथा मुनियो को बडा त्रास देने लगा। फिर मुनि और ऋषियो के यज्ञो मे भी बाधा डालने लगा। इसका ब्याह जभासुर की कन्या कयाधु से हुआ था जिससे प्रह्लाद, अनुह्लाद, सह्लाद और ह्लाद ये चार पुत्र हुए थे। जब पहला बालक प्रह्लाद अपनी माता के गर्भ ही मे था, उस समय हिरण्यकश्यप तपस्या के हेतु वन मे गया था। इतने मे इन्द्र ने आकर बहुतेरे दैत्यो का नाश किया और कयाधु को लेकर स्वर्ग मे जाने लगा। मार्ग मे नारद से भेट हुई। उन्होने इन्द्र से कहा कि इसके गर्भ मे जो बालक है वह विष्णु के तेज से युक्त है, इससे वह तुम्हारा विरोधी नही है, इतना कहकर कयाधु को इन्द्र से छुडाकर भागीरथी के किनारे आश्रम बनाकर वहाँ रहने लगे। रहते-रहते इन्होने उसे ज्ञान का उपदेश किया। यह उपदेश प्रह्लाद ने गर्भ ही मे सुना था। इस हेतु यह बडा विष्णुभक्त उत्पन्न हुआ परन्तु स्त्री स्वभाव के कारण कयाधु यह उपदेश भूल गई। जब हिरण्यकश्यप वन से लौटा तब तुरन्त ही नारदमुनि कयाधु को उसे सौपकर चले गये। नारद के उपदेश का यही फल हुआ कि प्रह्लाद विष्णुभक्त होकर अपने पिता के अनेक बार रोकने पर तथा इनके प्राणघात के उपाय करने पर भी विष्णुभक्त बने रहे। परिणाम यह हुआ कि विष्णुजी ने नृसिहरूप धारण कर ऐसे उपाय से हिरण्यकश्यप को मारा कि जिससे ब्रह्मा के वरदान का विरोध न हुआ सो यो कि (१) देहरी पर (२) सध्या के समय (३) नृसिह रूप द्वारा (४) नाखून रूपी हथियार से, और (५) नखो द्वारा, क्योकि ये कुछ अश मे जीते हैं और कुछ अश मे मरे हैं।

निर्गुण निलज कुवेष कपाली । अकुल अगेह दिगम्बर व्याली[१] ।।

अर्थ—उन (नारद) के वाक्यो पर भरोसा रखकर तुम ऐसा पति चाहती हो जो स्वभाव से उदासीन (प्रेमहीन) है, जो गुणहीन, निर्लज्ज, कुरूप है, कपाली (अघोरी), कुलहीन, घरहीन, नगे अग मे भुजग धारण किये है।

कहहु कवन सुख अस वर पाये । भल भूलिउ ठग के बौराये ।।
पच कहै शिव सती विवाही । पुनि अबडेरि मराइनि ताही ।।

अर्थ—ऐसे पति को पाकर (तुम ही) कहो कौन सुख (हो सकता है) ? तुम भी अच्छी ठगिया के बहकाने मे भूली हो। पचो के कहने से महादेवजी ने सती से विवाह किया था सो फिर उन्हे उलझन मे डालकर मरवा डाला।

दोहा—अब सुख सोवत सोच नहि, भीख माँगि भव खाहि[२] ।
सहज एकाकिन्ह के भवन, कबहुँ कि नारि खटाहि ।।७९।।

अर्थ—अब शिवजी भीख माँगकर खाते है, सुख से सोते है और उन्हे (सती का) कुछ भी सोच नही है। जिन्हे अकेले रहने का स्वभाव ही पड गया है उनके घर भला कभी स्त्री ठहर सकती है ? (भाव यह कि नारद का उपदेश तुमने वृथा स्वीकार किया और शिवजी जिनमे अनेक दुर्गुण भरे है, विवाह करने के योग्य नही। ये सब बातें प्रेम परीक्षार्थ कही गई थीं, शिवजी मे जो दोष बताये गये थे, ये ही गुण रूप है जैसा कि पीछे समझा आये है)।

अजहूँ मानहु कहा हमारा । हम तुम, कहँ वर नीक विचारा ।।
अति सुन्दर शुचि सुखद सुशीला । गावहि वेद जासु यश लीला ।।

अर्थ—अब भी हमारा कहना मान लो, हमने तुम्हारे लिए बडे अच्छे पति का विचार किया है। वह पति बडा स्वरूपवान्, पवित्र, सुख देने वाला और शील स्वभाव का है, उसकी कीर्त्ति और लीला सम्पूर्ण वेद बखानते हैं।

दूषण रहित सकल गुण रासी । श्रीपतिपुर बैकुठ निवासी ।।
अस वर तुमहि मिलाउब आनी । सुनत विहँसि कह वचन भवानी ।।

अर्थ—जिसमे कोई दूषण नही है, जो सम्पूर्ण गुण पूर्ण है, जो लक्ष्मीवान् तथा बैकुठ का रहने वाला है, ऐसा वर लाकर तुम्हारा सयोग मिलावेंगे। इतना सुनते ही पार्वती जी मुसकराकर कहने लगी—

सत्य कहहु गिरिभव तनु एहा । हठ न छूट छूटै बरु देहा ।।
कनकौ पुनि पषाण ते होई । जारेहु सहज न परिहर सोई ।।

अर्थ—तुमने सच कहा कि यह शरीर पर्वत से उत्पन्न है (इसीलिए) हठ न छूटेगी, चाहे हमारा शरीर छूट जाय। स्वर्ण भी पत्थर से उत्पन्न होता है सो जलाने (अर्थात् बहुत ही तपाने) पर भी अपना स्वभाव नही छोडता।

---

१. निर्गुण निलज कुवेष कपाली । अकुल अगेह दिगम्बर व्याली—पार्वती मगल से—
बरवा—कहहु काह सुनि रीझहु वर अकुलीनहिं ।
अगुण अमान अजात मातु-पितु हीनहिं ।।

२. अब सुख सोवत सोच नहिं, भीख माँगि भव खाहिं—पार्वती मगल से—
बरवा—भीख माँगि भव खाहिं चिता नित सोवहि ।
नाचहिं नगन पिशाच पिशाचिनि जोवहिं ।।

नारद वचन न मै परिहरऊँ। बसौ भवन उजरौ नहि डरऊँ॥
गुरु के वचन प्रतीति न जेही। सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही[1]॥

अर्थ—नारदजी के वचन को मै न छोड़ूँगी चाहे घर बसे या उजडे, मुझे इसका डर नही। जिसको अपने गुरु की शिक्षा पर विश्वास नही होता, उसे स्वप्न मे भी सुख व सिद्धि सहज मे प्राप्त नही होती।

दोहा—महादेव अवगुण भवन, विष्णु सकलगुण धाम।
जेहिकर मन रम जाहि सन, तेहि तेही सन काम[2]॥८०॥

अर्थ—शिवजी सम्पूर्ण अवगुणो के घर ही सही और विष्णु सब गुणो के भडार बने रहे, जिसका मन जिससे लगा है, उसे तो उसी से काम है (दूसरे से नही)।

जो तुम मिलतेउ प्रथम मुनीशा। सुनतिउँ सिख तुम्हारि धर शीशा॥
अब मै जन्म शभु हित हारा। को गुण दूषण करै विचारा॥

अर्थ—हे मुनिराज! जो तुम (नारद के मिलने से) पहले मिले होते तो मै तुम्हारी शिक्षा सिर के बल मानती। अब तो मैने अपना जन्म शिवजी के लिए लगा दिया है, तो उनके गुण-अवगुणो का विचार कौन करे।

जो तुम्हरे हठ हृदयविशेषी। रहि न जाइ बिन किये वरेषी॥
तौ कौतुकिअन्ह आलस नाही। वर कन्या अनेक जग माहीं॥

अर्थ—जो तुम्हारे मन मे इस विषय की बडी हठ हो और बिना वर-देखी किये चैन न पडती हो (अर्थात् बिना यथा योग्य वर-कन्या मिलाये न रहा जाता हो) तो तमाशबीनो को आलस कहाँ? तुम्हारे लिए ससार मे बहुत-से वर और बहुत-सी कन्याये विद्यमान् हैं।

जन्म कोटि लग रगर हमारी। बरौ शंभु नतु रहौ कुमारी॥
तजौ न नारद कर उपदेशू। आप कहहिं शतवार महेशू॥

अर्थ—करोडो जन्म तक हमारी यही लगन लगी रहेगी कि ब्याह करूँगी तो महादेव जी के साथ, नही तो कुमारी ही रहूँगी। नारदजी के सिखावन को मै छोड नही सकती चाहे स्वम् शिवजी इसके लिए मुझसे सौ बार कहे (अथवा) आप अपने मुख से सौ बार 'शिव, शिव' कहे (क्योकि) आपने उनकी निंदा की है।

---

१. गुरु के वचन प्रतीति न जेही। सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही—
दोहा—गुरु आज्ञा मानै नही, गुरुहिं लगावै दोष।
गुरुनिंदक जग मे दुखी, मुये न पावहिं मोष॥

२. जेहि कर मन रम जाहि सन, तेहि तेही सन काम—
विहाग—रग जोइ लागा सोई लागा॥
हसा की गति हसा जानै मर्म न जानै कागा॥
कहत कबीर सुनौ भाई साधो सोने मे मिलत सुहागा।

और भी—

क० · पूछौ उमगै क्यो सिंधु पूरण मयक देखि पूछौ तौ कमोदिनी विलोकि भानु क्यो लजै।
पूछौ तौ पपीहै क्यो न पीवै नीर स्वाती बिन पूछौ तौ मलिंदे क्यो न चाहै चम्पकी रजै॥
'रसिकविहारी' चित्त रीति है अलक्ष जब पूछौ बहु ठौर तब शका हीय ते भजै।
पूछौ तौ पतगै क्यो जरै है धाय दीपक मे पूछौ वारि के विहीन मीन जीव क्यो तजै॥

मैं पा परौ कहै जगदम्बा । तुम गृह गवनहु भयउ विलंबा ।।
देखि प्रेम बोले मुनि ज्ञानी । जय जय जय जगदब भवानी ।।

अर्थ— जगत माता पार्वतीजी कहने लगी, मैं तुम लोगो के पैर पडती हूँ, अब बहुत देरी हुई । तुम अपने घर जाओ । वे ज्ञानवान् मुनिराज ऐसी अविचल प्रीति देखकर बोल उठे—हे जगतमाता भवानी ! तुम्हारी 'जय हो, जय हो' ।

दोहा—तुम माया भगवान शिव, सकल जगत पितु मात ।
नाइ चरण शिर मुनि चले, पुनि-पुनि हर्षित गात ।।८१।।

अर्थ—सम्पूर्ण ससार के (उत्पादक) माता-पिता स्वरूप तुम माया और शिवजी ईश्वर है । इतना कह पार्वतीजी के चरणो मे सिर नवाकर वे मुनिराज चित्त मे बार-बार प्रसन्न होते हुए वहाँ से चले गये ।

जाइ मुनिन्ह हिमवन्त पठाये । करि विनती गिरिजहि गृह लाये ।।
बहुरि सप्त ऋषि शिव पहँ जाई । कथा उमा की सकल सुनाई ।।

अर्थ—मुनियो ने जाकर हिमाचल को भेजा जो पार्वतीजी को समझा-बुझा करके अपने घर लिवा लाये । फिर सप्त ऋषियो ने शिवजी के पास जाकर उन्हे पार्वतीजी की सब कथा कह सुनाई । -

भये मगन शिव सुनत सनेहा । हरषि सप्त ऋषि गवने गेहा ।।
मन थिर करि तब शम्भु सुजाना । लगे करन रघुनायक ध्याना ।।

अर्थ—शिवजी उस प्रीति को सुनकर मग्न हो गये और सप्तऋषि आनन्दपूर्वक अपने घर गये । तब ज्ञानवान् महादेवजी चित्त स्थिर करके रामचन्द्रजी का ध्यान करने लगे।

तारक असुर[1] भयउ तेहि काला । भुज प्रताप बल तेज विशाला ।।
तेहि सब लोक लोकपति जीते । भये देव सुख सम्पति रीते ।।

अर्थ—उसी काल मे बडा बलवान् प्रतापी और तेजस्वी तारकासुर हुआ । उसने सम्पूर्ण लोको को उनके स्वामियो समेत जीत लिया जिससे सम्पूर्ण देवता सुख-सम्पत्तिहीन हो गये ।

अजर अमर सो जीति न जाई । हारे सुर करि विविध लराई ।।
तब विरचि सन जाय पुकारे । देखे विधि सब देव दुखारे ।।

---

१ तारक असुर—वज्राग दैत्य को वरागी नाम स्त्री से तारक नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ था। इसने उग्र तपस्या कर ब्रह्मदेव को प्रसन्न किया और यह वरदान माँगा कि मैं अमर हो जाऊँ । यह बात जब ब्रह्मदेव ने स्वीकार न की तब उसने कहा कि सारा दिन वे लड़के को छोडकर और किसी के हाथ से मैं न मरूँ । यह वरदान देकर ब्रह्माजी अतर्ध्यान हो गये। वरदान पाते ही इसने तीनो लोक के निवासियो को त्रास देना आरम्भ किया । इसके सेना के मुख्य-मुख्य अधिपतियो के ये नाम है – (१) जम्भ, (२) कुम्भज, (३) महिषासुर, (४) कुजर, (५) मेघ, (६) कालनेमि, (७) निमि मथन, (८) जभक, और (९) शुम्भ ।
निदान—जब इसने सब देवताओ को परास्त किया और उन्हे बहुत-सा त्रास दिया तब कार्तिकेय नाम के शिव-पुत्र ने जन्म से सातवें ही दिन इसे मार डाला । (मत्स्य पुराण अ० १४७-१५९)

अर्थ—जराहीन और अमर के समान वह राक्षस पराजित नही किया जा सकता था, सब देवता उससे अनेक प्रकार से युद्ध करने पर भी हार गये। तब सबो ने मिलकर ब्रह्मा के पास गुहार मचाई तो ब्रह्मा ने जान लिया कि सब देवता दु खी है।

दोहा—सब सन कहा बुझाय विधि, दनुज निधन तब होइ।
शभुशुक्रसभूत सुत, इहि जीते रण सोइ ॥८२॥

अर्थ—ब्रह्माजी ने सब देवताओ को समझा कर कहा कि इस राक्षस का सहार तभी होगा जब शिवजी के वीर्य से उत्पन्न हुआ पुत्र इसे लडाई मे जीते।

मोर कहा सुनि करहु उपाई। होइहि ईश्वर करिहि सहाई ॥
सती जो तजी दक्षमख देहा। जनमी जाइ हिमाचल गेहा ॥

अर्थ—मेरा कहना सुनकर तुम उपाय करो, ईश्वर सहायता करेगा और कार्य सिद्ध होगा। सती जिन्होने दक्ष प्रजापति के यज्ञ मे अपना शरीर छोड दिया था, अब हिमाचल के घर मे जन्मी है।

तेइ तप कीन्ह शंभु पति लागी। शिव समाधि बैठे सब त्यागी ॥
यदपि अहै असमजस भारी। तदपि बात इक सुनहु हमारी ॥

अर्थ—उन्ही सतीजी ने तपस्या की है कि मुझे महादेवजी पति मिले। यहाँ शिवजी सब छोडकर समाधि लगा बैठे है। सो यद्यपि यह बडी दुविधा की बात है तो भी हमारी एक तदबीर सुनो।

पठवहु काम जाइ शिव पाही। करै क्षोभ शंकर मन माही ॥
तब हम जाइ शिवहि शिरनाई। करवाउब विवाह बरिआई[1] ॥

अर्थ—कामदेव को भेजो कि वह शिवजी के पास जाए और कल्याणकारी प्रभु के चित्त को चलायमान करे। तब हम जाकर शिवजी को सीस नवावेगे और जबरन उनका विवाह करबावेगे।

इहि विधि भले देवहित होई। मत अति नीक कहेउ सब कोई ॥
अस्तुति सुरन कीन्हि अति हेतू। प्रकटेउ विषम बाण झषकेतू ॥

अर्थ—इस प्रकार देवताओ की भलाई भले ही हो सकती है। (यह सुनकर) सब लोग कह उठे बहुत अच्छा विचार है। बडे प्रेम से देवताओ ने कामदेव की प्रशसा की तो पचबाण धारी कामदेव प्रकट हुआ।

(१९. कामदेव-दहन)

दोहा—सुरन्ह कही निज विपति सब, सुनि मन कीन्ह विचार।
शंभु विरोध न कुशल मोहि, विहँसि कहेउ अस मार ॥८३॥

---

१ तब हम जाइ शिवहिं शिर नाई। करवाउब विवाह बरिआई—यही उपाय कुमार सभव के दूसरे सर्ग मे लिखा है कि शिवजी का विवाह पार्वती से कराना चाहिए जिनके संयोग से तारक असुर का मारने वाला उत्पन्न हो। यथा—

श्लोक—उमारूपेण ते यू य, सयमस्तिमित मनः।
शम्भोर्यतध्वमा क्रष्टु मयस्कान्तेन लौहवत् ॥

भाव यह कि (हे देवगण) तुम लोग समाधि लगाये हुए शिवजी के चित्त को पार्वती →

अर्थ—देवताओ ने अपनी सम्पूर्ण आपत्तियाँ कह सुनाईं जिन्हे सुन कामदेव अपने मन मे विचार कर हँसते हुए बोले कि शिवजी से बैर करने मे मेरा कल्याण नही।

तदपि करब मैं काज तुम्हारा। श्रुति कह परम धर्म उपकारा[१] ॥
परहित लागि तजै जो देही[२]। संतत संत प्रशंसहि तेही ॥

अर्थ—तो भी मै आप लोगो का काम करूगा क्योकि वेद मे कहा है कि दूसरे का उपकार करना यही सबसे उत्तम धर्म है। दूसरे की भलाई के लिए जो अपना शरीर छोड़े, साधु लोग उसकी सदा बडाई किया करते हैं।

अस कहि चलेउ सबहि शिर नाई। सुमनधनुष कर सहित सहाई[३] ॥
चलत मार अस हृदय विचारा। शिव विरोध ध्रुव मरण हमारा ॥

अर्थ—ऐसा कह सबको सिर नवा कर चला, उसने हाथो मे फूलो का धनुष ले अपने सहायक वसत अप्सरा आदि को साथ ले लिया। कामदेव ने चलते समय विचार किया कि शिवजी से बैर करने मे मेरी मृत्यु अवश्य होगी।

तब आपन प्रभाव विस्तारा। निजवश कीन्ह सकल ससारा ॥
कोपेउ जबहि वारिचरकेतू। क्षण महँ मिटेउ सकल श्रुतिसेतू ॥

अर्थ—तब उसने अपनी ऐसी लीला फैलाई कि सब ससार को अपने वश मे कर लिया। ज्यो ही कामदेव ने क्रोध किया तो पल भर ही मे वेद की सब मर्यादा मिट गई।

ब्रह्मचर्य व्रत सयम नाना[४]। धीरज धर्म ज्ञान विज्ञाना ॥

के रूप पर किसी भी प्रकार से मोहित करा दो, जिस प्रकार लोहे को चुम्बक अपनी ओर आर्कषित करता है (फिर हम शिवजी से विवाह करने की प्रार्थना कर लेंगे)।

१. श्रुति कह परम धर्म उपकारा—

श्लोक—श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि, यदुक्त शास्त्र कोटिभि.।
परोपकार पुण्याय, पापाय पर पीडनम् ॥

अर्थात् आधे ही श्लोक मे कहे देता हूँ जो कुछ कि अनेक शास्त्रो मे कहा गया है सो यो कि दूसरे पर उपकार करना यही पुण्य है और दूसरे को दु ख देना यही पाप है।

२. परहित लागि तजै जो देही—

क० : जड से उखाड कै सुखाय डारै मोहि प्राण घोटि डारै धरि धुआँ के मकान मे।
मेरी गाँठ काटै मोहि चाकू से तराश डारै अन्तर मे चीर डारै धरै नहि ध्यान मे ॥
स्याही माहि बोरि बोरि करै मुख कारो मेरो करौ मैं उजारो तौहू ज्ञान के जहान मे।
परे हूँ पराये हाथ तजूँ ना परोपकार चाहै घिस जाउँ मैं कलम कहै कान मे ॥

३. सुमनधनुष कर सहित सहाई—कामदेव की सेना व सहायको का वर्णन विस्तारपूर्वक अरण्यकाण्ड मे मिलेगा।

४. ब्रह्मचर्य व्रत सयम नाना·· आदि—

श्लोक—कर्मणा मनसा वाचा, सर्वावस्थातु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुन त्यागो ब्रह्मचर्यं तदुच्यते ॥

अर्थात् मन से, वचन से और कर्म से सब अवस्थाओ मे सदैव सब जगह स्त्री-प्रसग का त्याग—इसी को ब्रह्मचर्य कहते हैं।

व्रत, सयम आदि का वर्णन अन्यत्र लिखा गया है।

सदाचार जप योग विरागा । सभय विवेक कटक सब भागा[१] ॥

अर्थ—ब्रह्मचारी के नियम उपवास, कई प्रकार के सयम, धीरज, धर्म, ज्ञान और विचार, अच्छे आचरण, जप, योगसाधन और वैराग्य अदि विवेक की सेना भयभीत हो भागी ।

छन्द–भागेउ विवेक सहाइ सहित सो सुभट संयुग महि मुरे ।
सदग्रंथ पर्वत कंदरन्ह महँ जाइ तेहि अवसर दुरे ॥
होनिहार का करतार को रखवार जग खरभर परा ।
दुइमाथ[२] केहि रतिनाथ जेहि कहँ कोपि कर धनुशर धरा ॥

अर्थ—विवेक अपने सहायक वीरो समेत भागा क्योकि वे वीर इस लडाई मे पीठ दिखा गये । वेद, पुराण आदि अच्छे ग्रन्थ उस समय पहाडो की गुफाओ मे जा छिपे (अर्थात् पोथियो मे ही लिखे रह गये) उनके अनुसार आचरण न रहा, सब ससार मे खलबल पड गई कि हे विधाता ! अब क्या होने वाला है ? इस समय रक्षक कौन है व ऐसा दो सिर वाला कौन है कि जिसके लिए कामदेव ने क्रोध करके अपने हाथ मे धनुषबाण उठाया है ।

दोहा–जे सजीव जग चर अचर, नारि पुरुष अस नाम ।
ते निज निज मर्याद तजि, भये सकल वश काम[३] ॥ ८४ ॥

अर्थ—ससार मे जितने चलने वाले और ठहरे हुए जीवधारी थे जिन्हे नर या मादा ऐसी सज्ञा थी, वे सबके सब अपने-अपने समय-कुसमय का विचार न कर काम के वशीभूत हो गये ।

सब के हृदय मदन अभिलाखा । लता निहारि नवहि तरु शाखा ॥
नदी उमगि अम्बुधि कहँ धाई । सगम करहि तलाब तलाई ॥

अर्थ—सबके मन मे काम की इच्छा उत्पन्न हुई (यहाँ तक कि) लताओ को देखकर वृक्षो की डालियाँ झुकने लगी । नदियाँ उमडकर समुद्र की तरफ दौडी और ताल-तलइयो मे सगम होने लगा ।

---

१. सभय विवेक कटक सब भागा—

दोहा—मन मतंग मद रस मत्यो, धस्यो प्रेम रण धाय ।
लोक वेद कुल कान की, दई सैन बिचलाय ॥

और भी—भर्तृहरि श्रृंगारशतक से—

श्लोक—तावन्महत्त्वं पाण्डित्य कुलीनत्व विवेकिता ।
यावज्ज्वलति नागेषु हन्त पचेषुपावक. ॥

अर्थात् बडाई, पडिताई, विवेक और कुलीनता ये सब मनुष्य की देह मे तभी तक रहती है जब तक शरीर मे कामाग्नि नही प्रज्ज्वलित होती ।

२. दुइमाथ—इसके कहने से यह अभिप्राय है कि एक माथ वाले साधारण प्राणी तो सब काम के वश मे होते है यदि दो सिर वाला हो तो उसके हेतु कामदेव स्वत. हथियार बाँध कर क्रोध करे ।

३ जे सजीव जग चर अचर···भये सकल वश काम—रामरसायन रामायण से -

क०· निर्तत मयूर महा मुदित मयूरी मिलि मत्त अलि डोलै लिये अलिनी लसत सो ।
'रसिक विहारी' कीर सारिका सुकोकिलादि करत कलोल केलि कूजत हसत सो ॥
निज निज नारी सग अपर विहारी चहुँ खेद जड चेतन को सकल नसत सो ।
सन्त सम सुखद बसन्त सब ही को यह प्यारी बिन मोको भयो दुखद असत सो ।

जहँ अस दशा जड़न की बरनी । को कहि सकै सचेतन करनी ।।
पशु पक्षी नभजलथलचारी । भये कामवश समय बिसारी ।।

अर्थ—निर्जीव पदार्थो की जहाँ ऐसी दशा हुई वहाँ जीवधारियो के कर्म को कौन बखान सकता है । थल, जल और आकाश के रहने वाले पशु और पक्षी अपने-अपने यथोचित समय भूलकर कामवश हो गये ।

मदन अंध व्याकुल सब लोका । निशिदिन नहि अवलोकहि कोका[१] ।।
देव दनुज नर किन्नर व्याला । प्रेत पिशाच भूत बैताला ।।

अर्थ—सम्पूर्ण लोक काम से अधे होकर घबरा उठे और चक्रवाक पक्षी रात व दिन नही गिनते थे । देवता, राक्षस, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प, भूत, प्रेत, पिशाच व बैताल—

इनकी दशा न कहेउ बखानी । सदा काम के चेरे जानी[२] ।।
सिद्ध विरक्त महा मुनि योगी । तेपि कामवश भये वियोगी ।।

अर्थ—इनकी दशा का मैंने वर्णन नही किया क्योकि वे सदैव काम के वश मे रहते है । परम ज्ञानी, पूरे वैरागी व योगीश्वर बडे-बडे मुनिराज वे भी काम के वश होकर योग को छोड बैठे ।

छन्द—भये कामवश योगीश तापस पामरन की को कहै ।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहै[३] ।।
अबला विलोकहि पुरुषमय जग पुरुष सब अबलामयं ।
दुइ दंड भर ब्रह्मांड भीतर कामकृतकौतुक अयं ।।

अर्थ— बडे बडे योगीश्वर और तपस्वी काम के वश हो गये फिर नीच प्राणियो की

---

१ निशि दिन नहि अवलोकहि कोका—इसमे शका हो सकती है कि गोस्वामीजी ही तो आगे लिखते है कि 'दुइ दण्ड भरि ब्रह्माड भीतर' और 'उभय घरी अस कौतुक भयऊ' तब 'निशि दिन' कैसे हुआ ? उसका समाधान विजय दोहावली के इस दोहे से हो जाता है कि—

दोहा—उभय घरी सुर लोक मे, ब्रह्मलोक दुइ दण्ड ।
रह्यो भुवन मे दिवस निशि, व्याप्यो मदन प्रचण्ड ।।

२. इनकी दशा न कहेउ बखानी । सदा काम के चेरे जानी—(भर्तृहरि शतक)

श्लोक—मत्तेभ कुम्भ दलने भुवि सन्ति शूराः ।
केचित्प्रचण्ड मृगराज वधेऽपि दक्षाः ।।
किंतु ब्रवीमि बलिना पुरतः प्रसह्य ।
कन्दर्पदर्प दलने विरला मनुष्याः ।।

अर्थात् इस पृथ्वी पर मस्त हाथी का मस्तक फाडने मे समर्थ अनेक शूर है और अति बलवान् सिंह के मारने मे कुशल भी अनेक योद्धा है परन्तु बलवानो के आगे हम हठ कर यह कहते हैं कि कामदेव के वार से बचने वाला कोई बिरला ही मनुष्य होता है ।

३. देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहै—

क०. नैनन मे प्यारी अरु सैनन मे प्यारी इन बैनन मे प्यारी सुख दैनन मे प्यारी है ।
कानन मे प्यारी मन प्रानन मे प्यारी गान तानन मे प्यारी रूपवानन मे प्यारी है ।।
सग हू मे प्यारी रस रग हू मे प्यारी अग अग हू मे प्यारी औ उमग हू मे प्यारी है ।
जागत मे प्यारी नीद लागत मे प्यारी बसो 'रसिक विहारी' रोम रोमन मे प्यारी है ।।

दशा कौन कह सकता है। वे लोग सब ससार को स्त्रीरूप देखने लगे जो अपने ज्ञान के द्वारा उसे ब्रह्मरूप देखते थे। (ससार की) स्त्रियाँ सब ससार को पुरुषमय देखने लगी और सब पुरुष ससार को स्त्रीरूप देखने लगे। सम्पूर्ण विश्व मे दो घडी के लिए कामदेव ने यह खेल कर दिखाया।

सोरठा—धरा न काहू धीर, सब के मन मनसिज हरे।
जे राखे रघुवीर, ते उबरे तेहि काल महँ[१] ॥८५॥

अर्थ—उस समय कामदेव ने सब ही का मन हर लिया, किसी का धीरज न रहा, केवल वे ही इससे बचे कि जिनकी रक्षा रामचन्द्रजी ने की।

उभय घरी अस कौतुक भयऊ। जब लगि काम शंभु पहँ गयऊ॥
शिवहि विलोकि सशकेउ मारू। भयेउ यथाथित सब ससारू॥

अर्थ—दो घडी तक ऐसा चमत्कार हुआ कि इतने मे कामदेव महादेवजी के पास जा पहुँचा। शिवजी को देखकर कामदेव के मन मे भय उत्पन्न हुआ तब सब ससार फिर अपनी यथार्थ दशा मे हो गया।

भये तुरत जग जीव सुखारे। जिमि मद उतर गये मतवारे॥
रुद्रहि देखि मदन भय माना। दुराधर्ष दुर्गम भगवाना॥

शब्दार्थ—दुराधर्ष (दूर=कठिनाई से+आ+धृष्=दबाना)=कठिनाई से दबने के योग्य अर्थात् जो किसी से दबे नही।

अर्थ—सब ससार के जीवधारी तुरन्त ही सुखी हो गये जैसे नशा करने वाले नशा के उत्तर जाने से हो जाते है। शत्रु से न दबने वाले, पहुँच के बाहर और षडैश्वर्य युक्त रुद्रजी को देखकर कामदेव भयभीत हुआ।

फिरत लाज कछु कहि नहि जाई। मरण ठानि मन रचेसि उपाई॥
प्रकटेसि तुरत रुचिर ऋतुराजा। कुसुमित नव तरुराज विराजा[२]॥

अर्थ—लौटने मे उसे लज्जा मालूम होती थी, कुछ कहते नही बन पडता था, तब तो

---

१. धरा न काहू धीर 'ते उबरे तेहि काल महँ—यहाँ पर गोस्वामीजी ने भक्त-जनो की श्रेष्ठता दर्शाई है, क्योकि ज्ञानी लोग जिन्हे अपना ही भरोसा था वे शीघ्र ही परास्त हुए (क्योकि विवेकरूपी कटक तो भाग ही चुका था) जैसा अरण्यकाण्ड मे लिखा है कि—

जिनहि मोर बल निज बल ताही। दुहुँ कहँ काम क्रोध रिपु आही।
यह विचारि पंडित मोहि भजही। पायहु ज्ञान भक्ति नहि तजही॥

परन्तु भक्तजनो को परमेश्वर ने बचा लिया क्योकि वे उनके सर्वथा रक्षक हैं। जैसा कहा है—

सुनु मुनि तोहि कहौ सहरोसा। भजहि मोहि तजि सकल भरोसा॥
करौ सदा तिन की रखवारी। जिमि बालकहि राख महतारी॥

२. प्रकटेसि तुरत रुचिर ऋतुराजा। कुसुमित नव तरुराज विराजा—

कविता—कूलन मे केलि मे कछारन मे कुजन मे क्यारिन मे कलित कलीन किलकन्त है।
कहै 'पदमाकर' पराग हू मे पौन हू मे पातिन मे पीकन पलासन पगन्त है॥
द्वार मे दिशान मे दुनी मे देश देशन मे देखौ दीप दीपन मे दीपति दिगन्त है।
विपिन मे ब्रज मैं नबेलिन मे बेलिन मे बनन में बागन में बगरयो बसन्त है॥

मन मे मरना विचार कर उसने उपाय किया। तुरन्त ही सुन्दर बसन्त ऋतु को उत्पन्न कर दिया जिसमे पारिजात, आम आदि वृक्ष नये सिरे से फूल उठे।

वन उपवन वापिका तड़ागा। परम सुभग सब दिशा विभागा[1] ।।
जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा। देखि मुएहु मन मनसिज जागा ।।

अर्थ—जगल, बगीचा, बावली, तालाब और सम्पूर्ण दिशाओ मे जो कुछ था, सब ही बहुत सुन्दर दिखने लगा। जहाँ तहाँ मानो प्रेम ही उमडा पडता था जिसे देखकर गिरे दिल वालो को भी कामदेव ने सताया।

छंद—जागै मनोभव मुएहु मन बन सुभगता न परै कही[2] ।
शीतल सुगन्ध सुमन्द मारुत मदन अनल सखा सही ।।
विकसे सरन्हि बहु कंज गुजत पुंज मंजुल मधुकरा[3] ।
कलहंस पिक शुक सरस रव करि गान नाचहि अप्सरा ।।

अर्थ—जगल की शोभा कही नही जाती कि जिससे गिरे दिल वालो के मन मे भी काम उत्पन्न हुए। कामाग्नि की पूरी सहायक ठडी धीमी और सुगन्ध युक्त हवा चलने लगी (अर्थात् शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन चलने लगी जो कामाग्नि को बढाने वाली है)। तालाब मे बहुत से कमल खिल उठे और उन पर सुन्दर भौरो के झुड के झुड गूँजने लगे। वहाँ राजहस, सुआ और कोयल सुहावने शब्द करने लगे तथा गीत गाकर अप्सरायें नाचने लगी।

दोहा—सकल कला करि कोटि विधि, हारेउ सेन समेत।
चली न अचल समाधि शिव, कोपेउ हृदयनिकेत[4] ।।८६।।

---

१ वन उपवन वापिका तडागा। परम सुभग सब दिशा विभागा—राम रसायन रामायण से—

कवित्त—बेलिन बसत ज्यो नवेलिन बसन्त बन बागन बसत रग रागन बसन्त है।
कुजन बसन्त दिग पुजन बसत अलि गुजन बसत चहुँ ओरन बसन्त है।।
छैलन बसन्त अरु फैलन बसन्त सँग सैलन बसन्त बहु गैलन बसन्त है।
'रसिक विहारी' नैन सैनन मे बैनन मे जितै अवलोकौ तितै बरसै बसत है।।

२ जागै मनोभव मुएहु मन बन सुभगता न परै कही—लोलम्बराज से—

श्लोक—ताम्बूल मधु कुसुम स्रजो विचित्राः कानार सुरतरु नवा बिलास वत्य,
गीतानि श्रवण हराणि मिष्टमन्न, क्लीवानामपि जनयति पचवाणम्।

अर्थात् पान, बसत ऋतु, सुगधित पुष्पो की मालाएँ, सघन वन, दिव्यवृक्ष, नवयौवना स्त्री, कर्ण मधुर गीत, स्वादिष्ट अन्न—ये पदार्थ गिरे दिल वाले मनुष्यो को भी कामोद्दीपन करते है।

३ विकसे सरन्हि बहु कंज गुजत पुज मजुल मधुकरा—मनोज लतिका ग्रन्थ से—

क० – कूकि उठी कोकिलान गूज उठी भौंर भीर डोलि उठे सौरभ समीर सरसावने।
फूलि उठी लतिका लवगन की लोनी लोनी झूल उठी डालियाँ कदम्ब सुख पावने।
चहकि चकोर उठे कीर करि शोर उठे टेर उठी सारिका विनोद उपजावने।
चटकि गुलाब उठे लटकि सरोज पुज खटकि मराल ऋतुराज सुनि आवने।।

४. सकल कला करि कोटि विधि···कोपेउ हृदयनिकेत—
यही आशय कुमार सभव मे यो कहा गया है (सर्ग ३)—
श्लोक—श्रुताप्सरोगीतिरपि क्षणेऽस्मिन्, हर प्रसख्यानपरो बभूव।
आत्मेश्वराणा न हि जातु विघ्ना., समाधि भेद प्रभवो भवन्ति ।।४०।। →

शब्दार्थ—हृदयनिकेत (हृदय=मन+निकेत=घर) =मन ही है घर जिसका, कामदेव।

अर्थ—हजारो तरह से सब उपाय करके जब कामदेव अपने सहायको समेत हार गया और महादेवजी की अटूट समाधि न खुली तब तो उसे क्रोध आ गया।

देखि रसाल विटप वर शाखा। तेहि पर चढेउ मदन मन माखा॥
सुमन चाप निज शर सधाने। अति रिस ताकि श्रवण लग ताने॥

अर्थ—क्रोध का मारा कामदेव एक आम के झाड की सुन्दर डाल को देखकर उस पर जा चढा और अपने फूलो के धनुष पर बाण लगाकर बडे क्रोध से उन्हे कान तक खीच कर लक्ष्य बाँधा।

छाँड़े विषम विशिख उर लागे। छूटि समाधि शम्भु तब जागे॥
भयो ईश मनक्षोभ विशेखी। नयन उघारि सकल दिशि देखी॥

अर्थ - जो तीखे बाण छोडे सो हृदय मे लगते ही शिवजी का ध्यान छूट गया और वे सचेत हुए। शिवजी के मन मे बडा उद्वेग उत्पन्न हुआ और उन्होने आँखे खोलकर चारो ओर देखा।

सौरभपल्लव मदन विलोका। भयउ कोप कम्पेउ त्रयलोका॥
तब शिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा[१]॥

अर्थ—आम के पत्तो मे छिपे हुए कामदेव को देखते ही उन्हे क्रोध उत्पन्न हुआ कि जिससे तीनो लोक काँप उठे। तब महादेवजी ने अपना तीसरा नेत्र खोला, उसकी दृष्टि से कामदेव जल के राख हो गया।

हाहाकर भयउ जग भारी। डरपे सुर भे असुर सुखारी॥
समझि काम सुख सोचहि भोगी। भये अकंटक साधक योगी॥

अर्थ—ससार मे बडी हाय-हाय मच गई, देवताओ को डर पैदा हुआ और राक्षस सुखी हुए। भोगशील प्राणी काम का सुख समझकर सोच मे पड गये और साधना करने वाले व योगाभ्यासी निर्विघ्न हुए।

सूचना— स्मरण रहे कि देवता इस बात से डरे कि उन्होने अपने कार्य-सिद्धि हेतु कामदेव को भेजा था, सो भस्म हो गया। कदाचित् शिवजी हम लोगो पर क्रोध न कर बैठें। इसके सिवाय पार्वती का विवाह न होने से तारकासुर का बध-साधन भी न हो सकेगा। राक्षसो को सुख इस हेतु हुआ कि अब न शिव के पुत्र होगा न राक्षसो का वध हो सकेगा।

भोगियो को विषय सुख से वचित होने का दु ख तथा योगियों को काम की बाधा का

अर्थ—उस समय (अर्थात् आकालिक वसन्त होने जाने पर) अप्सराओ का गान सुनने पर भी शिवजी और अधिक ध्यान मे निमग्न हो गये क्योकि जिनका मन स्वाधीन है उसकी समाधि मे विघ्न-बाधा डालने की सामर्थ्य कोई नही रखता।

१. चितवत काम भयउ जरि छारा—जैसा कि कुमार सम्भव मे लिखा है—
श्लोक—क्रोध प्रमो ! सहर सहरेति, यावद्गिर. रवेमरुता चरन्ति।
तावत्सवन्हिर्भवनेत्र जन्मा, भस्मावशेष मदन चकार॥
अर्थात् 'हे प्रभु ! क्रोध को रोकिये, रोकिये' ये शब्द जब तक देवगण आकाश मे कहें-कहे, तब तक उस शिवनेत्र की अग्नि ने कामदेव को भस्म कर डाला।

दु ख अनायास ही दूर हुआ।

छद—योगी अकटक भये पतिगति सुनति रति मुर्छित भई।
रोदति वदति बहु भाँति करुणा करति शकर पहँ गई[1] ॥
अति प्रेम करि विनती विविध विधि जोरि कर सन्मुख रही।
प्रभु आशुतोष कृपाल शिव अबला निरखि बोले सही[2] ॥

अर्थ—योगी लोग तो निर्विघ्न हुए और पति की दशा सुनकर रति को मूर्छा आई। वह बेचारी रोती-पीटती और पति के गुण वर्णन करती तथा कई प्रकार से दु ख करती हुई महादेवजी के पास गई। बडे प्रेम सहित अनेक प्रकार से प्रार्थना करके हाथ जोडकर सामने खडी हो रही। दयालु महादेवजी बडी जल्दी प्रसन्न होने वाले स्वामी है सो उस अबला को देखकर बोल उठे—

दोहा—अब ते रति तब नाथ कर, होइहि नाम अनङ्ग।
बिन वपु व्यापिहि सबहि पुनि, सुनि निज मिलन प्रसङ्ग ॥८७॥

अर्थ—हे रति ! आज से तेरे पति का नाम अनग (अर्थात् बेशरीर वाला) होगा। वह सब लोगो को बिना शरीर के व्यापेगा, अब तू उससे अपने मिलने का अवसर सुन रख।

जब यदुवंश कृष्ण अवतारा। होइहि हरण महा महिभारा ॥
कृष्णतनय होइहि पति तोरा। वचन अन्यथा होइ न मोरा ॥

अर्थ—पृथ्वी का बडा भारी भार हरने के लिए जब यदुवश मे कृष्णावतार होगा, तब कृष्ण का पुत्र प्रद्युम्न तेरा पति होगा, मेरा वाक्य झूठा नही होता।

रति गवनी सुनि शंकर बानी[3] । कथा अपर अब कहौ बखानी ॥

---

१ रोदति वदति बहु भाँति करुणा करति शकर पहँ गई—कुमार सम्भव, सर्ग ४—

श्लोक—विधिना कृतमर्द्ध वैशस, ननु मा काम बधे विमचुता।
अनपायिनि सश्रयद्रुमे, गज भग्ने पतनाय वल्लरी ॥ ३१ ॥

अर्थ—कामदेव की मृत्यु करा कर मुझे जीती छोडकर विधाता ने मानो आधा बध-साधन किया है (सो स्वभावतः मेरा भी बध मानो हो ही चुका है) क्योकि जिस वृक्ष पर लता लिपटी रहती है उस वृक्ष को जब हाथी तोड डालता है तो वह लता आप ही टूट जाती है (भाव यह है कि स्त्री पुरुष की अर्धाङ्गिनी है, यदि पुरुष का घात हुआ तो स्त्री का घात हुआ ही समझा जाता है)।

२ प्रभु आशुतोष कृपाल शिव अबला निरखि बोले सही—

भजन—हर तन करुणा सरिता बाढी।
दुखी देखि निज जन बिन साधन उमगि चली अति गाढी ॥
तोरि कूल मर्याद के दोऊ न्याव करार गिराय।
जित तित परे कर्म फल तरुगण जड सो तोरि बहाय ॥
अचल विरुद्ध गँभीर भँवर गहि महा पाप गण बोरे।
असहन पवन वेगि अति वेगहि दीन्हे महा हलोरे ॥
भरि दीन्हे जन हृदय सरोवर तीनहुँ पाप बुझाइ।
'हरीचन्द' हरियश समुद्र मे मिली उमगि हरषाइ ॥

३. रति गवनी सुनि शकर बानी—

राग धनाश्री—दानी कहुँ शकर सम नाही।

देवन समाचार सब पाये । ब्रह्मादिक बैकुंठ सिधाये ।।

अर्थ—शकरजी की बाते सुनके रति तो चली गई, अब आगे की कथा वर्णन करता हूँ। जब यह सब हाल विदित हुआ तब ब्रह्मा आदि सब देवता बैकुठ गये।

सब सुर विष्णु विरंचि समेता । गये जहाँ शिव कृपानिकेता ।।
पृथक पृथक तिन कीन्ह प्रशसा[1] । भये प्रसन्न चन्द्रअवतसा ।।

अर्थ—सब देवता ब्रह्मा-विष्णु समेत दयासागर शिवजी के पास गये, उन्होने अलग-अलग स्तुति की तब तो चन्द्रशेखर शिवजी प्रसन्न हो गये।

बोले कृपासिधु वृषकेतू । कहहु अमर आये केहि हेतू ।।
कह विधि तुम प्रभु अन्तर्यामी । तदपि भक्तिवश बिनवउँ स्वामी ।।

अर्थ—परम कृपालु शिवजी बोले—कहो देवगण! आप लोग किस कारण से आये? ब्रह्मदेव बोले—हे स्वामी! आप तो अतस की जानते हो तो भी भक्ति के वश प्रार्थना करता हूँ।

दोहा—सकल सुरन्ह के हृदय अस, शंकर परम उछाह ।
निज नयनन्हि देखा चहहि, नाथ तुम्हार विवाह ।।८८।।

अर्थ—हे शकरजी! सम्पूर्ण देवताओ के मन मे ऐसा एक बडा उत्साह है कि वे अपनी आँखो से आपका विवाह देखना चाहते है।

यह उत्सव देखिय भरि लोचन । सोइ कछु करहु मदनमदमोचन ।।

दीन दयाल दिबोई भावै याचक सदा सुहाही ।।
मारि कै मार थप्यौ जग मे जाकी प्रथमरेख भट माही ।
ता ठाकुर को रीझ निवाजिवो कहि क्यो परत मो पाही ।।
योग कोटि कर जो गति हर सो मुनि मागत सकुचाही ।
वेद विदित तेहि पद पुरारिपुर कीट पतग समाही ।।
ईश उदार उमापति परिहरि अनत जे जाँचत जाही ।
तुलसिदास ते मूढ माँगने कबहुँ न पेट अघाही ।।

१. पृथक पृथक तिन कीन्ह प्रशसा—

गजल—कैलास के निवासी हम है शरण तिहारी ।
होकर दयाल हम पर सुध लीजिये हमारी ।।
ये तीन लोक तुमने चौधै भवन बसाकर ।
अपनी कुटी बनाई कैलास त्रिपुरारी ।।
गगा जटा मुकुट मे करती है बास निशि दिन ।
माथे पै चन्द्रमा की क्या ही कला नियारी ।।
तन से तुम्हारे सारे लिपटे हैं सर्प कारे ।
गल बीच रुडमाला औ बैल की सवारी ।।
हे श्रृंगी नाद वाले लम्बी जटाओ वाले ।
सुध लीजिये हमारी हे नीलकठधारी ।।
लेते है नेत्र तीनो सुध तीनों लोक की ये ।
हे तीन नेत्र वाले बलिहार त्रिपुरारी ।।
दास 'गिरंद' की अब अरदास ये ही तुम से ।
अपने ही दर का कीजो शिवजी मुझे भिखारी ।।

काम जारि रति कहँ वर दीन्हा। कृपासिंधु यह अति भल कीन्हा ।।

अर्थ—हे कामदेव के मान भंग करनेवाले! आप वही कीजिये कि जिसमें ये उत्साह हम लोग आँख भर के देख लें। हे दयासागर! कामदेव को जलाकर रति को वरदान दिया यह आपने बहुत ही अच्छा किया।

सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन कर सहज सुभाऊ ।।
पारबती तप कीन्ह अपारा। करहु तासु अब अंगीकारा ।।

अर्थ—हे नाथ! स्वामियों का यह स्वभाव ही है कि वे पहले दण्ड देकर फिर कृपा करते हैं। पार्वतीजी ने बड़ी भारी तपस्या की है, उन्हें अब स्वीकार कीजिये।

सुनि विधि विनय समझि प्रभुबानी। ऐसइ होउ कहा सुख मानी ।।
तब देवन दुन्दुभी बजाई। बरषि सुमन जय जय सुरसाईं ।।

अर्थ—ब्रह्मदेव की प्रार्थना सुनकर और अपने स्वामी रामचन्द्रजी के वाक्यों का स्मरण करके बड़े सुखपूर्वक उसने कहा ऐसा ही हो। तब तो देवताओं ने "हे देवताओं के स्वामी, तुम्हारी जय हो" ऐसा कहते हुए बाजे बजाये और फूल बरसाये।

अवसर जानि सप्तऋषि आये। तुरतहिं विधि गिरिभवन पठाये ।।
प्रथम गये जहँ रही भवानी। बोले मधुर वचन छलसानी ।।

अर्थ—समय देखकर सप्त ऋषि भी पहुँच गये। उन्हें ब्रह्मदेव ने तुरन्त ही हिमाचल के घर भेजा। वे लोग पहले पार्वतीजी के पास गये और कपटभरी मीठी वाणी बोले—

दोहा—कहा हमार न सुनेहु तब, नारद के उपदेश।
अब भा झूठ तुम्हार प्रण, जारेउ काम महेश ।।८९।।

अर्थ—उस समय तुम नारद के सिखावन में लगी थी सो हमारा कहना न माना। अब तुम्हारा प्रण झूठा हुआ क्योंकि महादेवजी ने कामदेव को जला दिया।

सुनि बोली मुसकाय भवानी। उचित कहेहु मुनिवर विज्ञानी ।।
तुम्हरे जान काम अब जारा। अब लगि शंभु रहे सविकारा ।।

अर्थ—सुन करके पार्वतीजी मुसकरायी और कहने लगी—हे ज्ञानवान् मुनिराज! आपने ठीक ही कहा, आपकी समझ में शिवजी ने कामदेव को अभी जलाया है और अब तक वे विकार सहित (अर्थात् सकाम) थे।

हमरे जान सदा शिव योगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी ।।
जो मैं शिव सेयउँ अस जानी। प्रीति समेत कर्म मन बानी ।।
तौ हमार प्रण सुनहु मुनीशा। करिहहिं सत्य कृपानिधि ईशा ।।

अर्थ—हमारी समझ में शिवजी सदा योगी हैं, उनका कभी जन्म नहीं होता, वाक्यों से उनका वर्णन नहीं हो सकता, काम का विकार उनमें है ही नहीं, भोग की इच्छा उन्हें होती ही नहीं। जो मैंने शिवजी को ऐसा जानकर प्रेमपूर्वक मनसा, वाचा, कर्मणा से उनकी सेवा की होगी, तो हे मुनीश्वर! सुनो, वे दयासागर स्वामी हमारा प्रण सच्चा करेंगे।

तुम जो कहा हर जारेउ मारा। सो अति बड़ अविवेक तुम्हारा[1] ।।

---

१ तुम जो कहा हर जारेउ मारा। सो अति बड अविवेक तुम्हारा—कुमार संभव से—
श्लोक—उवाच चैनं परमार्थं ताहर, न वेत्सि नूनं यत एवं मात्य माम्।
अलोक सामान्य मचिन्त्यन्त्य हेतुकं, द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् ।। →

तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहि काऊ ।।
गये समीप सो अवशि नसाई। अस मन्मथ महेश की नाई ।।

अर्थ—तुमने जो कहा कि महादेवजी ने कामदेव को जला दिया सो तुम्हारा बडा अज्ञान है। हे तात! अग्नि का यह स्वभाव ही है कि शीत उसके पास नही जा सकती। पास जाने से वह अवश्य ही नाश होगी, ऐसा ही कामदेव को महादेवजी के पास समझो।

दोहा—हिय हर्षे मुनि वचन सुनि, देखि प्रीति विश्वास।
चले भवानिहि नाइ शिर, गये हिमाचल पास ।।६०।।

अर्थ—इन वचनो को सुनकर तथा पार्वतीजी का प्रेम और श्रद्धा देख मुनिजी मन मे प्रसन्न हुए और उन्हे दडवत् करके हिमालय के पास गये।

(२० **शिव-पार्वती का विवाह**)

सब प्रसंग गिरिपतिहि सुनावा। मदन दहन सुनि अति दुख पावा ।।
बहुरि कहेउ रतिकर वरदाना। सुनि हिमवन्त बहुत सुख माना ।।

अर्थ—सप्तऋषियो ने पर्वतो के स्वामी हिमाचल को सब कथा कह सुनाई। कामदेव का भस्म होना सुनकर उनको बडा शोक हुआ। फिर रति के वरदान पाने की कथा कह सुनाई। उसे सुनकर हिमाचल को बडा सुख हुआ।

हृदय बिचारि शंभु प्रभुताई। सादर मुनिवर लिये बुलाई ।।
सुदिन सुनखत सुघरी सुधाई। वेगि वेद विधि लगन धराई ।।

अर्थ—शिवजी की बडाई मन मे विचार कर बडे आदरपूर्वक उन्होने श्रेष्ठ मुनियो को बुलाया और अच्छा दिन, नक्षत्र और घडी सुधवाकर वेद की रीति से जल्दी ही लग्न-पत्रिका लिखवाई।

पत्री सप्त ऋषिन सोइ दीन्ही। गहि पद विनय हिमाचल कीन्ही ।।
जाइ विधिहि तिन दीन्हि सो पाती। बॉचत हृदय न प्रीति समाती ।।

अर्थ—वह लग्न-पत्री हिमाचल से सप्तऋषियो को दी और उनके चरण छू के बार-बार विनय की। उन्होने वह पत्री जाकर ब्रह्मा को दी। उसे बाँच कर ब्रह्मदेव प्रेम के मारे फूले नही समाते थे।

लगन बॉचि अज सबहि सुनाई। हरषे सुनि सब सुर समुदाई ।।
सुमन वृष्टि नभ बाजन बाजे। मंगल कलश दशहुँ दिशि साजे ।।

अर्थ—ब्रह्माजी ने सब लोगो को लग्न बाँचकर सुना दी, उसे सुनकर सम्पूर्ण देवगण प्रसन्न हुए। आकाश मे बाजे बजने लगे, फूलो की वर्षा हुई और शुभ कलश सब दिशाओ मे सजाये जाने लगे।

दोहा—लगे सॅवारन सकल सुर, वाहन विविध विमान।
होहि शकुन मंगल सुभग, करहि अपसरा गान ।।६०।।

अर्थ—पार्वतीजी बोली कि जो तुम मुझसे इस प्रकार कह रहे हो तो तुम यथार्थ रूप से शिवजी को अवश्य नही जानते। ठीक ही है आसुरी लोग महात्मा पुरुषो के चरित्रो की निन्दा किया करते है क्योकि वे साधारण लोगो की समझ मे नही आते और उनका कारण वे नही जान सकते (उन्हे यथार्थ रूप से तो बुद्धिवान् प्राणी ही जान सकते है)।

अर्थ—सम्पूर्ण देवता कई प्रकार की सवारियाँ और विमान सजाने लगे, अप्सराये गाने लगी और सुन्दर शुभसूचक शकुन होने लगे ।

शिवहि शभुगण करहि शृंगारा । जटा मुकुट अहि मौर सँवारा ।।
कुण्डल कंकण पहिरे व्याला । तनु विभूति पट केहरि छाला ।।

अर्थ—महादेवजी के गण उनका शृगार करने लगे । उनकी बडी-बडी जटाओ का ही मुकुट बनाया जिस पर सर्पो का मौर सँभाल दिया । शिवजी सर्पों के ही कुडल और कंकण पहिरे थे । शरीर मे विभूति चढी हुई थी और बाघम्बर ओढे थे ।

शशिललाट सुन्दर शिर गगा । नयन तीनि उपवीत भुजंगा ।।
गरल कण्ठ उर नरशिरमाला । अशिव वेष शिवधाम कृपाला[१] ।।

अर्थ--माथे पर सुन्दर चन्द्रमा और सिर पर गगाजी थी । तीन नेत्र और सर्प का जनेऊ । गले मे हलाहल, हृदय पर मनुष्यो के मुडो की माला थी । ऐसे दयासागर अमगल भेष होने पर भी सब मंगलो के घर है ।

कर त्रिशूल अरु डमरु विराजा । चले वृषभ चढि बाजहि बाजा ।।
देखि शिवहि सुरतिय मुसकाहीं । बर लायक दुलहिनि जग नाही ।।

अर्थ—हाथो मे त्रिशूल और डमरू शोभा देती थी, बैल पर चढकर चले और बाजे बजने लगे । शिवजी को देखकर देवताओ की स्त्रियाँ हँसती थी और कहती थी कि ऐसे वर के योग्य ससार मे कोई कन्या है ही नही ।

विष्णु विरंचि आदि सुरव्राता । चढ़ि चढ़ि वाहन चले बराता ।।
सुर समाज सब भाँति अनूपा । नहि बरात दूलह अनुरूपा ।।

अर्थ— ब्रह्मा-विष्णु समेत सब देवताओ का समूह अपनी-अपनी सवारियो पर चढकर बरात मे चला । देवमडली सब प्रकार से अनूठी थी परन्तु दूलह के योग्य बरात न थी ।

दोहा—विष्णु कहा अस विहँसि तब, बोलि सकल दिशिराज ।
बिलग बिलग होइ चलहु सब, निज निज सहित समाज ।।९२।।

अर्थ—तब विष्णुजी ने मुसकरा कर सम्पूर्ण दिग्पालो को बुलाकर कहा कि अपनी-अपनी समाज लेकर सब लोग अलग-अलग चले ।

वर अनुहार बरात न भाई । हँसी करइहउ परपुर जाई ।।
विष्णु वचन सुनि सुर मुसकाने । निज निजसेन सहित बिलगाने ।।

अर्थ—हे भाई ! वर के योग्य बरात नही है । क्या दूसरे के गाँव मे जाकर अपनी हँसी कराओगे । विष्णु के वाक्य सुनकर देवता मुसकराये और अपनी-अपनी समाज समेत अलग हो गये ।

---

१ अशिव वेष शिवधाम कृपाला—
ताल इकताला—जय जय जय देव देव महादेव दानी ।।
अर्द्धचन्द्र तिलक चारु नैन तीन जनुअँगार, धवल गगधार जटा जूट मे समानी ।।
शोभा को सदन दिव्यपर्व शर्वरीश वदन, रदन कुन्दकला कदन भौह है कमानी ।।
पहिरे उर मुड माल अशुभ वेष अति कृपाल, व्याल जाल कण्ठ काल कूट की निशानी ।।
डमरू तिरशूल हाथ भूत प्रेत प्रमथ साथ नाय नाय माथ गाथ वेद कहै बानी ।।
ध्यावै युगपद सरोज गावै गुण रोज रोज, 'सिंह जुझार' ग्वोज खोज वेद कीर्ति गानी ।।

मनही मन महेश मुसकाही । हरि के व्यंग वचन नहि जाही ।।
अतिप्रिय वचन सुनत प्रियकेरे । भृंगी प्रेरि सकल गण टेरे ।।

शब्दार्थ—भृंगी = (१) गण विशेष, (२) एक बाजा का नाम जो शिवजी बजाते थे।

अर्थ—महादेवजी मन ही मन मुसकराते थे कि देखो ! विष्णु के विशेष अर्थसूचक हँसी के वचन नही छूटते। अपने मित्र के ऐसे प्यारे बोल सुनकर उन्होने अपने भृंगी नाम के गण द्वारा सब गणो को बुलाया।

शिव अनुशासन सुनि सब आये । प्रभु पदजलज सीस तिन नाये ।।
नाना वाहन नाना भेखा । विहँसे शिव समाज निज देखा ।।

अर्थ—महादेवजी की आज्ञा सुनकर सब आये और उन्होने अपने स्वामी के कमल-स्वरूपी चरणो मे मस्तक नवाया। वे कई प्रकार की सवारियो पर अनेक भेष मे थे। शिवजी अपनी समाज को देखकर हँसे।

कोउ मुखहीन विपुल मुख काहू । बिनपदकर कोउ बहुपद बाहू ।।
विपुल नयन कोउ नयन विहीना । हृष्ट पुष्ट कोउ अतितनछीना ।।

अर्थ—किसी के मुँह था ही नही और कोई तो बहुत से मुख वाला था। किसी के हाथ. पैर न थे, तो कोई बहुत से हाथ-पैर वाला था। किसी के बहुत-सी आँखें थी, तो कोई नेत्र-हीन था, कोई हट्टा-कट्टा था, तो कोई शरीर से बहुत दुर्बल था।

छन्द—तनछीन कोउ अतिपीन पावन कोउ अपावन गति घरे ।
भूषण कराल कपाल कर सब सद्य श्रोणित तनु भरे ।।
खर श्वान सुअर शृंगाल मुख गण भेष अगणित को गनै ।
बहु जिनिस प्रेत पिशाच योगिनि भाँति वर्णत नहि बनै ।।

अर्थ—किसी का शरीर दुबला और कोई बहुत मोटा था, कोई पवित्रता से तथा कोई अपवित्र रीति से था। सबके गहने भयकर और हाथो मे हाली खून से भरी हुई खोपडी थी। गधे, कुत्ते, सूअर, लडैये सरीखे उनके चेहरे थे। ऐसे-ऐसे अनेक रूपधारी रुद्रगणो को कौन गिन सकता था। कई प्रकार के प्रेत, पिशाच व योगिनियो की समाजो का वर्णन नही किया जा सकता।

सोरठा—नाचहिं गावहिं गीत, परम तरगी भूत सब[१] ।
देखत अति विपरीति, बोलहिं वचन विचित्र अति ।।९३।।

अर्थ—सब बडे लहरी भूत नाचते और गाना गाते थे, वे देखने मे तो बेढगे थे, परन्तु

---

१. नाचहिं गावहिं गीत, परम तरंगी भूत सब—पार्वती मंगल से—

बरवै—प्रमथनाथ के साथ प्रमथगणराजहिं ।
विविध भाँति मुख वाहन वेष विराजहिं ।।
मुदित सकल शिव दूत भूत गण गाजहिं ।
शूकर महिष श्वान खर वाहन साजहिं ।।
कमठ खपर मढि खाल निशान बजावहिं ।
नर कपाल जल भरि भरि पियहिं पियावहिं ।।
नाचहिं नाना रग तरग बढावहिं ।
अज उलूक वृक नाद गीत गण गावहिं ।।

उनके वचन बडे चमत्कारी थे, इनके कर्म देखने मे सब विपरीत जान पडते थे।

जस दूलह तस बनी बराता। कौतुक विविध होहिं मग जाता ॥
इहां हिमाचल रचेउ विताना। अति विचित्र नहि जाइ बखाना ॥

अर्थ—जैसा दूलह था वैसी ही बरात बन गई। मार्ग मे नाना प्रकार के हास-विलास होते जाते थे। इधर हिमाचल ने अच्छा मडप बनाया था, जो बहुत ही विचित्र था जिसका वर्णन नही हो सकता था।

शैल सकल जहँ लगि जग माहीं। लघु विशाल नहि वरनि सिराही ॥
बन सागर सब नदी तलावा। हिमगिरि सब कहँ नेवत पठावा ॥

अर्थ—ससार मे जितने छोटे-बडे पहाड थे जिनका वर्णन नही हो सकता, उन सबको और सब जगलो, नदियो, तालाबो व समुद्रो को हिमालय ने निमत्रण भेजकर बुलाया था।

सूचना—स्मरण रहे कि हिमालय का सकल पर्वतो, नदियो, वन आदि को बुलवाना अथवा उनका आना कुछ यथार्थ पर्वतो आदि का आना न समझना चाहिए। उससे तो उन सबके अधिष्ठाता देवताओ का आना-जाना सूचित है।

कामरूप सुन्दर तनुधारी। सहित समाज सोह वरनारी[1] ॥
आये सकल हिमाचल गेहा। गावहि मगल सहित सनेहा ॥

अर्थ—इच्छानुसार स्वरूप धारण करने की सामर्थ्य रखने वाले वे सब परिवार इष्ट-मित्रो समेत हिमाचल के घर आये और प्रेम से शुभगीत गाने लगे।

प्रथमहि गिरि बहु गृह सँवराये[2]। यथायोग्य जहँ तहँ सब छाये ॥
पुरशोभा अवलोकि सुहाई। लागै लघु विरंचि निपुणाई[3] ॥

अर्थ—हिमाचल ने पहले ही से बहुत-से घर सजवा रखे थे, सो सब लोग अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार जहाँ-तहाँ उनमे रहने लगे। गाँव की सुन्दर शोभा देखकर ब्रह्मा की करतूति भी फीकी लगने लगी।

---

१ कामरूप सुन्दर तनुधारी। सहित समाज सोह वरनारी—पार्वती मगल से—

बरवै—गिरि वन सरित सिन्धु सर सुनइ जो पायउ।
सब कहँ गिरिवर नायक नेवत पठायउ ॥
धरि-धरि सुन्दर वेष चले हरषित हिये।
चउर चीर उपहार हार मणि गण लिये ॥

२. प्रथमहिं गिरि बहु गृह सँवराये—पार्वती मगल से—

बरवै—कहेउ हरषि हिमवान वितान बनावन।
हरषित लगियँ सुवासिनि मगल गावन ॥
तोरण कलश चँवर ध्वज विविध बनाइन्हि।
हाट पटोरिन्ह छाय सफल तरु ताइन्हि ॥

३. पुरशोभा अवलोकि सुहाई। लागै लघु विरचि निपुणाई।

छन्द—जनु राजधानी मदन की विरची चतुर विधि औरही।
रचना विचित्र विलोकि लोचन विथकि ठौरहि ठौरही ॥
इहि भाँति ब्याह समाज सजि गिरिराज मग जोवन लगे।
तुलसी लगन लै दीन्ह मुनिन्ह महेश आनँद रँग मगे ॥

छन्द—लघु लाग विधि की निपुणता अवलोकि पुर शोभा सही ।
वन बाग कूप तडाग सरिता सुभग सब सक को कही ।।
मगल विपुल तोरण पताका केतु गृह गृह सोहही ।
वनिता पुरुष सुन्दर चतुर छबि देखि मुनि मन मोहहीं ।।

अर्थ—ग्राम की शोभा देखकर ब्रह्मा का कौशल्य सचमुच ही तुच्छ जान पडता था । वन, बगीचे, कुएँ, तालाब, नदियाँ सब ही सुन्दर थे, इन्हे कौन वर्णन कर सकता था । बहुत-से शुभसूचक चिह्न जैसे वदनवारे, ध्वजा, पताका घरो घर शोभा दे रहे थे और स्त्री-पुरुष सब ही सुन्दर और चतुर थे कि जिनकी शोभा देखकर मुनियो के मन मे भी मोह उत्पन्न होता था ।

दोहा—जगदम्बा जहँ अवतरी, सो पुर वरणि कि जाय[1] ।
ऋद्धि सिद्धि सपति सकल, नित नूतन अधिकाय ।।९४।।

अर्थ—जिस ग्राम मे स्वयम् जगतमाता ने अवतार लिया, क्या उसका वर्णन किया जा सकता है (अर्थात् नही) । वहाँ ऋद्धि-सिद्धि और सम्पूर्ण विभव नित नया बढता था ।

नगर निकट बरात जब आई । पुर खरभर शोभा अधिकाई ।।
करि बनाव सजि वाहन नाना । चले लेन सादर अगवाना ।।

अर्थ—गाँव के समीप बरात आ गई, यह खबर सुनते ही गाँव में खलबली पड गई कि जिससे गाँव की शोभा और भी बढ गई । सवारियाँ तैयार करके पूरे ठाट-बाट से अगवानी लोग आदरपूर्वक बरात को लेने चले ।

हिय हरषे सुरसेन निहारी । हरिहि देखि अति भये सुखारी ।।

---

१. जगदम्बा जहँ अवतरी, सो पुर बरणि कि जाय—कालिदास-कृत कुमार सभव के पहले ही सर्ग के आरम्भ मे हिमालय पर्वत के वर्णन के अनुमार—हिमालय पर्वत हिन्दुस्तान के उत्तर मे पूर्वी समुद्र से लेकर पश्चिमी समुद्र तक बडे विस्तार से फैला हुआ है । वह मेघ-मडल से बहुत ऊँचा है सो यो कि वर्षा ऋतु मे सिद्ध और तपस्वीगण नीचे की गुफाओ को जोडकर ऊपर की गुफाओ मे चले जाते हैं जहाँ मेघमडल का गम ही नहीं, इसी कारण उसे पर्वताधिराज की पदवी दी गई है और वह यथार्थ भी है क्योकि श्रीकृष्णजी ने गीता मे कहा है कि सब पर्वतो मे मुझे 'हिमालय' समझो । उसमे चँवर सरीखी पूँछ वाले हरिण बहुत है सो वे मानो चँवर डुलाते हुए पर्वताधिराज इस पदवी को सार्थक करते है क्योंकि राजाओ का एक चिह्न चँवर भी है । उसमे ऐसी भारी गुफाएँ हैं कि जिनका अधकार दिन को भी नही मिटता । वहाँ अनेक बाँस, साखू, देवदारु आदि वृक्षो के जगल है । हाथी जिनके मस्तक मे मोती रहते है और बडे-बडे सिंह आदि का वह निवास-स्थान है । उसमे यज्ञ योग्य समिधा और वनस्पतियाँ भी है, इसी हेतु उसे यज्ञ भाग भी दिया जाता है । वहाँ पर किन्नर, गधर्व आदि स्वर्गीय गवैयो का निवास है । उसमे शीत, उष्ण तथा सम-शीतोष्ण सभी प्रकार के देशो की आबहवा, जीवधारी और वृक्ष आदि है । इसके अधिष्ठाता देवता ने मैना नाम की पत्नी से विवाह किया था जिनसे मैनाक नाम का पुत्र और पार्वती नाम की कन्या ये दो सन्तान हुए थे । निदान हिमालय पर्वत के बारे मे इतना ही लिखना बस है कि—

[illegible] नैहर केहि विधि कहहु बखानिय ।
जनु ऋतुराज मनोज राज रजधानिय ।।

शिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले वाहन सब भागे ॥

अर्थ—वे देवताओ का समाज देखकर मन मे प्रसन्न हुए और विष्णु को देखकर बहुत ही खुशी हुएँ। परन्तु जब महादेवजी के गणसमूह को देखने लगे तब सवारियाँ भाग खडी हुईं और समाज तितर-बितर हो गया।

धरि धीरज तहँ रहे सयाने। बालक सब लै जीव पराने ॥
गये भवन पूछहि पितु माता। कहहि वचन भय कंपित गाता ॥

अर्थ—वहाँ वृद्ध पुरुष धैर्य धारण किये ठहरे रहे परन्तु सब बालक प्राण लेकर भाग गये। जब वे घर पहुँचे और उनके माता-पिता (बरात का हाल) पूछने लगे तो वे डरते हुए काँपते-काँपते कहते थे।

कहिय कहा कहि जाय न बाता। यम कर धार किधौ बरियाता ॥
वर बौराह वरद असवारा। व्याल कपाल विभूषण छारा[1] ॥

अर्थ—क्या कहे कुछ कहा नही जाता, बरात है कि यम की सवारी है, दूलह तो बावला है, बैल पर सवार है, सर्प लपेटे हुए मुडन की माला पहिने, अग मे राख लगाये है।

छन्द—तनु छार व्याल कपाल भूषण नगन जटिल भयंकरा।
सँग भूत प्रेत पिशाच योगिनि विकट मुख रजनीचरा ॥
जो जियत रहहि बरात देखत पुण्य बड़ तिन कर सही।
देखिहि सो उमा विवाह घर घर बात अस लरिकन कही ॥

अर्थ—लडको ने अपने-अपने घर मे ऐसी बातें कही कि (दूलह के) शरीर मे राख लिपटी है, सर्पो के भूषण और खोपडियाँ धारण किये हुए स्वय नगा है, जटाधारी और बडा भयकर है। उसके सग मे भूत, प्रेत, पिशाच, योगिनी और विकराल मुँह वाले राक्षस है। (इसलिए) बरात देखकर जो जीता रहेगा, उसका बडा पुण्य समझना चाहिए और वही पार्वती का विवाह देख सकेगा।

दोहा—समझि महेश समाज सब, जननि जनक मुसकाहि।
बाल बुझाये विविध विधि, निडर होहु डर नाहि ॥९५॥

अर्थ—महादेवजी के गणो के समूह को समझ करके माता-पिता मुसकराने लगे। उन्होने कई प्रकार से बालको को समझाया और कहा कि भयभीत न हो, कोई डर नही है।

लै अगवान बरातहि आये। दिये सबहि जनवास सुहाये ॥
मैना शुभ आरती सँवारी। संग सुमंगल गावहि नारी ॥

अर्थ—अगवानी लोग बरात वालो को लिवा लाये और सब लोगो को मनोहर स्थानो मे ठहरा दिया। मैना रानी ने शुभ आरती सँजोई, उनके साथ मे स्त्रियाँ मगलगीत गाने लगी।

---

१ वर बौराह वरद असवारा। व्याल कपाल विभूषण छारा—
बालको के इन वचनो को कविवर भिखारीदासजी यो पुष्ट करते है—

क० आक औ कनकपात तुम जो चबात हौ तो षट रस व्यजन न केहू भाँति लटिगो।
भूषण वसन कीन्हो व्याल गज खाल को तौ साल सुबरन को न पैन्हिबे उलटिगो ॥
'दास' के दयाल हौ सुरीति ही उचित तुम्हे लीन्ही जो कुरीति तौ तिहारी ठाठ ठटिगो।
ह्वै के जगदीश कीन्हा वाहन वृषभ को तौ कहा शिव साहब गयवनि को घटिगो ॥

कंचन थार सोह वर पानी । परछनि चली हरहिं हरषानी ।।
विकट वेष रुद्रहि जब देखा । अबलन्ह उर भय भयउ बिसेखा ।।

अर्थ—उनके सुडौल हाथो मे सुवर्ण का थाल शोभा दे रहा था। वे आनन्दपूर्वक शिवजी की आरती करने को चली। जब उन्होने शकर के भयकर रूप को देखा तब तो स्त्रियो के हृदय मे भारी भय उत्पन्न हुआ।

भागि भवन पैठी अति त्रासा । गये महेश जहाँ जनवासा ।।
मैना हृदय भयउ दुख भारी । लीन्ही बोलि गिरीश कुमारी ।।

अर्थ—भारी भय से भागकर भामिनी भवनो मे जा बैठी और महादेवजी जनवासे को चले गये। मैनाजी के हृदय मे बडा दु ख हुआ, उन्होने पार्वती को बुला लिया।

अधिक सनेह गोद बैठारी । श्याम सरोज नयन भरि वारी ।।
जेहि विधि तुमहि रूप अस दीन्हा । तेहि जडवर बावर कस कीन्हा ।।

अर्थ—बडे प्यार से उसे अपनी गोदी मे बिठलाया और श्यामले कमल के ममान नेत्रो मे आँसू भरके कहने लगी—जिस विधाता ने तुम्हे ऐसा (सुन्दर) रूप दिया है, उस बुद्धिहीन ने दूलह को पागल काहे को बनाया।

छंद—कस कीन्ह वर बौराह विधि जेहि तुमहि सुन्दरता दई[१] ।
जो फल चहिय सुरतरुहि सो वर वश वबूरहि लागई ।।
तुम सहित गरि ते गिरौ पावऊ जरौ जलनिधि महँ परौ ।
घर जाउ अपयश होइ जग जीवत विवाह न हौ करौ ।।

अर्थ—जिसने तुम्हे सुन्दर रूप दिया उसी ब्रह्मा ने तुम्हारे वर को काहे को पागल बनाया। जो फल कल्पवृक्ष मे लगने चाहिए था सो बराजोरी बबूल मे लगा चाहता है (अर्थात् मेरी रूपवती कन्या का विवाह किसी स्वरूपवान वर के साथ होना चाहिए था सो जान-बूझकर बावरे वर से हुआ जाता है)। तुम्हे लेकर चाहे पर्वत से गिर पडूँ, अग्नि मे जल मरूँ, समुद्र मे डूब मरूँ। चाहे घर छूट जाय, चाहे ससार मे अपकीर्ति हो, परन्तु जीते जी मै तो विवाह न करने दूँगी।

दोहा—भई विकल अबला सकल, दुखित देखि गिरिनारि ।
करि विलाप रोदति वदति, सुता सनेह सँभारि ।।९६।।

अर्थ – मैनाजी को दुखित देखकर सब स्त्रियाँ व्याकुल हो गईं। रानीजी पुत्री के प्रेम को विचार कर रो-रोकर कहती थी कि—

नारद कर मैं कहा बिगारा[२] । भवन मोर जिन बसत उजारा ।।
अस उपदेश उमहिं जिन दीन्हा । बौरे वरहि लागि तप कीन्हा ।।

---

१. कस कीन्ह वर बौराह विधि जेहि तुमहिं सुन्दरता दई—
क० : हीरा सो विष्णुजी को तिलक महा शभुजी को नयन विश्वरूप को जगत जोत न्यारी है।
अमृत को फल सब देवतन को बल जाकी अति ही अमल जग शोभा जग प्यारी है।।
अक्षर 'अनन्य' जाकी शीलमय मूरति सूरत सतोगुण की सार अधिकारी है।
ऐसे चन्द्रमा के माथे थापिये कलक काको ताते दैवशक्तिहू की देवीगति न्यारी है।।
२ नारद कर मैं कहा बिगारा—पार्वती मगल से— →

अर्थ—मैने नारद का क्या बिगाडा था जिसने मेरे बने-बनाये घर को उजाड दिया। उसने पार्वती को ऐसा उपदेश किया कि उसने पागल पति के हेतु तपस्या की।

साँचेउ उनके मोह न माया। उदासीन धन धाम न जाया॥
परघर घालक लाज न भीरा। बाँझ कि जान प्रसव की पीरा[1]॥

अर्थ—यथार्थ मे न तो उनको ममता है, न दया है, उन्हे जैसे बैरी तैसे मित्र है, न धन है, न घर-द्वार और न स्त्री। वे तो दूसरे के घर बिगाडू है, जिन्हे न लाज है, न डर। भला बाँझ स्त्री बच्चे होने के कष्ट को क्या जाने।

जननिहिं विकल विलोकि भवानी। बोली युतविवेक मृदुबानी॥
अस बिचारि सोचहु जनि माता। सो न टरै जो रचेउ विधाता[2]॥

अर्थ—माता को व्याकुल देख पार्वती ज्ञान से भरे हुए मधुर वचन बोली—हे माता! "जो ब्रह्मा ने रच दिया है वह कभी मिटने का नही, ऐसा विचार कर सोच मत करो।

कर्म लिखा जो बाउर नाहू। तौ कत दोष लगाइय काहू॥
तुम सन मिटहिं कि विधि के अङ्का। मातु व्यर्थ जनि लेहु कलंका[3]॥

अर्थ—जो भाग्य मे बावला वर बदा होगा तो दूसरे को दोष क्यो लगावे? क्या तुमसे विधाता के अंक मिट सकते है? हे माताजी! वृथा अपने ऊपर कलंक मत लेओ।

छन्द—जनि लेहु मात कलंक करुणा परिहरहु अवसर नहीं।
दुख सुख जो लिखा लिलार हमरे जाव जहँ पाउब तहीं॥
सुनि उमावचन विनीत कोमल सकल अबला सोचहीं।
बहु भाँति विधिहि लगाय दूषण नयन वारि विमोचहीं॥

छन्द—घर घाल चालक कलह प्रिय कहियत परम परमारथी।
तैसी बरेखी कीन्हि पुनि-पुनि सात स्वारथ सारथी॥
उरलाइ उमहिं अनेक विधि जलपति जननि दुख मानई।
हिमवान कहेउ इशान महिमा अगम निगम न जानई॥

१. बाझ कि जान प्रसव की पीरा—जैसा कहा है—

श्लोक—विद्वानेव हि जानाति विद्वज्जन परिश्रमम्।
नहि बन्ध्या विजानाति गुर्वी प्रसववेदनाम्॥

अर्थात् विद्वान् के परिश्रम को विद्वान् ही जानता है। सन्तान उत्पन्न होने की पीडा को बाँझ स्त्री नही जानती।

२ सो न टरै जो रचेउ विधाता—

सवैया—नाटक चेटक वेद पुराण चतुर्मुख के ढिग जाय पढैगो।
उद्यम के चहुँ चक्र चलै तब कचन के घर जाय बसैगो॥
होइ वही जो, लिलार लिखी तेहि मे तिल एक घटै न बढैगो।
जो तुलसी विधिना न लिखी पुनि क्या कोइ कर्महिं फेर गढैगो॥

३ तुम सन मिटहिं कि विधि के अका। मातु व्यर्थ जनि लेहु कलका—

सवैया—जो हमको वर दीन्ह दयो विधि बावरो स्यानो जु है सोइ नीको।
साथि नही सुख औ दुख को कोई भोगि है जा पै परै चाहै झीको॥
लेहु विचारि विवाह समै अब क्लेश करौ सु लगै अति फीको।
नाहिं मिटै तुम सो विधि अक जु लेहु न मातु कलक को टीको॥

अर्थ—हे माताजी ! तुम अपने ऊपर कलंक मत लो, दुःख दूर करो, उसका समय नही है। जो हमारे भाग्य मे दु ख अथवा सुख लिखा है वह हम जहाँ जाएगी वही पावेंगी।" पार्वती के नम्र कोमल वचनो को सुन सम्पूर्ण स्त्रियाँ चिन्ता करने लगी और नाना भाँति से ब्रह्मा को दोष लगाकर आँखो से आँसू बहाने लगी।

दोहा- तेहि अवसर नारद सहित, अरु ऋषि सप्त समेत।
समाचार सुनि तुहिन गिरि, गवने तुरत निकेत ॥९७॥

अन्वय—तेहि अवसर समाचार सुनि तुहिन गिरि नारद सहित अरु सप्त ऋषि समेत तुरन्त निकेत गवने।

अर्थ—उस समय इस समाचार को सुन हिमाचल नारद को साथ ले सप्त ऋषियो समेत झट-पट महलो मे सिधारे।

तब नारद सबही समझावा। पूरब कथा प्रसंग सुनावा ॥
मैना सत्य सुनहु मम बानी। जगदंबा तव सुता भवानी ॥

अर्थ—तब नारदजी ने सबको समझाया और पहले की सब कथा का हाल कह सुनाया (और कहने लगे) हे मैना रानी ! मेरी सच्ची बानी सुनो, तुम्हारी पुत्री भवानी जगत की माता है।

अजा अनादि शक्ति अविनाशिनि। सदा शभु अरधंग निवासिनि[१] ॥
जगसंभव पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीला वपुधारिनि ॥

अर्थ--(ये) जन्म रहित, आदि रहित, शक्तिरूप तथा नाश रहित है और सदा-सदा शिवजी के आधे शरीर ही मे रहने वाली है। ससार की उत्पत्ति, पालन और नाश करने वाली हैं तथा अपनी ही इच्छा से लीला करने के हेतु शरीर धारण करने वाली हैं।

जनमी प्रथम दक्षगृह जाई। नाम सती सुन्दर तनु पाई ॥
तहउँ सती शंकरहि विवाही। कथा प्रसिद्ध सकल जग माही ॥

अर्थ—पहले इन्होने दक्ष प्रजापति के यहाँ जन्म लिया था। वहाँ ये रूपवती होकर सती के नाम से प्रसिद्ध हुईं। वहाँ भी सती का विवाह शिवजी से हुआ, सो कथा सब ससार मे प्रसिद्ध ही है।

एक बार आवत शिव संगा। देखेउ रघुपति कमलपतंगा ॥
भयउ मोह शिव कहा न कीन्हा। भ्रमवश वेष सीय कर लीन्हा ॥

अर्थ—एक समय शिवजी के साथ आ रही थी कि उन्होने कमलरूपी रघुकुल के सूर्य के समान श्रीराम को देखा। (सीता के विरह मे व्याकुल जान) सशय मे पड शिवजी का कहा न माना और सन्देह के कारण सीता का रूप धारण कर लिया।

---

१. सदा शम्भु अरधग निवासिनि—

छप्पय—गग सीस पै धरै अग अरधंग भवानी।
वाहन वृष मख रेख-रेख भैरव अगवानी ॥
सिध चौरासी खरे सोइ सब सीस नवावै।
चौंसठि योगिनि खरी भूत ताथेइ मचावै ॥
'गगराम' कछु शिवा शिव सकल सभा आनंद हिये।
सरबगी को ध्यान धरु अरधगी आसन किये ॥

छंद—सिय वेष सती जो कीन्ह तेहि अपराध शंकर परिहरी ।
हरविरह जाइ बहोरि पितु के यज्ञ योगानल जरी ।।
अब जनमि तुम्हरे भवन निजपति लागि दारुण तप किया ।
अस जानि संशय तजहु गिरिजा सर्वदा शंकरप्रिया ।।

अर्थ—सती ने जो सीता का स्वरूप धारण किया था उसी अपराध से शंकरजी ने उनका त्याग किया । फिर शिवजी से बिछोह के कारण उन्होने जाकर पिता के यज्ञ के समय योगाग्नि से अपने शरीर को जला दिया । अब तुम्हारे यहाँ जन्म लेकर उन्होने अपने पति के लिए बडी तपस्या की । ऐसा समझ सब सदेह दूर करो, पार्वती सदैव सदा शिवजी की अर्द्धांगिनी रही हैं ।

दोहा—सुनि नारद के वचन तब, सब कर मिटा विषाद ।
क्षण महँ व्यापेउ सकल पुर, घर घर यह संवाद ।।९८।।

अर्थ—तब नारद के वचन सुन सबका दु ख दूर हुआ और यह चर्चा पल-भर मे नगर के प्रत्येक घर मे फैल गई ।

तब मैना हिमबंत अनदे । पुनि पुनि पारबती पद वंदे ।।
नारि पुरुष शिशु युवा सयाने । नगर लोग सब अति हरषाने ।।

अर्थ—तब तो मैना और हिमाचल बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होने बारबार पार्वती के चरणो की वदना की । स्त्री, पुरुष, बालक, जवान और बुड्ढे पुरजन भी बहुत सुखी हुए ।

लगे होन पुर मंगल गाना । सजे सबहि हाटकघट नाना ।।
भाँति अनेक भई जेवनारा । सूपशास्त्र जस कछु व्यवहारा ।।

अर्थ—नगर मे मगल-गीत होने लगे, सब लोगो ने नाना प्रकार के सोने के घट तैयार किये । भाँति-भाँति के भोजन बनाये गये जो व्यजनप्रकाश शास्त्र के अनुसार सिद्ध किये गये थे ।

सो जेवनार कि जाइ बखानी । बसहि भवन जेहि मातु भवानी ।।
सादर बोले सकल बराती । विष्णु विरंचि देव सब जाती ।।

अर्थ—क्या उस रसोई का वर्णन हो सकता है ? जिस घर मे जगदम्बा भवानीजी का निवास था (अर्थात् रसोई सदैव माता के हाथ की सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है सो यहाँ पर जगत की माता जब रसोईघर मे स्वत विद्यमान थी तो वे पकवान सब लोगो को रुचिकर क्यो न हो) । उन्होने विष्णु, ब्रह्मदेव तथा दूसरे बराती देवगणो को भी आदरपूर्वक बुलवा लिया ।

विविध भाँति बैठी जेवनारा । लगे परोसन निपुण सुआरा[1] ।।
नारिवृन्द सुर जेवत जानी । लगी देन गारी मृदुबानी ।।

---

१. विविध भाँति बैठी जेवनारा । लगे परोसन निपुण सुआरा ।।

सवैया—जन के समबोधन को निकसे तहँ रेशम आय धरे अँगना ।
पुनि धोइ सरोजन सो परसे तहँ दूबरि आइ धरे जुगना ।।
तरश्यामलि भाँति अनेक परी छवितात तिया निकसो नव ना ।
मख अग के सग सभी जुटगै यह नीक सँयोग रचो विधना ।।

शब्द । पर्यायी शब्द ।
जन "समबोधन"— भोजन अर्थात् भोजनो को चले । →

अर्थ - अनेक पक्ति बाधकर लोग बिठलाये गये, तब चतुर रसोइया परोसने लगे। स्त्रियो ने देवताओ को भोजन करते देख मधुर स्वर से गालियाँ गाना आरभ किया।

छन्द—गारी मधुरस्वर देहि सुन्दरि व्यग वचन सुनावही।
भोजन करहि सुर अति विलब विनोद सुनि सचुपावही[1] ॥
जेंवत जो बढ्यौ अनंद सो मुख कोटिहू न परइ कह्यौ।
अँचवाइ दीन्हे पान गवने वास जहँ जाको रह्यौ ॥

अर्थ—रूपवती स्त्रियाँ मधुर ध्वनि से गालियाँ गा रही थी और व्यग्य-भरे वचन सुनाती थी। देवता बहुत कुछ विलम्ब करते हुए भोजन करते थे और चुपचाप प्रेम-भरे शब्दो को सुनते थे। भोजन करते समय जो कुछ आनद बढा सो करोडो मुख से कहा नही जा सकता। सबको अँचवाय जब पान दिये तब सब के सब अपने-अपने डेरा गये।

दोहा—बहुरि मुनिन हिमवंत कहँ, लगन जनाई आय।
समय बिलोकि विवाह कर, पठये देव बुलाय ॥९९॥

'रेशम'	—	पाट अर्थात् यहाँ आँगन मे पीढा बिछाये।
'सरोजन'	—	कमल अर्थात् कमलरूपी हाथो से।
'दूबरि'	—	पतरी } अर्थात् पत्तल और दोना ला रक्खे।
'जुग' ना	—	दोना }
तर 'श्यामलि'	—	तरकारी अर्थात् भाँति-भाँति की तरकारी परोसी गई।
'छवि' 'तात'	—	छबि के लिए 'माँ' जिसके अन्त मे 'त'=मात।
तिया	—	दार }
निकसी	—	कढी } अर्थात् भात, दाल, कढी और नमक।
'नव' ना	-	नौन }
मखअग	—	घी अर्थात् दाल-भात मे घी मिलाकर भोजन करते जाते थे और कहते थे कि विधाता ने यह सयोग अच्छा बनाया।

१. भोजन करहिं सुर अति विलम्ब 'आदि—ज्ञान भक्ति प्रकाश से सकलित—

पनवारे दोना जब साजे, सो सोंने सीक लगाये जू।
रूपे गडवा कनक कटोरा, सो गगा जल भर ल्याये जू ॥
चतुर सुआर खडे भे जब ही, सो बरन बरन लिए व्यजन जू।
तरकारी जब परसन लागे, सो तुरई तरेरी सेमी जू ॥
परबर और चचेडी लौकी, सो केरा कदहि नेमी जू।
भिंडी ककडी और रतालू, सो आलू वरन फिराये जू ॥
कुँदरू और करेला केला, सो मेथी अरुई मिलाये जू।
पुरी सुहारी कोरि मैदा की, सो मालपुआ जुग जोरी जू ॥
पापर और बिजोरे छजला, सो घृत मे सेंक निकारे जू।
लपसी सीरा सरस बनाये सो मोहन भोग मलाई जू ॥
फेनी सरस जलेबी परसी सो खोवा खाँड मिलाये जू।
साहब साई पेडा बरफी, सो बूरो छानहिं ल्याये जू ॥
मोतीचूर मगद के लाडू, सो जामु गुलाब निहारे जू।
शक्कर पाग चिरौंजी दाने सो बावर बुदी सिंघारे जू ॥
चटनी चारु बरन बहु व्यजन सो कचन थार सजाये जू ॥

अर्थ—फिर सप्त ऋषियो ने हिमालय से आकर विवाह का समय सूचित किया और उन्होने विवाह का मुहूर्त्त जान सब देवगणो को बुलवा भेजा ।

बोलि सकल सुर सादर कीन्हे । सबहि यथोचित आसन दीन्हें ।।
वेदी वेद विधान सँवारी । सुभग सुमगल गावहि नारी[1] ।।

अर्थ—सम्पूर्ण देवताओ को आदर सहित बुलवा लिया और सबको यथा योग्य आसन पर बैठाया । वेद की रीति के अनुसार वेदिका बनाई गई और सौभाग्यवती स्त्रियाँ मगल गीत गाने लगी ।

सिहासन अति दिव्य सुहावा । जाइ न बरनि विरंचि बनावा ।।
बैठे शिव विप्रन शिरनाई । हृदय सुमिरि निज प्रभु रघुराई[2] ।।

अर्थ—एक उत्तम सिहासन जिसका वर्णन नही किया जा सकता क्योकि उसे ब्रह्मा ने बनाया था । महादेवजी अपने श्री रामचन्द्रजी का स्मरण कर और सब मुनिगणो को सीस नवाकर उस पर बैठे ।

बहुरि मुनीशन्ह उमा बुलाई । करि शृगार सखी लै आई ।।
देखत रूप सकल सुर मोहै । बरनै छवि अस जग कवि को है ।।

अर्थ—फिर ऋषियो ने पार्वतीजी को बुलाया, जिन्हे सखियाँ अच्छे वस्त्र-आभूषण पहिना कर ले आईं । उनका सुन्दर रूप देख सब देवता भी मुग्ध हो जाते हैं, ससार मे कौन कवि है जो ऐसे रूप का वर्णन कर सके ? (अर्थात् कोई नही) ।

जगदम्बिका जानि भववामा । सुरन्ह मनहि मन कीन्ह प्रनामा ।।
सुन्दरता मरजाद भवानी । जाइ न कोटिन वदन बखानी ।।

अर्थ—शिवजी की वामागी (पार्वतीजी) को जगत की माता जानकर देवताओ ने अपने-अपने मन मे उनको प्रणाम किया । भवानीजी तो सुन्दर रूप की मानो हद्द ही थी, उनका वर्णन करोडो मुँह से भी नही हो सकता ।

छन्द—कोटिहु वदन नहि बनै बरनत जगजननि शोभा महाँ ।
सकुचहि कहत श्रुति शेष शारद मदमति तुलसी कहाँ ।।

---

१ सुभग सुमगल गावहि नारी—

होली—शिव के शरणागत रहिहौ ।।

मोद मृदग तँबूरा तन को श्वास सितार बजैहौ ।
गइहौ नाम शिवा शिव को नित सुरति की मुरति बनैहौ ।।
तुरत त्रिकुटी पै बसैहौं ।। १ ।।
हृदय उमग रग केशर को आशा अतर लगैहौ ।
अबिर गुलाल सनेह शील को उनही पै बरसैहौ ।।
और नहि कहुँ चलि जैहौ ।। २ ।।
शिवपद मे अनुराग फाग मे निजमति ताहि नचैहौ ।
रँग भीने पग निरखि पिया के मनमधुकर को लगैहौ ।।
उतरि भवसागर जैहौं ।। ३ ।।
'देबि सहाय' योग जप के फल सिवहिं समर्पि सिहैहौ ।
पाप जराय कीच कारी करि हरि विमुखन के लगैहौ ।।
दास शकर को कहै हौ ।। ४ ।।

→

छविखानि मातु भवानि गवनी मध्य मंडप शिव जहाँ।
अवलोकि सकै न सकुचि पतिपदकमल मनमधुकर तहाँ ॥

अर्थ - जगत माता की उत्तम सुन्दरता करोडो मुँह मे भी वर्णन नही हो सकती। उसके वर्णन करने मे वेद, शेषनाग और शारदा भी सकोच करते है। फिर मूर्ख मति तुलसीदास की कौन गिनती है। मण्डप के बीच जहाँ शिवजी थे, वही पर रूपवती माता भवानी गईं। वे अपने पति के कमलस्वरूपी चरणो को जहाँ पर उनका भौरारूपी मन लगा था, लज्जा के कारण देख नही सकती थी।

दोहा—मुनि अनुशासन गणपतिहि, पूजेउ शम्भु भवानि[१]।
कोउ सुनि सशय करै जनि, सुर अनादि जिय जानि ॥१००॥

---

२. हृदय सुमिरि निज प्रभु रघुराई—
शिवजी श्री रामचन्द्रजी की मानसिक पूजा कर उन्हे अपने हृदय मे धारण करके बैठे—
क०—आतमा को आसन सिंहासन शरीर कर प्रेम भाव जल सो सनान अभिलाषिये।
चित को चदन शुभ चाव को सुगन्ध फूल ध्यान के वसन मे सजाय कर राखिये ॥
भूषण भगति भाय आरती सुशील शख शम दम बाल भोग पाछे आप चाखिये।
पारब्रह्म पूरण की पूजा कर श्रद्धा सो त्राहि त्राहि दीनानाथ हाथ जोड भाषिये ॥

१ मुनि अनुशासन गणपतिहि, पूजेउ शम्भु भवानि—आदि—यहाँ पर हिन्दू धर्म के गूढ रहस्य के कुछ दिग्दर्शन करने की आवश्यकता है क्योकि—भक्तजन अपनी-अपनी रुचि के अनुसार विशेष गुण सम्पन्न देवता को इष्ट मानकर उसका पूजन सर्वोपरि बतलाते है, परन्तु यथार्थ मे ये सब उसी परब्रह्म परमात्मा के उपासक है। तुलसीदासजी ने तो सर्वरूप रूपी, सर्वशरीर शरीरी, सर्वनाम नामी राम ही को जानकर समस्त नामो से राम ही को वन्दन किया है—जैसा लिखा है—"सीय राम मय सब जग जानी। करौ प्रणाम जोरि युग पानी ॥" क्योकि इन्होने राम ही को परमात्मारूप सिद्ध किया है। यथा—"राम सो परमातमा भवानी"। इसका थोडा-सा समाधान रामायण के पहले ही श्लोक और पहले सोरठे की टीका और टिप्पणी मे करने का प्रयत्न किया है। श्री गणेशजी की प्रथम वन्दना तथा उनका प्रथम पूजन इस आधुनिक प्रथा को गोस्वामीजी ने कितनी उत्तम रीति से निर्वाहा है कि ग्रन्थ के आदि मे वन्दना भी की तथा उन्हे राममय और राम ही के कारण पूज्यपाद पाये हुए कह गये और सबसे बढकर श्री महादेवजी और पार्वतीजी (जिनके कि ये सन्तान पुराणो मे कहे गये है), उन्ही के विवाह मे उनका पूजन करवाकर उन्हे अनादि कहकर यही दर्शाया है कि ये भी परमात्मा रूप पूजनीय है।
पुराणो मे दो पीठ प्रसिद्ध है— एक विष्णुपीठ जिसमे विष्वक्सेन प्रथम पूज्य है और दूसरा रुद्रपीठ जिसमे गणेश प्रथम पूज्य है। बौद्ध, जैन, चार्वाक आदि पाखड धर्म के बढने पर श्री शकरजी ने शकराचार्य रूप से अवतार लेकर समस्त पाखडियो को परास्त किया और वैदिक धर्म स्थापन किया। सम्पूर्ण पडित इन्ही के अनुयायी हो गये और तभी से बहुधा लोगो की रुचि विष्णुपीठ की अपेक्षा रुद्रपीठ पर हुई। तभी से समस्त मगलकार्यों में गणेशजी का प्रथम पूजन होने लगा। प्राचीन ग्रन्थो मे ऐसा नही किया गया है।
स्मरण रहे कि शकरजी के उपासक लोग कभी-कभी विष्णुजी की विशेष निंदा करने लगे। उसे दबाने के लिए तुलसीदासजी ने अपनी रामायण मे विष्णु और शिव की भक्ति का परस्पर मेल बडी उत्तमता से कर दिया है। तभी तो इन सम्पूर्ण बातो की चतुराई के कारण इनका गन्थ परमपूज्य माना जा रहा है। परब्रह्मरूप गणेशजी का पूजन साक्षात्→

अर्थ—मुनिजी की आज्ञा से महादेव व पार्वती ने गणपतिजी का पूजन किया। इस बात को सुनकर किसी को सन्देह न करना चाहिये, क्योकि देवता अनादि हैं, यह जी मे जान रक्खो।

जस विवाह की विधि श्रुति गाई। महा मुनिन सो सब करवाई॥
गहि गिरीश कुश कन्या पानी। भवहि समर्पी जानि भवानी[१]॥

अर्थ—वेद मे जिस प्रकार से विवाह की पद्धति कही है, श्रेष्ठ मुनियो ने वही सब रीति करवाई। फिर हिमाचल ने कन्या का हाथ और कुशा अपने हाथ मे ले उसे भवानी (अर्थात् शिव जी की स्त्री) समझ शिव जी को सौप दी।

पाणिग्रहण जब कीन्ह महेशा। हिय हरषे तब सकल सुरेशा॥
वेदमंत्र मुनिवर उच्चरही। जय जय जय शंकर सुर करही॥

अर्थ—जब महादेवजी ने पार्वती का पाणिग्रहण किया (अर्थात् उनके हाथ को अपने हाथ मे पकडा) तब सम्पूर्ण देवता हृदय मे प्रसन्न हुए। मुनि श्रेष्ठ तो वेदमत्र पढ रहे थे और देवता कह रहे थे, हे शकर जी ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो।

बाजहि बाजन विविध विधाना। सुमन वृष्टि नभ भइ विधि नाना॥
हर गिरिजा कर भयउ विवाहू। सकल भवन भर रहा उछाहू॥

अर्थ—नाना प्रकार के बाजे बजने लगे और आकाश से भी भाँति-भाँति के फूलो की वर्षा हुई। महादेव-पार्वती जी का विवाह हुआ और सम्पूर्ण लोको मे आनन्द भर गया।

दासी दास तुरग रथ नागा। धेनु वसन मणि वस्तु विभागा॥
अन्न कनक भाजन भरियाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना॥

अर्थ—सेवकनी और सेवक, घोडे, रथ और हाथी, गाये, वस्त्र, रत्न और भाँति-भाँति के पदार्थ, अन्न तथा सोने के बर्तन गाडियो मे भर-भरकर इतना दाइजा दिया कि उसका वर्णन नही हो सकता।

शिवजी तथा सम्पूर्ण देवगण करते है, उसकी पुष्टि मे यह भजन विष्णुपदी रामायण से उद्‌धृत किया जाता है—

(प्रभाती)

वन्दौ श्री सिधि गणेश कर्ता मगल सुवेश, हर्ता असगुन कलेश गुरु फणेश गावै॥टेक॥
ब्रह्मा हरि हर सुरेश अनिल अनल शशि दिनेश वरुण काल यम धनेश जेहि हमेश ध्यावै॥
नाद ब्रह्म वपु अनादि अखिल भुवन पूज्य आदि द्रुहिण सुवन नारिदादि निन समाधि लावै॥
सुमिरत भय विघननाश करत पूज सकल त्रास प्रणमत बलदेव दास अभिमत फल पावै॥

१. गहि गिरीश कुश कन्या पानी। भवहि समर्पी जानि भवानी—

बरवै—बर दुलहिनहि विलोकि सकल मन रहसहिं।
साखोच्चार समय सब सुर मुनि विहँसहिं॥
लोकवेद विधि कीन्ह लीन्ह जल कुश कर।
कन्यादान सकल्प कीन्ह धरणीधर॥
पूजे कुल गुरुदेव कलश शिल शुभ घरी।
लावा होम विधान बहुरि भाँवरि परी॥
वन्दन वन्दि ग्रन्थि विधि करि ध्रुव देखेउ।
भा विवाह सब कहहिं जनम फल पेखेउ॥

छन्द—दाइज दियो बहुभांति[१] पुनि कर जोरि हिम भूधर कह्यो ।
का देउँ पूरनकाम शकर चरनपकज गहि रह्यो ।।
शिव कृपासागर ससुर कर सतोष सब भतिहि कियो ।
पुनि गहे पदपाथोज मैना प्रेमपरिपूरन हियो ।।

अर्थ—नाना प्रकार का दाइजा दिया और फिर हाथ जोड कर हिमाचल बोले—हे शिव जी ! मैं तुम्हे क्या दे सकता हूँ ? तुम तो पूर्ण काम हो, इतना कह उनके कमल स्वरूपी चरणो को पकड कर रह गये । दयासागर शिवजी ने अपने ससुर का सब प्रकार से समाधान किया । फिर प्रेम पूर्ण हृदय से मैना रानी ने भी कमल स्वरूपी चरणो को पकडा ।

दोहा—नाथ उमा मम प्राण सम, गृहकिकिरी करेहु ।
क्षमहु सकल अपराध अब[२], होइ प्रसन्न वर देहु ।। १०१ ।।

अर्थ—हे प्रभु ! पार्वती मुझे प्राणो से प्यारी है, उसे अपने घर की टहलनी बनाइये। अब उसके सम्पूर्ण अपराध क्षमा कीजिये, प्रसन्न होकर यही वरदान दीजिये ।

बहु विधि शभु सास समझाई[३] । गवनी भवन चरण सिर नाई ।।
जननी उमा बोलि तब लीन्ही । लेइ उछग सुदर सिख दीन्ही ।।

---

१. दाइज दियो बहुभाँति—

छन्द—दाइज वसन मणि धेनु धन हय गय सुसेवक सेवकी ।
दीन्ही मुदित गिरिराज जे गिरिजहि पियारी पेवकी ।।
पेखेउ जनम फल भा विवाह उछाह उमगहिं दश दिशा ।
निशान गान प्रसून झरि 'तुलसी' सुहाविन सो निशा ।।

२. क्षमहु सकल अपराध अब—इन वचनो से एक आशय तो यह निकलता है कि आप मेरे सब अपराध क्षमा कीजिये जो मैने आपको बिना जाने अद्भुत बनाव देख अमगलरूप समझ बरात आने के समय आपकी आरती न उतार घर मे भाग गई थी और दूसरा आशय यह निकलता है कि पार्वती के सब अपराध क्षमा कीजिये जो उसने हठ पकड कर सती रूप मे आप पर विश्वास न कर रामचन्द्रजी की परीक्षा हेतु सीता का रूप धारण कर लिया था, आदि ।

३. बहु विधि शम्भु सास समझाई—शिवजी ने अपनी सास को अपने विचित्र वेश धारण करने का कारण समझाया जो पद्म पुराण मे यो लिखा है—

श्लोक—त्वञ्च रुद्र महाभाग, मोहनार्थं सुरद्विषाम् ।
पाखडाचरण धर्मं, कुरुष्व सुसरत्तम ।।
एव देवहितार्थाय वृत्ति वेद विगर्हिताम् ।
विष्णो राज्ञाम्पुरस्कृत्य कृतमभस्मादि धारणम् ।।
वाह्यचिन्ह मिद देवी, मोहनार्थं सुरद्विषाम् ।
अन्तरे हृदये नित्य ध्यात्वा देव जनार्दनम् ।।

अर्थात् (विष्णुजी बोले कि) हे महाप्रतापी सुरश्रेष्ठ रुद्रजी ! आप राक्षसो को मोहित करने के लिए ऐसे आचरण करते रहिये जो पाखड रूप दीखे । इस प्रकार विष्णुजी की आज्ञा स्वीकार करके देवताओ के हित के लिये वेदो मे निदित कर्म जैसे श्मशानभस्मलेपन आदि वृत्ति धारण कर ली है । हे देवि ! राक्षसो के मोहने के लिए यह मेरे केवल बाहरी चिन्ह मात्र हैं, अन्तःकरण मे तो मैं जनार्दन विष्णुजी का ध्यान करता रहता हूँ ।

अर्थ—महादेवजी ने अनेक प्रकार से अपनी सास का सबोधन किया और वे उनके चरणो मे सीस नवाकर महलो मे चली गईं। माता ने तब पार्वती को बुला लिया और अपनी गोदी मे बिठला कर उत्तम सिखावन दिया—

करेहु सदा शंकरपदपूजा। नारिधर्म पति देव न दूजा[१] ॥
वचन कहत भरि लोचन बारी। बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी ॥

अर्थ—सदैव शिवजी के चरणो की पूजा करती रहना, स्त्री का धर्म दूसरा नही है, पति ही उनका देवता है। नेत्रो मे आँसू भर कर वचन बोली और पुत्री को फिर अपने हृदय से लगा लिया।

कत विधि सृजा नारि जग माही। पराधीन सपनेहु सुख नाही[२] ॥
भइ अति प्रेम विकल महतारी। धीरज कीन्ह कुसमय विचारी ॥

अर्थ—विधाता ने ससार मे स्त्री को क्यो पैदा किया? कारण दूसरे की अधीनता मे सुख सपने मे भी नही। इस प्रकार माता प्रेम से व्याकुल हो उठी परन्तु दु ख का अवसर न जान उन्होने धीरज रक्खा।

पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना। परम प्रेम कछु जाइ न बरना ॥
सब नारिन मिल भेट भवानी। जाइ जननि उर पुनि लपटानी ॥

अर्थ—उनसे बारबार भेट करती थी और उनके चरण पकड कर मिलती थी उस समय का अधिक स्नेह वर्णन नही किया जा सकता। पार्वती जी सब स्त्रियो से मिल भेट कर फिर अपनी माता के हृदय से जा लिपटी।

छद—जननी बहुरि मिली चली उचित असीम सब काहू दई।
फिरि फिरि विलोकति मातुतन सब सखी लै शिव पहँ गई ॥
याचक सकल संतोष शकर उमा सह भवनहि चले।
सब अमर हरषे सुमन बरषि निशान नभ बाजहिं भले ॥

अर्थ—पार्वतीजी फिर भी अपनी माता से मिल कर चली और सब स्त्री-पुरुषो ने यथोचित आशीर्वाद दिये। वे लौट-लौट कर माता की ओर निहारती थी। इस प्रकार सखियाँ उन्हे शिवजी के पास लिवा ले गईं। शिवजी ने सम्पूर्ण याचको को सतुष्ट किया और वे पार्वती के साथ कैलाश की ओर चले। सम्पूर्ण देवता प्रसन्न हुए, फूलो की वर्षा हुई और आकाश मे नगाडे भली भाँति बजने लगे।

---

१ नारिधर्म पति देव न दूजा—

श्लोक—भर्तादेवो गुरुर्भर्ता, धर्मतीर्थव्रतानि च।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेक समर्चयेत् ॥

अर्थात् पति ही देवता है, पति ही गुरु है, वही धर्म, तीर्थ और व्रत के तुल्य है। इससे सबको छोडकर केवल पति ही की सेवा करनी चाहिये।

२ पराधीन सपनेहु सुख नाही—हितोपदेश मे लिखा है कि—

श्लोक—एतावज्जन्मसाफल्य, यादनायत्तवृत्तिता।
ये पराधीनता यातास्ते वै जीवन्तिके मृताः ॥

अर्थात् जन्म का यही फल है कि किसी के अधीन न होना पडे। जो पराधीन है उन्हे यदि जीते हुए माने तो मरे हुए कौन कहावेगे (भाव यह है कि जो पराधीन है वे ही मरे के तुल्य है)।

दोहा— चले सग हिमवत तब, पहुँचावन अति हेतु।
विविध भांति परितोष करि, बिदा कीन्ह वृषकेतु ।। १०२ ।।

अर्थ—तब हिमाचल अपने अति हितुआ महादेवजी को पहुँचाने चले और महादेवजी ने उन्हे नाना प्रकार से समझा-बुझाकर लौटा दिया।

तुरत भवन आये गिरिराई। सकल शैल सर लिये बुलाई ।।
आदर दान विनय बहु माना। सब कर बिदा कीन्ह हिमवाना ।।

अर्थ—हिमाचल तुरन्त घर आये और उन्होने (देवरूपधारी) सब पर्वतो और तालाबो को बुला लिया। उन्होने किसी को आदर से, किसी को दान दे, किसी से विनती कर और किसी का बहुत सनमान करके सब को विदा की।

जबहि शम्भु कैलासहि आये। सुर सब निज निज लोक सिधाये ।।
जगतमातुपितु शम्भु भवानी। तेहि शृगार न कहौ बखानी ।।

अर्थ—जब शिवजी कैलाश मे पहुँचे तब सब देवता अपने-अपने लोक को चले गये। गौरी-शकर तो ससार के माता-पिता है, इस हेतु उनका विहार-वर्णन नही कहता।

करहि विविध भोग विलासा। गणन समेत बसहि कैलासा ।।
हरगिरिजाविहार नित नयऊ। इहि विधि विपुल काल चलि गयऊ ।।

अर्थ—वे अपने गणो के साथ कैलाश मे रहते थे और नाना प्रकार के सुखचैन भोगते थे। शिव-पार्वती का भोग-विलास दिनो दिन नये ढग का होता था, इस प्रकार बहुत-सा समय व्यतीत हुआ।

तब जन्मेउ षटवदन कुमारा। तारक असुर समर जेहि मारा ।।
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षडमुख[1] जन्म कर्म जग जाना ।।

अर्थ—तब षडानन कुमार का जन्म हुआ जिन्होने सग्राम मे तारक राक्षस का बध किया। शास्त्र, वेद और पुराणो मे यह कथा प्रसिद्ध है और षडानन का जन्म और पराक्रम सब ससार जानता है।

छन्द—जग जान षटमुख जन्म कर्म प्रताप पुरुषारथ महा।
तेहि हेतु मै वृषकेतु सुत कर चरित सक्षेप कहा ।।
यह उमाशम्भुविवाह जे नर नारि सुनहि जे गावही।
कल्याण काज विवाह मगल सर्वदा सुख पावही ।।

---

१. षटमुख—एक समय शिव जी का रेत बन मे पतित हुआ। उसे कुछ समय तक गगाजी ने धारण किया। फिर अग्नि ने धारण किया। अन्त मे छः कृत्तिकाओ ने धारण किया। निदान छऊ कृत्तिकाओ से एक मुख और दो हाथ वाले बालक आकार की उत्पत्ति हुई। इन छऊ अगो को एकत्र करने से एक बालक बना। जिसके छः मुख, १२ नेत्र और १२ हाथ हुए। कहते है कि रेत के स्कन्न अर्थात् पतित होने से इन का नाम स्कन्द पडा। उसे गगा जी ने धारण किया। इस हेतु गागेय, अग्नि ने धारण किया इस हेतु अग्नि भू और कृति-काओ ने धारण किया इसलिये कार्तिकेय इनका नाम पडा। छः मुख वाले होने से षटमुख और षड़ानन कहलाये। देवताओ की सेना के अधिकारी होने से ये सेनानी कहलाये। कुछ दिन गुहा (गुफा) मे रहने के कारण इन्हे गुह भी कहते है। इन्ही ने सात दिन की अवस्था मे तारकासुर का वध करके देवताओ का दुख दूर किया था।

अर्थ—षडवदन के जन्म कर्म प्रताप और बडे-बडे कठिन कामो को ससार के लोग जानते है। तभी तो मैने शिवजी के पुत्र का चरित्र थोडे मे कह दिया। इस शिव-पार्वती के विवाह को जो स्त्री-पुरुष सुनेगे या गावेगे वे शुभ कामो मे अथवा विवाह आदि मगल के कामो मे सदा सुख पाएगे।

दोहा—चरित सिन्धु गिरिजारमण, वेद न पावहि पार।
वरणै तुलसीदास किमि, अतिमतिमन्द गँवार ।। १०३ ।।

अर्थ—पार्वती के पति शिवजी के समुद्ररूपी चरित्रो का वेदो को भी अन्त नही मिलता, फिर मै अति मूर्ख मतिवाला गाव का रहने वाला तुलसीदास किस प्रकार उसका वर्णन कर सकता हूँ।

सूचना—शिवजी के विवाह वर्णन मे ११ छन्द आये है, इस हेतु यह मानो एकादश रुद्र की रुद्री हुई और तभी तो यह विशेष मगलदायक समझी गई।

शम्भु चरित सुनिसरस सुहावा[१]। भरद्वाजमुनि अति सुख पावा ।।
बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। नयन नीर रोमावलि ठाढी ।।

अर्थ—मधुर और सुहावने शिवजी के चरित्रो को सुनकर भारद्वाज मुनि को बडा आनन्द हुआ। कथा मे उनकी रुचि बहुत बढ गई, नेत्रो मे आँसू भर आये और रोम खडे हो गये।

प्रेमविवश मुख आव न बानी। दशा देखि हरषे मुनि ज्ञानी ।।
अहो धन्य तव जन्म मुनीशा। तुमहि प्राण सम प्रिय गौरीशा ।।

अर्थ—प्रेम मे ऐसे मग्न हो गये कि मुख से बोल नही सकते थे, उनका ऐसा हाल देख ज्ञानवान् याज्ञवल्क्य मुनि प्रसन्न हुए। (और कहने लगे) वाह मुनि श्रेष्ठ जी! आपके जन्म को धन्य है, शकर जी तो आपको प्राणो के समान प्रिय है।

शिवपदकमल जिनहि रति नाही। रामहि ते सपनेहुँ न सुहाही ।।
बिन छल विश्वनाथपद नेहू। रामभक्त कर लक्षण येहू[२] ।।

अर्थ—जिनका प्रेम शिवजी के कमलस्वरूपी चरणो मे नही है वे लोग स्वप्न मे भी श्री रामचन्द्रजी को नही सुहाते। "शकर जी के चरणो मे कपट रहित प्रीति रखना" यही चिन्ह श्री रामचन्द्रजी के भक्त का है (अर्थात् शिवजी का प्रेमी ही राम का दास समझा जाता है)।

---

१ सरस सुहावा—साहित्य के नौ रसो का वर्णन तो पुरौनी मे है। यहाँ पर शिव जी के विवाह मे गोस्वामीजी ने बडी चतुराई से नवो रस भारी कथा लिखी है, सो यो कि—

(१) विवाह मे श्रृगार रस, (२) बरात के वर्णन मे हास्य रस, (३) शिव और शिव गणो के भेष को देख कर मैना के सोच करने मे करुणारस, (४) कामदेव के भस्म करने मे रौद्ररस, (५) कामदेव के उपायो को निष्फल करने मे वीर रस, (६) गणो समेत शिवजी का विकट भेष देख कर बालको का भय भीत होना भयानक रस, (७) शिव गणो का घिनौना रूप वीभत्स रस, (८) सती का अवतार ही पार्वती जी है ऐसी वार्ता अद्भुत रस, और (९) शिवजी का विवाह समय सौम्य रूप धारण कर लेना यही शान्त रस वर्णन किया है।

२. बिन छल विश्वनाथपद नेहू। राम भक्त कर लक्षण येहू—जैसा कि उत्तरकाण्ड के राम गीता भाग मे श्री रामचन्द्र जी ने पुरवासियो को शिक्षा देते समय कहा है—

दोहा—औरउ एक गुप्त मत, सबहि कहउँ कर जोरि।
शकर भजन बिना नर, भक्ति न पावै मोरि ।।

शिव सम को रघुपतिव्रतधारी। बिन अघ तजी सती अस नारी ।।
प्रण करि रघुपतिभक्ति दृढाई। को शिव सम रामहि प्रिय भाई ।।

शब्दार्थ—अघ=(१) पाप, (२) दुख ।।

अर्थ—निष्पाप शिवजी के समान श्री रामचन्द्रजी का व्रत धारण करने वाला कौन है? (अर्थात् कोई नही) कारण, जिन्होने सती जैसी स्त्री का भी त्याग (केवल सीता जी का रूप धारण करने के कारण) कर दिया उन्होने अपनी भक्ति को पक्का कर दिखाया, जब प्रण कर लिया (कि इहि तनु सती भेंट मोहि नाहि) हे भाई! शिवजी के समान श्री रामचन्द्रजी को कौन प्यारा है (अर्थात् कोई नही)।

दोहा—प्रथमहि मै कहि शिवचरित, बूझा मर्म तुम्हार ।
शुचि सेवक तुम राम के, रहत समस्त विकार ।।१०४।।

अर्थ—मैने पहिले शिवजी के चरित्र कह कर तुम्हारे मन का प्रेम जान लिया तुम तो सम्पूर्ण विकारो से रहित श्री रामचन्द्रजी के सच्चे सेवक हो।

मै जाना तुम्हार गुण शीला। कहउँ सुनहु अब रघुपतिलीला ।।
सुनु मुनि आज समागम तोरे। कहि न जाइ जस सुख मन मोरे ।।

अर्थ—मैने तुम्हारे गुण और शील स्वभाव को जान लिया, मै श्री रामचन्द्रजी के चरित्रो को है कहता हू सो सुनिये। हे मुनि! हे सुनो तो सही, तुम्हारे मिलाप से जो आज सुख मेरे मन मे हुआ कहता हू, सो कहा नही जाता।

---

१. शिव सम को रघुपतिव्रतधारी। बिन अघ तजी सती अस नारी—
इसका अर्थ यदि यो करै कि 'बिनअघ' अर्थात् बिना अपराध करने पर भी सती ऐसी स्त्री को शिवजी ने त्याग दिया, तो नही बनता, क्योकि 'शिवजी बिना अपराध के किसी को दड क्यो देते' विशेष कर अपनी पतिव्रता स्त्री को। इसके सिवाय गोसाईजी सतीजी के वचनो से स्पष्ट कर दिखाते है कि उन्होने अघ अथवा अपराध को स्वत· स्वीकार किया है। यथा—

"कृपासिन्धु शिव परम अगाधा। प्रकट न कहेउ मोर अपराधा" और गोसाईजी भी यो कहते है—

"निज अघ समझि न कछु कहि जाई। तपइ अवाँ इव उर अधिकाई"—तब नारद-मुनि द्वारा भी यही कहलवाते है—

"सियवेष सती जो कीन्ह तेहि अपराध शकर परिहरी"।

इस हेतु 'बिन अघ' को शिवजी का विशेषण बनाने से ठीक अर्थ सगठित हो जाता है कि निष्पाप शिवजी के समान=जैसा अर्थ कर आये है।

'बिन अघ' को 'तेजी' का क्रियाविशेषण करके 'अघ का अर्थ दु ख' ऐसा करने से भी अर्थ बन जाता है कि बिना दु.ख के सती का त्याग किया, परन्तु यहा यदि कहा जाए कि उत्तर काण्ड मे तो शिवजी ने पार्वतीजी से यो कहा है कि 'तब अति सोच भयउ मन मोरे। दुखी भयउँ वियोग प्रिय तोरे' सो यहा पर सतीजी के तन त्याग से भक्त का विरह न सह कर दुखी होना स्वाभाविक ही है। जैसा कहा है 'भक्त विरह कातर करुणा मय डोलत पाछे लागे' सती ने पहिले जो सीता का वेष धारण किया था इस हेतु सतीजी का शिवजी ने अपनी विशेष भक्ति के हेतु त्याग किया था, परन्तु दुखी न हुए थे। क्योकि उन्होने सती को अपने पिता के घर बिनाबुलाये जाने से रोका था। दुखी तो तब हुए जब सतीजी ने अपना तन त्याग दिया।

रामचरित अति अमित मुनीशा । कहि न सकहि शतकोटि अहीशा[१] ॥
तदापि यथा श्रुति कहौ बखानी । सुमिर गिरापति प्रभु घनु पानी ॥

अर्थ—हे मुनिवर ! रामचरित्रो का पारावार नही, उन्हे सौ करोड शेषनाग भी नही कह सकते । तो भी जैसा मैने सुना है वैसा ही वाणी के प्रेरक धनुधारी श्री अवधविहारी का स्मरण करके कहता हू ।

शारद दारुनारि सम स्वामी । राम सूत्रधर अंतरयामी[२] ॥
जेहि पर कृपा करहि जन जानी । कवि उर अजिर नचावहि बानी ॥

अर्थ—हे मुनिवर ! शारदा तो कठपुतली के समान है और अन्तर्यामी राम सूत्रधार है । वे जिसको अपना भक्तजन जान कृपा करते है, उसी कवि के हृदय रूपी रग भूमि मे वाणी को नचाते है । (अर्थात् जिस पर भगवत्कृपा होती है, वही कवि होकर प्रभु चरित्र करने के योग्य हो जाता है)

प्रणवौ सोइ कृपालु रघुनाथा । वरणौ विशद तासु गुण गाथा ॥
परमरम्य गिरिवर कैलासू । सदा जहां शिवउमानिवासू ॥

अर्थ—उन्ही दयालु श्री रामचन्द्रजी को मै प्रणाम करता हु । जिनके निर्मल गुणगानुवादो का वर्णन करना चाहता हू । कैलाश नाम का बडा मनोहर एक श्रेष्ठ पर्वत हैं जहा सदैव शिव-पार्वतीजी का निवास है ।

दोहा— सिद्ध तपोधन योगि जन, सुर किन्नर मुनि वृन्द ।
बसहि तहां सुकृती सकल, सेवहि शिव सुखकन्द ॥१०५॥

अर्थ—वहा पर सिद्ध, तपस्वी, योगी, देवता, किन्नर, मुनियो के समूह तथा सम्पूर्ण सत्कर्मी

---

१. रामचरित अति अमित मुनीशा । कहि न सकहिं शत कोटि अहीशा—
छप्पयच—तुरानन सम बुद्धि बिदित जो होहिं कोटि घर ।
एक एक घर प्रतिन सीस जो होहिं कोटि घर ॥
सीस सीस प्रति वदन कोटि करतार बनावहिं ।
एक एक मुख माहिं रसन फिर कोटि लगावहिं ॥
रसन रसन प्रति शारदा कोटि बैठि बानी बकहिं ।
नहि जन 'अनाथ' के नाथ की महिमा तबहुँ कहि सकहिं ॥

२. शारद दारुनारि सम स्वामी । राम सूत्रधर अन्तरयामी—
भजन—धनि कारीगर करतार को, पुतली का खेल बनाया ॥
विना हुक्म नहिं हाथ उठावे, बैठी रहे नाहिं पार बसावे ।
हुक्म होइ तो नाच नचावै, जब आप हिलावे तार को ।
जिसने यह जगत रचाया ॥१॥
जगदीश्वर तो कारीगर है, पाचो तत्व की पुतली नर है ।
नाचे कूदे नहि बजर है, पुतली घर ससार को ।
विन ज्ञान नजर नहिं आया ॥२॥
उसके हाथ मे सब की डोरी, कभी नचावै काली गोरी ।
किमी की नहिं चलती बरजोरी तज दे झूठ विचार को ।
नहि पार किसी ने पाया ॥३॥
परलय मे हो बन्द तमासा, फेर दुबारा रच दे खासा ।
'छज्जूराम' को हरि की आसा, है धन्यवाद हुशियार को ।
आपे मे आप समाया ॥४॥

जीव रहा करते है और सुखधाम श्री शिवजी की सेवा किया करते है ।

हरिहरविमुख धर्म रति नाही । ते नर तहँ सपनेहुँ नहि जाही ।।
तेहि गिरि पर वट[१] विटपविशाला । नित नूतन सुदर सब काला ।।

अर्थ—जो प्राणी विष्णु और शिव के भक्त नही है और जिनकी प्रीति धर्म मे नही है वे उस पर भूल करके भी नही जाते । उस पर्वत पर एक बडा बड का वृक्ष है जो सदैव हरा-भरा और सब ऋतुओ मे सुहावना बना रहता है ।

त्रिविध समीर सुशीतल छाया । शिविश्रामविटप श्रुति गाया ।।
एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ । तरु विलोकि उर अति सुख भयऊ ।।

अर्थ—वेद मे उसे शिवजी का विश्राम वृक्ष कहा है । वहा पर शीतल-मद-सुगन्ध तीनो प्रकार की वायु चलती रहती है और उसकी छाया सदा सुन्दर शीतल रहती है । एक समय शिवजी उस बड के नीचे गये और उस वृक्ष को देखकर उनके हृदय मे बडा आनन्द हुआ ।

निज कर डासि नागरिपुछाला । बैठे सहजहि शम्भु कृपाला ।।
कुन्दइन्दुदर गौर शरीरा । भुज प्रलब परिधन मुनिचारा ।।

शब्दार्थ—डासि=विछाकर । नागरिपुछाला (नाग=हाथी+रिपु=बैरी+हाथी के बैरी चर्मछाला=चर्म)=अर्थात बाघम्बर । दर=शख । परिधन (परिधान)=पहने हुए ।

अर्थ—दयालु शकरजी अपने हाथो से बघम्बर विछाकर सहज ही मे बैठ गये । उनका शरीर कुन्द के फूल, चन्द्रमा और शख की नाईं गोरा था, उनकी भुजाएँ लम्बी थी और वे मुनिवस्त्र (अर्थात् वल्कल) धारण किये हुए थे ।

तरुण अरुण अबुजसम चरना । नखद्युति भक्तहृदयतम हरना ।।
भुजगभूतिभूषण त्रिपुरारी । आनन शरदचन्द्रछविहारी ।।

अर्थ—फूले हुए लाल कमल के समान चरण थे, जिनके नखो का प्रकाश भक्त के हृदय के अधकार का नाश करने वाला है । शिवजी सर्प और विभूति धारण किये हुए है, उनका मुख शरद पूनो के चन्द्रमा की शोभा को हरने वाला है ।

दोहा—जटामुकुट सुरसरित शिर, लोचन नलिन विशाल[२] ।
नीलकठ लावण्यनिधि, सोह बालविधु भाल ।।१०६।।

---

१ वट—सृष्टि के अगणित चमत्कारी पदार्थो मे से हिन्दुस्तान का वट वृक्ष भी एक पदार्थ है । इसका बीज राई से छोटा होता है परन्तु वृक्ष का आकार बढते-बढते बहुत से स्थान को घेर लेता है । इसकी डालियो मे से जडे-सी लटकने लगती है । वे ही जमीन मे पैठकर नये वृक्षो की नाईं बढने लगती है और इसी क्रम से दूसरी नवीन डालियो मे से नवीन पाये बनते जाते है । उदादरणार्थ .—गुजरात देश मे नर्मदा के किनारे एक बड का वृक्ष है, उसके ३५०० से अधिक पाये है । उसकी परिधि २००० फुट से भी अधिक है । इस पेड के नीचे पाच-छ हजार आदमी बिना अडचन के ठहर सकते है । इसके पत्ते साधारणत बडे और मोटे रहते है । इसकी छाया गर्मी मे शीतल और शीतकाल मे गर्म रहती है । यह वृक्ष अगणित वर्षों तक हरा-भरा बना रहकर अपने विस्तार को बढाता ही जाता है । तभी तो कैलास पर्वत पर शिवजी का वट वृक्ष और सुमेर पर्वत के उत्तर मे नील शैल पर काकभुशुडि जी का वट वृक्ष तथा विष्णुजी का अक्षयवट प्रसिद्ध है । पुराणो मे लेख है कि अक्षयवट प्रलय के अन्त तक बना रहता है ।

२. जटा मुकुट सुरसरित शिर, लोचन नलिन विशाल···आदि—होली सारग वृदावनी (रसिया) ताल कहरावा—

→

शब्दार्थ—नलिन—कमल। लावण्यनिधि—सुन्दरता से परिपूर्ण। बालविधु—द्वितीया का चन्द्रमा।

अर्थ—सीस पर जटाओ को मुकुट की नाई बाधे थे जिसमे गगाजी विद्यमान थी और कमल की नाई बडे-बडे नेत्र थे, कठ नीला, से सुन्दरता परिपूर्ण और उनके माथे पर द्वितीया का चन्द्रमा शोभा दे रहा था।

(२१. कैलाश पर्वत पर शिव पार्वती का सम्वाद)

बैठे सोह कामरिपु कैसे। धरे शरीर शान्तरस जैसे॥
पारवती भल अवसर जानी। गई शम्भु पहँ मातु भवानी॥

अर्थ—कामदेव के बैरी शिवजी बैठे हुए इस प्रकार शोभायमान थे कि मानो शान्तरस ही रूप धारण करके बैठा हो। जगदम्बा शिवपत्नी पार्वती जी इसे अच्छा समय समझ महादेवजी के पास जा पहुँची।

जानि प्रिया आदर अति कीन्हा। वामभाग आसन हर दीन्हा[१]॥
बैठी शिव समीप हरषाई। पूरबजन्मकथा चित आई॥

अर्थ—शिवजी ने उन्हे अपनी प्यारी पत्नी जान बडा आदर दिया और अपनी बाईं ओर बैठने को आसन दिया। वे प्रसन्न होकर प्रभु के पास बैठ गई, इतने मे पहिले जन्म की कथा का स्मरण हो आया।

पतिहियहेतु अधिक अनुमानी। विहँसि उमा बोली प्रियबानी॥
कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह शैलकुमारी॥

अर्थ—पति के हृदय मे पहिले की अपेक्षा अधिक प्रेम के विचार से पार्वतीजी मुसकरा कर सुहावने वचन बोली (तुलसीदासजी कहते है कि पार्वती वही कथा पूछना चाहती है जिससे सम्पूर्ण प्राणियो का भला हो)—

विश्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी॥
चर अरु अचर नाग नर देवा। सकल करहि पदपकजसेवा॥

अर्थ—हे शिवजी! आप ससार के स्वामी और मेरे पति हो, आपकी बडाई तीनो लोक मे प्रसिद्ध है। चलने वाले और स्थिर जीव, सर्प, मनुष्य और देवता सब आपके कमलस्वरूपी चरणो की सेवा करते है।

शिव शंभु सदा सुखदाई हो॥ (शव शभु०)
जटन गग दृग भग रग की, कहिये कहा निकाई हो॥ (शिव शभु०)
चन्द्रभाल गल व्याल माल की, शोभा वरणि न जाई हो॥
कालकूट कल कठ बिराजै, अग विभूति सुहाई हो॥
दीनदयाल दयानिधि दानी, कीरति जग मे छाई हो॥
शकर शरण पाय प्रभु हौ तौ, जै जैकार मचाई हो॥ (शिव शभु०)

१ वामभाग आसन हर दीन्हा—स्मरण रहे कि स्त्री अपने पति की अर्द्धागिनी और वामागी कहलाती है। इसी हेतु इस का स्थान पति के समीप बाईं ओर होना चाहिये और तभी तो इसे वामा भी कहते है। शिवजी ने इसी शास्त्र पद्धति के अनुसार पार्वतीजी को बाई ओर आसन दिया परन्तु जिस समय सती अवतार मे सीता का रूप धारण किया था उस समय शिवजी ने उन्हे सन्मुख बिठाया था। जैसा कह आये है कि 'सन्मुख शकर आसन दीन्हा'।

दोहा — प्रभु समर्थ सर्वज्ञ शिव, सकल कलागुणधाम।
योग ज्ञान वैराग्य निधि, प्रणतकल्पतरु नाम् ।।१०७।।

अर्थ—हे प्रभु! आप सर्वशक्तिमान और सब जानहार कल्याणरूप तथा चौसठकला और सम्पूर्ण गुणो से परिपूर्ण है। आप तपस्या, ज्ञान और वैराग्य के भडार है तथा आप शरणागत कल्पतरु कहलाते है (अर्थात् जो आपकी शरण मे आता है आप उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करते हैं)।

जो मो पर प्रसन्न सुखरासी। जानिय सत्य मोहि निज दासी ।।
तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथकथा विधि नाना ।।

अर्थ—हे आनन्दनिधि! जो आप मुझ पर प्रसन्न है और मुझे यथार्थ मे अपनी दासी मानते है तो हे नाथ! श्री रामचन्द्रजी की भाँति-भाँति की कथा कह कर मेरा अज्ञान दूर करो।

जासु भवन सुरतरुतर होई। सह कि दरिद्रजनित दुख सोई[१] ।।
शशिभूषण अस हृदय विचारी। हरहु नाथ मम मतिभ्रम भारी ।।

अर्थ—जिसका घर कल्पवृक्ष के नीचे हो वह क्या कगाली का दुख सहेगा अर्थात् कभी नही। हे चन्द्रमौलि प्रभु! ऐसा हृदय मे विचार मेरे मन के भारी सन्देह को दूर कीजिए।

प्रभु जे मुनि परमारथवादी। कहहि राम कहँ ब्रह्म अनादी ।।
शेष शारदा वेद पुराना। सकल करहि रघुपति गुणगाना ।।

अर्थ—हे प्रभु! जो मुनीश्वर मुक्ति का सिखावन देने वाले है, वे रामचन्द्रजी को अनादि ब्रह्म कहते है। शेषनाग, सरस्वती, वेद और पुराण भी सबके सब रामचन्द्रजी के गुणानुवाद गाया करते है।

तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंगअराती ।।
राम सो अवधनृपतिसुत सोई। की अज अगुण अलखगति कोई ।।

अर्थ—हे कामारि! आप भी तो दिन-रात आदरपूर्वक राम-राम जपा करते है। वही रामजी अयोध्या के राजा दशरथ के लड़के है अथवा कि कोई दूसरे, जो जन्म रहित और गुणो

---

१. जासु भवन सुरतरु तर होई। सह कि दरिद्र जनित दुख सोई—कल्पवृक्ष जिसे सुरतरु भी कहते है एक ऐसा वृक्ष है कि जिसके नीचे यदि कोई पहुँच जाए तो, वह मनवाछित फल को पा लेता है। तभी तो उसके नीचे रहने वाला दरिद्री नही रह सकता, परन्तु यदि भाग्यहीन कुतर्की पुरुष कल्पवृक्ष के नीचे पहुँच भी जाए तो उसका सर्वनाश होता है। कथा प्रसिद्ध है है कि एक कुतर्की पुरुष बन मे भटकता-भटकता दैवयोग से एक कल्पवृक्ष की साया मे जा बैठा। प्यास से व्याकुल होने के कारण विचारने लना कि यदि ठडा पानी मिलता तो अच्छा होता। वृक्ष के प्रभाव से ठडे पानी का कुड तैयार हो गया। तब तो यह विचार कि यदि भोजन मिलता तो पानी का उपयोग यथोचित होता। भोजन की तैयारी दिखाई दिये। तब लालच के मारे सोचने लगे कि यदि पलग होता तो खा-पीकर आराम करते। पलग भी मौजूद हो गया। तब पैर दाबने के लिए स्त्री की खालसा बढी तो सुन्दर स्त्री भी पलग पर बैठी दिखाई दी। तब कुतर्कना बढी कि यहाँ भूत तो नही है? इतना कहा कि भूत दिखाई दिया। निदान वह कह उठे कि अब यह मुझे खा न जायगा, बस डरते ही भूत ने उसको खा डाला। आराम का सामान पड़ा ही रहा। कुतर्की लोगो की ऐसी दशा होती है।

से परे तथा जिनकी गति समझ मे नही आती वे राम है।

दोहा — जो नृपतनय सो ब्रह्म किमि, नारिविरह मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत, भ्रमित बुद्धि अत मोरि ॥१०८॥

अर्थ—जो राजा के लडके है तो ब्रह्म कैसे हो सकते है ? क्योकि उनकी मति तो स्त्री के विछोह मे बेहाल हो गई थी। इस प्रकार उनके चरित्र देख और उनका बडा प्रताप सुनकर मेरी बुद्धि काम नही करती।

जो अनीह व्यापक विभु कोऊ। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ ॥
अज्ञ जानि रिस उर जनि धरहू। जेहि विधि मोह मिटइ सोइ करहू ॥

शब्दार्थ—अनीह (अन = नही + ईह = इच्छा) = इच्छा रहित।

अर्थ—यदि इच्छा रहित घट-घट वासी समर्थ कोई दूसरा परमात्मा हो तो हे प्रभु ! वह भी मुझसे समझाकर कहिए। मुझे बेसमझ जानकर हृदय मे क्रोध न कीजिए, वही उपाय कीजिए जिससे भ्रम दूर हो।

मै बन दीख रामप्रभुताई। अतिभय विकलन तुमहि सुनाई ॥
तदपि मलिन मन बोध न आवा। सो फल भली भॉति मे पावा ॥

अर्थ—मैने बन मे रामचन्द्रजी की महिमा देखी थी परन्तु डर से बहुत व्याकुल होने के कारण आपसे न कह सुनाई। इतने पर भी इस अज्ञानी मन को ज्ञान न हुआ, उसका फल भी मैने यथोचित पा लिया।

अजहूँ कछु सशय मन मोरे। करहु कृपा विनवउँ करजोरे ॥
प्रभु तब मोहि बहु भॉति प्रबोधा। नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा ॥

अर्थ—अब भी कुछ सदेह मेरे मन मे रह गया है सो मै हाथ जोडकर विनती करती हूं कि आप कृपा करेगे। हे नाथ ! उस समय आपने मुझे कई प्रकार से समझाया था, उस बात का विचार करके हे प्रभु ! आप क्रोध न कीजिए।

तब कर अस विमोह अब नाही। रामकथा पर रुचि मन माही ॥
कहहु पुनीत रामगुणगाथा। भुजगराजभूषण सुरनाथा ॥

अर्थ—उस समय की नाई विशेष सदेह अब मुझे नही है और मेरे मन मे राम कथा पर प्रेम भी है। इस हेतु हे देवताओ के स्वामी ! सर्पो के आभूषणधारी, त्रिपुरारी जी, अवधविहारी के गुणानुवाद कहिये।

दोहा —बन्दौ पदधरि धरणि शिर, विनय करौ करजोरि।
वरनहु रघुवर विशदयश, श्रुति सिद्धान्त निचोरि[1] ॥१०९॥

अर्थ—मैं आपके चरण गहकर पृथ्वी पर माथा टेक बन्दना करती हूँ और हाथ जोडकर

---

१. बन्दौ पद धरि धरिणि शिर··· श्रुति सिद्धान्त निचोरि—अध्यात्म रामायण से—
श्लोक—नमोस्तुते देव जगन्निवास सर्वात्म दृक्त्व परमेश्वरोसि।
पृच्छामितत्त्व पुरुषोत्तमस्य सनातन त्वच सनातनोऽसि ॥
अर्थात् हे महादेवजी ! सब जगत के निवास स्थान आपको मेरा प्रणाम है, आप सब जीवधारियो के हृदय की जानने वाले तथा परमेश्वर रूप है। आप सत्य स्वरूप है इस हेतु आप से सत्य स्वरूप वाले श्री रामचन्द्रजी के यर्थार्थ रूप के विषय मे पूछती हूँ।

बिनती करती हूँ कि आप वेदो का सार छाँटकर रामचन्द्रजी की निर्मल कीर्ति का वर्णन कीजिए।

यद्यपि योषिता अनअधिकारी। दासी मन क्रम वचन तुम्हारी[1] ॥
गूढौ तत्त्व न साधु दुरावहि। आरत अधिकारी जहँ पावहि[2] ॥

अर्थ—यद्यपि स्त्री (वेद सिद्धाँत को) अधिकारिणी नही है तो भी मै तो मनसा, वाचा, कर्मणा से आपकी दासी हूँ। सन्तजन गुप्त सिद्धाँत को भी नही छिपाते जबकि उनके कोई दुःख भरा अधिकारी मिल जाता है।

अति आरत पूछौ सुरराया । रघुपति कथा कहहु कर दाया ॥
प्रथम सो कारण कहहु विचारी। निर्गुण ब्रह्म सगुण बपुधारी ॥

अर्थ—हे सुरश्रेष्ठ ! मै बहुत ही दुःखित होकर पूछती हूँ, आप कृपा करके श्री रामचन्द्र जी की कथा कहिये जिस कारण गुणो से परे जो ब्रह्म है उन्होने सगुणरूप धारण किया।

पुनि प्रभु कहहु रामअवतारा। बालचरित पुनि कहहु उदारा ॥
कहहु यथा जानकी विवाही। राज तजा सो दूषण काही ॥

अर्थ—हे प्रभु ! फिर रामचन्द्रजी के अवतार की कथा कहिये। तदउपरान्त हे उदार-चित्तवाले ! बाललीला भी कहिये। जिस प्रकार जानकीजी से विवाह किया सो कहिये और जो राज्य का त्याग किया सो किस दोष के कारण ?

बन बसि कीन्हे चरित अपारा। कहहु नाथजिमि रावण मारा ॥
राज बैठि कीन्ही बहुलीला। सकल कहहु शँकर सुखशीला ॥

अर्थ—वन मे रहकर जो अनगिनती चरित्र किये है सो हे नाथ कहिये। जिस प्रकार से उन्होने रावण का बध किया। हे आनन्द और शान्त निधान शंकर जी ! फिर वे सब चरित्र कहिये जो उन्होने राजसिंहासन पर बैठ कर किये थे।

दोहा— बहुरि कहहु करुणायतन, कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजासहित रघुवंश मणि, किमि गवने निजधाम ॥११०॥

अर्थ—फिर हे दयासागर ! वह अदभुत बात भी कहिये ! जो रामचन्द्रजी ने की कि रघुकुल मे श्रेष्ठ रामचन्द्रजी सब अयोध्यावासियो समेत किस प्रकार साकेत लोक को पधारे।

.१ यद्यपि योषिता अनअधिकारी। दासी मन क्रम वचन तुम्हारी—श्रीमद्भगवतगीता मे लिखा है कि—

श्लोक—माहि पार्थ ! व्यपाश्रित्य, येऽपिस्यु पाप योनय ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परागतिम् ॥

अर्थात् (श्री कृष्णजी बोले) हे अर्जुन ! मेरा आश्रय लेने वाला कैसा ही पापी हो, चाहे स्त्री, वैश्य वा शूद्र कोई हो, मोक्ष पाता है।

२. गूढौ तत्त्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं—आध्यात्म रामायण से—

श्लोक—गोम्य यवत्यन्त मनन्य वाच्य, वदन्ति भक्तेषु महानुभावा ।
तदप्य होह तव देव भक्ता, प्रियोसिमेत्व वद यत्तुपृष्टम् ॥

अर्थ— जो बात अत्यन्त छिपाने के योग्य होती है और दूसरो से कहने योग्य नही होती उसे भी महात्मा लोग अपने भक्तो से कह देते हैं। सो हे देव ! मैं तो आप की भक्तिन हूँ और आप भी मुझको प्रिय है, इस हेतु जो कुछ पूछा है वह कहिये ।

पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी । जेहि विज्ञान मगन मुनि ज्ञानी ।।
भक्ति ज्ञान विज्ञान विरागा । पुनि सब वर्णहु सहित विभागा ।।

अर्थ—हे प्रभु ! पीछे से वह भागवत तत्त्व भी वर्णन कीजिये जिसके विचार मे ज्ञानवान मुनि निमग्न रहते है और भी भक्ति, ज्ञान, विज्ञान तथा वैराग्य इन सबका वर्णन अन्तर्गत भेदो सहित कहिये ।

अउरउ रामरहस्य अनेका । कहहु नाथ अविमल विवेका ।।
जो प्रभु मै पूछा नहि होई । सो दयालु राखहु जनि गोई ।।

अर्थ—हे प्रभु ! रामचन्द्रजी के जो और भी गूढ चरित्र हो उन्हे भी कहिये जिनके कारण मेरी विवेक शक्ति अत्यन्त निर्मल हो जाए । हे कृपालु प्रभु ! जो कुछ मैने पूछा हो वह भी आप न छिपावे ।

तुम त्रिभुवनगुरु वेद बखाना । आन जीव पामर का जाना ।।
प्रश्न उमा के सहज सुहाये । छलविहीन सुनि शिवमन भाये ।।

अर्थ—वेद मे कहा है कि आप तीन लोक के गुरु है, दूसरे नीच मनुष्य इस रहस्य को क्या जाने । इस प्रकार पार्वतीजी के स्वभाव ही से सुहावने प्रश्न कपटरहित होने के कारण शिवजी के मन को अच्छे लगे ।

हरहिय रामचरित सब आये । प्रेम पुलक लोचन जल छाये ।।
श्री रघुनाथरूप उर आवा । परमानन्द अमितसुख पावा ।।

अर्थ—शकरजी के हृदय मे सम्पूर्ण रामचरित्र उमग उठे, यहाँ तक कि प्रेम के कारण शरीर के रोम खडे हो गये और नेत्रो मे आँसू भर आये । श्री रामचन्द्रजी का ध्यान भी हृदय मे आ गया और उन्हे विशेष आनद और अनन्त सुख प्राप्त हुआ ।

दोहा — मग्न ध्यानरस दण्ड युग, पुनि मन बाहरकीन्ह ।
रघुपतिचरित महेश सब, हर्षित वरणौ लीन्ह ।।१११।।

अर्थ—महादेवजी ध्यान के आनद मे दो घडी तक निमग्न रहे फिर चित्त को चैतन्य कर उन्होने प्रसन्नतापूर्वक रामचन्द्रजी के चरित्रो का वर्णन करना आरभ किया ।

झूठउ सत्य जाहि बिन जाने[1] । जिमि भुजंग बिन रजु पहिचाने ।।
जेहि जाने जग जाइ हिराई । जागे यथा स्वप्नभ्रम जाई ।।

अर्थ—जिन रामचन्द्रजी के जाने बिना झूठा जगत सत्य के समान भासता है । जिस प्रकार रस्सी को ठीक-ठीक समझे बिना सर्प का धोखा होता है और जिनके जान लेने से ससार रहता ही नही जैसे जाग उठने से स्वप्न के सब पदार्थों का भास मिट जाता है (भाव यह कि आत्म तत्त्व को न जानने से इस ससार के पदार्थ भिन्न-भिन्न विद्यमान प्रतीत होते है, और जब आत्मतत्त्व को पहिचान लिया तो ये ही सब पदार्थ आत्मा से भिन्न नही, यह ज्ञान हो जाने से जहा देखो, वहा आत्मस्वरूप ही जान पडता है। न कोई, न कोई दूसरी वस्तु थी और न वह फिर रह

---

१ झूठउ सत्य जाहि बिन जाने—भागवत मे लिखा है कि—

श्लोक—तावद्रागादयस्तेना स्तावत्कारा गृह गृह ।
तावन्मोहाघ्रि निगड यावत्कृष्ण नतेजना ।।

अर्थात् हे श्री कृष्णजी ! जब तक मनुष्य आपके नही हो रहते तब तक उन्हे विषय-वासना आदि चारो की नाईं, घर कैदखाना तथा मोह पॉव की बेडी की नाईं बने रहते हैं ।

जाती है जैसा कि अज्ञान के कारण भासमान होती है)।

वन्दौ बालरूप सोइ रामू[१] । सब सिधि सुलभ जपत जेहि नामू ।।
मंगलभवन अमगलहारी[२] । द्रवौ सो दशरथअजरबिहारी ।।

अर्थ—उन्ही रामचन्द्रजी के बालस्वरूप को मै प्रणाम करता हू जिनका नाम ही स्मरण करने से सम्पूर्ण सिद्धिया सुलभ हो जाती है। सब मगलो के कर्त्ता और अशुभ कर्मो के हर्त्ता ऐसे दशरथजी के आँगन मे क्रीडा करते हुए श्री रामचन्द्रजी मुझ पर कृपा करे।

करि प्रणाम रामहि त्रिपुरारी । हर्षि सुधासम गिरा उचारी ।।
धन्य धन्य गिरिराजकुमारी । तुम समान नहि कोउ उपकारी ।।

अर्थ—शिवजी ने श्री रामचन्द्रजी को प्रणाम किया और प्रसन्न होकर अमृत के समान वचन कहे। हे शैलाधिराज तनये ! तुमको धन्य है, तुम्हारे समान कोई दूसरा उपकार करने वाला नही है।

पूछेहु रघुपतिकथाप्रसगा । सकल लोक जगपावनि गंगा[४] ।।
तुम रघुवीरचरण अनुरागी । कीन्हेउ प्रश्न जगतहित लागी ।।

अर्थ—तुमने रामचन्द्रजी की कथा का प्रसग छेडा है यह कथा ससार को गगा की नाई पवित्र करने वाली है। तुम्हारा प्रेम रामचन्द्रजी के चरणो मे है तुमने तो ससार के निमित्त प्रश्न किये है।

दोहा—रामकृपा ते पारबति, सपनेहु तव मन माहि ।
शोकमोह सन्देह भ्रम[४] , मम विचार कछु नाहि ।। ११२।।

---

१ वदौ बालरूप सोइ रामू—'बालरूप' इस रूप के वन्दन अथवा सेवन करने का यह अभिप्राय जान पडता है कि सभी जीवधारियो के छोटे स्वरूप और उनकी क्रीडा सब ही को प्रिय लगती है, कागभुशुडी जी ने भी बालरूप मे रति मानी है और कौशल्याजी ने भी बाल क्रीडा का सुख मागा था और प्राप्त भी किया था, जैसा कहा है—

सोरठा—ह्वै हो लाल कबहि वडे बलि मैया ।
राम लखन भावते भरत रिपुदमन चारु चार्‌यो भैया ।।
बाल विभूषण वसन मनोहर अगनि विरचि बनैहौं ।
शोभा निरखि निछावरि कर उर लाय वारने जैहौ ।।
छगन मगन अँगना खिलिहौ मिलि ठुमुक ठुमुक कब धैहौ ।
कलबल बचन तोतरे मजुल कहि मा मोहि बुलैहौ ।।
पुरजन सचिव रावरानी सब सेवक सखा सहेली ।
लैहै लोचन लाहु सफल लखि ललित मनोरथ बेली ।।
जा सुख की लालसा लटू शिव शुक सनकादि उदासी ।
तुलसी तेहि सुखसिन्धु कौशिला मगन पै प्रेम पियासी ।।

२. मगल भवन अमगल हारी—(जैसा कि कहा है)

श्लोक—मगल भगवान् विष्णुर्मंगल गरुडध्वज ।
मगल पुडरीकाक्ष मगलायतनो हरि ।।

३. सकल लोक जगपावनि गगा—भाव यह है कि जिस प्रकार गगाजी तीनों लोको मे (अर्थात् स्वर्ग मे मन्दाकिनी के नाम से, मृत्युलोक में भागीरथी के नाम से और पाताल मे भोगवती के नाम से) सब प्राणियो को पवित्र करने वाली है, उसी प्रकार रामकथा भी है।

४. शोक मोह सन्देह भ्रम—(१) प्राप्त वस्तु के खो जाने पर शोक होता है, पार्वतीजी को →

अर्थ—मेरी समझ मे हे पार्वती ! श्री रामचन्द्रजी की कृपा से स्वप्न मे भी तुम्हारे चित्त मे खेद, मोह, शका और भ्रम कुछ भी नही है।

तदपि अशका कीन्हेउ सोई। कहत सुनत सब कर हित होई ।।
जिन हरिकथा सुनी नहि काना। श्रवणरध्र अहिभवन समाना[1] ।।

अर्थ—तो भी तुमने ऐसी शका की है कि जिसके कहने-सुनने से सब का भला होगा। (भाव यह कि यद्यपि यह शका-सी जान पडती है तो भी यह 'आशका' है जो केवल लोगो के हित के लिए की गई है। कारण) जिन प्राणियो ने राम कथा अपने कानो से नही सुनी, उनके कानो के छिद्र मानो सर्प की बॉवी है।

नयनन्ह सन्तदरश नहि देखा। लोचन मोरपख कर लेखा[2] ।।
ते शिर कटु तूमर सम तूला। जे न नमत हरिगुरुपदमूला[3] ।।

सतीरूप मे जो अगस्त्य ऋषि के यहाँ रामकथा सुनकर रामतत्त्व मिला था वह मानो रामचन्द्रजी को शोकातुर भ्रमण करते हुए देखकर खो गया था, वह अब प्राप्त हुआ और होवेगा। इससे शोक नही है, ऐसा शिवजी का कथन है। इस प्रकार (२) सत्पुरुषो के कथन पर विश्वास न रख अपनी बुद्धि को श्रेष्ठ मानना 'मोह' है सो वह भी शिवजी के वाक्यो पर जो अविश्वास था वह पार्वती रूप मे नही रहा, ऐसे ही (३) रामचन्द्रजी के सच्चिादानन्द रूप होने मे सन्देह, और (४) श्री रामरूप मे राजकुमार रूप समझ लेने का जो भ्रम था सब दूर हो गया और विशेष कर अब होगा।

१ श्रवणरघ्र अहिभवन समाना—श्री मद्भागवत् स्कन्ध दूसरा अध्याय ३—

श्लोक—बिले बतोरुक्रम विक्रमान्ये, न श्रृरावत कर्णपुटे नरस्य।
जिह्वाऽसतीदार्दु रिकेव सूत, न चोप गायत्युरुगाय गाथा ।। २० ।।

अर्थात् परमेश्वर की लीला को श्रवण न करने वाले जो कान है वे केवल सर्प आदि के बिल की समान ही है और जो दुष्ट जीभ भगवान् की कथा का ज्ञान नही करती है वह मेढक की जीभ के समान व्यर्थ बकवाद करने वाली है।

२. नयनन्ह सन्त दरश नहि देखा। लोचन मोरपख कर लेखा—श्री मद्भागवत् स्कन्ध दूसरा अध्याय ३—

श्लोक—बर्हायिते ते नयने नराणा, लिंगानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये।
पादौ नृणा तौ द्रुम जन्म भाजौ, क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ ।। २२ ।।

अर्थात् मनुष्यो के जो नेत्र विष्णु भगवान् की मूर्ति का दर्शन नही करते हैं वे मोर के परो की चन्द्रिकाओ के समान निरर्थक हैं। मनुष्य के जो चरण परमेश्वर के क्षेत्रो मे यात्रा के निमित्त नही जाते हैं वे केवल वृक्ष की जड के समान जन्म धारण किये हुए है।

३ ते शिर कटु तूमर सम तूला। जे न नमत हरिगुरुपदमूला—भर्तृहरि नीति शतक से—

श्लोक—करे श्लाघ्यस्त्याग शिरसि गुरुपादप्रणयिता,
मुखे सत्या वाणी विजयि भुजयोर्वीर्यमतुलम्।
हृदिस्वथा वृत्ति श्रुतमधिगतैकव्रतफल,
विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहता मडनमिदम् ।।

अर्थात् हाथ दान से, मस्तक बडे लोगो के पैर पडने से, मुख सत्य बोलने से, दोनो भुजा अतुल पराक्रम से, हृदय स्वच्छ वृत्ति से, कान शास्त्र श्रवण से बडाई के योग्य होते है और बिना ऐश्वर्य रहते वे सत्पुरुषो के भूषण है।

अर्थ—जिन नेत्रो से सज्जनो के दर्शन नही किये गये, वे नेत्र चिन्हो (अर्थात् चन्द्रिका) के समान है और वे शिर जो ईश्वर तथा गुरुजी के चरणो के तलुओ के सामने झुकते नही, कड़ुवे तूँबे के समान है।

जिन हरिभक्ति हृदय नहि आनी। जीवत शव समानते प्रानी ।।
जो नहि करइ रामगुण गाना। जीह सो दादुर जीह समाना ।।

अर्थ—जिन लोगो ने हृदय से ईश्वर का भजन नही किया, वे जीते रहने पर भी मरे के समान है। जो लोग रामचन्द्रजी के गुणो का वर्णन नही करते उनकी जीभ मेदरे की जीभ के तुल्य है। (अर्थात् जिस प्रकार मेदरे की जीभ टर्र-टर्र के सिवाय और कुछ नही कह सकती, उसी प्रकार अभक्तो की जीभ केवल बकवाद करने मे लगी रहती है)।

कुलिश कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरिचरित न जो हरषाती ।।
गिरिजा सुनहु राम की लीला। सुरहित दनुजविमोहनशीला[१] ।।

अर्थ— वह हृदय कठोर बज्र के समान कडा है जो रामचन्द्रजी के चरित्रो को सुन कर प्रसन्न नही होता। हे पार्वती! रामचन्द्रजी की लीला सुनो! जो देवताओ को हित और राक्षसो को मोह करने मे कुशल है।

दोहा—रामकथा सुरधेनु सम, सेवत सब सुखदानि।
सतसमाज सुरलोक सब, को न सुनै अस जानि ।। ११३ ।।

अर्थ—रामकथा कामधेनु के समान सेवन करने वालो को सम्पूर्ण सुखो को देने वाली है। ऐसा समझ सज्जनो की सभा मे और देवलोक मे ऐसा कौन होगा जो उसे न सुने (अर्थात्) सब ही सज्जन और देवता आदि उसे सुनते ही है)।

रामकथा सुन्दर करतारी। संशय विहँग उडावनहारी[२] ।।
रामकथा कलिविटपकुठारी। सादर सुन गिरिराजकुमारी ।।

अर्थ—रामकथा उत्तम करतलध्वनि की नाईं सशय रूपी पक्षी को उडा देने वाली है। (अर्थात् जिस प्रकार हाथ की ताली बजाने से साधारण पक्षी उड जाते है! इसी प्रकार रामचद्रजी की कथा के उच्चारण से सब सशय दूर हो जाते है)। हे गिरीशनदिनी! आदर से सुनो, रामकथा कलियुगरूपी वृक्ष को कुल्हाडी के समान (काटने वाली) है।

राम नाम गुण चरित सुहाये। जन्म कर्म अगणित श्रुति गाये ।।
यथा अनंत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुण गाना ।।

---

१. सुरहित दनुजविमोहन शीला—श्रीमद्भगवत्गीता अध्याय १६—
श्लोक—द्वौ भूत सर्गौलोकेस्मिन् दैव आसुर एव च ।। ६ ।।
अर्थात् ससार मे दो प्रकृति के प्राणी है, एक देव प्रकृति और दूसरे आसुरी प्रकृति के।

२. रामकथा सुन्दर करतारी। सशय विहग उडावन हारी—
राग राम०—हरित सब आरति आरती राम की। दहति दुख दोष निर्मूलिनी काम की ।।
सुभग सौरभ धूप दोष वर मालिका। उडत अध विहग सुनि ताल करतालिका ।।
भक्त हृदि भवन अज्ञानतमहारिणी। विमल विज्ञानमय तेज विस्तारिणी ।।
मोह मद कोह कज हिम यामिनी। मुक्ति की दूतिका देह दुति दामिनी ।।
प्रणत जन कुमुद बन इन्दुकर जालिका। तुलसी अभिमान महिशेष बहु कालिका ।।

अर्थ—रामचन्द्रजी के अनगिनत नाम, गुण और मनोहर लीलाएँ तथा जन्म और कर्म वेदो मे कहे गये है। जिस प्रकार पट् ऐश्वर्य्ययुक्त रामचन्द्रजी असख्य है वैसे ही उनकी कथा, कीर्ति और गुणानुवाद है।

तदपि यथाश्रुत जस मति मोरी[1]। कहिहौ देखि प्रीति अति तोरी ॥
उमा प्रश्न तव सहज सुहाई। सुखद सन्त सम्मत मोहि भाई ॥

अर्थ—तो भी तुम्हारी अधिक प्रीति देखकर जो कुछ मैंने सुना है उसे अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन करूँगा। हे पार्वती ! तुम्हारे प्रश्न स्वभाव ही से सुहावने, सुखदाई और सज्जनो की मति के अनुसार है।

एक बात नहि मोहि सुहानी। यदपि मोहवश कहेहु भवानी ॥
तुम जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहि मुनिध्याना ॥

अर्थ—हे पार्वती ! यद्यपि तुमने मोह के कारण कही है तो भी मुझे तुम्हारी एक बात अच्छी नही लगी। जो तुमने कहा कि जिनका वेद मे वर्णन है और जिनका मुनिगण ध्यान करते है वे रामचन्द्रजी क्या दूसरे हैं ?

दोहा—कहहि सुनहि अस अधमनर, ग्रसे जे मोह पिशाच।
पाखडी हरिपद विमुख, जानहि झूठ न साँच ॥११४॥

अर्थ—ऐसी बात वे नीच पुरुष कहते-सुनते है जिन्हे मोहरूपी पिशाच की बाधा होती है और जो पाखडी है, रामचन्द्रजी के चरणो से विमुख है, और जो झूठ तथा सत्य का विचार नही रखते।

(२२. शिवजी द्वारा यथार्थ रामरूप की विवेचना)

अज्ञ अकोविद अन्ध अभागी[2]। काई विषय मुकुर मन लागी ॥
लम्पट कपटी कुटिल विशेखी। सपनेहु सन्तसभा नहि देखी ॥
कहहि ते वेद असम्मत बानी। जिन के सूझ लाभ नहि हानी ॥

---

१. तदपि यथाश्रुत जस मति मोरी—

श्लोक—फणीन्द्रस्ते गुणान्वक्तु लिखितु हैहयाधिप।
द्रष्टु मा खडलस्साक्षात् का मेक क्वते गुणा ॥

अर्थात् (हे परमेश्वर !) आपके गुणानुवाद कथन करने को शेषनाग और लिखने को सहसबाहु तथा देखने को साक्षात् सहस्राक्ष (इन्द्र) भी असमर्थ है फिर कहाँ तो आपके गुण और कहाँ मैं अकेला।

२. अज्ञ अकोविद अन्ध अभागी ''इत्यादि— महारामायण से—

श्लोक—श्री रामे ये च विमुखा खलमति निरता ब्रह्ममन्यद् यदति।
ते मूढा नास्तिकास्ते शुभगुण रहितास्सर्वबुध्यातिरिक्ता -
पापिष्ठा धर्महीना गुरुजन विमुखा वेद शास्त्रे विरुद्धा।
तेहित्वा गागमभो रवि किरणि जल पातु मिच्छति त्रस्ता ॥

अर्थात् जो लोग श्री रामचन्द्रजी से विमुख है, जो दुष्टमति वाले है, और जो उन्हे परब्रह्म से दूसरा मानते हैं, वे मूर्ख है, नास्तिक है, और सद्गुणो से रहित हैं। तथा सब प्रकार की बुद्धि से शून्य, पापी, धर्महीन, गुरुजनो से विमुख, वेद और शास्त्र के विरोधी हैं वे लोग प्यासे होने पर गङ्गाजल को छोड मृगजल पीने की इच्छा करते हैं।

शब्दार्थ—अकोविद (अ=नही+क=वेद+विद=जानना)=जो वेद न जाने अर्थात् अपडित।

अर्थ—मूर्ख, अपडित, ज्ञानाध, भाग्यहीन जिनके मन आईनारूपी मन मे काईरूपी विषय लगे हुए है जो विशेष कर स्त्रियो मे आसक्त, छली, कुटिल है और जिन्होने सपने मे भी सज्जनो की सभा को नही देखा। और जिन्हे हानि-लाभ कुछ भी दिखाई नही देता वे लोग इस प्रकार के वेद-विरुद्ध वचन कहा करते है।

मुकुर मलिन अरु नयन विहीना[1]। रामरूप देखहि किमि दीना ॥
जिनके अगुण न सगुण विवेका। जल्पहि कल्पित वचन अनेका ॥
हरिमायावश जगत भ्रमाही। तिनहि कहत कछु अघटित नाही ॥

अर्थ—जिनका मनरूपी दर्पण मैला है और जिनके ज्ञानरूपी नेत्र है ही नही, वे विचारे रामरूप को कैसे देख सकते है? जिन्हे निर्गुण और सगुण का भेद नही मालूम वे मन से गढे हुए बहुतेरे वचन कहा करते है। परमेश्वर की माया मे जगत् के लोग भूल रहे है तो उन्हे कुछ भी कहना अयोग्य नही।

वातुलभूत विवश मतवारे[2]। ते नहि बोलहि वचन विचारे ॥
जिन कृत महा मोह मद पाना। तिन कर कहा करिय नहिं काना ॥

---

१. मुकुर मलिन अरु नयन विहीना। रामरूप देखहिं किमि दीना—हितोपदेश से—

श्लोक—अनेक सशयोच्छेदि, परोक्षार्थस्य दर्शकम्।
सर्वस्य लोचन शास्त्र, यस्य नास्त्यध एवस ॥

अर्थात् अनेक सशयो का मिटाने वाला और अनदेखी बातो का दर्शाने वाला सबकी आँख शास्त्र है, जिसे शास्त्र का ज्ञान नही सो अधा ही है।

२. वातुलभूत विवश मतवारे—

नशा तो कोई अच्छा नही, परन्तु मदिरा का नशा सबसे बुरा है, इसके बारे मे जगन कवि यो कहते है कि—

भजन – क्यो दूध दही को छोड के मदिरा पै मन ललचाया ॥
पी शराब आँखें लाल किये मतवाले। गिरते सडको पर फिरें खाक मुँह डाले ॥
सब तज के लोक कुल लाज किये मुँह काले। इस मय ख्वारी ने लाखो के घर घाले ॥
क्यो धन अरु माल गँवाया। किस काम तुम्हारे आया ॥
लाखो का द्रव्य लुटाया। क्या नफा बताओ पाया ॥
अब हो बैठे कङ्गाल, खो के धन माल, हुआ बेहाल, हजारो लडें मरे सिरफोड के, पर सबर न दिल को आया ॥ क्यो दूध दही को० ॥१॥

× × × × × ×

यह बुरी चीज है पियो न कोई भाई। पहिले कर के कङ्गाल करावे हँसाई ॥
जिन मूर्खों ने है तबियत इस पर लाई। वे बुरी दशा मे पडे भरें कठिनाई ॥
बदनामी यहाँ दिखलावे। फिर अन्त महादुख पावें ॥
विषयो मे मन लपटावें। दुर मारग खूब सुझावे ॥
कह 'जगन' सुनो नर नार, बात यह सार, पियो मत यार,
चलो इस नशे से नाक सिकोड के ॥ सुख का यह मार्ग बताया ॥ क्यो दूध दही को० ॥२॥

इसी को मनुष्य की पत (इज्जत) खोने वाली पहिचान किसी कवि ने कैसी उत्तम रीति से सक्षेप मे यथार्थ दर्शाया है—

अर्थ—जो लोग सन्निपात, भूतबाधा अथवा नशे के वश रहते है, वे विचार कर वचन नही कहते । जिन्होने भारी अज्ञानरूपी मदिरा को पी लिया है उनके कथन पर ध्यान न देना चाहिए ।

सोरठा—अस निज हृदय विचारि, तजि संशय भज रामपद ।
सुन गिरिराजकुमारि, भ्रमतमरविकर वचन मम ।।११५।।

अर्थ—अपने हृदय मे इस प्रकार विचार करके सदेह को त्याग कर रामचन्द्रजी के चरणो का भजन करो । हे गिरीशनदिनी ! भ्रमरूपी अधकार मिटाने के हेतु सूर्य की किरणो के समान मेरे वचनो को सुनो ।

सगुणहि अगुणहि नहि कछु भेदा । गावहि मुनि पुराण बुध वेदा ।।
अगुण अरूप अलख अज जोई । भक्तप्रेमवश सगुण सो होई[1] ।।

अर्थ—निर्गुण और सगुण ब्रह्म मे कुछ भेद नही है ऐसा मुनिगण, पुराण, बुद्धिवान् और वेद कहते है । जो निर्गुण, निराकार, अदृश्य और जन्मरहित है, वही भक्तो के प्रेम के कारण सगुण हो जाता है ।

जो गुण रहित सगुण सो कैसे । जल हिम उपल विलग नहि जैसे ।।
जासु नाम भ्रमतिमिरपतगा । तेहि किमि कहिय विमोह प्रसंगा[2] ।।

अर्थ—(जो तुमने पूछा कि) जो गुण रहित ब्रह्म है वह सगुण कैसे होता है (सो यो) जैसे पानी और ओले मे कुछ अन्तर नही । जिनका नाम ही सदेहरूपी अधकार को सूर्य के समान है उनके बारे मे कैसे कहा जाए कि वे मोहवश हुए ।

राम सच्चिदानंद दिनेशा । नहि तहँ मोहनिशा लवलेशा[3] ।।
सहज प्रकाशरूप भगवाना । नहि तहँ पुनि विज्ञान विहाना ।।

दोहा—आम फरत है पत लिये, महुआ फर 'पत' खोय ।
ऐसे पतितन के पिये, कौन पतित नहिं होय ।।

१. अगुण अरूपअलख अज जोई । भक्तप्रेमवश सगुण सो होई—अध्यात्म रामायण मे लिखा है—

श्लोक—सोय परात्मा पुरुष पुराण एक स्वय ज्योतिरनन्त आद्य ।
माया तनु लोक विमोह नीया धत्ते परानुग्रह एष राम ।।

अर्थात् ये राम माया से परे शुद्ध आत्मा ब्रह्म है और ये ही राम पहले भी नवीन रहे और सबके हृदय मे शयन करने वाले अन्तर्यामी तथा स्वय प्रकाशवान् है, अनन्त है और सबके आदि कारण है । ये ही राम दूसरे लोगो पर कृपा कर मायारूपी शरीर धारण करते है ।

२. जासु नाम भ्रम तिमिर पतगा । तेहि किमि कहिय विमोह प्रसगा—अध्यात्म रामायण से—

श्लोक—यथा प्रकाशो न तु विद्यते रवौ ज्योति स्वभावे परमेश्वरे तथा ।
विशुद्ध विज्ञान घने रघूत्तमेऽविद्या कथ स्यात्परत परात्मनि ।।

अर्थात् जिस प्रकार सूर्य मे कभी अन्धकार सम्भव नही उसी प्रकार विशुद्ध विज्ञान घन प्रकाश स्वरूप परमेश्वर श्री राम मे अविद्या कैसे सम्भव हो सकती है क्योकि अविद्या से परे जो अक्षर तिस से भी परे रामतत्त्व है ।

३. रामसच्चिदानन्द दिनेशा । नहिं तहँ मोहनिशा लवलेशा—अध्यात्म रामायण से—

श्लोक—राम विद्धि पर ब्रह्म सच्चिदानदमद्वयम् ।
सर्वोपाधि विनिर्मुक्त सत्ता मात्रमगोचरम् ।।

अर्थ—सच्चिदानद श्री रामचन्द्रजी तो सूर्य के समान है, वहाँ मोहरूपी रात्रि लेश मात्र को भी नही होती (अर्थात् जहाँ सूर्य का प्रकाश सदैव बना रहता है वहाँ पर रात्रि हो ही नही सकती)। परमेश्वर तो स्वयम् प्रकाशरूप है उनके समीप विशेष ज्ञान का प्रात काल नही होता (अर्थात् प्रात काल तो वहाँ होता है जहाँ रात्रि हो, परन्तु जहाँ सदैव प्रकाश ही प्रकाश है, वहाँ न रात्रि है और न प्रातःकाल। भाव यह है कि परमेश्वर प्रकाशमय है वहाँ नये सिरे से ज्ञान उत्पन्न होने का अवकाश कहाँ?)।

हर्षविषाद ज्ञान अज्ञाना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना[१] ॥
रामब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेश पुराना[२] ॥

अर्थ—सुख, दुःख, मूर्खता और मै ही हूँ यह अभिमान (अर्थात् अहकार) ये जीव के लक्षण है। रामचन्द्रजी तो ब्रह्मरूप घट-घट व्यापी है, परम आनन्द स्वरूप, सम्पूर्ण ईशो से परे और सनातन है (भाव यह है कि जीव के धर्म परब्रह्म के धर्मों से बहुत भी भिन्न है)।

दोहा—पुरुष प्रसिद्ध प्रकाश निधि, प्रकट परावर नाथ[३]।
रघुकुलमणि मम स्वामि सोइ, कहि शिव नायउ माथ ॥११६॥

अर्थात् तुम रामचन्द्रजी को परब्रह्म जानो जो सत् चित् आनन्द स्वरूप और एक ही हैं। वे सम्पूर्ण उपाधियो से रहित है और सत्तामात्र से विद्यमान रहते भी इन्द्रियो की पहुँच से बाहर है।

१. हर्ष विषाद ज्ञान अज्ञाना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना—अध्यात्म रामायण से—

श्लोक—यावद्देह मन प्राण बुद्धयादिष्वभिमानवान्।
तावत्कर्तृत्व भोक्तृत्व सुख दु खादिभाग्भवेत् ॥

अर्थ—जब तक मनुष्य देह, मन, प्राण और बुद्धि आदि मे अभिमान करता है (अर्थात् अविवेक से देहाहिको के धर्म को अपना धर्म मानता है) तब तक कर्तृत्व, भोक्तृत्व और सुख-दु ख आदि का भोगने वाला बना रहता है।

२. रामब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानद परेश पुराना—अध्यात्म रामायण से -

श्लोक—राम परात्मा प्रकृतेरनादिरानद एक पुरुषोत्तमोहि।
स्वमायया कृत्स्न मिद हिसृष्ट्वा नभो वदन्तर्बहिराश्रितोय ॥

अर्थात् (हे पार्वती) श्री रामचन्द्रजी प्रकृति से परे आत्मा है और कारण रहित है (अर्थात् राम का कोई कारण नही, राम ही सबके कारण है) और आनन्द रूप है, पुरुषोत्तम है अक्षर आत्मा से भी उत्तम है और अपनी माया करके सब विश्व को रचकर आकाश तुल्य बाहर-भीतर सबमे व्याप्त हो रहे है।

३. पुरुष प्रसिद्ध प्रकाशनिधि' 'इत्यादि—वृहद्राग रत्नाकर से—

राग जगला—भ्रातृगण यह उपदेश हमारा ॥
वेद शास्त्र पुराण निगमागम सब ग्रन्थन को सारा ॥
रघुवर चरण शरण होय उतरो भवसागर से पारा ॥
जाहि वेद कहैं शुद्ध ब्रह्म सो दशरथ राज दुलारा ॥
सब व्यापी सब अन्तरयामी सर्वजगत आधारा ॥
छाँडो सकल कुतर्क कपट मन जो होवै निस्तारा ॥
सत्य नाम इक श्री रघुवर का मिथ्या सब ससारा ॥
ध्रुव प्रह्लाद आदि भक्तन हित होत रकार मकारा ॥
दीन दयाल स्वामि मम साईं भये मनुज अवतारा ॥

अर्थ—जो (परमेश्वर) 'पुरुष' के नाम से प्रसिद्ध है जो सम्पूर्ण प्रकाशो के उत्पत्ति स्थान हैं जो छोटे-बडे सबके स्वामी रूप धारी है, ये ही रघुकुल श्रेष्ठ श्री रामजी है और ये ही मेरे प्रभु (इष्टदेव) है। इतना कहते ही शिवजी ने अपना माथा झुकाया (अर्थात् पुरुष सूक्त मे जिसे पुरुष कहा है और जिससे सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि प्रकाश उत्पन्न हुए बतलाये है, जो सब छोटे-बडे ब्रह्माण्डो के स्वामी कथन किये गये है, वे ही आदि निराकार पुरुषोत्तम रघुवश मे रामस्वरूप हुए है। वे ही मेरे इष्टदेव है जिन्हे मैंने सीस नवाया था और अब फिर नवाता हूँ)।

निज भ्रम नहिं समझहि अज्ञानी। प्रभु पर मोह धरहि जडप्रानी ॥
यथा गगन घनपटल निहारी[1]। झम्पेउ भानु कहै कुविचारी ॥

अर्थ—मूर्ख लोग अपने अज्ञान को तो समझते नही, परन्तु कहते है कि परमेश्वर को वियोग आदि का दु ख हुआ। जिस प्रकार आकाश मे बादलो का पर्दा देख विचारहीन लोग कहते है कि सूर्य ढक गया (अर्थात् मूर्ख मनुष्य अज्ञानतावश अपने मोह को न विचार कर ईश्वर को मोहवश समझ लेते है, जिस प्रकार बादलो से आप ही ढके रहकर कहते है कि सूर्य ढक गया है, सूर्य तो बादलो से बहुत ऊपर है, वह कैसे ढक सकता है ?)।

चितव जो लोचन अगुलि लाये। प्रकट युगल शशि तेहि के भाये ॥
उमा राम विषयक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा ॥

अर्थ—जो लोग अपनी आँखो मे अगुली लगाकर चन्द्रमा को देखते है, उनके विचार मे दो चन्द्रमा स्पष्ट दिखाई देते है। हे पार्वती! रामचन्द्रजी के विषय मे मोह करना, इसी प्रकार से है जिस प्रकार आकाश का अन्धकार धुआँ अथवा धूल के कारण मानना है (अर्थात् यदि कोई आँख के सामने अँगुली रखे अथवा एक आँख की पुतली को अँगुली से कुछ नाक की ओर हटावे, तो उसे दो चन्द्रमा दिखाई देगे। यह भ्रम उसी का है न कि चन्द्रमा का। इसी प्रकार रामचन्द्रजी के विषय मे मोह का हाल है। आकाश मे धुआँ अथवा धूल के पटल के कारण जो अन्धकार होता है सो अपना अन्धकार है न कि आकाश का)।

विषय करण सुर जीव समेता। सकल एक ते एक सचेता ॥

शब्दार्थ—विषय = शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गध। करण (स० कृ = करना) = करने का साधन अर्थात् इन्द्रियाँ जो दस है, उनमे से ५ ज्ञानेन्द्रिय—(१) नेत्र इन्द्रिय, (२) कर्ण

---

१. यथा गगन घनपटल निहारी—श्रीमत् शकराचार्य-कृत हस्तामलक स्तोत्र से—

श्लोक—घनच्छन्न दृष्टिर्घनच्छन्नमर्कं, यथा निष्प्रभ मन्यते चाति मूढ ।
तथा बद्ध बद्भाति यो मूढ दृष्टे सनित्योपलब्धि स्वरूपोऽहमात्मा ॥

अर्थात् जो बडे अज्ञानी है वे मेघो से ढकी हुई दृष्टि वाले होकर सूर्य को मेघो से ढका हुआ प्रकाश रहित समझते है। इसी प्रकार जो अज्ञान दृष्टि वाले को बन्धन मे पडा हुआ समझ पड़ता है वही आत्मा मै हूँ जो नित्य प्राप्ति स्वरूप है।

और भी —

कालिदासजी कुमार सम्भव के पहले सर्ग के पाँचवे श्लोक मे स्पष्ट कहते हैं कि हिमालय मे तपस्या करते हुए सिद्ध लोग जब वहाँ मेघो से आच्छादित हो जाते है तब वे उस पर्वत की ऊँची गुफाओ मे जा बैठते है, जहाँ से मेघ मण्डल नीचे घूमता दिखाई देता है और जहाँ पर दिन भर सूर्य का प्रकाश सदैव वर्षा काल मे भी बना रहता है। इससे स्पष्ट है कि सूर्य मेघो से आच्छादित नही होते।

इन्द्रिय, (३) त्वचा इन्द्रिय, (४) रसना इन्द्रिय, और (५) घ्राण इन्द्रिय, तथा ५ कर्मेन्द्रिय – (१) हाथ, (२) पाँव, (३) मुख, (४) लिङ्ग, (५) गुदा।

अर्थ—इन्द्रियन के विषय, इन्द्रियाँ, उनके देवता, जीव ये सब क्रमानुसार एक-दूसरे से चैतन्य होते है (अर्थात् जीव से इन्द्रियो के देवता, इन्द्रियो के देवताओ से इन्द्रियाँ और इन्द्रियो से इन्द्रियों के विषय चैतन्य होते है। जैसे मान लो कि वस्तु का रूप यह विषय है, उसका ज्ञान नेत्र इन्द्रिय से होता है, परन्तु नेत्र इन्द्रिय को ज्ञान उसके देवता सूर्य से होता है और सूर्य के प्रकाश का ज्ञान जीव से होता है। यदि नेत्र न हो, रूप न दिखे। यदि सूर्य या प्रकाश न हो, तो नेत्रो से न दिखे। यदि जीव न हो तो सूर्य का प्रकाश निरर्थक हो। यदि प्रकाशक ब्रह्म भीतर न हो तो जीव निरर्थक हो जाये। यह आगे स्पष्ट होगा)।

सब कर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवधपति सोई[1] ।।

अर्थ—इन सबको विशेष चैतन्य करने वाले रामचन्द्रजी है, जो अनादि ब्रह्म हैं और वे ही अयोध्या के राजा है (अर्थात् जीव के प्रकाशक परमात्मा भी राम है और अयोध्या के राजा भी वे ही राम हैं, इन दोनो मे भेद नही है)।

जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू। मायाधीश ज्ञान गुणधामू ।।
जासु सत्यता ते जड माया। भास सत्य इव मोह सहाया[2] ।।

अर्थ सब ससार तो प्रकाश पानेवाला है और रामचन्द्रजी प्रकाश करनेवाले है, जो माया के स्वामी और ज्ञान तथा गुण के स्थान हैं। जिन रामचन्द्रजी की सत्यता से जड माया भी मोह के सहारे से सत्य की नाईं भासती है (जैसे चुम्बक के सहारे से जड लोहा भी चैतन्य-सा भासने लगता है)।

दोहा—रजत सीप महँ भास जिमि, यथा भानु कर वारि[3] ।
यदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकै कोउ टारि ।।११७।

---

१. सब कर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवधपति सोई—
गजल—जलवा दिखा रहा है मुझको जहूर तेरा ।।
व्यापक है तू जहाँ मे हाजिर है हर जहा मे। सब मे समा रहा है, निर्मल है नूर तेरा ।।
कुर्बान तेरी कुदरत पर, बलिहार हूँ बहेदत पर। अमृत चखा रहा है, मुझको सरूर तेरा ।।
तेरा ही नाम प्यारा, जपता जहान सारा। गुण तेरे गा रहा है, जन है जरूर तेरा ।।
'बलदेव' दुख दरदो से, हट दूर खुद गरजो से। खिदमत मे आ रहा है, बन्दा हजूर तेरा ।।

२. जासु सत्यता ते जड माया। भास सत्य इव मोह सहाया—अध्यात्म रामायण मे लिखा है—

श्लोक—आत्मन ससृतिर्नास्ति, बुद्धेर्ज्ञान न जात्वति।
अविवेकाद् द्वययुक्त्वा ससारीति प्रवर्त्तते ।।

अर्थ—वास्तव मे जन्म-मरण आदि ससार असग आत्मा मे नही सम्भव होता और जड बुद्धि मे ज्ञान कभी नही सम्भव होता। अविवेक से दोनो को मिलाकर ससारी अर्थात् मैं कर्त्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ ऐसा व्यवहार सम्भव होता है (देखे वेदान्त ग्रन्थ)।

३. रजत सीप महँ भास जिमि, यथा भानु कर वारि—
कवित्त—मन ही के भ्रम ते जगत यह देखियत मन ही के भ्रम गये जगत विलात है।
मन ही के भ्रम जेवरी मे उपजत साँप मर के विचारे साँप जेवरी समात है ।।
मन ही के भ्रम ते मरीचिका को जल कहै मन ही के भ्रम सीपरूपा सी दिखात है।
'सुन्दर' सकल यह दीखै मन ही के भ्रम मन के भ्रम गये ब्रह्म हुइ जात है ।।

अर्थ—जिस प्रकार सीप मे चाँदी और सूर्य की किरणो मे पानी (मृगजल) समझ पडता है। यद्यपि भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनो कालो मे ये बाते असत्य है तो भी इन के भ्रम को कोई मिटा नही सकता (अर्थात् न सीप मे चाँदी है और न मृगतृष्णा मे पानी, तो भी इन दोनो मे चाँदी और पानी का धोखा सदैव बना ही रहता है। इसी प्रकार परब्रह्म के सहारे से माया चैतन्य और सत्य-सी भासती है, परन्तु वह यथार्थ मे है नही, इसे अनिर्वच-नीय कहना चाहिए)।

इह विधि जग हरि आश्रित रहई[1]। यदपि असत्य देत दुख अहई ॥
ज्यों सपने शिर काटै कोई। बिन जागे दुख दूर न होई ॥

अर्थ—इस प्रकार से ससार परमेश्वर के अधीन है, यद्यपि झूठ है, तो भी दु ख देता है। जिस प्रकार सपने मे कोई किसी का सिर काट डाले तो जागने के बिना उसका दु ख नही मिटता।

जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई[2] ॥
आदि अन्त कोउ जासु न पावा। मति अनुमान निगम अस गावा ॥

अर्थ—जिसकी कृपा से ऐसा भ्रम दूर होता है, हे पार्वती! वही कृपालु रामचन्द्रजी है। जिनका ओर छोर किसी को नही मिला, बुद्धि की तर्कना से वेद ने ऐसा वर्णन किया है।

बिन पद चलै सुनै बिन काना। कर बिन करम करै विधि नाना[3] ॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिन वानी वक्ता बड योगी ॥

---

१ इहि विधि जग हरि आश्रित रहई। यदपि असत्य देत दु ख अहई—

कुडलिया—साँचे श्रीराधारमण, झूठो सब ससार।
बाजीगर को पेखनो, मिटत न लगत अवार ॥
मिटत न लगत अवार भूत की सपति जैसे।
मेहरी नाती पूत धुआँ के बादर तैसे ॥
भगवत ते नर अधम लोभ वश घर घर नाचे।
झूठे घड़े सुनार बैन के बोलै साँचे ॥

२. जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई—

माधो मोह फाँस क्यो टूटे।
बाहिर कोटि उपाय करिय अभिअन्तर ग्रन्थि न छूटे ॥
धृत पूरण कराह अन्तरगत शशि प्रतिबिम्ब दिखावै।
इँधन अनल लगाय कल्पशत औटत नाश न पावै ॥
तरु कोटर महँ वश विहँग तरु काटै मरै न जैसे।
साधन करिय विचारि हीन मन शुद्ध होइ नहिं तैसे ॥
अन्तर मलिन विषय मन अति तन पावन करिय पखारे।
मरै न उरग अनेक यत्न बलमीक विविध विधि मारे ॥
तुलसीदास हरि गुरु करुणा बिन विमल विवेक न होई।
बिन विवेक ससार घोर निधि पार न पावै कोई ॥

३. बिन पद चलै सुनै बिन काना। कर बिन करम करै विधि नाना—जैसाकि श्वेताश्वतरो-पनिषद् के तीसरे अध्याय मे कहा है— →

अर्थ—जो परमेश्वर बिना पाँव चलता है, बिना कान के सुनता है और बिना हाथों के नाना प्रकार के कर्म करता है, मुख के बिना सब प्रकार के स्वादो को भोगता है बिना जीभ के बडा बोलनेवाला है—

तन बिन परस नयन बिन देखा। ग्रहै घ्राण बिन बास असेखा[1] ॥
अस सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहि बरनी ॥

अर्थ—शरीर के बिना स्पर्श करता है, बिना नेत्रो के देखता है और सूँघने की इन्द्रिय बिना सब प्रकार की बास लेता है। ऐसी सब प्रकार से लोक-विरुद्ध जिसकी कार्यवाही है, उस के महत्त्व का वर्णन नही हो सकता।

दोहा—जेहि इमि गावहि वेद बुध, जाहि धरहि मुनि ध्यान[2] ।
सोइ दशरथसुत भक्तहित, कोशलपति भगवान ॥ ११८ ॥

अर्थ—जिसको वेद और बुद्धिमान् लोग पूर्वोक्त रीति से वर्णन करते है और जिस का मुनिगण ध्यान करते रहते है, सोई परमेश्वर भक्तो के हित कोशलाधीश दशरथजी के पुत्र हुए हैं।

काशी मरत जन्तु अवलोकी। जासु नाम बल करौ विशोकी ॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुवर सब उर अन्तरयामी[3] ॥

अर्थ—जिनके नाम के प्रभाव से काशी मे मरनेवाले प्राणियो को मैं ससार के दुःख से छुडाता हूँ (अर्थात् मोक्ष देता हूँ) वे ही चल और स्थिर जीवो के स्वामी घट-घट वासी रामचन्द्रजी मेरे प्रभु है।

विवशहु जाहु नाम नर कहही। जन्म अनेक रचित अघ दहही ॥
सादर सुमिरन जे नर करही[4]। भव वारिधि गोपद इव तरही ॥

श्लोक—अपाणिपादो जवनोग्रहीता, पश्यस्यचक्षु सश्रृणोत्य कर्ण।
सवेत्ति वेद्यनच तस्यास्ति वेत्ता, तमाहुरग्रय पुरुष पुराण ॥ १६ ॥

अर्थात् उसके हाथ नही, परन्तु वह ग्रहण करता है, उसके पैर नही परन्तु वह बडे वेग से चलता है, उसके नेत्र नही परन्तु देखता है, कान न होने पर भी वह सुनता है। वह ससार को जानता है परन्तु उसका जाननेवाला कोई नही है उसी को सबसे पहिले विद्यमान् अतएव पुराण-पुरुष कहते है।

१. तन बिन परस नयन बिन देखा। ग्रहै घ्राण बिन बास असेखा—वैराग्य सदीपिनी से—

दोहा—सुनत लखत श्रुति नयन बिन, रसना बिन रस लेत।
वास नासिका बिन लहै, परसै बिना निकेत ॥

२. जेहि इमि गावहि वेद बुध, जाहि धरहि मुनि ध्यान—वैराग्य सदीपिनी से—

सोरठा—अज अद्वैत अनाम, अलख रूप जो गुण रहित।
मायापति सोइ राम, दास हेतु नरतन धरेउ ॥

३ रघुवर सब उर अन्तरयामी—सनत्कुमार सहिता से—

श्लोक—यथानेकेषु कुभेषु, रवि रेकोपि दृश्यते।
तथा सर्वेषु भूतेषु, चिन्तनीयोस्म्यह सदा ॥

अर्थात् जैसा एक ही सूर्य अनेक घडो मे दिखाई देता है इसी प्रकार सदैव सब प्राणियो मे मुझ ही को जानो।

४. सादर सुमिरन जे नर करही—राम रक्षा से— →

अर्थ—जिस नाम को मनुष्य यदि जबरन से भी ले ले तो वे अपने अनेक जन्म के सचित पापो से छुटकारा पा जाते है जैसे अजामिल और गणिका आदि परन्तु जो पुरुष आदर-पूर्वक उनका भजन करते है वे ससाररूपी समुद्र को गाय के खुरचिह्न मे भरे हुए पानी की नाईं लांघ जाते है।

राम सो परमातमा भवानी[1] । तहँ भ्रम अति अविहित तब बानी ।।
अस सशय आनत उर माही । ज्ञान विराग सकल गुण जाही ।।

अर्थ—हे पार्वती! जो राम है सोई परमात्मा है उनके विषय मे सन्देह युक्त तुम्हारे वचन बहुत ही अयोग्य है। क्योकि हृदय मे ऐसा सन्देह लाने ही मात्र से ज्ञान-वैराग्य आदि सम्पूर्ण नष्ट हो जाते है।

सुनि शिव के भ्रमभंजन वचना । मिटि गइ सब कुतर्क की रचना ।।
भइ रघुपतिपदप्रीति प्रतीती । दारुण असभावना बीती ।।

अर्थ—सन्देह मिटानेवाले शिवजी के वचनो को सुनने से पार्वतीजी के सब सन्देह दूर हो गए। रामचन्द्रजी के चरणो मे उनका प्रेम और विश्वास जम गया तथा बुरे तर्क-वितर्क जाते रहे।

दोहा—पुनि पुनि प्रभुपदकमल गहि, जोरि पकरुहषानि ।
बोली गिरिजा वचन वर, मनहुँ प्रेमरस सानि ।।११९।।

अर्थ—बारम्बार प्रभु के कमलस्वरूपी चरणो को वन्दन कर अपने कमलस्वरूपी हाथो को जोडकर पार्वतीजी ऐसे सुहावने बचन बोली कि मानो वे प्रेम रस से परिपूर्ण हो—

शशिकर सम सुनि गिरा तुम्हारी । मिटा मोह शरदातप भारी ।।
तुम कृपाल सब संशय हरेऊ[2] । रामस्वरूप जानि मोहि परेऊ[3] ।।

श्लोक—रामेति रामभद्रेति, रामचन्द्रेतिवास्मरन् ।
नरो न लिप्यते पापैर्भुक्ति मुक्ति च विन्दति ।।

अर्थात् 'राम', 'राम भद्र' किंवा 'रामचन्द्र' इस नाम का स्मरण करने से मनुष्य पापो से बचता है और भोग-विलास तथा मुक्ति पा लेता है।

१. राम सो परमात्मा भवानी—योग वाशिष्ठ मे कहा है—

श्लोक—रमन्ते योगिनो यत्र, सत्यानन्दे चिदात्मके।
इति रामपदे नासौ, परब्रह्म विधीयते ।।

अर्थात् जिस सत्यरूप आनन्द स्वरूप चिदात्मा मे योगी जन रमते हैं इस कारण राम पद से परब्रह्म ही समझा जाता है।

२. तुम कृपालु सब सशय हरेऊ—

श्लोक—धन्यास्म्यनुगृहीतास्मि, कृतार्थास्मि जगत्प्रभो।
विच्छन्नोमेति सदेह ग्रथि र्भवदनुग्रहात् ।।

अर्थात् - (पार्वतीजी महादेवजी से कहने लगी कि) हे ससार के स्वामी! मै धन्य हूँ। आपने कृपा करके मुझे कृतार्थ किया और आपकी कृपा से मेरे हृदय का सन्देह दूर हो गया।

३. राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ—पाठक गण विचार कर देखिए—श्री शकरजी के कथन से पार्वतीजी ने श्री रामचन्द्रजी का यथार्थ स्वरूप जो समझा उसे यो कह सकते है कि—

वही राम दशरथ घर डोले। वही राम घट घट मे बोले ।।
उसी राम का सकल पसारा। वही राम सबही से न्यारा ।।

अर्थ—आपकी चन्द्र किरण के समान वाणी सुनकर के शरद ऋतु की तपन के समान मेरा सन्देह मिट गया। हे दयालु! आपने मेरा सब सन्देह दूर किया, अब मैं श्री रामचन्द्रजी के रूप को समझ गई।

नाथकृपा अब गयेउ विषादा। सुखी भइउँ प्रभुचरणप्रसादा ॥
अब मोहि आपनि किंकरि जानी। यदपि सहज जड नारि अयानी ॥

अर्थ—आपकी कृपा से मेरा दुःख दूर हुआ और आपके चरणो के अनुग्रह से मै आनन्दित हो गई। यद्यपि स्त्रियाँ स्वभाव ही से कठोर और मूर्ख होती है तो भी अब आप मुझे अपनी दासी समझकर—

प्रथम जो मै पूछा सोइ कहहू। जो मो पर प्रसन्न प्रभु अहहू ॥
राम ब्रह्म चिन्मय अविनाशी। सर्व रहित सबउरपुरवासी ॥

अर्थ—हे प्रभु! जो आप मुझ पर प्रसन्न है तो जो कि मैने पहले पूछा था वही कहिये। रामचन्द्रजी तो परब्रह्म चैतन्यस्वरूप नाशरहित सबसे भिन्न और सबके घट-घट मे निवास करते है।

नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतु। मोहि समुझाय कहहु वृषकेतू ॥
उमावचन सुनि परम विनीता। रामकथा पर प्रीति पुनीता ॥

अर्थ—हे स्वामी! उन्होने किस हेतु मनुष्य का शरीर धारण किया। सो हे धर्मधुरीन! आप मुझे समझाकर कहिए। पार्वती के अति नम्रता भरे हुए वचन सुन तथा राम कथा पर निष्कपट प्रेम देख—

दोहा—हिय हरषे कामारि तब, शंकर सहज सुजान।
बहु विधि उमहि प्रशंसि पुनि, बोले कृपानिधान ॥

अर्थ—कामदेव के बैरी स्वभाव ही से ज्ञानवान् दयासागर शिवजी हृदय मे बहुत प्रसन्न हुए और पार्वतीजी की नाना प्रकार से बडाई कर कहने लगे—

सोरठा—सुन शुभ कथा भवानि, रामचरित मानस विमल।
कहा भुशुंडि बखानि, सुना विहँगनायक गरुड ॥

अर्थ—हे पार्वती! रामचरितमानस की पवित्र कथा सुनो जिसे कागभुशुण्डि ने वर्णन की थी और पक्षीराज गरुड ने सुनी थी।

सोरठा—सोइ सम्वाद उदार, जेहि विधि भा आगे कहब।
सुनहु रामअवतार, चरित परम सुन्दर अनघ ॥

अर्थ—वही गम्भीर सम्भाषण जिस प्रकार से हुआ सो आगे कहूँगा। (अभी तो) अति सुन्दर पापनाशक, रामचन्द्रजी के अवतार के चरित्र सुनो।

सोरठा—हरिगुण नाम अपार, कथारूप अगणित अमित।
मै निजमतिअनुसार, कहौ उमा सादर सुनहु ॥१२०॥

अर्थ—परमेश्वर के गुण और नामो की गिनती नही, इसी प्रकार उनकी कथा का पारावार नही और रूप भी अनगिनत है तो भी हे उमा! तुम आदरपूर्वक सुनो, मै अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ।

(२३ अवतारों के कारण)

सुन गिरिजा हरिचरित सुहाये। विपुल विशद निगमागम गाये ।।
हरिअवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई ।।

शब्दार्थ—इदमित्थ (इदम् = यह + इत्थ = इस प्रकार) = यह इसी प्रकार है।

अर्थ—हे पार्वती! हरि के मनोहर चरित्रो को सुनो! जो बहुत से है, पवित्र है और जिनका वर्णन वेद और शास्त्रो मे है। जिस निमित्त से परमेश्वर का अवतार होता है "वह ठीक इसी प्रकार से है" ऐसा कोई नही कह सकता।

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहु सयानी ।।
तदपि सत मुनि वेद पुराना। जस कछु कहहि स्वमति अनुमाना ।।
तस मै सुमुखि सुनावहुँ तोही। समझि परै जस कारण मोही ।।

अर्थ—हे चतुर पार्वती, सुनो! हमारा विचार तो यो है कि रामचन्द्रजी मन, वाणी और बुद्धि से भी समझ मे नही आ सकते। तो भी सन्त, मुनि, वेद, पुराण जो कुछ अपनी-अपनी समझ के अनुसार कहते है, सो हे सुन्दर वदने! उन्ही के कथनानुसार जो कुछ कारण मुझे समझ पडते हैं, सो मै तुम्हे सुना देता हूँ।

जब जब होइ धर्म की हानी[1]। बाढहि असुर अधम अभिमानी ।।
करहि अनीति जाइ नहि बरनी। सीदहि विप्र धेनु सुर धरनी ।।
तब तब प्रभु धरि विविध शरीरा। हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा ।।

शब्दार्थ—सीदहि (स०, सद् = त्रास देना) = त्रास देते, सताते हैं।

अर्थ—जिस समय धर्म घट जाता है और नीच घमण्डी राक्षस बढ जाते है तथा अन्याय करने लगते है कि जिनका वर्णन नही हो सकता है, वे ब्राह्मण, गौ, देवता और पृथ्वी को सताने लगते है। उसी समय परमदयालु नारायण नानारूप धारण करके सज्जनो का दु ख दूर करते हैं।

दोहा—असुर मारि थापहि सुरन्ह, राखहिं निजश्रुतिसेतु।
जग विस्तारहि विशद यश, रामजन्म कर हेतु[2] ।।१२१।।

---

१. जब जब होइ धर्म की हानी···इत्यादि—रामरत्नाकर रामायण से—

चौपाई—अज अनवद्य एक अविनाशी। अलख अगोचर अखिल प्रकाशी ।।
भक्त हेतु निर्गुण प्रभु जोई। इच्छा रूप सगुण सो होई ।।
जब जब धर्म होइ निरमूला। प्रगटै असुर धर्म प्रतिकूला ।।
तब तब हरि धरि रूप अनेका। राखै धर्म नीति सविवेका ।।
जो जो हरि लीला अनुसरही। गाय गाय सन्त नर तरही ।।

२. जग विस्तारहि विशद यश, रामजन्म कर हेतु—

छप्पय—बोलि न बोल्यो बोल दियो फिर ताहि न दीन्हे ।।
जुरि न मुच्यो सग्राम क्रोध मन वृथा न कीन्हे ।।
मारि न मारे शत्रु लोक की लीक न लोपी ।।
दान सत्य सनमान सुयश दिशि विद्रिश कियो पी ।।
मद काम क्रोध अरु लोभ वश, भयो न 'केशव दास' भनि ।।
स्वइ परब्रह्म श्री रामजू अवतारी अवतार मनि ।।

अर्थ—राक्षसो को मार, देवताओ की रक्षा करते है, अपनी मर्यादा का पालन कर ससार मे पवित्र कीर्ति फैलाते है, यह भी राम-जन्म का कारण हो सकता है।

सोइ यश गान भक्त भव तरही। कृपासिधु जन हित तनु धरंही ॥
रामजन्म के हेतु अनेका। परम विचित्र एक ते एका ॥

अर्थ दयासागर प्रभु भक्तो के हेतु शरीर धारण करते है, उन्ही की कीर्त्ति का वर्णन कर, भक्तजन ससार से तर जाते है। रामजन्म के अनेक कारण है और वे एक से एक बढ-चढ कर अद्भुत है।

जन्म एक दुइ कहौ बखानी। सावधान सुन सुमति भवानी ॥
द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु विजय जान सब कोऊ[१] ॥

अर्थ—हे सुमुखि पार्वती! चित्त लगाकर सुनो, मैं अवतार धारण करने के दो एक निमित्त कहता हूँ। सब लोग जानते है कि परमेश्वर के प्यारे दो द्वारपाल जय और विजय नाम के है।

विप्रशाप ते दोनौ भाई। तामस असुर देह तिन पाई ॥
कनककशिपु अरु हाटकलोचन। जगत विदित सुरपतिमदमोचन ॥

शब्दार्थ—कनकशिपु (कनक के लिए दूसरा शब्द हिरण्य+कशिपु का शुद्ध रूप कश्यप)=हिरण्यकश्यप। हाटकलोचन (हाटक के लिए हिरण्य+लोचन के लिए अक्ष)=हिरण्याक्ष।

अर्थ—दोनो भाई (सनकादिक के) श्राप से तामसी रूप राक्षसी शरीर पाकर हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष नामधारी दैत्य हुए, जो जगत मे प्रसिद्धि पाकर इन्द्र का अभिमान घटाने वाले हुए।

विजयी समर वीर विख्याता। धरि वराह वपु एक निपाता ॥
होइ नरहरि वपु दूसर मारा। जन प्रह्लाद सुयश विस्तारा ॥

अर्थ—दोनो विजयी तथा लडाई मे बडे योद्धा प्रसिद्ध थे। (परमेश्वर ने) बाराह रूप धारण कर एक अर्थात् हिरण्याक्ष को मार डाला और नृसिह रूप धारण कर दूसरे अर्थात् हिरण्यकश्यप का वध कर अपने भक्त प्रह्लाद की कीर्त्ति फैलाई।

दोहा—भये निशाचर जाइ ते, महावीर बलवान।
कुम्भकरण रावण सुभट, सुरविजयी जग जान ॥१२२॥

अर्थ—वे ही दोनो जाकर बडे पराक्रमी बलवान् राक्षस योद्धा हुए। जो देवताओ को जीतने वाले, बडे योद्धा, जगत प्रसिद्ध कुम्भकरण और रावण नामधारी हुए।

---

१. जय और विजय ये दोनो विष्णुजी के द्वारपाल हैं जिन्हे सनकादि ऋषियो के श्राप से कुछ काल के लिए राक्षस योनि मे जन्म लेना पडा था, जैसा कि श्री मद्भागवत स्कन्ध ३ अ० १६ मे कहा है—

श्लोक—तौतु गीर्वाणऋषभौ, दुस्तराद्धरिलोकत।
हतश्रियौ ब्रह्मशापाद भूतां विगतस्मयौ ॥३३॥

अर्थात् देवो मे श्रेष्ठ, ब्राह्मणो के शाप से तेजहीन, गर्वरहित वे दोनो जय और विजय परमेश्वर के पार्षद उस अप्राप्य बैकुण्ठ धाम से गिरे।

मुक्त न भये हते भगवाना । तीन जन्म द्विजवचन प्रमाना[१] ।।
एक बार तिन के हित लागी । धरेउ शरीर भक्तअनुरागी ।।

अर्थ—यद्यपि भगवान ने उन्हे अपने हाथ से वध किया तो भी सनत्कुमार के वचनों के अनुसार तीन जन्म तक उन्होने मुक्ति नही पाई। भक्तो पर प्रेम करने वाले, परमेश्वर ने एक बार उनके हेतु शरीर धारण किया था।

कश्यप अदिति[२] तहा पितु माता । दशरथ कौशल्या विख्याता ।।
एक कल्प इहि विधि अवतारा । चरित पवित्र किये संसारा ।।

---

१. मुक्त न भये हते भगवाना । तीन जन्म द्विजवचन प्रमाना—विष्णुपदी रामायण से—

भजन—एक समय हरि के दरशन को सनकादिक बैकुठ सिधारे।
तहँ जय विजय पार्षद दोनो रोकि दिये तेहि बाहर द्वारे।।
अति अभिमान जानि तिनके मन बिप्र क्रोध करि वचन उचारे।
तीन जन्म जग होहु निशाचर होइहहु मुक्त कृष्ण के मारे।।
सो सुनि प्रगट भये कश्यप गृह दिति के गर्भ दैत्य तनु धारे।
कनककशिपु अरु हाटकलोचन तेहि नरहरि वाराह सँहारे।।
ते पुनि भये केकशी के सुत रावण कुम्भकरण बल भारे।
राम लषन अरु भरत शत्रुहन बालचरित किय ललित अपारे।।
चारहु कुँवर ब्याहि घर आये जाइ बिपिन भुव भार उतारे।
जन बलदेव सुयश शुभ गावत भये सकल मुनिदेव सुखारे।।

२. कश्यप—वैवस्वत मन्वतर मे ब्रह्मपुत्र मरीचि के पुत्र का नाम कश्यप है। इन्हे प्राचेतस दक्ष ने अपनी ६० कन्याओ मे से १३ कन्यायें ब्याह दी थी। कन्याओ के नाम तथा उनके द्वारा प्रजा की उत्पत्ति का वर्णन यो है—

(१) अदिति—इनसे आदित्य सज्ञक १२ देवताओ की उत्पत्ति हुई।

(२) दिति से हिरण्यकश्यप हुआ था (हिरण्याक्ष नही), फिर ४९ मरुतगण जो देवताओ मे मिल गये। पश्चात् वज्राग पुत्र हुआ।

(३) दनु से सौ प्रसिद्ध दानव यथा विप्रचित, केतु, केशी, दीर्घजिन्ह, निकुभ, तारक, बाण, मेघवान्, महोदर, वातापि, बृषपर्वा, शबर आदि।

(४) काला—इसके चार पुत्र हुए जो कालकेय कहलाये। ये दिन मे समुद्र के भीतर छिपे रहकर रात्रि में अनेक ऋषियो का प्राण हरण कर यज्ञ विध्वस किया करते थे। निदान सब ऋषि इन्द्र को साथ ले ब्रह्मदेव के पास गये और उनकी आज्ञानुसार महात्मा अगस्त्य-जी के पास पहुँचे जिन्होने समुद्र को पी लिया और उसके साथ कालकेयो को भी पीकर पचा गये।

(५) दनायु—इससे विक्षर, बल, वृत्र और वीर ये चार पुत्र हुए।

(६) सिंहिकी को प्रथमार्थक से उत्पन्न हुए लडके सैहिके कहलाये।

(७) क्रोधा—इसका दूसरा नाम क्रोधवशा भी था। इसको क्रोधवश नामक एक लाख पुत्र और ९ कन्याये थी।

(८) प्राधा—ये अप्सराओ और गन्धर्वों की माता थी। इनकी नामावली अन्यत्र देखे।

(९) इला—इसका दूसरा नाम इरा भी है।

(१०) विनता—इससे अरुण (अर्थात् सूर्य का सारथी), गरुड (विष्णुजी का वाहन), अरुणि, वारुणि ये चार पुत्र और सौदामिनी नाम की एक कन्या हुई थी। इसके पश्चात् सात पुत्र और हुए। →

अर्थ—वहा पर कश्यप मुनि और अदिति ये ही पिता-माता अर्थात् ससार मे प्रसिद्ध दशरथ और कौशल्या के नाम से हुए। एक कल्प मे इस प्रकार अवतार ले (नारायण ने) अपने चरित्रो से ससार को पवित्र किया।

दूसरा अर्थ—एक कल्प मे इस प्रकार अवतार धारण कर ईश्वर ने ससार मे अपनी पवित्र लीला विस्तारी।

एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलन्धर सन सब हारे[1] ॥
शम्भु कीन्ह सग्राम अपारा। दनुज महाबल मरै न मारा ॥
परम सती असुराधिप नारी। तेहि बल ताहि न जितहि पुरारी ॥

अर्थ—एक कल्प सग्राम मे जलन्धर राक्षस से हार मान जब सम्पूर्ण देवताओ को दु खित देखा तब महादेवजी ने उससे बडा भारी युद्ध किया परन्तु वह बडा बलवान राक्षस मारे नही मरता था। कारण उस असुरराज की स्त्री बडी पतिव्रता थी। उसी के प्रभाव से त्रिपुर राक्षस के शत्रु शिवजी उसे जीत नही सके थे।

दोहा—छल कर टारेउ तासु व्रत, प्रभु सुरकारज कीन्ह।
जब तेहि जानेउ मर्म सब, शाप कोप कर दीन्ह ॥१२३॥

अर्थ—परमेश्वर ने चतुराई से उसका पातिव्रत्य भग कर देवताओ का काम सिद्ध किया (अर्थात् जलन्धर को शिवजी के हाथ से मरवा डाला)। जब उस वृन्दा को सब भेद समझ पडा तब तो उसने क्रोधित हो परमेश्वर को श्राप दिया।

तासु शाप हरि कीन्ह प्रमाना। कौतुकनिधि कृपाल भगवाना ॥
तहा जलन्धर रावण भयऊ। रण हति राम परमपद दयऊ ॥

अर्थ—परमेश्वर ने उसका श्राप स्वीकार कर लिया, कारण वे बडे दयालु और षडैश्वर्य सम्पन्न है। उस कल्प मे जलन्धर रावण हुआ जिसे श्री राम ने सग्राम मे मार कर मुक्ति दी।

एक जन्म कर कारण येहा। जेहि लगि राम धरी नरदेहा ॥
प्रति अवतार कथाप्रभु केरी। सुन मुनि वरनी कविन घनेरी ॥

अर्थ—एक बार जन्म लेने का पूर्वोक्त कारण है जिससे रामचन्द्रजी ने मनुष्य रूप धारण किया। हे पार्वती, सुनो! प्रभु की हर एक अवतार की कथा मुनियो और कवियो ने नाना प्रकार से कही है।

नारद शाप दीन्ह इक बारा। कल्प एक तेहि लगि अवतारा ॥
गिरिजा चकित भई सुनि बानी। नारद विष्णु भक्त मुनि ज्ञानी ॥

अर्थ—एक समय नारद मुनि ने श्राप दिया था तब एक कल्प मे उसी के हेतु अवतार

---

(११) कपिला—कदाचित् यह निस्सन्तान रही।
(१२) मुनी—इससे १६ गधर्व उत्पन्न (अन्यत्र देखे)
(१३) कद्रू—(सुरसा)—यह सम्पूर्ण सर्पों की जननी है। इनमे से प्रसिद्ध सर्प ये है—शेष, वासुकि, कर्कोटक, तक्षक, अनत इत्यादि। मनसा नामकी इसकी एक कन्या भी थी। कश्यप ऋषि की तीन प्रसिद्ध वशमालिका ये हैं—निध्रुव, रेभ और शडिल।

१. जलधर की कथा—अरण्यकाण्ड रामायण की श्री विनायकी टीका मे देखे ("अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय की" टिप्पणी मे)

हुआ था। इन वचनो को सुन कर पार्वतीजी अचभे मे पडी (और बोली कि) नारद मुनि तो बडे ज्ञानवान् हरिभक्त हैं—

कारण कौन शाप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा॥
यह प्रसग मोहि कहहु पुरारी। मुनि मन मोह आचरज भारी॥

अर्थ—मुनिजी ने किस कारण से श्राप दिया था? लक्ष्मीपति भगवान ने कौन-सा अपराध किया था? हे शिवजी! वह वार्त्ता मुझे सुनाइये। मुनिजी के मन मे मोह उत्पन्न हो, यह बडे अचरज की बात है।

दोहा—बोले विहँसि महेश तब, ज्ञानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहि जब, सो तस तेहि क्षन होइ॥

अर्थ—तब महादेवजी मुसकराकर कहने लगे कि न कोई ज्ञानी है और न मूर्ख। जिसको जब रामचन्द्रजी जैसा करना चाहे वह उस समय वैसा ही हो जाता है (अर्थात् ईश्वर चाहे जिसे ज्ञानी और चाहे जिसे मूर्ख बना सकते है)।

दूसरा अर्थ—तब महादेवजी हँस कर कहने लगे कि ज्ञानी पुरुष बहुधा मूर्खता नही करते परन्तु (उनके सुधार आदि के निमित्त) ईश्वर जब जिसको जैसा चाहे उसे उसी क्षण वैसा बना सकते है। (भाव यह कि वे यदि चाहे तो ज्ञानी से मूर्खता का और मूर्ख से ज्ञान का काम करा सकते है)।

सोरठा—कहौं रामगुणगाथ, भरद्वाज सादर सुनहु।
भवभंजन रघुनाथ, भज तुलसी तजि मोह मद॥ १२४॥

अर्थ—(याज्ञवल्क्यजी कहते है कि) हे भरद्वाज जी! आदरपूर्वक सुनिये, मैं रामचन्द्रजी के गुणानुवाद कहता हूँ। तुलसीदासजी कहते है कि रामचन्द्रजी ससार के आवागमन से छुडाने वाले है। इस हेतु ममता और घमड को छोड कर उनका भजन करो।

(२४. **नारद का मोह और श्राप**)

हिमगिरि गुहा एक अति पावनि। बह समीप सुरसरी सुहावनि॥
आश्रम परम पुनीत सुहावा। देखि देवऋषि मन अति भावा॥

अर्थ—हिमालय पर्वत की एक अति पवित्र गुफा थी, जिसके समीप सुन्दर गगाजी बह रही थी। वह ऐसा अति पवित्र और रमणीय स्थान था कि देखने से ही नारदमुनि के चित्त मे चढ गया।

निरखि शैल सर विपिन विभागा। भयउ रमापतिपद अनुरागा॥
सुमिरत हरिहि श्वास गति बाँधी[1]। सहज विमल मन लागि समाधी॥

अर्थ—पर्वत, नदी और जङ्गल का भाग (सब ही समाधि योग्य) देख लक्ष्मीपति

---

१. 'श्वास गति बाँधी' का पाठान्तर 'श्राप गति बाधी' भी है जिसका अर्थ यह है कि दुर्भगा का श्राप नष्ट हुआ। क्योकि एक कन्या दुर्भगा नाम की पति की खोज मे सर्वत्र फिरी, पर उसे किसी ने स्वीकार न किया। निदान एक समय नारद मुनि को पृथ्वी पर देख उन्हे नैष्ठिक ब्रह्मचारी जान कर भी उनसे कहा कि तुम मेरे पति बनो। नारद मुनि ने इसे स्वीकार न किया। तब उसने उन्हे यह श्राप दिया कि तुम किसी स्थान मे बहुत समय तक स्थिर न रह सकोगे। यो यहाँ पर वह श्राप मानो छूट गया और ये विष्णुजी के ध्यान मे स्थिर हुए (देखे भागवत स्कन्ध ४, अध्याय २६)।

भगवान के चरणो मे प्रेम लग गया। वे परमेश्वर का स्मरण करते-करते प्राणायाम परायण हुए और स्वभाव ही से शुद्धचित्त होने के कारण समाधि लगा बैठे।

मुनिगति देखि सुरेश डराना। कामहि बोलि कीन्ह सनमाना[१] ॥
सहित सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरषि हिय जलचरकेतू ॥

अर्थ—मुनि की समाधि देख देवराज इन्द्र डर गये और उन्होने कामदेव को बुलाकर उनका आदर किया (और बोले) तुम अपने सहाय (बसन्तऋतु, अप्सरा आदि) को लेकर मेरे कार्य के लिए जाओ (वचन सुनते ही), कामदेव प्रसन्न होता हुआ चला।

सुनासीर मन महँ अति त्रासा। चहत देवऋषि मम पुर वासा ॥
जे कामी लोलुप जग माही। कुटिल काक इव सबहि डराही[२] ॥

अर्थ—इन्द्र के मन मे बडा डर यह था कि नारद मुनि मेरे लोक का अधिकार चाहते है। ससार मे जो काम के वशीभूत अथवा लालची होते है, वे कपटी कौए की नाईं सब ही से डरते रहते है।

सूख हाड ले भाग शठ[३], श्वान निरखि गजराज।
छीन लेइ जनि जानि जड़, तिमि सुरपतिहि न लाज ॥१२५॥

अर्थ—जिस प्रकार धूर्त्त कुत्ता सूखी हड्डी लेकर भागते समय सिह को देख ले तो वह मूर्ख समझता है कि सिह कही मेरी हड्डी न छीन ले। उसी प्रकार राजा इन्द्र को भी लज्जा न आई। (अर्थात् जैसे सिह सूखी हड्डी की ओर देखता भी नही, वैसे भी ब्रह्मनिष्ठ महर्षियो को राज्य आदि ऐश्वर्यों से कुछ प्रयोजन नही रहता "ज्यो निस्प्रेही जीव को, तृण समान सुरनाह" परन्तु इन्द्र ने समझा कि नारद मुनि मेरा राज्य न छीन ले। जैसे कुत्ता समझे कि शेर मेरी हड्डी को न छीन ले)।

तेहि आश्रमहि मदन जब गयऊ। निज माया वसन्त निर्मयऊ[४] ॥
कुसुमित विविध विटप बहुरंगा। कूजहि कोकिल गुजहि भृंगा ॥

---

१. कामहिं बोलि कीन्ह सनमाना—
जैसा कि कुमार सम्भव के तीसरे सर्ग मे लिखा है—
श्लोक—अवैमिते सार मत खलुत्वा कार्ये गुरुण्यात्म सम नियोक्ष्ये।
व्यादिश्यते भूधर तामवेक्ष्य कृष्णे न देहो द्वहनायशेष ॥१३॥
अर्थात् (इन्द्र कामदेव से कहते है कि) मै तुम्हारे पराक्रम को जानता हूँ तभी तो तुम्हे अपने तुल्य मान बडे भारी कार्य मे लगाता हूँ (देखें) विष्णु भगवान ने शेषजी मे पृथ्वी धारण करने की शक्ति जान अपने शरीर धारण करने की आज्ञा दी (तभी से वे भगवान् शेषशायी हुए)।

२. कुटिल काक इव सबहि डराही—यही आशय अयोध्याकाण्ड मे आया है। यथा 'सरिस श्वान मघवान युवानू'।

३ सूख हाड ले भाग शठ—
दोहा—श्वान लेइ लोयो लपकि, तापर करत गरूर।
सौ को दे भक्षण करत, धीर वीर गजपूर ॥

४. निज माया वसन्त निर्मयऊ—
सवैया—सिर मोर पखा उर मोतिन माल रसाल कि मजरि कान धरी।
तन सुन्दर रूप अनूप बन्यो पट पीत लसै कर फल छरी ॥

अर्थ—उस आश्रम मे जब कामदेव पहुँचा, तब उसने अपनी माया से बसन्त-ऋतु को उत्पन्न किया। नाना प्रकार के वृक्षो मे रगबिरगे फूल फूल उठे, कोकिलाएँ कूकने लगी और भौरे गुजारने लँगे ।

चली सुहवानि त्रिविध बयारी । कामकृशानु बढावन हारी ।।
रम्भादिक सुरनारि नवीना । सकल असमशर कला प्रवीना ।।
करहि गान बहु तान तरंगा । बहु विधि क्रीडहि पाणि पतंगा[१] ।।

शब्दार्थ—असमशर (असम = ऊने + शर = वाण) = ऊनेवाण वाला अर्थात् पाँच वाण वाला कामदेव (योगरूढि) । पाणिपतगा (पाणि = हाथ + पतङ्ग = गुड्डी) = हाथ गुड्डी की नाई ।

अर्थ—तीन प्रकार की मन मोहिनी वायु (अर्थात् शीतल, मन्द, सुगन्ध) जो कामाग्नि को बढा रही थी, बहने लगी। रम्भादिक नवयौवना देवागनाएँ जो काम-कला मे कुशल थी, अलापचारी समेत बहुत-सी तानें छेड रही थी (हाव-भाव दर्शाने के निमित्त), हाथो को अनेक प्रकार से गुड्डी की नाई नचाती थी।

देखि सहाय मदन हरषाना[२] । कीन्हेसि पुनि प्रपंच विधि नाना ।।
कामकला कछु मुनिहि न व्यापी[३] । निज भय डरेउ मनोभव पापी ।।
सीम कि चाँपि सकै कोउ तासू । बड़ रखवार रमापति जासू ।।

अर्थ—कामदेव अपने सहायको को देखकर प्रसन्न हुआ और फिर उसने भाँति-भाँति के नटखट रचे । (इतने पर भी) कामदेव का प्रभाव नारद मुनि पर कुछ भी न पडा। तब तो पापी कामदेव अपनी ही करतूति के कारण भयभीत हुआ। जिसके राखनहार समर्थ रमापति

मधुरै स्वर गाय नचै तरुनी अति प्रीतम के अनुराग भरी।
ऋतुराज बसन्त विलोकत है नव पल्लव सोद्रुम कुज हरी ।।

१ करहिं गान बहुतान तरगा । बहुविधि क्रीडहिं पाणि पतगा—तानो की उपज के साथ मन मे जो तरगें उठती थी उसी के अनुसार हाव-भावो को हाथो के द्वारा दर्शाती थी, जैसा सत्योपाख्यान मे कहा है—

श्लोक—यतो हस्तस्ततो दृष्टिर्यतो दृष्टिस्ततो मन. ।
यतो मनस्ततो भावो यतो भावस्ततो रस ।। १ ।।
अगेनालबयद्गीत हस्तेनार्थं प्रदर्शयेत् ।
चक्षुर्भ्याम्भावमित्याहु. पादाभ्या ताल निर्णय ।। २ ।।

अर्थात् (नाचने-गाने के समय जो शरीर की व्यवस्था हो जाती है क्योकि) जिस ओर हाथ रहे उसी ओर दृष्टि रहती है और जहाँ पर दृष्टि रहे वही पर मन लगा रहे । जहाँ मन हो वही भाव दर्शाया जाए, और जहाँ भाव दर्शाया गया हो वही रस उत्पन्न होता है।। १ ।।
जिस गीत को मुख से अलापे उसका अर्थ हाथो के इशारे से जतावे, नेत्रो से भाव प्रकट करे और पाँवो से ताल सूचित करता जाए ।। २ ।।

२. देखि सहाय मदन हरषाना—
क० बल्ली को बितान मल्लीदल को बिछौना मजु महल निकुज है प्रमोद वनराज को।
भारी दरबार भरो भौंरन की भीर बैठी मदन दिवान इतिमाम काम काज को।।
'पण्डित प्रवीण' तजि मानिनी गुमान गढ हाजिर हुजूर सुनि कोकिल आवाज को।
चोपदार चातक बिरद बढ़ि बोलै दर दौलत दराज महाराज ऋतुराज को।।→

है भला, उसके पास तक भी कोई पहुँच सकता है ?

दोहा—सहित सहाय सभीत अति, मानि हारि मन मैन ।
गहेसि जाइ मुनिचरण तब, कहि सुठि आरत बैन ।। १२६ ।।

अर्थ—कामदेव अपने सहायको समेत मन से हार मान गया तब उसने डरते-डरते नारद मुनि के चरण गहे और मधुर वचनो से विनती की (कि हे मुनि वर्य ! मेरा अपराध क्षमा कीजिये, मैंने आपका प्रभाव नही जाना था) ।

भयउ न नारद मन कछु रोषा । कहि प्रिय वचन काम परितोषा ।।
नाइ चरण शिर आयसु पाई । गयउ मदन तब सहित सहाई ।।

अर्थ—नारद के चित्त मे कुछ क्रोध न हुआ, उन्होने मधुर वचनो से कामदेव का मन भर दिया । कामदेव उन्हे सिर नवाकर और आशीर्वाद पा अपने सहायको समेत चला गया ।

मुनि सुशीलता आपनि करनी । सुरपति सभा जाइ तिन बरनी ।।
सुनि सबके मन अचरज आवा । मुनिहि प्रशसि हरिहि शिर नावा ।।

अर्थ—कामदेव ने मुनि की सुयोग्यता और अपनी कार्यवाही सब ही इन्द्र की सभा मे जाकर वर्णन की । सबके सब उसे सुनकर अचरज मे पडे और उन्होने मुनि की बडाई कर परमेश्वर को नमन किया ।

तब नारद गवने शिव पाही । जीति काम अहमिति मन माहीं ।।
मारचरित शंकरहि सुनावा । अतिप्रिय जानि महेश सिखावा ।।

अर्थ—फिर नारद मुनि शिवजी के पास गये "मैने काम को जीत लिया" यह अहङ्कार मन मे भरा था । कामदेव का सब चरित्र महादेवजी से कह सुनाया परतु महादेवजी ने उन्हे अपना प्रेमी समझ सिखावन दिया—

बार बार बिनवउँ मुनि तोही । जिमि यह कथा सुनायहु मोही ।।
तिमि जनि हरिहि सुनायहु कबहूँ । चलेहु प्रसग दुरायउ तबहूँ ।।

अर्थ—हे मुनिजी ! मै बारम्बार तुमसे निवेदन करता हूँ जिस प्रकार तुमने यह कथा मुझे सुनाई । उसी प्रकार विष्णुजी से कभी मत कहना, जो कदाचित् चर्चा चल उठे तो भी उसे दबाये रहना ।

दोहा—शम्भु दीन्ह उपदेशहित, नहि नारदहि सुहान ।
भरद्वाज कौतुक सुनहु, हरिइच्छा बलवान ।। १२७ ।।

अर्थ—महादेवजी ने तो भलाई-विचार कर सिखावन दिया था परन्तु वह नारद को अच्छा न लगा । याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे भरद्वाज ! अब दिल्लगी सुनो, परमेश्वर की इच्छा प्रबल है ।

राम कीन्ह चाहै सोइ होई । करै अन्यथा अस नहि कोई ।।

---

३. कामकला कछु मुनिहि न व्यापी—

क० अरे अरे काम कूर बान वृष्टि वृथा पर, कोकिल कलभ नूर मो को न सतावैंगे ।
तरुणी विचित्र वाम महारस भरी काम अनत कटाक्ष धाम चित न चलावैंगे ।।
चन्द्र धर चरण चकोर ह्वै केचित लाग्यो, काम जाग्यो जानि 'केशो' शभु गुण गावैंगे ।
डरै नाही तासु डर भूल्यो है तू काके वर भगवान रुद्र वरु रुद्र ह्वै के धावैंगे ।।

शम्भुवचन मुनि मनहिं न भाये। तब विरचि के लोक सिधाये ॥

अर्थ—रामचन्द्र जी जो करना चाहते है वही होता है, ऐसा कोई नही है जो उसे मेट सके। (देखो) शिवजी का सिखावन नारद के मन मे न जँचा, वे ब्रह्मलोक को चले गये।

एक बार करतल वर वीणा। गावत हरिगुण गानप्रवीणा[1] ॥
क्षीरसिन्धु गवने मुनिनाथा। जहँ बस श्री निवास श्रुतिमाथा[2] ॥

अर्थ—एक समय मुनि श्रेष्ठ नारदजी हाथ मे उत्तम वीन बाजा लिये चतुराई के साथ रामचन्द्रजी के गुण गाते हुए क्षीर समुद्र मे पहुँचे, जहाँ वेदो के मस्तक स्वरूप (अर्थात् सर्वोत्तम) लक्ष्मीधर भगवान् रहते थे।

हर्षि मिले उठि रमानिकेता। बैठे आसन ऋषिहि समेता ॥
बोले विहँसि चराचरराया। वहुत दिनन कीन्ही मुनि दाया ॥

अर्थ—लक्ष्मीनिवास भगवान् उठकर प्रसन्नता से मिले और सिंहासन पर नारद समेत बैठे। फिर चल और अचल जीवो के स्वामी हँसकर कहने लगे कि हे मुनिजी ! आपने बहुत दिनो मे कृपा की।

कामचरित नारद सग भाखे। यद्यपि प्रथम बरजि शिव राखे ॥
अतिप्रचंड रघुपति की माया। जेहि न मोह अस को जग जाया[3] ॥

---

१. गावत हरिगुण गानप्रवीणा—

भजन—तेरी अलख अकार, महिमा अपार, नहिं पावे पार,
गये कितने हार कइ बुद्धिमान कर कर शुमार ॥ तेरी० ॥
तू है अजर अमर, तुझे किसी का न डर, सब से वर तर,
तू है ईश्वर, सर्व विश्व का तू है आधार ॥ तेरी० ॥
तू है अभेद, तू है अछेद, तुझे गावै वेद, तेरा अलख अभेद,
सुत बन्धु भ्रात नहिं तेरी नार ॥ तेरी ॥०
सर्व शक्तिमान, करुणानिधान, सब को हर आन,
तू ही देता दान, हर वक्त खुला तेरा भडार ॥ तेरी० ॥
तू है शाहो का शाह, सब तेरे मदी, अदना आला,
तेरे दर पै खडा, बरनी न जात लीला अपार ॥ तेरी० ॥
तू आनन्द घन, तू पतित पावन, हम तेरी शरन,
सब तन मन धन, करे 'खन्ना दास' तुझ पर निसार ॥ तेरी० ॥

२. श्रुति माथा—

श्लोक—वेदना प्रबला मत्रास्तस्मादध्यात्मवादिन ।
तस्माश्च पौरुषसूक्त नतस्साद्विद्यतेपरम् ॥

अर्थात्—वेदो मे मत्र प्रबल है, उनसे अध्यात्म सबधी बढकर है, उनसे भी पुरुष सूक्त बढ-चढकर है, उससे श्रेष्ठ और कुछ भी नही है।

और भी—

"त त्वौपनिपद पुरुष पृच्छामि' इत्यादि वाक्यो से स्पष्ट ही है कि श्रुतियो मे मुख्य प्रतिपाद्य विषय पुरुष ही है, इस कारण पुरुष को श्रुतिमाथा कहा है।

३. अति प्रचड रघुपति की माया। जेहि न मोह अस को जग जाया ॥

भजन—कहिये अबलो ठहरयो कौन।
सोई भाग्यो तुव साम्हे सो गयो परिछयो जौन ॥ →

अर्थ—यद्यपि शिवजी ने पहले ही से रोक रखा था तो भी नारद ने कामदेव के चरित्रों का वर्णन कर ही दिया। रघुनाथजी की माया बडी प्रबल है, ससार मे ऐसा कौन उत्पन्न हुआ है कि जिसे उसने मोहित न किया हो (अर्थात् सबको किया है)।

दोहा—रूख वदन करि वचन मृदु, बोले श्री भगवान।
तुम्हरे सुमिरन ते मिटहि, मोह मार मद मान ।। १२८ ।।

अर्थ—श्री कौतुकनाथजी चेहरे का रग बदलकर मीठे वचनो से कहने लगे—तुम्हारे भजन करते ही ममता, कामदेव का मद और मान मिट जाते है।

सूचना—इस वाक्य मे श्लेष है क्योकि (१) मुनिजी ने समझा कि परमेश्वर ने कहा है कि हे नारद मुनि! स्वत तुम्हारे ही नाममात्र का स्मरण करने से और प्राणियो के मोह काम मद मान आदि छूट जाते है क्योकि तुम महात्मा हो। (२) नारायण ने यह सुझाया कि "तुम्हरे सुमिरन ते" अर्थात् जब तुम और भजन करोगे तब तुम्हारा यह मोह मार मद मान छूटेगा, अभी नही छूटा है (इसका स्पष्टीकरण आगे होगा जहाँ प्रभु ने कहा है "जपहु जाइ शकर शत नामा")।

सुन मुनि मोह होइ मन ताके। ज्ञान विराग हृदय नहि जाके ।।
ब्रह्मचर्यव्रतरत मति धीरा। तुमहि कि करै मनोभव पीरा ।।

अर्थ—हे मुनि, सुनो! जिसके हृदय मे ज्ञान और वैराग्य नही है, मोह तो उसी के मन मे होता है (अर्थात् तुम्हारे मन मे मोह नही है ऐसा नारद मुनि ने समझ लिया, परन्तु ईश्वर का साकेतिक अर्थ यह था कि जिसे ज्ञान और विराग नही है उसी के मन मे मोह होता है जैसे तुम्हे हुआ जो अहकार के वश जहाँ-तहाँ अपनी प्रशंसा अपने ही मुँह से करते फिरते हो)। ब्रह्मचारी के व्रत मे लगे हुए तुम बुद्धि से धीरजवान हो, क्या तुम्हे कामदेव सता सकता है? (अर्थात् तुम्हे कामदेव नही सता सकता) ऐसा अर्थ मुनिजी ने मान लिया। परमेश्वर का अभिप्राय यह था कि तुम्हे मनोभव पीरा करहि तब ब्रह्मचर्य व्रत रत मति धीरा होओगे (अर्थात् अभी तुम्हे कामदेव सताएगा तब कही ब्रह्मचर्य व्रत मे पक्के धीरजवान होओगे) अभी धीरज है ही नही और न कामदेव का अच्छा आक्रमण हुआ है।

नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना ।।
करुणानिधि मन दीख विचारी। उर अंकुरेउ गर्वतरु भारी[1] ।।

नारद विश्वामित्र पराशर महा महा तपखानि।
असन बसन तजि बन मे निबसे जग कहँ कटक जानि ।।
तिन हूँ की जब भई परीक्षा तब न नेक ठहराये।
माया नटी पकरि तिनहूँ कहँ पुतरी से नचवाये ।।
तो जे जग मे बसत विषय के कोटि पाप मे पागे।
तिन को तुम परखन का चाहत हम तो अघ अनुरागे ।।
अपनो विरद समझि करुणानिधि निज गुण गणहि विचारि।
सब विधि दीन हीन 'हरिचन्दहि' लीजै तुरत उधारि ।।

१. उर अकुरेउ गर्वतरु भारी। (वेगि सो मैं डारिहौ उपारी)—

दोहा—जो पादप अबही लग्यो, वह उखरे छिन माहिं।
जो वह बहु समया बसै, मूलौ नालहि जाहिं ।।
श्रम झरन के छिद्र को, मूँद सकै इक कील।
झरत झरत भारी परै, फिरत पार हुइ पील ।।

अर्थ—नारदजी अभिमान से कहने लगे कि हे भगवान्! सब आप ही की कृपा है। दयासागर प्रभु ने मन से विचार लिया कि इनके हृदय मे भारी गर्व का अकुर जमा है—

वेगि सो मै डारिहौ उपारी। प्रण हमार सेवकहितकारी ॥
मुनि कर हित मम कौतुक होई। अवसि उपाय करब मै सोई ॥

अर्थ—उसे मैं तुरन्त ही उखाड डालूगा "भक्तो का हित करना" यही मेरा प्रण है। जिसमे मुनि का भला हो और मेरा खेल हो, ऐसा ही उपाय मै अवश्य करूँगा।

तब नारद हरिपद शिर नाई। चले हृदय अहमिति अधिकाई ॥
श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी ॥

अर्थ—तब नारद मुनि परमेश्वर के चरणो मे शीश नवा हृदय मे यह विचार करते चले कि "वाह रे हम्"। लक्ष्मीपति ने तब अपनी माया को उकसाया सो उसकी बेढब करतूति तो सुनो!

दोहा—विरचेउ मग महँ नगर तेहि, शतयोजन विस्तार।
श्री निवासपुर ते अधिक, रचना विविध प्रकार[1] ॥ १२९ ॥

अर्थ—माया ने मार्ग मे चार सौ कोस विस्तार का एक नगर रच दिया जिसकी भाँति-भाँति की शोभा बैकुठ से भी बढकर थी।

बसहि नगर सुन्दर नर नारी। जनु बहु मनसिज रति तनु धारी ॥
तेहि पुर बसै शीलनिधि राजा। अगणित हय गय सेन समाजा ॥

अर्थ—उस नगर मे सुन्दर स्त्री-पुरुष बस गये मानो बहुत-सी रति और कामदेव ने रूप धारण कर लिया हो। उस नगर मे शीलनिधि राजा रहता था जिसके अनगिनत हाथी, घोडे और सेना थी।

शत सुरेश सम विभव विलासा। रूप तेज बल नीति निवासा ॥
विश्वमोहिनी तासु कुमारी। श्री विमोह जेहि रूप निहारी ॥

अर्थ—उनका ऐश्वर्य और सुख-चैन सौ इन्द्र के समान था और वह रूपवान्, प्रतापवान् बलवान् और नीतिमान् था। उसकी लडकी का नाम विश्वमोहिनी था जिसके सौदर्य को देख लक्ष्मीजी भी छक जाए।

सो हरि माया सब गुण खानी। शोभा तासु कि जाइ बखानी ॥
करै स्वयम्बर सो नृपबाला। आये तहँ अगणित महिपाला ॥

अर्थ—वही सब गुणो से भरी हुई नारायण की माया थी। भला क्या उसकी शोभा का वर्णन हो सकता है? वही राजकन्या स्वयम्बर कर रही थी, इस हेतु वहाँ बहुत से राजा जमा थे।

मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ। पुरवासिन सन पूछत भयऊ ॥
सुनि सब चरित भूपगृह आये। करि पूजा नृप मुनि बैठाये ॥

---

१. श्री निवासपुर ते अधिक, रचना विविध प्रकार—रामचन्द्रिका से—

नाराच छन्द—रची विरचि वास सी निथम्भ राजिका भली।
जहाँ तहाँ बिछावने बने घने थली थली ॥
वितान श्वेत श्याम पीत लाल नीलका रँगे।
मनो दुहूँ दिशान के समान बिम्ब से जगे ॥

अर्थ—तमाशे के रुचिया मुनिजी उसी नगर मे जा पहुँचे और नगर के निवासियों से सब हाल पूछने लगे। सब हाल सुनकर राजा के घर आये, राजा ने उनको पूजा करके बिठाया ।

दोहा—आन दिखाई नारदहि, भूपति राजकुमारि ।
कहहु नाथ गुण दोष सब, इहि कर हृदय विचारि ।। १३० ।।

अर्थ—राजा ने नारदजी को राजपुत्री दिखलाई और कहा कि हे स्वामी ! हृदय से विचार कर इसके सब गुण-दोष तो कहिये।

देखि रूप मुनि विरति बिसारी[१] । बड़ी बार लगि रहे निहारी ।।
लक्षण तासु विलोकि भुलाने । हृदय हर्ष नहि प्रकट बखाने ।।

अर्थ—रूप को देखते ही मुनिजी का वैराग्य भूल गया और बहुत समय तक वे कन्या को देखते ही रह गये । उसके लक्षण देखकर भूल गये, हृदय मे तो आनन्द था परन्तु स्पष्ट कुछ न बोले।

जो इहि बरइ अमर सो होई । समरभूमि तेहि जीत न कोई ।।
सेवहि सकल चराचर ताही । बरइ शीलनिधि कन्या जाही ।।

अर्थ—जो इसके साथ विवाह करे, वह अमर होना चाहिए और उसे सग्राम मे कोई जीत न सकेगा । जिसे सम्पूर्ण चल और अचल प्राणी सेवा करते हो, उसी को शीलनिधि राजा की कन्या पति बनाएगी।

सूचना—नारद मुनि ने मायावश ऊपर के कहे हुए लक्षणो का यह आशय समझ लिया कि जो इसके साथ विवाह करेगा, वह अमर हो जाएगा और फिर सग्राम मे उसे कोई जीत न सकेगा ।सब चराचर जीव उसकी सेवा करने लगेंगे, जिसके साथ शीलनिधि राजा की कन्या विवाह कर लेगी।

भाव यह कि नारदमुनि ने सब लक्षण उस कन्या ही मे समझे कि जिनके कारण उसका पति ऐसा अद्भुत प्रभावशाली हो जायगा । यथार्थ भाव तो यह था कि ऐसे प्रभावशाली वर अर्थात् परमात्मा के साथ इस कन्या का विवाह होगा न कि किसी साधारण मुनि, राजा आदि के साथ ।

लक्षण सब विचारि उर राखे । कछुक बनाय भूप सन भाखे ।।
सुता सुलक्षणि कहि नृप पाही । नारद चले सोच मन माही ।।

अर्थ—इन लक्षणो को विचार कर (मुनिजी ने) मन ही मे रख छोडा और थोडे से लक्षण अपने मन ही से बनाकर राजा को कह सुनाये। फिर राजा से यह कहकर कि तुम्हारी राजकुमारी के लक्षण अच्छे है, नारदजी बडी चिन्ता करते हुए चले।

करौ जाइ सोइ यतन विचारी । जेहि प्रकार मोहि बरइ कुमारी ।।

---

१ देखि रूप मुनि विरति बिसारी—

दोहा—मृगनयनी के नयन से, उठत काम की आग ।
और भी— जप तप ज्ञान बिलात पुनि, बिसरि जात वैराग ।।

सवैया—जो मन नारि कि ओर निहारत तो मन होत है ताही को रूपा ।
जो मन काहु सो क्रोध करै तब क्रोध मयी होइ जाइ तद्रूपा ।।
जो मन माया ही माया रटै नित तो मन बूडत माया के कूपा ।
'सुन्दर' जो मन ब्रह्म विचारत तो मन होत है ब्रह्मसरूपा ।।

जप तप कछु न होइ इहि काला । हे विधि मिलै कवन विधि बाला[1] ।।

अर्थ—(मन मे सोचते जाते थे कि) मैं जाकर विचार के साथ वही उपाय करूँगा कि जिससे राजकुमारी मेरे साथ विवाह कर ले। इस समय जप-तप कुछ भी नही हो सकता, हे विधाता ! यह नवयौवना मुझे कैसे मिल जाय।

दोहा—इहि अवसर चाहिय परम, शोभा रूप विशाल।
जो विलोकि रीझै कुअँरि, तब मेलै जयमाल ।। १३१ ।।

अर्थ—इस समय तो बडी सुन्दरता और पूरा रूप चाहिए जिसे देखते ही वह बाला रीझ जाए, तब तो जयमाला पहरावे (भाव यह कि 'कन्या वरयते रूप' अर्थात् कन्या तो रूपवान् पति के साथ विवाह करना चाहती है) और यहाँ पर स्वयबर हो रहा है।

हरि सन माँगौ सुन्दरताई । होइहि जात गहरु अति भाई ।।
मोरे हित हरि सम नहि कोऊ । इहि अवसर सहाय सो होऊ ।।

अर्थ—जाकर भगवान् से सुन्दरता माँगू परन्तु अरे भाई ! जाने मे तो बडी देरी होगी। मेरी भलाई चाहने वाला भगवान् के सिवाय और कोई नही है, वे ही है जो इस समय सहायता करे।

बहु विधि विनय कीन्ह तेहि काला । प्रकटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला ।।
प्रभु विलोकि मुनिनयन जुडाने । होइहि काज हिये हरषाने ।।

अर्थ—उस समय भाँति-भाँति से प्रार्थना की तो दयालु कौतुकी प्रभु दिखाई पडे। भगवान् को देखते ही मुनिजी के नेत्र ठडे पडे और वे मन मे प्रसन्न हुए कि अब कार्य सिद्ध होगा।

अति आरत कहि कथा सुनाई । करहु कृपा प्रभु होहु सहाई ।।
आपन रूप देहु प्रभु मोही । आन भाँति नहि पावउँ ओही ।।

अर्थ—बडी दीनता से सब हाल कह सुनाया और बोले—हे प्रभु ! कृपा कीजिए और सहायता दीजिए। हे स्वामी ! आप मुझे अपना ही रूप दे दीजिए, मै उसे दूसरे उपाय से न पा सकूँगा।

जेहि विधि नाथ होइ हित मोरा । करौ सो वेगि दास मै तोरा ।।
निज मायाबल देखि विशाला । हिय हँसि बोले दीनदयाला ।।

अर्थ—हे प्रभु ! जिस उपाय से मेरी भलाई हो वही झटपट कीजिए, मै तो आपका दास हूँ। अपनी माया का भारी प्रभाव देख दीनो पर दया करने वाले भगवान मन ही मन मुसकरा कर बोले—

---

१. हे विधि मिलै कवन विधि बाला—तरुण स्त्री के देखते ही लोगो का चित्त डाँवाडोल हो जाता है। जैसा कहा है—

श्लोक—पुष्प दृष्टवा फल दृष्टवा स्त्री नाच यौवन।
त्रै रक्षानि च दृष्ट्वैव, कश्यनो चलते मन ।।

अर्थात् फूलो को देख, फलो को देख तथा जवान स्त्री को देख (साराश इन तीनो रत्नो को देख) ऐसा कौन होगा जिसका चित्त चलायमान न हो (भाव यह कि उत्तम फूल, अच्छे फल और नवयौवना बाला को देख उन्हे लेने के लिए लोगो का झुकाव होता है)।

दोहा—जेहि विधि होइहि परमहित, नारद सुनहु तुम्हार ।[1]

सोइ हम करब न आन कछु, वचन न मृषा हमार ।।१३२।।

अर्थ—हे नारदजी ! सुनो, जिस प्रकार से तुम्हारी पूरी भलाई हो वही उपाय हम करेगे, दूसरा नही । हमारा कहना झूठ नही हो सकता (भाव यह कि हम तुम्हारी भलाई करेगे और वह तो तुम्हे विवाह न करने देने ही से होगी नही तो ब्रह्मचर्य खडित होकर तुम काम के चेरे समझे जाओगे । यह गूढ भाव नारदजी ने न समझा) ।

कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी । बैद न देइ सुनहु मुनियोगी[2] ।।

इहि विधि हित तुम्हार मै ठयऊ । कहि अस अन्तरहित प्रभु भयऊ ।।

अर्थ—हे योगशील मुनि, सुनिये ! व्याधि से पीडित रोगी मनुष्य खाने के लिए जो कुपथ माँगे तो वैद्य उसे नही देता । इसी प्रकार मैने तुम्हारी भलाई विचारी है, इतना कहकर भगवान अन्तर्ध्यान हो गये ।

साराश यह कि जैसे वैद्य रोगी को कुपथ नही देता, इसी प्रकार मैं भी तुम्हे विवाह न करने दूँगा क्योकि "ये सब रामभक्ति के बाधक है ।"

मायाविवश भये मुनि मूढा । समझी नहि हरिगिरा निगूढा ।।

गवने तुरत तहाँ ऋषिराई । जहाँ स्वयम्बरभूमि बनाई ।।

अर्थ—मुनि तो माया के मारे ऐसे मूर्ख हो रहे थे कि उन्होने भगवान के गुप्त आशय को न समझा । मुनिवर जल्दी से वही जा पहुँचे जहाँ पर स्वयम्बर की रगभूमि बनी थी ।

निज-निज आसन बैठे राजा । बहु बनाव करि सहित समाजा ।।

मुनि मन हर्ष रूप अति मोरे । मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरे ।।

अर्थ—राजा लोग अपने-अपने आसनो पर समाज समेत बन-ठनकर बैठे थे । नारद के मन मे इस बात से प्रसन्नता थी कि मुझमे बडी सुन्दरता है, वह मुझे छोडकर भूल से भी दूसरे को न ब्याहेगी ।

मुनिहित कारण कृपानिधाना । दीन्ह रूप न जाइ बखाना ।।

सो चरित्र लखि काहु न पावा । नारद जानि सबहि शिर नावा ।।

अर्थ—दया के धाम भगवान ने मुनि के हित के लिए उनकी ऐसी बुरी सूरत बना दी थी कि जिसका वर्णन नही हो सकता । यह भेद किसी को न समझ पडा सबने उन्हे नारद समझकर प्रणाम किया ।

---

१. जेहि विधि होइहि परमहित, नारद सुनहु तुम्हार···इत्यादि—

सवैया—लुकि कीजत है कहुँ नेकी बदी वह देखत है सबही गति साफै।
यह भूलि न जानियो जी मे कबौ जु करै हम काम सु कोउ न भाफै ।।
'रसिकेस' इहाँ कछु जैसी करी तेहि मे तिल हू न घटै न इजाफै ।
उत वैसेहि हेत तिहारे तयार है ह्वा हरि के घर होत निसाफै ।।

२. कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी । बैद न देइ सुनहु मुनियोगी—हितोपदेश—

श्लोक—अप्रियस्यापि पथ्यस्य परिणाम. सुखावह ।
वक्ता श्रोता च यत्रास्ति रमन्ते तत्र सपद ।।

अर्थात् अप्रिय तथापि हितकारक उपाय का कहने-सुनने वाला जहाँ होता है वही पर परिणाम सुखदायक होता है और वही सम्पतियाँ रहती हैं ।

दोहा—रहे तहाँ दुइ रुद्रगण, ते जानहि सब भेउ।
विप्रवेष देखत फिरहि, परम कौतुकी तेउ ॥ १३३ ॥

अर्थ—वहाँ पर महादेवजी के दो गण थे जो सब भेद जानते थे, बडे खिलाडी वे दोनो ब्राह्मण के रूप से सब चरित्र देखते फिरते थे।

जेहि समाज बैठे मुनि जाई। हृदय रूप अहमिति अधिकाई ॥
तहँ बैठे महेशगण दोऊ। विप्रवेष गति लखै न कोऊ ॥

अर्थ—जिस सभा मे नारद मुनि जाकर बैठे थे और मन मे यह अहकार भरे थे कि हमारे सरीखा रूप किसी का नही है, वही पर महादेवजी के दो गण ब्राह्मण का रूप धारण किये बैठे थे परन्तु यह भेद कोई जानता न था।

करहि कूट नारदहि सुनाई। नीक दीन्हि हरि सुन्दरताई[1] ॥
रीझहि राजकुँवरि छवि देखी। इनहि वरिहि हरि जानि विशेखी ॥

अर्थ—नारद को सुना-सुनाकर नकले उडाते थे "हरि ने अच्छी सुन्दरता दी है" (अन्तर्गत भाव यह था कि अच्छी हरि अर्थात् बदर की स्वरूपता दी है। भाव यह कि भगवान ने नारद को बदर का-सा बुरा चेहरा बना दिया था। वह केवल राजकुमारी और रुद्र गणो को दिखता था और लोगो को तो नारद ही का चेहरा दिखाई देता था)।

इनकी छवि देख राजपुत्री मोहित हो जाएगी और विशेष करके विष्णु जान इनके साथ विवाह कर लेगी (कूट यह था कि राजपुत्री इनकी मूरत देख क्या रीझेगी ? नही। वह तो इन्हे हरि जान विशेषी वरिहि अर्थात् बन्दर समझकर विशेष जलेगी)।

मुनिहि मोह मन हाथ पराये। हँसहि शभुगण अति सचुपाये ॥
यदपि सुनहि मुनि अटपट बानी। समझि न परै बुद्धि भ्रमसानी ॥

अर्थ—नारद मुनि मोह मे फँसे थे, इसी हेतु उनका मन दूसरे के स्वाधीन था। महादेव के गण चुपचाप दिल्लगी कर रहे थे। यद्यपि मुनिजी उनकी अडबड वाणी सुनते थे, तो भी उसे समझते न थे, क्योकि बुद्धि मे भ्रम हो गया था।

काहु न लखा सो चरित विशेखा। सो स्वरूप नृपकन्या देखा ॥
मर्कटवदन भयकर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही ॥

अर्थ—इस अद्भुत चरित्र को किसी ने न जाना जो स्वरूप राजकुमारी को दिखाई पडा। (क्योकि) बन्दर का-सा मुँह और डरावना शरीर था, जिन्हे देखते ही कन्या के हृदय मे क्रोध आया।

दोहा—सखी सग लै कुँवरि तब, चलि जनु राजमराल।
देखत फिरै महीप सब, करसरोज जयमाल ॥ १३४ ॥

---

१. नीक दीन्हि हरि सुन्दरताई—'हरि' शब्द का अर्थ (१) विष्णु जैसा हरि ने नीक सुन्दरताई दीन्ह (२) बन्दर जैसा (अ) नीक हरि सुन्दरताई अर्थात् बन्दर की सुन्दरता दीन्ह (ब) कह प्रभु सुन सुग्रीव हरीसा (देखे किष्किन्धा-काण्ड)। (३) घोडा, जैसे 'हरि हित सहित राम जब जोहे। रमासमेन रमापति मोहे।' यहाँ पर हरि शब्द का अर्थ घोडा है (देखे बालकाण्ड की श्री विनायकी टीका)। (४) सिह जैसे इसी काण्ड के १२६वे पृष्ठ मे कठिन कुसग कुपथ कराला। तिन के बचन बाघ हरि व्याला' (५) हरन करने वाला, जैसा (सुन्दरकाण्ड के आरभीय श्लोक मे) 'रामाख्य जगदीश्वर सुरगुरु माया मनुष्य हरिम्' (६) हरन करना, यथा—वहाँ हरी निशिचर वैदेही (किष्किन्धाकाण्ड) आदि।

अर्थ—तब राजकुमारी अपने कमलस्वरूपी हाथो मे जयमाल लिए हुए सखियो के साथ ऐसी चाल से सब राजाओ को देखती फिरती थी मानो राजहसिनी हो।

जेहि दिशि बैठे नारद फूली[1]। सो दिशि तेहि न विलोकी भूली ।।
पुनि-पुनि मुनि उकसहि अकुलाही। देखि दशा हरगण मुसकाही ।।

अर्थ—जिस ओर नारद मुनि रूप के घमड मे अकडे बैठे थे, उस ओर कन्या ने भूलकर भी न देखा। मुनिजी बारबार उचकते और सटपटाते थे, उनकी यह दशा देखकर रुद्रगण मुसकरा रहे थे।

धरि नृपतनु तहँ गयउ कृपाला। कुँवरिहर्षि मेली जयमाला ।।
दुलहिन लै गये लक्ष्मिनिवासा। नृपसमाज सब भयउ निरासा ।।

अर्थ—दयालु परमेश्वर राजा का रूप धारण कर वहाँ आये तो राजकुमारी ने प्रसन्नता पूर्वक उनके गले मे जयमाल डाल दी (इस प्रकार जब) लक्ष्मीपति भगवान दुलहिन को ले गये, तब सभा के सब राजाओ की आशा टूट गई।

मुनि अति विकल मोह मति नाठी। मणि गिर गई छूटि जनु गाँठी ।।
तब हरगण बोले मुसकाई। निज मुख मुकुर विलोकहु जाई ।।

अर्थ—मुनिजी की मति मोह के कारण नष्ट हो गई, इस हेतु वे ऐसे अधिक व्याकुल हुए कि मानो गाँठ मे बँधा हुआ रत्न छूटकर खो गया हो। तब रुद्रगण मुसकराकर कहने लगे कि तुम जाकर अपना मुख दर्पण मे तो देखो।

अस कहि दोउ भागे भय भारी। वदन दीख मुनि वारि निहारी ।।
वेष विलोकि क्रोध अति बाढा। तिनहि शाप दीन्हा अति गाढा ।।

अर्थ—ऐसा कह दोनो गण भारी डर के कारण भागे और मुनि ने अपना चेहरा पानी मे देखा। रूप को देखते ही क्रोध बहुत बढ गया और उन्होने गणो को कठोर श्राप दिया।

दोहा—होहु निशाचर जाइ तुम, कपटी पापी दोउ।
हँसेहु हमहि सो लेहु फल, बहुरि हँसेहु मुनि कोउ ।। १३५ ।।

अर्थ—तुम दोनो छली पापी राक्षस हो जाओ। जो हमे देख हँसे हो उसका फल भोगो और अब फिर किसी मुनि से हँसी करोगे, क्यो ?

पुनि जल दीख रूप निज पावा। तदपि हृदय सतोष न आवा ।।
फरकत अधर कोप मन माही। सपदि चले कमलापति पाही ।।

अर्थ—फिर से अपने मुख को पानी मे देखा तो अपना रूप ही दिखाई पडा तो भी

---

१ जेहि दिशि बैठे नारद फूली—बहुत ही कुरूप होने पर ये अपने को बडे ही रूपवान मान फूले न समाते थे। परन्तु राजकुमारी इन्हे देखकर हृदय से जल उठी। यहाँ जटल काफिया की कहानी याद आती है—

(छबीले छैल)

एक बदसूरत आदमी अपने दोस्तो मे बैठा हुआ अपनी ख्याली खूबसूरती की डीग यो मार रहा था कि—मिगहा झिमिर-झिमिर बरसै, मैं पहुलन पर असवार। कमरा की धोधी दये, चना चब्बत चलो जाओ। और मिहरियाँ उठवन की राह और फरकन की राह निहारै। और कहे हाय ! जे कुँवर हम खो न भये। और मैं चलो ही जाओ। वाह रे ! हम्। बलिहारी ऐसे कुँवर की !

हृदय मे कुछ सतोष न हुआ । ओठ फरकते थे और मन मे क्रोध भरा था तो जल्दी-जल्दी लक्ष्मी-पति के पास चले ।

दैहौ शाप कि मरिहौ जाई । जगत मोरि उपहास कराई ॥
बीचहि पथ मिले दनुजारी । सग रमा सोइ राजकुमारी ॥

अर्थ—(मन मे कहते जाते थे कि) ससार मे मेरी हँसी कराई है सो जाकर या तो श्राप दूँगा या हत्या । मार्ग ही मे भगवान मिल गये जिनके साथ लक्ष्मीजी और वही शीलनिधि की कन्या थी ।

बोले मधुर वचन सुरसाई । मुनि कहँ चले विकल की नाई ॥
सुनत वचन उपजा अतिक्रोधा । मायावश न रहा मन बोधा ॥

अर्थ—देवताओ के स्वामी भगवान, मीठे वचन बोले, हे मुनिजी ! घबराये हुए से कहाँ जा रहे हो ? वचत सुनते ही क्रोध बहुत भर आया और माया के अधीन होने से कुछ ज्ञान भी न रहा ।

परसम्पदा सकहु नहि देखी । तुम्हरे इर्षा कपट विशेखी ॥
मथत सिन्धु रुद्रहि बौरायहु । सुरन प्रेरि विषपान करायहु ॥

अर्थ—(वे बोले) तुम्हे दूसरे का ऐश्वर्य नही देख सुहाते, कारण तुम मे द्वेष और छल भरा हुआ है । (देखो) समुद्र मथने के समय मे तुमने शिवजी को भुलावे मे डाल देवताओ से प्रेरणा कराकर विष पिला दिया ।

दोहा—असुर सुरा विष शकरहि, आह रमा मणि चारु ।
स्वारथ साधक कुटिल तुम, सदा कपट व्यौहार ॥ १३६ ॥

अर्थ—राक्षसो को मदिरा, शिवजी को विष देकर आपने लक्ष्मी और कौस्तुभमणि ले लिया । तुम अपना मतलब साधने वाले छलिया हो, सदा कपट के काम किया करते हो ।

परम स्वतंत्र न शिर पर कोई[१] । भावै मनहि करहु तुम सोई ॥
भलेहि मन्द मदेहि भल करहू । विस्मय हर्ष न हिय कछु धरहू ॥

अर्थ—तुम बहुत ही स्वतत्र हो, तुम पर अधिकार रखने वाला कोई दूसरा नही है । जो मन मे आता है वही करते हो । भले को बुरा, बुरे को भला कर देते हो और इस बात की बुराई-भलाई कुछ हृदय मे नही विचारते ।

डहकि डहकि परचेहु सब काहू । अति अशंक मन सदा उछाहू ॥
करम शुभाशुभ तुमहि न बाधा । अब लगि तुमहि न काहू साधा ॥

शब्दार्थ—डहकि (डहकना=ठगना)=ठग करके । परचेहु=परीक्षा ली । साधा

---

१. परम स्वतत्र न शिर पर कोई—यद्यपि नारदजी ने ये वचन माया के वश क्रोधित होकर कहे थे तो भी वे यथार्थ ही निकल पडे । जैसा कि कुमार सभव के दूसरे सर्ग मे कहा है—

श्लोक—जगद्योनिरयोनिस्त्व, जगदन्तो निरन्तक ।
जगदादिरनादिस्त्व, जगदीशो निरीश्वर ॥ ९ ॥

अर्थ—(हे परमेश्वर) आप ससार के उत्पत्ति स्थान है, आपका उत्पत्ति स्थान कोई नही है, आप जगत के प्रलय कर्त्ता है परन्तु आपका अन्त होता ही नही । आप जगत के आदि कारण है आपसे आदि कोई भी नही है, आप ससार के स्वामी है आपका स्वामी कोई नही है (अर्थात् आप अनादि, अनत और स्वतत्र है) ।

(साधना=ठीक-ठाक करना)=ठीक-ठाक किया।

अर्थ—तुमने ठग-ठगकर सबकी जाँच कर डाली, बड़े निडर हो, मन मे बडी उमग भरे रहते हो। भले-बुरे कर्मों का तुम्हे दु ख होता ही नही और अभी तक किसी ने तुम्हे ठीक-ठाक नही किया।

भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा ॥
बचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु शाप मम येहा ॥

शब्दार्थ—बायन (स० बायन)=दान किंवा व्यवहार की रीति पर ब्राह्मणो अथवा सम्बन्धियो को जो मिष्टान्न दिया जाता है।

अर्थ—तुमने अब अच्छे घर मे बायन दिया है सो अपने किये का फल पाओगे (भाव यह कि जैसा बायन मनुष्य दूसरे को देता है उसके बदले मे वैसा ही पाता है। तुमने मुझे धोखा दे, कुरूप कर स्त्री-विरह दु ख आदि दिया है वैसा ही तुम्हे भोगना पडेगा)। मेरा यह श्राप है कि जिस मनुष्य रूप को धारण करके तुमने मुझे धोखा दिया है, वही रूप तुम्हे धारण करना पडेगा।

कपि आकृति तुम कीन्ह हमारी। करिहै कीश सहाय तुम्हारी ॥
मम अपकार कीन्ह अति भारी। नारि विरह तुम होउ दुखारी ॥

अर्थ—जो तुमने मुझे बन्दर का रूप दिया वही बन्दर तुम्हारी सहायता करेंगे। तुमने मुझको बहुत-सी हानि पहुँचाई (अर्थात् मुझे स्त्रीवियोग दु ख पहुँचाया) इस हेतु तुम भी स्त्री के वियोग का दु ख सहोगे।

दोहा—शाप सीस धरि हर्षि हिय, प्रभु सुर कारज कीन्ह।
निज माया की प्रबलता, कर्षि कृपानिधि लीन्ह ॥ १३७ ॥

अर्थ—परमेश्वर ने हृदय मे प्रसन्न हो श्राप को स्वीकार कर देवताओ का कार्य सिद्ध किया (अर्थात् महाबली दैत्यो से छुडाकर देवताओ को स्वर्ग का राज्य दे उनके दु ख दूर करने का उपाय इसी श्राप से सिद्ध समझ उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया) फिर दयासागर भगवान ने अपनी माया के प्रभाव को खीच लिया।

जब हरिमाया दूर निवारी। नहि तहँ रमा न राजकुमारी ॥
तब मुनि अति सभीत हरिचरणा। गहे पाहि प्रणतारति हरणा[1] ॥

१. तब मुनि अति सभीत हरिचरणा। गहे पाहि प्रणतारति हरणा—माया के दूर होते ही नारद मुनि को स्मरण हो आया कि मेरा मन कहाँ तो पहले परमेश्वर मे लीन हो गया था, फिर राजकुमारी पर आसक्त हो मोह मे फँस गया, यहाँ तक कि क्रोधवश हो परमेश्वर को श्राप ही दे डाला, इस हेतु गिडगिडाकर यो विनती करने लगे कि—
सगीत रत्न प्रकाश, द्वितीय भाग से—
गजल—हुई है हालत बुरी हमारी, बचाओ स्वामिन् बचाओ स्वामिन्।
कुकर्म हमने किये है भारी, बचाओ स्वामिन् बचाओ स्वामिन् ॥
न ध्यान माया का हमको आया, विषयो मे ही अपना दिल फँसाया।
जगत मे फँसकर तुझे भुलाया, किया जो हमने वह आगे आया ॥
करे हैं अब पश्चाताप भारी, बचाओ स्वामिन् बचाओ स्वामिन्।
किये पै अपने नजर जो डाले, तो शर्म सारी से मुँह छिपा ले ॥
सदा से उल्टी चली है चाले, बताओ कैसे यह बाजी पा ले।
है अन्त को जीती बाजी हारी, बचाओ स्वामिन् बचाओ स्वामिन् ॥

अर्थ—जब भगवान ने अपनी माया को दूर हटा दिया तब वहाँ न तो लक्ष्मी और न शीलनिधि की कन्या रही। तब मुनि ने बहुत ही भयभीत हो प्रभु के चरण गहे और कहा—हे शरणागत के दु ख दूर करने वाले परमेश्वर ! मेरी रक्षा कीजिये।

मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला ॥
मै दुर्वचन कहे बहुतेरे। कह मुनि पाप मिटहि किमि मेरे ॥

अर्थ—हे कृपालु ! मेरा श्राप झूठ हो जाए। सुनते ही दीनानाथ प्रभु बोले—नही यह तो मेरी ही अच्छा है। मुनिजी बोले—मैंने बहुत से कुवचन आपसे कहे है सो मेरे ये पाप कैसे मिटेंगे?

जपहु जाइ शकर शतनामा। होइहि हृदय तुरत विश्राम ॥
कोउ नहि सिव समान प्रिय मोरे। अस परतीति तजहु जनि भोरे ॥

अर्थ—(विष्णुजी कहने लगे कि) तुम जाकर शकरजी के शतनाम जपो तब तुरन्त तुम्हारे हृदय को शान्ति मिलेगी। शकरजी के समान मुझे कोई भी प्यारा नही है, ऐसा विश्वास तुम भूल करके भी न त्यागना।

जेहि पर कृपा न करहि पुरारी। सो न पाव मुनि भक्ति हमारी ॥
अस उर धरि महि विचरहु जाई। अब न तुमहि माया नियराई ॥

अर्थ—हे मुनिजी ! जिस पर महादेवजी कृपा नही करते, उसे मेरी भक्ति नही मिलती। ऐसा मन मे विचार पृथ्वी पर भ्रमण किया करो। अब माया तुम्हारे पास तक न आएगी।

दोहा—बहु विधि मुनिहि प्रवोधि प्रभु, तब भे अन्तरध्यान।
सत्यलोक नारद चले, करत रामगुण गान[१] ॥ १३८ ॥

अर्थ—परमेश्वर ने नारद मुनि को कई प्रकार से समाधान किया और फिर अन्तर्ध्यान हो गये। तब नारद मुनि रामचन्द्रजी के गुणानुवाद गाते हुए सत्यलोक को सिधारे।

हरगण मुनिहि जात पथ देखी। विगत मोह मन हर्ष विशेखी ॥
अतिसभीत नारद पहँ आये। गहि पद आरत वचन सुनाये ॥

अर्थ—शिवजी के गणो ने नारद मुनि को मोह रहित अति प्रसन्न मन से मार्ग मे जाते

तुम्हारा ही हमको आसरा है, तुम्हारे बिन ऐसा कौन-सा है।
जो दुश्मनो से हमे बचावे, यही हमारी प्रार्थना है।
है पाँच शत्रू हमारे भारी, बचाओ स्वामिन् बचाओ स्वामिन् ॥

१. करत राम गुण गान—

गजल—तेरा नूर सबमे समाया हुआ है। कुल आलम तेरा ही बनाया हुआ है ॥
रमा है तू हर गुल मे मानिन्द बू के। जगत मे तुही जगमगाया हुआ है ॥
चमकते है दुनियाँ मे जो चाँद सूरज। तेरे से ही परकाश पाया हुआ है ॥
बदो नेक आमाल देखे तू सब के। नही छिपता तुझसे छिपाया हुआ है ॥
सजा व जजा तू ही देता है सबको। भरेगा जा जिसने कमाया हुआ है ॥
सिफारिश न झूठी चलैगी किसी की। यह वेदो मे सबको बताया हुआ है ॥
तू है सबका मालिक गरीबो का परवर। जहाँ कुल तेरा ही बसाया हुआ है ॥
तेरी सिफ्त कुदरत पै कुर्बान हूँ मैं। दिलो जान तुझसे लडाया हुआ है ॥
खबर ले लो 'बलदेव' की अब तो साहिब। तुम्हारी ही खिदमत मे आया हुआ है ॥

हुए देखा। बहुत ही डरते-डरते उनके पास आये और उनके चरण छूकर दीन वचन बोले—

हरगण हम न विप्र मुनिराया। बड अपराध कीन्ह फल पाया ॥
शाप अनुग्रह करहु कृपाला। बोले नारद दीनदयाला ॥

अर्थ—हे मुनीश ! हम तो महादेवजी के गण है, ब्राह्मण नही है। जो भारी दोष हम से हुआ उसका फल मिला (अर्थात् जो आपकी हँसी की उसी से आपने हमे शाप दिया)। हे दयालु ! अब आप श्राप से उद्धार कीजिए। (यह सुन) दीनो पर दया करने वाले नारद मुनि बोले—

निशिचर जाइ होउ तुम दोऊ। वैभव विपुल तेज बल होऊ ॥
भुजबल विश्व जितव तुम जहिया। धरिहै विष्णु मनुज तनु तहिया ॥

अर्थ—तुम दोनो जाकर राक्षस तो होओगे परन्तु तुम्हारा ऐश्वर्य, प्रताप और बल बहुत होगा। जब तुम अपनी भुजाओ के बल से ससार को जीत लोगे तब परमेश्वर मनुष्य-रूप धारण करेंगे।

समर मरण हरि हाथ तुम्हारा। होइहहु मुक्त न पुनि संसारा ॥
चले युगल मुनिपद शिर नाई। भये निशाचर कालहि पाई ॥

अर्थ—तब तुम लडाई मे परमेश्वर के हाथ से मरकर मुक्त होओगे और फिर ससार से छूट जाओगे। दोनो मुनिजी के चरणो मे शीश नवा के चले गये। वे थोडे ही समय मे राक्षस हुए।

दोहा—एक कल्प इहि हेतु प्रभु, लीन्ह मनुज अवतार।
सुररजन सज्जनसुखद, हरि भजनभुविभार ॥ १३९ ॥

अर्थ—एक कल्प मे देवताओ को सुख देने वाले, सत्पुरुषो को आनन्द देने वाले और पृथ्वी का भार उतारने वाले प्रभु हरि ने इस कारण से मनुष्य अवतार धारण किया।

इहि विधि जन्म करम हरि केरे। सुन्दर सुखद विचित्र घनेरे ॥
कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरही। चारुचरित नाना विधि करही ॥

अर्थ—इस प्रकार नारायण के सुन्दर सुखदाई और अद्भुत अनेक जन्म और लीलाएँ हुआ करती है। प्रत्येक कल्प मे परमेश्वर अवतार लेते है और भाँति-भाँति की उत्तम लीला करते है।

तब तब कथा मुनीशन्ह गाई। परम विचित्र प्रबन्ध बनाई ॥
विविध प्रसग अनूप बखाने। करहि न सुनि आश्चर्य सयाने ॥

अर्थ—तब ही तब मुनि लोगो ने बहुत ही अद्भुत प्रबन्ध रचकर कथा वर्णन की है। उसमे भाँति-भाँति के उपमारहित प्रसगो का वर्णन किया गया है जिन्हे सुनकर चतुर मनुष्य कुछ अचरज नही मानते।

हरि अनत हरिकथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहु विधि सब सन्ता ॥
रामचन्द्र के चरित सुहाये। कल्प कोटि लगि जाहि न गाये ॥

अर्थ—परमेश्वर का पारावार नही और न उनकी कथाओ का अन्त है, उन्हे सब सत लोग नाना प्रकार से कहते-सुनते है। रघुनाथजी के मनभावने चरित्रो का वर्णन करोडो कल्प तक करने से भी पूरा नही होगा।

यह प्रसंग मै कहा भवानी। हरिमाया मोहहि मुनिज्ञानी ॥

प्रभु कौतुकी प्रणत हितकारी । सेवत सुलभ सकल दुखहारी ।।

अर्थ—हे पार्वती ! मैंने यह प्रसग वर्णन किया कि परमेश्वर की माया से ज्ञानवान मुनि भी मोह मे पड जाते है। परमेश्वर तो कौतुकी है परन्तु शरणागत का हित करने वाले है। (अर्थात् तमाशा देखने के ढँग से वे नारद की नाईं मुनियो को मोह मे डालते है, परन्तु केवल उनका अहकार आदि दोष मिटाकर भक्ति पुष्ट करने के हेतु ही ऐसा करते है)। वे सेवा करने से सहज ही मे मिल जाते है और सब दु खो के दूर करने वाले है।

सोरठा—सुर नर मुनि कोउ नाहि, जेहि न मोह माया प्रबल[1] ।
अस विचारि मन माहि, भजिय महामायापतिहि ।।१४०।।

अर्थ—देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी ऐसा नही है कि जिसे बलवती माया मोह मे न डाले (अर्थात् वह सब ही को मोह मे डाल सकती है)। मन मे ऐसा विचार कर उस प्रबल माया के स्वामी परमेश्वर का भजन करना चाहिए।

अपर हेतु सुन शैलकुमारी । कहउँ विचित्र कथा विस्तारी ।।
जेहि कारण अज अगुण अनूपा । ब्रह्म भयउ कोशलपुर भूपा ।।

अर्थ—(महादेवजी बोले) हे गिरिकन्यके ! वह दूसरा कारण सुनो, मैं उस अद्भुत कथा को विस्तार सहित कहता हूँ जिस निमित्त से जन्मरहित, गुणरहित और उपमारहित ब्रह्म, कोशलपुर के राजा हुए।

जो प्रभु विपिन फिरत तुम देखा । बधु समेत किये मुनि बेखा ।।
जासु चरित अवलोकि भवानी । सती शरीर रहिउ बौरानी[2] ।।

अर्थ—जिन परमेश्वर को तुमने लक्ष्मणजी के साथ मुनियो का भेष धारण किये हुए वन मे विचरते देखा था, हे पार्वती ! जिनकी लीला को देख तुम सतीरूप मे बावली-सी हो गई थी—

अजहुँ न छाया मिटत तुम्हारी । तासु चरित सुन भ्रमरुजहारी ।।

---

१. सुर नर मुनि कोउ नाहिं, जेहि न मोह माया प्रबल "इत्यादि—
लावनी—हरि माया भठियारी ने क्या अजब सराय बसाई है।
जिसमे आकर बसते ही सब जग की मति बौराई है।।
होके मुसाफिर सब ने जिम मे घर-सी नेव जमाई है।
भाँग पडी कूएँ मे जिस ने पिया बना सौदाई है।।
सौदा बना भूर का लड्डू देखत मति ललचाई है।
खाया जिसने वह पछताया यह भी अजब मिठाई है।।
एक एक कर छोड रहे है नित नित खेप लदाई है।
जो बचते सो यही सोचते उनकी सदा रहाई है।।
अजब भँवर है जिस मे पडकर सब दुनियाँ चकराई है।
'हरीचन्द' भगवन्त भजन बिन इससे नही रिहाई है।।

२. जासु चरित अवलोकि भवानी। सती शरीर रहिउ बौरानी—
सवैया—बरजो हम बारबार तुम्हे तुम मानी न मोह की फाँस वरी है।
श्री अवधेश पिता जग के जननी सिय मगल मोद भरी है।।
तिन सो छल जाय कियो बन मे अरु देह विदेहसुता की धरी है।
हम काज किये सब देवन के सुनि के विनती तब तोहि वरी है।।

लीला कीन्हि जो तेहि अवतारा। सो सब कहिहउँ मति अनुसारा ।।

अर्थ—अब भी उसकी लहर तुम्हारे चित्त से नही गई, इस हेतु उनके वे चरित्र सुनो जो भ्रमरूपी रोग के नाश करने वाले है । उन्होने उस अवतार मे जो चरित्र किये उन सबका वर्णन अपनी बुद्धि अनुसार करूँगा ।

भरद्वाज सुनि शकर बानी । सकुचि सप्रेम उमा मुसकानी[1] ।।
लगे बहुरि बरनै वृषकेतू । सो अवतार भयउ जेहि हेतू ।।

अर्थ—(याज्ञवल्क्यजी कहते है) हे भरद्वाज ! महादेवजी के वचनो को सुनकर पार्वती जी पहले तो सकोच मे पडी, फिर प्रेम पूरित हो गई। तत्पश्चात् मुसकराने लगी, फिर महादेवजी वही कथा वर्णन करने लगे कि जिसके कारण अवतार हुआ था ।

दोहा—सो मै तुमसन कहौ सब, सुन मुनीश मन लाय ।
रामकथा कलिमलहरनि, मगल करनि सुहाय ।। १४१ ।।

अर्थ—हे मुनीश्वर ! वह सब मै तुमसे कहता हूँ, मन लगाकर सुनिये। रामचन्द्रजी की कथा कलियुग के पापो की नाश करने वाली, शुभ करने वाली और सुहावनी है ।

(२५. स्वायम्भू मनु और शतरूपा की कथा)

स्वायम्भू मनु अरु शतरूपा[2] । जिन ते भइ नरसृष्टि अनूपा ।।
दम्पति धर्म आचरण नीका । अजहुँ गाव श्रुति जिनकी लीका ।।

अर्थ—स्वायम्भू मनु अपनी स्त्री शतरूपा सहित हो गये हे, जिनसे मनुष्यो की उपमा-रहित सृष्टि हुई है । इन दोनो स्त्री-पुरुषो के धर्म-निर्वाह तथा आचरण उत्तम थे, वेद भी अभी तक उनकी बडाई करते है ।

नृप उत्तानपाद सुत जासू[3] । ध्रुव हरि भक्त भयेउ सुत तासू ।।
लघुसुत नाम प्रियव्रत जाही । वेद पुराण प्रशसत ताही ।।

अर्थ—उनका लडका उत्तानपाद नामका राजा हुआ, जिसका पुत्र ध्रुव ईश्वर भक्त

---

१ सकुचि सप्रेम उमा मुसकानी—सकोच इस बात का कि शिवजी ने कहा कि 'अजहुँ न छाया मिटत तुम्हारी' और प्रेम तथा आनन्द यह सुनकर हुआ कि 'तासु चरित सुन भ्रमरुज हारी'—भाव यह कि अब रामचरित सुनने मे आएगे ।

२. स्वायम्भू मनु अरु शतरूपा—स्वयम्भू जो ब्रह्मदेव है उनके दाहिने अंग से मनुजी उत्पन्न हुए थे। ये चौदहो मनुओ मे पहले मनुजी थे। इनकी स्त्री शतरूपा ब्रह्मदेव के बाये अग से उत्पन्न हुई थी । इनके प्रियव्रत और उत्तानपाद ये दो पुत्र तथा आकूती, देवहूता और प्रसूति ये तीन कन्याये थी। आकूती का विवाह रुचि ऋषि से, देवहूती का कर्दम प्रजापति से और प्रसूती का दक्षप्रजापति से हुआ था। इन मनु के समय को स्वायम्भुव मन्वन्तर कहते है। इसी मन्वन्तर मे ब्रह्मा के सात मानसपुत्र हुए जो सप्तर्षि कहलाये, उनके नाम ये है—१ मरीचि, २ अत्रि, ३ अगिरा, ४ पुलस्त्य, ५ पुलह ६ कतु, और ७ भृगु। मनु और शतरूपा की कठिन तपस्या और अनोखे वरदान की कथा रामचरितमानस ही मे है।

३. नृप उत्तानपाद सुत जासू—उत्तानपाद और प्रियव्रत ये दोनो स्वायम्भू मनु के पुत्र थे। ये दोनों बडे प्रतापी और धर्मात्मा हो गये है। उत्तानपाद से ध्रुव की उत्पत्ति हुई, जिनकी कथा अन्यत्र लिख चुके हैं, छोटे पुत्र प्रियव्रत ऐसे प्रतापी हुए है कि जिनके रथ के पहियो से सात समुद्र हो गये और इन्ही के वश मे ऋषभदेव हुए है।

हुआ। (स्वायम्भू मनु के) लडके का नाम प्रियव्रत था जिनकी बडाई वेद और पुराणो मे गाई गई है।

देवहुती पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम की प्रियनारी ॥
आदि देव प्रभु दीनदयाला। जठर धरेउ जेहि कपिल[1] कृपाला ॥

अर्थ—मनुजी की पुत्री का नाम देवहूती था जो कर्दम मुनि की बडी प्यारी स्त्री थी, जिनके गर्भ से आदि-देव दीनदयाल भगवान ने कपिलदेव का रूप धारण कर जन्म लिया।

सांख्य शास्त्र जिन प्रकट बखाना। तत्त्व विचार निपुण भगवाना ॥
तेहि मनु राज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयसु सब विधि प्रतिपाला ॥

अर्थ—इन महात्मा कपिल देव ने जो ब्रह्मज्ञान मे बडे प्रवीण थे, साख्यशास्त्र का स्पष्ट रूप से वर्णन किया है। उन मनुजी ने बहुत समय तक राज्य किया, जिसमे उन्होने सब प्रकार से परमेश्वर की आज्ञा का पालन किया।

सोरठा—होइ न विषय विराग, भवन बसत भा चौथपन।
हृदय बहुत दुख लाग, जन्म गयउ हरिभक्ति बिन[2] ॥ १४२ ॥

अर्थ—महलो मे बसते-बसते चौथापन (अर्थात् बुढापा) आ गया तो भी भोग-विलास का त्याग न हुआ। मन मे बहुत दु ख हुआ कि इतनी अवस्था हरिभजन बिन बीत गई।

बरबस राज्य सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा ॥
तीरथ वर नैमिष[3] विख्याता। अति पुनीत साधकसिधिदाता ॥

---

१. कपिल—कर्दम प्रजापति और देवहूती से इनकी उत्पत्ति हुई थी। इन्हे चक्रधनु भी कहते है और इनकी गणना सिद्ध देवताओ मे है। ये साख्य शास्त्र के निर्माण कर्त्ता है और इन्होने अपनी माता देवहूती को ब्रह्मतत्त्व का ज्ञान कराया था, सगर के ६० हजार पुत्र इनकी क्रोध दृष्टि से भस्म हो गये थे।

२. जन्म गयउ हरिभक्ति बिन—इसके विषय मे वृहद्राग रत्नाकर का राग कान्हरा तो सुनिये—
सुमिरन कर श्री राम नाम दिन नीके बीते जाते है।
तज विषय भोग सब और काम, तेरे सग न चलसी एक दाम, जो देते है सो पाते है ॥ १ ॥
कौन तुम्हारा कुटुब परिवारा, किसके हो याँ कौन तुम्हारा,
किसके बल हरि नाम बिसारा, सब जीते-जी के नाते है ॥ २ ॥
लख चौरासी भ्रम के माया, बडे भाग्य मानुष तन पाया,
तापर भी नहि करी कमाई, फिर पीछे पछताते है ॥ ३ ॥
जो तू लागे विषय विलासा, मूरख फँसे मौज की फाँसा, क्या देखे श्वासन की आसा,
गये फेर नहिं आते है ॥ ४ ॥

३. नैमिष—इसको नैमिषारण्य भी कहते है। इसका ऐसा नाम पडने का यह कारण है कि—
श्लोक—यतस्तु निमिषेणेदम्, निहत दानव बलम्।
अरण्ये ऽस्मिततस्तेन नैमिषारण्य सज्ञित ॥
भाव यह है कि यहाँ पर विष्णुजी ने एक निमिष भर मे बडे भारी दैत्य को मार डाला था। इसी से इस स्थान का नाम नैमिष किवा नैमिषारण्य हुआ। यह स्थान अवध प्रान्त मे गोमती नदी के किनारे है। यहाँ पर अनेक पुराणो की कथाएँ सूत जी ने सौनकादिक अट्ठासी हजार ऋषियो के प्रति वर्णन की थी। यह बड़ा पवित्र तीर्थस्थान माना जाता है।

अर्थ—तब उन्होने अपने सुत को बरजोरी से राज्य सौप दिया और अपनी स्त्री समेत वन को गवन किया। वहाँ पर नैमिषारण्य जो प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है और जो बडा पवित्र तथा साधको की इच्छा पूर्ण करने वाला है—

बसहि जहाँ मुनि सिद्ध समाजा। तहँ हिय हर्षि चले मनुराजा ॥
पंथ जात सोहहि मतिधीरा। ज्ञान भक्ति जनु धरे शरीरा ॥

अर्थ—जहाँ पर मुनि गणो और सिद्ध लोगो की समाज थी, उसी स्थान को मनु महाराज आनन्दपूर्वक चले। धीरजवान् दम्पति मार्ग मे जाते हुए इस प्रकार शोभा देते थे कि मानो ज्ञान और भक्ति ने शरीर धारण कर लिया हो (ज्ञान के स्थान मे मनुजी और भक्ति के स्थान मे शतरूपा थी)।

पहुँचे जाइ धेनुमति[1] तीरा। हरषि नहाने निर्मल नीरा ॥
आये मिलन सिद्ध मुनि ज्ञानी। धरम धुरधर नृपऋषि जानी ॥

अर्थ—जब गोमती के किनारे जा पहुँचे तब उसके स्वच्छ जल मे आनन्द से स्नान करने लगे। ज्ञानी सिद्ध और मुनिगण उन्हे धर्मधुरीण राजऋषि जानकर मिलने आये।

जहँ जहँ तीरथ रहे सुहाये। मुनिन सकल सादर करवाये ॥
कृश शरीर मुनिपट परिधाना। सत समाज नित सुनहि पुराना ॥

अर्थ—जिन-जिन स्थानो मे सुहावने तीर्थ स्थान थे, मुनियो ने उन्हे वही-वही दर्शन कराये। उनकी देह दूबरी हो गई थी और वे मुनियो के चीर (अर्थात् वल्कल) धारण किये थे तथा सज्जनो की मडली मे प्रतिदिन पुराण सुना करते थे।

दोहा—द्वादस अक्षर मन्त्र वर, जपहि सहित अनुराग।
वासुदेवपदपकरुह,[2] दम्पतिमन अति लाग ॥१४३॥

अर्थ—दोनो स्त्री-पुरुष श्रेष्ठ बारह अक्षर का मत्र बडे प्रेम से जपा करते थे (अर्थात् ओ३म् नमो भगवते वासुदेवाय), सो वासुदेव भगवान के कमलस्वरूपी चरणो मे उन दोनो का मन लग गया।

करहि अहार शाक फल कंदा। सुमिरहि ब्रह्म सच्चिदानंदा ॥
पुनि हरि हेतु करन तप लागे। बारि अधार मूलफल त्यागे ॥

अर्थ—पत्ते, फल और मूल खाकर रहते थे और सच्चिदानद ब्रह्म का स्मरण करते थे। फिर नारायण निमित्त तपस्या करने लगे जिसमे कद और फल भी त्याग, पानी ही के आधार से रहने लगे।

---

१. धेनुमती=गोमती नदी।

देवी लालता नीमसार को जिनके द्वारे पच पराय।
चक्रतीर्थ मे जो बुडकी लेय ताके सकल पाप कटि जाय ॥
दहिने चौकी है भैरो की ऊपर धर्मध्वजा फहराय।
सौनकादि ऋषि करी तपस्या तीरै बही गामती आय ॥

२. वासुदेवपद पकरुह—

श्लोक—सर्वेबसतिवै यस्मिन् सर्वस्मिन्वससेचय।
तमाहुर्वासुदेव च योगिनस्तत्त्व दर्शिनः ॥

अर्थात् जिसमे निश्चय करके सब प्राणियो का निवास है और जो सबके भीतर बस रहा है उन्ही को तत्त्व जानने वाले मुनि 'वासुदेव' कहते है।

उर अभिलाष निरंतर होई। देखिय नयन परम प्रभु सोई॥
अगुण अखंड अनंत अनादी। जेहि चिन्तहिं परमारथवादी॥

अर्थ—हृदय मे लगातार यही इच्छा रहती थी कि उस परमात्मा को अपने नेत्रो से देखे। गुणरहित, खडरहित, अन्तरहित और आदिरहित जिस प्रभु का तत्त्ववेत्ता लोग ध्यान किया करते है।

नेति नेति जेहि वेद निरूपा। चिदानंद निरुपाधि अनूपा॥
शम्भु विरंचि विष्णु भगवाना। उपजहि जासु अंश ते नाना[1]॥

अर्थ—जिसके विषय मे वेदो ने केवल नेति-नेति कहकर निर्णय किया है (अर्थात् वह ब्रह्म क्या है जिसके विषय मे अनेक पदार्थों को ये ब्रह्म नहीं है, ये ब्रह्म नही है, ऐसा कह-कहकर अत मे सिद्ध किया है), जो चैतन्य रूप और आनन्दमय है, उपाधिरहित तथा उपमारहित है और जिस भगवान के अशमात्र से अनेक महादेव, ब्रह्मा और विष्णु उत्पन्न होते रहते है।

ऐसेउ प्रभु सेवक वश अहई। भक्तहेतु लीला तनु गहई॥
जो यह वचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा॥

अर्थ—"ऐसे (शक्तिशाली) परमेश्वर भी अपने भक्तो के वश मे रहते हैं" और उन्ही हेतु कोई भी शरीर धारण कर लेते है—यदि यह कथन वेद ने सत्य कहा है तो हमारी इच्छा भी अवश्य पूरी होगी।

दोहा—इहि विधि बीते वर्ष षट, सहस वारि आहार।
संवत सप्त सहस्र पुनि, रहे समीर अधार॥ १४४॥

अर्थ—इस प्रकार छ हजार वर्ष पानी पी-पीकर बिताये और सात हजार वर्ष तक केवल हवा के आधार से रहे।

वर्ष सहस दश त्यागेउ सोऊ। ठाढे रहे एकपद दोऊ॥
विधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आये बहु बारा॥

अर्थ—दस हजार वर्ष तक वायु का आधार भी छोडकर दोनो एक पाँव से खडे रहे। ब्रह्मा, विष्णु और महादेव इस बडी भारी तपस्या को देख मनुजी के पास कई बार आये।

माँगहु वर बहु भाँति लुभाये। परम धीर नहि चलहि चलाये[2]॥
अस्थिमात्र होइ रहे शरीरा। तदपि मनाक मनहि नहि पीरा॥

---

१ शभु विरचि विष्णु भगवाना। उपजहि जासु अश ते नाना—कुमार सभव सर्ग दूसरा—
श्लोक—त्व पितृणामपि पिता, देवानामपि देवता।
परतोऽपि परश्चासि विधाता वेधसामपि॥ १४॥
अर्थात् तुम पितरो के भी पिता हो, देवताओ के देवता हो और सबसे परे हो तथा तुम सखाओ के भी सिरजन हार हो।

२. माँगहु वर बहु भाँति लुभाये। परम धीर नहिं चलहिं चलाये—इनकी दृढ निष्ठा सियराम रूप ही मे थी, जैसा तुलसीदासजी ने कहा है—
दोहा—(१) स्वारथ परमारथ सुलभ, सकल एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता, उचित न तुलसी तोर॥
(२) स्वारथ सीताराम हैं, परमारथ सियराम।
तुलसी तेरो दूसरे, द्वार कहा है काम॥

शब्दार्थ—मनाक (मनाक्)=स्वल्प, थोडी ही।

अर्थ—अनेक प्रकार से लोभ दिया कि वर माँगो, परन्तु वे बडे धीरजवान थे। उनके डिगाने से न डिगे। दोनो की देह मे केवल हड्डियाँ ही रह गई थी। (अर्थात् रक्त-मास सब सूख गया था) तो भी उनके मन मे थोडा भी दु ख न था।

प्रभु सर्वज्ञ दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृप रानी ॥
मॉग माँग वर भइ नभ बानी। परम गॅभीर कृपामृतसानी ॥

अर्थ—सब ही कुछ जानने वाले परमेश्वर ने उन्हे अपना दास जाना, कारण उन तपस्वी राजा-रानी की अनन्य भक्ति थी (अर्थात् इन्होने सब कुछ त्याग अपने चित्त को सच्चिदानद प्रभु ही मे लगा रक्खा था)। बहुत ही गभीर स्वर की कृपारूपी अमृत से भरी आकाश-वाणी हुई कि वरदान माँगो! माँगो!

मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। श्रवणरध्र होइ उर जब आई ॥
हृष्ट पुष्ट तन भये सुहाये। मानहुँ अबहि भवन ते आये ॥

अर्थ—वह सुहावनी वाणी जो मेरे को भी जिलाने वाली थी, जब कानो के छिद्रो द्वारा हृदय मे पहुँची तो उनके शरीर ऐसे मोटे ताजे हो गये कि मानो अपने राजभवन से अभी आये हो।

दोहा—श्रवणसुधासम वचन सुनि, पुलक प्रफुल्लित गात।
बोले मनु करि दण्डवत, प्रेम न हृदय समात ॥१४५॥

अर्थ—कानो को अमृत के समान वाणी सुनते ही मनुजी प्रेम के मारे रोमाचित हो दण्डवत कर बोल उठे, परन्तु प्रेम उनके हृदय मे नही समाता था।

सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। विधिहरिहर वदित पदरेनू ॥
सेवत सुलभ सकल सुखदायक। प्रणतपाल सचराचर नायक ॥

अर्थ—हे दासो के कल्पवृक्ष और कामधेनु! (अर्थात् भक्तो की मनोकामना पूर्ण करने के निमित्त कल्पवृक्ष और सुरधेनु के समान) प्रभु! आपकी चरणरज की वदना ब्रह्मा, विष्णु और महेश किया करते है। आप सेवन करने से सहज ही मे मिल जाते है और सम्पूर्ण सुखो के दाता है, आप शरणागत पालक और जड-चेतन जीवो के मालिक है।

जो अनाथहित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह वर देहू ॥
जो स्वरूप बस शिब मन माही। जेहि कारण मुनि यतन कराही ॥
जो भुशुण्डिमन मानसहँसा। सगुण अगुण जेहि निगम प्रशसा ॥
देखहि हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रणतारति मोचन ॥

अर्थ—हे दीनानाथ! जो हम पर आपका प्रेम है तो प्रसन्न होकर यह वरदान दीजिये कि जो सुन्दररूप शकरजी के मन मे भरा है और जिसके निमित्त मुनिगण उपाय किया करते हैं, जो कागभुशुण्डिजी के मानसरोवररूपी मन मे हँस की नाई बना रहता है और जिसकी कीर्त्ति वेद मे साकार और निराकार वर्णन की गई है, उस रूप को हम अपने नेत्रो से अघा कर देखे, सो हे शरणागत के दु ख दूर करने वाले! ऐसी कृपा आप कीजिये।

दंपतिवचन परम प्रिय लागे। मृदुल विनीत प्रेमरस पागे ॥
भक्तवछल प्रभु कृपानिधाना। विश्ववास प्रगटे भगवाना ॥

अर्थ—राजा-रानी के शब्द जो मधुर, नम्र और प्रेम रस से परिपूर्ण थे, बहुत ही

सुहावने लगे। इस हेतु भक्तो पर प्यार करने वाले दयासागर जगतव्यापी षडैश्वर्य युक्त परमेश्वर प्रकट हुए।

दोहा—नीलसरोरुह नीलमणि, नीलनीरधर श्याम।
लाजहि तनुसोभा निरखि, कोटि कोटि सत काम ॥ १४६ ॥

अर्थ—नीले कमल, नील मणि तथा सघन बादलो के समान श्यामले शरीर की शोभा को देख सौ करोड कामदेव के समूहो के समूह लज्जित होते थे।

शरदमयकवदन छविसीवाँ[1]। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवाँ॥
अधर अरुण रद सुन्दर नासा। विधुकरनिकरविनिदक हासा[2] ॥

अर्थ—शरद पूनो के चन्द्रमा के समान मुख की छटा की मर्यादा थी, सुन्दर कपोल और ठुड्डी तथा गर्दन शख के समान थी। होठ लाल, दाँत और नासिका सुन्दर और हँसी तो चन्द्रमा की किरणो के समूह को लज्जित करने वाली थी।

नवअम्बुजअबकछवि नीकी। चितवनि ललित भावती जी की॥
भृकुटि मनोजचाप छविहारी। तिलक ललाटपटल द्युतिकारी॥

अर्थ—नये कमल के समान नेत्रो की उत्तम शोभा थी और उनकी हेरन प्यारी और मनमोहिनी थी। भौहो ने तो कामदेव के धनुष की शोभा छीन ली थी और माथे पर तिलक बादल मे बिजली के समान शोभायमान था।

कुण्डल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुसपमाजा॥
उर श्रीवत्स रुचिर वनमाला। पदिकहार भूषण मणिजाला[3] ॥

शब्दार्थ—श्रीवत्स (श्री=लक्ष्मी+वत्स=चिन्ह)=लक्ष्मी का चिन्ह परमेश्वर के हृदय पर है।

अर्थ—सीस पर मुकुट शोभायमान था तथा कानो मे मकर के आकार के कुण्डल और घूँघर वाले बाल भौरो की माल की नाई थे हृदय पर श्रीवत्स नाम की बालो की भौरी थी और

---

१. शरद मयक वदन छवि सीवाँ इत्यादि—
क० —मुकुट झलक सोहै कुचित अलक शुभ तिलक चिलक मनि कुडल निहारिये।
भृकुटी कुटिल नैन ऐन मैन मदहर नासा अनि ललित कपोल सुख कारिये॥
अधर लसत मन्द हसन दसन छवि 'प्रेम' कहै निरखे मिलत फल चारिये।
राम को मुखारविंद सुखकद पर वरु कोटि कोटि चन्द अरविन्द वारि डारिये॥

२ विधुकरनिकरविनिदक हासा—कवि बिहारी लाल-कृत—
छ० मालती पुहुप चाँदनी की द्युति दरशत मुकतान हूँ की प्रभा परम प्रशसी की।
भान उदियानि बिदियान विद्यमान मानि हीरन की खानि चपलानि लानि हँसी की॥
सकल कलानि कमलानि विमलानि लानिमील सानिसानि श्रीबिहारी अवतसी की।
शारदा सकानि शेष मति सकुचानि महामद मुसकानि रामचन्द्र रघुवशी की॥

३ उर श्रीवत्स रुचिर बनमाला। पदिकहार भूषण मणिजाला—
मनहर छन्द—
हिम्मति भरी है निरशक लक जीतिबे को रमा चिन्ह चारु भृगुलता दरशाती है।
परम विशाल बनमाल औ रतन माल मडित अनूप सुखमा सा सरसाती है॥
अति उमगी है महामोद सो रँगी है दया धर्म सौ पगी है अति जनन सुहाती है।
अवध बिहारी हँस वश अवतस धीर वीर रामचन्द्र जू की अति बड़ी छाती है॥

वे मनोहर बनमाला, हीरो का हार तथा हीरो के अगणित भूषण धारण किये थे।

केहरि कन्धर चारु जनेऊ। बाहु विभूषण सुन्दर तेऊ ॥
करि कर सरिस सुभग भुजदंडा। कटि निषंग कर शर कोदण्डा ॥

अर्थ—सिंह के समान कधे, उत्तम जनेऊ और हाथो के अलकार सो भी सुन्दर थे। हाथी की सूँड के समान सुडौल भुजदड, कमर मे तर्कस और हाथ मे धनुषबाण लिये हुए थे।

दोहा—तडित विनिन्दक पीतपट, उदर रेख वर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु[1], यमुन भँवर छवि छीनि ॥ १४७ ॥

अर्थ—बिजली को मात करने वाला पीताम्बर और उदर पर तीन उत्तम रेखाएँ पडती थी (अर्थात् पेट मे तीन सले पडती थी) और नाभि तो इतनी मनोहारिणी थी कि मानो यमुना की भँवर की छटा हरे लेती हो।

पदराजीव वरणि नहि जाही। मुनि मन मधुप बसहि जिन माही[2] ॥
वाम भाग शोभित अनुकूला। आदि शक्ति छविनिधि जगमूला ॥

अर्थ—उनके कमलस्वरूपी चरणो का वर्णन नही किया जा सकता जिनमे मुनियो के भौंरारूपी मन बसते थे। जिनकी बाईं ओर सुन्दरता की खानि, जगत की मूलकारण सुन्दर आदि शक्ति शोभायमान थी।

जासु अश उपजहि गुणखानी[3]। अगणित उमा रमा ब्रह्मानी ॥
भृकुटि विलास जासु जग होई। रामवामदिशि सीता सोई ॥

अर्थ—जिसके अश से गुणो की खदान अनेक पार्वती, लक्ष्मी और ब्रह्माणी उपजती है और जिसकी भृकुटी की लीलामात्र ही से ससार उत्पन्न हो जाता है वही सीताजी रामचन्द्रजी की बाईं ओर थी।

छवि समुद्र हरिरूप विलोकी। इकटक रहे नयनपट रोकी ॥

---

१. नाभि मनोहर लेति जनु, यमुन भँवर छवि छीनि—नाभि की उपमा बहुधा नीचे लिखे अनुसार दी जाती है—

दोहा—मैन मथानी दोत विधि, कुड कूप रस भार।
भँवर विवर छवि रूप को, नाभी गुफा सिंगार ॥

अर्थात् कामदेव की मथानी, ब्रह्मा की दावात, रस का कुड, रस का कुआँ, शोभा की भँवर, स्वरूप की बॉबी और शृगार की गुफा से नाभि की तुलना की जाती है। यथा—

दोहा—मो मन मजन को गयो, उदर रूप सर धाय।
पर्‌यो सुत्रिवली भँवर मे, नाभि भँवर मे आय ॥

२. पदराजीव वरणि नहि जाही। मुनि मन मधुप बसहि जिन माही—कवि बिहारी लाल मल्लायाँ निवासी-कृत नखसिख से—

मनहर छन्द—

तल है अरुण नख अरुण उपल श्याम अति अभिराम आभा उमग अनंद के।
सन्त मन रञ्जन सुभक्त सैन अञ्जन है प्रागराज मजन है भजन है फन्द के ॥
काम गर्व गजन प्रकाम प्रभा पुजन है प्रेम सिंधु कजन बिहारी सुखकन्द के।
आपदा हरन सर्व सम्पदा करन सदा चैन आचरण है चरण रामचन्द के ॥

३ जासु अश उपजहि गुणखानी' 'आदि—देखो टि० पृ० २१

चितवहिं सादर रूप अनूपा[१] । तृप्ति न मानहिं मनु शतरूपा ॥

अर्थ—(राजा-रानी) सुन्दरता की खान भगवान के रूप को देखकर ऐसी टकटकी बाँधकर देखते रह गये कि नेत्रो के पलको का व्यापार बद हो गया । मनु और शतरूपाजी उस उपमारहित छवि को आदरपूर्वक देखते-देखते भी सतोष को न प्राप्त होते थे ।

हरष विवश तनु दशा भुलानी । परे दण्डइव गहि पद पानी ॥
शिर पर से प्रभु निजकरकंजा । तुरत उठाये करुणापुजा ॥

अर्थ—प्रेम के मारे शरीर की सुध भूल गये, उनके चरणो को अपने हाथो से पकड लठिया की नाई पृथ्वी पर जा पडे । दयासागर परमेश्वर ने उनके शीश पर अपने हस्त कमलो से स्पर्श कर उन्हे शीघ्र ही उठा लिया ।

दोहा—बोले कृपानिधान पुनि, अति प्रसन्न मोहि जानि ।
मॉगहु वर जोइ भाव मन, महादानि अनुमानि[२] ॥१४८॥

अर्थ—फिर दयासागर प्रभु बोले कि तुम मुझे बहुत प्रसन्न जानकर तथा बडे दाता विचारकर अपनी इच्छा अनुसार वरदान माँग लो।

सुनि प्रभुवचन जोरि युग पानी । धरि धीरज बोले मृदुबानी ॥
नाथ देखि पदकमल तुम्हारे । अब पूरे सब काम हमारे ॥

अर्थ—(मनुजी) परमेश्वर के वचनो को सुन दोनो हाथ जोडकर धीरज धरके मधुर वचन बोले—हे प्रभु ! आपके कमलस्वरूपी चरणो को देख अब हमारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हुए ।

एक लालसा बडि मनमाही । सुगम अगम कहि जाति सो नाही ॥
तुमहि देत अति सुगम गोसाई । अगम लाग मोहि निज कृपणाई ॥

अर्थ—हमारे मन मे एक भारी इच्छा है जो सुगम और अगम दोनो है और इसी हेतु कहते नही बनती । हे गोस्वामीजी ! आपको तो उसे पूर्ण करना सुगम है परन्तु मुझे अपनी कृपणता के कारण अगम समझ पडती है ।

यथा दरिद्र विबुधतरु जाई । बहु सपति मॉगत सकुचाई ॥
तासु प्रभाव जान नहिं सोई । तथा हृदय मम संशय होई ॥

अर्थ—जैसे (कोई) दरिद्री कल्पवृक्ष के नीचे जाए और बहुत-सा धन माँगने मे सकोच करे। क्योकि वह उसकी महिमा को नही जानता, ऐसे ही मेरे मन मे दुविधा उठती है (अर्थात् दरिद्री ने अधिक धन तो देखा ही नही, इस हेतु वह कल्पवृक्ष से, चाहे जितना धन दे सकता है,

---

१. चितवहिं सादर रूप अनूपा—

क० मुसकानि बोलनि बिलोकनि मधुर चाहि सुधापिक झख गज मन मे न आवही ।
बदन विलोचन चरण कर वर पेखि कज इन्दु मीन मृग समता न पावही ॥
नासिका सुकठ ओठ रदन निहारि करि कोर औ कपोत बिम्ब दाडिम न भावही ।
वदत 'गुलाम राम' नखसिख नीके राम उपमा कहे ते कवि कुकवि कहावही ॥

२. महादानि अनुमानि—जैसा कहा है—

दोहा—जिनके चित्त उदार है, रीझत जेहि तेहि चाल ।
माल बजाये हू करै, गौरीकन्त निहाल ॥ १ ॥
मोती देत मराल को, मधुकर को मकरन्द ।
भूखे प्यासन अन्न जल, किलजग को सुखकन्द ॥ २ ॥

अधिक द्रव्य माँगने मे डरता है। इसी प्रकार आप तो सब कुछ दे सकते है परन्तु मै, अपने दरिद्र स्वभाव के कारण माँगने मे डरता हूँ कि कदाचित् आप दे या न दें)।

सो तुम जानहु अंतरयामी। पुरबहु मोर मनोरथ स्वामी।।
सकुच बिहाइ माँग नृप मोही। मोरे नहि अदेय कछु तोही।।

अर्थ—सो हे घटघटवासी प्रभु ! आप सब जानते हो, हे नाथ ! मेरी मनोकामना पूरी कीजिए। हे राजन् ! तुम सकोच छोडकर मुझसे माँगो। ऐसी कोई वस्तु मेरे पास नही जो मैं तुम्हे न दे सकूँ (अर्थात् तुम माँगो तो सही, मै तुम्हे सब कुछ दे सकता हूँ)।

दोहा—दानि शिरोमणि कृपानिधि, नाथ कहौ सतभाव।
चाहौ तुमहि समान सुत, प्रभु सन कवन दुराव।।१४९।।

अर्थ—हे दानियो मे श्रेष्ठ दयासागर प्रभु ! मै सच्चे स्वभाव से कहता हूँ, मै आप ही के समान पुत्र चाहता हूँ, अपने स्वामी से क्या छिपाऊँ।

देख प्रीति सुन वचन अमोले। एवमस्तु करुणानिधि बोले।।
आप सरिस खोजौ कहँ जाई। नृप तव तनय होव मै आई।।

अर्थ—उनकी प्रीति देख तथा उनके अपूर्व वचन सुन दयासागर प्रभु कहने लगे, ऐसा ही हो। हे राजन् ! मै अपने सदृश ढूँढने को कहाँ जाऊँ (अर्थात् मेरे सदृश जब कोई कही हो तब न) मै ही आकर तुम्हारा पुत्र बनूँगा।

शतरूपहि बिलोकि कर जोरे। देवि माँग वर जो रुचि तोरे।।
जो वर नाथ चतुर नृप माँगा। सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा।।

अर्थ—शतरूपा को हाथ जोडे हुए देखकर (परमात्मा कहने लगे) हे देवि ! जो तुम्हारी इच्छा हो सो वरदान तुम भी माँग लो। (शतरूपा बोली) हे प्रभु ! जो वरदान चतुर राजाजी ने माँगा है सो हे दयाल ! वह मुझे भी बहुत ही अच्छा लगा।

प्रभु परन्तु सुठि होत ढिठाई। यदपि भक्त हित तुमहि सुहाई।।
तुम ब्रह्मादि जनक जगस्वामी। ब्रह्म सकल उर अंतरयामी।।

शब्दार्थ— सुठि (सुष्टु)=सुन्दर, बहुत।

अर्थ—हे नाथ ! तो भी यह बहुत ढीठपन होता है, यद्यपि अपने भक्त के कारण आप को सुहावना समझ पडता है। ससार के स्वामी आप ब्रह्मा आदि देवताओ के पिता हो तथा आपका ब्रह्मरूप सबके हृदय मे बसा हुआ है।

अस समझत मन संशय होई। कहा जो प्रभु प्रमाण पुनि सोई।।
जे निज भक्त नाथ तव अहही। जो सुख पावहि सो गति लहही।।

अर्थ—इस प्रकार विचार करने से मन मे सदेह होता है (अर्थात् जगत उत्पन्न-कर्त्ता सब देवादि के पिता सो राजा के पुत्र कैसे ? ऐसा विचार करने से शका तो होती है) परन्तु जो आप कह चुके सो सत्य ही है। (उसका कारण मैं यह समझती हूँ कि) हे नाथ ! जो आपके भक्त है वे उसी गति को प्राप्त होते है कि जिससे उन्हे सुख मिले (अर्थात् आप मुझे व राजा जी को सुखी करने के हेतु अवश्य हमारे सुत बनेगे)।

दोहा—सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरण सनेहु।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु, मोहि कृपा करि देहु।।१५०।।

अर्थ—हे प्रभु ! वही आनद, वही गति, वही भक्ति और वही आपके चरणो मे प्रीति,

वही ज्ञान और वही बर्त्ताव (जो आपका अनन्य भक्तो के साथ रहा करता है वही) कृपा कर के मुझे दीजिये ।

सुनि मृदु गूढ़ रुचिर वच रचना । कृपासिधु बोले मृदुवचना ॥
जो कछु रुचि तुम्हरे मनमाही । मै सो दीन्ह सब संशय नाही ॥

अर्थ—नम्र, गूढ और मनोहर वचनचातुरी सुनकर दयासागर परमेश्वर भी मधुर वचन बोले—जो कुछ इच्छा तुम्हारे मन मे है वह सब मैंने तुम्हे दी, इसमे सदेह नही ।

मातु विवेक अलौकिक तोरे । कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरे ॥
वन्दि चरण मनु कहेउ बहोरी । और एक विनती प्रभु मोरी ॥

अर्थ—हे माता ! मेरी कृपा से तुम्हारा अनोखा विवेक कभी न मिटेगा । मनुजी चरणो की वदना करके फिर से कहने लगे, हे नाथ ! मेरी एक प्रार्थना और भी है ।

सुत विषयिक तव पद रति होऊ । मोहि बड मूढ़ कहइ किन कोऊ ॥
मणि विन फणि जिमि जल बिन मीना[१] । मम जीवन तिमि तुमहि अधीना ॥

अर्थ—आपके चरणो मे मेरी प्रीति पुत्र के भाव से रहे अर्थात् मै आपको अपना पुत्र समझते हुए भी आपके चरणो मे प्रीति रक्खूँ चाहे कोई मुझे बडा मूर्ख क्यो न कहे परन्तु मेरा जीना तुम्हारे आधार से रहे । जैसे मणि के आधार से सर्प और जल के आधार से मछली जीती रहती है।

अस वर माँगि चरण गहि रहेउ । एवमस्तु करुणानिधि कहेऊ ॥
अब तुम मम अनुशासन मानी । बसहु जाइ सुरपति रजधानी ॥

अर्थ—ऐसा वरदान माँग चरण पकड के रह गये, तब दयासागर रामचन्द्रजी बोले कि ऐसा ही हो । अब तुम मेरी आज्ञा मानकर इन्द्रलोक मे जा बसो ।

सोरठा—तहँ करि भोग विशाल, तात गये कछु काल पुनि ।
होइहहु अवध भुआल, तब मै होब तुम्हार सुत ॥ १५१ ॥

अर्थ—वहा पर भारी आनन्द भोगकर हे प्यारे ! कुछ समय बीत जाने पर तुम अयोध्या के राजा होओगे, उस समय मैं तुम्हारा पुत्र होऊगा।

इच्छामय नरवेश सवाँरे । होइहौ प्रकट निकेत तुम्हारे ॥
असन सहित देह धरि ताता । करिहौ चरित भक्तसुखदाता[२] ॥

---

१. जल बिन मीना—स्मरण रहे कि पुत्रभाव रखते हुए दशरथजी ने श्री रामचन्द्रजी के चरणो मे अटल प्रीति रक्खी जो लोक-व्यवहार की दृष्टि से अनुचित-सी दीख पड़ती है परन्तु उन्होने उसे पूर्ण रूप से निबाहा जिसका उदाहरण गास्वामीजी ने यथा योग्य दर्शाया है कि—

दोहा—मीन काटि जल धोइये, खाये अधिक पियास ।
तुलसी प्रीति सराहिये, मुएहु मीत की आस ॥

दशरथजी का ठीक ऐसा ही हाल हुआ, उन्होने रामचन्द्रजी के वनवासी होते ही प्राण त्याग दिये, फिर भी मुक्त न हो स्वर्ग मे निवास किये रहे । निदान रावण-बध के पश्चात् फिर आकर श्री रामचन्द्रजी के दर्शन कर मुक्त हुए । इस प्रकार से उन्होने प्रीति निवाही क्योकि परमात्मा ही पुत्ररूप से अवतरे थे ।

२. अशन सहित देह धरि ताता । करिहौ चरित भक्तसुखदाता—
परमेश्वर अगणित अशो से पृथ्वी पर अवतीर्ण हो कार्य सिद्ध किया करते हैं उनमे से यहाँ→

अर्थ—अपनी इच्छा अनुसार मनुष्य का रूप धारण कर तुम्हारे महलो मे प्रकट होऊँगा। हे प्यारे ! मैं अपने अशो समेत (अर्थात् लक्ष्मण, भरत आदि के रूप से) ऐसी लीला करूगा कि जिससे भक्तो को आनन्द प्राप्त हो ।

जेहि सुनि सादर नर बड भागी । भव तरिहहि ममता मद त्यागी ।।
आदिशक्ति जेहि जग उपजाया । सोउ अवतरहि मोरि यह माया ।।

अर्थ—जिन्हे बडे भाग्यवान् मनुष्य आदर से सुनकर ममता और मोह को छोड ससार से मुक्त हो जायँगे । मेरी माया जो आदिशक्ति है और जिसने सब ससार को उत्पन्न किया है, वह भी अवतार लेगी ।

पुरउब मै अभिलाष तुम्हारा । सत्य सत्य प्रण सत्य हमारा ।।
पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना । अन्तरध्यान भये भगवाना ।।

अर्थ—मै तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा, सच है ! सच है ! हमारा प्रण सच है ! (तीन बार किसी बात को दुहराने से मनुष्य को निश्चय हो जाता है) । दया-सागर परमेश्वर इस प्रकार बारम्बार कहकर अन्तर्ध्यान हो गये ।

दम्पति उर धरि भक्ति कृपाला । तेहि आश्रमनि बसे कछु काला ।।
समय पाइ तनु तजि अनयासा । जाइ कीन्ह अमरावति वासा ।।

अर्थ—राजा रानी दयासागर भगवान् की भक्ति को हृदय मे धारण कर उसी स्थान मे कुछ दिन रहते रहे । समय आते ही दोनो बिना क्लेश के शरीर त्याग इन्द्रपुरी मे जा बसे ।

दोहा—यह इतिहास पुनीत अति, उमहि कहा वृषकेतु ।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि, रामजन्म कर हेतु ।। १५२ ।।

अर्थ—यह बहुत ही पवित्र कथा शिवजी ने पार्वती से कही । (याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि) हे भरद्वाज ! अब रामचन्द्रजी के अवतार का दूसरा कारण सुनो ।

(२६. प्रतापभानु राजा और कपटी मुनि की कथा)

सुन मुनि कथा पुनीत पुरानी । जो गिरिजा प्रति शम्भु बखानी ।।
विश्वविदित इक कैकय देशू । सत्यकेतु तहँ बसै नरेशू ।।

अर्थ—हे मुनि जी ! वह पवित्र पुरानी कथा सुनो, जो महादेवजी ने पार्वती से कही थी । ससार मे प्रसिद्ध एक कैकय नाम का देश है। वहाँ पर सत्यकेतु नाम का राजा रहता था।

धर्म धुरन्धर नीति निधाना । तेज प्रताप शील बलवाना ।।
तेहि के भये युगल सुतवीरा । सब गुणधाम महारण धीरा[1] ।।

पर तीन विशेष अशो की सूचना है, सो यो कि (१) जिस अश से पृथ्वी का धारण करते है सो वह शेषावतार लक्ष्मणजी के रूप मे, (२) वह अश जिससे पृथ्वी का भरण-पोषण करते है सो भरतजी के रूप मे, और (३) जिस अश से शत्रुओ का नाश करते है वह विशेष कर शत्रुघ्न के रूप मे जिन्होने लवणासुर का वध किया था ।

१. सब गुणधाम महारण धीरा—मनु सहिता के ७वे अध्याय के १६०वे श्लोक मे लिखा है कि राजाओ में छ. गुण प्रधान होना चाहिए, जैसे (१) सन्धि, (२) विग्रह, (३) यान (चढाई), (४) आसन, (५) द्वैधी भाव, और (६) आश्रय । इन सबके भेद और लक्षण मनु सहिता मे विस्तारपूर्वक दिये गये हैं ।

अर्थ—वह धर्म मे श्रेष्ठ, नीति मे परिपूर्ण, तेजवान्, प्रतापी, शीलवान् और बली था। उसके दो पुत्र हुए जो बलवान्, सब गुणो से भरे हुए बडे योद्धा थे।

राजधानि जेठे सुत आही। नाम प्रतापभानु[1] अस ताही॥
अपर सुतहि अरिमर्दन नामा। भुज बल अतुल अचल सग्रामा॥

अर्थ—राजगद्दी का अधिकारी तो जेठ पुत्र था, जिसका नाम प्रतापभानु था। दूसरे लडके का नाम अरिमर्द्दन था जिसके भुज के दडो का प्रताप भारी था और वह सग्राम मे स्थिर रहने वाला था।

भाइहि भाइहि परम सुमीती। सकल दोष छल वर्जित प्रीती॥
जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा। हरि हित आप गवन वन कीन्हा॥

अर्थ—भाई-भाई मे बडी सुमति थी और उनका प्रेम सब प्रकार से द्वेष तथा छलहीन था। राजा ने बडे लडके को सिंहासन सौपा और आप परमेश्वर के निमित्त (अर्थात् भजन करने के लिए) वन मे चले गये।

दोहा—जब प्रतापरवि भयउ नृप, फिरी दोहाई देश।
प्रजापाल अतिवेद विधि, कतहुँ नही अघलेश॥१५३॥

अर्थ—जब प्रतापभानु राजा हुए तो उनका प्रबन्ध देशभर मे हो गया। वे वेद के विधान से प्रजा की रक्षा करने लगे, पाप तो कही ढूँढने को भी न था।

नृप हितकारक सचिव सयाना[2]। नाम धर्मरुचि शुक्र समाना॥
सचिव सयान बन्धु बलवीरा। आप प्रतापपुंज रणधीरा॥

अर्थ—राजा का हितकारी एक चतुर मत्री था, जिसका नाम धर्मरुचि था, वह शुक्राचार्य के समान (नीति का जानने वाला) था। (इस प्रकार) मत्री चतुर, भाई पराक्रमी और आप स्वत तेजस्वी तथा योद्धा था।

---

१. प्रतापभानु—पूर्व जन्म मे यह राजा प्रतापी नाम से परमेश्वर का पार्षद् था। इस पर आदि शक्तिजी का बडा प्रेम था। एक समय गेद के खेल मे उसने अपनी सफलता दर्शाई। उससे प्रसन्न होकर प्रभु ने आज्ञा की कि तुम पृथ्वी पर भानु-प्रताप नामी राजा होकर बडे बलवान् होओगे और सम्पूर्ण राजाओ को अपने वश मे करोगे, फिर ब्राह्मणो के श्राप से तुम बडे प्रतापी राक्षस रावण के नाम से प्रसिद्ध होओगे। तब हमसे युद्ध करके मुक्त हो जाओगे। यह आज्ञा मै तुम्हे अपनी लीला के निमित्त करता हूँ।

स्मरण रहे कि इस धर्मात्मा महाप्रतापी भानुप्रताप राजा को जो निष्कारण ब्राह्मणो का श्राप हुआ, उसमे केवल ईश्वर की इच्छा और आज्ञा ही मुख्य कारण है। विस्तारपूवक हाल महारामायण मे मिलेगा।

२. नृपहितकारक सचिव सयाना—रामचन्द्रिका मे महोदर ने रावण से शुक्राचार्य की नीति के अनुसार चार प्रकार के मत्री उदाहरण सहित यो कहे हैं—

छप्पय—एक राज के काज हतै निज कारज काजे।
जैसे सुरथ निकारि सबै मत्री सुख साजे॥
एक राज के काज आपने काज बिगारत।
जैसे लोचन हानि सही कवि बलिहि निबारत॥
इक प्रभु समेत अपनो भलो करत दाशरथि दूत ज्यो।
इक अपनो प्रभु को बुरो करत रावरे पूत ज्यो॥

सेन सग चतुरंग अपारा[1] । अमित सुभट सब समर जुझारा ।।
सेन विलोकि राउ हरषाना । अरु बाजे गहगहे निसाना ।।

अर्थ—साथ मे अनगिनती चतुरगिनी सेना थी जिसमे हजारो योद्धा रणबाँकुरे थे। सेना को देखकर राजाजी प्रसन्न हुए, इतने मे घोरध्वनि से जुझाऊ बाजे भी बजने लगे।

विजय हेतु कटकई बनाई । सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई ।।
जहँ तहँ परी अनेक लराई । जीते सकल भूप बरिआई[2] ।।

अर्थ—दिग्विजय करने के निमित्त सेना तैयार की और अच्छा दिन देख राजा डका बजाकर चला। अनेक स्थानो मे युद्ध हुए । (परन्तु राजा ने) भुजबल से सम्पूर्ण राजाओ को परास्त किया।

सप्त द्वीप[3] भुजबल वश कीन्हे । लै लै दंड छांडि नप दीन्हे ।।
सकल अवनिमंडल तेहि काला । एक प्रतापभानु महिपाला ।।

अर्थ—अपने बाहुबल से सातो द्वीपो को अपने अधीन कर लिया और 'कर' लेकर राजाओ को छोड दिया। उस समय सम्पूर्ण भूमडल मे केवल एक ही महाराजा प्रतापभानु सुनाई पडते थे ।

दोहा—स्ववश विश्व करि बाहुबल, निज पुर कीन्ह प्रवेश ।
अर्थ धर्म कामादि सुख, सेवे समय नरेश ।। १५४ ।।

अर्थ—भुजबल से सब ससार को अपने अधीन कर महाराजा अपने नगर मे आ गये । जहाँ वे अर्थ, धर्म, काम आदि सुखो का समय-समय पर उपभोग लेने लगे ।

भूप प्रतापभानु बल पाई । कामधेनु भइ भूमि सुहाई ।।
सब दुख वरजित प्रजा सुखारी । धर्मशील सुन्दर नर नारी ।।

अर्थ—महाराजा प्रतापभानु के अधिकार मे पृथ्वी कामधेनु के समान इच्छित पदार्थों की देने वाली अतएव हरी-भरी हो गई। ('यथा राजा तथा प्रजा' इस न्याय से) प्रजा के लोग क्लेशो से रहित सुख भोगने लगे तथा क्या स्त्री, क्या पुरुष सबके सब धर्मात्मा और रूपवान् होने लगे ।

सचिव धर्मरुचि हरिपद प्रीती । नृपहितहेतु सिखव नित नीती ।।

---

१. सेन सग चतुरग अपारा—चतुरगिनी सेना के चार मुख्य अग ये है (१) गजपति, (२) अश्वपति, (३) रथी, और (४) पैदल ।

२. जीते सकल भूप बरिआई—

कुडलिया—साई हरि ऐसी करी, बलि के द्वारे जाय ।
पहले हाथ पसारि कै, बहुरि पसार्‌यो पाय।।
बहुरि पसार्‌यो पाय, मतो राजा न बतायो ।
भूमि सबै हरि लई, बाँधि पाताल पठायो ।।
कह गिरधर कविराय, राव राजन के ताईं ।
छल बल करि पर भूमि लेत, को तृपत्यो साईं ।।

३. सप्त द्वीप—यथा(१) जम्बू द्वीप—इसी के भीतर भारतवर्ष है जैसा कि सकल्प के समय कहा जाता है "जम्बू द्वीपे भरतखडे" आदि, (२) कुशद्वीप, (३) प्लक्ष, (४) शाल्वली, (५) क्रौंच, (६) शाक, और (७) पुष्कर ।

गुरु सुर संत पितर महिदेवा। करइ सदा नृप सब की सेवा ।।

अर्थ—धर्मरुचि मंत्री की ईश्वर के चरणो मे प्रीति थी (इस हेतु वह) ऐसी नीति सिखलाता था कि जिससे राजा की भलाई हो। जेठ, बडे, देवता, सज्जन, पितर और ब्राह्मण इन सबकी सेवा महाराजा सदा किया करते थे।

भूपधर्म्म जे वेद बखाने[१]। सकल करे सादर सुख माने ।।
दिन प्रति देइ विविध विधि दाना। सुनइ शास्त्र वर वेद पुराना ।।

अर्थ—वेदो मे जो राजाओ के धर्म वर्णन किये गये है उन्हे महाराजा आदर सहित सुख मानकर किया करते थे। वे प्रतिदिन नाना प्रकार से दान देते थे और उत्तम शास्त्र वेद और पुराणो को सुना करते थे।

नाना वापी कूप तड़ागा। सुमनवाटिका सुन्दर बागा[२] ।।

---

१. भूपधर्म जे वेद बखाने—

(कवित्त)

न्याव सम हेत सदा राखे रहे चेत सुध साँकरे मे लेत देत दान कृत बाजा हैं।
पापन सो न्यारे प्रजा प्रान सम प्यारे 'बलदेव' हित धारे द्विज सत्त सिरताजा है।।
शत्रु को न लेश यश छायो देश-देश वीरता मे अति वेष जे सदा ही सुख साजा हैं।
छल सोन काजा शब्द साँचो छत्र साजा लख सभा और लाजा एकैं ऐसे महाराजा हैं।।

इस धर्मात्मा राजा के आचरणो का मिलान दुष्ट आचरण वाले रावण के राज्य से करना उचित होगा।

२ नाना वापी कूप तडागा। सुमन वाटिका सुन्दर बागा'''इत्यादि, इत्यादि—

सुराज्य मे प्रजा के हित और आराम के लिए बहुतेरे उत्तम काम राजा प्रतापभानु ने किये थे। साम्प्रत अंग्रेजी राज्य के उपयोगी तथा लाभकारी प्रशसनीय काम नीचे की कविता मे दर्शाये गये है—

नृप भगति करहु मन लाई, सब सज्जन यह बतलाते।। टेक।।
है ब्रिटिश राज्य सुख दाई, रैय्यत की चहत भलाई।
अति लाभ कहे नहिं जाई, कछु मति अनुसार सुनाते ।।
जिन घाट बाट सुधराई, अरु तार डाक बनवाई।
बुधि बल से रेल चलाई, भारतवासी गुण गाते।।
सरितन्ह मे सेतु बँधाई, सागर मे नाव चलाई।
करि यत्न नहर खुदवाई, अति शीघ्र खेत सिंच जाते ।।
जिन अस्पताल करि जारी, उपकार किये हैं भारी।
जहँ मिलत दवा सुखकारी, बहु रोग दूर हुइ जाते ।।
बिस्फोटक की बीमारी, अरु प्लेग महा भयकारी।
टीका की रीति निकारी, आबाल वृद्ध बच जाते ।।
लघु दीर्घ अदालत जारी, जहँ न्याय करत अधिकारी।
करि छान बीन बहु भारी, वाजिब फैसला सुनाते ।।
खुलि गई अनेकन्ह शाला, कहिं पढै बाल कहिं बाला।
चिरजीव रहै भूपाला, ईश्वर से यही मनाते ।।
सूजिमुहल्ला शाला , हैं वाजपेयि छकुलाला।
जिन कथन किया ये हाला, प्रभु चरणन्ह शीश नवाते ।।

विप्र भवन सुरभवन सुहाये। सब तीरथन्ह विचित्र बनाये॥

अर्थ—अनेक बावलियाँ, कुए, तालाब, फुलबगियाँ और सुन्दर बगीचे, ब्राह्मणो के लिये घर और देवताओ के मनोहर मदिर सब तीर्थ स्थानो मे भाँति-भाँति के बनवाये।

दोहा—जहँ लगि कहे पुराण श्रुति, एक एक सब याग।
बार सहस्र सहस्र नप, किये सहित अनुराग॥ १५५॥

अर्थ—वेदो तथा पुराणो मे जितने यज्ञ कहे है प्रत्येक को महाराज ने अनेको बार बडे प्रेम से किया।

हृदय न कछु फल अनुसधाना। भूप विवेकी परम सुजाना॥
करै जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ज्ञानी[१]॥

अर्थ—बडे ज्ञानी और चतुर महाराजा ने (इन यज्ञो का) मन से कुछ फल प्राप्ति का विचार नही किया (अर्थात् सम्पूर्ण यज्ञ निष्काम किये)। वे ज्ञानवान् महाराज जो कुछ धर्म मन से, वाणी से अथवा क्रिया से करते थे वे सब कृष्ण हेतु समर्पण किया करते थे (जैसा कहा है अरण्यकाण्ड मे "हरिहि समर्पे विन सतकर्मा ' किये श्रम फल)।

चढि वर वाजि बार इक राजा। मृगया कर सब साजि समाजा॥
विध्याचल गंभीर बन गयऊ। मृग पुनीत बहु मारत भयऊ॥

अर्थ—एक समय प्रतापभानु आखेट की सब तैयारी कर उत्तम घोडे पर सवार हो विध्याचल पर्वत के घने जगल मे गये (वहाँ पर) उन्होने बहुत से पवित्र पशुओ की मृगया की।

फिरत विपिन नृप दीख वराहू। जनु बन दुरेउ शशिहि ग्रसि राहू॥
बड विधु नहि समात मुख माही। मनहुँ क्रोधवश उगिलत नाही॥

अर्थ—बन मे भ्रमण करते हुए महाराज ने एक शूकर देखा, मानो राहु राक्षस चन्द्रमा को मुख मे दवाकर छिप रहा हो। वह चन्द्रमा बडा होने के कारण मुख मे नही समाता था, तो भी बराह क्रोध के मारे उसे उगलता नही था।

सूचना—कवि ने कैसी चतुराई के साथ वराह की टेढी सफेद और स्वच्छ खीसो की उपमा मुँह मे से निकले हुए चन्द्रमा की छोटी कला से दी है, क्योकि वराह मानो चन्द्रमा को मुख मे दबाये हुए हो। चन्द्रमा बडा था, इस हेतु उसका कुछ भाग मुँह के बाहर दीख पडता था।

कोलकरालदशन छवि गाई। तनु विशाल पीवर अधिकाई॥
घुरघुरात हय आरव पाये। चकित विलोकत कान उठाये॥

शब्दार्थ—पीवर=स्थूलता। आरव=आहट।

अर्थ—शूकर की भयकर खीसो की शोभा ऊपर कही गई है उसका शरीर भी बडा तथा भारी स्थूलता लिये था। वह घोडे की आहट पाकर गुर्राता था और कानो को उठाकर भौचक-

---

१. करै जे धर्म कर्म मन बानी। वासुदेव अर्पित नृपज्ञानी—
श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय मे यो लिखा है—
श्लोक—कर्मण्येवाधिकारस्ते, माफलेषु कदाचन।
माकर्म फल हेतुर्भू र्मति सर्गोऽस्त्व कर्मणि॥ ४७॥
अर्थ—तू अधिकारी कर्म को, नाही फल को हेत।
कर्मब के फल छाँड़ि के, गहौ कर्म कर चेत॥

सा देखता था।

दोहा—नीलमहीधर शिखर सम, देखि विशाल वराह।
चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप, हाँकि न होइ निवाह ॥१५६॥

अर्थ—नीले पर्वत की शिखर समान भारी शूकर को देखते ही महाराज ने यो ललकारा कि अब न बच सकेगा और तुरन्त घोडे को ऐड दे शीघ्रता से दौडाया।

आवत देखि अधिक रवबाजी। चलेउ वराह मरुत गति भाजी ॥
तुरत कीन्ह नृप शर सधाना। महि मिलि गयउ विलोकत बाना ॥

अर्थ—घोडे को बडे सपाटे से आता देख शूकर भी वायुवेग से भागा। महाराज ने झटपट बाण छोडा, बाण को आते देख वह शूकर धरती से मिल गया।

तकि तकि तीर महीश चलावा। करि छल सुअर शरीर बचावा ॥
प्रगटत दुरत जाय मृग भागा। रिसवश भूप चलेउ सँग लागा[1] ॥

अर्थ—महाराज ने तीक्ष्ण-तीक्ष्णकर बाण चलाये परन्तु वराह ने छलबल से उन सबसे अपने को बचाया। वह पशु कभी दिखाई देता हुआ और कभी छिपता हुआ भागता जाता था और महाराजा भी हठ पकडे, पीछे ही लगे चले जाते थे।

गयउ दूरि घन गहन वराहू। जहँ नाहिन गज वाजि निवाहू ॥
अति अकेल बन विपुल कलेशू। तदपि न मृगमग तजइ नरेशू ॥

शब्दार्थ—गहन=वन। जैसा अमरकोष मे लिखा है—"अटव्यरण्य विपिन गहन काननम् बनम्"।

अर्थ—शूकर दूर ऐसे घने जगल मे जा पहुँचा, जहाँ हाथी-घोडे आदि की पहुँच कठिनाई से थी। एक तो महाराजा (साथियो रहित) निपट अकेले थे, दूसरे बन का विकट सकट था तो भी महाराज ने उस पशु का पीछा न छोडा।

कोल विलोकि भूप रणधीरा। भागि पैठि गिरि गुहा गँभीरा ॥
अगम देखि नृप अति पछताई। फिरेउ महाबन परेउ भुलाई ॥

अर्थ—वराह तो महाराज को मृगया मे परम प्रवीण जान भागकर पहाड की एक गहरी गुफा मे घुस गया। (उस स्थान को) महाराज अपनी पहुँच से बाहर देख बहुत ही पछताने लगे और ज्यो ही लौटे त्यो ही सघन वन मे रास्ता भूल गये।

दोहा—खेद खिन्न क्षुद्धित तृषित, राजा बाजिसमेत।
खोजत व्याकुल सरित सर, जल बिन भयउ अचेत ॥ १५७ ॥

अर्थ—थकावट का मारा भूखा-प्यासा राजा घोडा समेत, व्याकुलता से नदी-तालाब ढूँढते-ढूँढते बिना पानी के घबडा उठा।

फिरत विपिन आश्रम इक देखा। तहँ बस नृपति कपटमुनि वेखा।

---

१. रिसवश भूप चलेउ सँग लागा—कामन्दकीय नीतिसार मे लिखा है कि—

श्लोक—मृगयाऽक्षास्तथा पान, गर्हितान मही भुजाम्।
दृष्टास्तेभ्यस्तु विपद पाडुनैषध्र वृष्णिषु ॥

अर्थात् राजाओ को मृगया खेलना, पासा खेलना, मदपान करना निन्दित है क्योकि इन्ही के कारण पाडवो, नल और यदुवशियो की विपत्ति देखी गई है।

जासु देश नृप लीन्ह छुडाई । समर सेन तजि गयउ पराई[१] ॥

अर्थ—वन मे घूमते-घूमते एक आश्रम दिखाई दिया जहाँ पर एक राजा कपट मुनि के भेष मे रहता था, जिसके राज्य को प्रतापभानु ने छीन लिया था सो सग्राम मे अपनी सेना को छोड भाग आया था ।

समय प्रताप भानु कर जानी । आपन अति असमय अनुमानी[२] ॥
गयउ न गृह मन बहुत गलानी । मिला न राजहि नृप अभिमानी ॥

अर्थ—वह प्रतापभानु के सुदिन समझ और अपने अदिन जान मन मे बहुत ही दुःखित हुआ, इस हेतु वह अपने घर न गया और बडा अभिमानी होने के कारण उसने राजा से मेल भी न किया ।

रिस उर मारि रंक जिमि राजा । बिपिन वसइ तापस के साजा[३] ॥
तासु समीप गवन नृप कीन्हा । यह प्रतापरवि तेहि तब चीन्हा ॥

अर्थ—वह राजा क्रोध को हृदय मे दबाये हुए दरिद्री की नाईं तपसी के भेष से बन मे रहा करता था । उसी के समीप राजा जा पहुँचा उसने झट से पहिचान लिया कि ये राजा प्रतापभानु है ।

राउ तृषित नहि सो पहिचाना । देखि सुवेष महामुनि जाना ॥
उतरि तुरग ते कीन्ह प्रणामा । परम चतुर न कहेउ निज नामा ॥

अर्थ—प्यास से पीडित प्रतापभानु ने उसे न पहचाना और उसके साधु भेष से उसे बडा मुनि मान लिया । घोडे से उतरकर उसको प्रणाम किया परन्तु बडी चतुराई के कारण अपना नाम न बतलाया ।

दोहा—भूपति तृषित विलोकि तेहि, सरवर दीन्ह दिखाइ ।
मज्जन पान समेत हय, कीन्ह नृपति हरषाइ ॥१५८॥

अर्थ—उसने राजा को प्यासा देख तालाब दिखा दिया जहाँ पर प्रतापभानु ने प्रसन्न हो घोडे को अपने साथ ही साथ स्नान और जलपान कराया ।

गइ श्रम सकल सुखी नृप भयऊ । निज आश्रम तापस लेइ गयऊ ॥
आसन दीन्ह अस्त रवि जानी । पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी ॥

---

१. जासु देश नृप लीन्ह छुडाई । समर सेन तजि गयउ पराई—चाणक्य नीति मे लिखा है—

श्लोक—उपसर्गेऽस्य चक्रेच, दुर्भिक्षे च भयावहे ।
असाधु जन सम्पर्के, पलायति सजीवति ॥

अर्थात् उपद्रव उठने पर, शत्रु के आक्रमण करने पर, भयानक अकाल पडने पर और दुष्ट जन के सग पर जो भागता है, वह जीता रहता है ।

२. समय प्रताप भानु कर जानी । आपन अति असमय अनुमानी—

दोहा—अब रहीम चुप हुइ रहौ, समुझि दिनन को फेर ।
जब दिन नीके आइ हैं, बनत न लागे देर ॥

३. सिर उर मारि रक जिमि राजा । विपिन बसै तापस के साजा—

दोहा—पाव परें अपयश जगत, लरें तो लहिये हार ।
करें वास बन विपन अति, तुव अरि करत विचार ॥

अर्थ—सब थकावट दूर हुई और राजा प्रसन्न हुआ तब तपस्वी उसे अपने आश्रम मे लिवा लाया। उसे बैठने को आसन दिया। सूर्य को अस्त हुआ समझ, वह तपस्वी फिर मधुर वचनो से कहने लगा—

को तुम कस वन फिरहु अकेले। सुन्दर युवा जीव पर हेले॥
चक्रवर्त्ति के लक्षण[1] तोरे। देखत दया लागि अति मोरे॥

शब्दार्थ—हेले = अनादर किये।

अर्थ—तुम कौन हो? और वन मे अकेले क्यो फिरते हो? रूपवान् और जवान होकर जान पर क्यो खेल रहे हो? (भाव यह कि तुममे न कोई रोग दिखता है और न तुम वृद्ध हो कि जिसके कारण तुम प्राणो का अनादर किये फिरते हो।) तुम मे चक्रवर्ती राजा के लक्षण देखने से मुझे बडी दया आ गई।

नाम प्रताप भानु अवनीशा। तासु सचिव मै सुनहु मुनीशा॥
फिरत अहेरे परेउँ भुलाई। बड़े भाग्य देखेउँ पद आई॥

अर्थ—हे मुनिराज, सुनिये! प्रतापभानु एक राजा है, उनका मै मत्री हूँ। आखेट करते-करते रास्ता भूल गया सो मेरे बडे भाग्य थे जो आपके चरणो के दर्शन मिले।

हम कहँ दुर्लभ दरश तुम्हारा। जानत हौ कछु भल होनिहारा॥
कह मुनि तात भयउ अधियारा। योजन सत्तर नगर तुम्हारा॥

अर्थ—मुझको आपके दर्शन कठिन थे। मैं समझता हूँ कि अब कुछ भला होने वाला है। मुनिजी कहने लगे—हे प्यारे! अब रात हो गई है और तुम्हारा नगर यहाँ से दो सौ अस्सी कोस है।

दोहा—निशा घोर गभीर वन, पंथ न सूझ सुजान।
बसहु आज असि जानि तुम, जायहु होत विहान॥

अर्थ—बहुत ही अँधेरी रात है और जगल भी घना है। ऐसे समय मे जानकार भी मार्ग नही देख सकता। ऐसा समझ आज यही टिके रहो और सवेरा होते ही चले जाना।

दोहा—तुलसी जसि भवितव्यता, तैसी मिलइ सहाय[2]।
आपन आवे ताहि पहँ, ताहि तहा लेइ जाय॥१५६॥

---

१. चक्रवर्त्ति के लक्षण—अयोध्याकाण्ड रामचरितमानस की श्री विनायकी टीका की टिप्पणी मे मिलेगे।

२ तुलसी जसि भवितव्यता तैसी मिलै सहाय इत्यादि—यह कथन तो नीतिशास्त्र के अनुसार ही है। जैसे—

श्लोक—तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोपि तादृश।
सहायास्तादृशा एव ना दृशी भवितव्यता॥

अर्थात् वैसी ही बुद्धि उत्पन्न होती है, वैसा ही उद्योग लग जाता है और सहायता भी वैसी ही मिल जाती हे जैसी होनहार होती है।

कवित्त—लाभ और हानि ज्ञान जीवन अजीवन हूँ, भोगहू वियोगहू सयोग हू अपार है।
कहै 'पदमाकर' इतै पै और केते कहौ, जिनको लिख्यो न वेदहू मे निरधार है॥
जानियत याते रघुराय की कला को कहूँ, कोउ पार पायो कोउ पावत न पार है।
कौन दिन कौन छिन कौनघरी कौन ठौर, कौन जाने कौन को कहा धौं होनहार है॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते है कि जैसी होनहार होनी है, वैसी ही सहायता मिल जाती है या तो आप ही स्वत उसके पास आ जाती है अथवा उसे वहाँ ले जाती है (यहाँ पर प्रतापभानु की होनहार ही उसे पूर्व-जन्म के सस्कारवश कपटी मुनि के पास लिवा ले गई जिस से राजा का सर्वनाश हुआ)।

भलेहि नाथ आयसु धरि शीशा। बांधि तुरँग तरु बैठ महीशा ॥
नृप बहु भाँति प्रशंसेउ ताही। चरण बदि निज भाग्य सराही ॥

अर्थ—हे स्वामी! ठीक है। ऐसा कह राजा घोडे को वृक्ष से बाँधकर आ बैठा। फिर राजा उसकी बहुत प्रकार से बडाई कर उसके चरणो की वदना करते हुए अपने भाग्य को सराहने लगा।

पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई। जानि पिता प्रभु करउँ ढिठाइ ॥
मोहि मुनीश सुत सेवक जानी। नाथ नाम निज कहहु बखानी ॥

अर्थ—फिर विनीत, सुहावने वचन बोला, हे प्रभु! आपको जेठा समझकर मैं कुछ दीठपन करता हूँ। हे मुनिवर! मुझको अपना छोटा दास समझकर हे प्रभु, अपना नाम कहिये।

तेहि न जान नृप नृपहि सो जाना। भूप सुहृद सोक पट सयाना ॥
बैसी पुनि क्षत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहइ निज काजा[१] ॥

अर्थ—राजा तो उसे नही जानता था परन्तु वह राजा को पहचानता था। राजा तो सच्चे हृदय का था परन्तु मुनि कपट मे चतुर था। एक तो बैरी दूसरे क्षत्री और तीसरे राजा (इन सब बातो का विचार कर कपट मुनि) छल-बल से अपना कार्य सिद्ध करना चाहता था।

समुझि राज सुख दुखित अराती। अवा अनल इव सुलगइ छाती[२] ॥
सरल वचन नृप के सुनि काना। बैर सँभारि हृदय हरषाना ॥

अर्थ—वह शत्रु अपने राज-सुख का स्मरण कर दुखित रहता था और उसका हृदय कुम्हार के अवाँ के समान भीतर ही भीतर धँधकता रहता था। राजा के सरल वचनो को कानो से सुनकर, अपने बैर की सुधि कर मन ही मन प्रसन्न हुआ।

---

१ छल बल कीन्ह चहइ निज काजा—सभा विलास से—

छप्पय—विमल चित्त करि मित्त शत्रु छल बल वश किज्जिय।
प्रभु सेवा वश करिय लोभवतहि धन दिज्जिय ॥
युवति प्रेम वश करिय साधु सादर सनमानिय।
महाराज गुण कथन बधु सम रस सममानिय ॥
गुरु नमित शीस रससो रसिक विद्या बल बुध मन हरिय।
मूरख विनोद सुकथा वचन शुभ स्वभाव जग वश करिय ॥

२. समुझि राज सुख दुखित अराती। अवाँ अनल इव सुलगइ छाती—

कुडलिया—जाकी धन धरती लई, ताहिन लीजै सग।
जो सग राखे ही बनै, तो करि राख अपग ॥
तौ करि राख अपग, फेर फरकैसो न कीजै।
कपट रूप बतराय ताहि को मन हर लीजै ॥
कह गिरधर कविराय खुटक जै है नहि ताकी।
कोटि दिलासा देउ लई धन धरती जाकी ॥

दोहा—कपट बोरि बानी मृदुल, बोलेउ युक्ति समेत ।
नाम हमार भिखारि अब, निरधन रहित निकेत ।।१६०।।

अर्थ—छल लपेटी कोमल बानी बडे ढग से कहने लगा कि अब तो धनहीन, घररहित हमारा भिखारी नाम है। (अर्थात् पहले कभी धनाढ्य, घर-द्वार सहित हम राजा रहे, यह अर्थ गर्भित है) ।

कह नृप जे विज्ञान निधाना । तुम सारिखे गलित अभिमाना ।।
रहहिं अपनपौ सदा दुराये । सब विधि कुशल कुवेष बनाये ।।

अर्थ—राजा कहने लगा जो लोग तुम्हारे नाईं अहंकारशून्य और ज्ञान सपन्न हैं, वे सदा अपने को छिपाये रहते हैं। कारण बिगडी धुन से रहने मे सब प्रकार की भलाई है ।

तेहि ते कहहि संत श्रुति टेरे । परम अकिचन प्रिय हरि केरे ।।
तुम सम अधन भिखारि अगेहा । होत विरंचि शिवहि संदेहा ।।

अर्थ—इसी से सज्जन तथा वेद स्पष्ट कहते हैं कि बडे दरिद्री (भक्त) परमेश्वर के प्यारे होते है। तुम्हारे सरीखे निर्धन भिखारी और घर रहितो से ब्रह्मा और शिवजी को भी शंका होती है (राजा का अभिप्राय तो यह था कि ऐसे साधु-महात्मा से ब्रह्मा और शिवजी भी शकित होते है कि इनका प्रभाव हमसे भी बढकर है। दूसरा गुप्त अर्थ यह हो सकता है कि ब्रह्मा और शिव सरीखे साधुओ को ऐसे साधुओ के विषय मे सन्देह होता है कि ये झूठे हैं) । ऐसे साकेतिक भाव के शब्द अनायास ही सत्यता अथवा भविष्यसूचक ईश्वर की प्रेरणा से निकल पडते हैं ।

योऽसि सोऽसि तब चरण नमामी । मोपर कृपा करिय अब स्वामी ।।
सहज प्रीति भूपति कै देखी । आप विषय विश्वास विसेखी ।।

अर्थ—तुम जो होओ सो बने रहो। हम तो तुम्हारे चरणो की वदना करते है। हे प्रभु! अब मुझ पर दया कीजिये। (इस प्रकार) राजा की सच्ची प्रीति तथा अपने ऊपर पूरा विश्वास देख—

सब प्रकार राजहि अपनाई । बोलेउ अधिक सनेह जनाई[1] ।।
सुनि सति भाव कहउँ महिपाला । इहाँ बसत बीते बहु काला ।।

अर्थ—सब भाँति राजा को अपने अधीन कर तपसी (कपटी) विशेष प्रेम दर्शाता हुआ कहने लगा—हे राजा ! सुनो। मैं यथार्थ कहता हूँ कि मुझे यहाँ रहते-रहते बहुत समय व्यतीत हुआ है ।

दोहा—अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ, मैं न जनायउँ काहु ।
लोक मान्यता अनल सम, करि तप कानन दाहु ।।

अर्थ—न कोई मुझे अभी तक मिला और न मैंने किसी से कहा। कारण, ससार में प्रतिष्ठा अग्नि के समान है जो तपरूपी जगल को जला डालती है (भाव यह कि जो साधु अपने उत्तम गुणो की प्रशसा आप ही अपने मुँह से करे तो तपस्या का नाश हो जाता है) ।

---

१ सब प्रकार राजहि अपनाई । बोलेउ अधिक सनेह जनाई—नीति शास्त्र के वचन हैं कि—

दोहा—जो रीझैं जोहि भाव से तैसे ताहि रिझाव ।
पीछे युक्ति विवेक से, अपने मत पर लाव ।।

सोरठा—तुलसी देखि सुवेख, भूलहि मूढ न चतुर नर।
सुन्दर केकिहि पेखि, वचन सुधा सम अशन अहि[१] ॥१६१॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते है कि सुन्दर भेष देखकर मूर्ख धोखा खा जाते है न कि चतुर मनुष्य। जिस प्रकार सुन्दर मोर को देख लोग उसकी अमृत समान बोली (सुन) धोखा खा जाते है, वे यह नही जानते कि इसका भोजन सर्प है।

दूसरा अर्थ—तुलसीदासजी कहते है कि सुन्दर सजावट को देखकर केवल मूर्ख ही नही वरन् चतुर मनुष्य भी धोखा खा जाते है जिस प्रकार सुन्दर मोर को देख···देखो चतुर प्रताप-भानु भी धोखा खा गया।

ताते गुप्त रहौ जग माही। हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं ॥
प्रभु जानत सब बिनहि जनाये। कहहु कवन सिधि लोक रिझाये ॥

अर्थ—(कपटी मुनि कह रहा है) इसी से मैं ससार से छिपकर रहता हूँ। परमेश्वर को छोड मुझे (दूसरे से) कुछ भी मतलब नही। परमेश्वर तो सब कुछ बिना ही कहे-सुने जानता है फिर ससार को प्रसन्न करने से क्या लाभ!

तुम शुचि सुमति परम प्रिय मोरे[२]। प्रीतप्रतीति मोहि पर तोरे ॥
अब जो तात दुरावौ तोही। दारुण दोष घटइ अति मोहीं ॥

अर्थ—तुम शुद्ध चित्त और सुबुद्ध होने के कारण मुझे बहुत ही प्यारे लगते हो और तुम्हारा प्रेम तथा विश्वास भी मुझ पर है। हे प्यारे! इतने पर भी मैं तुमसे छल रखूँ तो मुझे बहुत ही बडा पातक लगेगा (अर्थात् नीति है कि निष्कपट प्रेमी तथा श्रद्धावान पुरुष से, छल करने वाला महापातकी समझा जाता है)।

जिमि जिमि तापस कथइ उदासा। तिमि तिमि नृपहि उपज विश्वासा ॥
देखा स्ववश कर्ममनवानी। तब बोला तापस बकध्यानी[३] ॥

---

१. सुन्दर केकिहि पेखि, वचन सुधासम अशन अहि—इसी आशय को तुलसीदासजी अपनी दोहावली मे बहुत ही स्पष्ट रीति से समझाते है—

दो०—हृदय कपट वर वेष धरि, वचन कहै गढि छोलि।
अब के लोग मयूर ज्यौ, क्यो मिलिये मन खोलि ॥

२ तुम शुचि सुमति परम प्रिय मोरे···आदि—

श्लोक—उपकारिणि विस्रब्धे शुद्ध मतौ य. समा चरति पापम्।
असत्य सध त मनम् भगवति वसुधे कथ वहसि ॥

अर्थात् जिसने उपकार किया है, अपने पर विश्वास रखा है ऐसे शुद्ध बुद्धि वाले प्राणी के साथ जो छल करता है ऐसे अविश्वासी पुरुष को हे भगवती पृथ्वी! तुम कैसे धारण करती हो?

३ तब बोला तापस बक ध्यानी—हितोपदेश से—

दूरादुच्छ्रितपाणिरार्द्रनयन: प्रोत्साहितार्धासनो।
गाढा लिंगन तत्पर प्रिय कथा प्रश्नेषु दत्तादर: ॥
अतर्भूत विषो वहिर्मधुमयश्चातीव माया पटु।
को नामायमपूर्व नाटक विधिय: शिक्षितो दुर्जनै: ॥

[illegible] यह है दूर ही से प्रणाम करता है, आँखो मे आँसू भर आता है, बराबरी से अपने [illegible] पर बिठलाता है, बड़े प्रेम से मिलता है, मीठी-मीठी बातें करता है, प्रश्नों को →

अर्थ—ज्यो-ज्यो तपसी विरक्तता की बातें करता था त्यो-त्यो राजा का भरोसा उस पर जमता जाता था। बगुला-भगत तपस्वी ने जब देखा कि राजा अपने चित्त से, वचनो से तथा कार्यों से मेरे अधीन हो गया है तब तो वह कहने लगा—

नाम हमार एकतनु भाई। सुनि नृप बोलेउ पुनि शिर नाई ॥
कहहु नाम कर अर्थ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जानी ॥

अर्थ—हे भाई ! मेरा नाम 'एकतनु' है, यह सुनकर राजा फिर भी शीश नवाकर कहने लगा। मुझे अपना परम दास समझकर अपने नाम का अर्थ समझाकर कहिये।

दोहा—आदि सृष्टि उपजी जबै,[1] तब उत्पति भइ मोरि।
नाम एकतनु हेतु तेहि, देह न धरी बहोरि ॥१६२॥

अर्थ—जब ससार की पहले ही पहल रचना की गई थी, उस समय मैं उत्पन्न हुआ था। इसी कारण से मेरा नाम एकतनु हुआ क्योकि मैंने तब से फिर दुबारा शरीर धारण नही किया (अर्थात् जो मेरा शरीर सृष्टि की आदि मे था, वही अब है) इसी हेतु मुझे एकतनु कहते है (और प्राणियो ने तबसे सहस्त्रो बार देह छोडी और धारण की)।

जनि आश्चर्य करहु मन माँही। सुत तपते दुरलभ कछु नाहीं ॥
तप बल ते जग सृजै विधाता। तप बल विष्णु भये परित्राता ॥

अर्थ—तुम अपने मन मे कुछ अचरज न करो। हे बेटा ! तपस्या करने से कोई भी वस्तु दुरमिल नही रह सकती। तपस्या ही के बल से ब्रह्मा ससार को बनाता है। तपस्या ही के बल से विष्णुजी ससार की रक्षा करने वाले हुए।

तप बल शम्भु करहिं संहारा[2]। तपते अगम न कछु संसारा ॥
भयउ नृपहि सुनि अति अनुरागा। कथा पुरातन कहै सो लागा ॥

अर्थ—तपस्या के प्रभाव ही से शिवजी ससार का नाश करते हैं (निदान) ससार मे ऐसा कुछ भी नही है जो तपस्या से न मिले। यह सुनकर राजा का प्रेम विशेष बढा और तपस्वी प्राचीन कथा कहने लगा—

आदर पूर्वक सुनता है तो भी हृदय मे कपट रखकर ऊपर से मीठी-मीठी, बातें करता है इस प्रकार की कपट चातुरी का अपूर्व चरित्र दुर्जन सीखे रहते है।

शब्दार्थ—उदासा (उदासीन)—निष्प्रेही होकर, लापरवाही से। वकध्यानी (वक=बगुला+ध्यानी=ध्यान लगाने वाला)=बगुला के समान ध्यान लगाने वाला प्राणी बहुधा स्वच्छ सफेद रग का जल के समीप शाति रूप से बैठा हुआ इस प्रकार दीख पडता है कि मानो कोई साधु वेष धारी ध्यान मे मग्न है परन्तु वह यथार्थ मे मछली की ताक मे ही ऐसा बनावटी ध्यान लगाये रहता है। मछली को अपनी घात मे आई देख तुरन्त ही लपककर उसे पकड लेता है। इसी प्रकार छलिया वेष धारी झूठे ध्यान वाले मन मे दूसरे की घात लगाये हुए कपटी को वक-ध्यानी किवा बगुला-भगत कहते हैं।

१ आदि सृष्टि उपजी जबै··· ···· तपसी का आशय यथार्थ मे यह है कि मैं अपने माता-पिता का पहला ही बालक हूँ, यही आदि सृष्टि का अभिप्राय है—और 'नाम एकतनु' का अर्थ स्पष्ट ही है कि तब से मैं अभी तक जीवित हूँ, दूसरा शरीर धारण नही किया और न रूप पलटने की शक्ति है।

२. तप बल शभु करै सहारा—(देखें टिप्पणी ७२ दोहे के बाद पृष्ठ १७२ पूर्वार्द्ध)
तपबल शेष धरहिं महि भारा। तप अधार सब सृष्टि अपारा ॥

कर्म धर्म इतिहास अनेका। करै निरूपण विरति विवेका॥
उद्भव पालन प्रलय कहानी। कहेसि अमित आश्चर्य बखानी॥

अर्थ—उसने कर्मकाण्ड की वार्त्ता, धर्म निरूपण के अनेक इतिहास कहे तथा वैराग्य और ज्ञान का भी निरूपण किया। ससार की उत्पत्ति, उसकी विद्यमानता और सहार की बहुतेरी कहानियाँ अचम्भो से भरी हुई कही।

सुनि महीश तापस वश भयऊ। आपन नाम कहन तब लयऊ॥
कह तापस नृप जानउँ तोही। कीन्हेहु कपट लाग भल मोही॥

अर्थ— (बातें) सुनकर के राजा तपसी के अधीन हो गया और फिर अपना नाम उसे कह सुनाया। तपसी बोला, हे राजा! मै तुझे जानता हूँ, जो तुमने छल किया सो मुझे अच्छा लगा।

सोरठा—सुन महीश अस नीति, जहँ तहँ नाम न कहहि नृप।
मोहि तोहि पर प्रीति, परम चतुरता निरखि तव॥ १६३॥

अर्थ—हे राजा! नीति भी ऐसी है कि राजा लोग सब ही जगह अपना नाम नही बतलाते। तुम्हारी विशेष चतुराई देख मेरा प्रेम तुम पर बढ गया।

नाम तुम्हार प्रताप दिनेशा। सत्यकेतु तव पिता नरेशा॥
गुरुप्रसाद सब जानिय राजा। कहिय न आपन जानि अकाजा॥

अर्थ—हे राजा! तुम्हारा नाम प्रताप भानु है और तुम्हारे पिता का नाम सत्य केतु। हे राजा! मै ये सब बाते अपने गुरु की कृपा से जानता हूँ, अपनी हानि समझकर इन बातो को नही कहता।

देखि तात तव सहज सुधाई। प्रीति प्रतीति नीति निपुणाई॥
उपजि परी ममता मन मोरे। कहेउँ कथा निज पूछे तोरे॥

अर्थ—हे प्यारे! तुम्हारे स्वभाविक सीधेपन को देख तथा तुम्हारा प्रेम, भरोसा और न्याय चातुरी देख, मेरे चित्त मे प्रेम उमड आया। इसी हेतु तुम्हारे पूछने पर अपनी सब कथा कह सुनाई।

अब प्रसन्न मै संशय नाही। माँग जो भूप भाव मन माहीं॥
सुनि सुवचन भूपति हरषाना। गहि पदविनय कीन्हि विधि नाना॥

अर्थ— अब मै तुझ पर प्रसन्न हूँ। इसमे कुछ सदेह नही। हे राजन्! तुम्हारे मन मे जो कुछ इच्छा हो सो माँगो। ऐसे मनोहर वचनो को सुनकर राजा प्रसन्न हुए और तपसी के चरण गहकर नाना प्रकार से विनती की।

कृपासिधु मुनि दरशन तोरे। चारि पदारथ करतल मोरे॥
प्रभुहि तथापि प्रसन्न विलोकी। माँगि अगम वर होउँ विशोकी॥

अर्थ—हे दयासागर मुनिजी! आपकी कृपा से अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये चारो पदार्थ मुझे सुलभ हैं। तो भी आपको प्रसन्न जान मैं एक कठिन वरदान माँगकर शोकरहित होना चाहता हूँ

दोहा—जरा मरण दुख रहित तनु, समर न जीतै कोउ।
एकछत्र रिपुहीन महि, राज कल्प शत होउ[1] ॥१६४॥

अर्थ—मेरा शरीर बुढापे और मृत्यु के दु:ख से बचा रहे, मुझे कोई संग्राम मे जीत न सके। मैं चक्रवर्त्ती होऊँ, मेरे शत्रु नाश को प्राप्त हो और मेरा राज्य सौ कल्प तक बना रहे।

कह तापस नृप ऐसेइ होऊ। कारण एक कठिन सुन सोऊ॥
कालउ तव पद नाइहि शीशा। एक विप्र कुल छॉड़ि महीशा॥

अर्थ—तपस्वी कहने लगा, हे राजा! ऐसा ही होगा। परन्तु इसमे एक बात अडचन है। हे राजा! केवल ब्राह्मणो को छोड काल भी तुम्हारे चरणो पर शीश नवाएगा।

तप बल विप्र सदा बरिआरा। तिन के कोप न कोउ रखवारा[2] ॥
जो विप्रन्ह वश करहु नरेशा। तौ तव वश विधि विष्णु महेशा॥

अर्थ—तपस्या के बल से ब्राह्मण सदा बरजोर रहते है, उनके क्रोध करने पर कोई भी बचाने वाला नही। हे राजा! जो तुम ब्राह्मणो को अपने वश मे कर लो तो ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी तुम्हारे अधीन हो जाएगे।

चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई। सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई॥
विप्र शाप बिन सुन महिपाला[3]। तोर नाश नहि कवनेहु काला॥

अर्थ—विप्र के वश से बराजोरी नही चलती। मै अपनी दोनो भुजाओ को उठा कर सत्य कहता हूँ (अर्थात् मै निश्चयपूर्वक कहता हूँ। आप इसे सत्य मानिये।) हे राजा! सुन, ब्राह्मण के शाप बिना तेरा नाश किसी काल मे भी न होगा।

हरषेउ राउ वचन सुनि तासू। नाथ न होइ मोर अब नासू॥
तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना। मो कहँ सर्वकाल कल्याना॥

---

१. जरा मरण दुख रहित तनु............राज कल्प शत होउ—मनुष्य की इच्छाएँ कभी पूरी नही हो सकती, कारण एक इच्छा पूर्ण होने पर और दूसरी इच्छा तैयार हो जाती है। जैसे प्रतापभानु राजा ने बहुतेरे राजाओ को जीत करके भी सतोष न मान कैसा असभव वरदान मॉगा (और उसी के कारण नष्ट-भ्रष्ट हुआ) कहा है किसी कवि ने—

श्लोक—मनोरथानामसमाप्तिरस्ति, वर्षायुते नाऽपि सहस्र लक्ष्ये।
पूर्वेषु पूर्णेषु पुर्नवाना, भुत्पत्तय सति मनोरथानाम्॥

अर्थात् इच्छाओ की पूर्णता होती ही नही, दस हजार किंवा करोडो वर्ष क्यो न हो जाए। क्योकि पहले मनोरथ पूर्ण होते ही फिर से नये-नये मनोरथ उठ खडे होते है।

२ तप बल विप्र सदा बरिआरा। तिन के कोप न कोउ रखवारा—प्रेम सागर ने—

विप्र दोष जिन कोई करौ। मत कोइ अश विप्र को हरौ॥
मन सकल्प कियो जिन राखो। सत्य वचन विप्रहि सन भाखो॥
विप्रहि दियो फेर जो लेई। ताको दड इते यम देई॥
सदा शरण विप्र के रहियो। सब अपराध विप्र के सहियो॥
विप्रहि मानै सो मोहि मानै। विप्ररु मोहि भेद नहिं जानै॥

३. विप्र शाप बिन सुन महिपाला—

दोहा—विप्रन सो न विरोध भल, नही अधिक कर हास।
सगर सुअन यदुवंश को, भयो पलक मे नास॥

अर्थ—उसके वचन सुनकर राजा प्रसन्न हुआ और कहने लगा, हे स्वामी ! अब मेरा नाश नही हो सकता। हे दयासागर ! आपकी कृपा से मुझे तीनो काल मे भलाई ही है।

दोहा—एवमस्तु कहि कपट मुनि, बोला कुटिल बहोरि।
मिलब हमार भुलाब निज, कहहु त हमहि न खोरि ॥१६५॥

अर्थ—ऐसा ही हो, इतना कह कर वह दुष्ट कपटी मुनि फिर बोला—(जगल मे) अपने भूलने के समय मेरे साथ मिलने का हाल जो किसी से कहोगे तो मुझे दोष न देना ।

ता ते मैं तोहि बरजउँ राजा। कहे कथा तव परम अकाजा ॥
छठे श्रवण यह परत कहानी[1] । नाश तुम्हार सत्य मम बानी ॥

अर्थ— हे राजा ! मै तुझे इसी कारण से रोकता हूँ कि इस कथा के कहने से तुझे हानि होगी और जो यह वार्त्ता (हमारे तुम्हारे सिवाय) कोई तीसरा सुन पाएगा, तो मैं सत्य कहे देता हूँ कि तुम मिट जाओगे।

यह प्रकटे अथवा द्विजशापा। नाश तोर सुन भानुप्रतापा ॥
आन उपाय निधन तव नाहीं। जो हरि हर कोपहि मन माही ॥

अर्थ—हे भानु प्रताप ! सुन, इस भेद के खुलने से अथवा ब्राह्मणो के शाप से तुम्हारा नाश हो सकेगा। दूसरे उपाय से तुम्हारा मरण नही हो सकता चाहे विष्णु, चाहे शिव भी मन मे क्रोधित हो उठें।

सत्य नाथ पद गहि नृप भाखा। द्विज गुरु कोप कहहु को राखा ॥
राखै गुरु जो कोप विधाता। गुरुविरोध नहिं कोउ जगत्राता[2] ॥

---

१. छठे श्रवण यह परत कहानी—हितोपदेश मे लिखा है कि—

श्लोक—षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रः तथा प्राप्तश्च वार्त्तया।
इत्यात्मना द्वितीयेन मन्त्रः कार्यो महीभृता ॥

अर्थात् छः कानो मे सलाह पडने से वह गुप्त नही रहती, इसी प्रकार से वार्त्ता भी है, इस हेतु राजाओ को चाहिए कि वह सलाह केवल एक ही के साथ करे। साराश यह है कि दो मनुष्य मिलकर सलाह करे तो वह बात मानो चार कानो मे पडी और यदि तीसरा मनुष्य उसे सुन पावे तो वह छः कानो मे पड़कर प्रकट हो जाती है।

२. राखै गुरु जो कोप विधाता। गुरु विरोध नहिं कोउ जगत्राता—
उत्तरकाण्ड मे जिस समय शूद्ररूपी काकभुशुडजी के पूर्वजन्म मे जब भी शकरजी ने क्रोध कर शाप दिया था, उस समय उसके गुरुजी ने रुद्राष्टक द्वारा शिवजी को प्रसन्न करके यह वरदान माँगा था कि—

दोहा—शंकर दीन दयाल अब, इहि पर होहु कृपाल।
शाप अनुग्रह होइ जेहि, नाथ थोर ही काल ॥१०८॥

चौपाई—इहि कर होइ परम कल्याना। सोइ कहहु अब कृपानिधाना ॥
विप्रगिरा सुनि परहित सानी। एवमस्तु इति भइ नभ बानी ॥

इसी को महात्मा सुन्दर ने कैसी सुन्दर रीति से कहा है—

क० : गोविंद के किये जीव जात है रसातल को गुरु उपदेशै सो तौ छूटै यम फद ते।
गोविंद के किये जीव वश परें कर्मन के, गुरु के निवाज सो जो फिरत स्वच्छन्द ते ॥
गोविंद के किये जीव बूडै भवसागर मे, सुन्दर कहत गुरु काढें दुख द्वंद तें।
और हू कहाँ सौं कछु मुख ते कहूँ बनाय गुरु की तो महिमा है अधिक गोविंद ते ॥

अर्थ—राजा मुनि के चरणो को छूकर कहने लगा, हे स्वामी ! ठीक तो है, ब्राह्मण और गुरु के क्रोध से कहिये तो कौन बचा सकता है (अर्थात् कोई नही)। जो विधाता क्रोध करें तो गुरुजी सभाल ले परन्तु जो गुरुजी क्रोध करे तो ससार मे कोई भी बचाने वाला नही।

जो न चलब हम कहे तुम्हारे। होउ नाश नहि सोच हमारे ॥
एकहि डर डरपत मन मोरा। प्रभु महिदेवशाप अति घोरा ॥

अर्थ—जो मै आपके कहने के अनुसार न चलूं तो नाश भले ही हो, इसकी मुझे चिन्ता नही, परन्तु एक ही डर से मेरा जी काँप उठता है कि हे स्वामी ! ब्राह्मणो का शाप बडा ही कठिन होता है।

दोहा—होहि विप्रवश कवन विधि, कहहु कृपा करि सोउ।
तुम तजि दीनदयाल निज, हितू न देखौ कोउ ॥१६६॥

अर्थ—ब्राह्मण किस प्रकार से वश मे आवे यह बात कृपा कर कहिये। हे दीनो पर दया करने वाले ! तुम्हारे सिवाय अपना हितकारी मै किसी दूसरे को नही समझता।

सुन नृप विविध जतन जग माही। कष्ट साध्य पुनि होहि कि नाहीं ॥
अहै एक अति सुगम उपाई। तहाँ परन्तु एक कठिनाई ॥

अर्थ—हे राजा, सुन ! संसार मे बहुतेरे उपाय है सो कठिनाई से होने वाले है, होवें या न होवे। एक बहुत ही सरल उपाय है परन्तु उसमे भी कुछ अडचन है।

मम आधीन युक्ति नृप सोई। मोर जाव तव नगर न होई ॥
आज लगे अरु जवते भयऊँ। काहू के गृह ग्राम न गयऊँ ॥

अर्थ—हे राजन् ! उसका उपाय मेरे अधीन है परन्तु मेरा जाना तुम्हारे गाँव मे नही हो सकता। मैंने जब से जन्म लिया है तब से आज तक किसी के गाँव अथवा घर मे पैर नही रखा।

जो न जाउँ तब होइ अकाजू। बना आय असमंजस आजू ॥
सुनि महीश बोले मृदुबानी। नाथ निगम अस नीति बखानी ॥

अर्थ—जो मैं नही चलता तो काम बिगडता है। इस समय बडी दुविधा मे मैं पडा हूँ। सुनते ही राजा नम्रता से कहने लगा, हे स्वामी ! वेद मे ऐसा न्याय वर्णन किया है—

बड़े सनेह लघुन पर करही। गिरि निज शिरन्ह सदा तृण धरही[१] ॥
जलधि अगाध मौलि बहफेनू। सतत धरणि धरत शिर रेनू ॥

अर्थ—श्रेष्ठ लोग छोटो पर प्रेम रखते है। पहाड सदा अपने माथे पर घास को धारण किये रहता है। गंभीर समुद्र भी अपने शीश पर फेन धारण किये रहता है और धरती

---

१ बडे सनेह लघुन्ह पर करही। गिरि निज शिरन्ह सदा तृण धरही—

श्लोक—दोषाकरोऽपि कुटिलोऽपि कलकितोऽपि।
मित्रावसान समये विहितो दयोऽपि ॥
चन्द्रस्तथापि हर वल्लभ तामुपैति।
नैवाभितेषु गुण दोष विचारणास्यात् ॥

अर्थात् यद्यपि चन्द्र दूषित है, टेढा है, कलकित है और सूर्य के अस्त होने पर प्रकट होता है तो भी वह चन्द्र शिवजी को प्यारा ही है कारण जिसे अपने ने आश्रय दिया उसके गुण-दोषो का विचार न करना चाहिए।

सदा अपने ऊपर धूलि धारण किये रहती है।

दोहा—अस कहि गहे नरेश पद, स्वामी होहु कृपाल।
मोहि लागि दुख सहिय प्रभु, सज्जन दीनदयाल[१] ॥१६७॥

अर्थ—ऐसा कहकर राजा ने उसके चरण गहे (और कहा) हे नाथ! दया कीजिये। हे दीनो पर दया करने वाले महात्मा प्रभु! मेरे लिए कष्ट उठाइये।

जानि नृपहि आपन आधीना। बोला तापस कपट प्रबीना ॥
सत्य कहौ भूपति सुन तोही। जग महँ नहिं दुर्लभ कछु मोही ॥

अर्थ—राजा को अपने अधीन समझकर छल करने मे चतुर तपसी कहने लगा—हे राजा! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि ससार मे कोई भी काम मुझे कठिन नही है।

अवशि काज मै करिहौ तोरा। मन तन वचन भक्त तै मोरा ॥
योग युक्ति तप मंत्र प्रभाऊ। फलै तबहि जब करिय दुराऊ[२] ॥

अर्थ—मैं तुम्हारा काम अवश्य ही पूरा करूँगा क्योकि तुम मन से, शरीर से तथा वाणी से मेरे भक्त हो। योग उपाय, तपस्या और मत्र इनका प्रभाव तो तब ही सिद्ध होता है जबकि इन्हे गुप्त रखे।

जो नरेश मै करउँ रसोई। तुम परसहु मोहि जान न कोई ॥
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई। सोइ सोइ तव आयसु अनुसरई ॥

अर्थ—हे राजा! यदि मैं भोजन बनाऊँ और तुम उसे परसो तथा मुझे कोई जानने न पाए तो जो-जो प्राणी उस अन्न को खाएगे वे सब तुम्हारी आज्ञा मे चलेंगे।

पुनि तिनके गृह जेवै जोऊ। तव वश होइ भूप सुन सोऊ ॥
जाय उपाय रचहु नृप येहू। संबत भरि संकल्प करेहू ॥

अर्थ—हे राजा! यह भी सुनो, फिर जितने मनुष्य उनके घर में भोजन करेंगे वे भी तुम्हारे वश मे हो जाएँगे। हे राजा! तुम जाकर यही उपाय करो और इस प्रकार ब्रह्मभोज का सकल्प साल भर के लिए करो।

दोहा—नित नूतन द्विज सहस शत, बरेहु सहित परिवार।
मैं तुम्हरे संकल्प लगि, दिनहि करब जेवनार ॥१६८॥

अर्थ—प्रतिदिन नये-नये एक लाख ब्राह्मणो को कुटुम्ब समेत न्योता दिया करो। मैं संकल्प पूर्ण होने तक उन्हे दिन ही के समय जिवा दिया करूँगा (अर्थात् एक लाख सपरिवार ब्राह्मणो का भोजन तैयार कर मैं उन सबको प्रतिदिन सूर्य अस्त होने के पूर्व ही भोजन कराकर निश्चिन्त कर दूँगा)।

---

१. मोहि लागि दुख सहिय प्रभु, सज्जन दीनदयाल—जैसा कि जमाल कवि ने कहा है—
"सुन सुयश दुआर किवार दे, कुयश जमाल न मुक्किये।
जिय जाय यदपि भलपन करत तऊ न भलपन चुक्किये" ॥
गिरधर कविराय भी कह गये हैं 'परस्वारथ के काज सीस आगे धर दीजै'।
योग युक्ति तप मत्र प्रभाऊ। फलै तबहि जब करिय दुराऊ—भाषा राजनीति से—
दोहा—मत्ररु मैथुन औषधी, दान मान अपमान।
गृह सपति अरु छिद्रता, प्रगट न 'लाल' बखान ॥

इहि विधि भूप कष्ट अति थोरे । होइहि सकल विप्र वश तोरे[१] ।।
करिहहि विप्र होम मख सेवा । तेहि प्रसंग सहजहि वश देवा ।।

अर्थ—इस प्रकार हे राजा ! थोडे ही कष्ट से सब ब्राह्मण तुम्हारे अधीन हो जाएगे । ब्राह्मण लोग हवन, यज्ञ, पूजन आदि करेंगे जिनके कारण देवगण सहज ही मे प्रसन्न हो जाएगे ।

और एक तोहि कहउँ लखाऊ । मै इहिवेष न आउब काऊ ।।
तुम्हरे उपरोहित कहँ राया । हरि आनब मै करि निज माया ।।

अर्थ—मै तुम्हे एक बात और भी जताये देता हूँ कि मै कभी इस तपसी भेष से न आऊँगा । हे राजा ! मैं अपनी माया के बल से तुम्हारे रसोइया को उठा लाऊँगा ।

तपबल तेहि करि आप समाना । रखिहउँ इहाँ वर्ष परमाना ।।
मै धरि तासु वेष सुन राजा । सब विधि तोर सम्हारब काजा ।।

अर्थ—तपस्या के प्रभाव से उसे अपने समान बनाकर यहाँ पर एक वर्ष तक रखूँगा । हे राजा ! मै उसका रूप धारण कर सब प्रकार से तुम्हारा काम सिद्ध करूँगा ।

गइ निशि बहुत शयन अब कीजे । मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजे ।।
मैं तपबल तोहि तुरग समेता । पहुँचैहौ सोवतहि निकेता ।।

अर्थ—हे राजा ! रात बहुत बीत गई, अब सो जाओ । हमारी-तुम्हारी भेट तीसरे दिन होगी । मै अपनी तपस्या के प्रताप से घोडे समेत तुझे सोते हुए ही तुम्हारे घर पर पहुँचा दूंगा ।

दोहा—मैं आउब सोइ वेष धरि, पहिचानेउ तब मोहि ।
जब एकात बुलाइ सब, कथा सुनावउँ तोहि ।।१६९।।

अर्थ—मैं उपरोहित के रूप मे आऊँगा, तुम मुझे तब ही जान लेना, जबकि मैं अकेले मे बुलाकर तुमसे यह सब कथा कह सुनाऊँ ।

शयन कीन्ह नृप आयसु मानी । आसन जाय बैठ छलज्ञानी ।।
श्रमित भूप निद्रा अति आई । सो किमि सोव सोच अधिकाई[२] ।।

अर्थ—आज्ञा माँगकर राजा तो जा लेटा परन्तु कपटी तपस्वी अपने आसन पर आ बैठा । थके हुए राजा को तो गहरी नीद लग गई परन्तु वह जिसे भारी सोच लगा था कैसे सो सकता था !

---

१. इहि विधि भूप कष्ट अति थोरे । होइहिं सकल विप्र वश तोरे—हितोपदेश मे लिखा है—
   श्लोक—अनुचित कार्यारभ. स्वजन विरोधो बलीयसा स्पर्धा ।
   प्रमदाजन विश्वासो मृत्योद्वाराणि चत्वारि ।।
   अर्थात् (१) अयोग्य काम का आरभ, (२) सबधियो से बैर, (३) बलवानो से डाह, और (४) स्त्रियो पर विश्वास—ये चारो मृत्यु के मानो दरवाजे ही है (अर्थात् मौत के उपाय है) ।
   यहाँ पर सकुटुम्ब एक लाख ब्राह्मणो को भोजन बनाकर प्रतिदिन खिलाना और उनसे सौ कल्प तक जीने के लिए आशीर्वाद की इच्छा रखना, सब ही असभव कार्यों का विचार और आरभ था ।

२. श्रमित भूप निद्रा अति आई । सो किमि सोव सोच अधिकाई—अरण्यकाण्ड रामचरित-मानस की श्री विनायकी टीका (आवृत्ति दूसरी)

कालकेतु निशिचर तहँ आवा । जेहि शूकर होई नृपहि भुलावा ।।
परममित्र तापसृप केरा । जानइ सो अति कपट घनेरा ।।

अर्थ—इतने ही मे कालकेतु नामका राक्षस वहाँ पहुँचा जिसने सुअर बनकर राजा को (वन मे) भुलाया था । वह तो बडा भारी मायावी था और तपस्वी राजा का बडा मित्र था ।

तेहि के शत सुत अरु दश भाई । खल अति अजय देव दुखदाई ।।
प्रथमहि भूप समर सब मारे । विप्र संत सुर देखि दुखारे ।।

अर्थ—इसके सौ लडके और दस भाई जो दुष्ट बडे दुर्जयी और देवताओ को दु ख देने वाले थे, इन सबको प्रतापभानु ने लडाई मे पहले ही मार डाला था क्योकि राजा ने सब ब्राह्मण और सज्जनो को दु खी देखा था ।

तेहि खल पाछिल बैर सँभारा । तापस नृप मिलि मंत्र विचारा ।।
जेहि रिपुक्षय सोइ रचेसि उपाऊ । भावीवश न जान कछु राऊ ।।

अर्थ—उस दुष्ट ने अपने पिछले वैर की सुध की और कपटी राजा से मिलकर सलाह की जिसमे वैरी का नाश हो वही युक्ति सोची । प्रतापभानु ने होनहार के अधीन होकर कुछ न समझा ।

दोहा—रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिय न ताहु[१] ।
अजहुँ देत दुख रवि शशिहि, शिर अवशेषित राहु ।।१७०।।

अर्थ— प्रतापवान शत्रु चाहे अकेला क्यो न हो, उसे छोटा न समझ लेना चाहिए । देखो, राहु जिसका सिर अलग हो रहा है, वह भी अभी तक सूर्य और चद्रमा को ग्रहण लगाता है ।

तापस नृप निज सखहि निहारी । हरषि मिलेउ उठि भयउ सुखारी ।।
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई । यातुधान बोला सुखपाई ।।

अर्थ—तपसी राजा अपने मित्र को देख प्रसन्नतापूर्वक उठके मिला और हर्षित हुआ । उसने मित्र से सब हाल कह सुनाया, वह राक्षस भी सुखी हो कहने लगा—

अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेशा । जो तुम कीन्ह मोर उपदेशा ।।
परिहरि सोच रहहु तुम सोई । बिन औषधिहि ब्याधि विधि खोई[२] ।।

अर्थ—हे राजा ! सुनो, जो तुमने मेरे कहने के अनुसार किया तो अब शत्रु अपने वश मे आ गया है । चिन्ता को छोड अब सो रहो, विधाता ने बिना ही औषधि के रोग मिटा दिया (अर्थात् बिना ही संग्राम किये शत्रु अपने अधीन हो गया), इससे उसका नाश हुआ ही समझो ।

कुलसमेत रिपुमूल बहाई । चौथे दिवस मिलब मैं आई ।।

---

१. रिपु तेजसी अकेल अपि, लघुकरि गनियन ताहु—

दोहा—अरि छोटो गनियै नही, जासो होत बिगार ।
तृण समूह को क्षणक में, जारत तनिक अंगार ।।

२. परिहरि सोच रहहु तुम सोई । बिन औषधिहि ब्याधि विधि खोई—मयङ्कमञ्जरी नाटक से—

राग देश—सबै विधि समय सराहन योग ।
जाके शासन तें विरोध करि लहै न नीके भोग ।।
जो चाहै सो करै निडर ये बिन औषधि को रोग ।
'श्री किशोरि, या के बन्धन ते बँधे जगत के लोग ।।

तापसनृपहि बहुत परितोषी । चला महाकपटी अतिरोषी ।।

अर्थ—परिवार समेत बैरी को जड से नाश करके मै तुमसे चौथे दिन आ मिलूँगा । इस प्रकार वह बडा छलिया क्रोधी (राक्षस) तपस्वी राजा को समझाकर चला ।

भानुप्रतापहि बाजि समेता । पहुँचायेसि क्षण माँझ निकेता ।।
नृपहि नारि पहँ शयन कराई । हयगृह बाँधेसि बाजि बनाई ।।

अर्थ—उसने भानुप्रताप को घोडे समेत पल भर मे घर पहुँचा दिया । वहाँ राजा को तो रानी के पास लिटा दिया और घोडे को सम्हाल कर घुडसार मे बाँध दिया ।

दोहा—राजा के उपरोहितहि, हरि लै गयउ बहोरि ।
लै राखेसि गिरि खोह महँ, माया करि मति भोरि ।।१७१।।

अर्थ—फिर वह राजा के रसोइये को उठा लाया और अपनी माया के बल से उसकी बुद्धि को भ्रम मे डाल पर्वत की कदरा मे जा रखा ।

आप बिरचि उपरोहित रूपा । परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा ।।
जागेउ नृप अनभये बिहाना । देखि भवन अति अचरज माना ।।

अर्थ—और आप उपरोहित का रूप बनाकर उसकी उत्तम सेज पर जा सोया । सबेरा होने के पूर्व ही राजा जाग उठा और अपना महल देख बडे अचभे मे पडा ।

मुनिमहिमा मन महँ अनुमानी । उठेउ गवहि जेहि जान न रानी ।।
कानन गयउ बाजि चढ़ि तेही । पुर नर नारि न जानेउ केही ।।

अर्थ—तपसी मुनि के प्रभाव को मन ही मन समझ ऐसे सम्हाल के उठा कि जिसमे रानी न जागे । फिर उसी घोडे पर चढकर जगल की ओर गया । यह बात नगर के किसी भी स्त्री-पुरुष ने न जानी ।

गये यामयुग भूपति आवा । घर घर उत्सव बाज बधावा ।।
उपरोहितहि देख जब राजा । चकित विलोकि सुमिरि सोइ काजा ।।

अर्थ—दोपहर के समय राजा आ गये तब तो प्रत्येक घर मे आनन्द बधाई होने लगी (अर्थात् जगल मे भूले हुए महाराजा के लौट आने से सब नगरनिवासी आनन्द मे मग्न हो गये)। जब राजा ने उपरोहित को देखा तब तो वह अकचकाकर देखने लगा और उसे उसी कार्य का स्मरण आ गया ।

युग सम नृपहि गये दिन तीनी । कपटी मुनिपद रहि मति लोनी ।।
समय जानि उपरोहित आवा । नृपहि मते सब कहि समझावा ।।

अर्थ—राजा को तीन दिन युग के समान बीते, उसका चित्त कपटी मुनि के चरणो में लगा रहा । अवसर देखकर उपरोहित आया और उसने राजा से सब सलाह की बातें कह सुनाई ।

दोहा—नृप हरषेउ पहिचान गुरु, भ्रमवश रहा न चेत ।
बरे तुरत शतसहस वर, विप्र कुटुम्ब समेत ।।१७२।।

अर्थ—राजा अपने गुरु को पहचान प्रसन्न हुआ । धोखा खा जाने से उसे विचार न रहा और उसने तुरन्त एक लाख उत्तम ब्राह्मणो को कुटुम्ब समेत निमत्रण दिया ।

उपरोहित जेवनार बनाई । छरसचारि विधि जसि श्रुति गाई ।।

मायामय तेहि कीन्ह रसोई । व्यंजन बहु गनि सकै न कोई ।।

अर्थ—उपरोहित ने षट् रस तथा चारो प्रकार के भोजन तैयार किये जिस प्रकार कि वेद मे लिखा है। उसने माया से ऐसे-ऐसे भोजन तैयार किये कि उनके प्रकार कोई गिन नही सकता था।

विविध मृगन्ह कर आमिष राँधा । तेहि महँ विप्र मास खलसाँधा ।।
भोजन कहँ सब विप्र बोलाये । पद पखारि सादर बैठाये ।।

अर्थ—अनेक प्रकार के मृगो का मास बनाया जिसमे उस दुष्ट ने ब्राह्मणो का मास मिला दिया। सब ब्राह्मणो को भोजन के लिए बुलाया और उनके चरण धोकर उन्हे आदर-पूर्वक बिठाया।

परुसन जबहि लाग महिपाला । भइ अकाशवाणी तेहि काला ।।
विप्र वृंद उठि उठि गृह जाहू । है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू ।।

अर्थ—जिस समय राजा परोसने लगा उसी समय आकाशवाणी हुई—हे ब्राह्मण ! उठ-उठकर अपने घर जाओ। यह अन्न मत खाओ। बडा दोष होगा।

भयउ रसोई भूसुर मांसू । सब द्विज उठे मानि विश्वासू ।।
भूप विकल मति मोह भुलानी । भावीवश न आव मुख बानी ।।

अर्थ—रसोई मे ब्राह्मणो का मास राँधा गया है सब ब्राह्मण विश्वास मानकर उठ खड़े हुए। राजा घबडा गया। मोह से बुद्धि भ्रम मे पड गई और होनहार के वश मे होने से कुछ बोलते न बना।

दोहा—बोले विप्र सकोप तब, नहि कछु कीन्ह विचार।
जाय निशाचर होहु नृप, मूढ सहित परिवार ।।१७३।।

अर्थ—तब ब्राह्मणो ने कुछ विचार न किया, क्रोधित होकर कहने लगे—अरे मूर्ख राजा ! तू अपने कुटुम्ब समेत राक्षस हो जा।

क्षत्रबन्धु तैं विप्र बुलाई । घालै लिये सहित समुदाई ।।
ईश्वर राखा धर्म हमारा । जैहसि तै समेत परिवारा ।।

अर्थ—हे क्षत्रियाधम ! ब्राह्मणो को परिवार समेत नष्ट करने के हेतु बुलाया था ? भगवान ने हमारा धर्म बचा लिया, तू तो परिवार समेत नष्ट हो जायेगा।

सम्वत मध्य नाश तव होऊ । जल दाता न रहहि कुल कोऊ ।।
नृप सुनि शाप विकल अति त्रासा । भइ बहोरि वर गिरा अकासा ।।

अर्थ—एक वर्ष के भीतर तेरा नाश हो जायगा। तेरे कुटुम्ब मे कोई भी पानी देने वाला न बचेगा। राजा शाप को सुनकर डर के मारे व्याकुल हो गया। इतने मे फिर से उत्तम आकाश वाणी हुई—

विप्रहु शाप विचारि न दीन्हा । नहि अपराध भूप कछु कीन्हा ।।
चकित विप्र सब सुनि नभ बानी । भूप गयो जहँ भोजन खानी ।।

अर्थ—हे ब्राह्मणो ! तुम लोगो ने भी विचार से शाप नही दिया। राजा ने कुछ भी अपराध नहीं किया। आकाशवाणी सुनते ही सब ब्राह्मण अचभे मे पड़ गये और राजा वहाँ गया, जहाँ रसोईघर था।

तहँ न अशन नहि विप्र सुआरा । फिरेउ राउ मन सोच अपारा ।।
सब प्रसग महिसुरन्ह सुनाई । त्रसित परेउ अवनी अकुलाई ।।

अर्थ—वहाँ न तो भोजन सामग्री थी और न रसोई का विप्र था । राजा लौट आया (स्मरण रहे कि मायावी कालकेतु राक्षस वहाँ से चला गया था और उसकी माया से रची हुई रसोई भी वहाँ न रही) परन्तु उसके मन मे भारी चिन्ता थी । उसने सब हाल ब्राह्मणो को सुना दिया और डर से घबडाता हुआ पृथ्वी पर गिर पडा ।

दोहा—भूपति भावी मिटइ नहि, यदपि न दूषण तोर[१] ।
किये अन्यथा होय नहि, विप्रशाप अति घोर ।।१७४।।

अर्थ—हे राजा ! यद्यपि इसमे तुम्हारा अपराध नही है तो भी होनहार अमिट है । ब्राह्मणो का शाप बडा कठिन, है यह अब पलट नही सकता ।

अस कहि सब महिदेव सिधाये । समाचार पुर लोगन पाये ।।
सोचहि दूषण दैवहि देही । बिचरत हस काग किय जेही[२] ।।

अर्थ—ऐसा कहकर सब ब्राह्मण चले गये । ये वार्त्ता सब नगर निवासियो को मालूम हुई । वे लोग चिन्ता मे पडे और विधाता को दोष लगाने लगे कि जिसने हस बनाते-बनाते कौआ बना डाला (भाव यह कि शुद्ध आचरण का धर्मात्मा राजा राक्षस बनाया गया) ।

उपरोहितहि भवन पहुँचाई । असुर तापसहि खबरि जनाई ।।
तेहि खल जहँ तहँ पत्र पठाये । सजि सजि सेन भूप सब धाये ।।

अर्थ—कालकेतु ने उपरोहित को घर पहुँचा दिया और फिर कपटी तपस्वी को सब समाचार जा सुनाये । उस दुष्ट ने जहाँ-तहाँ पत्र भेजे (समाचार पाते ही) सब राजा अपनी-अपनी सेना सजाकर आ पहुँचे ।

---

१ भूपति भावी मिटइ नहिं, यदपि न दूषण तोर—

राग कालि०—सब दिन होत न एक समान ।

इक दिन राजा हरीचन्द गृह सम्पति मेरु समान ।
इक दिन जाय श्वपच गृह सेवत अबर हरत मशान ।।
इक दिन दूलह बनत बराती चहुँ दिशि गडत निशान ।
इक दिन डेरा होत जगल मे कर सूधे पगतान ।।
इक दिन सीता रुदन करत है महा विपिन उद्यान ।
इक दिन रामचन्द्र मिलि दोऊ विचरत पुष्प विमान ।।
इक दिन राजा राज युधिष्ठिर अनुचर श्री भगवान ।
इक दिन द्रुपदी नगन होत है चीर दुशासन तान ।।
प्रकटत है पूरब की करनी तज मन शोच अजान ।
सूरदास गुण कहँ लग बरनौ विधि के अक प्रमान ।।

इस दोहे के पश्चात् १० लकीरो का क्षेपक पुरौनी मे मिलेगा ।

२. सोचहिं दूषण दैवहिं देही । विचरत हंस काग किय जेही—

क० : दुष्टन की जीह छाँडि कस्तूरी सुमृग नाभि धरी है अनग काम गंध हेम ना दयो
कर्ण भोज दान शूर कीन्हो अल्प जीवी तिन्है लोमस की आयु को बढाय कहो का भयो
चन्दन को पुष्प हीन ऊखहू निफल कियो कामधेनु पशु कल्पवृक्ष बीज न बयो
कौन-कौन बात कहौं तेरी एक आनन ते नाम चतुरानन पै चूकतै चलो गयो

घेरेन्हि नगर निशान बजाई । विविध भाँति नित होइ लराई ।।
जूझे सकल सुभट करि करनी । बंधु समेत परेउ नृप धरनी[1] ।।

अर्थ—उन्होने डका बजाकर नगर को घेर लिया । दिन-प्रतिदिन नाना प्रकार से लडाई होने लगी । सम्पूर्ण योद्धा शूरता से लडते-लडते मरे और राजा भी अपने भाई समेत मारा गया ।

सत्यकेतुकुल कोउ न बाँचा । विप्रशाप किमि होय असाँचा ।।
रिपु जिति सब नृप नगर बसाई । निज पुर गवने जय यश पाई[2] ।।

अर्थ—सत्यकेतु के घराने मे कोई भी जीता न बचा, ब्राह्मणो का शाप झूठा कैसे हो सकता है ? सब राजा शत्रु को जीत और नगरको आबाद कर विजय पाने का यश प्राप्त करके अपने-अपने नगर को लौट गये ।

दोहा—भरद्वाज सुन जाहि जब, होइ विधाता वाम[3] ।
धूरि मेरु सम जनक यम, ताहि ब्याल सम दाम ।।१७५।।

शब्दार्थ—वाम = विपरीत, टेढा । दाम = माला ।

अर्थ—(याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि) हे भरद्वाज ! सुनो जब जिसको विधाता विपरीत होता है (अर्थात् जब जिस समय जिसका भाग्य पलटा खाता है) तब उसे धूल मेरु पर्वत के समान, पिता यमराज के तुल्य और रत्नमाला सर्प के सदृश हो जाती है । भाव यह कि दुर्भाग्य

---

१. जूझे सकल सुभट करि करनी । बन्धु समेत परेउ नृप धरनी—
क०—जत्र मत्र पूजा पाठ झूठ से दिखात सब जहर ह्वै जान खात अमृत अहार है ।
वैद औ हकीमन की हिम्मत हिराय जात भूल जात साधुन की सिद्धता अपार है ।।
भनै 'रघुराज' गुणी ज्योतिषी विदूष जात दूष जात जोगिन की जुगत हजार है ।
जतन अनेक करतार हू करै जो आय ताहि को बचावै जाको पूजि गौ करार है ।।

२. रिपु जिति सब नृप नगर बसाई । निज पुर गवने जय यश पाई— मयक मजरी से—
क० केतिक उपाय नर करै धाय-धाय तऊ जाके जाहि करम लिख्यो है सोई पाय है ।
दान दया धरम करम चित्त धोय पीयो, पाप मे रहत रत अधिक मुलाय है ।।
आज जोई करै काल फलैहू मिले पै अध, खबर करै नही कि काल कब खाय है ।
दुनियाँ अजब अलबेली ये सरायचाय, कही खुशी होय कही होय हाय हाय है ।।
नगर—अर्थात् पुराना केकय देश है जिसे आजकल हिरात कहते है जो अफ़गानिस्तान देश मे है ।

३ भरद्वाज सुनु जाहि जब, होइ विधाता वाम···आदि श्रीमान् ठाकुर बलभद्र सिंह पँवार, स्थान बेहडा, जिला वहराइच-कृत—
क० : दिनन के फेर ते दुरतमाल दौलत है दिनन को फेर दुख दारिद लै पाटी है ।
दिनन के फेर बाल बन्धु मे विरोध होत भान 'बलभद्र' होत बानिज भे घाटी है ।।
दिनन के फेर छुटैं बाम धाम ग्राम आदि दिनन के फेर होत मित्र से उचाटी है ।
नेकहू न देर होत सोना छुए लोह होत दिनन के फेर ते सुमेर होत माटी है ।।
और भी—बसुन्धरा रत्न श्रीमती चन्द्रकला बाई (बूँदी) कृत—
कवित्त—बान्धव सुहृद मात तात सब बैरी होत मारग सुगम सोऊ महा घोर घाटी है ।
अमृत गरल होइ सुतरु बबूर होइ अगनि समान तप्त होइ हिम पाटी है ।।
चन्द्रकला कहै जीन जेवरी सरप होत गड के समान आड ठानै तृन टाटी है ।
जतन अनेक करौ उद्यम निफल जात दिनन के फेरते सुमेर होत माटी है ।।

आते ही राज्यहीन, अकेला, कालकेतु पहाड की नाईं भारी शत्रु बन गया, पिता के तुल्य मानो कपट मुनि ने यमराज का-सा काम किया और रत्नतुल्य ब्रह्ममडली ने सर्प सदृश हो राजा प्रतापभानु का सर्वनाश कर डाला।

(२७. रावण आदि की उत्पत्ति)

काल पाइ मुनि सुन सोइ राजा। भयउ निशाचर सहित समाजा॥
दश शिर ताहि बीस भुजदडा[१]। रावण नाम वीर बरिबंडा॥

अर्थ—हे भरद्वाज जी ! समय पाकर वही (प्रतापभानु) राजा अपने साथियो समेत राक्षस हुआ। उसके दस मस्तक और बीस बाहु थे, जो योद्धाओ मे बलवान् रावण नामका था।

भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुम्भकरण[२] बल धामा॥

---

१ दश शिर ताहि बीस भुज दडा—रावण का जीवन-चरित्र विस्तार सहित लिखने की आवश्यकता जान यहाँ पर स्थान का सकोच मान पुरौनी मे लिख दिया है।

२. कुम्भकर्ण—यह रावण का मझला भाई था। उत्पन्न होने पर इसकी आकृति प्राय. पर्वत के तुल्य थी। यह ऐसा भयकर था कि पैदा होते ही इसने एक हजार प्राणी खा डाले। यह देख इन्द्र अपने हाथी ऐरावत पर सवार होकर आये और उन्होने इसे अपना वज्र मारा। उसने वह चोट तो सहन कर ली, परन्तु ऐरावत का एक दाँत उखाड कर उसी दाँत से ऐसा धमाका हाथी को जमाया कि इन्द्र वहाँ से भाग गये। यह सब समाचार इन्द्र ने ज्यो ही ब्रह्मदेव को सुनाया त्योही उन्होने उसे शाप दिया कि तुझे नीद बहुत हो। इस पर रावण की प्रार्थना सुन ब्रह्मदेव ने शाप का यह उद्धार किया कि छ· महीने मे एक दिन जागृत रहा करेगा। रावण के साथ इसने दस हजार वर्ष तक उग्र तपस्या की थी; परन्तु जब ब्रह्मदेव इसे वर देना चाहते थे, तब देवताओ ने इसके उत्पात कह सुनाये कि इसने सात अप्सराएँ, दस देवदूत और असख्य ऋषि खा डाले है। इस पर ब्रह्माजी ने सरस्वती को प्रेरणा करके इसकी बुद्धि पलट दी। तब तो इसने वैसा ही वरदान माँगा जैसा कि ब्रह्मा का शाप हो चुका था। जब यह लका मे आ रहा तब राजा बलि ने अपनी दौहित्री (लडकी की लडकी) वज्र ज्वाला नामकी इसे ब्याह दी। वज्र ज्वाला का दूसरा नाम वृत्रज्वाला था। रावण ने इसके सोने के निमित्त दो योजन लम्बा, एक योजन चौडा महल बना दिया था। छः महीने मे एक बार जागकर यह बहुत-सा अन्न व बहुत-सा मास खा और मदिरा पीकर स्त्री प्रेम भी किया करता था, तथा कभी-कभी रावण की सभा मे भी जा बैठता था। जब हनुमानजी लङ्का जलाकर चले गये थे उस समय रावण की सभा मे यह भी उपस्थित था। वहाँ पर विचार हो रहा था कि यदि राम ने चढाई की तो क्या उपाय करना चाहिए। कुम्भकर्ण ने कहा था कि सीता को लौटा दो, परन्तु रावण क्रोधित हो उठा, इससे उसने फिर से यह कहा कि परवाह नही, मैं राम की सब सेना को खा डालूँगा—ऐसा कहकर वह सो गया। लडाई के समय जब अनेक वीर राक्षस मारे गये तब रावण ने कुम्भकर्ण को जगाने का बडा भारी प्रयत्न किया। उसके ऊपर से हाथी चलाये, कानो मे पानी के घडे उलटे और सैकडो बाजे बजाये, तब यह बडी कठिनाई से उठा और रावण से मिलकर रणक्षेत्र मे गया। लडाई का हाल लकाकाण्ड मे विस्तार सहित दिया हुआ है। इसके कुभ, निकुभ दो लडके बडे पराक्रमी हो गये है।

सचिव जो रहा धर्मरुचि जासू। भयउ विमात्रबन्धु[1] लघु तासू ॥

अर्थ—राजा का छोटा भाई जिसका अरिमर्दन नाम था, बडा बलवान् कुम्भकर्ण हुआ। उसका मत्री जिसका नाम धर्मरुचि था, उसका सौतेला छोटा भाई हुआ।

नाम विभीषण जेहि जग जाना। विष्णुभक्त विज्ञाननिधाना ॥
रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भये निशाचर घोर घनेरे ॥

अर्थ—ससार के लोग जानते है कि उसका नाम विभीषण था, वह विष्णुजी का भक्त और परम ज्ञानवान् था। राजा के जो और लडके तथा नौकर थे, वे सब बडे दुष्ट राक्षस हुए।

कामरूप खल जटिल कुभेका। कुटिल भयकर विगतविवेका ॥
कृपारहित हिसक सब पापी। बरनि न जाइँ विश्वपरितापी ॥

अर्थ—वे दुष्ट इच्छानुसार रूपधारी बडी-बडी जटाओ वाले कुरूप थे तथा कपटी, डरावने और विवेक रहित थे। सबके सब दयाहीन, हत्यारे और पापी थे, ऐसे ससार के दु ख देने वालो का वर्णन नही किया जा सकता।

दोहा—उपजे यदपि पुलस्त्य[2] कुल, पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर शापवश, भये सकल अघरूप ॥ १७६ ॥

---

१ विमात्र बन्धु=सौतेला भाई अर्थात् विभीषण।
इसने पाँच हजार वर्ष तक अपने भाइयो के साथ उग्र तपस्या की थी। फिर पाँच हजार वर्ष तक पैरो के बल खडे होकर तपस्या की। तब ब्रह्मदेव प्रसन्न हो बोले कि वरदान माँगो! इसने कहा कि मेरी मति सदैव सद्धर्म मे लगी रहे और मुझे ब्रह्मास्त्र भी मिले। ब्रह्मा ने विचारा कि राक्षस हो के यह वरदान माँगता है। इस हेतु प्रसन्न होकर उसके माँगे वरदान तो दिये ही और अपनी ओर से उसे अमर करके अन्तर्ध्यान हो गये। जब लका मे इनका निवास हुआ और रावण तथा कुम्भकर्ण का विवाह हो गया, तो शैलूष गंधर्व ने अपनी कन्या सरमा विभीषण को ब्याह दी। जिस सभा मे वज्रदष्ट्र ने यह सलाह दी थी कि मनुष्यो का रूप धरकर राक्षस गण रामचन्द्र की सेना मे जा मिलें और कहे कि हम लोगो को भरत ने सहायता के लिए भेजा है और जब बानर अलग हो जाए तो सन्धि पाकर राम-लक्ष्मण को खा जाएगे। यह विचार विभीषण के समझाने से रद्द कर दिया गया था। इन्होने इन्द्रजीत और प्रहस्त को भी रामचन्द्रजी की भर्त्सना करने के कारण डाँटा था। फिर रावण को भी बहुत प्रकार से समझाया कि तुम सीता को लौटा दो 'इत्यादि, सब कथा रामचरितमानस ही मे है। रावण के मरने पर इसे लका का राज्य दिया गया। वह उसे आज तक भोग रहा है क्योकि वह अमर हो चुका था।
इसके पुत्र का नाम तरणीसेन था, यह बडा पराक्रमी था। इसमे परमेश्वर की भक्ति विशेष थी। इससे इसने राक्षसी शरीर मे रहना न चाहा। इस कारण श्री रामचन्द्रजी के हाथ से मरकर मुक्ति पा गया।
माली राक्षस की वसुधा नाम की पत्नी से तीन पुत्र अनल, अनिलह और सम्पाति हुए जो विभीषण के मत्री हुए। (देखें वाल्मीकीय रामायण)
पुलस्त्य—पहले मन्वन्तर मे महादेव के शाप से मरे हुए पुलस्त्य नामी अपने मानस पुत्र को ब्रह्मदेव ने फिर से इस वैवस्वत मन्वन्तर के आरम्भ मे सजीव किया। इसे ब्रह्मदेव ने ब्रह्मअग्नि के पिगल रग के बालो से उत्पन्न किया था। ये ऋषिजी सत्ययुग मे मेरु पर्वत के समीप पहले ही से तपस्या करते थे। वही पर गधर्व आदि की कन्याएँ आकर →

अर्थ—यद्यपि इन्होने पुलस्त्य ऋषि के पवित्र शुद्ध उपमा रहित कुल मे जन्म लिया था तो भी ब्राम्हणो के शाप से वे सब के सब पापरूप हो अवतरे।

कीन्ह विविध तप तीनिउँ भाई। परम उग्र नहि बरनि सो जाई ।।
गयउ निकट तप देखि विधाता। मॉगहु वर प्रसन्न मैं ताता ।।

अर्थ—तीनो भाइयो ने नाना प्रकार से ऐसे कठिन तपस्या की जिसका वर्णन नही हो सकता। तपस्या देख ब्रह्माजी उनके निकट आये और कहने लगे, हे प्यारे! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, वरदान माँगो !

करि विनती पद गहि दशसीसा। बोलेउ वचन सुनहु जगदीसा ।।
हम काहू के मरहि न मारे[१] । वानर मनुज जाति दुइ बारे ।।

अर्थ—रावण विनती कर तथा उनके पॉवो को छूकर कहने लगा, हे ससार के स्वामी, सुनिये! हम किसी के मारने से न मरे। बन्दर और मनुष्य इन दो प्रकार के प्राणियो को छोडकर (भाव यह है कि जब रावण ने वर माँगा कि हम किसी के मारे न मरें, तो ब्रह्माजी ने कहा कि ऐसा नही हो सकता। तुम किसी को भी छोडकर वरदान माँगो। जब रावण ने ये सोचा कि मनुष्य और बदर तो हमारे खाद्य है, इस हेतु उन्हे छोडकर और किसी के हाथ से मरूँ, ऐसा वरदान माँगा)

एवमस्तु तुम बड़ तप कीन्हा। मै ब्रह्मा मिलि तेहि वर दीन्हा ।।
पुनि प्रभु कुम्भकरण पहुँ गयऊ। तेहि विलोकि मन विस्मय भयऊ ।।

अर्थ ऐसा ही हो, तुमने बडी तपस्या की है (इस प्रकार से शिवजी बोले कि) मैं और ब्रह्मा दोनो ने मिलकर उसे वरदान दिया था। फिर ब्रह्मदेव कुम्भकर्ण के पास गये जिसको देखकर उनके मन मे बडा आश्चर्य हुआ क्योकि—

जो इहि खल नित करब अहारा। होइहि सब उजारि संसारा ।।
शारद प्रेरि तासु मति फेरी। मॉगेसि नीद मास षट केरी ।।

अर्थ—जो यह दुष्ट प्रतिदिन भोजन करता रहेगा तो ससार ही उजड जायेगा (क्योकि इसका बडा भारी शरीर और बहुत-सा आहार था (देखे लकाकाण्ड)। सरस्वती को उकसाकर कुम्भकर्ण की मति को पलट दिया जिस हेतु उसने छ. महीने की नीद माँगी (अन्य कथाओ से प्रकट है कि कुम्भकर्ण इद्रपद माँगना चाहता था सो सरस्वती की प्रेरणा से उसने निद्रपद कहकर वरदान माँगा)।

तान छेडा करती थी। उससे इनकी तपस्या मे विघ्न पडता था। उस पर से इन्होने यह शाप दे रक्खा था कि जो कन्या मेरे सन्मुख आएगी, गर्भिणी हो जाएगी। एक समय तृणविन्दु राजा की कन्या शाप का हाल न जानकर वहाँ गई, तो वह गर्भिणी हो गई। तब तो तृणविन्दु ने पुलसत्य ही के गले उसे मढ दिया। इससे जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम विश्रवा रखा गया। विश्रवा से कुवेर, रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण, शूर्पनखा, खरदूषण आदि उत्पन्न हुए थे (देखे अरण्यकाण्ड रामचरितमानस की विनायकी टीका की टिप्पणियाँ)।

१. हम काहू के मरहिं न मारे—सुमति मन रजन नाटक से—

दोहा—मरौ न काहू हाथ सौं, जीति लेऊँ ससार।
नर बानर को त्यागि के, जे मम सदा अहार ।।

दोहा—गये विभीषण पास पुनि, कहेउ पुत्र वर माँग ।
तेहि माँगेउ भगवतपद, कमल अमल अनुराग[1] ।। १७७ ।।

अर्थ—फिर ब्रह्माजी विभीषण के पास जाकर कहने लगे कि हे बेटा ! वरदान माँगो। उसने भगवान के स्वच्छ कमलस्वरूपी चरणो मे अटल प्रेम माँग लिया ।

तिनहि देइ वर ब्रह्म सिधाये । हरषित ते अपने गृह आये ।।
मयतनुजा मदोदरि नामा । परमसुन्दरी नारि ललामा ।।

शब्दार्थ—ललामा = स्त्रियो मे भूषण ।

अर्थ—तीनो को वरदान देकर ब्रह्माजी चले गये और ये आनन्दपूर्वक अपने घर पहुचे । मय नाम राक्षस की लडकी, जिसका नाम मदोदरी था, बहुत ही रूपवती स्त्रियो मे भूषण की नाईं थी ।

सोइ मय दीन्ह रावनहि आनी । होइहि यातुधानिपति रानी ।।
हरषित भयउ नारि भलि पाई । पुनि दोउ बधु विवाहेसि जाई[2] ।।

अर्थ—वही मदोदरी मय दैत्य ने रावण को ब्याह दी, यह समझकर कि यह इस राक्षसराज की पटरानी होगी । वह सुन्दर स्त्री को पाकर प्रसन्न हुआ फिर उसने दोनो भाइयो को भी जा ब्याहा ।

गिरि त्रिकूट एक सिधु मँझारी । विधि निर्मित दुर्गम अति भारी ।।
सोइ मय दानव बहुरि सँवारा । कनकरचित मणि भवन अपारा ।।

अर्थ—समुद्र के बीच मे त्रिकूट नाम का एक पर्वत है, उसे ब्रह्मा ने ऐसा बनाया है कि वहाँ पर पहुँचना ही कठिन है । उसी को मय दैत्य ने फिर से सुधारा और वहाँ पर अनगिनत सुवर्ण के घर बनाये जिनमे मणि जडे हुए थे ।

भोगावति जस अहि कुल वासा । अमरावति जस शक्र निवासा ।।
तिन ते अधिक रम्य अति बका । जग विख्यात नाम तेहि लंका[3] ।।

१. तेहि माँगेउ भगवतपद कमल अमल अनुराग—सुमति मन रजन नाटक से—

सवैया—चाहौ कृपाल वही चित मे मति साधु की सगति माहिं ठनी रहै ।
सोवत जागत ही निशि वासर मो मति धर्महि माहि खनी रहै ।।
छाँडि सबै जग को 'ललिते' यह एकहि आस हिये मे तनी रहै ।
कज से पायन मे हरि के नित मेरी घनी प्रभु प्रीति बनी रहै ।।

२ पुनि दोउ बधु विवाहेसि जाई—विवाह का कुछ विवरण क्षेपक मे है जो यो कि—

दोहा—वैरोचन की धेवती, वज्रज्याल जेहि नाम ।
कुम्भकरण को तासु सँग, कियो ब्याह सुख धाम ।।
शैलूषहि गधर्व की, सरमासुता सयान ।
ब्याह विभीषण को कियो, ताके सँग सुखमान ।।

विस्तारपूर्वक कथा वाल्मीकीय रामायण उत्तरकाण्ड के १२ वें अध्याय मे मिलेगी ।

३ जग विख्यात नाम जेहि लका—यह लका किसने बनाई थी उसका हाल मय उसके विस्तार आदि के सुन्दरकाण्ड की श्री विनायकी टीका की टिप्पणी मे है । और भी—

लखत पुरट प्राचीर कोट के अति उतंग चहुँ फेरा ।
चित्रित चित्र विचित्र दिवालन जनु रच मदन चितेरा ।।

अर्थ—सर्पों के रहने की नगरी जिस प्रकार भोगावती है और इन्द्र का निवास-स्थान जैसे अमरावती है उनसे भी अधिक मनोहर तथा दृढतर यह पुरी थी जिसका लका, ऐसा नाम जगत प्रसिद्ध है।

दोहा—खाई सिंधु गँभीर अति, चारिउ दिशि फिरि आव ।
कनककोटि मणिखचित दृढ़, बरनि न जाइ बनाव ।।

अर्थ—जिसके चारो ओर बडा गहरा समुद्र ही खाईं के रूप से है तथा पक्का परकोटा सोने का बना हुआ था जिसमे ऐसे रत्न जडे थे कि उसकी रचना का वर्णन नही हो सकता।

दोहा—हरिप्रेरित जेहि कल्प जोइ, यातुधानपति होइ ।
सूर प्रतापी अतुल बल, दलसमेत वस सोइ ।। १७८।।

अर्थ—ईश्वर की इच्छा से जिस कल्प मे जो राक्षसो का राजा होता है, वह योद्धा प्रतापवान और बडा बलवान उसी स्थान मे आ करके निवास करता है।

रहे तहां निशिचर भट भारे । ते सब सुरन्ह समर संहारे ।।
अब तहँ रहहिं शंक्र के प्रेरे । रक्षक कोटि यक्षपति केरे ।।

अर्थ—वहाँ पर जो राक्षसो के बडे भारी योद्धा रहते थे, उन सबको देवताओ ने सग्राम मे मार डाला था। रावण के समय वहाँ पर इन्द्र की आज्ञानुसार यक्षपति के करोडों यक्ष रहते थे।

दश मुख कतहुँ खबरि अस पाई । सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई ।।
देखि विकट भट बड़ि कटकाई । यक्ष जीव ले गये पराई ।।

अर्थ—जब रावण ने कही से यह समाचार पा लिए (कि लकापुरी राक्षसो के राजा के हेतु निर्माण की गई है) तब तो उसने बडे योद्धाओ और भारी सेना को तैयार कर लका गढ को जा घेरा। जब यक्षो ने बडे-बडे योद्धा और भारी सेना को देखा तब तो वे अपना जीव लेकर भाग गये।

फिरि सब नगर दशानन देखा । गयउ सोच सुग भयउ विशेषा ।।
सुन्दर सहज अगम अनुमानी । कीन्ह तहाँ रावण रजधानी ।।

अर्थ—जब रावण ने सब नगर को घूमकर देखा तब उसका सोच दूर हुआ और उसे

हाट बाट चौहाट घाट सर विस्तृन बने सोहावन ।
वन उपवन घर बाग वाटिका खिले सुमन मन भावन ।।
धवल धाम अभिराम उच्च अति लपकि मनहुँ नभ चूमत ।
रग रग के तिन ऊपर वर केतु पताका घूमत ।।
विहरत वृन्द वृन्द कल रमनी रति मद दमनी नारी ।
अमरपुरी किन्नरीनरी वर नहिं जिनकी अनुहारी ।।
अगन लसत अदूषण भूषण रग रग तन सारी ।
गावत मधुर मधुर स्वर छावत बीन बजावत प्यारी ।।
चलि कछु दूरि भूरि पुनि निरख्यो अश्व गयन्दम शाला ।
बँधे तहाँ वर बाजि राजि गज मानहुँ मेरु विशाला ।।
बने अगार द्वार सचिवन के वर्णत जौन बनैना ।
रचे असार अपार लरत तहँ दनुज मल्ल बल ऐना ।।

बड़ा आनन्द हुआ। रावण ने उसे सुन्दर और स्वभाव ही से (शत्रु की) पहुच के बाहर समझ कर अपनी राजधानी बना ली।

जेहि जस योग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे ।।
एक बार कुबेर[1] पर धावा। पुष्पकयान जीति लै आवा[2] ।।

अर्थ —जिसको जैसा योग्य था वैसा घर दे दिया। इस प्रकार सब राक्षसो को प्रसन्न किया। एक समय वह कुबेर पर चढ दौडा और उसके पास से पुष्पक विधान छीन लाया।

दोहा—कौतुक ही कैलास पुनि, लीन्हेसि जाय उठाय[3] ।
मनहुँ तौलि निज बाहु बल, चला बहुत सुख पाय ।। १७९ ।।

अर्थ —फिर एक बार रावण ने खिलवाड की रीति पर कैलास पर्वत को उठा लिया मानो उसने अपने भुजदडो का पराक्रम जाँचा हो, फिर वह बहुत प्रसन्न होता हुआ लौट आया।

---

१ कुवेर' 'आदि—

ब्रह्मा के सुत पुलस्त्य ऋषि के पुत्र का नाम विश्रवा था। इनकी पहली स्त्री का नाम देववर्णिनी था, जो भरद्वाज ऋषि की पुत्री थी। इस सम्बन्ध से केवल एक पुत्र हुआ। इसका नाम वैश्रवण था जिसका प्रचलित नाम कुबेर है। विश्रवा की दूसरी स्त्री कैकयी नाम की राक्षस कन्या थी, जिससे रावण कुम्भकर्ण, विभीषण और सुर्पनखा ये चार सतान हुए। तीन और राक्षस कन्यायें भी विश्रवा को ब्याही गई थी। इन मे से पुष्पोत्कटा नामकी स्त्री से महोदर, महापार्श्व, प्रहस्त और कुभीनसी ये चार सतान हुए थे। राका मे खर नामका राक्षम हुआ था और बलाका से त्रिशिरा, दूषण और विद्युजिह्व आदि राक्षस हुए थे।

२ पुष्पकयान जीति लै आवा—विजय दोहावली से—

दोहा—कीन्ह यज्ञ जब रघु नृपति, दीन्हो अद्भुत दान।
बाच्यो आइ कुवेर तब, दीन्हो पुहुपविमान ।।
गुण समस्त बहु समझि के, जान लीन्ह परसन्ध।
सो वर आद्री जाय कै, छीन लीन्ह दशकन्ध ।।
कीन्ही अरज कुबेर तब, सुनौ अवधअवनीश।
आपन दीन्ही दक्षिणा, छीन लीन्ह दशशीश ।।
कीन्ह क्रोध तब रघुनृपति, दशहूशर सन्धान।
ठाढ भये सोइ केहि पर, हरौ दशौ के प्रान ।।
तब ब्रह्मा समझाइयो, सुनहु अवध अवनीश।
राम हाथ ये शर चलै, तब मरि है दशशीश ।।
सुनि ब्रह्मा के वचन तब, धरि राख्यो महिपाल।
राम सो हुइ है वश मे, तब हनि है दश भाल ।।
सकल कथा अवनीश तब, लिखि राखौ यहि वान।
दीऔ फेर कुवेर को, महादान अनुमान ।।

इसी हेतु श्री रामचन्द्रजी ने पुष्पक विमान को लेकर अयोध्या मे पहुँचते ही कुवेर के पास भेज दिया था (देखें उत्तरकाण्ड का ४ था दोहा)।

कौतुक ही कैलास पुनि, लीन्हेसि जाय उठाय—कैलास उठाने की कथा रावण के जीवन चरित्र में लिखी है (देखें पुरौनी)

दोहा—सुख संपति सुत सेन सहाई। जयप्रताप बल बुद्धि बडाई ॥
नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई[१] ॥

अर्थ—सुख, धन, लडके, सेना और सहायक तथा विजय, तेज, बल, बुद्धि और बडप्पन—दिनो दिन सब अधिक ही अधिक होते जाते थे, जिस प्रकार लाभ होते-होते लोभ बढता जाता है।

अति बल कुम्भकरण अस भ्राता। जेहि कहँ नहि प्रतिभट जगजाता ॥
करइ पान सोवै षटमासा। जागत होय तिहूँ पुर त्रासा ॥

अर्थ—इसका बडा बलवान् कुम्भकर्ण नाम का भाई था जिसकी बराबरी का योद्धा ससार मे उत्पन्न ही नही हुआ। वह मदिरा पीकर छ. महीने तक सोया करता था और जब जागता था तो तीनो लोक मे त्रास होता था।

जो दिन प्रति अहार कर सोई। विश्व वेगि सब चौपट होई ॥
समर धीर नहि जाइ बखाना। तेहि सम अमिय वीर बलवाना ॥

अर्थ—यदि यह प्रतिदिन पेट भर भोजन करता तो सब ससार शीघ्र ही चौपट हो जाता। यह लडाई मे ऐसा साहसी था कि उसका वर्णन नही किया जा सकता। उसके समान बलवान् योद्धा कोई न था।

वारिदनाद[२] जेठ सुत तासू। भट महँ प्रथम लीक जगजासू ॥
जेहि न होइ रण सन्मुख कोई। सुरपुर नितहि परावन होई ॥

शब्दार्थ—वारिदनाद (वारि=पानी+दा=देनेवाला+नाद=शब्द) = पानी का देने वाला जो मेघ है, उसी के सदृश जिसका शब्द हो अर्थात् मेघनाद। प्रथम लीक=पहली लकीर अर्थात् पहला नम्बर। परावन (शुद्ध शब्द पलायन)=भागा-भाग, भगदड।

---

१. जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई—जैसा कहा है—

श्लोक—सहस्र मिच्छति शती सहस्री लक्ष्मी हते।
लक्षाधिपस्तथा राज्य राज्यस्था स्वर्गमी हते ॥

अर्थात् जिसके पास (किसी भाँति) सौ रुपये इकट्ठे हो जाए तो वह हजार रुपये की इच्छा करता है, हजारपती लखपती होना चाहता है। लखपती राज्य की इच्छा करता है और राजा स्वर्ग की कामना रखता है।

२. वारिद नाद (वारिद=मेघ+नाद)=मेघनाद।
लका के राजा रावण को मन्दोदरी के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसने उत्पन्न होते ही मेघ की-सी गर्जना की थी, इस हेतु उसका नाम 'मेघनाद' पड़ा। वह स्वभाव से भयकर था। इसने बडे होने पर निकुभला स्थान मे शुक्राचार्यकी सहायता से बड़े-बडे सातयज्ञ किए थे। और शिवजी को प्रसन्नकर दिव्य रथ, धनुष-बाण, शस्त्र और तामसी माया प्राप्त कर ली थी। रावण एक बार मेघनाद को साथ लेकर इन्द्र से लडने गया। वहाँ पर इसके नाना सुमाली के मारे जाने से राक्षसो की हार समझ मेघनाद आगे बढा। उसने इन्द्र के लड़के जयत को परास्त कर इन्द्र से भी युद्ध ठाना और गुप्त होकर अपने अस्त्र-शस्त्रो से इन्द्र को जर्जरित करके उसे बाँध लिया और लका मे ले गया। इसका पराक्रम देखकर रावण बहुत प्रसन्न हुआ। इन्द्र को पकडे जाने पर देवगण ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्मा ने मेघनाद के पास जाकर इन्द्र को छोड देने को कहा। मेघनाद ने कहा—तुम मुझे अमर कर दो। ब्रह्मदेव बोले कि तुम अमर नही हो सकते, दूसरा वरदान माँगो। मेघनाद →

अर्थ—उसका बडा लडका मेघनाद था जो ससार मे योद्धाओ का मुखिया गिना जाता था। इसके सामने लडाई मे कोई भी खडा न होता था (यहाँ तक कि) स्वर्ग लोक मे तो भागा-भाग मच जाती थी (जब यह वहाँ पर जा पहुँचता था)।

दोहा—कुमुख अकंपन कुलिश रद, धूमकेतु अतिकाय।
एक एक जग जीति सक, ऐसे सुभट निकाय ॥१८०॥

शब्दार्थ—कुमुख, शुद्ध नाम दुरमुख। कुलिशरद प्रचलित नाम वज्रदत।

अर्थ—दुरमुख, अकम्पन, वज्रदत, धूमकेतु और अतिकाय नाम के ऐसे योद्धा थे कि इनमे से कोई भी अकेला ही सब ससार को जीत सकता था। ऐसे ही योद्धाओ के अनेक समूह थे।

कामरूप जानहि सब माया। सपनेहुँ जिनके धर्म न दाया॥
दशमुख बैठ सभा इक बारा। देखि अमित आपन परिवारा॥

अर्थ—वे इच्छानुसार रूप धारण कर लेते थे क्योकि वे सब माया जानते थे और दया तथा धर्म तो स्वप्न मे भी न जानते थे। एक समय रावण ने सभा मे बैठकर अपने बडे परिवार को देखा।

सुत समूह जन परिजन नाती। गनइ को पार निशाचर जाती॥
सेन विलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध मद सानी॥

अर्थ—पुत्रो का झुण्ड, सेवक, परिवार के लोग, नाती आदि राक्षसो के भेदो को कौन गिन सकता था। सेना को देख स्वभाव ही से अहकारी रावण क्रोध और मस्ती के भरे हुए वचन कहने लगा—

सुनहु सकल रजनीचर यूथा। हमरे बैरी बिबुधबरूथा॥
ते सन्मुख नहिं करत लराई। देखि सबल रिपु जाहि पराई॥

अर्थ—हे सम्पूर्ण राक्षसगण! सुनो, हम लोगो के वैरी देवगण है। वे सामने होकर तो लडते ही नही, शत्रु को बलवान देख भाग जाते है।

तिन कर मरण एक विधि होई। कहौ बुझाइ सुनहु अब सोई॥

बोला कि जब-जब मै अग्नि मे हवन करूँ तब-तब उसमे से एक नया रथ घोडो सहित उत्पन्न हो जाया करे और उस रथ पर जब तक मैं बैठा रहूँ तब तक विजय व अमर बना रहूँ। 'ऐसा ही हो' इतना कहकर ब्रह्मदेव अन्तर्ध्यान हो गये और इन्द्र को इन्द्रासन पर बिठला दिया। इन्द्र को जीत लेने के कारण मेघनाद का नाम इन्द्रजीत हो गया। (इन्द्र की कथा अरण्यकाण्ड की श्री वि० टीका की पुरौनी मे है। सीता की खोज मे जब हनुमान जी लका मे आकर उपद्रव कर रहे थे तब इन्द्रजीत ही उन्हे नाग-फाँस मे फँसाकर रावण की सभा मे ले गया था। लंकायुद्ध के समय पहले दिन अगद से इसने खूब लडाई की थी। इसी ने राम-लक्ष्मण को संग्राम के समय नाग-फाँस मे बाँधा था। इसने सग्राम मे प्रसिद्ध योद्धाओ को मूर्च्छित किया था, उनके नाम ये हैं—१. गधमादन २ गज ३ नल ४ मयद ५. जामवान ६ नील ७ सुग्रीव ८ वृषभ ९. अंगद १० द्विविद ११ वेगदर्शी १२. हरिलोमा १३ विद्युद्दष्ट्र १४. सूर्यानन १५. पावकाक्ष १६ केसरी २७ ज्योनिर्मुख और हनुमान। ये निकुंभिला नामक स्थान मे जाकर यज्ञ करने लगा था। उस समय अगद आदि ने जाकर यज्ञ का विध्वस किया था। इसकी स्त्री का नाम सुलोचना था जो बडी पतिव्रता थी। (देखें लंकाकाण्ड का क्षेपक)

द्विजभोजन मख होम सराधा। सब कै जाइ करहु तुम बाधा ।।

अर्थ—उनका मरना एक उपाय से होगा, मै समझाकर कहता हूँ, अब तुम लोग उसे सुनो। ब्राह्मणभोजन, यज्ञ, हवन और श्राद्ध इन सबमे तुम लोग जाकर बाधा डालो।

दोहा—क्षुधाक्षीण बलहीन सुर,[१] सहजहि मिलहहि आय।
तब मारिहउँ कि छाँडिहौ, भली भाँति अपनाय ।।१८१।।

अर्थ—भूख से दुर्बल और बल से हीन देवता सहज ही मे मुझ से आ मिलेंगे तब उन्हे या तो मार ही डालूँगा या उन्हे अपने अधीन करके छोडूँगा।

मेघनाद कहँ पुनि हँकरावा। दीन्ह सीख बल बैर बढावा ।।
जे सुर समरधीर बलवाना। जिनके लरिबे कर अभिमाना ।।
तिन्हहि जीत रण आनेसु बाँधी। उठ सुत पितु अनुशासन काँधी ।।

शब्दार्थ—बल=सेना। काँधी=अगीकार की।

अर्थ—फिर उसने मेघनाद को बुलाया और उसे सिखावन तथा सेना देकर बैर के लिए उत्तेजना दी और कहा—जो देवता लडाई मे स्थिर रहते है तथा बलवान है और जिनको लडने का घमड है, लडाई मे जीतकर उनकी मुस्के बाँध लाओ! पिता की आज्ञा अगीकार कर इन्द्रजीत उठ खडा हुआ "उठ सुत पितु अनुशासन काँधी" का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि हे बेटा, उठो! और अपने पिता की आज्ञा स्वीकार करो.

इहि बिधि सबही आज्ञा दीन्ही। आपुन चलेउ गदा कर लीन्ही ।।
चलत दशानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्रवहि सुररवनी ।।

अर्थ—ऊपर कहे अनुसार सबको आज्ञा दी और आप अपने हाथ मे गदा लेकर चला। रावण के चलते समय पृथ्वी डगमगाने लगी और उसकी ललकार से देवताओं की स्त्रियो के गर्भ गिरने लगे।

रावण आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरुगिरि खोहा ।।
दिगपालन्ह के लोक सुहाये। सूने सकल दशानन पाये ।।

अर्थ—रावण को क्रोध सहित आते हुए सुनकर देवगण मेरु की गुफाओ मे जा छिपे।

---

१ क्षुधाक्षीण बलहीन सुर—हिरण्यकश्यप दैत्य ने भी प्राय. इसी प्रकार का अधर्म मचा रखा था। वह देवताओ के हविर्भाग को आपही लेने लगा था, जिससे देवता केवल वायु भक्षण करके रहते थे। यथा—श्रीमद्भागवत के सातवे स्कन्ध के चौथे अध्याय की नीचे लिखी हुई पक्तियो से स्पष्ट होगा—

श्लोक—सएव वर्णाश्रमिभि ऋतुभिर्भूरि दक्षिणैं।
इज्य मानो हविर्भागा नग्रहीत्स्वेन तेजसा ।।१५।।

× × ×

उपतस्थुर्हृषीकेश विनिद्रा वायुभोजना ।।२३।।

भाव यह कि हिरण्यकश्यप आश्रमी लोगो से दिये हुए देवताओ के हविर्भाग को आप ही लेने लगा।

तभी तो सब देवगणो ने जो निद्रा त्याग चुके थे और जो केवल वायु भक्षण कर रहे थे, हृषीकेश भगवान से उसके मारने की प्रार्थना की और उन्होने ऐसा करने की प्रतिज्ञा की।

रावण को दिग्पालो के सुन्दर लोक भी सूने मिले (अर्थात् वहाँ के निवासी भी भाग गये थे)।

पुनि पुनि सिहनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि प्रचारी॥
रणमदमत्त फिरै जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा[1]॥

अर्थ—बारम्बार सिंह की नाईं गर्जना करके ललकार के साथ देवताओ को गालियाँ देता था। लडाई करने के आवेश से ससार-भर मे मतवाला-सा दौडा फिरता था, परन्तु बराबरी का योद्धा उसे ढूंढने से भी कही न मिला।

रवि शशि पवन वरुण धनधारी। अग्नि कालयम सब अधिकारी॥
किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहि लागा॥

शब्दार्थ—धनधारी=कुवेर।

अर्थ—सूर्य, चन्द्र, वायु, वरुण, कुवेर, अग्नि, काल, यमराज और सम्पूर्ण मुखिया तथा किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, देवता और सर्प सब ही से जान-बूझकर छेड-छाड करने लगा।

ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दश मुख वशवर्त्ती नर नारी॥
आयसु करहि सकल भयभीता। नवहि आयनित चरण विनीता॥

अर्थ—ब्रह्मा की रचना मे देहधारी जितने प्राणी है वे स्त्री किंवा पुरुष सब के सब रावण के अधिकार मे थे। सब के सब डरते-डरते उसकी आज्ञा पालन करते थे और प्रतिदिन नम्रता से उसके चरणो को प्रणाम करते थे।

दोहा—भुजबल विश्व वश्य करि, राखेसि कोउ न स्वतन्त्र[2]।
मंडलीक मणि लकपति, राज करइ निजमंत्र॥

अर्थ—अपनी भुजाओ के पराक्रम से सब ससार को अपने अधीन कर लिया और किसी को स्वतन्त्र न रहने दिया। इस प्रकार महाराजाओ मे मुखिया रावण अपनी ही बुद्धि से राज्य चलाने लगा।

दोहा—देव यज्ञ गंधर्व नर, किन्नर नाग कुमारि।
जीत वरी निजबाहु बल, बहु सुन्दर वर नारि॥१८२॥

अर्थ—उसने देवता, यक्ष, स्वर्ग के गवैयो, मनुष्य, किन्नरो और नागो की कन्याएँ

---

१. रणमदमत्त फिरै जगधावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा—
इसके पश्चात् बहुधा रामायणो मे कई लकीरो का क्षेपक है सो पुरौनी मे मिलेगा।

२ भुजबल विश्व वश्य करि, राखेसि कोउ न स्वतत्र—रामरत्नाकर रामायण से—
छन्द—यम को अधिकार घटाइ दियो। रवि को जेहि तेज मलीन कियो॥
कर चद सुमद प्रकाश न हो। सब लोकन मे तम छाय रहो॥
जल को जलनाथ न चाहत है। निज वारि अगाध न गाहत है॥
यह पावक तेज न जानि परै। बहु इंधन डारत नाहिं जरै॥
भय पाय कुवेर कुरावन को। निज कोश समर्पि दियो धन को॥
अधिकार नवग्रह को घट गो। भय पाय समीर कहूँ अटको॥
सरितापति की गति मद भई। तजि नारद ने निज वाण दई॥
पुनि वीणहु गान विसार दियो। सुरलोक अमंगल भूर भयो॥
दोहा—षट ऋतु शिशिर बसन्त हिम, ग्रीषम पावस सर्द।
समय धर्म तज तज रहे, प्रजहिं होत अति दर्द॥

तथा बहुतेरी सुन्दर-सुन्दर स्त्रियाँ अपने पराक्रम से जीत कर ब्याह ली।

इन्द्रजीत सन जो कछु कहेऊ। सो सब जनु पहिले करि रहेऊ॥
प्रथमहि जिन कहँ आयसु दीन्हा। तिनकर चरित सुनहु जो कीन्हा॥

अर्थ—मेघनाद से जो कुछ रावण ने कहा था वह तो सब उसने मानो पहले ही कर रखा था। (अर्थात् इन्द्र को जीत लका मे पकड लाया था और तब ही से इसका नाम इन्द्रजीत हुआ था—इत्यादि) और जिन्हे पहले आज्ञा दी थी उन्होंने जो कुछ चरित्र किए सो सुनो।

देखत भीमरूप सब पापी। निशिचर निकर देव परितापी॥
करहि उपद्रव असुरनिकाया। नानारूप धरहि करि माया॥

शब्दार्थ—भीम=भयकर। परितापी=दु खदाई।

अर्थ—सब राक्षस देखने मे भयकर रूपवाले और पापी तथा देवताओ को दु खदाई थे। राक्षसो के झुड उपद्रव किया करते थे और माया से भाँति-भाँति के रूप धारण कर लेते थे।

जेहि विधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहि वेदप्रतिकूला॥
जेहिजेहि देश धेनु द्विज पावहि। नगर गाँव पुर आग लगावहि॥

अर्थ—जिनसे धर्म का नाश हो वैसे ही वेद-विरुद्ध काम किया करते थे। जिस-जिस प्रात मे गौओ और ब्राह्मणो को देख पाते थे, वही शहर हो, गाँव हो अथवा खेडा हो, सबही मे आग लगा देते थे।

शुभ आचरण कतहुँ नहि होई। देव विप्र गुरु मान न कोई॥
नहि हरिभक्ति यज्ञ जप दाना। सपनेहु सुनिय न वेद पुराना॥

अर्थ—भले काम तो कही भी न होते थे और देवता, ब्राह्मण अथवा गुरु को कोई भी न मानता था। न तो ईश्वर की भक्ति, न हवन, न जाप और न दान होते थे तथा वेद और पुराण तो कभी सुनने मे भी न आते थे।।

छद—जप योग विरागा तप मखभागा श्रवण सुनै दशसीसा[1]।
आपुन उठि धावै रहै न पावै धरि सब घालै खीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा भा ससारा धर्म सुनिय नहि काना।
तेहि बहु विधि त्रासै देश निकासै जो कह वेद पुराना॥

शब्दार्थ—खीसा=(शुद्ध शब्द खीस)=नाश।

अर्थ—रावण जहाँ कही जप, योग का अभ्यास, वैराग्य अथवा तपस्या और यज्ञ का कोई भी कर्म सुन पाता था, वहाँ आप ही दौड जाता था, उसे होने नही देता था और सबको नाश कर डालता था। इस रीति से सब ससार के प्राणी आचारहीन हो गये और धर्म तो कही भी सुनाई तक न देता था और जो कोई वेद अथवा पुराण पढता था उसे बहुत प्रकार से कष्ट देकर देश से निकाल देता था।

---

१ जप योग विरागा तप मखभागा श्रवण सुनै दशसीसा—

क० छूटो खान-पानदान पूजन पुराण गान थान को ठिकान कहुँ ध्यान मे हितात नाहिं।
सूखे बात तात मुख रूखे न सोहात बात बासर उरात जात रात तो विहात नाहिं॥
'बदि' भे अशंक बक पाय कै अतक वर कीन्हे सब लोक रक शंक उर लात नाहिं।
सो खल सकल रावणादि जौ लौं जीवत है तौ लौं जू विरचि रंच कुशल दिखात नाहिं॥

दोहा—बरनि न जाइ अनीति, घोर निशाचर जो करहि[१] ।
हिसा पर अति प्रीति, तिन के पापहि कवनि मिति ॥१८३॥

अर्थ—दुष्ट राक्षस जो-जो अत्याचार करते थे, उनका वर्णन नही हो सकता । जिनका प्रेम हत्या ही मे रहता है उनके अधर्मो का क्या ठिकाना है ?

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा । जे लंपट परधन परदारा ॥
मानहि मात पिता नहि देवा । साधुन्ह सन करवावहि सेवा ॥
जिनके ये आचरण भवानी । ते जानहु निशिचर सम प्रानी ॥

अर्थ—बहुत-से चोर जुआरी तथा दूसरे का धन और स्त्री के चाहने वाले दुष्ट प्राणी बढ गये । वे माता-पिता और देवता किसी को नही मानते थे वरन साधुओ से अपनी टहल करवाते थे । महादेवजी कहते है कि हे पार्वती ! जिन लोगो के काम ऊपर कहे अनुसार है उन्हे राक्षसो ही के समान मानो ।

अतिशय देखि धर्म की हानी । परम सभीत धरा अकुलानी ॥
गिरि सरि सिन्धु भार नहि मोही । जस मोहि गरुअ एक परद्रोही[२] ॥

अर्थ—धर्म की बहुत ही गिरी दशा देख पृथ्वी अत्यत भयभीत हो घबडा उठी । (और कहने लगी) मुझे पर्वत, तालाब और समुद्र का इतना बोझ नही व्यापता जितना कि दूसरे से छल करने वाला मुझे बोझिल जान पडता है ।

सकल धर्म देखे विपरीता । कहि न सकइ रावण भयभीता ॥
धेनुरूप धरि हृदयविचारी । गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी ॥
निज सतापसुनायसि रोई । काहू ते कछु काज न होई[३] ॥

अर्थ—उसने सम्पूर्ण धर्म उलटे ही देखे परन्तु रावण के डर के मारे वह कुछ कह नही सकती थी । हृदय मे विचार कर गौ रूप धारण किया और उस स्थान मे गई जहाँ पर देवताओ और मुनियो की समाज थी । उनसे अपना दु.ख रो-रोकर कह सुनाया और बोली कि किसी से कुछ भी करतूति नही बन सकती ।

---

१. बरनि न जाइ अनीति, घोर निशाचर जो करहि—जैसा कि कहा है 'विद्या विवादाय धनमदाय, शक्ति. परेषाम् परिपीडनाय' अर्थात् विद्या पढकर वितडवाद करना, धन पाकर मदमस्त होना तथा बल पाकर दूसरो को दु.ख देना यही दुष्टो के दुर्लक्षण है ।

२. जस मोहि गरुअ एक परद्रोही—

दोहा—सात द्वीप सरि सिन्धु सब, मन्दर मेरु पहार ।
मोहि इतो नहि भार है, परद्रोही जित भार ॥

३. निज सताप सुनायसि रोई । काहू ते कछु काज न होई—सीता स्वयम्वर से—लावनी ·
हरिये दुख दीनदयाल जाल जग छायो । अब दुराचारि निशिचारिन उधम मचायो ॥
नृप त्यागि नीति परतीति प्रजा निघटे है । सत रीत मीत तजि प्रीत भीत प्रकटे है ॥
सब धर्मपथ सद्ग्रथ प्रमाण कटे है । छल छद फद नित द्वन्द्व व्याधि लपटे हैं ॥
कपटी शठ दुष्ट लवार झारि दरशायो ॥ अब ॥१॥
कच लपट चोर चवाव भाव उलटे हैं । कुल धर्म मारि नर नारि भये कुलटे हैं ॥
पर पच पेंच को न्याव सत्य पलटे हैं । मर्याद मान सन्मान ज्ञान विघटे हैं ॥
बढिगो बहु पाप पहार भार गरुआयो ॥अब॥२॥ →

छंद—सुर मुनि गधर्वा[1] मिलि करि सर्वा गे विरचि के लोका ।
सँग गातनुधारी भूमि विचारी परम विकल भय शोका ।।
ब्रह्मा[2] सब जाना मन अनुमाना मेरो कछु न बसाई ।
जा करि तै दासी सो अविनाशी हमरउ तोर सहाई ।।

अर्थ—देवता मुनि गधर्व सब-के-सब मिलकर ब्रह्मा के लोक को गये । सग मे विचारी पृथ्वी गौ का रूप धारण किये हुए दु ख से बहुत ही व्याकुल थी । ब्रह्मा सब समझ गये, उन्होने मन मे विचार किया कि इसमे मेरा कुछ उपाय नही चलता (क्योकि वरदान तो मै ही दे चुका हूँ) । जिसकी तुम दासी हो, वही नाशरहित परमात्मा हमारा और तुम्हारा सहायक है ।

नहिं रह्यो पुण्य को अश धर्म सब नाश्यो। अधरम अकर्म शर्म मर्म परकाश्यो ।।
ठग का मख काम तमाम मोह मद फास्यो । हिंसारत मारत जीव जीव को त्रास्यो ।।
धन माँगे देत न आप आय गोहरायो ।।अब।।३।।
सब सृष्टि भई विपरीत वर्ण सब गोये । नशिगो मख दान सुमान ज्ञान गुण खोये ।।
कोउ पूजत देव न भेव भक्ति मगरोये । लखि दुखित दासि अविनाशि कहाँ तुम सोये ।।
दिन दिन अधर्म अधिकात न जात गनायो । अब दुराचारि निशिचारिन उधम मचायो ।।

१ सुर मुनि गधर्वा—

श्लोक—भूमिर्भारेण मग्ना दशवदनमुखा शेष रक्षो गणन्त,
धृत्वा गोरूपमादौदि विज मुनिजनै. साकमज्वा सनस्य ।
गत्वा लोकम् रुदन्ती व्यसनमुपगतम् ब्रह्मणे प्राहसर्व,
ब्रह्मा ध्यात्वा मुहूर्त सकल मपि हृदा वेद शेषात्मकत्वात् ।।

अर्थात्—एक समय रावण आदि राक्षसो के पाप भार से दु खित हुई पृथ्वी गौ रूपधारण कर तथा सम्पूर्ण देवताओ और मुनीश्वरो को साथ ले ब्रह्मलोक मे गई और रो-रोकर अपना सब दुःख सुनाने लगी । ब्रह्मदेव तो सबके हृदय की जानने वाले है । क्षण-भर तक ध्यान करते ही सब हाल जान गये ।

२. ब्रह्मा—सृष्टि का उत्पति कारण भूत जो रजोगुण उसके मूर्तिमान् देव ब्रह्माजी है । रजोगुण से सतोगुण और तमोगुण की मध्यम स्थिति समझी जाती है अथवा निमित्त कारण और विवर्तोपादान कारण की मध्यम अवस्था यही रजोगुण है, इसी कारण से यद्यपि ब्रह्मदेव मे सतोगुण के साथ किंचित् मलीनता मिले हुए रजोगुण की उपाधि विशिष्ट है और उसी हिसाब से इनमे कुछ जीवत्व दशा है तो भी ये व्यष्टि जीव के समान एकदेशीय जीवधारी नही है, ये तो समष्टि के जीव हैं । भाव यह है कि ब्रह्माण्डो के जितने जीव है उन सबके ये आधारभूत जीव है अर्थात् सब जीवो के ईश्वर हैं । इन्होने जो रूप धारण किया वह अपनी ही इच्छानुसार किया है, इसी से इनके नाम स्वयभू, आत्मभू आदि हुए हैं । उपवेदो सहित चारो वेदो के यही उत्पत्तिस्थान हैं, इसी से इन्हे चतुमुख, चतुरानन आदि कहते है । इनकी मूर्ति केवल ज्योतिरूप है । इनका निवास स्थान सत्यलोक है, इन्होने सकल्पमात्र से सब सृष्टि की रचना की है, इसी से इनके निद्राकाल मे सृष्टि का लय हो जाता है । जब ये निद्रा से उठते है तब जीवधारी फिर उत्पन्न हो जाते है परन्तु जिस समय ये मुक्त हो जाते हैं उस समय सब जीव भी मुक्त नही हो जाते कारण मोक्ष तो विचार साध्य है । सपूर्णदेव, ऋषि, प्रजापति आदि के उत्पन्न करने वाले ये ही हैं, इसी से इनके नाम धाता और विश्वसृष्ट् आदि अर्थयुक्त हैं । इन्होने कुछ सृष्टि अपने पुत्रो द्वारा करवाई है, इस हेतु →

सोरठा—धरणि धरहु मन धीर, कह विरचि हरिपद सुमिर ।
जानत जन की पीर, प्रभु भजहि दारुण विपति ।।१८४।।

अर्थ—फिर ब्रह्मा ने परमेश्वर के चरणो का ध्यान कर यह कहा कि हे पृथ्वी ! तुम अपने मन मे धीरज धारण करो। परमात्मा अपने भक्त का दु ख जानते है, इस हेतु तुम्हारे कठिन दु ख को वे ही दूर करेगे।

बैठे सुर सब करहि विचारा। कहँ पाइय प्रभु करिय पुकारा ।।
पुर बैकुठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि महँ बस सोई ।।

अर्थ—सब देवगण बैठे हुए यह विचार बाँध रहे थे कि परमेश्वर को कहाँ पाए, जहाँ उनसे जाकर प्रार्थना करें। कोई-कोई कहने लगे बैकुठ मे चलो और कोई-कोई कहने लगे कि वे तो क्षीरसागर मे निवास करते है।

जाके हृदय भक्ति जस प्रीती। प्रभु तहँ प्रकट सदा तेहि रीती ।।
तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाय वचन इक कहेऊँ ।।

अर्थ—जिसके हृदय मे जैसी भक्ति और जैसा प्रेम रहता है, परमेश्वर सदा वहाँ उसी रीति से प्रकट होते है। शिवजी बोले, हे पार्वती ! उसी सभा मे मै भी था सो समय पाकर एक बात मैंने भी कही—

हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रकट होहि मै जाना[1] ।।
देश कालदिशिविदशिहु माही। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाही ।।

अर्थ—परमेश्वर तो सब ही स्थानो मे समान रूप से है, मै जानता हूँ। वे तो प्रेम ही से दर्शन देते है। देश, समय, दिशा और विदिशाओ मे से वह स्थान तो बताओ जहाँ पर परमेश्वर नही है ?

अगजगमय सब रहित विरागी। प्रेम ते प्रभुप्रकटहि जिमि आगी[2] ।।

इन्हे पितामह भी कहते हैं (देखे भारत आदि पर्व अ० ६५शाति पर्व अ० ३३६)। ४३२०००० वर्ष की एक चौकडी होती है, ऐसी १००० चौकडी हो जाने पर इनका एक दिन होता है और इतने ही वर्षो की रात्रि जानो, इस एक दिन-रात की अवधि को कल्प कहते है, इनके प्रत्येक कल्प मे पृथ्वी पर १४ मनु और स्वर्ग मे १४ इन्द्र हो जाते है, ऐसे ३६० कल्प की इनकी एक वर्ष होती है, इस प्रकार इनकी सौ वर्ष की आयु है, उसमे से ५० वर्ष तो हो चुके हैं ये ५१वाँ वर्ष आरभ है। उसमे ६ मन्वतर हो गये है, सातवे मन्वतर की अट्ठाईसवी चौकडी का यह श्वेत वाराह नाम का कल्प है। इस कल्प के कलियुग की ५०१४ वर्षों से अधिक हो चुकी है। यह न समझना चाहिए कि प्रत्येक कल्प के आरभ मे ब्रह्माजी के नये सिरे से सृष्टि उत्पन्न करनी पडती है क्योकि लिखा है 'यथा पूर्वमकल्पयत्' इसमे सृष्टि का क्रम पूर्व ही के अनुसार ज्यो का त्यो आरभ हो जाता है, इसमे जो कुछ न्यूनाधिक हो जाता है वही सँभाल लिया जाता है।

१. हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रकट होहिं मैं जाना—

सवैया—आरत पाल कृपाल जो राम जही सुमिरे तेहि को तहँ ठाढे।
नाम प्रताप महा महिमा अकरे किये खोटेउ छोटेउ बाढे ।।
सेवक एक ते एक अनेक भये तुलसी तिहुँ तापन डाढे।
प्रेम वदौं प्रहलादहिं को जिन पाहन ते परमेश्वर काढे ।।

२. अगजगमय सब रहित विरागी। प्रेम ते प्रभु प्रकटहिं जिमि आगी—

→

मोर वचन सबके मन माना । साधु साधु करि ब्रह्म बखाना ।।

शब्दार्थ—अग (अ=नही+गम्=चलना)=जो चले नही अर्थात्, पर्वत, वृक्ष आदि अचल पदार्थ । जग=बार-बार चलने वाले अर्थात् जगम या चलने वाले जीव । विरागी (वि=नही+रागी=सना हुआ)=जो माया मे सना हुआ नही है अर्थात् माया रहित ।

अर्थ—परमेश्वर स्थिर और चलने वाले सब पदार्थों मे भरा है और सबसे अलिप्त माया रहित है, परन्तु प्रेम के कारण इस रीति से प्रकट होता है जैसे आग (भाव यह कि यद्यपि परमेश्वर सब मे व्याप्त है तो भी सबसे अलग है परन्तु प्रेम के कारण प्रकट हो जाता है जैसे काठ मे अग्नि होती है परन्तु वह उसमे छिपी हुई रहती है ज्योही लकडियो का सघर्षण हुआ तो उन्ही मे से निकल पडती है) । मेरा कथन सबको भाया और ब्रह्माजी कह उठे—सत्य है, सत्य है ।

दोहा—सुनि विरंचि मन हर्ष अति, पुलकि नयन भरि नीर ।
कर जोरे अस्तुति करत, सावधान मति धीर ।।१८५।।

अर्थ—(मेरे वचन) सुनते ही ब्रह्माजी के हृदय मे बडा आनन्द हुआ, उनके रोम खडे हो आये और नेत्रो मे आँसू भर गये । फिर वे अपनी बुद्धि को स्थिर कर चैतन्य हो हाथ जोड-कर प्रार्थना करने लगे—

छद—जय जय सुरनायक जनसुखदायक प्रणतपाल भगवंता ।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिधुसुताप्रियकंता ।।
पालन सुर धरणी अद्भुत करणी मरम न जानै कोई ।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करहु अनुग्रह सोई[१] ।।

शब्दार्थ—प्रणतपाल (प्रणत=शरणागत+पाल=रक्षा करने वाला)=शरणागत की रक्षा करने वाला । सिंधुसुता (सिंधु=समुद्र+सुता=पुत्री)=समुद्र की पुत्री अर्थात् लक्ष्मीजी ।

अर्थ—हे देवताओ के स्वामी ! भक्तो के सुख देने वाले, शरणागत रक्षक षडैश्वर्य सम्पन्न आपकी जय हो । हे गौ ब्राह्मण के उपकारी ! हे राक्षसो के शत्रु और लक्ष्मीजी के प्यारे पति आपकी जय हो । देवताओ और पृथ्वी की रक्षा करने से अद्भुत शक्ति दिखाने वाले आपका भेद भी कोई नही जानता । जो स्वभाव ही से दयालु, गरीबो पर कृपा करने वाले

गजल—जो प्रभु को मन से ध्याते हैं, उसी के गीत गाते हैं ।
वे बैकुठो मे जाते हैं, अटल पदवी को पाते हैं ।।
वही साकार सरगुन है, उसी का नाम निरगुन है ।
नही कोई भी उस बिन है, उसी की रात औ दिन है ।।
जहाँ पर उसको ध्याया है, वही मौजूद पाया है ।
शरण 'अहकर' भी आया है, यही अब जी मे भाया है ।।

१. जय जय सुरनायक जन सुखदायक···करौ अनुग्रह सोई—श्री परमहंस मौनी महाराज ने प्राय इमी आशय की स्तुति अहल्या द्वारा कराई है । यथा—

छन्द—जय जय चरित वर विशद विमल पयोध अपरम्पार हौ ।
जय जय सदा मन कामदायक सहज परम उदार हौ ।।
सुर सत द्विज मुनि धेनु हित संसार नर अवतार हौ ।
जय जय सदा श्रुति धर्म पालक प्रभु हरण भुवभार हौ ।।

ऐसे आप है सो हम पर भी कृपा कीजिये ।

छन्द—जय जय अविनाशी सब घटवासी व्यापक परमानन्दा[१] ।
अविगत गोतीतं चरितपुनीत माया रहित मुकुन्दा ।।
जेहि लागि विरागी अति अनुरागी विगतमोह मुनिवृन्दा ।
निशिवासर ध्यावहि गुणगण गावहिं जयति सच्चिदानन्दा ।।

शब्दार्थ—अविगत=सब जगह मौजूद। गोतीत (गो=इन्द्रिय+अतीत=परे)=इन्द्रियो से परे। मुकुन्दा (मुक्=मुक्ति+दा=देना)=मुक्ति देने वाले अर्थात् परमेश्वर।

अर्थ—हे नाश रहित घटघट मे निवास करने वाले सब जगत मे समाये हुए विशेष आनन्द स्वरूप आपकी जय हो। आप सब जगह रहने वाले, इन्द्रियो से परे, पवित्र चरित्र वाले, मायारहित और मोक्ष के दाता हो। जिसके लिए ममता को त्याग बडी ही प्रीति से वैराग्ययुक्त मुनियो के समूह रात-दिन ध्यान लगाते है और गुणानुवाद गाते रहते है ऐसी सच्चिदानन्द मूर्ति की जय हो।

छन्द—जेहि सृष्टि उपाई त्रिविधि बनाई संग सहाय न दूजा ।
सो करहु अघारी चिन्त हमारी जानिय भक्ति न पूजा ।।
जो भवभयभजन मुनिमनरंजन खडन विपतिबरूथा ।
मन वच क्रम वाणी छाँड़ि सयानी शरण सकल सुरयूथा ।।

शब्दार्थ—उपाई=उपजाई। अघारी (अघ=पाप+अरि=शत्रु)=पाप के शत्रु अर्थात् पापनाशक। भव=ससार। बरूथा=समूह। सयानी=चतुराई।

अर्थ—जिसने बिना किसी दूसरे की सहायता के सत, रज, तम मय तीन प्रकार से सृष्टि की रचना की है सो हे पापनाशक प्रभु ! हमे न भूलिये। हम आपकी भक्ति और पूजा कुछ भी नही जानते है। जो ससार के डर से छुडाने वाले भक्तो के मन को प्रसन्न करने वाले तथा आपत्ति के समूहो को नाश करने वाले हो, सो मनसा, वाचा, कर्मणा से चतुराई को त्याग सम्पूर्ण देवगण आपकी शरण मे आये हैं।

छन्द—शारद श्रुति शेषा ऋषय अशेषा जा कहँ कोउ नहिं जाना ।
जेहि दीन पियारे वेद पुकारे द्रवहु सो श्री भगवाना ।।
भववारिधिमन्दर सब विधि सुन्दर गुनमंदिर सुखपुजा ।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा ।।

अर्थ जिन्हे सरस्वती, वेद, शेषनाग और सम्पूर्ण ऋषिगण कोई भी नही जानते और जिन्हे वेद पुकार कर कहते है कि अनाथ जिसको प्रिय है ऐसे श्री भगवान् हमारे ऊपर कृपा करो। आप संसाररूपी समुद्र को मदराचल के समान, सब प्रकार से सुन्दर गुणो के स्थान और सुख से परिपूर्ण है सो हे प्रभु ! मुनिगण, सिद्ध और सम्पूर्ण देवता अति भयभीत हो आपके

---

१. जय जय अविनाशी सब घटवासी व्यापक परमानन्दा—विष्णुपदी रामायण से—
राग चचरी—जय जय प्रभु पारब्रह्म निर्गुण गुणरासी ।।टेक।।
निर्मल नित निर्विकार, निज निरीह निराकार। निर्विकल्प निराधार अव्यय अविनासी ।।
अलख पुरुष इक अनूप, नाम रूप पर स्वरूप। सर्वकाम सर्वरूप सब मे निवासी ।।
विश्वरूप वासुदेव, ध्यान करत जेहि त्रिदेव। मायापद कमल सेव कमला जेहि दासी ।।
दसमुख खलदेत त्रास, विनवत बलदेव दास। त्राहि त्राहि जगनिवास भक्तन उर वासी ।।

कमलस्वरूपी चरणो को प्रणाम करते है।

दोहा—जानि सभय सुर भूमि मुनि, वचन समेत सनेह।
गगनगिरा गभीर भइ, हरणि शोक सन्देह ॥१८६॥

अर्थ—देवताओ, पृथ्वी तथा मुनिगणो को भयभीत जान प्रेम-भरे वचनो से दुःख और भ्रम को भगाने वाली गभीर आकाशवाणी हुई—

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेशा। तुमहि लागि धरिहौ नरवेशा[1] ॥
अशन्ह सहित मनुज अवतारा। लैहौ दिनकर वश उदारा ॥

अर्थ—हे मुनि, सिद्ध और श्रेष्ठ देवगण, डरो मत ! मै तुम्हारे हेतु मनुष्यरूप धारण करूँगा। मै पुण्यात्मा सूर्यकुल मे अपने अशो समेत अवतार लूंगा।

कश्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन कहँ मै पूरव वर दीन्हा ॥
ते दशरथ कौशल्या रूपा। कोशलपुरी प्रकट नरभूपा ॥

अर्थ—कश्यप ऋषि और उनकी स्त्री अदिति ने बडी भारी तपस्या की थी, उन्हे मैं पहले ही वरदान दे चुका हूँ। वे दशरथ और कौशल्या होकर अवध नगर मे नरराज हुए हैं।

तिन के गृह अवतरिहौ जाई। रघुकुलतिलक सो चारिउ भाई ॥
नारदवचन सत्य सब करिहौ। परम शक्ति समेत अवतरिहौ[2] ॥
हरिहौ सकलभूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई ॥

अर्थ—उनके घर रघुकुल मे श्रेष्ठ चारो भाइयो के रूप से आकर प्रकट होऊँगा। नारदजी के शाप को सब सच्चा कर दिखाऊँगा, इस हेतु महामाया के साथ अवतार लूंगा। पृथ्वी का सब बोझ दूर कर दूंगा, हे देवताओ ! अब निडर हो जाए।

---

१ जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेशा। तुमहि लागि धरिहौ नरवेशा—काव्यप्रभाकर से—

भा वसुधातल पाप महा तब, धाइ धरा गइ देवसभा जहँ।
आरत नाद पुकार करी सुनि, वाणि भई नभ धीर धरो तहँ ॥
लै नर देह हतौ खल पुजनि, थापहुँगो नयपथ मही महँ।
यो कहि चार भुजा हरि माथ, किरीट धरे जनमे पुहुमी महँ ॥

२ कश्यप अदिति महातप कीन्हा···परम शक्ति समेत अवतरिहौं—अध्यात्म रामायण से—

श्लोक—कश्यपस्य वरोदत्तस्तपसा तोषिते नमे।
याचित पुत्र भावाय तथेत्यगी कृतमया ॥ १ ॥
सइदानी दशरथी भूत्वातिष्ठतिभूतले।
तस्याह पुत्र तामेत्य कोशल्या याशुभेदिने ॥ २ ॥
चतुर्द्धात्मा नमेवाह सृजामीतरयो पृथक।
योगमायापिमीतेति जनकस्यः गृहेतदा ॥ ३ ॥
उत्पस्यतेतया सार्द्धं सर्वंसपादयाम्यहम्।

अर्थात् कश्यप ने तपस्या करके मुझे सतुष्ट किया था, और मुझे अपना पुत्र बनाना चाहा था तब मैंने पुत्र होना अगीकार कर लिया था। वे कश्यप इस समय दशरथ होकर पृथ्वी पर विद्यमान् हैं। उनका मैं पुत्र होकर कौशल्या आदि की कोख से शुभ मुहूर्त्त मे पृथक्-पृथक् चार पुत्रो के रूप से अवतार लूंगा और मेरी योग माया भी उसी समय सीता के रूप मे जनक के घर उत्पन्न होगी, उनके साथ मैं सब कार्य सिद्ध करूँगा।

स्मरण रहे कि यह पहले कल्प की कथा है और मनु-शतरूपा की दूसरे कल्प की कथा है।

गगन ब्रह्मवाणी सुनि काना । तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना ।।
तब ब्रह्मा धरणिहि समझावा[१] । अभय भई भरोस जिय आवा ।।

अर्थ—आकाश से ब्रह्मवाणी की कानो मे ध्वनि पडते ही देवताओ के हृदय शात हुए, इस हेतु वे जल्दी मे लौट पडे । फिर ब्रह्मदेव ने पृथ्वी को बोध किया, सो वह भी निडर हो गई और उसके हृदय मे ढाढस बँध गया ।

दोहा—गे विरचि निजलोक तब, देवन्ह इहै सिखाय ।
बानरतनु धीर धरिण महँ, हरिपद सेवहु जाय ।।१८७।।

अन्वय—तब विरचि निज लोक (मे) देवन्ह इहै सिखाय गये (कि तुम) धरिण महँ जाय बानर तनु धरि हरिपद सेवहु ।

अर्थ—तब ब्रह्मदेव अपने लोक मे आये हुए देवताओ को यही शिक्षा देकर चले गये कि तुम सब देवगण मृत्युलोक मे जाकर बानरो का शरीर धारण करके परमेश्वर के चरणो की सेवा करो ।

दूसरा अर्थ—तब ब्रह्मदेव सब देवताओ को यह सिखावन देकर अपने लोक को चले गये कि तुम बानर रूप धारण कर पृथ्वी पर परमेश्वर के चरणो की सेवा करो ।

सूचना—स्मरण रहे कि यहाँ पर गोरूप धारिणी पृथ्वी तथा सब देवगण तो ब्रह्मलोक को गये ही थे फिर वहाँ से ब्रह्माजी अपने लोक को गये । इससे यह भाव निकलता है कि कदाचित् सब देवगण सुमेरु पर्वत के ब्रह्मलोक मे आये होगे जहाँ से ब्रह्माजी अपने स्वर्गीय ब्रह्मलोक को पधारे ।

गये देव सब निज-निज धामा । भूमिसहित मन कहँ विश्रामा ।।
जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा । हर्षे देव बिलम्ब न कीन्हा[२] ।।

अर्थ—देवता अपने-अपने स्थानो को सिधारे और पृथ्वी समेत सबो के चित्त मे चैन पडी । जो कुछ आज्ञा ब्रह्माजी ने दी सो देवताओ ने आनन्दपूर्वक उसके करने मे देरी न लगाई (अर्थात् झटपट बन्दर बनकर वन मे बिचरने लगे) ।

बनचर देह धरी क्षिति माहीं । अतुलित बल प्रताप तिन पाहीं ।।

---

१. तब ब्रह्मा धरणिहि समझावा—सुमति मन रंजन नाटक से—

दोहा—तुमहुँ भूमि धीरज धरो, लै प्रभु नर अवतार ।
अति उदार करुणा करन, दूरि करहिं तव भार ।।

२. जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा । हरषे देव विलब न कीन्हा—राम रत्नाकर रामायण से :

मुनि विधि वचन मान सब लीन्हे । निज-निज अंश प्रकट तन कीन्हे ।।
ब्रह्मा जामवत उपजाये । रवि सुरेश दो बानर जाये ।।
रवि के अश भये सुग्रीवा । इन्द्र अश बाली बल सीवा ।।
तार नाम कपि सुरगुरु जायो । धनद गधमादन उपजायो ।।
बिसकरमा सुत नल कपि जैसो । पावक अश नील कपि तैसो ।।
जे सुर वैद्य अश्विनी जाये । द्विविद मेद कपि युग सुत पाये ।।
वरुण धर्म के युगल सुखेना । दधिमुख भयो चन्द्रसुत सेना ।।
शिव के अश केसरी बानर । यम के पाँच कीश गुण आगर ।।
पवनपूत हनुमान बखाने । जिन को अति प्रताप जग जाने ।।
अपर देव जे जे उपजाये । ते सब अमित न जात गनाये ।।

गिरि तरु नख आयुध सब वीरा। हरिमारग चितवहि प्रति धीरा।।

अर्थ—उन्होने पृथ्वी पर वनपशु की देह धारण की, उनमे बडा भारी बल और तेज था। सब योद्धाओ के हथियार पर्वत, वृक्ष और नर थे तथा वे बुद्धिमान् भगवान् का मार्ग देखने लगे।

गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी। रह निज-निज अनेक रवि रूरी[1] ।।
यह सब रुचिर चरित मैं भाखा। अब सो सुनहु जो बीचहि राखा।।

अर्थ—पर्वत और वन जहाँ देखो वहाँ अपनी-अपनी उत्तम सेना रचकर रहने लगे। यह सब मनोहर कथा मैंने कही, और जो बीच ही मे छोड दी थी, उसे सुनो। (वह उत्तरार्द्ध मे है)

[यहाँ बालकाण्ड का पूर्वार्द्ध समाप्त हुआ।]

दोहा—राम चरित मानस कथा, पूर्व अर्ध को सार।
'नायक' सक्षेपहि कहत, लघुमति के अनुसार।।

किरीट छद—देवन, सज्जन, दुर्जन, सतन, शकर, श्री दशस्यन्दन बन्दन।
नाम महत्तम मानस वर्णन, मोहसती, शिवब्याह मनदन।।
ब्रह्मनिरूपण, जन्महु कारण, नारदमोह परे भवफन्दन।
'नायक' भानु प्रताप कथारस जन्म कह्यो पुनि कैकसिनदन।।

---

[1] गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी। रह निज-निज अनेक रुचि खरी—इसके पश्चात् कई क्षेपक हैं सो स्थान मिल जाने से यहाँ छापा जाता है।

(क्षेपक)

चौ०—यह चरित्र दशकधर जाता। निज मन महँ उन यह अनुमाना।।
सूर्यवश कर जो हैं राजा। ते नहि कर सक मोर अकाजा।।
नाम दिलीप भूप जब भयऊ। तिन समीप रावण तब गयऊ।।
जो राजा सरयू तट जाई। सन्ध्या वन्दन करत सुनाई।।
विप्ररूप धरि रावण आवा। पूजा करि रानिन बैठावा।।
तब रावण प्रगटिन निज देहा। रानिन डर भा अति सदेहा।।
भाजि गईं सब मदिर माही। पुनि वह आवा भूपति पाही।।
देखा नृप हरि ध्यान लगावा। इक चरित्र तहँ भूप दिखावा।।
उत्तर दिशि एक कानन जाई। घेरिस सिह धेनु वरियाई।।
कियो भीति जब धेनु लवाई। निज मुख आरति कूक सुनाई।।

दोहा—धर्म धुरधर नीति युत, सुन दिलीप महिपाल।
रक्षा मम तुम करहु अब, सिह मार तत्काल।।

चौ०—सुनि महीप यह आरति बानी। तदुल इक मार्‍यो शर जानी।।
मत्र पढा तदुल शर आवा। तुरत सिंह कहँ मार गिरावा।।
धरि बटुरूप पूछ सब काहू। उत्तर दिशि गा निश्चरनाहू।।
मरा सिंह लखि निज गृह आवा। देख अमित बल मन भय पावा।।
जब दिलीप निज मदिर आए। रानिन ने सब वचन सुनाए।।
अमित क्रोध करि कर लै पानी। मत्र पढा मन यह अनुमानी।।
गिरि त्रिकूट सह लका सारी। बुडबहु सब कहँ सिंधुमझारी।।
दक्षिण दिशि नृप जलहि चलावा। बहु शर होइ लक कहँ आवा।।

दोहा—तोड फोड तेहि लक को, कछुक बुडाइस आय।
मन्दोदरि अति दीन हुइ, वचन कहै बिलखाय ।।

चौपाई—अवधनृपति की खैचि दुहाई। लका कहँ उन लीन्ह बचाई ।।
तब शर निकर नृपति पहँ आये। मदोदरि के वचन सुनाये ।।
पुनि बहु दिवस गये रघुराजा। प्रगटे अवध कीन्ह यह काजा ।।
पवन मत्र पढ वाण चलावा। लका गढ कहँ कछुक गिरावा ।।
मयतनया विनती बहु कीन्ही। भइ बकसीस छाँडि शर दीन्ही ।।
पुनि अज भये नृपति तेहि ठामा। वीर धुरीण महा बलधामा ।।
कछु लका उन फोर ढहाई। मयतनया ने फेरि बचाई ।।
अजसुत दशरथ भये नृपाला। रावण उर भा सोच कराला ।।
भेज दूत यह वचन सुनावा। रावण तुम सन कर मँगवावा ।।
दशरथ नृप बोले अस बानी। हमहुँ सुना रावण अभिमानी ।।
जो वह निज बल कर पट खोलै। अवशि देहुँ कर गिरा न डोलै ।।
दूत आय जब वचन सुनाये। रावण तुरत अवधपुर आये ।।
पट भेढे दशरथ भूपाला। रावण बहु बल कीन्ह कराला ।।
खुले न पट तब चला लजाई। करन तपस्या की मन आई ।।

दोहा— लग्यौ तपस्या करन अति, बिन अहार बिनवारि।
विधि लखि तप तेहि असुर कर, बोले वचन सम्हारि ।।

चौपाई—पुत्र माँगु मोसो वरदाना। जो तेरे चित महँ अनुमाना ।।
रावण तब बोला मुसकाई। देहु मोहि वरदान सुहाई ।।
दशरथ अ्रश नाहिं सुत होई। धाता तुम राखहु जनि गोई ।।
तब सुब्रह्मा निज मन दुख पावा। एवमस्तु कह ताहि सुनावा ।।
हुइ प्रसन्न रावण गृह आवा। कौशलपुर कहँ पुनि किय धावा ।।
पहुँच तहाँ बहु कीन्ह उपाई। कौशल्या कहँ लीन्ह चुराई ।।
गयो सिंधु पहँ मच्छ बुलायो। सौंपि ताहि निज घर पुनि आयो ।।
विधि रखि देह तुरत रावण कर। कन्या जाय लीन्ह तिहि ते वर ।।

दोहा—मञ्जूषा मे बन्दकरि, गे विरचि निज लोक।
रोदन इमि कन्या करै, जिमि बन कूकै कोक ।।

चौपाई—तब सुमत वन मैं चलि आवा। रोदन शब्द सुना तेहि ठाँवा ।।
बल कर खोलेसि जाय किवारी। कौशल्या यह गिरा उचारी ।।
मोहि ले चलहु पिता के धामा। तब सुमन्त लै गयउ ललामा ।।
देख सुमतहि नृपति उचारे। को हौ तुम कहु भेद दुलारे ।।
अवधपुरी दशरथ भूपाला। मत्री तिनकर हौ भूआला ।।
सुनि दशरथहि नृपति बुलवायो। कन्या दे निज मन सुख पायो ।।

।। इति क्षेपक ।।

बालकाण्ड उत्तरार्द्ध

।। श्री विनायकी टीका ।।

(अयोध्या और राजा दशरथ)

अवधपुरी[1] रघुकुल मणिराऊ । वेदविदित तेहि दशरथ नाऊ[2] ।।
धर्म धुरंधर गुणनिधि ज्ञानी । हृदय भक्ति मति सारगपानी[3] ।।

१ अवधपुरी— इस पुरी का विस्तार सहित वर्णन स्थानो मे समय-समय पर दिया गया है। तो भी यहा लछिरामजी की कविता देखिये—

सवैया—कानन कुञ्ज प्रमोद बितान भरे फल सुगन्ध बिधानै ।
बावली के अरविन्दन पै मकरन्द मलिन्द सने शुभ गानै ।।
त्यो 'लछिराम' तरगन ते सरजू के कढे सुर साजि विमानै ।
औधपुरी महिमा यो चितै अमरावति को हम क्यो सनमानै ।।

२. दशरथ—रामरत्नाकर रामायण से—

कछु दिन गये इन्दुमनि रानी । कियो गर्भ धारन सुखमानी ।।
गत दस मास एक सुत जायो । शशिसमान लख अति सुख पायो ।।
दशरथ नाम काम सम रूपा । ताहि देख प्रमुदित अज भूपा ।।
एक वर्ष के दशरथ भये । तब पितु मातु स्वर्ग पुर गये ।।
अल्प अवस्था सुत की जानी । गृह लै गये वशिष्ठ सुज्ञानी ।।
सकल शास्त्र अध्ययन कराये । वर्ष पाँच मे नृप गुण पाये ।।
नृप आसन वशिष्ठ बैठाये । दिन दिन प्रति गुण अधिक दिखाये ।।
भृगु निज शास्त्र देय सिखरायो । शब्द भेद कर ज्ञान बतायो ।।
वर्ष पचदश यौवन जागे । प्रजा पुत्र सम पालन लागे ।।
दशरथ रथ चढि कीन्ह पयाना । बाजे बाजन विविध विधाना ।।
बार बधू बहु नृत्य कराही । दशरथ राज विवाहन जाही ।।

छद—कर वेद विधि कौशलधनी नृप ब्याह निज दुहिता दई ।
शुभ लगन बीच बिलोकि मुख दुइ परस्पर आनँद भई ।।
बहु दायजो धन अर्द्ध राज समर्पि दशरथ को दियो ।
सनमान सब विधि साज सज अनुरूप भूप बिदा कियो ।।

दोहा—कर विवाह बनिता सहित, आये अवध भुआल ।
प्रजा सहित दशरथ बसत, आनँद मगन विशाल ।।

दोहा—पुनि ब्याही नृप कैकेयी, और सुमित्रा नार ।
कौशल्यादिक तीन तिय, सुख पाये करतार ।।

३ धर्म धुरधर गुणनिधि ज्ञानी । हृदय भक्ति मति सारगपानी—

घनाक्षरी पालत प्रजा समाज करत सधर्म राज जाको दड परम प्रचड यमराज सो ।
लाज को जहाज करै शत्रुन्ह पराजै परहित सब काज शील जाको द्विजराज सो ।।
भनै 'रघुराज' भयो भूमि मे दराज राज निगुणी निवाज निभौ दूजो देवराज सो ।
अवध विराज भानुवश सिरताज चक्रवर्ती और कौन दशरत्थ महाराज सो ।।

शब्दार्थ—वेदविदित=बडे प्रसिद्ध ।

अर्थ—अवध नगर मे रघुवशियो मे श्रेष्ठ दशरथ नाम के राजा बडे प्रसिद्ध थे । वे धर्म के मुखिया, गुण के भडार तथा ज्ञानवान् थे और उनके हृदय मे सारग नाम का धनुष धारण करने वाले (अर्थात् विष्णु भगवान) की भक्ति थी ।

दोहा—कौशल्यादिक नारि प्रिय[१], सब आचरण पुनीत ।
पति अनुकूल सुप्रेत दृढ, हरिपदकमल विनीत ।।१८८।।

अर्थ—कौशल्या आदि सब स्त्रियाँ प्यारी और सब लक्षणो मे पवित्र थी। वे पति की आज्ञाकारिणी थी और पति पर दृढ प्रेम रखने वाली तथा परमेश्वर के चरण कमलो मे नम्र भाव रखने वाली थी ।

एक बार भूपति मन माही । भइ गलानि मोरे सुत नाही[२] ।।
गुरुगृह गयेउ तुरत महिपाला । चरण लागि करि विनय विशाला ।।

अर्थ—एक समय राजा दशरथजी के चित्त मे इस बात की चिन्ता हुई 'मेरे पुत्र नही है' । राजाजी जल्दी से गुरु वशिष्ठजी के घर गये और उनके चरणो मे सिर नवाकर बहुत विनती करने लगे ।

निज दुख सुख सब गुरुहि सुनायउ । कहि वशिष्ठ बहुविधि समझायउ ।।
धरहु धीर होइहहि सुतचारी । त्रिभुवनविदित भक्तभयहारी ।।

अर्थ—फिर उन्होने अपना सब दु ख-सुख गुरुजी को कह सुनाया (कि निपुत्री होने का दु ख और शेष सब सुख मुझे है), सुनते ही वशिष्ठजी ने उन्हे कई प्रकार से समझाया (कि आप और कौशल्याजी मनु शतरूपा के अवतार हैं आपके यहा पूर्व वरदान के अनुसार ईश्वर अवतार लेवेंगे इत्यादि) धीरज धरिये, आपके चार पुत्र उत्पन्न होगे जो तीनो लोक मे प्रसिद्ध तथा भक्तो का भय दूर करने वाले होवेंगे ।

---

१. कौशल्यादिक नारि प्रिय—कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी, इन तीन पटरानियो का जीवन-चरित्र पुरौनी मे मिलेगा ।

२. भइ गलानि मोरे सुत नाही—इसके विषय मे लोगो का विश्वास यो है कि—जो नर ' होई । ता मुख प्रात तजै नहिं कोई ।। और भी मनुसहिता के ९वें अध्याय मे ।

श्लोक—पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्, त्रायते पितर सुत ।
तस्मात् 'पुत्र' इतिप्रोक्त., स्वयमेव स्वयम्भुवा ।।१३८।।

अर्थात् पुत्र पिता को पुत् नाम के नरक से बचाता है तभी तो स्वत ब्रह्मा ने 'पुत्र' ऐसा नाम सुत का कहा है । पुत्र (पुत्=एक नरक का नाम+त्रै=बचाना)=पुत् नाम के नरक से बचाने वाला पुत्र ही होता है क्योकि यदि पुत्र द्वारा पिता का तर्पण-श्राद्ध आदि न किया जाये तो वह पिता नरकगामी समझा जाता है ।

३. निज दुख सुख सब गुरुहि सुनायउ—सुमति मनरजन नाटक से—

छप्पय—भरो भौन भडार रतन कै यतन सभारो ।
मिलो जौन अरि समर तौन अति बल कै हारो ।।
तीन लोक मैं छाइ सुयश चहुँओर उमाहै ।
मम सुराज को देखि नितहि सुरराज सराहै ।।
यह सब प्रसाद मुनि तव चरण सत्य बचन यह मानिये ।
जो अति अखंड सुख राज धन वृथा पुत्र बिन जानिये ।।

इसी को दूसरी रीति से 'विजय दोहावली' मे यो समझाया है कि अध मुनि का श्राप ही →

श्रृंगी ऋषिहि[1] वशिष्ठ बुलावा। पुत्रकाम शुभ यज्ञ करावा ।।
भक्ति सहित मुनि आहुति दीन्हे। प्रकटे अग्नि चरू कर लीन्हे ।।

शब्दार्थ—पुत्रकाम यज्ञ=एक प्रकार का यज्ञ जो पुत्र होने की इच्छा से लोग करते है।

अर्थ—वशिष्ठजी से श्रृगी ऋषि को बुलवाया और उनके द्वारा पुत्रकामेष्टि यज्ञ करवाया। ज्योही भक्तिपूर्वक श्रृगी ऋषिजी ने पूर्णाहुति दी त्योही अग्निदेव हाथ मे यज्ञ की खीर लेकर प्रकट हुए।

जो वशिष्ठ कछु हृदय विचारा। सकल काज भा सिद्ध तुम्हारा ।।
यह हवि बाँटि देहु नृप जाई। यथा योग्य जेहि भाग बनाई ।।

अर्थ—(अग्निदेव दशरथ से कहने लगे) जो वशिष्ठजी ने अपने हृदय मे विचारा था वह सब तुम्हारा कार्य आज सफल हुआ, हे राजन् ! इस हव्य को जैसा तुम जानो वैसे भाग बनाकर (अपनी स्त्रियो को) बाँट देओ।

दोहा—तब अदृश्य पावक भये, सकल सभहि समुझाय।
परमानंद सुमगन नृप, हर्ष न हृदय समाय ।।१८९।।

अर्थ—फिर सब समाज को समझा-बुझा कर अग्निदेव अतर्धान हुए और राजा तो आनद मे ऐसे निमग्न हुए कि फूले नही समाते थे।

वरदान के तुल्य हो जायगा सो यो कि —

दोहा—पूरब ही वर जो मिल्यो, रह्यो अध ऋषि श्राप।
'तुलसी' गुर्रुहि सुनाइयो, देवन का सताप ।।

भाव यह कि अध मुनि ने कहा था कि तुम पुत्र के वियोग मे प्राण छोडोगे यह वरदान हो गया क्योकि जब पुत्र का जन्म होगा तब तो उससे विछोह होगा।

१ श्रृङ्गी ऋषि—'चाणक्य नीति' मे ऋषि की परिभाषा यो लिखी है —

श्लोक—आकृष्ट फल मूलानि वनवास रति: सदा।
कुरुतेऽहरह. श्राद्धमृषिर्विप्र: स उच्यते ।।

अर्थात् बिना जोती भूमि से उत्पन्न फल व मूल को खाकर सदा वनवास करता हो और प्रतिदिन श्राद्ध करे ऐसा ब्राह्मण ऋषि कहलाता है।

ऋषि सात प्रकार के कहे गये हैं—

[१] श्रुतर्षि—जो वेद के द्रष्टा होवें जैसे अगिरा आदि।
[२] कार्डर्षि—जो वेद का कोई भाग सिखलाता हो।
[३] परमर्षि—अर्थात् बडे श्रेष्ठ ऋषि।
[४] महर्षि—जिनमे व्यास आदि हैं।
[५] राजर्षि—जैसे विश्वामित्र आदि।
[६] ब्रह्मर्षि—जैसे वशिष्ठ आदि।
[७] देवर्षि—जैसे नारद आदि।

श्रृङ्गी ऋषि—ये विभाडक ऋषि के बडे तेजस्वी पुत्र थे। इनके मस्तक पर सीग का आकार होने से ये श्रृङ्गी ऋषि किम्वा ऋष्य श्रृग कहलाये। रोमपाद राजा ने शान्ता नाम की कन्या का विवाह इनके साथ कर दिया था। ये दम्पति राजा दशरथ के यहा पुत्रकामेष्टि यज्ञ कराने आये थे। पूर्णाहुति होने पर अग्नि ने प्रकट होकर जो खीर राजा दशरथ को दी थी, उसके खाने से उन्हे राम आदि चार पुत्र हुए थे (सो सब कथा रामायण ही मे है)।

तबहि राय प्रिय नारि बुलाई। कौशल्यादि तहाँ चलि आई ।।
अर्ध भाग कौशल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा[१] ।।

अर्थ—तब राजाजी ने अपनी प्यारी रानियो को बुलवाया तो कौशल्या आदि तीनो रानिया वहा आ पहुँची। राजाजी ने (हव्य का) आधा हिस्सा कौशल्या जी को दिया जो आधा बचा उसके दो भाग किये।

कैकेई कहँ नृप सो दयऊ। रहेउ सो उभय भाग पुनि भयऊ ।।
कौशल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि ।।

अर्थ—राजा ने वह चौथाई हिस्सा, कैकेई को दिया जो बचा उसके भी दो भाग किये और एक-एक भाग को कौशल्या तथा कैकेई के हाथ मे रखकर उन्ही की प्रसन्नता से सुमित्रा को दिला दिया।

इहि विधि गर्भ सहित सब नारी। भई हृदय हर्षित सुख भारी ।।
जादिन ते हरि गर्भहि आये। सकल लोक सुख संपति छाये ।।

अर्थ—इस प्रकार सब रानिया गर्भवती हुई और हृदय मे आनद हुआ तथा भारी प्रसन्नता हुई। जिस दिन से ईश्वर गर्भ मे आये (उसी दिन से) सपूर्ण लोको मे सुख और धन-धान्य भर गया।

मंदिर महँ सब राजहि रानी। शोभा शील तेज की खानी[२] ।।
सुखयुत कछुक काल चलि गयऊ। जेहि प्रभु प्रकट सो अवसर भयऊ ।।

अर्थ – महलो मे सपूर्ण रानिया कातिमती, शीलवली और दीप्तिमती हो सुशोभित हो रही थी। इस प्रकार कुछ समय सुख से व्यतीत हुआ तब वह समय आ पहुँचा जब कि परमात्मा अवतार लेने वाले थे।

---

१. अर्ध भाग कौशल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा ।।—कुडलिया रामायण से :—
कुडलिया—पुत्र यज्ञ नृप कीन्ह जोरि मुनि गण द्विज कुलवर।
कह वशिष्ठ मैं सिद्ध दीन्ह हवि लै प्रसाद कर ।।
लै प्रसाद कर दीन्ह देहु भामिन नृप जाई।
सुनि दशरथ मन हर्ष सकल प्रिय नारि बुलाई ।।
नारि बुलाई कौशला कैकेयी युत भाग कर।
मन अनद रानी नृपति दीन्ह सुमित्रहि हाथ धरि ।।

२. मन्दिर मह सब राजहि रानी। शोभा शील तेज की खानी :—
यह बात प्रसिद्ध ही है कि गर्भवती होने पर स्त्री की शोभा बहुधा बढ जाती है परन्तु तेजवंत पुरुष के गर्भ मे आ जाने से तो यही सौन्दर्य बहुत ही विशेष पड जाता है—जैसा रामरसायन रामायण मे कहा है :—
जब ते भई सगर्भ अनूपा। तब ते प्रतिदिन बढत सुरूपा ।।
पुरवासी सब मगन अपारा। घर घर होत मगलाचारा ।।
सुखसम्पति निशिदिन अधिकाई। राजमहल शोभा सरसाई ।।
राम जन्म औसर नियरायो। तिहूं लोक आनँद उमगायो ।।
लंका त्यागि और सब काहू। जड़ चेतन तनु रोम उछाहू ।।

(श्री रामचन्द्र आदि चारों भाइयों का जन्म और बाल लीला)

दोहा—योग लग्न ग्रह बार तिथि[१], सकल भये अनुकूल।
चर अरु अचर सुहर्षयुत, रामजन्म सुखमूल ॥१९०॥

अर्थ—योग, लग्न, ग्रह, दिन, तिथि सब शुभ हो गये और चलने वाले तथा स्थिर जीव सुखी हुए, कारण रामचन्द्रजी का जन्म ही सुख की जड है।

नवमी तिथि मधु मास पुनीता। शुक्ल पक्ष अभिजित हरिप्रीता ॥
मध्य दिवस अति शीत न घामा। पावन काल लोकविश्रामा ॥

अर्थ—पवित्र चैत्र महीने के शुक्ल पक्ष की नौमी तिथि को ईश्वर के प्रिय अभिजित नक्षत्र मे दो पहर के समय जबकि न अधिक ठड थी न धूप, ऐसे पुनीत काल मे लोगो को शाति देने वाले (मुहूर्त्त मे) ··

शीतल मंद सुरभि बह बाऊ[२]। हर्षित सुर संतन मन चाऊ ॥
बन कुसुमित गिरिगण मणियारा। स्रवहि सकल सरितामृतधारा ॥

अर्थ—जबकि शीतल मन्द सुगन्ध वायु चलने लगी थी, देवता प्रसन्न थे और सज्जनो

---

१. योग लग्न ग्रह बार तिथि—राम रत्नाकर रामायण से —

दोहा—मध्य दिवस आतप सुखद, नवमी तिथि मधु मास।
शुक्ल पक्ष अभिजित समय, प्रकटे रमानिवास ॥
नखत पुनर्वसु अत बखानो। कर्क लग्न तहँ गुरु शशि जानो ॥
भानु मेष गत भौम मकर के। रवि सुत तुला उच्च शुभ घर के ॥
धन के राहु मिथुन के केतू। पच उच्च ग्रह सब सुख हेतू ॥
चन्द्र सुवन अरु भृगुवर मीना। इहि विधि अपर योग शुभकीना ॥
तेहि क्षण प्रकट भये भगवता। सुरन सुखद हरि कमलाकता ॥

(जन्म कुडली)

५
के॰ ३
६
बृ॰ ४ चं॰
२
७ श॰
सू॰ १
८
१० मं॰
शु॰ १२ बु॰
रा॰ ९
११
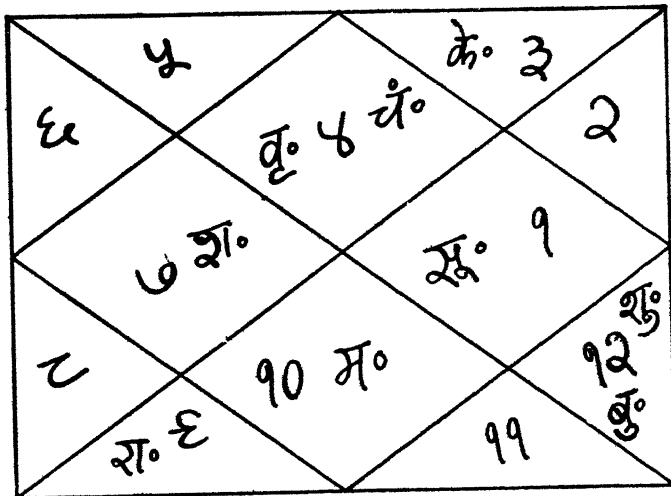
२. शीतल मद सुरभि बह बाऊ—

कवित्त—ठौर ठौर मजुल रसाल और और फूले तरुण भये है नव पल्लव लहलहे।
मुदित मलिन्द डोलै निर्तत मयूर चारु करै कमनीय कीर कोकिल कहकहे ॥
रसिक बिहारी सुखकारी है तयारी सब देव नर नारी भारी आनँद डहडहे।
औसर बिलोकि राम जन्म को त्रिलोक चहूँ आपही ते होन लागे मगल गहगहे ॥

के मन मे उत्साह बढ रहा था। वन के वृक्ष फूल उठे और पहाडो मे रत्न प्रकट हुए, सम्पूर्ण नदियाँ अमृतरूपी जल बहाने लगी।

सो अवसर विरंचि जब जाना। चले सकल सुर साजि विमाना ।।
गगन विमल सकुल सुरयूथा। गावहि गुण गधर्व बरूथा[1] ।।

अर्थ—ऐसा शुभमुहूर्त्त जब ब्रह्माजी को जान पडा तब सब देवगण अपने-अपने विमान सजाकर चले। निर्मल आकाश तो देव-समूहो से भर गया और गधर्वों के झुड के झुड राम-गुण गाने लगे।

वर्षहिं सुमन सुअंजलि साजी। गहगह गगन दुदुभी बाजी ।।
अस्तुति करहि नागमुनिदेवा। बहु विधि लावहि निज निज सेवा ।।

अर्थ—सुन्दर अँजुलियो मे फूल भर-भरकर बरसाने लगे और आकाश मे नगाडो का घनघोर शब्द होने लगा। सर्प, मुनि तथा देवगण स्तुति करने लगे और अनेक प्रकार से अपनी-अपनी सेवा दर्शाने लगे।

दोहा—सुर समूह विनती करी, पहुँचे निज निज धाम ।।
जगनिवास प्रभु प्रकट भे, अखिल लोक विश्राम ।।१९१।।

शब्दार्थ—जगनिवास=(१) जगत् का निवास है जिनमे, (२) सर्वव्यापी।

अर्थ—सब देवगण विनती करके अपने-अपने लोक को लौट गये। इतने ही मे सम्पूर्ण लोको के सुख देने वाले सर्वव्यापी प्रभु प्रकट हुए।

छंद—भये प्रकट कृपाला, दीनदयाला, कौशल्याहितकारी।
हर्षित महतारी, मुनिमनहारी, अद्भुत रूप निहारी[2] ।।
लोचन अभिरामा, तन घनश्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषण बनमाला नयनविशाला शोभासिधु खरारी ।।

---

१. गावहिं गुण गधर्व बरूथा—साधारण गधर्वो और देव धर्वों की उत्पत्ति यो है—
(१)कश्यप मुनि को प्राधा नाम की स्त्री से जिन गधर्वो की उत्पत्ति हुई उनके नाम ये है: १. सिद्ध, २. पूर्ण, ३. वर्ही, ४. पूर्णायु, ५. ब्रह्मचरी, ६ रतिगुण, ७. सुपर्ण, ८. विश्वावसु, ९ भानु, और १०. सुचन्द्र।
इनके सिवाय इन्ही दम्पति से और भी चार पुत्र हुए थे ऐसा पुराणो मे लिखा है। उनके नाम ये हैं—१ अतिबाहु, २. हाहा, ३. हूहू, ४. तुबरु।
(२) कश्यप ऋषि को 'मुनि' नाम की स्त्री से १६ देवगधर्व हुए थे जिनके नाम ये हैं—
१. भीमसेन, २. उग्रसेन, ३. सुपर्ण, ४ वरुण, ५. गोपति, ६. धृतराष्ट्र, ७. सूर्यवर्चा, ८. क्षत्त्ववाक, ९. अर्कपर्ण, १०. अयुत, ११. भीम, १२ चित्ररथ, १३. शालिशिरा, १४. पर्जन्य, १५. कलि, और १६ नारद।

२. अद्भुत रूप निहारी—श्रीमद्भागवत के दशम स्कध के तीसरे अध्याय मे श्रीकृष्ण के जन्म समय भी यही छटा दर्शाई गई है।
श्लोक—तमद्भत बालकमम्बुजे क्षणम्, चतुर्भुज शख गदाद्युदायुध।
श्रीवत्स लक्ष्म गलशोभि कौस्तुभम्, पीताम्बर सान्द्रपयोद सौभगम् ।।९।।
महार्हवैदूर्य किरीट कुडलन्विषा, परिष्वक्त सहस्र कुंतलम्।
उद्दाम काच्यगद ककणा दिर्भिविरोचमान वसुदेव ऐक्षत ।।१०।।
अर्थात् जिसके कमल के समान सुन्दर नेत्र थे, जिसकी चार भुजाये थी, जो शख-गदा चक्र→

अर्थ—कृपालु, दीनो पर दया करने वाले तथा कौशल्याजी के हित करनहारे प्रकट हुए। मुनियो के मन चुराने वाले उनके अनोखे स्वरूप को देखकर माताजी प्रसन्न हुई, (स्वरूप मे) सुदर नेत्र, शरीर मेघ के समान श्यामला और चारो भुजाओ मे अपना-अपना हथियार (अर्थात् शख, चक्र, गदा, पद्म) धारण किये हुए बनमाला से सुशोभित, बडे-बडे नेत्र वाले रूप-सागर और खर नामक राक्षस के शत्रु है।

छन्द—कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि विधि करउँ अनता।
माया गुण ज्ञानातीत अमाना वेद पुराण भनता ।।
करुणासुख सागर सब गुण आगर जेहि गावहि श्रुति सता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रकट श्रीकता ।।

अर्थ—दोनो हाथ जोड कहने लगी कि हे पारावार रहित भगवान्! मैं तुम्हारी स्तुति किस प्रकार से करूँ क्योकि वेद और पुराणो मे कहा गया है कि तुम माया-गुण-ज्ञान से परे तथा परिमाण रहित हो। जिसे वेद और सतजन दया और आनद के सिधु सब उत्तम लक्षणो से परिपूर्ण कहते है सो भक्तो पर प्रेम करने वाले लक्ष्मीपति तुम मेरी भलाई के लिये प्रकट हुए हो।

छन्द—ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै[1]।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै ।।
उपजा जब ज्ञाना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत विधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै ।।

अर्थ—वेद कहते है कि माया से बने हुए ब्रह्माडो के समूह तुम्हारे रोम-रोम मे हैं। 'ऐसे प्रभु तुम मेरे पेट मे रहे' ऐसी हँसी की बात सुनकर धीरजवानो की भी बुद्धि ठिकाने नही रहती (अर्थात् बुद्धि चकरा जाती है कि यह कैसा अद्भुत चरित्र है)। (जब कौशल्याजी को यह) ज्ञान हुआ तब प्रभु मुसकराये क्योकि बहुत चरित्र करना चाहते थे। (भाव यह कि प्रभु के मुसकराने ही मे माया है कि जिससे ज्ञानी मोह जाता है,) फिर मनभावनी वह (पुरानी वरदान वाली) कथा कहकर माता को समझाया कि जिससे वे अपना पुत्र समझ ममता करें।

छन्द—माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा[2]।
कीजिय शिशुलीला अति प्रियशीला यह सुख परम अनूपा ।।

तथा पद्म धारण किये हुए था, जो वक्षस्थल मे श्रीवत्स का चिह्न और कण्ठ मे शोभायमान कौस्तुभमणि धारण किये हुए, पीताम्बर पहिने था और जो जल भरे हुए काले मेघ मंडल के समान सुन्दर श्याम वर्ण था। जिसके केश बहुमूल्य वैदूर्य रत्नो से जटित किरीट और कानो के कुडलो की काति से प्रकाशित हो रहे थे और जो सुन्दर कर्धनी, वजुल्ला तथा कड़े आदि भूषणो से शोभायमान हो रहा था ऐसे उस अद्भुत बालक का वसुदेवजी ने दर्शन किया ।।९।।१०।।

१. ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै—ठीक यही आशय अध्यात्म रामायण मे कहा है—

श्लोक—जठरे तव दृश्यन्ते, ब्रह्माण्डा: परमाणव:।
त्व ममोदर सम्भूत, इति लोकान्विडम्बसे ।।

२. माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा—अध्यात्म रामायण से उद्धृत →

सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहि हरिपद पावहि ते न परहि भवकूपा ।।

अर्थ—जब वह ज्ञान की मति पलटी तो माता कहने लगी कि हे प्यारे ! यह रूप त्यागो और अत्यन्त प्रेम से भरी हुई बाललीला करो, यही बडा भारी उपमा रहित सुख है । ऐमा वचन सुन चतुर और देवताओ के स्वामी बालरूप होकर रोने लगे। इस चरित्र को जो वर्णन करेगे वे भगवान् के चरणो को प्राप्त होवेंगे और ससाररूपी कुएँ मे नही गिरेंगे (अर्थात् ईश्वर-भक्त होकर सासारिक दु ख से छूट जावेगे) ।

दोहा—विप्र धेनु सुर सत हित, लीन्ह मनुज अवतार[1] ।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुण गो पार ।।१९२।।

अर्थ—जो माया, गुण और इन्द्रियो से परे है तथा जो अपनी इच्छा से शरीर धारण करते है ऐसे प्रभु ने ब्राह्मण, गौ, देवता और सतो की भलाई के लिये मनुष्य का अवतार लिया ।

सुनि शिशु रुदन परम प्रिय बानी । सभ्रम चलि आई सब रानी ।।
हर्षित जहँ तहँ धाई दासी[2] । आनँद मगन सकल पुरबासी ।।

शब्दार्थ—सभ्रम = उतावली, घबराहट ।

अर्थ—बालक के रोने की बडी प्यारी वाणी सुनकर सब रानियाँ उतावली से आ गई। दासियाँ प्रसन्न होकर इधर-उधर दौड गई और सब अयोध्यावासी आनद मे मग्न हो गये ।

दशरथ पुत्र जन्म सुनि काना । मानहुँ ब्रह्मानन्द समाना[3] ।।

श्लोक—आवृणोतु नमा माया तव विश्व विमोहिनी ।
उपसहर विश्वात्मन्नेतद्रूपमलौकिकम् ।।
दर्शयस्व महानन्द बालभाव सुकोमलम् ।
ललितालिंग नालापैस्तरिष्यन्त्युत्कटतम ।।

अर्थात् हे प्रभु ! ससार को मोहित करने वाली आप की माया अब मुझे न व्यापे । ससार के आत्मा रूप ईश्वर ! आप अपने इस अलौकिक रूप को छिपाइये। और मधुर सुखदाई बाल-क्रीडा दिखाइये, जिस रूप के आलिगन, सभाषण आदि से कठिन से कठिन अधकार से पार हो जाऊँ ।

१. विप्र धेनु सुर सत हित, लीन्ह मनुज अवतार—कुडलिया रामायण से —

कुडलिया—भूसुर सुर गो धरनि सन्त सज्जन के काजे ।
प्रभु धार्यो तनु मनुज दनुज सुनि विकल सुलाजे ।।
लाजे खलगण मलिन नलिन द्विज उदय भानुकर ।
अघ उलूक छिप गये तेज अहिपुर सुरपुर धर ।।
सुरपुर धुनि कुसुमावली जयति राम रघुवश जय ।
जय दशरथ कुल कलश अवध नर नारि कहत भय ।।

२. हर्षित जहँ तहँ धाई दासी—कौशल्याजी की अनेक दासियो मे से एक शुचावर्त नाम की दासी ने यह सुखद समाचार महाराजा दशरथजी को जा सुनाया, सो यो कि—

दोहा—महाराज रघुवश मणि, देत बधाई भूप ।
तुव पटरानी कौशिला, जायो पूत अनूप ।।

३. दशरथ पुत्र जन्म सुनि काना । मानहुँ ब्रह्मानन्द समाना—रामरसायन रामायण से →

परम प्रेम मन पुलक शरीरा । चाहत उठन करत मति धीरा ।।

अर्थ—दशरथजी के कानो मे जब पुत्रजन्म की ध्वनि पडी तो वे ऐसे प्रसन्न हुए मानो ब्रह्मसुख का चुनाव कर रहे हो, मन मे अधिक प्रेम के कारण शरीर रोमाचित हो गया, उठना चाहते थे और बुद्धि से धैर्य धारण कर रहे थे।

जाकर नाम सुनत शुभ होई । मोरे गृह आवा प्रभु सोई[१] ।।
परमानद पूरि मन राजा । कहा बुलाइ बजावहु बाजा ।।

अर्थ—(मन मे यह विचार किया कि) मेरे यहाँ उन्ही प्रभु ने अवतार लिया है जिनका नाममात्र सुनने से कल्याण होता है। राजाजी बहुत ही आनद मे परिपूर्ण होकर कहने लगे कि बाजंतरियो को बुलाकर बाजे बजवाओ।

गुरु वशिष्ठ कहँ गयउ हँकारा । आये द्विजन्ह सहित नृपद्वारा ।।
अनुपम बालक देखिनि जाई । रूप राशि गुण कहि न सिराई ।।

अर्थ—गुरु वशिष्ठजी को बुलावा गया तो वे ब्रह्ममडली को साथ ले राजदर्बार मे आये। सब ने जाकर उस उपमा रहित बालक को देखा जिसका उत्तम स्वरूप और लक्षण कहने मे नही आते।

दोहा—तब नादीमुख श्राद्ध करि, जातकर्म सब कीन्ह[२] ।
हाटक धेनु बसन मणि, नृप विप्रन कहँ दीन्ह ।।१९३।।

छद—तेहि समय दशरथ राज हियको अमित सुख को कहि सकै ।
है अकथ बरनि न जाहि बरनत शारदा रसना थकै ।।
जेहि भाग्य प्रभुता हेरि लघु लागत विभव सुरराज को ।
तिहुँ लोकपति भौ पुत्र सो महराज सम है आज को ।।

१. जाकर नाम सुनत शुभ होई । मोरे गृह आवा प्रभु सोई ।।—सीता स्वयम्वर से—
सवैया—मच्छ ह्वै स्वच्छ श्रुती उधर्‌यो अरु कच्छ ह्वै मथन सिंधु कर्‌यो है ।
सूकर ह्वै भुवि लाय धर्‌यो नर केहरि दास व्यथा विहर्‌यो है ।।
वामन ह्वै सुर काज कर्‌यो भृगुराम ह्वै क्षत्रिन गर्व हर्‌यो है ।
रामस्वरूप अनूप धरे अब सूप के कोन मे आय पर्‌यो है ।।

२. तब नादीमुख श्राद्ध करि, जातकर्म सब कीन्ह—
नादीमुख श्राद्ध— पितरो के नाम पर श्रद्धा से जो कुछ दिया जावे उसे श्राद्ध कहते हैं। यह दान पानी, दूध, फल मे लगाकर सोना, मोती, जवाहरात तक होता है। श्राद्ध दो प्रकार का है . एक तो पिता आदि के मरण-तिथि के दिन होता है और दूसरा किसी भी शुभ कार्य के समय किया जाता है जिसे 'नादीमुख श्राद्ध' कहते हैं। नादीमुख श्राद्ध गर्भाधान, जन्मकाल, व्रतबध, विवाहादि सस्कारो मे, बावडी, देवता की प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा मे और गृह-प्रवेश तक मे आवश्यक है।
मरण-तिथि मे पिता, पितामह और प्रपितामह का विशेषत: श्राद्ध होता है और लोग इसे 'अश्रुमुख' (रोते हुए चेहरे वाले) कहते हैं और शुभ कार्य के श्राद्ध मे प्रपितामह से और पहिले तीन पितरो का श्राद्ध होता है। उन पितरो को 'नादीमुख' (हँसते हुए चेहरे वाले) कहते हैं। इसी से इस श्राद्ध का नाम 'नादीमुख श्राद्ध' हुआ(देखो गोभिल्य)। दोनो श्राद्धो की विधि बहुत कुछ एक दूसरे के विरुद्ध है। जैसे एक-दो पहर के बाद होता है, दूसरा दो पहर के पहले। एक मे यज्ञोपवीत की प्राचीनावीति होती है (अर्थात् बाई तरफ़ जनेऊ पहिना जाता है), दूसरे मे दाहिनी तरफ़। ऐसे ही कुश की जगह दूर्बा और 'स्वधा' शब्द के →

अर्थ—तब वहा राजा ने नादीमुख श्राद्ध कर सब जातकर्म किये और सोना, गायेँ, कपडे और मणि ब्राह्मणो को दिये ।

ध्वज पताक तोरण पुर छावा । कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा१ ॥
सुमन वृष्टि आकाश ते होई । ब्रह्मानन्द मगन सब कोई२ ॥

प्रयोग की जगह 'स्वाहा' का प्रयोग होता है (धर्म सिन्धु)। 'नादीमुख श्राद्ध' गर्भाधान आदि सस्कारो का अगीभूत है। दशरथजी ने श्री रामजन्म के समय जातकर्म सस्कार का अगीभूत नादीमुख श्राद्ध किया था ।

स्पष्ट षोडश सस्कार और श्राद्ध का प्रचार तथा उसका उपयोग आदि पुरौनी मे 'सस्कार और श्राद्ध' शीर्षक लेख मे मिलेगा ।

जातकर्म—द्विजातियो (अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्यो) मे गर्भाधान से जो षोडश सस्कार होते है उनमे से जातकर्म चौथा सस्कार है । इन शरीर सस्कारो का प्रयोजन इस लोक मे वेदाध्ययन के वास्ते और परलोक मे यज्ञादिको के कार्य के वास्ते है—

वैदिकै कर्मभि. पुण्यैर्निषेकादि द्विजन्म नाम् ।
कार्य. शरीर सस्कार: पावन: प्रेत्य चेह च ॥ मनु०, अ०२।२६॥

जातकर्मादि सस्कारों से बीज-दोषादि पाप और गार्भिक पाप दूर होते हैं। बिना सस्कार किया हुआ द्विज प्रायश्चित्त का भागी होता है। जिन पुत्र या कन्याओ का यह सस्कार नही होता है उनके विवाह समय मे प्रायश्चित्त होता है। बहुत ही प्राचीन काल से इन सस्कारो का प्रचार इस देश मे है। इनका वर्णन और विधि आश्वलायन गृह्यसूत्र, मनुस्मृति आदि पुराने ग्रन्थो मे है । पुराने काल मे तो कन्याओ का भी जातकर्म होता था (देखो आश्वलायन गृह्यसूत्र १—१४—१२ और १—१५—१) । मनुजी का वचन है कि स्त्रियो का जात-कर्मादि बिना वेद मत्रो के करे (अमन्त्रिकातु कार्येय स्त्रीणामा वृद शेषत) । नालछेदन के पूर्व जातकर्म सस्कार होता है, इसमे अपने-अपने गृह्यसूत्र के मत्रो का जाप करके बालक को मधु, घृत, सुवर्ण से प्राशन कराया जाता है। सुवर्ण से युक्त पानी से माता के दाहिने स्तन को धोकर बालक को दूध पिलाया जाता है। जातकर्म के समय पिता को बालक का मुख देखने की विधि है। तत्पश्चात् स्नान करना पडता है, यदि बालक मूल, ज्येष्ठा, व्यतीपात आदि अशुभ काल मे जन्मा हो तो पिता को बालक का मुख देखे बिना ही स्नान करना पडता है (देखो धर्म सिंधु, तृतीय परिच्छेद)। पुण्याह वाचन, मातृका पूजन, नादीमुख श्राद्ध, पचकर्म, जातकर्म के भी अगीभूत हैं। यह नालछेदन के पूर्व होने से इसमे ज्योतिष रीति के अनुसार मुहूर्त ढूढने का अवसर नही है। यदि इस काल का अतिक्रम हो तो अवश्य शुभ वेला ढूढनी पडती है।

१. ध्वज पताक तोरनपुर छावा । कहि न जाय जेहि भाँति बनावा :—

छन्द—निज काज सजत सँवारि पुर नर नारि रचना अनुगनी ।
गृह अजिर अटनि बजार बीथिन चारु चौके विधि घनी ॥
चामर पताक वितान तोरण कलश दीपावलि बनी ।
सुख सुकृत शोभामय पुरी विधि सुमति जननी जनु जनी ॥

२. सुमन वृष्टि आकाश ते होई। ब्रह्मानन्द मगन सब कोई ॥ —कुडलिया रामायण से :—

कुडलिया—गृह गृह बजत बधाव नारि नर अवध अनदित ।
चौक कलश प्रति द्वार लसत सुरतिय गण वंदित ॥
वदत सुर गण सुमुख वदि गण विप्र वेद धुनि ।
भरि भरि मुक्ता थार देखि सुत भाग अधिक गुनि ॥ →

अर्थ—ध्वजा, पताका और बदनवार नगर भर मे इस प्रकार लगाये गये थे कि उनकी शोभा का वर्णन नही किया जा सकता। आकाश से फूलो की वर्षा होने लगी और सब लोग बडे आनद मे मग्न हो रहे थे।

वृन्द वृन्द मिलि चली लुगाई। सहज सिगार किये उठि धाई॥
कनक कलश मंगल भरि थारा[1]। गावत पैठहि भूप दुआरा[2]॥

अर्थ—स्त्रिया साधारण वस्त्र-आभूषण धारण किये हुए उठ दौडी और झुड के झुड मिलकर चल खडी हुईं। वे सोने के कलश और मगल द्रव्यो से भरे थाल लिये हुए गीत गाती हुई राजमहलो मे पैठने लगी।

अधिक गान सोहत भवन राम जन्म मगल सजत।
नर नारि वारि तन धन सबै सुरपुर जय दुदुभि बजत॥ और भी—

क० प्रफुलित भये है अवधपुर वासी सब प्रफुलित सरयू की शोभा सरसाई है।
नाचै नर नारि अति आनँद अपार भये, घूरत निशान मुर्लीधर सुखदाई है॥
देवता विमानन्ह ते फूलन्ह की वृष्टि करै वन्दी अरु मागध अनेक निधि पाई है।
चलि क्यो न देखै आली राम को जनम भयो दशरथ द्वार बाजै आनँद बधाई है॥

वाह! क्या कहिये, यथार्थ तो यो है—

भजन—अयोध्या आज सनाथ भई।
मणि कंचन के महल बने हैं सरयू निकट बही॥
रामचन्द्र, अवतार लये हैं फूलो की बरसा भई।
नृप दशरथ घर नौबत बाजै लका मे खबर गई॥
ठाढी मदोदरि थर थर काँपै असुरो की नाश भई।
नृप दशरथ के गुरु वशिष्ठ है माँगत दान मही॥
हीरालाल पालने लागे झूलैगे राम सही।
'तुलसीदास' आस रघुवर की मनसा पूरि भई॥

१. कनक कलश मगल भरि थारा—रामरसायन रामायण से—

(कवित्त)

नीर भरे विशद विचित्र कुभ कचन के शोभित सपल्लव सदीप शीश धारे हैं।
थार वर वानिक जडाऊ मणि माणिक के लीन्हे साज मगल जे पूरित सँवारे हैं॥
रसिक बिहारी सुख दैनी गुण ऐनी तोय नख शिख अग शुचि सकल सिंगारे हैं।
मजु मृगनैनी पिकबैनी कलगान कीन्हे वृन्द वृन्द आवै नित कौशिला के द्वारे हैं॥

२ गावत पैठहि भूप दुआरा—

गीत—कौशल्या मैया चिरजीवै तेरो छौना।
राज समाज सकल सुख सपति अधिक अधिक नित होना॥
मुनिजन ध्यान धरत निशिवासर अमित जन्मधर मोना॥
'रतन हरी' प्रभु त्रिभुवन नायक तै कर लियो खिलौना॥

और भी—कौशिल्या सुत जायो महल मे मदिर वेगि चलौ रे॥ टेक॥
चले जाव महलन के अन्दर ऊँची उनकी शाला रे।
द्वारे मे बंदान बँधे हैं बीच आम को घौरा रे॥
पहली पौर गजराज बँधे हैं दूजी तुरँग खडे रे।
तीजी पौर बिसकर्मा रानी रतन जडाव जडे रे॥
नाइन पाँउन देत महावर घर-घर फिरत बुलाई रे।

करि आरती निछावर करही। बार बार शिशु चरणन्ह परही[1] ।।
मागध सूत वदि गुण गायक। पावन गुणगावहि रघुनदयक[2] ।।

अर्थ—आरती करके निछावर करती थी और बारम्बार बालक के पैर पडती थी। कथिक, पौराणिक, भाट, सूत, बदी और गवैये रघुवशी महाराजाओ के पवित्र गुण वर्णन करते थे।

सर्वस दान दीन्ह सब काहू। जेहि पावा राखा नहि ताहू[3] ।।

पहला अर्थ—सब को सब प्रकार का दान दिया गया और जिन को (पहली बार) मिला उनने भी अपने पास नही रक्खा। भाव यह कि 'सब काहू को' अर्थात् जो लोग वहा

कोइ तरुणी कोइ बाल अवस्था कोइ आईं लरकौरी रे ।।
बोली बोली थोरी आईं अनबोली बहुतेरी रे।
उनके मान सवाये राखौ मोहरन बाँटो तमोल रे ।।
फूल दूब हरदी अरु अच्छत पूजौ पनपत गौरी रे।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे मिलन को बहुतक जतन करौ रे ।।

१. करि आरती निछावर करही। बार बार शिशु चरणन्ह परही—
सोचने का स्थान है कि जब किसी के यहा बालक उत्पन्न होता है तो वहा जाकर क्या स्त्रिया उसकी आरती कर पैर पडती हैं ? कदापि नही। पर गोस्वामीजी ने जो ऐसा लिखा है उसका एक कारण तो श्री रामचन्द्रजी का अवतारिक होना समझ पडता है, परन्तु इसमे यह सदेह उठता है कि सब लोग इस बात को नही जानते थे और न बहुतेरो का कदाचित् इस पर विश्वास था। दूसरा कारण यह है—कि किसी भी राजा-महाराजा का पुत्र होनहार राजा ही होता है इसलिये वह ईश्वर का अश समझा जाता है और इसी से पूजनीय होता है। (जैसा कहा है—मनु सहिता के ७वे अध्याय मे)—

श्लोक—बालोऽपि नाव मन्तव्यो, मनुष्य इति भूमिप ।
महती देवता ह्येषा, नर रूपेण तिष्ठति ।।८।।

अर्थ—यह बालक है और मनुष्य है ऐसा जानकर राजा का अपमान न करना चाहिये (मान करना चाहिये) क्योकि यह कोई बडा देवता है जो मनुष्य के रूप से विराजता है।

२. मागध सूत वदि गुणगायक। पावन गुण गावहिं रघुनायक—
रघुवशी राजाओ की प्रशसा जो मागध, सूत आदि करते थे सो यो कि "रघुकुल वन वनेश, विघ्न घन इनन गणेश, भूमिभर धरन शेश, भव विभव धनेश, स्वजन कुलकमल पालक दिनेश, मीनकेतन सुवेश, द्युति निशेश, कलेश हर महाराजा अवध नरेश की जय होय"।

३. सर्वस दान दीन्ह सब काहू। जेहि पावा राखा नहि ताहू—इसका अर्थ लोग यह समझ लेते हैं कि जिन्होने पाया उन्होने दूसरे को दे दिया और इस पाने वाले ने तीसरे को दे दिया, इसी तरह अत मे वह वस्तु किसके पास रही ? यह शका करते है सो इसका ठीक-ठीक अर्थ जो लिख आये हैं उस पर विचार किया जाय तो यही सिद्ध होता है कि जिहोने पहिली बार पाया उन्होने उसे लुटा दिया, बस यही तक देने की हद हो गई। लूटने वालो ने कुछ दूसरो को नही दिया क्योकि गोसाईंजी का कथन है कि 'राखा नहिं ताहू' अर्थात् गोसाईंजी ने कही यह नही कहा कि दूसरो को सौप दिया। दूसरी रीति से समाधान यह है कि देवता, नाग आदि जो मनुष्यरूप धारण कर अवधवासियो मे आ मिले थे उन्हे तथा भले आदमियो को जो कुछ आनद की उमग मे मिला था वह सब उन्होंने भी द्वार पर आये हुए याचको को लुटा दिया। कुछ याचको ने औरो को भी दे डा।1 जो इस प्रकार हाथों हाथ वस्तु चली जावे जैसी कि शका की जाती है।

उपस्थित थे, महाराजा ने 'सर्बस' अर्थात् सब कुछ जैसे धन, वस्त्र, आभूषण आदि दिये और जिन्होने ये वस्तुये पाई उन वस्तुओ को उन्होने अपने पास न रक्खा अर्थात् लुटा दिया सो जिसके जी मे जो आया वह उसी को ले गया। जैसे राम रसायन रामायण से स्पष्ट होता है—

हरिगीतिका छन्द—नृप नारि सब आनन्द अति मुखचन्द लखि रघुचन्द को।
मणि बसन भूषण वारि परसहिं अङ्ग सुत सुखकन्द को॥
दासी जु खासी दासि दासी तेउ सुवन निहार कै।
'पावै सु औरहु वारि डारै' वित्त वित्त बिसारि कै॥

दूसरा अर्थ—पहिले जितने मनुष्य आये थे उनको अनेक वस्तुये दी परन्तु वे आनन्द के कारण वहा बैठे ही रहे। इतने मे जो और बहुत से लोग आये उनके साथ पहिले आये हुए लोगो को फिर से और वस्तुयें दे दी। उन्हे 'राखा नहिं' अर्थात् दुबारा देने मे सकोच न रक्खा।

तीसरा अर्थ—महाराज ने सब आये हुए लोगो को बहुत कुछ दान दिया, यहा तक कि जिन्हे वह दान मिला उनके पास यह बात न रह गई कि जिसके लिये दान दिया जाता है अर्थात् उनके पास दरिद्र न रहा। भाव यह कि दान पाने वालो का दरिद्र दूर हो गया जैसा कहा है—

दोहा—दशरथ नृप आनँद मगन, लखि मुखि राम मयक।
दान दियो पूरण सबहिं, 'धनद तुल्य भे रक'॥

मृगमद चंदन कुकुम कीचा। मची सकल वीथिन बिच बीचा॥

अर्थ—कस्तूरी चदन और कुकुम से गलिया ऐसी सिंचाई गईं कि कीचड मच गया।

दोहा—गृह गृह बाज बधाव शुभ, प्रकटेउ सुखमा कन्द[1]।
हर्षवंत सब जहँ तहाँ, नगर नारि नर वृन्द॥१६४॥

अर्थ—शोभा की खानि भगवान ने जब जन्म लिया तो (अयोध्या मे) घर-घर शुभ बधाइया होने लगी और नगर भर के स्त्री-पुरुष अपने-अपने स्थानो मे आनन्द मनाने लगे।

कैकयसुता सुमित्रा दोऊ। सुन्दर सुत जन्मत भईं ओऊ[2]॥
वह सुख संपति समय समाजा। कहि न सकत शारद अहिराजा॥

अर्थ—कैकेयी और सुमित्रा, इन दोनो को भी सुन्दर पुत्र हुए। उस समय के सुख और

---

१. गृह गृह बाज बधाव शुभ, प्रकटेउ सुखमा कन्द—

छन्द—छाई मधुर धुनि सुनत सुरनर राम जन्म सुहावनो।
गुण गाय नाचत मुनि तपोधन मुदित मन सुख पावनो॥
पुरलोग मिल गणिका नृपति गृह नचत मगल गावनो।
गृह गृह अवध आनँद उमगत सोहलो मन भावनो॥

२. कैकयसुता सुमित्रा दोऊ। सुन्दर सुत जन्मत भईं ओऊ—

राग बिलावल—आजु महा मगल कौशलपुर सुन नृप के सुत चार भये।
सदन सदन सोहलो सुहावन नभ अरु नगर निशान हये॥
अति सुख वेगि बोलि गुरुभूसुर भूपति भीतर भवन गये।
जातकर्म करि कनक बसन मणि भूषित सुरभि समूह दये॥
दल फल फूल दूब दधि रोचन युवतिन्ह भर-भर थार लये।
गावत चली भीर भइ वीथिन बदिन बाँकुरे बिरद बये॥
उमगि चल्यो आनँद लोक तिहुँ देत सबन मदिर रितये।
'तुलसिदास' पुनि भरेहु देखियत रामकृपा चितवन चितये॥

सपत्ति की समाज को सरस्वती और सर्पराज (वासुकी) भी नही कह सकते ।।

अवधपुरी सोहइ इहि भाँती । प्रभुहि मिलन आई जनु राती ।।
देखि भानु जनु मन सकुचानी । तदपि बनी संध्या अनुमानी ।।

अर्थ—अयोध्या नगरी इस प्रकार शोभा दे रही थी कि मानो रात्रि रामचन्द्रजी से से मिलने को आई हो । वहा पर (रामरूपी) सूर्य को देखकर मन मे लज्जित हुई तो भी ऐसा भासने लगा कि मानो सध्या बन गई हो ।

अगर धूप बहू जनु अँधियारी । उड़इ अबीर मनहूँ अरुणारी ।।
मदिर मणि समूह जनु तारा । नृप गृह कलस सो इंदु उदारा ।।

अर्थ—अगर का जो धुआँ हो रहा था वही मानो अँधेरा था, जो अबीर उड रहा था वही मानो (साँझ की) लाली थी । महलो मे जो (जगह-जगह) मणि के समूह थे वे ही मानो तारे थे और राजमहल का (सुनहला) कलश मानो पूर्ण चन्द्रमा था ।

भवन वेद धुनि अति मृदुबानी । जनु खग मुखर समय अनुमानी ।।
कौतुक देखि पतंग भुलाना । एक मास तेइ जात न जाना[१] ।।

अर्थ—महलो मे जो वेदध्वनि हो रही थी वह मानो सध्या का समय जान पक्षियो के (बसेरा करने के समय के) शब्द थे । इस आनन्द उत्सव को देखकर सूर्य भी ऐसी भूल मे पड गये कि उन्हे एक महीना व्यतीत होते न समझ पडा ।

दोहा—मास दिवस कर दिवस भा, मर्म न जानइ कोइ[२] ।
रथ समेत रवि थाकेउ, निशा कवन विधि होइ ।।१९५।।

अर्थ—एक दिन ही एक महीने का हो गया परन्तु यह भेद किसी की समझ मे न आया जबकि रथ सहित सूर्य देव ही थक रहे तो रात्रि किस प्रकार हो सकती थी ।

यह रहस्य काहू नहि जाना । दिनमणि चले करत गुणगाना ।

---

१. कौतुक देखि पतङ्ग भुलाना । एक मास तेइ जात न जाना ।।—कुण्डलिया रामायण से—
कुण्डलिया—मास भयो शुभ चार योग बर नखत विराजत ।
तिथि नभ जल महि विमल दिशा विदिशा सब भ्राजत ।।
भ्राजत सरयू अवध देवगण जय उच्चारत ।
वर्षत सुमन प्रशस हस निज वश निहारत ।।
हारत खलगण मन मलिन प्रकट भये सुख दुख गयो ।
'तुलसी' रघुवर प्रकट भे मास एक का दिन भयो ।।

२. मास दिवस कर दिवस भा, मर्म न जानइ कोइ—मध्याह्न समय मे जब सूर्य देव ने अपने कुल मे श्री रामचन्द्रजी का प्रकट होना देखा, तब तो वे आनन्द मे ऐसे मग्न हो गये कि अपने रथ की गति रोक गगनमण्डल मे स्थिर होकर एक मास तक बने रहे । यह भेद कोई न जान सका, यहा तक कि ज्योतिषी लोग बहुत समय तक मध्याह्न ही मध्याह्न देख-कर जब कभी 'शकु' खडा कर सूर्य की छाया नापते थे तब मध्याह्न ही समझ पडता था, इस से भी कुछ भेद न जान सके । जैसा कि रसिक बिहारी ने कहा है—
क०—प्रकटे अनूप पुत्र चारि अवधेश जू के जैजैकार जोर चहुँओर शोर है उतकु ।
भारी भीर भूप द्वार भवन भडार खुले दान भो अपार कोऊ जग मे रहो न रकु ।।
दिवस भयो सो एक मास को अभूत हेरि रसिक बिहारी गुणी गणक गने हैं अकु ।
रचहु न पावै भेद अधिक अचभा जानि हेरि हेरि भानु फेरि फेरि कै मिलावै 'शकु' ।।

देखि महोत्सव सुर मुनि नागा। चले भवन वर्णत निज भागा ।।

शब्दार्थ—दिनमणि (दिन+मणि)=सूर्य।

अर्थ—यह भेद किसी ने न समझा, सूर्य देव प्रभु के गुण गाते हुए चल खडे हुए। इस बडे भारी उत्सव को देखने के पश्चात् देवता, मुनीश्वर और नाग अपने-अपने भाग्य की बडाई करते हुए निज स्थान को लौटे (भाव यह कि सूर्य देव इस बात से प्रसन्न थे कि परमेश्वर ने अवतार ले हमारे वश को उजागर किया और शेष तथा देवगण आदि कहते थे कि धन्य हमारे भाग्य कि हमने अपने नेत्रो से परमात्मा के जन्मोत्सव को देखा)।

अउरउ एक कहउँ निज चोरी। सुनु गिरजा अति दृढ मति तोरी।
काकभुशुडि संग हम दोऊ। मनुजरूप जानइ नहि कोऊ।।
परमानन्द प्रेम सुख फूले। बीथिन फिरहि मगन मन भूले।
यह शुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम कै जापर होई।।

अर्थ—(महादेवजी कहने लगे कि) हे पार्वती! सुनिये, तुम्हारे चित्त मे पूर्ण विश्वास जम गया है, इस हेतु मैं और भी अपनी एक गुप्त बात कहता हूँ सो सुनो! हम और कागभुशुडि दोनो साथ-साथ मनुष्यरूप धारण किये हुए गुप्त रूप से अत्यन्त आनन्द और प्रेम के सुख से फूले हुए मन की उमग मे भूले हुए गलियो मे डोलते फिरते थे। इम उत्तम चरित्र को वही जान सकता है जिस पर रघुनाथजी की कृपा होती है।

सूचना—यह ऐसा वार्ता है जो शिवजी ने पार्वती के उस कथन के अनुसार बताई है जिस मे उन्होने कहा था—

"जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयाल राखहु जनि गोई।"

तेहि अवसर जो जेहि विधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मनभावा[१] ।।
गज रथ तुरँग हेम गौ हीरा। दीन्हें नृप नाना विधि चीरा।।

अर्थ—उस समय जो जिस प्रकार मे आया और उसके मन मे जो अच्छा लगा वही महाराज ने उसको दिया। हाथी, रथ, घोडे, सोना, गाये और मणि तथा कई प्रकार के वस्त्र राजा ने दिये।।

दोहा—मन सतोषे सबनि के, जहँ तहँ देहि अशीस[२]।
सकल तनय चिरजीवहू, तुलसिदास के ईस ।।१९६।।

---

१. तेहि अवसर जो जेहि विधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा।।—सूरसगीत—

आजु दशरथ के आगन भीर।
आये भवभार उतारन कारन प्रगटे श्याम शरीर।।
फूल फिरत अयोध्यावासी गनत न त्यागत चीर।
परिरम्भन हँसि देत परस्पर आनँद नैननि नीर।।
त्रिदश नृपति ऋषि व्योम विमानन्ह देखत रहे न धीर।
त्रिभुवन नाथ दयालु दरश दे हरी सबन की पीर।।
देत दान राख्यो न भूप कछु महा बड नग हीर।
भये निहाल सूर सब याचक जे याचे रघुवीर।।

२ मन सतोषे सबनि के, जहँ तहँ देहिं अशीस—

राग कान्हरा—रघुकुल प्रकटे हैं रघुवीर।
देश देश ते टीका आयो रतन कनक मणि हीर।।

अर्थ—राजा ने सबके मन सतुष्ट किये, इस हेतु वे सब जहाँ-तहाँ आशीर्वाद देने लगे कि सब पुत्र चिरजीव रहे जो तुलसीदास के स्वामी है।

कछुक दिवस बीते इहि भाँती, जात न जानिय दिन अरु राती।
नामकरण[१] कर अवसर जानी, भूप बोलि पठये मुनिज्ञानी ॥

अर्थ—इसी प्रकार कुछ दिन बीत गये और दिन-रात जाते न जान पडे। बारहवे दिन नामकरण का समय जानकर राजाजी ने ज्ञानवान् मुनि वशिष्ठजी को बुलवाया।

करि पूजा भूपति अस भाखा। धरिय नाम जो मुनि गुनि राखा ॥
इनके नाम अनेक अनूपा। मै नृप कहब स्वमति अनुरूपा ॥

अर्थ—(गुरुजी का) पूजन कर महाराजा यो कहने लगे कि हे गुरुजी आपने इनके जो नाम विचारे हैं वे ही नाम रख दीजिये। (गुरुजी बोले) इनके उपमा रहित अनगिनती नाम हैं तो भी हे राजन्! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ।

जो आनन्द सिधु सुखरासी। सीकर ते त्रैलोक सुपासी ॥

घर घर मगल होत बधाई अति पुरबासिन भीर।
आनँद मगन भये सब डोलत कछू न शोध शरीर ॥
मागध बन्दी सूत लुटाये गौ गयन्द हय चीर।
देत अशीस सूर चिरजीयो रामचन्द्र रणधीर ॥

१. नामकरण—यह पाँचवाँ सस्कार जातर्म सस्कार के पश्चात् होता है। मनुजी का वचन है कि बालक का नाम जन्म से दसवे या बारहवे दिन रखे। कदाचित् इन दिनो मे न हो सके तो शुभवार-नक्षत्र आदि देखकर नाम रखे। मुहूर्त्त चिन्तामणिकार ग्यारहवे और बारहवें दिवस नाम रखने को कहते हैं। मुहूर्त्त मार्तण्ड का मत है कि ब्राह्मण का नामकरण १२वे दिन, क्षत्रिय का १६वे, वैश्य का २०वे और शूद्र का २२वे दिन करे। ऐसा ही बृहस्पतिजी का वचन है। जहाँ पर काल विरोध है कि अमुक कर्म १०वे या १२वे दिवस हो, वहाँ मुहूर्त्त नही देखा जाता। जहाँ काल अतिक्रम हो जावे वहाँ शुभ दिन मे मृदु, ध्रुव, क्षिप्र, चर इन नक्षत्रो मे नामकरण शुभ कहा है। अपराह्ण काल और रात्रि मे नामकरण मना है। नाम कितने अक्षरो का और कैसा होना चाहिये, इस विषय मे आश्वलायन का मत है कि जिसको प्रतिष्ठा की कामना हो उसका नाम दो अक्षरो का रहे और ब्रह्म-वर्चस्व की कामना वालो का नाम चार अक्षरो का। पुरुषो का नाम पूरे अक्षरो का और स्त्रियो का ऊने अक्षरो का होना चाहिए। मनुजी का मत है कि ब्राह्मण का नाम मगलवाचक, शर्मा से युक्त हो, क्षत्रिय का बल और रक्षाप्रद से समन्वित, वैश्य का धन, पुष्टि से और शूद्र का निन्दा, प्रेष्य से युत रहे। जैसे क्रमश शर्मा, वर्मा, गुप्त व दास पद। स्त्रियो का नाम सुख से उच्चारण हो सके, और वह अक्रूर, स्पष्ट, मनोहर, मगलवाचक और आशीर्वाद शब्द से युक्त होवे। पिता, पितामह और प्रपितामह इनमे एक किसी का वाचक हो, ऐसा भी लिखा है जैसा कि महाराष्ट्र ब्राह्मणो मे चलने है।

भागवत रचना-काल मे शास्त्रानुसार नाम रखने की परिपाटी उठ गई देख वेद व्यास जी ने देवताओ के नाम पाडने की प्रथा चलाई हो ऐसा अनुमान अजामिल की कथा से होता है, जिसने कि अपने पुत्र का नाम 'नारायण' रखकर मोक्ष पाया था। इस प्रथा का बहुत प्रचार था, पर अब पाश्चात्यो के नामो का अनुकरण कर उन नामो भी त्याग हो चला है।

सो सुख धाम राम अस नामा । अखिल लोक दायक विश्रामा[1] ।।

शब्दार्थ—सीकर=जलकण अर्थात् थोडी ही ।

अर्थ—जो आनन्द के समुद्र और सुख के समूह है तथा जिनकी थोडी ही दया से तीनो लोक मे सुख हो जाता है। ऐसे सुख के स्थान का नाम 'राम' है जो सम्पूर्ण लोको को आराम देने वाला है।

विश्वभरण पोषण कर जोई । ताकर नाम भरत अस होई ।।
जाके सुमिरन ते रिपु नाशा । नाम शत्रुहन वेद प्रकाशा ।।

अर्थ—जो ससार का पालन-पोषण करने वाले है उनका नाम 'भरत' ऐसा पडा जिनके स्मरण करने से शत्रुओ का नाश होता है उनका नाम 'शत्रुहन' जगतप्रसिद्ध है ।

दोहा—लक्षण धाम सु राम प्रिय, सकल जगत आधार२ ।
गुरु वशिष्ठ तेहि राखेऊ, लक्ष्मण नाम उदार ।। १९७ ।।

अर्थ—जो सब लक्षणो से परिपूर्ण, रामचन्द्रजी के प्यारे और सम्पूर्ण ससार के आधार हैं, गुरु वशिष्ठजी ने उनका उदारचित्त 'लक्ष्मण' नाम रक्खा ।

धरेउ नाम गुरु हृदय विचारी । वेद तत्त्व नृप तव सुत चारी ।।
मुनि धन जन सर्वस शिव प्राना । बाल केलिरस तेहि सुख माना ।।

अर्थ—गुरु वशिष्ठजी ने हृदय से विचार कर नाम रखे और कहा हे राजा! तुम्हारे चारो पुत्र वेद के तत्त्व है (अर्थात् ओकारात्मक हैं)। मुनियो के धनस्वरूप भक्तो के सब कुछ और शिवजी के प्राण है जो शिवजी बाललीला के विनोद मे आनन्द मानते है ।

बारेहि ते निज हित पति जानी । लछिमन रामचरण रतिमानी ।।

---

१ अखिल लोक दायक विश्रामा—

या शिशु के गुण नाम बडाई।
को कहि सकै सुनहु नरपति श्रीपति समान प्रभुताई ।।
यद्यपि बुध वय रूप शील गुण सम ये चारु चारौ भाई।
तदपि लोक लोचन चकोर शशि भगत परम सुखदाई ।।
सुरनर मुनि करि अभय दनुज हति हरणि धरणि गरुआई।
कीरति विमल विश्व अघ मोचनि रहहि सकल जग छाई ।।
याके चरण सरोज कपट तजि जो भजि है मन लाई।
सो कुल युगल सहित तरिह भव यह न कछू अधिकाई ।।
सुनि गुरु वचन पुलकि तन दपति हरष न हृदय समाई।
'तुलसिदास' अवलोकि मातु मुख प्रभु मन मे मुसकाई ।।

२. लक्षण धाम सु राम प्रिय, सकल जगत आधार—
इसमे यह शका हो सकती है कि शत्रुघ्न सबसे छोटे और लक्ष्मण उनसे बडे है, तो पहले शत्रुघ्न का नाम बताकर पीछे से लक्ष्मण का नाम क्यो रक्खा, उसका समाधान यह है कि तीनो भाइयो का एक-एक गुण लक्ष्मणजी मे बतलाया है, जैसे श्री रामचन्द्रजी मे सब लोको को विश्राम देना, भरतजी मे ससार का पालन-पोषण करना और शत्रुघ्न मे शत्रुओ का नाश करना, ये तीनो गुण लक्ष्मणजी मे बतलाना था सो 'लक्षण धाम' इस विशेषण से दरशा दिया, इसके सिवाय ये श्री रामचन्द्रजी के प्रिय और विशेष रहे सो इनके लिए अलग दोहे मे वर्णन करना गोसाईंजी ने योग्य समझा ।

भरत शत्रुहन दोनों भाई। प्रभु सेवक जस प्रीति बढ़ाई[1] ।।

अर्थ—छुटपन ही से लक्ष्मण ने रामचन्द्रजी को अपना हितकारी और स्वार्थी समझ-कर उनके चरणो मे प्रेम लगाया। भरत और शत्रुहन इन दोनो भाइयो ने इस प्रकार से प्रेम बढाया जिस प्रकार स्वामी और सेवक का प्रेम होता है।

श्याम गौर सुन्दर दोउ जोरी। निरखहि छबि जननी तृण तोरी ।।
चारिउ शील रूप गुणधामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा[2] ।।

अर्थ—श्यामली और गोरी ऐसी सुन्दर युगल जोडी की शोभा देख माता तिनका तोडती थी (इस अभिप्राय से कि इन्हे किसी की डीठ न लगे) (यद्यपि) चारो भाई शीलवान्, रूपवान् और गुणवान् थे तो भी रामचन्द्रजी सबसे अधिक सुख के स्थान थे।

हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचत किरण मनोहर हासा ।।
कबहुं उछग कबहुं बर पलना। मातु दुलारहि कहि प्रिय ललना[3] ।।

अर्थ—उनके हृदय के कृपा-रूपी चन्द्र का प्रकाश उनकी मनहरन हँसी-रूपी किरणो के द्वारा प्रकट होता था। माता उन्हे कभी तो गोदी और कभी उत्तम पालने मे हे प्यारे, हे लाल कह-कहकर प्यार करती थी।

दोहा—व्यापक ब्रह्म निरंजनं, निर्गुण विगत विनोद[4] ।
सो अज प्रेम सुभक्तिवश, कौशल्या की गोद ।। १९८ ।।

---

१ बारेहि ते निज हित पति जानी ''प्रभु सेवक जस प्रीति बढाई—अध्यात्म रामायण से—

श्लोक—लक्ष्मणो रामचन्द्रेण शत्रुघ्नो भरते न च।
द्वन्द्वी भूय चर तौ तौ पायसाशानुसारत ।।

अर्थात् पायसरूप यज्ञ के भाग के अनुसार लक्ष्मण श्री रामचन्द्रजी के सग और शत्रुघ्न भरत के साथ, परस्पर दो-दो मिलके रहते थे।

भाव यह कि पायस का शेष चौथा भाग जो बचा था उसे कौशल्या और कैकेयी के हाथो से पृथक्-पृथक् सुमित्रा को दिलाया था। इस हेतु कौशल्या के हाथ से दिये हुए भाग से उत्पन्न लक्ष्मण श्री रामचन्द्रजी के साथी हुए और कैकेयी के हाथ से दिये हुए भाग से उत्पन्न शत्रुघ्न भरतजी के साथ रहे।

२ तदपि अधिक सुखसागर रामा—

सवैया—पग नूपुर औ पहुँची कर कंजनि मजु बनी मणिमाल हिये।
नव नील कलेवर पीत झँगा झलकै पुलकै नृप गोद लिये ।।
अरविन्द सो आनन रूपमरद अनन्दित लोचन भृग पिये।
मन मे न बस्यो अस बालक जो तुलसी जग मे फल कौन जिये ।।

३. कबहुँ उछग कबहुँ बर पलना। मातु दुलारहि कहि प्रिय ललना—

राग बिलावल—सुभग सेज शोभित कौशल्या रुचिर राम शिशु गोद लिये।
बार-बार विधुवदन विलोकति लोचन चारु चकोर किये।। १ ।।
कबहुँ पौढि पय पान करावति कबहूँ राखति लाय हिये।
बालकेलि गावति हलरावति पुलकित प्रेमपियूष पिये ।।
विधि महेश मुनि सुर सिहात सब देखत अम्बुद ओट दिये।
'तुलसिदास' ऐसो सुख रघुपति काहूँ तो पायो न विये ।।

४. व्यापक ब्रह्म निरजन, निर्गुण विगत विनोद'''कौशल्या की गोद—शिवसिंह सरोज से—

क० : जाके हेत योगी योग युगति अनेक करै जाकी महिमा न मन वचन के पथ की।
औरन की कहा जाहि हेरि हर हारे जाहि जानिबे को कहा विधि हू की बुधि न थकी।→

शब्दार्थ—निरजन (निर=बिना+अजन=तमोगुण)=तमोगुण रहित, माया रहित ।

अर्थ—जो घटघटवासी, परमात्मा, माया रहित, गुण रहित, दु ख-सुख रहित है, वही अजन्मा भगवान प्रेम और भक्ति के कारण कौशल्या की गोद मे है ।

काम कोटि छबि श्याम शरीरा । नीलकज वारिद गंभीरा ।।
अरुण चरण पंकज नख जोती । कमल दलन्हि बैठे जनु मोती ।।

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी का शरीर ऐसा श्यामला था कि मानो करोडो कामदेव की शोभा के समान नीले कमल और गहरे बादली रग के तुल्य था। उनके कमलस्वरूप लाल चरणो मे नखो की शोभा ऐसी समझ पडती थी कि मानो कमल के पत्तो पर मोती जमे हो (भाव यह कि चरणो की अरुणाई स्वच्छ नखो मे भी झलकती थी) ।

रेख कुलिश ध्वज अकुश सोहै । नूपुर धुनि सुनि मुनि मनमोहै ।।
कटि किकिणी उदर त्रय रेखा । नाभि गँभीर जान जिन देखा[1] ।।

अर्थ—चरणो मे वज्र ध्वजा और अकुश के चिह्न शोभायमान थे, पैरो मे घुँघरू की ध्वनि सुनकर मुनियो के मन मोहित हो जाते थे । कमर मे करधनी और उदर पर तीन रेखायें बन जाती थी, नाभि इतनी गभीर है कि उसे वही जानते है जिन्होने देखा है (भाव यह है कि नाभिकमल से ब्रह्मदेव की उत्पत्ति हे सो वे ही उसका कुछ-कुछ हाल जानते है क्योकि उन्होने देखने का प्रयत्न किया था परन्तु पार नही पाया था) ।

भुज विशाल भूषण युत भूरी । हिय हरि नख शोभा अति रूरी[2] ।।
उर मणिहारपदिक की शोभा । विप्रचरण देखत मन लोभा[3] ।।

अर्थ—उनकी लम्बी भुजाये बहुतेरे आभूषणो से शोभित थी और हृदय मे बघनखा की छटा निराली ही थी । हृदय पर रत्नो की माला मध्य मणि से शोभायमान थी और वही पर भृगुलता का चिह्न देखने से मन लुभाय जाता था ।

कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई । आनन अमित मदन छबि छाई ।।

ताहि लै खिलावै गोद अवध नरेश नारी अवधि कहा है ताके आनँद ···· ······
जाके माया गुणनि भुलायो सब जग ताहि पलना मे ललना झुलावै···· (अस्पष्ट)

१. नाभि गँभीर जान जिन देखा—मल्लाया निवासी कवि बिहारीलाल कृत 'नखसिख' से—

(मनहर छन्द)

गोल गहिरी है सुवा कुड रूप सागर की रोमावली रली है सिवार छवि छाज की।
महामन मोहै मनोकर्णिका-सी सोहै त्रिवलीन की नसेनी गुफा गिरा प्रागराज की ।।
बसन तरे है तऊ रसन तरग तुग करता की करता सकल सिद्ध काज की।
सदा श्री बिहारी तिहुँ लोक सुखकारी प्यारी नाभि पद्मनाभि रामचन्द्र महराज की ।।

२ भुज विशाल भूषण युत भूरी—कवि बिहारीलाल कृत 'नखसिख' से (मनहर छन्द मे)

रम्य द्वन्द शुड इन्द्र करी की सुबल भरी रही घूमि घूमि भूरि भूपनन्ह मडै है।
छवती है जानु की अजान बाहु जिन्है कहै जबर जगत खल बल दल खडै हैं ।।
कल्पतरु लता कामधेनु की सटा है छई छवि की छटा है श्याम घटा की घुमडै हैं।
भक्तसुखधाम कामप्रद अभिराम सदा अवधबिहारी राम जू की भुज डडै है।।

३. विप्रचरण देखत मन लोभा—विप्रचरण अर्थात् ब्राह्मण के चरण का चिह्न किम्वा भृगुलता । पद्मपुराण मे इसकी कथा यो है कि एक बार महर्षिगण सभा मे बैठे हुए यह→

दुइ दुइ दशन अधर अरुणारे[१] । नासा तिलक को बरनै पारे ।।

अर्थ—शख के समान कठ और ठोडी अधिक सुहावनी लगती थी तथा मुख पर अनगिनती कामदेव की शोभा झलकती थी। लाल-लाल ओठ और दो-दो दतुलियाँ थी तथा नाक के ऊपर के तिलक का कौन वर्णन कर पार पा सकता है।

सुदर श्रवण सुचारु कपोला । अति प्रिय मधुर तोतरे बोला ।।
नील जलज दोउ नयन विशाला । बिकट भृकुटि लटकनि वर भाला ।।
चिकन कच कुचित गभुआरे । बहु प्रकार रचि मातु सँवारे ।।

अर्थ—सुन्दर कान, मनोहर गाल और अत्यत प्यारी मीठी तोतली वाणी, नील कमल के समान बडे-बडे दोनो, नेत्र टेढी भौंहे और सुन्दर कपाल पर बाल लटकते थे। गर्भ ही के चिकने घुंघरवाले बालो को माता ने सब प्रकार से ऊँछकर सँभाल दिया था।

पीत झँगुलिया तनु पहिराई । जानु पाणि बिचरनि मोहि भाई[२] ।।
रूप सकहि नहि कहि श्रुति शेषा । सो जानहि सपनेहुँ जिन्ह देखा[३] ।।

यह विचार कर रहे थे कि ऐसा कौन देव उत्तम है जिसको ब्राह्मण लोग परम पूज्य माने। सभा मे जब इसका निर्णय न हो सका तब उन्होने भृगु मुनि को परीक्षा के लिए भेजा। उन्होने जाँचकर यह निवेदन किया कि शिवजी तो तमोगुण मे प्रधान है, ब्रह्मदेव राजस गुणवान है। परन्तु विष्णुजी की कहाँ तक प्रशसा करूँ कि उन्हे सोता देख मूर्खतावश मैने उनकी छाती मे पद प्रहार किया तो वे बहुत ही लज्जित होकर उठ बैठे। उन्होने मेरा पैर मीज कर कहा कि हे ब्राह्मण देवता ! मेरे कठोर हृदय के कारण आपके चरण मे चोट आई होगी। क्षमा कीजिये ! धन्य है मेरा भाग्य कि आपके चरणो का सस्कार मेरे शरीर पर हुआ। आपके इस पदचिह्न को मैं अपने वक्षस्थल पर बनाये रहूँगा। जब भृगुजी ने ऐसा कहा तब सब ऋषिगण एक स्वर से कह उठे—धन्य है श्री विष्णुजी को ! वे ही आज से परम पूज्य हो चुके।

१. दुइ दुइ दशन अधर अरुणारे—

सवैया—तन की द्युति श्याम सरोरुह लोचन कज कि मजुलताई हर।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे छबि भूरि अनग कि दूरि धरैं।।
दमकैं दतियाँ द्युति दामिनि ज्यो किलकैं कल बाल बिनोद करैं।
अवधेश के बालक चारि सदा तुलसी मन मदिर मे विहरैं।।

२. पीत झँगुलिया तनु पहिराई—रामरत्नाकर रामायण से—

दोहा—पीत झँगुलिया स्याम तन, मणिमय भूषण भार।
जनु घेरे घन चचला, नव ग्रह को दरबार।।

३. रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति शेषा। सो जानहिं सपनेहुँ जिन देखा।। गीतावली रामायण से

(ललित राग मे)

सादर सुमुखि विलोकि राम शिशु रूप अनूप भूप जिय कनियाँ।
सुन्दर श्याम सरोज वरण तन सब अँग सुभग सकल सुखदनियाँ।।
अरुण चरण नख जोति जगमगति रुनु झुनु करति पाँय पैजनियाँ।
कनक रतन मणि जटित रटित कटि किंकिण कलित पीत पटतनियाँ।।
पहुँची करनि पदिक हरि नख उर कठुला कठ मजु गजमनियाँ।
रुचिर चिबुक रद अधर मनोहर ललित नासिका लसति नथुनियाँ।। →

अर्थ—शरीर मे नीली झँगुलिया पहिराई गई थी, घुटनो और हाथो के बल चलना मुझे सुहावना लगता था। उनकी शोभा को वेद और शेषनाग भी नही कह सकते। उसे वे ही जान सकते है जिन्होने उन्हे स्वप्न मे भी देखा हो।

दोहा—सुख सन्दोह विमोह पर, ज्ञान गिरा गोतीत[१] ।।
सो दपति अति प्रेमवश, कर शिशुचरित पुनीत ।। १९९ ।।

अर्थ—सुख के स्थान, अज्ञान से दूर, ज्ञान, वाणी और इन्द्रियो से परे परमेश्वर पिता-माता के अत्यन्त प्रेम के कारण पवित्र बाललीला कर रहे थे।

इहि विधि राम जगत पितु माता। कोशलपुर बासिन्ह सुखदाता ।।
जिन रघुनाथ चरण रति मानी। तिनकी यह गति प्रकट भवानी[२] ।।

अर्थ—इस प्रकार जगत के माता-पिता श्री रामचन्द्रजी अयोध्यावासियो को सुख देने लगे। (महादेवजी कहते है कि) हे पार्वती ! जिन्होने श्री रामचन्द्रजी के चरणो मे प्रेम लगाया है, उनकी ऐसी ही गति प्रसिद्ध है (अर्थात् श्री रामचन्द्रजी के चरणो मे प्रेम रखने वालो को ऐसा ही सुख-चैन मिलता है जैसा राजा दशरथ और कौशल्याजी को मिलता था)।

विकट भ्रकुटि सुखमानिधि आनन कल कपोल कानन्ह नगफनियाँ।
भाल तिलक मसि बिन्दु विराजत सोहति सीस लाल चौतनियाँ ।।
मन मोहनी तोतरी बोलनि मुनि मन हरणि हँसनि किलकनियाँ।
बाल सुभाय बिलोल विलोचन चोरति चितहि चारु चितवनियाँ ।।
सुनि कुल बधू झरोखनि झाँकति रामचद्र छबि चद्र बदनियाँ।
'तुलसिदास' प्रभु देखि मगन भईं प्रेम विवश कछु सुनि न अपनियाँ ।।

१ सुख सन्दोह विमोह पर, ज्ञान गिरा गोतीत… 'कर शिशु चरित पुनीत—विष्णुपदी रामायण से—

राग कान्हडा—रघुबर भेद अलख को पावै।
कोटि कोटि ब्रह्माण्ड रोम प्रति जननी गर्भ समावै ।।
अज उपजाय अलख मुख लखि लखि चूमि हरषि उर लावै।
जेहि खोजन ब्रह्मा रुद्रादिक तेहि गहि गोद खिलावै ।।
सदा क्षीरनिधि शयन क्षुधा पर फाहन दूध पियावै।
चरण पताल शीस विधिपुर तेहि रूप पलन पौढावै ।।
सावन सकल जासु माया मद तेहि कौशिला सोवावै।
जन 'बलदेव' बाल लीला पर बार बार बलि जावै ।।

२ जिन रघुनाथ चरण रति मानी। तिनकी यह गति प्रकट भवानी ।। सूर सगीत सार—

राग बिलावल—करतल शोभित धान धनुहियाँ।
खेलत फिरत कनकमय आँगन पहिरे लाल पनहियाँ ।।
दशरथ कौशल्या के आगे लसत सुमन की छहियाँ।
मानो चार हस सरवर ते बैठे आय सदहियाँ ।।
रघुकुल कुमुद चन्द्र चिन्तामणि प्रगटे भूतल महियाँ।
यहै देन आये रघुकुल को आनँदनिधि सब गहियाँ ।।
ये सुख तीन लोक मे नाही जो पाये प्रभु पहियाँ।
'सूरदास' हरि बोलि भगत को निरबाहत दै बहियाँ ।।

रघुपति विमुख जतन कर कोरी। कवन सके भवबंधन छोरी[१] ।।
जीव चराचर वश करि राखे। सो माया प्रभु सो भय भाखे ।।

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी से विमुख हो करोडो यत्न करने पर भी कौन उसे ससार के फदे से छुडा सकता है ? (देखो जिस माया ने) चलने वाले और स्थिर जीवो को अपने अधीन कर रखा है वह माया भी श्री रामचन्द्रजी के सामने डर कर गिडगिडाती है।

भृकुटि बिलास नचावइ ताही। अस प्रभु छाँडि भजिय कहु काही ।।
मन क्रम वचन छाँड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहै रघुराई[२] ।।

अर्थ—ईश्वर माया को अपनी दृष्टि के सकेत मात्र ही से नचाता है ऐसे परमेश्वर को छोडकर कहो किसका भजन करे ? अपनी चालाकी को छोडकर मनसा-वाचा-कर्मणा से ईश्वर का भजन करने से वे कृपा करते है।

इहि विधि शिशुविनोद प्रभु कीन्हा। सकल नगरवासिन्ह सुख दीन्हा ।।
लै उछग कबहुँक हलरावै। कबहुँ पालने घालि झुलावै ।।

अर्थ—इस रीति से रामचन्द्रजी बाललीला करते थे जिससे सम्पूर्ण नगर निवासियो को आनन्द मिलता था। माता कभी-कभी गोदी मे लेकर डुलाती थी और कभी-कभी पालने मे लिटाकर झुलाती थी।

दोहा—प्रेम मगन कौशल्यही, निशि दिन जात न जान[३]।
सुत सनेहवश मात सब, बालचरित कर गान ।। २०० ।।

---

१. रघुपति विमुख जतन कर कोरी। कवन सकै भवबधन छोरी ।।
राग झझोटी—अस कछु समुझि परे रघुराया।
बिन तुव कृपा दयालु दास हित मोह न छूटै माया ।।
वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुण भव पार न पावै कोई।
निशि गृह मध्य दीप की बातिन्ह तम निवृत नहिं होई ।।
जैसे कोई इक दीन दुखित अति अशन हीन दुख पावै।
चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न बिपति नशावै ।।
षटरस बहु प्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैन बखानै।
बिन बोले सन्तोष जनित सुख खाइ सोइ पै जानै ।।
जब लग नहिं निज हृदि प्रकाश अरु विषयआश मनमाही।
'तुलसिदास' तब लग जग भरमत सपनेहूँ सुख नाही ।।

२. मन क्रम वचन छाँडि चतुराई। भजत कृपा करिहै रघुराई ।। काव्य निर्णय से—
सवैया—राम को दास कहावै सबै जग 'दासहु' रावरो दास निहारो।
भारी भरोसो हिये सब ऊपर ह्वै है मनोरथ सिद्ध हमारो ।।
राम अदेवन के कुल घाले भयो रह्यो देवन को रखवारो।
दारिद घालिबो दीन को पालिबो राम को नाम है काम तिहारो ।।

३. प्रेम मगन कौशल्यही, निशि दिन जात न जान—गीतावली से—
(राग ललित)
छोटी छोटी गोडियाँ अँगुरियाँ छोटी छबीली नख जोति मोती मानो कमल दलनि पर।
ललित आँगन खेलै ठुमुकु ठुमुकु चलें झुँझुनु झुँझुनु पाँय पैंजनी मृदु मुखर ।।
किंकिणी कलित कटि हाटक रतन जटित मजु कर कजनि पहुँचियाँ रुचिर तर।
पियरी झीनी झँगुली साँवरे शरीर खुली बालक दामिनी ओढी मानो वारे वारिधर ।।→

अर्थ—कौशल्याजी प्रेम मे इस प्रकार मग्न थी कि उन्हे रात-दिन जाते हुए नही समझ पडता था, इसी प्रकार सब माताएँ पुत्रो के प्रेम मे पगी हुई उनकी बाललीला का वर्णन करती रहती थी।

एक बार जननी अन्हवाये। करि सिगार पलना पौढ़ाये॥
निजकुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह असनाना॥

अर्थ—एक समय माता कौशल्या ने रामचन्द्रजी को नहलाया और शृगार कर उन्हे पालने मे लिटा दिया। फिर उन्होने भी अपने इष्टदेव (श्री रगनाथ) भगवान की पूजा करने के निमित्त स्नान किया।

करि पूजा नैवेद्य चढावा। आप गई जहँ पाक बनावा॥
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई। भोजन करत दीख सुत जाई॥

अर्थ—पूजा करके उन्हे नैवेद्य दिखाया और फिर आप रसोईघर मे गई। जब माता लौटकर वही आईं तो देखा कि बालक भोजन कर रहा है।

गइ जननी शिशु पहँ भयभीता। देखा बाल तहाँ पुनि सूता॥
बहुरि आइ देखा सुत सोई। हृदय कप मन धीर न होई॥

अर्थ—माता डरती बच्चे के पास (पालने के समीप) गईं तो वहाँ भी बालक को सोया हुआ देखा। फिर जो लौटकर आई तो (उसी लडके को भोजन करते हुए पाया) हृदय मे कँप-कँपी उठी और मन मे धीरज नही बँधता था।

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मति भ्रम मोर कि आन बिसेखा॥
देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसकानी॥

अर्थ—दोनो स्थानो मे दो बालको को देखा तो विचारने लगी कि मेरी समझ की भूल है कि कोई दूसरा कारण है। जब श्री रामचन्द्रजी ने देखा कि माता घबडा उठी है तब तो उन्होने मुसकराकर हँस दिया।

दोहा—दिखरावा माताहि निज, अद्भुत रूप अखण्ड[१]।
रोम रोम प्रति राजही, कोटि कोटि ब्रह्मण्ड॥ २०१॥

उर बघनखा कठ कठुला झँडुलेकेश टेढी लटकन मसि विन्द मुनि मनहर।
अजन रजित नैन चित चोरे चितवन मुख शोभा पर वारौ अमित असमशर॥
चुटकी बजावति नचावति कौशल्या माता बालकेलि गावति मल्हावति सुप्रेम भर।
किलकि किलकि हँसै द्वै द्वै दतुरियाँ लसै तुलसी के मन बसै तोतरे बचन भर॥

१. दिखरावा माताहि निज, अद्भुत रूप अखड। राम स्वयवर से—

चौबोला—चकित जानि जननी जिय रघुपति वपु विराट दरशायो।
कोटि स्वयभु शभु शक्रादिक बहु सुर कौन गनायो॥
बदन हजारन चरण हजारन हजारन नैन सोहै।
गिरि कानन सर सरित सिंधु युत महिमडल बन मोहै॥
रोम रोम प्रति कोटि कोटि ब्रह्माड निहार्यो माता।
कालहु कर्म सुभाउ प्रकृति जिय माया अति अवदाता॥
देखि विराट रूप सुत को तब नारायन जिय जानी।
अस्तुति करन लगी कौशल्या जोरि जलज युग पानी॥ →

अर्थ—उन्होने माता को अपना अनोखा विराट रूप दिखलाया जिसके एक-एक रोम में करोडो ब्रह्माड सुशोभित थे।

अगणित रविशशि शिव चतुरानन। बहु गिरिसरितसिधु महिकानन ।।
काल कर्म गुण ज्ञान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ ।।

अर्थ—(उसी रूप मे) अनगिनती सूर्य, चन्द्र, शिव, ब्रह्मा देखे नथा बहुत से पहाड, नदी, समुद्र, पृथ्वी और बन देखे। काल, कर्म उनके गुण और स्वभाव समेत देखे तथा वे बाते भी देखी जो किसी ने सुनी भी न होगी।

देखी माया सब विधि गाढी। अति सभीत जोरे कर ठाढी ।।
देखा जीव नचावइ जाही। देखी भक्ति जो छोरै ताही ।।

अर्थ—सब प्रकार से प्रबल जो माया है उसे डरती हुई, हाथ जोडे खडी देखा। उस जीव को भी देखा जिसे माया नचाती है और वह भक्ति भी दिखाई दी जो जीव को छुटकारा दे देती है।

तन पुलकित मुख वचन न आवा। नयन मूँदि चरणन शिर नावा ।।
विस्मयवत देखि महतारी। भये बहुरि शिशुरूप खरारी ।।

अर्थ—शरीर के रोम खडे हो गये और मुँह से कुछ कहते न बना, निदान आँखे बन्दकर उनके चरणो को प्रणाम किया। माता को घबराई हुई देखकर रामचन्द्रजी फिर से बालरूप बन गये।

अस्तुति करि न जाइ भय माना। जगतपिता मै सुत करि जाना ।।
हरि जननी बहुविधि समुझाई। यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई ।।

अर्थ—वे इतनी डर गईं कि उनसे स्तुति करते न बनी और बोली कि मैंने ससार के उत्पन्न करने वाले को अपना पुत्र माना। तब तो श्री रामचन्द्रजी ने माता को बहुत प्रकार से समझाया और कहा कि हे माता ! इसकी चर्चा कही न करना।

दोहा—बारम्बार सुकौशिला, विनय करै कर जोरि[१]।
अब जनि कबहूँ व्यापई, प्रभु मोहि माया तोरि ।। २०२ ।।

अर्थ—कौशल्याजी हाथ जोडकर बारबार विनती करने लगी कि हे प्रभ ! तुम्हारी माया मुझे अब कभी न सतावे।

बालचरित हरि बहुविधि कीन्हा। अति आनँद दासन्ह कहँ दीन्हा ।।

दोहा—वात्सल्य रस हानि लखि, हरि लीन्हो हरि ज्ञान।
पुनि पलना सोवन लगे, प्राकृत बाल समान ।।

१. बारम्बार सु कौशल्या बिनय करै कर जोरि—
भजन—जगत मे लाज रहै न रहै।
हरि भूषण पहरो उर अन्तर कोऊ कछू कहै ।।
श्रीपति चरण कमल मे उरझो मो मन कछु न गहै।
हे हरिहर भ्रमतभू मोर चित तुम तजि कछु न लहै ।।
नरक मिलै या सुरग पदारथ मन कछु विपति सहै।
परिहरि चरण शरण मति छूटै दिन दिन अधिक चहै ।।
प्रेमसिन्धु में मगन रहूँ नित आँखो नीर बहै।
'श्रद्धा' श्याम रहै इक सम्पति और समाज दहै ।।

कछुक काल बीते सब भाई। बड़े भये परिजन सुखदाई ।।

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी ने भाँति-भाँति से बाललीला की और अपने भक्तो को बडा आनन्द दिया। कुछ समय के पश्चात् वे सब भाई बड़े हुए और अपने कुटुम्बियो को सुख देने लगे ।

चूडाकरन कीन्ह गुरु जाई। विप्रन बहुत दक्षिणा पाई[१] ।।

परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा ।।

अर्थ—गुरुजी ने जाकर (चारो भाइयो का) मुडन सस्कार कराया और उस समय ब्राह्मणो को बहुत-सा द्रव्य मिला। चारो सुकुमार राजकुमार अनगिनती बहुत ही मनभावन चरित्र करते फिरते थे ।

---

१. चूडाकरन कीन्ह गुरु जाई। विप्रन बहुत दक्षिणा पाई।—राम स्वयवर से—

चौबोला—चूडाकरन करन वेधन को जब आयो दिन सोई।
खैर भैर माच्यो कौशलपुर प्रजा सुखी सब कोई।।
गुरु वशिष्ठ अवसर विचारि तहँ चारिहु कुँवर बुलाये।
गौरि गणेश पूजि पुण्याह सुवाचन सविधि कराये।।
कोउ गावै कोउ बाज बनाव कोउ नाचहिं दै तारी।
राजभवन महँ महा मोद गुणि कौशल प्रजा सुखारी।।
भूपति कह्यो मिठाई दैहै लालन कान छेदाये।
अति विचित्र भूषण पुनि दैहै शिर मुडन करवाये।।
परम मनोहर काक पक्षयुत शिखा राखि शिर दीन्ही।
करनबेध पुनि कियो सुतन्ह कर रगनाथ गति कीन्ही।।
सम्पति अगनित दियो भिखारिन्ह कीन्हेउ दारिद दूरी।
बजे नगारे गगन अपारे पुहुपवृष्टि भै भूरी।।

चूडाकरन—चौलकर्म चूडाकर्म, और मुडन ये पर्यायवाचक शब्द है, यह अष्टम सस्कार है। चूडाकर्म का काल 'तृतीये वर्षे चौल यथा कुल धर्मं वा' ऐसा आश्वलायन गृह्यसूत्र मे लिखा है। ज्योतिष के ग्रन्थो मे और धर्मशास्त्रो मे जन्म से अथवा गर्भ से तीसरे या पाँचवे वर्ष मे चूडाकर्म का काल कहा है। मनुस्मृति मे पहले वर्ष भी चूडाकर्म की आज्ञा दी है। गृह्यसूत्र मे विशेष जोर मुडन कराने पर ही दिया है। मुडन के पश्चात् शिखा या बाल सिर पर कैसे रखवाए यह कुलधर्म पर छोड दिया गया है। जैसा कि 'यथा कुल धर्म केश वे ज्ञान्कार कारयेत्' इस सूत्र से प्रतीत होगा। आधुनिक काल मे पूरा सिर रखाना यही कुलधर्म हो गया है।

चूडाकर्म दक्षिणायन मे वर्जित है। वैसे ही यदि सस्कार्य की माता गर्भवती हो तो भी वर्जित है। चूडाकर्म का अतिकाल साधारणतः पाँच वर्ष के बाद माना गया है। यो तो यज्ञोपवीत सस्कार के साथ मे भी चूडाकर्म होता है। शुभ वार-नक्षत्र विहित हो, परतु एक तीक्ष्ण, दारुण नक्षत्र ज्येष्ठा भी इस कर्म के लिए शुभ माना गया है। अशुभ लग्न मे यह कर्म होने से लँगडापन, ज्वर, मृत्यु तक होती है। ऐसा ज्योतिष के ग्रन्थो का मत है। इसका जन्म से भी सम्बन्ध दिखता है, कारण कि ज्वर से पीडित बालक का चूडाकर्म धर्म-शास्त्र के अनुसार वर्जित किया है और वैद्यक तथा ज्योतिष के ग्रन्थो तथा धर्मशास्त्रो के भी ग्रन्थो मे श्मश्रु कर्म का काल (जैसे हर पाँचवें दिवस करावें या कब) निर्णय किया है जिसका सम्बन्ध शरीर पर उसका असर पडने का ज्ञात होता है। इस कर्म मे यह एक विशेषता है कि विवाह, व्रतबध आदि शुभ कार्य अपने कुल मे तीन पीढी से किसी के यहाँ→

मन क्रम वचन अगोचर जोई। दशरथ अजिर विचर प्रभु सोई ।।
भोजन करत बोल जब राजा[१] । नहि आवत तजि बाल समाजा ।।

अर्थ—जो प्रभु मनसा-वाचा-कर्मणा से भी पहुँच के बाहर है वे ही दशरथजी के आँगन मे खेल रहे थे। भोजन के समय जब राजाजी उनको बुलाते थे तो वे बाल-मडली को छोडकर नही आते थे।

हुए हो तो चूडाकर्म उस कुल मे छ माह तक नही हो सकता। ऐसा ही अश्रुमुख श्राद्ध के विषय मे है। इससे इस कर्म का कुछ-कुछ अशुभ माने जाने का भास होता है। आजकल भी मुडित सिर से शुभ के प्रत्युत अशुभ का विचार मन मे विशेष उठता है ।

इस कर्म मे तीर्थक्षेत्र पर मनाये हुए स्थल पर या अपने देश मे बालक का मुडन वेद मत्रो से उसके सिर पर कुश, गोमय रखकर नापित से कराने की विधि है। दूसरे सस्कारो के समान यह सस्कार भी लोप हो गया है। यज्ञोपवीत के समय प्रायश्चित्त विधान से अलबत्ता कर दिया जाता है।

आश्वलायन गृह्यसूत्र १—१७, १८ (आवृतैव कुमार्यै) सो स्पष्ट है कि कन्याओ का चूडाकर्म पहले होता था परन्तु बिना वेद मत्रो के उच्चार के। ऐसा ही मनुजी ने कहा है (देखो अध्याय २—६६) कालान्तर से कुमारियो का चौल सस्कार बहुत-सी जातियो मे लोप हो गया, कुछ जातियो मे अभी भी जब तक लडकी के पेट के बालो का मुडन एक दफे कर नही देवेंगे तब तक सिर पर बाल सर्वदा के लिए नही रखते। फिर इन बालो का मुडन कराना या काटना सौभाग्यवतियो के लिए अशुभ गिना जाता है। सुधारको मे वह भी नही माना जाता। धर्मसिन्धुकार पडित काशीनाथ लिखते हैं कि—"इदानौ शिष्टेषु स्त्रीणा चूडादि सस्कार करण न दृश्यते। विवाह काले चूडादि लोप प्रायश्चित्त मात्र कुर्वन्ति" अर्थात् शिष्ट सम्प्रदाय मे स्त्रियो का चूडाकर्म उनके समय (शाके १७१२) मे नही होता था, न अब होता है। धर्मलोप हो जाने के डर से उसका प्रायश्चित्त मात्र अवश्य लडकी के विवाह के समय करते है ।

१ भोजन करत बोल जब राजा। आदि "यही सब आशय प्राय अध्यात्म रामायण से मिलता है, यथा—

श्लोक—भोक्ष्यमाणो दशरथो राममेहीतिचा सकृत् ।
आव्हयत्यतिहार्द्देन प्रेम्णा नायाति लीलया ।।
आनयेति च कौशल्या माहसासस्मिता सुतम् ।
धावत्यपि न शक्नोति स्प्रष्टु योगि मनोगतिम् ।।
प्रहसन्स्वमायाति कर्द्दमाङ्कित पाणिना ।
किंचिद् गृहीत्वा कवलं पुनरेव पलायते ।।

अर्थात् जब दशरथजी भोजन करने को बैठते थे तब अति स्नेह से राम को 'आओ' ऐसा शब्द कह के बुलाते थे। जब खेल मे मान रहने के कारण नही आते थे तब उन्हे कौशल्याजी के द्वारा बुलवाते थे। रामचन्द्र कौशल्या को देख भाग जाते थे, कौशल्याजी भी योगियो के मन मे भी न आने वाले श्रीराम को पकडने दौडती थी तो वे और भागते थे। परन्तु कभी-कभी अपने ही मन से आकर धूल भरे हाथो से दशरथजी की थाली मे से कौर उठाकर भाग जाते थे।

कौशल्या जब बोलन जाई। ठुमकि ठुमकि प्रभु चलहि पराई[१]।
निगमनेति शिव अत न पावा। ताहि धरइ जननी हठि धावा॥
धूसर धूरि भरे तनु आये। भूपति विहँसि गोद बैठाये॥

अर्थ—जब कौशल्याजी उन्हे बुलाने को जाती थी तो रामचन्द्रजी ठुमकि-ठुमकि भागते थे। जिनके विषय मे वेद 'नेति' कहते है और जिनका शिवजी ने भेद नही पाया उन्ही को जबरई से पकड लेती थी। जब रामचन्द्रजी शरीर मे मैली-कुचैली रेत भरे हुए आते थे तो दशरथजी हँसकर गोदी मे बैठा लेते थे।

दोहा—चपल चित्त भोजन करत, इत उत अवसर पाइ।
भाजि चले किलकात मुख, दति ओदन लपटाइ॥ २०३॥

अर्थ—भोजन करते समय भी उनका चित्त चचल रहता था। वे समय पाकर मुँह मे दही-भात लगाये हुए भी किलकारी मार कर इधर-उधर भाग जाते थे।

बालचरित अति सरल सुहाये। शारद शेष शभु श्रुति गाये॥
जिनकर मन इन सन नहि राता। ते जन बचित किये बिधाता॥

अर्थ—ईश्वर के बहुत ही सीधे और सुहावने बालचरित्रो को सरस्वती, शेषनाग, शिवजी और वेदो ने वर्णन किया है। जिन लोगो का मन इनके प्रेम मे नही रँगा है उन मनुष्यो को ब्रह्मा ने वृथा बताया है।

भये कुमार जबहि सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता[२]॥

---

१ ठुमकि ठुमकि प्रभु चलहिं पराई—

(प्रभाती)

ठुमकि चलत रामचन्द्र बाजत पैंजनियाँ।
किलकि किलकि उठत धाय गिरत भूमि लपटाय धाय मातु गोद लेत दशरथ की रनियाँ॥
अचल रज अग झारि विविध भाँति सो दुलारि, तन मन धन वारि वारि कहत मृदु वचनियाँ।
से अरुण अधर बोलत मुख मधुर मधुर सुभग नासिका मे चारु लटकत लटकनियाँ॥
··· · अति अनद देखि कै मुखारविन्द, रघुवर छबि के समान रघुबर छवि बनियाँ।

२ दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता—जनेऊ पहिनाना, इसे उपनयन सस्कार कहते हैं। ब्रह्म तेज की कामना वाले ब्राह्मण का उपनयन सस्कार गर्भ से पाँचवें वर्ष होना चाहिए, साधारण का आठवें वर्ष परन्तु सोलह वर्ष के भीतर हो सकता है। बल की इच्छा वाले क्षत्रिय का छठवे वर्ष, साधारण ग्यारहवें वर्ष परन्तु बीस वर्ष के भीतर ही हो सकता है और धन-शाली वैश्य का आठवे वर्ष मे, साधारण का बारहवें वर्ष, परन्तु चौबीमवाँ वर्ष न बीतने पावे इस बात पर ध्यान बना रहे, क्योकि अतिकाल होने से तीनो द्विजाति भ्रष्ट होकर निन्दनीय समझे जाते है। जनेऊ तिहरे सूत से तीन तागे वाला कमर तक रहे। ब्रह्मचारी पहले-पहल अपनी माता, बहिन आदि सम्बन्धियो से भिक्षा माँगकर भोजन करे। भोजन को आदर से ग्रहण करे, अन्न की निन्दा न करे, तथा उसे प्रमाण से प्रसन्नतापूर्वक पावे, ऐसा करने से वीर्य और सामर्थ्य की वृद्धि होती है। उपनयन सस्कार होने के पश्चात् गुरु का कर्तव्य है कि शिष्य को शौचविधि, आचार अग्निहोत्र और सन्ध्योपासना भी सिखावे। तत्पश्चात् वेदाध्ययन कराना उत्तम होगा। दोनो सध्याओ के समय जो द्विज गायत्री का जाप करता है वह तेजस्वी, प्रतापी, प्रतिष्ठित, ऐश्वर्यवान् और दीर्घायु होता है। मन जो पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय का मानो आत्मास्वरूप है उसे क्रम-क्रम से वश मे करने से सम्पूर्ण→

गुरुगृह् गये पढन रघुराई[१] । अल्प काल विद्या सब पाई[२] ।।

अर्थ—जब सब भाई उपनयन के योग्य हुए तो माता-पिता और गुरुजी ने उन्हे जनेऊ पहनाये। जब श्री रामचन्द्रजी गुरुजी के घर पढने गये तो थोडे ही दिन मे उन्होने सब विद्या प्राप्त कर ली।

इन्द्रियाँ बस मे हो जाती है और मनुष्य सत्यशील तथा ज्ञानी होकर परमात्मा को पहचानने लगता है।

विवाह् सस्कार ही स्त्रियो का वैदिक उपनयन सस्कार है, इनके लिए पति की सेवा ही गुरुकुल मे वास के तुल्य है । इसी प्रकार गृहकार्य ही सध्या सबेरे की होमरूपी अग्नि परि-चर्या जानो (देखो, मनुसहिता, अध्याय दूसरा) ।

और भी, विष्णुपदी रामायण से—

बरुवा—चारि कुँअर दशरथजी के बने बरुआ सुहावन हो ।। टेक।।
कचन रतन खडाऊँ तौ सोहै छोटे छोटे पाँवन हो ।
कुमर कोपीन औ करधन वटुरूप जनावन हो ।।
काँध मे पियर जनेऊ पहिरे अति पावन हो ।
हाथ कनक मणि ककण लिय दोना सुहावन हो ।।
गर गजरा दृग काजर तीनो लोक रिझावन हो ।
भाल रुचिर पट बाँधे मानो ठाढे है बावन हो ।।
जानि समय सब कामिनि लागी मगल गावन हो ।
पहिली भीख दीन्ही दुरगा दूजी बानी दयावन हो ।।
तीसरि दीन्ह अरुन्धति चौथी माता मयावन हो ।
यहि विधि सुर नर मुनि त्रिय कीन्ही सब तहँ आवन हो ।।
दीन्ही कनक मणि भिक्षा कहँ लगि नाम गनावन हो ।
यह बलदेव जो गावे पावे फल मनभावन हो ।।

१ गुरु गृह गये पढन रघुराई—रामचन्द्रजी के गुरु वशिष्ठजी का जीवन-चरित्र ब्रह्मदेव से जो दस मानस प्रजापति हुए थे उनमे से एक वशिष्ठजी भी थे। ये ब्रह्मा की प्राणवायु से उत्पन्न हुए थे ।कर्दम प्रजापति ने अपनी नौ कन्याओ मे से अरुधती नाम की आठवी कन्या इन्हे ब्याह दी थी । कहते है कि वशिष्ठ की दूसरी स्त्री ऊर्जा नाम की थी, जिससे इन्हे चित्रकेतु आदि सात पुत्र हुए थे । जेठी स्त्री अरुधती से भी इन्हे हवीन्द्र आदि सात पुत्र हुए थे। इनके सिवाय सुकाली नाम के पितर भी इन्ही के लडके थे (भागवत, चतुर्थ स्कध)। पहले के ब्रह्म मानसपुत्र महादेव के श्राप से भस्म हो गये थे । उनमे से वशिष्ठ को ब्रह्मदेव, ने अग्नि के मध्य भाग मे से फिर उत्पन्न कर लिया था। इस प्रचलित मन्वतर मे वशिष्ठजी सूर्य वश के इक्ष्वाकु राजा के कुलगुरु हुए फिर कालातर मे निमि के श्राप से मरकर तीसरी बार फिर भी वशिष्ठ नाम से मित्रावरुण के वीर्य से पैदा हुए (देखो निमि की कथा) । तीसरे जन्म मे इनकी स्त्री का नाम अरुधती ही था जिससे शक्ति आदि सौ पुत्र हुए। शक्ति से पराशर ऋषि हुए और पराशर मे कृष्ण द्वैपायन व्यास, उनसे शुकदेव की उत्पत्ति हुई। वशिष्ठ को मिलाकर सात ऋषि इनके कुल मे मत्रद्रष्टा हुए। इनके कुल की चार वश-माला हैं—

१. वशिष्ठ, २. कुडनि, ३ उपमन्यु, और ४. पराशर

१. वशिष्ठ—वाशिष्ठ।

२. कुडनि—वाशिष्ठ, मैत्रावरुण, कौंडिन्य ।

→

जाकी सहज श्वास श्रुतिचारी। सो हरि पढ यह कौतुक भारी[1] ॥
विद्या विनय निपुण गुणशीला। खेलहि खेल सकल नृपलीला ॥

अर्थ—जिनकी स्वाभाविक साँस से ही चारो वेद प्रकट हुए वे ही भगवान पढते है, यह बडा अचभा है। जब वे विद्या और नम्रता से सम्पन्न तथा गुणो से परिपूर्ण हुए तो राजाओ के सब खेल खेलने लगे।

करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा[2] ॥
जिन बीथिन्ह बिहरहि सब भाई। थकित होहि सब लोग लुगाई[3] ॥

---

३. उपमन्यु—वाशिष्ठ, ऐन्द्रप्रमति, भरद्वसव्य।
४ पराशर—वाशिष्ठ, शाक्त्य पाराशर्य।

इनके पास कामधेनु नाम की एक गाय थी जो इनकी सपूर्ण इच्छाओ को पूर्ण करती थी, इसीके कारण विश्वामित्रजी से विरोध आदि की कथा विश्वामित्र की कथा मे देखो—सप्तऋषियो मे इनकी गणना है।

२ अल्प काल विद्या सब पाई—रामस्वयवर से—

सोरठा—सुदिव ससुखद सुधाय, भेज्यो भवन वशिष्ठ के।
विद्यारभ कराय, लगे परीक्षा लेन नित ॥

छद—थोरे ही दिन मे सब अक्षर अक्षर प्रभु को आये।
भाषा बध प्रबध छदयुत चारहु बधु सुहाये ॥
जौन पढै गुरुभवन सुवन सब सो नित पितहि सुनावै।
सुनत सराहत सकल सभा जन जननि जनक सुख पावै ॥

१. जाकी सहज श्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ यह कौतुक भारी—बृहदारण्यक उपनिषद् मे लिखा है कि—

एतस्य महतो भूतस्य नि श्वसित मे तद् ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्वांगिरम इतिहास पुराण श्लोको व्याख्यानान्यनुमानानि प्रमाण भूतानि।

अर्थात् इन महान् ईश्वर की सहज स्वाभाविक श्वास ही से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, श्लोक व्याख्यान, और अनुमान सब प्रमाणीभूत है (भाव यह कि ईश्वर की श्वास से ये सब प्रकट हुए है। ऐसे प्रभु नर नाट्यलीला करते हुए गुरु के घर पढने को जाने लगे, यह उनका एक कौतुक मात्र ही है।)

२ करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा—इस समय की छटा सुखलाल कवि कृत कविता मे देखिये—

दशरथ के बेटे चरे खरेटे धनुष करेटे सर टेटे।
गोरे सौरेटे उर बघनेटे जरी लपेटे सिर फेटे ॥
नैनों कजरेटे रण दुलहेटे रमा पलेटे चरनेटे।
'सुखलाल' समेटे चारो बेटे हँसि कर भेटे सौरेटे ॥

३ जिन बीथिन्ह बिहरहि सब भाई। थकित होहि सब लोग लुगाई—

स्मरण रहे कि इस कथन मे असगति अलकार दर्शाया गया है जिसका यह अभिप्राय है कि कार्य और कारण का विरोध-सा भिन्न-भिन्न स्थान मे एक साथ ही कथन किया गया है, सो यो कि सब भाई तो चलते-फिरते थे परन्तु लोग-लुगाई थकति होते थे। यह छटा कविवर बिहारीलालजी की कविता मे साभिप्राय है—

दोहा—दौरत काहू और के, थकै न काहू और।
मेरे दृग पै थकि रहे, देखत पिय दृग दौर ॥

अर्थ—(उनके) हाथो मे धनुष-बाण शोभायमान थे, जिनके रूप को देखकर चल और अचल जीव मोहित हो जाते थे। जिन गलियो मे चारो भाई फिरते थे वहाँ के स्त्री-पुरुष उन्हे देखकर दग हो जाते थे। (भाव यह है कि जिन-जिन स्थानो मे चारो भाई बालक्रीडा करते थे वहाँ के स्त्री-पुरुष उनके रूप और चरित्रो को देखकर टकटकी बाँधकर रह जाते थे)।

दोहा—कौशलपुर बासीन्ह नर, नारि वृद्ध अरु बाल[१]।
प्राणहुँ ते प्रिय लागही, सब कहँ राम कृपाल ॥२०४॥

अर्थ—अयोध्या के रहनेवाले स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सब ही को दयालु श्री रामचन्द्रजी प्राणो से प्यारे लगते थे।

बधु सखा सँग लेहि बुलाई। बन मृगया नित खेलहि जाई[२] ॥
पावन मृग मारहि जिय जानी। दिन प्रति नृपहि दिखावहि आनी ॥

शब्दार्थ—पावन=अपने पूर्व जन्म के पापो के कारण मृग आदि पशुओ की देह धारण करने वाले तथा मुक्ति के योग्य।

अर्थ—श्री रामचद्रजी अपने भाइयो और साथ के मित्रो को बुलाकर वन मे प्रतिदिन शिकार खेलने जाते थे। हृदय मे विचारकर मारने योग्य पशुओ को मारते थे और उन्हे लाकर प्रतिदिन राजाजी को दिखलाते थे।

जे मृग रामबाण के मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे ॥
अनुज सखा सँग भोजन करही। मातु पिता आज्ञा अनुसरही ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी के बाण से जो पशु मारे जाते थे, वे शरीर छोडते ही देवलोक को चले जाते थे। श्री रामचन्द्रजी अपने छोटे भाई और सखाओ के साथ भोजन करते थे, और माता-पिता की आज्ञा के अनुसार चलते थे।

जेहि विधि सुखी होहि पुर लोगा। करहि कृपानिधि सोइ सयोगा ॥
वेद पुराण सुनहि मन लाई[३]। आप कहहि अनुजन्ह समझाई ॥

अर्थ—कृपालु रामचन्द्रजी वही काम करते थे जिससे नगर निवासी सुख पावें। वे चित्त लगाकर वेदो और पुराणो को सुनते थे तथा आप अपने छोटे भाइयो को समझाकर कहते थे।

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहि माथा[४] ॥

१. कौशलपुर वासीन्ह नर, नारि वृद्ध अरु बाल · · ······· के पश्चात् का क्षेपक पुरौनी मे है।

२. बन्धु सखा सँग लेहिं बुलाई। वन मृगया नित खेलहि जाई—सिह बघेले, विश्वनाथ महाराज रीवाँ नरेश कृत—

कवित्त—बाजी गज सारे रथ सुतर कतारे जे ते प्यादे ऐडवारे जे सबीह सरदार के।
कुँवर छबीले जे रसीले राजवश वारे शूर अनियारे अति प्यारे सरकार के ॥
केते जाति वारे केते केते देश वारे जीभ श्वान सिंह आदि सैल वारे जे शिकार के।
डका की पुकार है सवार सबै एक बार राजै वार पार द्वार कौशलकुमार के ॥

३. वेद पुराण सुनहिं मन लाई—अध्यात्म रामायण मे लिखा है कि 'धर्मशास्त्र रहस्यानि शृणोतिव्या करोति च' अर्थात् धर्मशास्त्र की गुप्त बातो को (रामचन्द्रजी) सुनते थे और दूसरो को समझाते भी थे।

४ प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। आयसु माँगि करहिं पुर काजा—रागविनोद से—
राग भैरवी— जागत दीनबन्धु रघुराई।
गुरु पितु मातु चरण पकज मे शीस नवावत प्रतिदिन जाई ॥ →

आयसु माँगि करहि पुर काजा। देखि चरित हरषहि मन राजा॥

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी सवेरे ही उठकर माता, पिता और गुरुजी को प्रणाम करते थे और उनसे आज्ञा लेकर गाँव की देखरेख किया करते थे। इनकी कार्रवाइयो को देखकर दशरथजी मन ही मन प्रसन्न होते थे।

दोहा—व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुण नाम न रूप।
भक्त हेतु नाना विधिहि, करत चरित्र अनूप॥२०५॥

अर्थ—परमात्मा जो घट-घट वासी, कला रहित, इच्छा रहित, जन्म रहित, गुणो से परे, नाम-रूप विहीन है, वे ही भक्तो के निमित्त नाना प्रकार की उपमा रहित लीलाये करते है।

(विश्वामित्रजी के साथ राम-लक्ष्मण का गमन और ताड़का, सुबाहु का बध)

यह सब चरित कहा मै गाई। आगिलि कथा सुनहु मन लाई॥
विश्वामित्र[1] महामुनि ज्ञानी। बसहि विपिन शुभ आश्रम जानी॥

शौचक्रिया करि के पुनि मज्जन अग अँगौछि सबै सुखदाई।
धारत वसन नवीन अनूपम करत सिगार अग हरषाई॥
धावन भेजि अनदित मगरे पुरवासी भूसुरन बुलाई।
अमित बाज गज धेनु मुकुतमणि दान देत हित सो मन लाई॥
करत कलेऊ पुनि मातन सो बहु पकवान थार परसाई।
राजद्वार 'ब्रजचन्द' जाय पुनि पालत प्रजा प्रेम सरसाई॥

१ विश्वामित्र—सोमवशी पुरुषा के कुल मे कुशाम्बु राजा का पुत्र गाधि राजा था। गाधि राजा के पुत्र का नाम विश्वामित्र था। ये तपस्या के बल से राजऋषि होकर फिर ब्रह्म-ऋषि हो गये। इनकी कथा यो है कि एक बार विश्वामित्र राजा अपनी सेना साज वन मे शिकार खेलने गये। मार्ग मे वशिष्ठ ऋषि का आश्रम देखकर ये वहाँ गये। वशिष्ठजी ने इनका आदर-सत्कार किया और अपनी कामधेनु की सहायता से ससैन्य विश्वामित्रजी को मिष्टान्न भोजन कराये। जिससे सतुष्ट होकर विश्वामित्र ने वशिष्ठजी से कामधेनु माँगी, परन्तु वशिष्ठ ने कामधेनु का देना स्वीकार नही किया। ये उसे जबरई से ले जाने लगे। उसमे ये निष्फल हुए। फिर घर जाकर बडी सेना लेकर अपने सौ पुत्रो के साथ वशिष्ठजी के आश्रम मे आये। वशिष्ठजी ने हुकार की, जिससे उनके निन्नानबे पुत्र भस्म हो गये। केवल एक पुत्र जैसे-तैसे बच रहा। इससे विश्वामित्र को बडा दुख हुआ और वे अपने नगर को लौट गये। उन्होने अपने पुत्र को राज देकर हिमालय पर्वत पर जाकर बडी तपस्या आरभ की। उसके प्रभाव से उन्होने बहुत से अस्त्र-शस्त्र पाये और फिर वशिष्ठ जी के आश्रम पर आकर अस्त्र-शस्त्रो की वर्षा करने लगे। जब वशिष्ठजी ने ये देखा तब उन्होने अपना ब्रह्मदड हाथ मे ले लिया और विश्वामित्र के सामने खडा कर दिया। जो-जो भारी अस्त्र-शस्त्र उन्होने चलाये उन सबका भक्षण उस ब्रह्मदड ने कर लिया। उस दिन से विश्वामित्र को यह इच्छा हुई कि मैं ब्रह्मण्य सपादन करूँ (देखो वाल्मीकीय रामायण, बालकाड, स० ५५-५६)। फिर इन्होने अनेक वर्षों तक बहुत कठिन तपस्या की। उसमे देवताओ ने अनेक विघ्न डाले तो भी इन्होने यत्न प्रयत्न से बाधाओ को टालकर तपस्या पूरी कर ही डाली। तब तो देवताओ ने इन्हे ब्रह्मर्षि कहा परन्तु विश्वामित्र ने उनसे प्रार्थना की कि जब मुझसे वशिष्ठजी ब्रह्मर्षि कहे तब तो मैं अपने को कृतकृत्य समझूँगा। देवताओ ने कहा,→

अर्थ—मैने यह सब लीला वर्णन की, अब मन लगाकर आगे का हाल सुनो (यह पार्वतीजी के तीसरे प्रश्न का उत्तर हुआ)। ज्ञानवान मुनीश्वर विश्वामित्रजी वन मे शुभ स्थान खोजकर रहते थे (यह आश्रम अयोध्या से ६४ कोस पूर्व दिशा मे गगा नदी के किनारे पर है)।

जहँ जप यज्ञ योग मुनि करही। अति मारीच सुबाहुहि डरही॥
देखत यज्ञ निशाचर धावहि। करहि उपद्रव मुनि दुख पावहिं॥

अर्थ—उस स्थान पर मुनिजी जप योग और यज्ञ करते थे, परन्तु मारीच और सुबाहु राक्षसो से बहुत डरते थे। (क्योकि) राक्षस लोग यज्ञ को देखते ही दौड आते थे और ऐसे उत्पात करते थे कि जिनसे मुनियो को दुःख होता था।

गाधितनय मन चिता व्यापी। हरि बिन मरिहि न निशिचर पापी[१]॥
तब मुनिवर मन कीन्ह विचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महिभारा॥

अर्थ—विस्वामित्रजी के मन मे बडी चिन्ता हुई (उन्होने सोचा) कि बिना भगवान के ये पापी राक्षस न मरेगे। तब श्रेष्ठ मुनिजी ने विचार किया कि परमात्मा ने पृथ्वी का भार उतारने के हेतु अवतार लिया है।

एहू मिस देखउँ पद जाई। करि विनती आनउँ दोउ भाई॥

कालान्तर मे ऐसा ही होगा (वा० स० ५७)। इनके अनेक पुत्र हुए और ययाति की माध्वी कन्या से अष्टक नामक पुत्र हुआ था। तपस्या के समय जब अकाल पडा था उस समय त्रिशकु राजा ने विश्वामित्र की स्त्री और उनके पुत्रो की रक्षा की थी। और सत्यव्रत राजा (त्रिशकु) सदेह स्वर्गवास चाहता था, इस हेतु विश्वामित्र ने उसके यहाँ की उपरोहिती करना स्वीकार किया। विश्वामित्र ने त्रिशकु को सदेह स्वर्ग भेजा, परन्तु इन्द्र ने उसे वहाँ आने न दिया। विश्वामित्र ने उसे अधर ही रक्खा। ऐसे अनेक यत्न करने पर भी वशिष्ठजी ने उन्हे ब्रह्मर्षि न कहा। जो-जो बात वशिष्ठजी कहते थे, उसमे विपरीत कार्यवाही करने से इन दोनो का द्वेष परस्पर बढता ही गया। इसी प्रकार से जब वशिष्ठजी ने इन्द्र की सभा मे राजा हरिश्चन्द्र के सत्यव्रत का कथन किया तो उसे झूठ ठहराने के लिए विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र को बहुत छला, सो कथा प्रसिद्ध ही है। इसमे हरिश्चन्द्र ने अपना सत्यव्रत नही छोडा। एक बार विश्वामित्र ने राक्षस द्वारा वशिष्ठ के सौ पुत्रो का भक्षण करा लिया, परन्तु वशिष्ठजी ने कुछ भी न कहा। निदान लज्जित हो विश्वामित्र को पश्चात्ताप हुआ और उन पर इनकी पूज्य दृष्टि हो गई। इसकी जाँच यमराज ने वशिष्ठ रूप धारण करके कर ली और विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि कहा। तब से दोनो का परस्पर स्नेह भी अधिक बढने लगा। इनके कुल मे इनको मिलाकर तेरह ऋषि मत्रद्रष्टा हो गये है, उनके नाम ये है—विश्वामित्र, देवरात, (शुन शेप) मधुच्छन्द, अघमर्षण, अष्टक, लोहित (रोहित), भृतकील, माबुधि, देवश्रवा, देवरत, धनजय, शिशिर, शालकायन (मत्स्य पुराण, अध्याय १४४)। इनकी गणना सप्तऋषियो मे है।

१. गाधितनय मन चिता व्यापी। हरि बिन मरिहि न निशिचर पापी—
इसमे कोई-कोई यह शका कर बैठते हैं कि विश्वामित्रजी तो बडे तपस्वी और प्रतापी थे, उन्होने श्राप आदि से ताडका, मारीच, सुबाहु आदि का बध साधन क्यो नही किया? इसके दो कारण हैं—एक तुलसीदासजी ने रामायण ही मे कहा है सो गीतावली से तथा दूसरा रामरत्नाकर रामायण से उद्धृत किया जाता है— →

ज्ञान विराग सकल गुण अयना। सो प्रभु मैं देखब भरि नयना[1] ॥

अर्थ—इसी बहाने से उनके चरणो का दर्शन करूँगा और विनती करके दोनो भाइयो को लिवा लाऊँगा। जो स्वामी ज्ञान, वैराग्य और सब गुणो की खानि है उनको अपने नेत्रो से भली भाँति देखूंगा।

दोहा—करत मनोरथ बहु विधि, जात न लागी वार।
करि मज्जन सरजू सलिल, गये भूप दरबार[2] ॥२०६॥

अर्थ—नाना प्रकार के विचार बाँधते हुए उन्हे अयोध्या तक पहुँचने मे देरी न लगी, वहाँ पर सरयू जल मे स्नान कर वे राजसभा की ओर बढे।

मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ लै विप्रसमाजा ॥
करि दंडवत मुनिहिं सनमानी। निज आसन बैठारेन्हि आनी ॥

---

(१) गीतावली से—आजु मै सकल सुकृत फल पाइ हौ।
सुख की सीव अवधि आनँद की अवध विलोकन जाइ हौ ॥१॥
सुतन्ह सहित दशरथहि देखि हौ प्रेम पुलकि उर लाइ हौ।
रामचन्द्रमुखचन्द्र सुधा छवि नयन चकोरन प्याइ हौ ॥२॥
सादर समाचार नृप बूझि है हौ सब कथा सुनाइ हौं।
तुलसी हुइ कृत कृत्य आश्रमहि राम लषन लै आइ हौ ॥३॥

(२) रामरत्नाकर रामायण से—
प्रबल ताडकानदन योधा। हम तन विप्र करत नहि क्रोधा ॥
करत क्रोध तप तुरत नसावै। यहै धर्म सदग्रथ बतावै ॥

१. ज्ञान विराग सकल गुण अयना। सो प्रभु मै देखत भरि नयना—कुडलिया रामायण से—
कुडलिया—विश्वामित्र महाऋषय विपिन बसै मुनि सग।
योग यज्ञ होमादि व्रत करत दनुज खल भग ॥
करत दनुज खल भग हृदय मुनि मत्र विचार्यो।
हरि अवतरे सुअवध हरण महि भारन भार्यो ॥
भार्यो सुख उपजाय कै हरि हाई नयननि विषय।
सरयू सरि असनान करि गे दरबार महाऋषय ॥

२. गये भूप दरबार—भूप दरबार का कुछ वर्णन—
कवित्त कौशलाधिराज सोहै सहित समान साज राजे द्विज राज बोऊ विधि से महेश से।
मत्री बसु बेसु देश देश के नरेश चहुँ लखन निदेश, देश शोभित सुरेश से ॥
रसिक बिहारी है धनेश मे धनेश कोऊ शेष शेष शेष तोष कारक जलेश से।
दशरथ राज महाराज की सभा मे भूप भ्राजत बगेश से गनेश मे दिनेश से ॥
'गये भूप दरबार'—इसका अर्थ यही जँचता है कि विश्वामित्र जी राजदरबार की ओर चले। वहाँ पर जब द्वारपालो के द्वारा दशरथजी को विश्वामित्रजी के आने की सूचना मिली तब वे मुनि मडली सहित उनसे मिलने को द्वार पर आये और फिर उन्हे दरबार मे ले आये। सरयू नदी मे स्नान कर सीधे सभा मे चले गये ऐसी शका करना ठीक नहीं, कारण यह बात नियम विरुद्ध है। इसके सिवाय दूसरी ही पक्ति मे गोस्वामीजी उसे स्पष्ट कर देते है कि महाराज आकर उन्हे लिवा ले गये। वाल्मीकीय रामायण मे भी लिखा है कि—दशरथजी ने जब सुना कि महा तेजस्वी विश्वामित्र मुनिजी आये है तब वे उनके दर्शनो के अभिलाषी हो अपने द्वारपालो से बोले इत्यादि। इससे भी स्पष्ट है कि द्वारपालो के द्वारा दशरथजी को मुनिजी के आगमन का सदेशा मिला था।

अर्थ—जब दशरथजी ने (द्वारपालो के द्वारा) विश्वामित्रजी का आना सुना तब वे कुछ ब्राह्मणो को साथ ले उनसे मिलने को आये। दडवत कर मुनिजी का स्वागत किया और उन्हे सिंहासन पर बिठाया।

चरण पखारि कीन्हि अति पूजा। मो सम आज धन्य नहि दूजा[१] ॥
विविध भाँति भोजन करवावा। मुनिवर हृदय हर्ष अति पावा ॥

अर्थ—उनके चरण पखार कर बहुत पूजा की (और कहने लगे कि) मेरे समान आज दूसरा कोई भाग्यवान् नही है। नाना प्रकार के भोजन करवाये जिससे श्रेष्ठ मुनिजी हृदय मे बडे प्रसन्न हुए।

पुनि चरणन्हि मेले सुत चारी। राम देखि मुनि देह बिसारी[२] ॥
भये मगन देखत मुख शोभा। जनु चकोर पूरणशशि लोभा ॥

अर्थ—फिर चारो पुत्रो से मुनिजी के चरण छुवाये, रामचन्द्रजी को देखते ही मुनिजी देह की सुध भूल गये। वे उनकी मुखछवि देखते ही ऐसे प्रसन्न हुए जैसे चकोर पूर्णचन्द्र को देखकर लुभाय जाता है।

तब मन हर्षि वचन कह राऊ। मुनि अस कृपा न कीन्हेहु काऊ ॥
केहि कारण आगमन तुम्हारा[३]। कहहु सो करत न लावउँ बारा ॥

अर्थ—तब मन मे प्रसन्न हो राजाजी कहने लगे कि हे मुनिजी! आपने ऐसी कृपा और कभी नही की। आप का पधारना किस हेतु हुआ? आप जो कहेगे मै उसे पूरा करने मे विलम्ब न करूँगा।

असुर समूह सतावहि मोही। मैं याचन आयउँ नृप तोही[४] ॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा[५]। निशिचर बध मैं होब सनाथा ॥

---

१ मो सम आज धन्य नहि दूजा—सुमति मनरजन नाटक से—

सवैया—कौन सकै मम भाग सराहि, भली विधि है अति आनँद दीन्हो।
आजुहि तौ जगतीतल आय कै, एकहि लाभ बडो यह लीन्हो ॥
कैसे कहै 'ललिते' निज भाग को, दाम हमे अपनो करि चीन्हो।
धन्य मै ईश भयो जग मे मुनि, आइ कै आप कृतारथ कीन्हो ॥

२ 'देह बिसारी' का पाठान्तर 'फिरत बिसारी' भी है।

३. केहि कारण आगमन तुम्हारा—सीता स्वयवर से—

दोहा—धन्य भाग दर्शन दिये, किये सफल दृग आय।
कौन काज आगमन को, मुनिवर कहिय बुझाय ॥

४. असुर समूह सतावहि मोही। मै याचन आयउँ नृप तोही—सीता स्वयवर से—

सवैया—श्री भृगुनाथ गये जब ते बन छाँडि कहूँ तप हेत सिधाये।
तादिन ते दुख दानव देत रहै उतपात घने नित छाये ॥
आपन ताप करे ऋषि देव सशोक भये गिरि खोह छिपाये।
रामकुमारहि देहु हमैं मख राखन को नृप माँगन आये ॥

५. अनुज समेत देहु रघुनाथा—विश्वामित्रजी के कथन को प० शिवशकर लाल वाजपेयीजी राग बिलावल मे यो अलापते है—

राजन राम लखन जो पाऊँ।
सकल भुवन मे भूप मुकुट मणि यश रावरो बढ़ाऊँ ॥ →

अर्थ—राक्षसो के झुड के झुड मुझे त्रास देते है, इस हेतु हे राजन् ! मै तुमसे यह माँगने को आया हूँ, कि रामचन्द्रजी को लक्ष्मण समेत मुझे दीजिये जिससे राक्षसो का नाश होवे और हम सनाथं होवे ।

दोहा—देहु भूप मन हर्ष करि, तजहु मोह अज्ञान ।
धर्म सुयश नृप तुमहुँ कहँ, इन कहँ अति कल्यान[१] ॥ २०७ ॥

अर्थ—हे राजा ! तुम प्रसन्न चित्त से ममता और अज्ञान को छोडकर इन्हे हमको दे दो जिसमे हे राजन्, आपको भी धर्म और कीर्ति का लाभ हो और इनकी बहुत भलाई हो ।

सुनि राजा अति अप्रिय बानी । हृदय कंप मुख द्युति कुम्हिलानी ॥
चौथेपन पायउँ सुत चारी । विप्र वचन नहि कहेउ विचारी ॥

अर्थ—जब राजा ने ऐसे अनचाहे वचन सुने तो उनकी देह काँप उठी और मुख सूख गया । (वे कहने लगे) मैने बुढापे मे चार पुत्र पाये है, हे देव ! आपने विचार कर वचन न कहे ।

माँगहु भूमि धेनु धन कोषा । सर्वस देउँ आज सहरोषा[२] ॥
देह प्राण ते प्रिय कछु नाही । सोउ मुनि देउँ निमिष इकमाही ॥

अर्थ - यदि आप धरती, गौ, धन, खजाना माँगे तो मै सब कुछ उत्साह के साथ दे दूँगा । हे मुनि ! शरीर और प्राणो से बढकर कुछ भी प्यारा नही होता, उन्हे भी मै एक पल भर मे दे डालूँगा ।

नाम सुकेतु तासु की दुहिता प्रबल ताडका नाऊँ ।
ताके तनय मरीच सुभुज अति दुष्ट कहाँ लगि गाऊँ ॥
करन न देत यज्ञ है मोको च-त न नेक उपाऊँ ।
करत विघ्न अति आय धाय के करहुँ यज्ञ केहि ठाऊँ ॥
ये बलवान मारिहै राकस है जग विदित प्रभाऊँ ।
'शकर' दानि शिरोमणि तुम तजि अत कहाँ चलि जाऊँ ॥

१. देहु भूप मन हर्ष करि, तजहु मोह अज्ञान ··· इन कहँ अति कल्यान—कुडलिया रामायण से—

कुडलिया—सुनि भूपति द्विज मित्र गाय महि सोच निवारन ।
मम आश्रम खल दनुज करत उतपात अपारन ॥
पार न पावहि मुनि विकल रैन दिवस सकट परै ।
धर्म जात श्रुति सेतु सकल बल खल हरै ॥
हरै विपति दारुण जबै राम लषन जो देहु मति ।
तुम कहँ यश इनको सुफल गुणहु न मन सुनि भूमिपति ॥

२ माँगहु भूमि धेनु धन कोषा । सर्वस देउँ आज सहरोषा—सीता स्वयवर से—

सवैया—माँगिय राज समाज सबै सुख साजहु दै सुख भूरि भरौगो ।
धाम अराम धरा धन धाम न देत न नेक विलब धरौगो ॥
'वदि' करौ चलि मैं मख रक्षन लक्षन रक्षन सग लरौगो ।
कोट परौ न डरौ थम के पर आँखिन ओट न राम करौगो ॥

सब सुत प्रीय प्राण की नाईं। राम देत नहि बनै गोसाई[१] ॥
कहँ निशिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुन्दर सुत परम किशोरा[२] ॥

अर्थ—हे गोस्वामी, चारो बालक मुझे प्राण के समान प्यारे है परन्तु राम तो देते नही बनता (क्योकि ये सुकुमार कुमार मेरे प्राणो के आधार है। कोई-कोई लोग इस कथन से यह ध्वनि निकालते है कि रामचन्द्र तो परब्रह्म है, उन पर हमारा क्या अधिकार है ? कोई-कोई यो भी अर्थ करते है कि रामचन्द्रजी को मै तुम्हे सौपता हूँ परन्तु ये गोसाईं न बने अर्थात् ये भी मुनि भेषधारी न हो जावे)। कहाँ तो बडे-बडे भयकर कट्टर राक्षस और कहाँ मेरे सुन्दर बहुत छोटी अवस्था वाले बालक।

सुनि नृपगिरा प्रेमरससानी। हृदय हर्ष माना मुनि ज्ञानी ॥
तब बशिष्ठ बहु बिधि समुझावा[३]। नृप संदेह नास कहँ पावा ॥

अर्थ—राजा के ऐसे प्रीतिरस से भरे हुए वचनो को सुनकर ज्ञानवान् विश्वामित्रजी ने हृदय मे आनन्द मनाया। तब वशिष्ठजी ने भलीभाँति समझाया तो राजा का सन्देह दूर हुआ।

अति आदर दोउ तनय बुलाये। हृदय लाय बहु भाँति सिखाये ॥
मेरे प्राणनाथ सुत दोऊ। तुम मुनि पिता आन नहि कोऊ[४] ॥

१ सब सुत प्रीय प्राण की नाईं। राम देत नहि बनै गोसाई—सीतास्वयवर से—

सवैया—नाथ यथारथ बात कही द्विज वदि असाँचु न आप के बैना।
मूरजवश कि रीति यही पर काह करौ कछु चित्त ठनै ना ॥
पुत्र वियोग ते भागति वीरता जागति धीरता धीर मनै ना।
हारहि देह सनेह पछारहि राम कुमारहि देत बनै ना ॥

२ कहँ निशिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुन्दर सुत परम किशोरा—

कवित्त—मै ही साजि सैन चलौ साथ मुनिनाथ जू के सग लै के शूर जेते सगर जुझार है।
राक्षस प्रबल कहाँ इद्रलौ डरात जिन्हे कहा ये सिरस फूलहू ते सुकुमार है ॥
तुम ही विचारि देखौ 'ललित' हिये मे नेक हससुत मदर को कैसे सहे भार है।
माँगिये सँभार कर बार बार गहौ पद राम ही कुमार मेरे प्राण के अधार है ॥

३ तब वशिष्ठ बहु विधि समुझावा—

राग षटपद—इनही के तप तेज यज्ञ की रक्षा करि है।
इनही के तप तेज सकल राकस बल हरि है ॥
इनही के तप तेज तेज बढि है तन पूरन।
इनही के तप तेज होयँगे मगल पूरन ॥
'कहि केशव' कै युत आइ है इनही के तप तेज घर।
नृप गोगि राम कपाज दुवौ सौपी विश्वामिव कर ॥

४ तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ—चाणक्य नीति मे लिखा है कि—

श्लोक—जनिता चोपनेता च यस्तु विद्या प्रयच्छति।
अन्नदाता भयत्राता, पचै ते पितरा स्मृत ॥

अर्थात् जन्म देने वाला, यज्ञोपवीत आदि सस्कार कराने वाला, विद्या देने वाला, अन्न देने वाला, भय से बचाने वाला—ये पाँच पिता गिने जाते है।

और भी—दशरथजी बोले (विष्णुपदी रामायण से)—

राग सोरठ—अब मुनि तुमहिं पिता हौ इन के ॥टेक॥
भोजन पान शयन सुधि राखेहु ये बालक कमसिन के ॥ →

अर्थ—बडे प्रेम से दोनो पुत्रो को बुलाया और हृदय से लगाकर भलीभाँति सिखावन दिया। दशरथजी बोले कि हे स्वामी! मेरे दोनो पूत प्राण के समान है, हे मुनि जी! आप कोई दूसरे नहीं हो, पिता ही के तुल्य हो।

दोहा—सौपे भूपति ऋषिहि सुत, बहु विधि देइ अशीस।
जननी भवन गये प्रभु,[1] चले नाइ पद शीस॥

अर्थ—बहुत-बहुत आशीर्वाद देकर दशरथजी ने पुत्रो को विश्वामित्रजी को सौप दिया, तब रामचन्द्रजी माता के महलो मे गये और उनके चरणो मे सिर नवा कर लौट पडे।

सोरठा—पुरुष सिह दोउ बीर, हर्षि चले मुनि भय हरन।
कृपासिधु मति धीर, अखिल विश्व कारन करन॥२०८॥

अर्थ—पुरुषो मे सिह के समान, दयासागर, दृढ धीरजवान्, सब ससार के कारण और कर्त्ता दोनो वीर (राम-लक्ष्मण) मुनिजी का दुख दूर करने को आनन्दपूर्वक चले।

अरुन नयन उर बाहु विशाला। नील जलज तनु श्याम तमाला॥
कटि पट पीत कसे बर भाथा। रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा[2]॥

अर्थ—रतनारे नेत्र, चौडी छाती और लम्बी भुजाये तथा शरीर का रग नीले कमल तथा तमाल वृक्ष के समान श्यामला, कमर मे पीताम्बर और उत्तम तरकस धारण किये तथा दोनो हाथो मे सुन्दर धनुष-बाण लिये थे।

श्याम गौर सुन्दर दोउ भाई। विश्वामित्र महानिधि पाई॥
प्रभु ब्रह्मण्य देव मै जाना। मोहि हित पिता तजेउ भगवाना॥

शब्दार्थ—ब्रह्मण्य=ब्राह्मणो के हित कर्त्ता।

अर्थ—विश्वामित्रजी ने श्यामले और गोरे सुन्दर स्वरूप वाले दोनो भाइयो को मानो अटूट भडार रूप ही पा लिया (तो विचारने लगे कि) मैंने समझ लिया कि रामचन्द्रजी ब्राह्मण

धीरे धीरे चलेहु मग परव्रत जात जो वाहन बिन के।
थोरहि थोर अहार सात्विकी करनहार छिन छिन के॥
श्री बलदेव सँकोच शील निधि राम साधु सब दिन के।

१ जननी भवन गये प्रभु—श्री रामचन्द्रजी अपनी माता से आज्ञा लेकर मुनिजी के साथ चलने लगे तब कौशल्याजी अपनी सखियों से कहने लगी—(विष्णुपदी रामायण से)—
राग सोरठ—योगी लिए जात मेरे ढोटा।
इक तो राम अबहि है बालक लषन तिन्हूँ ते छोटा।
सरल सुभाय अयान बधु दोउ ऋषि क्रोधी अति खोटा॥
इन के तो कछु वसन असन नहि हाथ कमडल मोटा।
तेहि सँग राजकुँवर किमि रहिहै जेहि घर थार न लोटा॥
झाँकनि कहति मातु महलन ते होन चहत सखि ओटा।
श्री बलदेव कबै अब दिखिहो राम लखन कर जोटा॥

२ रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा—कवि बिहारीलाल कृत—
कवित्त—अगुष्ठ तरजनि मध्यमा सु अनामिका कनिष्ठ अँगुरीन नख चिन्ह चक्रवेश के।
करतल पृष्ठ सुष्ट मुद्रिक वरिष्ठ नग नाम अक अकित प्रताप इष्ट शेश के॥
वेद के महेश के गणेश के सुरेश अज उदित दिनेश वश विदित खगेश के।
वेश रग धनु सर प्रबल बिहारी बीर दूनौ हाथ अभिराम राम अवधेश के॥

का हित करनेवाले देवता है (तभी तो) रघुनाथजी ने मेरी भलाई के लिए अपने पिता को छोड दिया ।

चले जात मुनि दीन्ह दिखाई । सुनि ताड़का क्रोध कर धाई[1] ॥

---

१. सुनि ताडका क्रोध कर धाई—इसमे कोई-कोई यह शका करते है कि मुनिजी ने तो केवल ताडका को दिखलाया ही था, तो फिर ताडका ने सुना क्या, जो क्रोध कर दौडी ? इसका समाधान यही है कि मुनिजी ने केवल सकेत से नही दर्शाया, उन्होने तो अपने पूर्व कथन को पुष्ट करते हुए उसका नाम लेकर मारने को कहा था । जैसा कि वाल्मीकिजी के कथन से स्पष्ट होता है जिनके आधार से ताडका का जीवन-चरित्र आग लिखा है ।

वृत्रासुर के वध से इन्द्र को जो ब्रह्महत्या लगी थी उससे ऋषियो द्वारा अपने पाप का प्रायश्चित्त पाकर इन्द्र ने मल व कारूष (क्षुधा) धोये । इसी से उस स्थान के समीपवर्ती नगरो का नाम मलद व कारूष पड गया । पूर्व काल मे सुकेतु नाम का यक्ष तपस्या कर ब्रह्माजी से वरदान पा एक ऐसी कन्या का जन्मदाता हुआ जिसमे हजार हाथियो का बल था और जिसका नाम ताडका था । इस का विवाह जम्भासुर के पुत्र सुन्द के साथ हुआ । इस सयोग से बडा बलशाली और प्रतापी मारीच नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ । अगस्त्यजी ने शाप देकर सुकेतु और सुन्द दोनो को भस्म कर दिया । इस पर से क्रुद्ध होकर ताडका अपने पुत्र मारीच के साथ अगस्त्यजी को खाने दौडी तो उन्होने श्राप देकर मारीच को राक्षस बना दिया और ताडका को भी कुरूपा, मनुष्य-भक्षण करने वाली राक्षसी बना दिया । तभी से वह इस देश मे उपद्रव करने लगी । विश्वामित्रजी ने दशरथजी के पास से लाये हुए राम-लक्ष्मण से ऊपर की सब कथा सुना कर कहा कि हे राम ! यह दुष्टा हमारे यज्ञ मे विघ्न करती है । इस हेतु गो ब्राह्मण की रक्षा निमित्त इसे मारिये ? हे रघुनाथजी तुम यह विचार न करना कि स्त्री वध करने से महापाप होता है क्योकि राजाओ को उचित है कि वे चारो वर्णो की रक्षा के निमित्त स्त्री का भी, यदि वह सब को दु ख पहुँचाती हो, वध कर डाले । सुनिये ! चाहे कोई क्रूर अथवा सौम्य स्वभाव वाला होवे, चाहे उसके वध करने मे पाप होवे या अपवाद होवे, तो भी सज्जनो की रक्षा के हेतु अपकारी का वध करना ही राजाओ का सनातन धर्म है । जिस प्रकार इन्द्र ने विरोचन दैत्यराज की कन्या मथरा को और विष्णुजी ने भृगु मुनि की पतिव्रता स्त्री को (जो इन्द्र रहित लोक करना चाहती थी) मार ही डाला था । इन वचनो को सुन कर श्री रामचन्द्रजी कहने लगे कि पिता की आज्ञा के अनुसार आप सरीखे वेदवादी महात्मा के वचन मुझे सर्वथा माननीय । इतना है कहकर उन्होने अपने धनुष की टकार की, जिससे सब वन गूज उठा और ताडका भी क्रोध करके उस शब्द की ओर चली । उसे आती देख विश्वामित्रजी ने 'हुम्' करके उसे फटकारा, परन्तु इस का प्रभाव उस पर कुछ भी न हुआ वरन उसे सुन कर वह अति शीघ्रता से इन सब की ओर दौडी, तब पत्थर बरसाती हुई तथा शब्द करती हुई उस ताडका को मुनिजी ने श्री रामचन्द्रजी को दिखा दिया । यह कहते हुए कि यही महापापिनी दुष्टा ताडका है, इसे मारिये ! सुनते ही ज्योही ताडका इन पर झपटी त्योही रामचन्द्रजी ने उसकी छाती मे ऐसा बाण मारा कि वह रक्त-वमन करती हुई पृथ्वी पर गिर पडी और मर गई । इस पर सन्तुष्ट होकर देवताओ के वचनानुसार विश्वामित्रजी ने सब अस्त्र-शस्त्र इन्हे सौपे, जिनको इन्होने तप बल से अपने स्वाधीन कर रक्खा था ।

एकहि बाण प्राण हरि लीन्हा[1] । दीन जान तेहि निजपद दीन्हा ।।

अर्थ—मार्ग मे चलते समय मुनिजी ने (श्री रामचन्द्रजी को ताडका) दिखलाई (कदाचित् यह कह कर कि यही ताडका है, इसे मारिये) । वचनो को सुनते ही ताडका क्रोध करके दौडी । श्री रामचन्द्रजी ने एक ही बाण से उसके प्राण ले लिये परन्तु उसको दुखी समझ कर वैकुठ धाम दिया ।।

तब ऋषि निज नाथहि जिय चीन्हा[2] । बिद्यानिधि कहुँ बिद्या दीन्हा[3] ।।
जाते लाग न क्षुधा पियासा । अतुलित बल तन तेज प्रकाशा ।।

अर्थ—तब ऋषिजी ने हृदय से पहिचान लिया कि ये हमारे स्वामी है और विद्या-निधान श्री रामचन्द्रजी को विद्या सिखाई। (जिस विद्या से) भूख-प्यास न लगे और शरीर मे असीम बल, तेज तथा प्रकाश रहे ।

दोहा—आयुध सर्व समर्पि कै,[4] प्रभु निज आश्रम आनि ।
कंद मूल फल भोजनहि, दीन्ह भक्तहित जानि ।। २०६ ।।

---

१ एकहि बाण प्राण हरि लीन्हा—इस मे बहुधा लोग यह शका कर बैठते हैं कि श्री रामचन्द्रजी को ताडका वध के कारण स्त्री-हत्या का दोष है या नही ? उस का समाधान यह है कि दोष नही है (जैसा कि ताडका के जीवन-चरित्र मे लिख आये है) । और भी—

राम-सवैया—जानत हौ रघुवशिन को पथ जे मरयाद की आप सँभारत ।
दान कृपान विधानन्ह सो यश को जगती तल पुज पसारत ।।
का कहिये प्रभु सो 'ललिते' मैं यही हिय बारहिबार बिचारत ।
भारी लगै अपलोकहु ते कहुँ वीर न तीर तियान पै डारत ।।

विश्वामित्र-दोहा—द्विज द्वेषी न विचारिये, कहा पुरुष का नारि ।
राम विराम न कीजिये, बाण ताडका मारि ।।

और भी रामरत्नाकार रामायण से—

दोहा—जो कि निशिचरी जीव गण, भक्त बसत इहि पथ ।
ताहि बधे पातक नही, कहत साधु सद्ग्रथ ।।

२ तब ऋषि निज नाथहि जिय चीन्हा—

सवैया—कीन्हो कृतारथ मोहि यथारथ है न अकारथ कर्म तिहारो ।
स्वारथ सत्य कियो पितु बैन तथा परमारथ पूरो हमारो ।।
सत्य भयो अब सिद्ध को आश्रम छाय रह्यो यश विश्व मँझारो ।
श्री रघुनाथ सुनौ 'रघुराज' अहै तुव हाथ पदारथ चारो ।।

३ बिद्यानिधि कहुँ बिद्या दीन्हा—अध्यात्म रामायण से—

श्लोक—किंचिद्देशमतिक्रम्य राममाहूय भक्तित ।
ददौ बला चातिबला विद्ये द्वे देवनिर्मिते ।।

अर्थात् कुछ दूर चलकर भक्ति से अपने निकट रामचन्द्रजी को बुलाकर उन्हे देवताओ की निर्माण की हुई बला और अतिबला दोनो विद्याएँ सिखाई ।

४. आयुध सर्व समर्पि कै—सीता स्वयवर से—

षट्पद—विधि सुरेश पवि शअनि अनल यम प्रबल प्रचडन ।
पवन गवन घन कमल व्याल सरिता सर खंडन ।।
अरि दल खल बल दलन मलन तम तेज दिवाकर ।
चद मदगति करन हरन दानव मद सगर ।।

अर्थ—प्रभु को सब अस्त्र-शस्त्र देकर अपने स्थान पर ले आये और उन्हे भक्तो का हितकारी समझ कद-मूल-फल भोजन के निमित्त दिये।

प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय यज्ञ करहु तुम जाई।
होम करन लागे मुनि झारी। आप रहे मख की रखवारी ॥

अर्थ—सबेरा होते ही श्री रामचन्द्रजी ने विश्वामित्रजी से कहा कि आप निश्शङ्क यज्ञ करे। सब मुनिगणो ने यज्ञ का आरम्भ किया और आप स्वत यज्ञ की रक्षा करने लगे।

सुनि मारीच निशाचर कोही। लेई सहाय धावा मुनिद्रोही ॥
बिन फर बान राम तेहि मारा। शत योजन गा सागर पारा[१] ॥

अर्थ—(यज्ञ) सुनकर मुनियो का बैरी क्रोधी मारीच राक्षस अपनी सेना लेकर चढ आया। श्री रामचन्द्रजी ने बिना गाँसी का बाण मारा तो वह चार सौ कोस की दूरी पर समुद्र के किनारे जा गिरा।

पावक सर सुबाहु पुनि मारा। अनुज निसाचर कटक सहारा[२] ॥
मारि असुर द्विज निर्भयकारी। अस्तुति करहि देव मुनि झारी[३] ॥

कवि 'बदि' अनदित कर नये अति भासित द्युति दर्शिये।
सुखधाम ! राम ये अमर शर समर करन कर पर्शिये ॥

१. बिन फर बान राम तेहि मारा। शत योजन गा सागर पारा—
यहा यह शका हो सकती है कि रामचन्द्रजी ने ताडका और सुबाहु को तो मार डाला था परन्तु मारीच को क्यो जीता छोड दिया ? इसका समाधान रामरत्नाकार रामायण की नीचे लिखी हुई कविता से स्पष्ट होगा—

धीर धुरीण राम बलवाना। जलधर सम बरसाये बाना ॥
देख देव गण करत बिचारा। खल मारीच जाय नहिं मारा ॥
बिन मारीच न सीता हरणा। तेहिबिन कहाँ दशानन मरणा ॥
राम देव मन की गति जानि। बज्र बाण लीन्हो तब तानी ॥
छाँडो अति प्रचड शर ज्यो ही। लगो जाय मारीचहि त्यो ही ॥
दोहा—लगत बज्र शर के हृदय, भ्रमन लगो मारीच।
फिरत नटाई सम उडो, घूमि घूमि बण बीच ॥
जिमि विहग बिन पख बिहाला। गिरनी खाय चलो तेहि काला ॥
गिरत उठत मारीच सशका। दिवस सात महँ पहुँचो लका ॥
तज ससार वासना सारी। भयो मुनी सन्यासहि धारी ॥
बलकल बसन जटा शिर धारे। जागत सोवत राम निहारे ॥
देख एक बट वृक्ष विशाला। तेहि तर बैठ तपत सब काला ॥
बैर भाव उर ते सब भागा। केवल राम ध्यान मन लागा ॥
मुख ते जपत सदा हरि नामा। राम नाम तज अपर न कामा ॥

२ अनुज निशाचर कटक सहारा—राम स्वयवर से—
सवैया—धाये तुरन्त तमीचर औरहु ताकि तिन्है लषणौ ललकार्यो।
झार्यो शरासन तै शर वृदन बारहिंबार प्रवीर प्रचार्यो ॥
श्री रघुराज बडो रण बाँकुरो भाँति भली रिपु सैन सँहार्यो।
फागुसो खेलि लियो क्षण में हँसि होलिका सो खल को दल जार्यो ॥

३. अस्तुति करहि देव मुनि झारी —राम स्वयवर से—

अर्थ—फिर अग्निबाण से सुबाहु को मार डाला और लक्ष्मणजी ने राक्षसो की सेना का नाश किया। राक्षसो को मारकर ब्राह्मणो को निर्भय करने वाले प्रभु की स्तुति सब देव और मुनिगण करने लगे।

तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्ह बिप्रन पर दाया।।
भक्ति हेतु बहु कथा पुराना। कहहि बिप्र यद्यपि प्रभु जाना।।

अर्थ—फिर श्री रामचन्द्रजी वहाँ पर कुछ दिन तक ठहरे रहे और ऐसा करने से ब्राह्मणो पर कृपा दर्शाई। यद्यपि श्री रामचन्द्रजी सब जानते थे तो भी भक्ति जताने के हेतु ब्राह्मणो द्वारा पुराणो की बहुतेरी कथाये सुना करते थे।

तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिय जाई।।
धनुषयज्ञ सुनि रघुकुल नाथा। हर्षि चले मुनिवर के साथा[1] ।।

अर्थ—तब मुनिजी ने आदर सहित कहा कि हे रामचन्द्रजी (जनकपुर मे) एक चरित्र चलकर देखिये। रघुकुल मे श्रेष्ठ रामचन्द्रजी धनुष यज्ञ का हाल सुनकर श्रेष्ठ मुनिजी के साथ प्रसन्नतापूर्वक चले।

आश्रम एक दीख मग माही। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं।।
पूछा मुनिहि शिला प्रभु देखी[2] । सकल कथा मुनि कही बिसेखी।।

अर्थ—रास्ते मे एक ऐसा स्थान देखा जहाँ पशु-पक्षी आदि कोई भी जीव-जतु नही थे। जब श्री रामचन्द्रजी ने (स्त्री के आकार की) **एक शिला देखी** तब उन्होने विश्वामित्रजी से पूछा, जिन ने सब कथा विस्तारपूर्वक कह सुनाई।

दोहा—गौतमनारी श्रापवश,[3] उपल देह धरि धीर।
चरणकमल रज चाहती, कृपा करहु रघुवीर।।२१०।।

क०—अस्तुति करत मुनि वृ द ठाढे चारो ओर विश्वामित्र चूमै मुख लेत है बलैया को।
झारिकै तमीचर सँहारि कै पसारि यश दुख सो उबार्यो मोहि लीन्हे सग भैया को।।
मनै रघुराज वेद विप्र को पलैया पायो सग को डोलैया रघुकुल के जुन्हैया को।
बोले मुनि भैया सत्य वचन कहैया किधौ याकी धन्य मैया किधौ मेरी धन्य मैया को।।

१. धनुषयज्ञ सुनि रघुकुल नाथा। हर्षि चले मुनिवर के साथा—रामरत्नाकर रामायण से—
गाधि सुवन कह सुन रघुवीरा। मिथिलापुरी चलिय बलवीरा।।
दोहा—जहाँ जनक प्रण कीन्ह जो, शिव धनु तोरे आय।
'ताहि सुता निज जानकी, ब्याहि देहुँ सुख पाय'।।
तहाँ अनेक भूप वर आये। निज निज बल पौरुष अजमाये।।
सके न टारि शभु धनु भारी। निज निज देश गये सब हारी।।
राम लखन धनुशर गह हाथा। चले जनकपुर मुनि गण साथा।।

२. पूछा मुनिहि शिला प्रभु देखी—
सवैया—वेद पडे न कहूँ द्विज वृ द बनी यह कैसी बढावत भै सी।
सूखे रसाल तमालन के तरु जानि परै कछु बात अनैसी।।
कूजै नही खग गूँजै न भौर लखी 'ललिते' नहि आजु लौ ऐसी।
कीजै कृपा कहिये मुनिनाथ जू मारग माहि शिला यह कैसी।।

३. गौतम नारी श्रापवश—महाभारत में कथा है कि इन्द्र ने गौतम की पत्नी अहल्या का सत्सग किया था, इससे गौतमजी ने इन्द्र को श्राप दिया था कि तुम्हारे अग मे सहस्र भग →

अर्थ—गौतम ऋषि की स्त्री (अहल्या उन्ही के) श्राप से पाषाण की देह धारण कर धीरज धरे हुए आपके कमलस्वरूप चरणो की धूल चाहती है, सो हे रघुवीर ! (उस पर) कृपा कीजिये ।

छन्द—परसत पदपावन शोकनशावन प्रगट भई तप पुजसही ।
देखत रघुनायक जनसुखदायक सनमुख होइ कर जोरिरही ।।
अति प्रेम अधीरा पुलक शरीरा मुख नहि आवै वचन कही ।
अतिशय बडभागी चरनन्हि लागी युगल नयन जलधार बही[१] ।।

अर्थ—उन पवित्र चरणो को जो दु खहर्त्ता है, छूते ही वह ज्यो की त्यो बडी तपस्विनी रूप से प्रगट हुई । भक्तो के सुख देने वाले रघुनाथजी को देखते ही हाथ जोडकर उनके सामने खडी हो गई । अत्यन्त प्रेम से ऐसी विह्वल हो गई कि शरीर के रोम खडे हो उठे और मुँह से कुछ कहते न बना । (निदान अपने को) बडी भाग्यवती समझ उनके चरणो पर गिरी और उसके दोनो नेत्रो से आँसू बहने लगे ।

छन्द—धीरज मन कीन्हा प्रभु कहँ चीन्हा रघुपतिकृपा भक्ति पाई ।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ज्ञानगम्य जय रघुराई ।।
मैं नारि अपावन प्रभु जगपावन रावनरिपु जनसुखदाई ।
राजीवविलोचन भवभयमोचन पाहि पाहि शरणहि आई ।।

अर्थ—फिर धीरज धरकर भगवान् को पहिचाना और उनकी कृपा से भक्ति प्राप्त हुई । तो बहुत ही शुद्ध वाणी से स्तुति करने लगी कि हे ज्ञान से जानने योग्य प्रभु ! आपकी जय हो । मैं तो अपवित्र स्त्री आप, ससार के पवित्र करने वाले और रावण के शत्रु तथा भक्तो को सुख देने वाले हो । हे कमल नयन, ससार के भय को छुडाने वाले प्रभु ! मैं आपकी शरण मे आई हूँ, मेरी रक्षा कीजिये ! रक्षा कीजिये !

छन्द—मुनि शाप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना ।
देखेउँ भरी लोचन हरि भवमोचन इहै लाभ शंकर जाना ।।
बिनती प्रभु मोरी मै मति भोरि नाथ न वर माँगौ आना ।।
पदकमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना[२] ।।

हो परन्तु पीछे से दया कर इन्हे सहस्र नेत्र चिह्न कर दिये, तभी से इन्द्र का नाम सहस्राक्ष हुआ और अहल्या को श्राप दे शिला बनाया था, उसका उद्धार श्री रामचन्द्रजी की चरण-रज के स्पर्श से हुआ ।

गौतम—ये सप्तऋषियो मे से एक है । इनकी स्त्री ब्रह्माजी की मानसकन्या अहल्या थी । ये नक्षत्र रूप से भ्रमण करते हुए माघ के महीने मे सूर्य के समीप रहते है, ऐसा जान पडता है । इनके पुत्र सतानन्दजी जनक के पुरोहित थे ।

१ अतिशय बडभागी चरनन्हि लागी युगल नयन जल धार बही—रामचन्द्र भूषण से—
कवित्त—सुन्दरी कै मिथिला को गये, भरी कीरति सातऊ दीप अतूलै ।
देवन में बजी दुन्दुभी राम रचेवरषा 'लछिराम' सफूलै ।।
मौल भयावली ध्यान धरे हिय, यौ मन प्रेम हिंडोर पै झूलै ।
आहवै पावन अग तरग सो, गौतमी को पद कज न भूलै ।।

२. पदकमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना—'प्रेम पीयूष-धारा' से 'मधु →

अर्थ—मुनिजी ने जो मुझे श्राप दिया सो बहुत अच्छा किया। मैने उसे बडा उपकार ही समझा है क्योकि मैने अपने नेत्रो भर ससार के (आवागमन से) छुडाने वाले परमेश्वर के दर्शन पाये। इसी दर्शन के लाभ को शकरजी भली भाँति जानते है। हे परमेश्वर ! मै साधारण बुद्धि वाली कोई दूसरा वरदान न मागकर केवल यही विनती करती हू कि आपके कमल-स्वरूप चरणो के परागरस मे मेरा मन भौरे की नाई प्रेम करे (अर्थात् मुझे आपके चरणो की भक्ति प्राप्त हो)।

छन्द—जेहि पद सुरसरिता परमपुनीता प्रगट भई शिव शीस धरी।
सोई पदपंकज जेहि पूजत अज मम शिर धरेउ कृपाल हरी॥
इहि भाँति सिधारी गौतमनारी बार बार हरिचरण परी।
जो अति मन भावा सो वर पावा गइ पतिलोक अनद भरी[1]॥

अर्थ—जिन चरणो से परम पवित्र गगाजी निकली, जिन्हे शिवजी ने अपने मस्तक पर धारण कर लिया और जिन कमलस्वरूपी चरणो को ब्रह्माजी पूजते है उन्ही चरणो को हे दयालु रामचन्द्रजी ! आपने मेरे सिर पर रक्खा। इस प्रकार गौतम की स्त्री (अहल्या) बारबार भगवान् के चरणो की वदना करके चली और बहुत ही मनमाना वरदान पाकर आनन्द मे मग्न होती हुई पतिलोक को गई।

दोहा—अस प्रभु दीनबन्धु हरि, कारण रहित दयाल।
तुलसिदास शठ ताहि भजु, छाड़ि कपट जजाल॥ २११॥

अर्थ—तुलसीदास कहते है कि रे मूर्ख मन ! ऐसे दीन हितकारी अवधबिहारी प्रभुजी को जो बिना स्वार्थ के दया करने वाले है, सब छल छिद्र छोड कर भज।

चले राम लछिमन मुनि सगा। गये जहाँ जगपावनि गगा[2]॥

मातग—हे प्रभु अब तो लेहु अपनाई।
मै सेवक तुम स्वामि शिरोमणि तजहु तो कहाँ बसाई॥
मोहि न चहै सम्पदा जग की, नहि चह नाम बडाई।
सुगतिहुँ नाहि कृपानिधि चाहौ सुमतिहुँ नाहि सुहाई॥
'मोहनि दास' यही बर माँगत, सुनहु बिनय चित लाई।
तव पदकमल मोर मन मधुकर, निशिदिन रहै लुभाई॥

१. गइ पतिलोक अनद भरी—गीतावली रामायण से—
राग सूहो—भूरि भाग भाजन भई।
रूप राशि अवलोकि बधु दोउ प्रेम सुरग रई॥
कहा कहै केहि भाँति सराहै नहि करतूति नई।
बिन कारण करुणाकर रघुवर केहि केहि गति न दई॥
करि वह विनय राखि उर मूरति मगल मोद मई।
तुलसी हुइ विशोक पतिलोकहि प्रभुगुण गनत गई॥

२. गये जहाँ जगपावनि गगा—
राग काफी—धन धन धन मात गग चाहत मुनि जन प्रसग,
प्रगटी रघुनाथ चरन करन सुख बिहारी॥
दीन्ही विधि बूँद डार अरिअनग शीस धार,
आई मृत मध्य लोक, सन्तन को प्यारी॥ →

गाधिसुवन सब कथा सुनाई । जेहि प्रकार सुरसरि महि आई ॥

अर्थ—मुनिजी के साथ श्री रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी आगे बढे तथा वहाँ जा पहुँचे जहाँ ससार को पवित्र करने वाली गगाजी थी । विश्वामित्रजी ने गगा जी के पृथ्वी पर आने का सम्पूर्ण हाल कह सुनाया ।

तब प्रभु ऋषिन्ह समेत नहाये । विविध दान महिदेवन पाये ॥
हरषि चले मुनिवृन्द सहाया । वेगि विदेह नगर[1] नियराया ॥

अर्थ—तब श्री रामचन्द्रजी ने ऋषियो के साथ स्नान किया और कई प्रकार का दान ब्राह्मणो को दिया । फिर प्रसन्न होकर मुनिगणो के साथ जो चले तो जनकपुर के समीप जा पहुँचे ।

पुर रम्यता राम जब देखी । हरषे अनुज समेत बिसेखी ॥
वापी कूप सरित सर नाना । सलिल सुधा सम मणि सोपाना ॥

अर्थ—जब श्री रामचन्द्रजी ने जनकपुर की शोभा देखी तो वे लक्ष्मण सहित विशेष आनन्द को प्राप्त हुए । वहाँ अनेक बावली, कुएँ, नदी और तालाब (देखे) जिनमे जल अमृत के समान था और सीढियाँ मणिजटित थी ।

गुजत मजु मत्त रस भृगा । कूजत कल बहु बरन बिहगा ॥
बरन बरन बिकसे बनजाता । त्रिविध समीर सदा सुखदाता ॥

अर्थ—पुष्परस पीकर मस्त हुए भौरे मधुर-मधुर गुजार रहे थे और नाना रग के पक्षी मीठी बोलियाँ बोल रहे थे । रग-बिरगे कमल फूल रहे थे और तीनो प्रकार की वायु (शीतल, मद, सुगध) सदैव सुख उपजाती थी ।

दोहा—सुमन बाटिका[2] बाग बन, विपुल विहंग निवास ।
फूलत फलत सुपल्लवित, सोहत पुर चहुँपास ॥ २१२ ॥

पर्वत द्रुम लता तोर, स्वर्ग औ पताल फोर,
भागीरथ करन धार, सगरतनय तारी ॥
अमित वारि अति उतग, चाहत अति रूप रग,
दरश परश मज्जन कर, पाप पुज हारी ॥
माता मै याचौ तोहि, रामभक्ति देहु मोहि,
शरण गही तुलसिदास, दीन हो पुकारी ॥

इसके आगे का क्षेपक, जिसमे गगाजी की कथा है, पुरौनी मे है ।

१. विदेह नगर—एक स्थान का नाम है जो मगध देश के ईशान कोन मे है । उसकी राजधानी मिथिला है जिसे जनकपुर भी कहते है और यह मधुवती के उत्तर की ओर नेपाल मे नपाल मे है । प्राचीन ममय मे विदेह के अन्तर्गत ये सब स्थान थे जैसे नैपाल का कुछ भाग सीतामढी, सीताकुड अथवा पुराने तिरहुत जिले का उत्तरीय भाग और चम्पारन के बायव्य कोन का प्रवेश ।

२. सुमन बाटिका···· ·······

क०—अजब्र कियारी गुल सौसन गुलाब वारी चम्पे बेलि बेला फूल आनँद प्रवेश की ।
कहै कवि 'ललित' सुपेचन गुलपेचन के गुल फिरग गेदे गुलदाउरी सुवेश की ॥
ज्योही जुही जाही जो चाँदनी चमेली चारु क्योडाकुन्द केरावर प्यारी सब देश की ।
धनि जो निहारी उजियारी जोति धारी सब जग ते है न्यारी फुलवारी मिथलेश की ॥

अर्थ—फुलवारी, बाग और वन बहुतेरे पक्षियो के बसेरा करने के स्थान थे और वे (क्रमानुसार) फूल, फल तथा पत्तो से नगर के चारो ओर शोभा दे रहे थे अर्थात् फुलवारी फूलो से, बाग फलो से और बन नये हरे पत्तो से सुशोभित थे)।

बनै न बरनत नगर निकाई[1]। जहाँ जाइ मन तहइँ लुभाई ॥
चारु बजार विचित्र अँवारी[2]। मणि मयविधि जनु स्वकर सँवारी ॥

अर्थ—(सब ही स्थान आदि सुन्दर है) मन जिसे देखता है वही अटक जाता है तो फिर सम्पूर्ण नगर की शोभा कौन देखे और कौन वर्णन कर सके ? सुन्दर बाजार की अनोखी दूकानो की पक्तियाँ रत्नजटित ऐसी बनी थी कि मानो ब्रह्मा ने अपने ही हाथ से सजाई हो।

धनिक बनिक बर धनद समाना[3]। बैठे सकल वस्तु लेइ नाना ॥
चौहट सुन्दर गली सुहाई। संतत रहहि सुगंध सिचाई ॥

अर्थ—कुबेर के समान बडे-बडे धनवान सेठ नाना प्रकार की सब वस्तुएँ लिए हुए बैठे थे। सुन्दर चौराहो की शोभायमान गलियाँ सुगधित जल से सदैव सीची जाती थी।

मंगलमय मन्दिर सब केरे। चित्रित जनु रतिनाथ चितेरे ॥
पुर नर नारि सुभग शुचि संता। धर्मशील ज्ञानी गुणवंता ॥

अर्थ—सब के घर मगलीक द्रव्यो से सुशोभित थे तथा उनमे सुन्दर चित्र बने हुए थे मानो कामदेव ही चित्र बनाने वाला हो। नगर के निवासी स्त्री-पुरुष रूपवान्, पवित्र और सज्जन, धर्मात्मा, ज्ञानवान् और गुणवान् थे।

अति अनूप जहँ जनक[4] निवासू। बिथकहि बिबुध बिलोकि बिलासू ॥

---

१. बनै न बरनत नगर निकाई—

दोहा—जगत जनक बरनौ कहा, जनक देश को ठाट।
सहल महल हीरनि बने, हाट बाट कर हाट ॥

२ चारु बजार विचित्र अँवारी—जयपुर विहार से—

भुजग प्रयात सही सूत ते ना दुकाने बढी है। मनो काम शिल्पी बना के गढी है ॥
अजब चौहटे चारु बाजार सोहै। गली औ गली चापडे चित्त मोहै ॥
अटाह्वाँ घटा की छटासी विमोहे। वियद्गग की धार-सी शुभ्र सोहै ॥
जिन्हो मे बनी पुत्तली पचरगी। मनो नृत्य करती जु लै लै सरगी ॥

३ धनिक बनिक बर धनद समाना। बैठे सकल वस्तु लेइ नाना ॥

'जयपुर विहार से' उद्धृत—(भुजग प्रयात)

धरे सामने है जवाहिर घनेरे। कई जाति के भाँति के वे सुहेरे ॥
भरी हीर मोतीन की ह्वाँ दुकाने। कई भाँति के रग है सान साने ॥
महानील बज्रादि ते जे जडाऊ। किरीटागदाद्यँ रलकार राऊ ॥
अलकार सोनेन के ह्वा जु चाहै। जडाऊ गडाऊ जवै जो बिसाहै ॥
जिन्हे पैन्हिके अँगना अग सोहै। तिन्हे देव की अँगना देखि मोहै ॥
सराफो कि दुक्कान मे द्रव्य राजै। रुपैया अशर्फीन के ढेर गाजै ॥
गढे है सुनारे सुभूषा घनेरे। कई भाँति के धातु के हैं सुनेरे ॥
बजाजे जहाँ जा बजा ह्वा सुराजै। जरी बाफता तासमुक्केस साजै ॥
रूमी मखमले कीमखाप सुसोहै। बुनी कश्मिरी सौर सारी विमोहै ॥
ठठेरानि की है दुकाने विशेषे। सबै धातु के पात्र सोहैं अशेषे ॥

४. जनक—विदेह बशी प्रत्येक राजा का साधारण नाम जनक होता है, इसका कारण यह →

होत चकित चित कोट बिलोकी । सकल भुवन शोभा जनु रोकी ।।

अर्थ—वहाँ पर जनकजी का राजमहल बहुत ही उपमा रहित था । जिसका भोग-विलास देखकर देवता भी मोहित हो जाते थे । परकोटे को देखकर चित्त चकित हो जाता था जो मानो सपूर्ण लोको की शोभा को रोक बैठा था ।

दोहा—धवलधाम मणिपुरटपट, सुघटित नाना भाँति[१] ।।
सिय[२] निवास सुन्दर सदन, शोभा किमि कहि जात ।। २१३ ।।

अर्थ—स्वच्छ महल और मणियो से जडे हुए किवाड भाति-भाति से सुडौल बनाये गये थे । जिसमे सीताजी के रहने के सुन्दर महलो की शोभा कैसे कही जा सकती है ।

सुभग द्वार सब कुलिश कपाटा । भूप भीर नट मागध भाटा ।।
बनी विशाल बाजि गजशाला । हय गय रथ सकुल सब काला ।।

है कि इनके आदि पुरुष केवल पिता ही की देह से उत्पन्न हुए थे (स्त्री ससर्ग से नही) । इसकी कथा यो है कि वैवस्वत मनु का जेठा लडका इक्ष्वाकु था । इक्ष्वाकु के सौ पुत्रो मे से दूसरा लडका 'निमि' नाम का राजा हुआ । वशिष्ठ के श्राप से इनकी देह पात हुई । तब ब्राह्मणो ने उस देह का मथन किया । उसमे से एक पुरुष उत्पन्न हुआ, उसका नाम मिथि जनक रक्खा । तदनतर प्रत्येक का जनक नाम होता आया है । मथन करने से उत्पन्न होने के कारण मिथिलापति भी कहते है ।

१. धवलधाम मणिपुरटपट सुघटित नाना भाँति "आदि, आल्हखड से—

रतन जटित सोने के खभा छौनी मोर पख की लाग ।।
हस हिलोरै जहँ सरवर मे अरु छज्जन पर नाचै मोर ।
कटी खिरकियाँ मलियागिर की जहँ झुकवन मे आवै बयार ।।
सोने कँगूरा द्वारन झलकै औ मोतिन की बन्दनवार ।
कहँ लग बरनौ मै महलन को जिनकी शोभा न बरनी जाय ।।

२ सिय—वृषध्वज जनक के पुत्र रथध्वज के दो पुत्र थे—एक धर्मध्वज, दूसरा कुशध्वज था । कुशध्वज को लक्ष्मी के अश से उत्पन्न मालावती नामक स्त्री से एक कन्या उत्पन्न हुई, उसने जन्म लेते ही अपने मुख से वेदध्वनि निकाली थी, इस हेतु इसका नाम वेदवती पडा । कुशध्वज ने यह ठान लिया था कि इसका विवाह विष्णु से करूगा, इस हेतु जो कोई राजा इसे ब्याह मे मागता था उसे यह कह देता था कि नही । एक बार शभ नामक राक्षस ने इस से ब्याह करना चाहा । कुशध्वज ने नाही कर दी । इस हेतु यह कुशध्वज का बध कर भाग गया । कुशध्वज की स्त्री भी अपने पति के साथ सती हो गई । वेदवती बिचारी निराधार हो पुष्कर तीर्थ मे जाकर तपस्या करने लगी । बहुत दिनो के पश्चात् आकाश-वाणी हुई कि तुझे दूसरे जन्म मे विष्णु पति मिलेगे । इस पर से इसे सतोष हुआ और यह गंधमादन पर्वत पर आ बसी । एक समय रावण विचरते-विचरते वहा पहुचा । वेदवती ने उसका उचित अतिथिसत्कार किया, तब रावण के पूछने पर इसने अपना सब वृत्तात कह सुनाया । रावण बोला कि तुम मेरे साथ ब्याह कर लो । इसने यह बात स्वीकार न की । तब रावण इसे जबरई से खीचने लगा । इसने उसे वही मत्र बल से स्तब्ध कर रक्खा और श्राप दिया कि तू कालान्तर मे मेरे ही हरण के कारण कुटुब सहित नाश को प्राप्त होगा । तत्पश्चात् रावण लका को लौट गया और वेदवती ने अपना शरीर योगाग्नि से भस्म कर दिया । यही दूसरे जन्म में सीता होकर जन्मी और राम की स्त्री हुई । इन्ही के हरण करने से रावण का सकुल सत्यानाश हो गया ।

अर्थ—दर्शनीय राजद्वारो के सब किवाड वज्र के समान मजबूत थे, द्वार पर राजाओ, नटो, वदीगणो और भाटो की भीड लगी रहती थी। जो बडी-बडी घुडसारे और हथसारे बनी थी वे सदैव घोडो, हाथियो और रथो से भरी रहती थी।

सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृप गृह सरिस सदन सब केरे ॥
पुर बाहिर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा ॥

अर्थ—अनेक योधा मत्री और सेनापतियो के महल भी राजमहलो की नाईं बने थे। नगर के बाहर तालाब और नदी के किनारे जहा-तहा बहुत से राजा डेरा डाले पडे थे।

देखि अनूप एक अँबराई। सब सुपास सब भाँति सुहाई ॥
कौशिक कहेउ मोर मन माना। इहाँ रहिय रघुवीर सुजाना ॥

अर्थ—विश्वामित्रजी एक उपमारहित आमो का बगीचा सब प्रकार से सुहावना और सुभीते का देखकर कहने लगे कि यह स्थान मेरे मन मे भर गया है। हे चतुर रामचन्द्रजी ! यही ठहर जाइये।

भलेहि नाथ कहि कृपानिकेता। उतरे तहँ मुनिवृन्द समेता ॥
विश्वामित्र महामुनि आये। समाचार मिथिलापति[1] पाये ॥

अर्थ—कृपानिधान श्री राम बोले कि हे गुरु महाराज ! ठीक है और मुनिगण समेत वहाँ पर ठहर गये। मिथिलेशजी को यह समाचार मिला कि मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी पधारे है।

दोहा—संग सचिव शुचि भूरि भट, भूसुर वर गुरु ज्ञाति।
चले मिलन मुनि नाय कहि, मुदित राउ इहि भाँति ॥ २१४ ॥

अर्थ—राजा जनक प्रसन्न होकर श्रेष्ठ मुनि विश्वामित्रजी से इस प्रकार मिलने को चले कि उन्होने उत्तम मत्री, बडे योद्धा, श्रेष्ठ ब्राह्मण और गुरुजनो को अपने साथ मे ले लिया।

---

१. मिथिलापति—ह्रस्वरोमा नामक जनक राजा के दो पुत्र थे। उन मे बडे का नाम सीरध्वज और छोटे का कुशध्वज था। एक बार किसी किसान को हल चलाते समय पृथ्वी मे से एक सदूक मिली। उसने उसे सीरध्वज राजा को दे दिया। सदूक खोलते ही उसमे से एक सुन्दर कन्या निकली। जमीन जोतते समय पृथ्वी मे जो कूड पडता है उसे सस्कृत मे सीता कहते हैं इसी हेतु कूड व सीता मे से निकली हुई पुत्री को सीता कहने लगे। जनक ने इसे अपनी पुत्री के समान पाला। सीरध्वज की एक स्त्री का नाम सुमेधा था जिस से एक कन्या हुई थी, उसका नाम उर्मिला था। जनक के धनुष तोड़ने वाले प्रण को सब जानते हैं। जनक ने सब राजाओ को धनुष यज्ञ मे आने के लिए पत्र भेजे थे। उस समय दशरथजी को भी पत्र भेजा गया था, परन्तु विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को लिवा ले गये थे। इस हेतु दशरथजी यज्ञ मे न आये थे, परन्तु विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण धनुष यज्ञ मे पहुँच ही गये थे। धनुष तोड़ने का वृत्तान्त रामायण मे विस्तार से है। विवाह के समय जनकपुर मे कुशध्वज भी अपने कुटुब सहित उपस्थित थे। इन्होने अपने बड़े भाई सीरध्वज से सलाह की और उनके साथ जाकर बरात मे दशरथजी से भेंट करके उर्मिला, माडवी और श्रुतिकीर्ति के विवाह का वाग्निश्चय कर लिया था। तत्पश्चात् एक ही मुहूर्त मे चारो का विवाह हुआ और बारात के विदा होने पर दम्पति आनन्द से अवध मे रहे (देखो वाल्मीकीय रामायण, सर्ग ५१ से ६६ तक, बालकाड)।

कीन्ह प्रणाम चरण धरि माथा । दीन्हि असीस मुदित मुनिनाथा ।।
विप्रवृन्द सब सादर वदे । जानि भाग्य बड़ राउ अनंदे ।।

अर्थ—जनकजी ने विश्वामित्रजी के चरणो पर मस्तक रखकर प्रणाम किया तव मुनिवरजी ने प्रसन्न चित्त से आशीर्वाद दिया। फिर राजा ने सब ब्राह्मणो को आदर सहित प्रणाम किया और अपने भाग्य को बडा समझ आनदित हुए।

कुशल प्रश्न कहि बारहिबारा । विश्वामित्र नृपहि बैठारा ।।
तेहि अवसर आये दोउ भाई । गये रहे देखन फुलवाई ।।

अर्थ—विश्वामित्रजी ने राजा को अनेक बार कुशलप्रश्न कर बिठलाया। उसी समय दोनो भाई (राम-लक्ष्मण) जो फुलवारी देखने गये थे, आ पहुँचे।

श्याम गौर मृदु वयस किशोरा[१] । लोचन सुखद विश्वचितचोरा ।।
उठे सकल जब रघुपति आये[२] । विश्वामित्र निकट बैठाये ।।

अर्थ—श्यामले और गोरे मृदु अङ्ग वाले, किशोर अवस्था के नेत्रो को सुख देने वाले और ससार के चित्त को चुराने वाले थे। ज्योही रघुनाथजी आये त्योही सब लोग उठ खडे हुए और विश्वामित्रजी ने उन्हे अपने पास बिठला लिया।

भे सब सुखी देखि दोउ भ्राता । बारि बिलोचन पुलकित गाता ।।
मूरति मधुर मनोहर देखी । भयउ बिदेह बिदेह बिसेखी ।।

अर्थ—सब लोग दोनो भाइयो को देख ऐसे प्रसन्न हुए कि उनके रोम खडे हो आये और नेत्रो मे (प्रेम के) आँसू भर आये। सुन्दर मन भावनी (रामजी की) मूर्ति देखकर विदेहजी यथार्थ मे देह की सुध भूल गये।

दोहा—प्रेममगन मन जानि नृप, करि बिवेक धरि धीर ।
बोलेउ मुनिपद नाय शिर, गद्गद गिरा गँभीर[३] ।।२१५।।

---

१. लोचन सुखद विश्वचित चोरा—काव्य निर्णय से—
कवित्त—कुबलय जीतिबे को बीर बरिबड राजै करन पै जाइबे को जाचक निहारे है।
सितासित अरुणारे पानिप के राखिबे को तीरथ के पति है अलेख लखि हारे हैं।।
बेधिवे को सर मार डारिबे को महाविष मीन कहिबे को दास मानस विहारे है।
देखत ही सबरन हीरा हरिबे को पश्यतोहर मनोहर ये लोचन तिहारे है ।।

२ उठे सकल जब रघुपति आये—'कुमार सभव' के ५वे सर्ग मे लिखा है—'न धर्म वृद्धेष वय समीक्ष्यते' अर्थात् जो धर्म-कर्म मे श्रेष्ठ है उस की अवस्था पर विचार नही किया जाता। भाव यह कि यदि छोटी अवस्था वाला भी धर्मशील हो तो उसे बडी अवस्था वाले भी आदर देते है। इसी कारण श्री रामचन्द्रजी को देख कर सब लोग खडे हो गये और 'रघुवश' के तीसरे सर्ग के ६२वे श्लोक मे यो लिखा है—'पद हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते' अर्थात् सभी स्थानो मे सद्गुणो का आदर होता ही है।

३. बोलेउ मुनिपद नाइ शिर, गद्गद गिरा गँभीर—गीतावली रामायण से—
राग टोडी—ये कौन कहाँ ते आये।

नील पीत पाथोज वरण मनहरण सुभाय सुहाये ।।
मुनि सुत किधौं भूप बालक किधौ ब्रह्म जीव जग जाये।
रूप जलधि के रतन सुछवि तिय लोचन ललित ललाये ।।
किधौं रवि सुवन मदन ऋतुपति किधौं हरिहर वेष बनाये।

अर्थ—राजा ने अपने मन को प्रेम से परिपूर्ण देख ज्ञान बल से धीरज धारण किया फिर वे विश्वामित्रजी के चरणो मे सीस नवाकर गद्गद कठ हो गम्भीर स्वर से बोले।

कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक। मुनि कुल तिलक कि नृप कुल पालक।।
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा।।

अर्थ—हे प्रभु! कहिये, ये दोनो सुन्दर बालक मुनि वश के भूषण हैं, अथवा राजवश के रक्षक है अथवा ये ब्रह्मस्वरूप हैं जिसे वेद 'नेति-नेति' कर कहते है जो दो रूप धारण कर आये है?

सहज बिराग रूप मन मोरा। थकित होत जिमि चन्द चकोरा[1]।।
ताते प्रभु पूछउँ सति भाऊ। कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ।।

अर्थ—स्वभाव ही से वैराग्य मे लगा हुआ मेरा मन इन्हे देखकर इस प्रकार शिथिल हो जाता है जैसे चकोर चन्द्रमा को देखकर हो जाता है। इस हेतु मैं सच्चे भाव से पूछता हूँ, हे महाराज! छिपाइये नही, बतला दीजिये।

इनहिं बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सखहिं मन त्यागा[2]।।
कह मुनि बिहँसि कहेउ नृपनीका। बचन तुम्हार न होइ अलीका।।

अर्थ—इनको देखते ही बडे प्रेम के कारण मेरा मन जबरई से ब्रह्म के सुख को छोडे देता है। मुनिजी हँसकर कहने लगे कि हे राजन! आपने ठीक कहा। आपका कथन झूठ नही हो सकता।

ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी। मन मुसुकाहिं राम सुनि बानी।।
रघुकुल मणि दशरथ के जाये। ममहित लागि नरेश पठाये[3]।।

किधौ आपने सुकृत सुर तरु के सुफल रावरेहि पाये।।
भये विदेह विदेह नेहवश देह दशा बिसराये।
पुलक गात न समात हरख हिय सलिल सुलोचन छाये।।
जनक बचन मृदु मजु मधु भरे भगति कौशिकहि भाये।
तुलसी अति आनँद उमगि उर राम लषन गुण गाये।।

१. सहज विराग रूप मन मोरा। थकित होत जिमि चन्द चकोरा—कुडलिया रामायण से—

कुडलिया—सदा ज्ञान वैराग्य सो रत्यो रहत मन मोर।
ब्रह्म सच्चिदानन्द घन चितवत चन्द्र चकोर।।
चितवत चन्द्र चकोर रूप हरि सुथल थिरानो।
निरखत बालक नैन तौन सुख जात न जानो।।
जात न जानो ब्रह्म सुख छक्यो प्रेम अनुराग सो।
सो मन इनके वश रह्यो लह्यो ज्ञान विराग सो।।

२. इनहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा—राम स्वयवर से—

सवैया—हैं धौ उभै मुनि के कुल पालक की धौं महीपति बालक दोई।
देखत रूप अनूप सुनो मुनि मेरी दशा हठि कै अस होई।।
भूलो विराग विज्ञान सरूप इन्हैं लखि और दिखात न कोई।
ब्रह्म को आनँद बाद भयो उपज्यो उर आनँद जो इन जोई।।

३. रघुकुल मणि दशरथ के जाये। मम हित लागि नरेश पठाये— →

अर्थ—ससार मे जितने प्राणी है उन सबको ये प्यारे है ऐसे वचनो को सुन-सुनकर रामचन्द्रजी मन मे मुसकराते थे। रघुकुल मे श्रेष्ठ दशरथजी के ये पुत्र है। राजा ने हमारे उपकार के निमित्त इन्हे भेजा है।

दोहा—राम लषन दोउ बंधु वर, रूप शील बल धाम[१]।
मख राखेउ सब साखि जग, जिते असुर सग्राम ।।२१६।।

अर्थ—रूपवत, शीलवत और बलवत दोनो मनोहर भाई श्री रामचन्द्र और लक्ष्मण ने लडाई मे राक्षसो को हराकर यज्ञ की रक्षा की, इस बात को सब ससार जानता है।

मुनि तव चरण देखि कह राऊ। कहि न सकौ जिन पुण्य प्रभाऊ[२] ।।
सुन्दर श्याम गौर दोउ भ्राता। आनँद हू के आनँददाता[३] ।।

अर्थ—जनकजी कहने लगे कि हे मुनिजी! आपके चरणो के दर्शनो से मैं अपने पुण्य की बडाई नही कर सकता। श्यामले और गोरे छबीले दोनो भाई आनन्द को भी आनन्द देने वाले है (अर्थात् यदि आनन्द मूर्तिमान् आवे तो वह भी इनको देखकर प्रसन्न होवे। भाव यह कि ये परमानन्दमय है)।

इनकी प्रीति परस्पर पावनि। कहि न जाइ मन भाव सुहावनि ।।
सुनहु नाथ कह मुदित विदेहू। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू ।।

अर्थ—इन दोनो भाइयो की आपस मे निष्कपट प्रीति है जो इतनी मनमोहिनी और

राग टोडी—ये दोऊ दशरथ के वारे।
नाम राम घनश्याम लषन लघु नखशिख अँग उज्यारे ।।
निज हित लागि माँगि आने मे धर्म सेतु रखवारे।
धीर वीर विरुदेत बाँकुरे महाँ बाहु बल भारे ।।
एक तीर ताक हती ताडका किये सुर साधु सुखारे।
यज्ञ राखि जग साखि तोषि ऋषि निदरि निशाचर भारे ।।
मुनि तिय तारि स्वयम्वर पेखन आये सुनि वचन तिहारे।
अवलोकहु भरि नयन आजु तुलसी के प्राण पियारे ।।

१ राम लषन दोउ बन्धुवर, रूप शील बल धाम—सीता स्वयम्वर से—
सवैया—निज दास चकोरन चन्द्र अमद अनन्दक भूसुर वृन्दन ये।
सुर सन्तन शीतल चन्दन 'वन्दि' दिवाकर के कुल मडन ये ।।
जग बदन आरत द्वद्वन दुष्ट गयदन केर निकन्दन ये।
छलछन्दन फन्दन नन्दन ये दश स्यदन भूप के नन्दन ये ।।

२. मुनि तव चरण देखि कह राऊ। कहि न सकौ निज पुण्य प्रभाऊ—काव्य निर्णय से—
सवैया—आज बडे सुकृती हमही भयो पातक हानि हमारो धराते।
पूरब हूँ कियो पुण्य बडोई भयो प्रभु को पद धारिबो ताते ।।
आगम है सब भाँति भलोई विचारिये दास जू एती कृपाते।
श्री ऋषिराज तिहारे मिले हमैं जानि परी तिहुँकाल की बातै ।।

३. आनँद हू के आनँददाता—इस ससार मे तीन तरह के मनुष्य होते है अर्थात् विषयी, मुमुक्षु और जीवन-मुक्त। श्री रामचन्द्रजी तीनो प्रकार के मनुष्यो को आनन्द देने वाले हैं सो यो कि विषयी पुरुषो को अपना रूपसौन्दर्य दिखाकर, मुमुक्षुओ को दर्शन देकर ससार के बन्धन से मुक्त करके और जीवन-मुक्तो को ब्रह्म सुख दरशा कर जो आनन्द होता है उस आनन्द को भी आनन्द देने वाले श्री रामचन्द्रजी है।

सुहावनी है कि उसका वर्णन नही हो सकता। जनकजी प्रसन्नता से कहते ही गये, कि हे प्रभुजी ! इनका स्वाभाविक प्रेम ऐसा है जैसा कि ब्रह्म और जीव का (सो सत्य ही था, महात्मा रूप और स्वभाव ही से सहज ही मे यथार्थ बात जान लेते है। रामचन्द्रजी ब्रह्म का अवतार और लक्ष्मण शेष किवा जीव है)।

पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू। पुलक गात उर अधिक उछाहू ॥
मुनिहि प्रशंस नाइ पद सीसा। चलेउ लिवाइ नगर अवनीसा ॥

अर्थ—जनकजी बारबार रामचन्द्रजी की ओर देखते थे, उनका शरीर रोमाचित हो गया और हृदय मे भारी उत्साह भर गया। निदान मुनिजी की बडाई कर और उनके चरणो पर सिर नवाकर राजा उन्हे अपने नगर की ओर लिवा चले।

सुन्दर सदन सुखद सब काला। तहाँ बास लेइ दीन्ह भुआला ॥
करि पूजा सब बिधि सेवकाई। गयउ राउ गृह बिदा कराई ॥

अर्थ—जो सब ऋतुओ मे सुखदायक था ऐसे एक उत्तम महल मे राजा ने मुनिजी को ठहरा दिया। सब प्रकार से उनका आदर-सम्मान और सरबराही करके मुनिजी से आज्ञा माँग राजाजी अपने महलो मे जा पहुँचे।

दोहा—ऋषय सग रघुवस मणि, करि भोजन विश्राम।
बैठ प्रभु भ्राता सहित, दिवस रहा भरि याम ॥२१७॥

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी अपने भाई और ऋषियो के साथ भोजन कर तथा विश्राम ले जब बैठे उस समय पहर भर दिन रह गया था।

लषन हृदय लालसा बिसेखी[1]। जाइ जनकपुर आइय देखी ॥
प्रभुभय बहुरि मुनिहि सकुचाही। प्रकट न कहहि मनहि मुसुकाही ॥

अर्थ—लक्ष्मणजी के हृदय मे बडी इच्छा थी कि जाकर जनकपुर देख आवे। परन्तु एक तो रामचन्द्रजी का भय और दूसरे मुनिजी का सकोच था, इस हेतु प्रकट नही कहते थे, मन-ही-मन मुसकरा रहे थे।

राम अनुज मन की गति जानी। भक्त बछलता हिय हुलसानी ॥
परम विनीत सकुचि मुसुकाई। बोले गुरु अनुशासन पाई ॥

अर्थ—रामचन्द्रजी लक्ष्मण के मनोरथ समझ गये इस हेतु भक्तो पर प्रेम करना यह प्रण हृदय मे उमग आया बहुत ही नम्रता से सकुचते हुए मुसकराकर गुरुजी से आज्ञा ले बोले।

नाथ लषनपुर देखन चहही[2]। प्रभु सकोच डर प्रकट न कहही ॥
जो राउर आयसु मै पाऊँ। नगर दिखाइ तुरत लै आऊँ ॥

---

१. लषन हृदय लालसा बिसेखी—राम स्वयम्वर से—

दोहा—जनक नगर शोभा सुनत, स्वर्ग न जासु समान।
लखन लालसा लषन की, लाखन विधि अधिकान ॥

२. नाथ लषनपुर देखन चहही—

सवैया—नाथ कछू विनती सुनिये रघुराज चहै लघु बन्धु हमारो।
पाय रजाय तिहारि प्रसन्न सो देखहुँ मैं मिथिलापुर सारो ॥
मोहिं लजाय डरै तुमको प्रभुताते कछू नहिं बैन उचारो।
जाऊँ लिवाय लै आऊँ दिखाय पुरी यदि शासन होय तिहारो ॥

अर्थ—हे स्वामी ! लक्ष्मण जनकपुर देखना चाहते है परन्तु आपके सकोच और डर के कारण कहते नही । जो मुझे आपकी आज्ञा मिले तो मै इन्हे नगर दिखलाकर तुरन्त ही लौटा लाऊँ ।

सुनि मुनीश कह वचन सप्रीती । कस न राम राखहु तुम नीति[१] ।।
धर्म सेतु पालक तुम ताता । प्रेम विवश सेवक सुखदाता ।।

अर्थ—सुनते ही विश्वामित्रजी प्रेमपूर्वक कहने लगे कि हे राम ! तुम ही नीति का पालन क्यो न करोगे अर्थात् (तुम अवश्य करोगे) । हे प्यारे, तुम तो धर्म की मर्यादा पालने वाले हो जो प्रेम के कारण सेवको को सुख दिया करते हो ।

दोहा—जाइ देखि आवहु नगर, सुख निधान दोउ भाइ[२] ।
करहु सफल सबके नयन, सुन्दर बदन दिखाइ ।।२१८।।

अर्थ—हे सुख के धाम दोनो भाइयो, जाकर नगर देख आओ (और ऐसा करने से) अपने सुन्दर मुँह का दर्शन कराकर सबके नेत्रो को सफल कर आओ ।

मुनि पद कमल वद दोउ भ्राता । चले लोक लोचन सुखदाता ।।
बालक वृन्द देखि अति शोभा । लगे सग लोचन मन लोभा ।।

अर्थ—ससार भर के नेत्रो को सुख देने वाले दोनो भाई मुनिजी के कमलस्वरूप चरणो की वन्दना करके चले । उनकी सुन्दरता को देखकर बालको के झुड के झुड सग हो चले, कारण, उनके नेत्र और मन लुभाय रहे थे ।

पीत बसन परिकर कटि भाथा । चारु चाप शर सोहत हाथा ।।
तनु अनुहरत सुचदन खोरी । श्यामल गौर मनोहर जोरी ।।

अर्थ—पीताम्बर पहने हुए, कमर मे तरकस कसे हुए थे और हाथो मे सुन्दर धनुष-बाण शोभायमान थे । सॉवले और गोरे रग की मनोहर जोडी ऐसे चन्दन की खौर लगाये हुई थी जो दोनो को फबे (अर्थात् दोनो भाई लाल रग के चन्दन की खौर दिये हुए थे, जैसा कि वाल्मीकिजी ने लिखा है) ।

केहरि कधर बाहु विशाला । उर अति रुचिर नाग मणि माला ।।
सुभग सोन[३] सरसीरुह लोचन । वदन मयक ताप त्रयमोचन[४] ।।

---

१. कस न राम राखहु तुम नीति—भामिनी-विलास की टीका (कवि विप्रचन्द्र विरचित से)—

दोहा—नहि करि हौ जब हस तुम, नीर क्षीर पहिचान ।
रखि है कुल मरजाद तब, जग महँ कौन सुजान ।।

२. जाइ देखि आवहु नगर सुख निधान दोउ भाइ—

सवैया—युक्ति के बोरे पछोरे पियूष के बैन निहोरे कह्यो रघुराई ।
सो मुनि गाधिकुमार विचारि कह्यो सुख अबुधि चित्त डुबाई ।।
जाहु लला लषणै सङ्ग लै पुर देखदु पै न कियो लरिकाई ।
राखो नही तुम जो मर्याद कहौ मुनि दीन बसै कहँ जाई ।।

३. सोन (स० शोण)—लाल, जैसा कि अमरकोश मे लिखा है—'शोण कोक नदच्छवि अर्थात् लाल कमल की नाईं छवि को शोण किम्वा सोन कहते हैं ।

४. वदन मयक ताप त्रयमोचन—कवि बिहारीलाल कृत नखसिख से— →

अर्थ—सिंह के समान कन्धे, लम्बी भुजाएँ और हृदय पर सुन्दर गजमुक्तो की माला पहिने थे। सुन्दर लाल कमल के समान नेत्र और चन्द्रमा रूपी मुख तीनो प्रकार के ताप (दैहिक, दैविक और मानसिक) को शान्त करने वाला था।

कानन्ह कनक फूल छबि देही। चितवत चितहि चोरि जनु लेही॥
चितवनि चारु भृकुटि वर बाँकी। तिलक रेख शोभा जनु चाकी॥

अर्थ - कानो मे सोने के फूल शोभा दे रहे थे, और वे देखते ही मानो चित्त को चुरा लेते थे। सुन्दर चितवन, टेढी उत्तम भौहै, और तिलक की रेखा ने मानो शोभा की सीमा बाँध दी थी।

दोहा—रुचिर चौतनी सुभग शिर, मेचक कुचित केश[१]।
नखशिख सुन्दर बधु दोउ, शोभा सकल सुदेश॥२१६॥

अर्थ—सुडौल मस्तक पर सुन्दर चौगोशिया टोपी लगी थी और काले घूँघरवाले बाल थे। दोनो श्रेष्ठ भाई पैर से सिर तक अग प्रत्यग से सुशोभित थे।

देखन नगर भूप सुत आये। समाचार पुर बासिन पाये॥
धाये धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रक निधि लूटन लागी[२]॥

अर्थ—जब नगर निवासियो को यह खबर लगी कि राजकुमार नगर देखने को आये है तब तो सबके सब घर का काम छोडकर ऐसे दौडे जैसे कगाल धन लूटने को दौड़ पड।

निरखि सहज सुन्दर दोउ भाई[३]। होहि सुखी लोचन फल पाई॥

(कवित्त)

अधर मधुर मिले कज फलिका से कल बोलत वचन नेक बिलसत कला इन्दु।
मन्द मुसकानि पीक रेख रमकानि कुन्द दन्त चमकानि झमकानि छबि सुधा बिन्दु॥
बरखत रस सरसत सुख सिद्धि निद्धि विदित 'बिहारी' ओप शारद कहैं फनिन्दु।
प्राय सम राम पुण्य पूरण प्रकाम धाम अति अभिराम रामचन्द्र को मुखारबिन्दु॥

१. मेचक कुचित केश—कवि बिहारीलाल कृत नखसिख से—

छन्द—रेशम के लक्ष काक पक्ष हैं प्रतक्ष तक्ष कुचित कुटिल काम सर के सिवार है।
कालिन्दी ते कारे कुहू रज्ज ते रँगारे भौर भीर भूरिवारे धार तम कैसे वार है॥
काग ही सँभारे अति चीकने चिलक चारु परम सुगन्धित फुलेल फुलकार है।
सरस सिगार सार सुखमा के अवतार अवध बिहारी रामचन्द्रजी के बार है॥

२. धाये धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रक निधि लूटन लागी—

(कवित्त)

कोऊ धाय हेरै कोऊ काहु कहँ टेरै कोऊ जाय लखै नेरैं कोऊ दूरि ते सिधारै है।
कोऊ काहु बूझें कोऊ काहु ते अरूझें कोउ काहू हठि झूझै कोउ काहू को निवारै हैं॥
कोऊ द्वार काऊ हैं दिवार कोऊ छज्जन पै कोऊ तौ अटारी नर नारी यो निहारै हैं।
'रसिक बिहारी' सुखकारी धनुधारी दोउ पुर अवलोकै मद मद ही पधारै है॥

३. निरखि सहज सुन्दर दोउ भाई—स्वाभाविक सुन्दरता सदैव सराहनीय है क्योकि उसमे शृगार की आवश्यकता नही रहती। 'चहार दर्वेश' मे कहा है—

नही मोहताज जेवर का, जिसे खूबी खुदा ने दी।
कि जैसे खुशनुमा लगता है देखो, चाँद बे गहने॥

युवती भवन झरोखन लागी । निरखहि रामरूप अनुरागी[१] ।।

अर्थ--(सब लोग) स्वभाव ही से सुन्दर दोनो भाइयो को देख नेत्रो का सुख पाकर प्रसन्न होते थे । स्त्रियाँ महलो की झँझरियो से झाँकती हुई बडे प्रेम से रामचन्द्रजी के स्वरूप को देखती थी ।

कहहि परस्पर वचन सप्रीती । सखि इन कोटि काम छबि जीती[२] ।।
सुर नर असुर नाग मुनी माही । शोभा असि कहुँ सुनियति नाही ।।

अर्थ—आपस मे प्रेम भरे वचन बोल रही थी, हे सखी इन्होने तो करोडो कामदेव की शोभा को जीत लिया है (अर्थात् जो कामदेव की शोभा सुनी है उससे ये बहुत ही बढ-चढ कर सुन्दर है) । देवता, मनुष्य, राक्षस, सर्प और मुनियो मे से ऐसी शोभा किसी की नही सुनी ।

सूचना—कवि की चतुराई सराहनीय है कि उन्होने घर मे रहने वाली स्त्रियो से रामचन्द्रजी की शोभा वर्णन कराते समय इस मर्यादा का निर्वाह कराया कि वे औरौ की शोभा ऐसी नही 'सुनी' कहकर यह दरशाती है कि घर मे रहने वाली स्त्रियाँ दूसरे पुरुषो की शोभा बहुधा सुना ही करती है न कि देखती फिरती है ।

विष्णु चारि भुज विधि मुख चारी । विकट वेष मुख पंच पुरारी ।।
अपर देव अस कोउ न आही । यह छबि सखि पटतरिये जाही ।।

अर्थ—क्योकि विष्णु के चार हाथ है, ब्रह्मा के चार मुँह है और पाँच मुँह वाले शिव भयकर रूप धारण किये रहते है । और दूसरा देवता ऐसा कोई नही है कि जिसके साथ इनकी शोभा की उपमा देवे ।

दोहा—वय किशोर सुखमा सदन, श्याम गौर सुखधाम ।
अग अग पर वारियहि, कोटि कोटि शत काम[३] ।।२२०।।

---

१. युवती भवन झरोखन लागी । निरखहि रामरूप अनुरागी—

(कवित्त)

नृपति किशोर श्याम गौर द्वै अनूप रूप पर अवलोकिवे को आये है बजार मे ।
छायो शोर भारी चहुँ ओर नर नारी भीर सुरति न काहू देह गेह की सम्हार मे ।।
'रसिक बिहारी' वर वाम जे सुधाम सबै आई धाय आँगन अटारी कोउ द्वार मे ।
फिरै फिरकी सी भौन थिरकी रहै ना नेक कोउ खिरकी मे कोउ हिरकी किवार मे ।।

२. कहहि परस्पर बचन सप्रीती । सखि इन कोटि काम छवि जीती ।—गीतावली रामायण से—

राग गौरी—नेक सुमुखि चित लाइ चितौरी ।

राज कुँवर मूरति रचिबे की रुचि सु विरचि श्रम कियो है कितौरी ।।
नखशिख सुन्दरता अवलोकत कह्यो न परत सुख होत जितौरी ।
साँवर रूप सुधा भरिबे कहँ नयन कमल फल कलस रितौरी ।।
मेरे जान इन्ह बोलिबे कारण चतुर जनक ठयो ठाठ इतौरी ।
'तुलसी' प्रभु भजि हैं शभु धनु भूरि भाग्य सिय मातु पितौरी ।।

३. वय किशोर सुखमा सदन............कोटि कोटि शत काम—

राग कान्हरा—देखो री छबि राम बदन की ।

कोटि कोटि दामिनि दर्पण द्युति निंदित कान्ति कपोल रदन की ।।
नासा मृदु मुसुक्यानि माधुरी मन्द करी अति मदहि मदन की । →

शब्दार्थ - सुखमा = शोभा । किशोर (किम् = कुछ + शूर = वीर) = कुछ बल प्राप्त अर्थात् १० वर्ष से १५ वर्ष तक की अवस्था वाला ।

अर्थ—किशोर अवस्था वाले बहुत शोभा-युक्त श्यामले और गोरे अग वाले आनन्द-स्वरूप इनके प्रत्येक अग पर करोडो कामदेव न्यौछावर है ।

कहहु सखी अस को तनुधारी । जो न मोह अस रूप निहारी[1] ।।
कोउ सप्रेम बोली मृदु बानी । जो मै सुना सो सुनहु सयानी[2] ।।

अर्थ—हे सखी ! कहो तो सही, ऐसा कौन प्राणी होगा जो ऐसे रूप को देखकर मोहित न हो जावे । उनमे से एक प्रेम सहित मीठी वाणी से कहने लगी कि हे चतुरे ! जो कुछ मैंने सुना है सो सुनो ।

ये दोऊ दशरथ के ढोटा । बालमरालन के कल जोटा ।।
मुनिकौशिकमख के रखवारे । जिन रण अजिर निशाचर[3] मारे ।।

शब्दार्थ—रणअजिर = रणभूमि

अर्थ—ये दोनो दशरथजी के पुत्र है मानो सुन्दर छोटे राजहसो की जोडी हो । ये विश्वामित्र मुनिजी के यज्ञ की रक्षा करने वाले है जिन्होने रणभूमि मे राक्षसो को मारा है ।

श्यामगात कल कजविलोचन । जो मारीचसुभुजमदमोचन ।।
कौशल्यासुत सो सुखखानी । नाम राम धनुशायक पानी[4] ।।

फबि रह्यो कीट मुकुट अलकन पर मनो फाँस दृग मीन फसन की ।।
चोरत चित भृकुटी दृग शोभा कुण्डल झलक खौर चन्दन की ।
'राम सखे' छवि कहि न जात जब सुधि न रहत लखि बदन बसन की ।।

१. कहहु सखी अस को तनुधारी । जो न मोह अस रूप निहारी—प्रेम पीयूषधारा से—

रेखता—इत ओर लखो आवता अवधेश लाल है ।
गलियो के बीच झूमता मस्तान चाल है ।।
नैना दोऊ नुकीले मुख मन्द हास है ।
अधरन पै पान लाली सुन्दर य गाल है ।।
अलकै अतर भरी हुई इत उत बिखर रही ।
मानो हिया फँसाइबे को काम जाल है ।।
देखो अली री जालिम छैला है यह वही ।
जिस को निहार 'मोहनी' रहता निहार है ।।

२. जो मैं सुना सो सुनहु सयानी—राम स्वयम्वर से—

सवैया—दूसर बोली सुनो रघुराज अहैं अवधेश नरेश के ढोटे ।
कौशिक ल्याये मखै हित रक्षण खेत खपाय दिये खल खोटे ।।
गौतम नारि को तारि तुरन्तहि आये विदेहपुरी भल जोटे ।
श्याम को नाम कहै सब राम कहै लषणै अस बन्धु जो छोटे ।।

३. 'रणअजिर निशाचर' का पाठान्तर 'रण अजय निशाचर' है अर्थात् लडाई मे अजीत राक्षसो को ।

४. कौशाल्यासुत सो सुखखानी । नाम राम धनुशायक पानी—रामरत्नाकर रामायण से—

दोहा—दीरघ उर दीरघ धनुष, दीरघ नैन सु माथ ।
दीरघ भाल सुचाल तन, यथा योग सम साथ ।। →

शब्दार्थ—सुभुज (भुज का पर्यायी शब्द बाहु) = सुबाहु, राक्षस का नाम

अर्थ—जिनका श्यामला शरीर और सुन्दर कमल के समान नेत्र है तथा जो मारीच तथा सुबाहु राक्षसो के घमड का नाश करने वाले है, वे कौशल्या के पुत्र सुखधाम है। उनका नाम राम है और वे धनुष-बाण हाथ मे लिये है।

गौर किशोर वेष वर काछे। कर शर चाप राम के पाछे ॥
लछिमन नाम रामलघुभ्राता। सुनु सखि तासु सुमित्रा माता ॥

अर्थ—जो गोरे रग वाले छोटी अवस्था के सुन्दर भेष बनाये है और हाथ मे धनुष-बाण लिये रामचन्द्रजी के पीछे है वे रामचन्द्रजी के छोटे भाई लक्ष्मण नाम के है। हे सखी सुनो! उनकी माता सुमित्राजी है।

दोहा—विप्रकाज करि बंधु दोउ, मग मुनिवधू उधारि[१]।
आये देखन चापमख, सुनि हरषी सब नारि ॥२२१॥

अर्थ—दोनो भाई विश्वामित्रजी का कार्य सिद्ध करके और रास्ते मे गौतम मुनि की स्त्री अहल्या का उद्धार कर धनुषयज्ञ देखने आये हैं, इतना सुनकर सब स्त्रियाँ प्रसन्न हुईं।

देखि राम छवि कोई इक कहई। जोग जानकी यह वर अहई[२] ॥
जो सखि इन्हहि देख नरनाहू। प्रण परिहरि हठि करै विवाहू ॥

अर्थ—रामचन्द्रजी की छवि देखकर एक सखी कह उठी कि यह वर तो जानकीजी के योग्य है। हे सखी! जो राजाजी इनको देख लेवें तो प्रण को त्याग कर अवश्य ही ब्याह कर देवेंगे।

सागर सम गभीर जेहि, दुख सुख एक समान।
प्रिय दर्शन सुखप्रद सदा, कौशल्यासुत मान ॥

और भी—प्रेम पीयूषधारा से—

खेमटा—मुनिसँग बालक का के सखी री।
सुन्दर रूप मनोहर नैना, चितवन मे रस जाके सखी री ॥
अलकै छूटि बदन पर सोहैं, भौ कमान अति बाँके सखी री।
मोहनिदास बिहँसि एक बोली, ये कुमार कौशिला के सखी री ॥

१. विप्रकाज करि बधु दोउ, मग मुनिवधू उधारि—
राग टोड़ी—येई राम लषन जे मुनि सँग आये है।
चौतनी चोलना काछे सखि सोहैं आगे पाछे आछे आछे भाय भाये हैं ॥
साँवले गोरे शरीर महाबाहु महावीर कटि तूण तीर धरे धनुष सुहाये हैं।
देखत कोमल कल अतुल विपुल बल कौशिक कोदड कला कलित सिखाये हैं ॥
इन ही ताडका मारी गौतम की तिय तारी भारी भारी भूरि भट रण बिचलाये हैं।
ऋषिमख रखवारे दशरथ के दुलारे रङ्गभूमि पगुधारे जनक बुलाये है ॥
इनकै विमल गुण गणत पुलकित तनु सतानन्द कौशिक नरेशहि सुनाये है।
प्रभुपद मन दिये सो समाज चित्त किये हुलसि हुलसि हिय तुलसिहैं गाये है ॥

२. जोग जानकी यह वर अहई—
क० जैसी यह ललित लडैती मिथिलेश जूकी तैसो अवधेश को दुलारो रसभीना है।
याहि देखि लाज रीति होति है विकल मति वाहि तो विलोकि पचबानहू अधीना है ॥
जन सो 'मुरारि' यों विदेहपुर नारि कहैं यह तो सँयोग विधि कर लिख दीना है।
शम्भु धनु टूटै वा न टूटै कहौं साँची सिया सोने की अँगूठी राम साँवरो नगीना है ॥

कोउ कह ये भूपति पहिचाने । मुनिसमेत सादर सनमाने ।।
सखि[1] परतु प्रण राउ न तजई[1] । विधिवश हठि अविवेकहि भजई ।।

अर्थ—दूसरी बोल उठी कि अरे ! इन्हे राजाजी जान तो गये है तभी तो इनका आदर भी मुनिजी के साथ किया है। परन्तु हे सखी ! राजाजी अपना प्रण नही छोडते, होनहार के कारण हठ पकडे हुए अज्ञानता को ही धारण किये है।

कोउ कह जो भल अहै विधाता । सब कहँ सुनिय उचित फलदाता ।।
तौ जानकिहि मिलहि वर येहू । नाहिन आलि इहाँ सन्देहू ।।

अर्थ—एक यो कहने लगी कि जो विधाता की कृपा है और जो सुनने मे आता है कि वह सबको यथा योग्य फल देता है तो जानकीजी को यही पति मिलेगा, हे सखी ! इसमे कोई सन्देह नही है।

जो विधिवश अस बनै सँयोगू[2] । तौ कृतकृत्य होहि सब लोगू ।।
सखि हमरे अति आरति ताते । कबहुँक ये आवहि यहि नाते ।।

अर्थ—भाग्यवश यदि ऐसा योग जुड जाय तो सब लोगो की मनोकामनाएँ सिद्ध हो जावेगी। हे आली ! इसी हेतु हमे व्याकुलता हो रही है कि भला ये कभी इसी नाते से तो आवे।

दोहा—नाहि त हम कहँ सुनहु सखि, इनकर दरशन दूरि ।
यह संघट तब होइ जब, पुण्य पुराकृत भूरि ।।२२२।।

अर्थ—नही तो हे आली ! सुनो इनके दर्शन हमे दुर्लभ हैं, यह सगोग तो तभी बने जब पूर्व जन्म की बड़ी पुण्याई हो।

बोली अपर कहेहु सखि नीका । यह विवाह अति हित सबही का ।।
कोउ कह शकरचाप कठोरा । ये श्यामल मृदुगात किशोरा ।।

अर्थ—दूसरी सखी कहने लगी कि हे आली ! तुमने अच्छा कहा, इस विवाह से सभी का बड़ा हित होगा। कोई और सखी कहने लगी कि शिवजी का धनुष कठोर है और ये श्यामले शरीर वाले कोमल किशोर अवस्था के हैं।

सब असमंजस अहै सयानी । यह सुनि अपर कहै मृदुबानी ।।

---

१. सखि परतु प्रण राउ न तजई—

सवैया—कोई कह्यो रघुराज सुनो दुख होत अरी क्षण ही क्षण ही मन ।
भूप विदेह प्रतिज्ञा करी तुम जानति हो सिगरी सजनी जन ।।
सो तजि हैं किमि चित्त कठोर चितै चितचोर किशोरन के तन ।
जो न कियो परनै पन पेलि पषाण परै पुहमी पति के पन ।।

२ जो विधिवश अस बनै सँयोगू—

(कवित्त)

सुन्दर अनूप रूप सावरो किशोर लोनो देखि देखि मिथिलानिवासी हुलसावही ।
सब नर नारी एक एक ते कहैं है रुचि तोरै धनु ये ही तौ अपार सुख छावही ।।
जनक किशोरी मिलि जोरी श्याम गोरी भलि विधिहि निहोरी कर जोरी यों मनावही ।
'रसिक बिहारी' हितकारी बात होवै वेगि सकल विचारी सत्य ये ही यश पावहीं ।।

सखि इन कहँ कोउ कोउ अस कहही । बड प्रभाव देखत लघु अहही[१] ।।

अर्थ – हे चतुरे ! सबसे बडी अडचन तो यही है। ऐसा सुनकर दूसरी सखी मीठे वचनो से कहने लगी । हे आली, इन्हे कोई-कोई तो ऐसा कहते है कि ये देखने मे छोटे है परन्तु इनका प्रताप बडा है ।

परसि जासु पदपंकजधूरी । तरी अहल्या कृतअघभूरी ।।
सो कि रहहि बिन शिवधनु तोरे । यह प्रतीति परिहरिय न भोरे ।।

अर्थ –जिनके कमलस्वरूप चरणो की रज के छूते ही बडी पापिनी अहल्या भी तर गई वे क्या शिवजी का धनुष तोडे बिना रहेगे (कभी नही), ऐसा विश्वास भूल करके भी न त्यागना ।

जेहि विरंचि रचि सीय सँवारी । तेहि श्यामल वर रचेउ बिचारी ।।
तासु वचन सुनि सब हरषानी । ऐसइ होउ कहहि मृदुबानी ।।

अर्थ—जिस ब्रह्मा ने सीता को सँभाल कर बनाया है उसी ने विचार के साथ इस श्यामले वर को भी बनाया है । उसकी बात सुन कर सब स्त्रियाँ प्रसन्न हुईं और नम्र वचनो से कहने लगी कि ऐसा ही होवे ।

दोहा—हिय हर्षहि वर्षहि सुमन, सुमुखि सुलोचनि बृन्द ।
जाहि जहा जहँ बन्धु दोउ, तहँ तहँ परमानन्द[२] ।।२२३।।

अर्थ—सुन्दर मुखवाली तथा सुन्दर नेत्रवाली स्त्रियो के झुड के झुंड हृदय मे प्रसन्न होकर फूल बरसाते थे, इस प्रकार दोनो भाई जहाँ-जहाँ जाते थे, वहाँ-वहाँ बडा आनन्द होता था ।

दूसरा अर्थ—सुलोचनि अर्थात् अपने नेत्रो से पराये सुलक्षण ही देखने वाली तथा सुमुखि अर्थात् अपने मुख से दूसरो के शुभ लक्षण आदि वर्णन करने वाली स्त्रियाँ हृदय से

---

१. सखि इन कहँ कोउ कोउ अस कहही । बड प्रभाव देखत लघु अहही—
राग बिलावल—देखु सखी छवि राज दुलारे।
श्यामल गौर किशोर चोर चित ये ही प्राण अधार हमारे ।।
अति अभिराम काममद गजन गुण ग्रह रूप सिंधु उजियारे ।
लछिमन राम नाम दोउन को कोमल करन बान धनु धारे ।।
इनहिंन्ह ने मुनि मख रक्षा कर खल मारीच सुबाहु पछारे ।
गौतम नारि उधारि बाट मे आये मिथिला नगर मझारे ।।
जो शिव धनुष तोरि डारै ये सिय जयमाल गले बिच डारे ।
'मन्नीलाल' होय आनँद मन इनको सुखद सरूप निहारे ।।

२. हिय हर्षहिं वर्षहिं सुमन ··· तहँ तहँ परमानन्द—प्रेम पीयूषधारा से—
रेखता—मन लेलिया रँगीले सुन्दर सुजान ने ।
बेसुध किया सबो को भृकुटी कमान ने ।।
वह साँवली सी सूरत हिय मे समा गई ।
यों बावरी किया है मृदु मुसकुरान ने ।।
मिथिलापुरी मे कहर मची आलियो के बीच ।
घायल किया जिन्हो को जुल्फे कृपान ने ।।
कहते बने सरूप औ न देखते बनै ।
बस मोहनी को कर लिया नैनो की सान ने ।।

प्रसन्न होकर वर्षहिं सुमन अर्थात् अपने उत्तम हृदय के विचारो को आपस मे प्रकट कर रही थी। इसी भाँति जहाँ-जहाँ राम-लक्ष्मण जाते थे वही-वही उन्हे मानो पूर्ण आनन्द भरा हुआ ही दिखाई देता था (भाव यह कि सरल हृदय वाली सुलक्षण स्त्रियाँ श्री रामचन्द्रजी के सौन्दर्य सुलक्षणो आदि से प्रसन्न होकर आपस मे जो उनके विवाह आदि की शुभ कांक्षा कर रही थी, उस चर्चा से दोनो भाइयो को नगर की शोभा से जो आनन्द हुआ था उससे भी बढ कर आनन्द हुआ)।

सूचना—फूल बरसाने के अनेक कारणो मे से मुख्य ये हैं—(१) यह कि महात्मा के शुभागमन समय आनन्द प्रदर्शित करने के हेतु, (२) श्री रामचन्द्रजी जो अपनी स्वाभाविक रीति से नगर की शोभा देखते जा रहे थे। उनकी दृष्टि को अपनी ओर खीच कर उनके मुखारविन्द की पूर्ण शोभा निरखने के निमित्त, (३) स्त्रियाँ चाहती थी कि इनका यहाँ पर आना इन्हे मगलदायक होवे अर्थात् इनका विवाह जानकीजी से हो जावे।

पुर पूरब दिशि गे दोउ भाई। जहाँ धनुषमख भूमि बनाई[१] ॥
अति विस्तार चारु गच ढारी। विमलवेदिका रुचिर सँवारी ॥

अर्थ—फिर दोनो भाई नगर की पूर्व दिशा मे गये जहा पर धनुष यज्ञ के लिए स्थान बनाया गया था। बडे फैलाव से सुन्दर गच बना हुआ था जिस पर स्वच्छ वेदी बडी रुचि के साथ बनाई गई थी।

चहुँ दिशि कंचन मंच विशाला। रचे जहाँ बैठहि महिपाला[२] ॥
तेहि पाछे समीप चहुँ पासा। अपर मचमंडली विलासा ॥

अर्थ—चारो ओर सोबरन के सिंहासन राजाओ के बैठने के लिए बनाये गये थे। उन्ही के पीछे पास ही पास चारो ओर और भी मच बने थे जिन पर महाराजाओ के सह-चारी आदि बैठने वाले थे।

कछुक ऊँच सब भाँति सुहाई। बैठहि नगर लोग जहँ जाई ॥
तिन्हके निकट विशाल सुहाये। धवलधाम बहुबरन बनाये ॥

अर्थ—कुछ ऊँचाई पर सब प्रकार से सुहावना स्थान बना था जहा पर नगर के मनुष्य जाकर बैठेगे। उनके पास ही बडे और सुहावने स्वच्छ स्थान रगबिरग के बनाये थे।

जहँ बैठी देखहि पुरनारी। यथा योग निजकुल अनुहारी ॥
पुर बालक कहि कहि मृदुवचना। सादर प्रभुहि दिखावहि रचना ॥

अर्थ—जहाँ पर नगर की कुलीन स्त्रियाँ अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार बैठकर

---

१. जहाँ धनुषमख भूमि बनाई— जानकी मगल से—
छन्द—पण धरेउ शिव धनु रचि स्वयवर अति रुचिर रचना बनी।
जनु प्रकटि चतुरानन दिखाई चतुरता सब आपनी ॥
पुनि देश देश सँदेश पठयउ भूप सुनी सुख पावही।
सब साजि साजि समाज राजा जनक नगरहि आवही ॥

२. चहुँ दिशि कचन मच विशाला। रचे जहाँ बैठहिं महिपाला—
सवैया—सो है जडे मणि जालन सो बहु लालन सो छवि पुज सने हैं।
कैसे कहै 'ललिते' मुख सो सहसानन सो नहिं जात भने है ॥
राजिव नैन विलोकिये तौ द्युतिवतन में द्युतिवत गने है।
बैठिबे को महिपालन के हित कचन मच विशाल बने हैं ॥

देखेंगी। नगर के बालक मीठे वचन बोलकर आदरपूर्वक रामचन्द्रजी को रगभूमि की रचना दिखा रहे थे।

दोहा—सब शिशु यहि मिस प्रेमवश, परसि मनोहर गात[1]।
तनु पुलकहि अति हरष हिय, देखि देखि दोउ भ्रात ॥२२४॥

अर्थ—सब बालक इसी बहाने से प्रेमवश हो उनके शरीर को छूते थे और दोनो भाइयो को देखकर बडी प्रसन्नता के कारण रोमाचित हो जाते थे।

शिशु सब राम प्रेमवश जाने। प्रीति समेत निकेत बखाने[2] ॥
निज निज रुचि सब लेहि बुलाई। सहित सनेह जाहि दोउ भाई ॥

अर्थ—रामचन्द्रजी ने सब बालको को प्रेम के अधीन जान लिया तब प्रभुजी ने उनके घरो की बडाई की। सब बालक अपनी-अपनी इच्छानुसार अपने घरो मे लिवा ले जाते थे तो दोनो भाई प्रेमपूर्वक जाते थे।

राम दिखावहिं अनुजहि रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर वचना ॥
लवनिमेष महँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुशासन माया[3] ॥

---

१ सब शिशु यहि मिस प्रेमवश, परसि मनोहर गात—
क०—अंग-अग परसै सुढग रग रग रचै सहित उमग सग सग चहुँ डोलै है।
कोऊ इतरायँ अनखायँ औरिसायँ कोऊ कोऊ बतरायँ कोऊ करत कलोलै है॥
रसिक विहारी नेहवश रघुलाल तिनै करत निहाल प्रीति रीति अनमोलै है।
कोऊ देत गारी कोऊ देत करतारी कोऊ करै मनुहारी कोऊ बाल हँसि बोलै है॥

२ शिशु सब राम प्रेमवश जाने। प्रीति समेत निकेत बखाने—
क०—कोऊ जे प्रवीन प्रौढ सरस सनेही शुद्ध निरखि अनूप रूप अधिक लुभाने है।
तिनकी सुप्रीति श्याम सुदर विलोकि साँची रसिक बिहारी अति होय हुलसाने है॥
काहे रस बैन चैन दीन्हो है कमल नयन लाय निज ऐन ते अपार सनमाने हैं।
सुख सरसाने मनमाने पहिचाने जाने सत्य प्रण ठाने नेहजाल उरझाने है॥

३ लवनिमेष महँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुशासन माया—वृहद्राग रत्नाकर से—
गज़ल—तुम्हे धनवाद ऐ ईश्वर तेरे सब खेल न्यारे है।
तेरे बे अत सागर मे कई पैराक हारे है॥
महा अघ घोर से जल पर पृथ्वी का रचा मडल।
कमल से ब्रह्मा पदा करके चारो वेद उचारे है॥
कही जल औ कही खुश्की कही पहाडो को कायम कर।
जुदा हर द्वीप औ चश्मे जो धरती पर सिगारे है॥
सतू बिन अरश कायम कर लगाया रग कुदरत का।
जमाया चाँद सूरज को सजाये क्या सितारे है॥
बना कर पेड फूलो के किये तकसीम गुलशन मे।
अया कुदरत है हर गुल से अजब तेरे नजारे है॥
हुई कायम य जब हस्ती फना को भी दी तब शक्ति।
किसी का वश नहीं चलता जो रावन जैसे मारे हैं॥
किसे ताकत 'दुनीचद' उसकी लीला जो करे वर्णन।
ऋषीश्वर सब मुनीश्वर और योगीश्वर पुकारे है॥

भक्त हेतु सोइ दीनदयाला । चितवत चकित धनुषमखशाला ।।

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी नम्र, मीठे और सुहावने वचन कह-कहकर लक्ष्मण को यज्ञ-शाला आदि की रचना दिखाते थे। जिसकी आज्ञा से माया एक पल भर मे अनत ब्रह्माण्ड समूहो को बनाती है वे ही गरीबो पर दया करनेवाले प्रभु भक्तो के हेतु धनुषयज्ञ की रचना चकित होकर देखते थे ।

कौतुक देखि चले गुरु पाही । जानि विलंब त्रास मन माही ।।
जासु त्रास डर कहँ डर होई । भजन प्रभाव दिखावत सोई[१] ।।
कहि बाते मृदु मधुर सुहाई । किये बिदा बालक बरियाई ।।

अर्थ—रचना देखकर गुरुजी के पास चले परन्तु जब जाना कि देरी हुई तो मन मे डरने लगे। जिसके डर से डर को डर होता है वे ही भगवान भजन का प्रताप दिखा रहे हैं। (भाव यह कि डर भी यदि शरीर धारण कर ले तो वह भी परमेश्वर से डरता रहे)। श्री रामचन्द्रजी किसी से डरनेवाले नही परन्तु उन्होने विश्वामित्र का भय माना, सो यह दर्शाया कि भक्ति के कारण प्राणी कैसा प्रभावशाली हो जाता है कि सब से बडा परमात्मा भी उससे शकित होता है। प्रभु ने नम्र, मीठी और सुहावनी बाते कहकर बालको को बरजोरी से बिदा किया।

दोहा—सभय सप्रेम विनीत अति, सकुच सहित दोउ भाइ ।
गुरुपदपंकज नाय शिर, बैठे आयस पाइ ।।२२५।।

अर्थ—दोनो भाइयो ने प्रेम के कारण डरते हुए नम्रता से सकुचते हुए गुरुजी के कमलस्वरूप चरणो पर सिर नवाया और वे उनकी आज्ञा पाकर बैठ गए।

निशि प्रवेश मुनि आयसु दीन्हा । सब ही सन्ध्या वंदन कीन्हा ।।
कहत कथा इतिहास पुरानी । रुचिर रजनि युग याम सिरानी ।।

अर्थ—रात्रि का आरभ देख मुनिजी ने आज्ञा दी तो सब ने सध्यावन्दन किया। प्राचीन कथा और इतिहास कहते-कहते दो पहर चाँदनी रात बीत गई।

मुनिवर शयन कीन्ह तब जाई । लगे चरण चापन दोउ भाई ।।
जिनके चरण सरोरुह लागी । करत विविध जप योग विरागी ।।

अर्थ—मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी जाकर लेट रहे तो दोनो भाई उनके पैर दबाने लगे। जिनके कमलस्वरूप चरणो के लिए विरागी लोग नाना प्रकार के जाप और योग साधनायें किया करते हैं।

---

१. जासु त्रास डर कहँ डर होई । भजन प्रभाव दिखावत सोई—

जय मन नारायण सुखदाई ।
सुर नर मुनि सब ध्यान धरत हैं नारद शारद प्रीति लगाई ।। १ ।।
ब्रह्मादिक अरु शिव सनकादिक जाके भय कर चलत सदाई ।
जाकी आज्ञा मे शशि सूरज पवन चलत जाको डर पाई ।। २ ।।
जाके भय कर अग्नि तपत है जल मे शीतलता ठहराई ।
धरनि आकाश खड़े जिसके डर सो मन माहि धरत जडताई ।। ३ ।।
सर्व समर्थ दयानिधि ठाकुर भक्त जनों पर होत सहाई ।
'श्रद्धा' सहित जपो निशिवासर अवध चली जैसे बादर छाँई ।। ४ ।।

ते दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुरुपदकमल पलोटत प्रीते[१] ।।
बार-बार मुनि आज्ञा दीन्ही। रघुवर जाइ शयन तब कीन्ही ।।

शब्दार्थ—प्रीते (प्रियतम) = प्यारे।

अर्थ—वे दोनो भाई मानो प्रेम के अधीन हो अपने प्यारे गुरुजी के कमलस्वरूप चरणो को दाब रहे थे। जब कई बार मुनिजी ने कहा तब रामचन्द्रजी जाकर लेट गए।

चापत चरण लषन उर लाये। सभय सप्रेम परम सचु पाये ।।
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पदजलजाता ।।

अर्थ—लक्ष्मणजी डरते हुए बड़े प्रेम के साथ चुपचाप मन लगाकर (रामचन्दजी के पैर) दबाने लगे। जब रामचन्द्रजी ने बारम्बार कहा कि हे भाई ! अब सोओ, तब वे उनके कमलस्वरूप चरणो का हृदय मे ध्यान धर सो रहे।

दोहा—उठे लषन निशि विगत सुनि, अरुणशिखा धुनि कान।
गुरु ते पहिले जगतपति, जागे राम सुजान[२] ।।२२६।।

शब्दार्थ—अरुणशिखा (अरुण = लाल + शिखा = चोटी) = लाल चोटी वाला मुर्गा।

अर्थ—रात बीत जाने पर लक्ष्मण मुर्गे की बाँग कानो से सुनकर उठे और ससार के स्वामी ज्ञानवान् रामचन्द्रजी भी गुरुजी से पहिले उठे।

सकल शौच कर जाइ नहाये। नित्य निबाहि मुनिहि शिर नाये ।।
समय जानि गुरुआयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई ।।

अर्थ—सब शौच क्रिया करके स्नान किया, और सध्या-वन्दन आदि नित्य कर्म करके मुनिजी को प्रणाम किया। (फूल लाने का) समय जान गुरुजी की आज्ञा ले दोनो भाई फूल लेने को चले।

भूप बाग बर देखेउ जाई। जहँ बसत ऋतु रही लुभाई[३] ।।

---

१. ते दोउ बधु प्रेम जनु जीते। गुरुपदकमल पलोटत प्रीते—
क० जाकी पद रेणु चित्त चाहि कै स्वयभूशभु, शिर मे धरन हेत नेति नेति ठानै है।
योगी जन जनम अनेकन बितावै नहिं, पावै करि योग याग युक्ति बहु आनै है ।।
भनै 'रघुराज' आजहुँ लौ अत पाये नाहिं, नेति नेति वेद औ पुराण हूँ बखानै है।
ओई प्रभु विप्र चारु चापत चरण निज, कोमल करन धन्य धन्य भगवानै है ।।

२. गुरु ते पहिले जगतपति, जागे राम सुजान—(मनुसहिता, अ० २-१६४),
श्लोक—हीनान्न वस्त्रवेश स्यात्सर्वदा गुरुसन्निधौ।
उत्तिष्ठेत्प्रथम चास्य चरमश्चैव सविशेत् ।।
अर्थात् गुरु के समीप सदा उनसे हीन अन्न, हीन वस्त्र और हीन रूप से रहना चाहिए तथा गुरुजी के सोकर उठने के पूर्व ही उठे और उनके सोने के पश्चात् सोवे।

३. जहँ बसत ऋतु रही लुभाई—
सवैया—झूमे झुके तरुपुज रसाल तमालन जालन पै द्युति साजै।
त्यो 'ललिते' कचनार अनार प्रसूनन भार अपार सु राजै ।।
कोकिल कीर कपोतन के कुल बोलत सो मधुरी धुनि छाजै।
श्री मिथिलाधिप के बर बाग में बारहु मास बसत बिराजै ।।

लागे विट्प मनोहर नाना । बरन बरन बर बेलि बिताना[1] ॥

अर्थ— उन्होने जनक राज की उत्तम बगिया जा देखी, जहा पर बसन्त ऋतु मानो लोभ के मारे ठहर रही हो (अर्थात् जहा पर सब प्रकार के फूल आदि बसन्त ऋतु की नाई लगे रहते थे) । भाँति-भाँति के मनभावने वृक्ष लगे थे, और रग-बिरगी उत्तम लताओ के मडप छा रहे थे ।

नव पल्लव फल सुमन सुहाये । निज सम्पति सुररूख लजाय[2] ॥
चातक कोकिल कीर चकोरा । कूजत विहँग नचत कल मोरा ॥

अर्थ—वृक्षो मे सुहावने नये पत्ते, फल और फूल लगे थे जो इस अपनी सामग्री से कल्पवृक्षो को भी लज्जित करते थे। पपीहा, कोयल, सुआ और चकोर आदि पक्षी बोल रहे थे और मोर भली-भाँति नाच रहे थे ।

मध्य बाग सर सोह सुहावा । मणिसोपान विचित्र बनावा[3] ॥
विमल सलिल सरसिज बहुरगा । जलखग कूजत गुजत भृंगा ॥

अन्वय—सुहावा बाग मध्य विचित्र मणिसोपान बनावा सरसोह, आदि ।

अथ—सुहावने बगीचे के बीच मे रग-बिरग मणिजटित सीढियो से युक्त सरोवर शोभा दे रहा था । उसके निर्मल जल मे रग-बिरगे कमल फूले थे । जहाँ जलपक्षी शब्द कर रहे थे और भौरे गुजार रहे थे ।

दोहा—बाग तडाग विलोकि प्रभु, हरषे बंधु समेत ।
परम रम्य आराम यह, जो रामहि सुख देत[4] ॥२२७॥

---

१. लागे विपट मनोहर नाना । बरन बरन बर बेलि बिताना – सुमति मन रजन नाटक से—

क०—भरे भौर भारन हजारन सुडारन पै, लपकि झपकि वर द्रुम द्युति छोरे देत ।
'ललित' लतान के बितान से तने है तैसे, चहूँ ओर कोकिल कलित कीर मोरे देत ॥
विकसे चहूँघा वर विटप विलोकौ इत, निकसे कलीन अति सुखमा हिलोरे देत ।
घोरे देत आनँद हिये मे प्रेम बोरे देत, पवन प्रसून भूरि भूमि पै विथोरे देत ॥

२. निज सपति सुररूख लजाये—

क०—बगरे लतान युत सगरे विटप वर सुमन समूह सोहै अगरो सुवेश को।
फूलन के भार डार डार पै अपार द्युति कोकिल पुकार हरै त्रिविधि कलेश को ॥
कहत बनै न कछु 'ललित' निहारौ इत उमहो परति सुख मानौ देश देश को ।
जनक सो राजत जनक जू को बाग ता को नदन सो लागै वन नदन सुरेश को ॥

३. मध्य बाग सर सोह सुहावा । मणिसोपान विचित्र बनावा—सीता स्वयवर नाटक से—

(कवित्त)

पूरित सुवारि वर वारिज विकासे खासे प्रेम रज्जु फाँसे गाँसे भौर मुद भीने लेत ।
अजब कता से चहुँधा से है प्रकासे घाट धवल प्रभा से घन सार सार लीने लेत ॥
डोलत चकोर मोर सारस मराल बाल बोलत सुरव ते कलोल कल कीने लेत ।
राग सो बिलोकी बन्धु निमि को तडाग 'बन्दि' क्षीरधि की छहरि छबीली छटा छीने लेत ॥

४. परम रम्य आराम यह, जो रामहि सुख देत—राम स्वयंवर से— →

अर्थ—रामचन्द्रजी बाग और तालाब को देखकर भाई लक्ष्मण सहित आनन्द को प्राप्त हुए। यह बगीचा बडा ही रमणीक था जो रामचन्द्रजी को सुख दे रहा था।

चहुँ दिशि चितै पूछि मालीगन[१] । लगे लेन दल फूल मदित मन ।।
तेहि अवसर सीता तहँ आई । गिरिजा पूजन जननि पठाई ।।

अर्थ—बाग की शोभा देखने तथा मालीगण को खोजने के निमित्त चारो ओर देख मालीगण से पूछ प्रसन्न चित्त से तुलसी-पत्र और फूल तोडने लगे। उसी समय सीताजी भी बगीचे मे आईं। उन्हे उनकी माता ने गौरीजी के पूजने के निमित्त भेजा था।

सग सखी सब सुभग सयानी[२] । गावहि गीत मनोहर बानी[३] ।।

(कवित्त)

तालन तमालन के तैसे हिन तालन के रुचिर रसालन के जाल मन भाये है।
हम आल बालन के रजत देवालन के आलै लोक पालन के लोकन लजाये है ।।
दिल देव बालन के देखे ते बिहाल होत षटऋतु कालन के फूल फल छाये है।
और महिपालन के बालन की बातै कौन रघुराज 'कौशलेश' लालन लुभाये है ।।

१ चहुँ दिशि चितै पूछि मालीगन—

सवैया—ये ही महीपति माली सुनौ गुरु पूजन के हित फूल उतारन।
आये इतै हम बधु समेत उतारैं प्रसून जो होय न बारन ।।
कैसे कहे बिन फूल चुनै मिथिलेश कि वाटिका के मन हारन।
वस्तु बिरानी के पूछे बिना 'रघुराज' जू लेव न वेद उचारन ।।
राम के बैन आराम को पालक कान परे गृह बाहर आयौ।
देखि अनूपम भूप कुमार रह्यो तकि कै पलकै न लगायो ।।
पायँन मे परि पाणि को जोरि पर्‍यो प्रभु प्रेम सु बैन सुनायो।
श्री 'रघुराज' जू रावरो बाग न बावरो मोहि विरँचि बनायो ।।

२. सग सखी सब सुभग सयानी—

सीता सँग आई सुभगबाला।
गज गामिनि सब सखी सहेली राजकुँवरि हसिनि चाला ।।
कोउ सखि नील पीत पट पहिरे कोउ सखि हरित कछुक लाला।
पग पैजनिया नूपुर सोहै कटि किंकिण बेदी भाला ।।
चन्दन अक्षत धूप दीप कर लिय नैवेद्य पुहुप माला।
'नायक कवि' कलकठ लजावनि गावत गीत सहित ताला ।।

३ गावहि गीत मनोहर ठानी—राम स्वयवर से—

सिय छबि को कहि सकै उचारी।
जेहि मुख सम सर करत कलानिधि, घटत बढत हिय हारी ।।
हँसनि छटनि शशि छटनि लजावति, द्विगुनी दुति उजियारी।
पिक कोकिल जेहि मधुर बैन सुनि, लज्जित भे बनचारी ।।
खजन कजन मीन कुरङ्गन, दृग छवि छीन निकारी।
केतन बास दियो जल भीतर, केतन विपिन मँझारी ।।
किमि कहि जाय कनक लतिका जड, सिय भुजसरिस विचारी।
तारन सहित पूर्णिमा रजनी, लखि लजाति तन सारी ।।
चरण चारु नख अवलि विमडित, बिन आवक अरुणारी।
बसी विश्व की कोमलता तहँ, करि कचन सो रारी ।। →

सर समीप गिरिजा गृह सोहा । बरनि न जाइ देखि मन मोहा[१] ॥

अर्थ—सीता के साथ सब सौभाग्यवती चतुर सखियाँ मनोहर वाणी से गीत गाती थी । तालाब के पास ही पार्वतीजी का मन्दिर शोभायमान था जिसका वर्णन नही किया जा सकता, देखने ही से मन मोहित हो जाता था ।

मज्जन करि सर सखिन्ह समेता । गई मुदित मन गौरिनिकेता ॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा । निज अनुरूप सुभग वर माँगा ॥

अर्थ—तालाब मे सखियो के साथ स्नान करके प्रसन्न चित्त से गौरीजी के मन्दिर मे गईं । बडे प्रेम से पूजा कर अपने योग्य श्रेष्ठ वर के हेतु प्रार्थना की ।

एक सखि सिय सग बिहाई । गई रही देखन फुलवाई ॥
तेइ दोउ बधु विलोके जाई[२] । प्रेमविवश सीता पहँ आई ॥

अर्थ—एक सखी सीताजी का सग छोड फुलवाडी देखने को गई थी । उसने दोनो भाइयो को जाकर देखा तो प्रेम मे मग्न होती हुई सीताजी के पास आई ।

दोहा—तासु दशा देखी सखिन्ह, पुलकगात जल नैन ।
कहु कारण निज हर्ष कर, पूछहि सब मृदुबैन[३] ॥२२८॥

अर्थ—जब सखियो ने उसकी ऐसी दशा देखी कि शरीर के रोम खडे हैं और नेत्रो मे (प्रेम के) आँसू डबडबा रहे है तब तो वे सबकी सब मधुर वाणी से पूछने लगी कि हे सखी ! तू अपने आनन्द का कारण तो कह ।

श्री रघुराज कहौ पटतर केहि, उपमा कविन जुठारी ।
महा मनोहर मूरति मुदकर, बार बार बलिहारी ॥

१. सर समीप गिरिजा गृह सोहा । बरनि न जाई देखि मन मोहा—सीता स्वयवर से—

(कवित्त)

हाटक कलश कल झलझलात ऊरध लौं तापर पताका हिलै बाँका श्री कृपानी को ।
सुभग कँगूरे शोभ पूरे अति रूरे लसैं बिहँसै विरचिहू की रचना विधानी को ॥
बिलसै अनूप यूप पाँति भाँति भाँतिन की जाति ना बखानी छबि मोहै मन बानी को ।
प्रभा सरसानी देखि भूलत सयानी 'बदि' सब सुखखानी धाम दुर्गा महरानी को ॥

२. तेइ दोउ बधु विलोके आई । प्रेमविवश सीता पहँ आईरामर—सायन रामायण से—

दोवई छन्द—हिय विचारि कुलकानि जानि तिय धर्म धीर कछु धारी ।
चली द्वैक डग परै न पग मग भई नेह मतवारी ॥
तहँ ते चलै फेरि फिरि लौटै इहि विधि करि बरिआई ।
झूमत झुकत चकित सी चितवत अली अलिन विच आई ॥

३. तासु दशा देखी सखिन्ह··· ··· ·· पूछहिं सब मृदु बैन—

(कवित्त)

एकै सङ्ग आई फुलवाई बात साँची कहु तनरुह छाई नीर नैनन बह री है ।
कप भरी 'ललित' विलोकी जात बावरी सी और भाँति गोत दशा और गति हेरी है ॥
बोलत न काहे नेक नेह री निबाहे सखी गदगद कठ कटु होत अति देरी है ।
एरी मैं हौं चेरी कहा विधि मति फेरी अरी मेरी सौंह साँची कहु कौन गति तेरी है ॥

देखन बाग कुँवर दुइ आये । वय किशोर सब भाँति सुहाये[१] ॥
श्याम गौर किमि कहौ बखानी । गिरा अनयन नयन बिन बानी[२] ॥

अर्थ—(सखी कहने लगी) दो राजकुमार जिनकी किशोर अवस्था है और जो सभी प्रकार से सुन्दर है, बाग की सैर करने आये है । एक तो श्यामले और दूसरे गोरे रग के है। उनका वर्णन मै कैसे करूँ क्योकि बाणी को तो नेत्र नही और नेत्रो के वाणी नही (अर्थात् जीभ जिसे वर्णन करने की शक्ति है उसे देखने की शक्ति नही और नेत्र जिन्हे देखने की शक्ति है उन्हे वर्णन करने की शक्ति नही। भाव यह कि देखने वाला कोई और है और वर्णनकर्त्ता कोई दूसरा है। साराश यह है कि—नैनन के नहिं बैन, बैन के नयन नही है) ।

सुनि हरषी सब सखी सयानी । सिय हिय अति उतकंठा जानी ॥
एक कहहि नृपसुत तेइ आली । सुने जे मुनि सँग आये काली ॥

अर्थ—साथ की सब सखियाँ सयानी तो थी ही, (ऐसी चतुराई की बात सुनते ही) प्रसन्न हुई और वे ताड गईं कि सीताजी के हृदय मे भी (देखने की) बडी लालसा है । (इतने मे) एक सखी बोल उठी, हे आली ! ये वे ही राजपुत्र है जिनके बारे मे सुना था कि विश्वामित्र मुनि के साथ कल आये थे ।

जिन निजरूप मोहनि डारी । कीन्हे स्वबस नगर नर नारी[३] ॥

---

१. देखन बाग कुँवर दुइ आये । वय किशोर सब भाँति सुहाये—

(कवित्त)

आये है कुमार कोऊ श्यामर सलोने गोरे नर सिर और अङ्ग सुखमान घरी सी ।
'ललित' निमेष तजि देखत ही नैन जिन्है पावत परम रँग सुरमणि ढेरी सी ॥
तोरत प्रसून दल कमल करन दोने कोटि कामवारे देखि होत मति चेरी सी ।
येरी हमै बावरी बतावो सही बावरी हौ तेरी सौह देखि हौ तौ ह्वै ही गति मेरी सी ॥

और भी—

पद—सखी री जो जै हौ वहि ओर ।
कहौ बनाय बनाय कछू नहिं राजकुँवर चितचोर ॥
जो न मानि है सीख सयानी पुनि न चली कछु जोर ।
'श्री रघुराज' हाल होई स्वइ जौन भयो अब मोर ॥

२. गिरा अनयन नयन बिन बानी—लाला मन्नीलाल (ब्रजचन्द) कृत रागविनोद से—

राग पीलू—निरखे अलि दोउ राजकिशोर ।
विचरत श्री मिथिलेश नृपति के बाग माहि चहुँ ओर ॥
श्याम गौर सुठि रूप राशि छबि भरी पोर ही पोर ।
वारिय दुति पै घन दामिनि रवि शशि रति मदन करोर ॥
बरनि सकौ केहि भाँति लुनाई मधुराई चितचोर ।
गिरा अनयन नयन बिन बानी रची विरचि कठोर ॥
मथि छबिजलधि रतन मनु काढे करि विधि यतन अथोर ।
चल ब्रजचन्द दिखाऊँ तुम को विनती करत निहोर ॥

३. जिन निजरूप मोहनी डारी । कीन्हे स्वबस नगर नर नारी—

क० आज तक दीख नाहिं जग्त मे सुहायमान शीलमान जैसो छैल श्यामलो सलोना है ।
जाकी ओर बिहँसि के विलोकत हैं एक वार भूल जात खानपान ताही निशि सोना है ॥
लाज कुल कानि धर्म कर्म सब छूटि जात मिथिला की नारिन को काह अब होना है ।
श्यामले की आँखिन मे राम सो सुजानसिंह जादू है कि मत्र है कि मूठ है कि टोना है ॥

बरणत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवशि देखियहि देखन योगू॥

अर्थ—जिन्होने अपनी सुन्दरता की मोहनी डालकर नगर के स्त्री-पुरुषो को अपने वश मे कर लिया है। उनकी शोभा को सब लोग जगह-जगह वर्णन कर रहे हैं। वे देखने के योग्य ही है, उन्हे अवश्य देखना चाहिये।

तासु वचन अति सियहि सुहाने। दरश लागि लोचन अकुलाने॥
चली अग्र करि प्रियसखि सोई। प्रीति पुरातन लखै न कोई॥

अर्थ—उसकी वाणी सीताजी को बहुत ही सुहावनी लगी और उनके नेत्र दर्शनो के लिये बेचैन हुए। सीताजी उसी अपनी प्यारी सखी को (जो रामचन्द्रजी को देख आई थी) आगे करके चली। उनकी पुरानी प्रीति को किसी ने न समझा (अर्थात् सीता-रूपधारिणी लक्ष्मी का जो सनातन प्रेम राम-रूपधारी विष्णुजी पर था उसे किसी ने न समझा, वे तो यही जानती थी कि सीताजी भी राजकुमारो के सौंदर्य की बडाई सुन उन्हे देखने को जा रही है)।

दोहा—सुमिरि सीय नारदवचन, उपजी प्रीति पुनीत[१]।
चकित विलोकति सकल दिशि, जनु शिशुमृगी सभीत॥२२९॥

अर्थ—(इतने ही मे) सीताजी को नारदजी के वचनो का स्मरण हो आया तो और भी पवित्र प्रीति उमगी, (इस हेतु) वे भौचक-सी हो चारो ओर इस प्रकार देखने लगी मानो हरिण की छौनी डर के मारे इधर-उधर देखती हो।

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि[२]। कहत लषन सन राम हृदय गुनि॥
मानहूँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा विश्वविजय कहँ कीन्ही[३]॥

अर्थ—हाथो के, पहुँचो के गहनो की, कमर के गहनो की तथा पैर के गहनो की ध्वनि सुनकर रामचन्द्रजी अपने हृदय मे विचार कर लक्ष्मण से कहने लगे (इस ध्वनि से प्रकट होता है कि) मानो कामदेव ने नगाडे पर चोब देकर ससार को जीत लेने की इच्छा दर्शाई हो (भाव यह कि सखियों समेत सीता के आभूषणो की ध्वनि से रामचन्द्रजी ने अनुमान किया कि सीता

---

१. सुमिरि सीय नारदवचन, उपजी प्रीति पुनीत—
इसकी कथा यो है कि सीताजी किसी समय पार्वतीजी का पूजन करने को जा रही थी, वही पर उन्हे नारदजी मिले। प्रणाम करने पर मुनिजी ने प्रसन्न हो यह आशीर्वाद दिया कि इसी पुष्प-वाटिका मे तुम्हे तुम्हारे भावी पति के दर्शन होगे। सो सीताजी को इस समय पर नारदजी के आशीर्वाद का स्मरण हो आया। इससे उनके हृदय मे राजकुमार पर पवित्र प्रेम उमगा।

२. ककन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि—जानकी स्तवराज भाषाटीका से—
सवैया—श्री रामप्रियापदभूषण की रव का बरनौ महिमा मति थोरी।
पक्ति लजी कलहसन की सिय जू तव नूपुर की ध्वनि सोरी॥
सुन्दर मन्द गँभीर मनोहर कौशलता तेहि मैं हूँ लखो री।
पीतम श्री रघुनन्दन के मन मोहन को जनु मत्र पढो री॥

३. मानहूँ मदन दुदुभी दीन्ही। मनसा विश्वविजय कहँ कीन्ही—सुमति मनरजन नाटक से—
सवैया—और किये तन को मन को यह मो पै चमू चढ़ि साजन लागी।
लै ऋतुराज समाज सबै सँग कोकिल कै रव गाजन लागी॥
दूरि कै धीर समीर लगे 'ललिते' लतिका बर राजन लागी।
जीतिबे को जग साजन साजि मनोज कि दुदुभि बाजन लागी॥

अब अपना रूप दिखाकर मुझे मोहित करेगी तो विश्व का स्वामी मैं जब इस प्रकार पवित्र प्रीति-रस मे डूब जाऊंगा तब मानो सब ससार ही को कामदेव जीत चुकेगा)।

अस कहि फिर चितये तेहि ओरा। सियमुखशशि भये नयन चकोरा[१] ।।
भये विलोचन चारु अचचल। मनहुँ सकुचि निमि[२] तजे दृगंचल ।।

अर्थ—इतना कहकर ज्योही पलटकर उस (ध्वनि) की दिशा मे देखने लगे तो सीताजी के चन्द्रस्वरूप मुख को देख इनके नेत्र चकोर की नाईं निहारने लगे। (रामचन्द्रजी के) सुन्दर नेत्र इस प्रकार टकटकी लगाकर रह गये मानो निमिराज ने लज्जा के कारण उनके पलको

---

१ सियमुखशशि भये नयन चकोरा—रामरसायन रामायण से—

दोहा—औचक राज किशोर की, परी दृष्टि इत आय।
जनकनदिनी रूप लखि प्यारे रहे लुभाय ।।
सियमुखपकज रस रसिक, रघुनदन मन भौर।
रम्यो सुछबि मकरद मे, कछु सुहात नहि और ।।

और भी श्री शिवजी के श्रीमुख से श्री जानकीजी के मुखश्री का वर्णन—
श्री पण्डित रामकान्ताशरणजी अवधपुर निवासी कृत

सवैया—कोटिन चन्द्र प्रभा छवि हारक हे मुखचन्द लली तव भासक।
ताप विनाशक रागिन के अनुमानिन के मन मध्य प्रकासक ।।
सन्त सुमानस कजन को मुद मोद मयी स्वप्रभा दरशायक।
राम सुनैन चकोर भरे तेहि मै हूँ भजौ सब भाँति विलासक ।।

२. निमि—सूर्यवशी इक्ष्वाकु राजा के सौ पुत्रो मे से दूसरे का नाम निमि था। यह गौतम के आश्रम के समीप वैजयत नाम का नगर बसाकर वही राज करता था। इसने ब्रह्मपुत्र वशिष्ठ की सहायता से अनेक यज्ञ किये। फिर एक बार बडा भारी यज्ञ करने के विचार से वशिष्ठजी के पास गये। वशिष्ठजी ने कहा कि मुझे अभी इन्द्र को यज्ञ कराने के निमित्त जाना है। वहाँ से लौटकर आऊगा तब तुम यज्ञ का आरभ करना। निमि ने जीवन को अस्थिर समझकर गौतम ऋषि को उपाध्याय बनाकर अनेक ऋषियो की सहायता से यज्ञ का आरभ कर दिया। वशिष्ठजी ने लौटकर जब ये हाल देखा, तब उन्होने क्रोधित होकर निमि को श्राप दिया कि तुम्हारी देह पतन पावे। निमि ने भी ऐसा ही श्राप वशिष्ठजी को दे दिया। दोनो के शरीर पतन हो गये। जब इनकी आत्माएँ ब्रह्मदेवजी के पास पहुँची तब ब्रह्माजी की आज्ञानुसार वशिष्ठ ने मैत्रावरुण द्वारा फिर से शरीर धारण कर लिया परन्तु निमि ने ब्रह्मदेव से प्रार्थना की कि शरीर धारण करने मे अनेक कष्ट होते हैं इस कारण मुझे विदेह ही रहने दीजिये। ब्रह्मदेव ने इसे मान्य कर लिया। तभी से विदेहरूपी निमि का वास प्राणियो के पलको पर रहता है, इसी से रामचन्द्रजी और सीताजी के परस्पर शृगारयुक्त विलोकन के समय गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है कि—'मनहु सकुचि निमि तजेउ दृगचल'। यज्ञ करने वाले ऋषियो ने निमि के निर्जीव शरीर की रक्षा करके यज्ञ समाप्त किया। इसके पश्चात् राज्य का अधिकारी किसी को न देख इन्होने इसी मृतक शरीर को मथन करके उसी मे से एक पुरुष निर्माण किया। उसी से उसका नाम मिथी रखा और इसी नाम पर वैजयत नगर का नाम मिथिला पडा। मिथी राजा की उत्पत्ति केवल पिता ही के शरीर से (बिना माता के सयोग से) हुई थी। इस हेतु ये जनक कहलाये और इनकी आत्मा विदेह रही, इससे विदेह भी कहलाये। इस कुल से उत्पन्न हुए राजा इसी समय से सूर्यवश से पृथक् होकर गौतम कुल वालो को उपाध्याय मानने लगे (देखो वाल्मीकीय रामायण, उत्तर काण्ड, सर्ग ५५-५७)।

को छोड दिया हो (अर्थात् रामचन्द्रजी के नेत्रो का पलक मारना बन्द हो गया, वे एकटक सीता की ओर देखते ही रह गये)।

देखि सीयशोभा सुख पावा। हृदय सराहत वचन न आवा ॥
जनु विरंचि सब निजनिपुणाई। विरचि विश्व कहँ प्रगटि दिखाई[1] ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी सीताजी की शोभा देख सुखी हुए, उनकी बडाई मन-ही-मन करने लगे परन्तु मुख से कुछ कह न सके। मानो ब्रह्मा ने अपनी सब चतुराई ही को रूप दे परमेश्वर को स्पष्ट दिखाया हो (अर्थात् ब्रह्मा ने सीताजी के बनाने मे मानो अपनी शक्ति भर प्रवीणता दिखाई हो)।

सुन्दरता कहँ सुन्दर करई। छबिगृह दीपशिखा जनु बरई ॥
सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरिय विदेहकुमारी ॥

अर्थ—(शोभा ऐसी थी कि) सुन्दरता को भी शोभा सहित करती थी और मानो छवि के घर ही दीये की ज्योति प्रकाशित हो रही हो (भाव यह है कि बडी अपूर्व सुन्दर छवि सीताजी की थी)। कवियो ने सब प्रकार की उपमा दूसरी स्त्रियो को देकर मानो जूठी कर डाली हैं, अब जनकपुत्री का मिलान किससे किया जावे ?

दोहा --सियशोभा हिय बरनि प्रभु, आपनि दशा विचारि।
बोले शुचि मन अनुज सन, वचन समयअनुहारि ॥२३०॥

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी सीताजी की सुन्दरता का मन-ही-मन वर्णन कर तथा अपनी दशा पर विचार कर शुद्ध मन से समय के अनुसार लक्ष्मण से कहने लगे।

तात जनकतनया यह सोई। धनुषयज्ञ जेहि कारण होई[2] ॥
पूजन गौरि सखी ले आई। करत प्रकाश फिरति फुलवाई ॥

---

१. जनु विरचि सब निज निपुणाई। विरचि विश्व कहँ प्रगटि दिखाई—ठीक यही आशय 'कुमार सभव' के प्रथम सर्ग मे पार्वतीजी के विषय मे कहा गया है, यथा—

श्लोक—सर्वोपमा द्रव्य समुच्चयेन, यथा प्रदेश विनिवेशितेन।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थ सौन्दर्य दिदृक्ष येव ॥४९॥

अर्थात् सम्पूर्ण उपमा की सामग्री (यथा चन्द्र, अरविन्द्र, शुक्र, मृग, सिंह, प्रवाल, मुक्ता आदि) एकत्र करके प्रत्येक को योग्य स्थान पर जमा-जमाकर बडे ही परिश्रम से ब्रह्माजी ने मानो सम्पूर्ण सुन्दरता को एक ही स्थान मे देखने के निमित्त पार्वतीजी को निर्माण किया हो।

और भी—

क०—कोमलता कज ते गुलाब ते सुगन्ध लैके चन्द्र ते प्रकाश लैके उदित उजेरी है।
रूप रति आनन ते चातुरी सुजानन ते नीर लै निमानन ते कौतुक निबेरो है ॥
'ठाकुर' कहत मसालो यौं विधि कारीगर रचना निहार को न होत चित चेरो है।
कचन ते रङ्ग लै स्वाद लै सुधा को वसुधा को सुख लूटि कर बनायो मुख तेरो है ॥

२. तात जनकतनया यह सोई। धनुषयज्ञ जेहि कारण होई—

क०—जाकी देह आगे दुरि जात दुति दामिनी की दीपित कितीक नीक कुदन कनक की।
नीरज से नैन हैं न बैन ऐसे कोकिल के उपजै न उपमा अलौकिक कवन की ॥
मद-मंद चाल सों मराल हू को मारै मान मनहि चलावै धुनि भूषण भनक की।
जासु हित होय धनुयज्ञ तयारी भारी सोई देखौ तात जात तनयाजनक की ॥

अर्थ—हे भाई ! यह जनक की वही कन्या है जिसके लिए धनुष यज्ञ हो रहा है। यह सखियो को साथ लेकर गौरीजी के पूजन निमित्त आई है सो सब फुलवारी को सुशोभित करती फिरती है।

जासु विलोकि अलौकिक शोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा[१] ॥
सो सब कारण जान विधाता। फरकहि सुभग अग सुनु भ्राता ॥

अर्थ—जिसके अपूर्व रूप की छटा देखकर स्वभाव ही से पवित्र मेरा मन भी चलायमान हो गया। इसका पूरा-पूरा कारण तो दैव ही जाने, परन्तु हे भाई ! सुनो, मेरे दाहिने अग (नेत्र, भुजा आदि) फडक रहे है।

रघुवंशिन कर सहज सुभाऊ। मन कुपथ पग धरै न काऊ ॥
मोहि अतिशय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहु परनारि न हेरी ॥

अर्थ—रघुवशियो का तो सहज ही स्वभाव है कि वे मन से भी बुरे मार्ग मे पैर रखने का विचार नही करते। फिर मुझ को तो अपने हृदय का बडा विश्वास है कि जिसने सपने मे भी दूसरी स्त्री को नही ताका।

जिनके लहहि न रिपुरण पीठी। नहि लावहि परतिय मन डीठी[२] ॥
मंगन लहहि न जिनके नाही। ते नर वर थोरे जग माही ॥

अर्थ—जिन लोगो की पीठ उनके शत्रु नही देख पाते (अर्थात् जो शत्रुओ की ओर पीठ कर लडाई से भागते नही), जो दूसरे की स्त्री की ओर नही निहारते और जो भिखारियो को विमुख नही फेरते ऐसे उत्तम पुरुष ससार मे कम है।

दोहा—करत बतकही अनुजसन, मन सियरूप लुभान।
मुखसरोज मकरंद छबि, करत मधुप इव पान[३] ॥२३१॥

अर्थ—इस प्रकार से लक्ष्मणजी से बातचीत कर रहे थे परन्तु मन तो सीताजी के स्वरूप पर लट्टू हो रहा था और वे उनकी कमलस्वरूप मुखछवि के रस का भौरे की नाईं स्वाद ले रहे थे (अर्थात् सौदर्य पर मोहित हो उसे एकटक निहार रहे थे)।

चितवति चकित चहूँ दिशि सीता। कहँ गये नृपकिशोर मन चीता[४] ॥

---

१. जासु विलोकि अलौकिक शोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा—राम स्वयवरसे—
सवैया—आवत ही लखि नेसुक ताहि लखी नहि आँखिन मे अस शोभा।
शारद शेश महेश गणेश न भाषि सकै उर राखि कै शोभा ॥
श्री रघुराज सुनो सहजै मन मेरो पुनीत सोऊ लखि लोभा।
छोडि कहौ छल छदन को अस आजु लौ क्षोणि मे चित्त न छोभा ॥

२. जिनके लहहिं न रिपुरण पीठी। नहिं लावहिं परतिय मन डीठी—राम स्वयवर से—
सवैया—जै बो न लायक लाल उतै परदारन के बिच धर्म विचारी।
आये इतै मुनिशासन लै नहि जानी रही मरयाद हमारी ॥
रीति है धर्म धुरीनन की रघुवशिन की जग जाहिर भारी।
पीठि परै नहि सगर मे नहि दीठि परै सपन्यो परनारी ॥

३. करत मधुप इव पान—शकुन्तला नाटक से—
गीत—भ्रमर तुम मधु के चाखनहार।
आम की रस भरी मृदुल मजरी तामो प्रीति अपार ॥

४. कहँ गये नृपकिशोर मन चीता—

→

जहँ बिलोकि मृगशावकनयनी। जनु तहँ बरिस कमलसित श्रयनी॥

अर्थ—सीताजी चकित होकर चारो ओर देखने लगी कि मनभावन राजकिशोर कहाँ गये। जहाँ पर ये मृगछौना सरीखे नेत्रवाली सीताजी देखती थी वही-वही मानो सफेद कमलो की-सी वृष्टि हो जाती थी (अर्थात् जिस स्थान पर सीताजी नेत्रो की पुतली घुमाकर देखती थी उसी ओर सम्पूर्ण सखियाँ भी देखने लगती थी, सो ऐसा मालूम होता था कि मानो सफेद कमलो की वर्षा हो जाती हो। कारण, नेत्रो के इधर-उधर घुमाने मे सफ़ेद भाग विशेष दिखाई देने लगते थे और नेत्रो की उपमा कमलो से दी जाती है इस हेतु प्रत्येक सखी के सफेद नेत्रभाग सीताजी के नेत्रो की नाईं होने से सफेद कमलो की वर्षा ही सी दिखाई पडती थी)।

दूसरा अर्थ—जहाँ-जहाँ सीताजी देखती थी (और रामचद्रजी न दिखाई देते थे) वही-वही सीताजी को मानो कमलसित जो ब्रह्मा है उनके वर्षो की श्रेणी-सी समझ पडती थी (अर्थात् वह थोडा-सा वियोग काल भी हजारो वर्ष की नाईं समझ पडता था जैसा कि वियोग दशा मे बहुधा हुआ ही करता है)।

तीसरा अर्थ—जहाँ-जहाँ सीताजी शुद्धभाव से देखती थी (अर्थात् अमृत भरी जिलाने वाली स्वच्छ श्वेत दृष्टि से देखती थी, इसी भाव मे उनकी सयानी सखियाँ भी देखती थी। इस हेतु उसी-उसी स्थान पर मानो सफेद कमलो का झला-सा बरस जाता था। भाव यह कि शुद्ध प्रीति के अमृत भरे नयनो का रग श्वेत और उनका गुण जिलाने वाला होता है जैसा बिहारी की सतसई मे कहा है।

दोहा—अमी हलाहल मद भरे, सेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुक-झुक परत, जेहि चितवत इक बार॥

लता ओट तब सखिन लखाये। श्यामल गौर किशोर सुहाये॥
देखि रूप लोचन ललचाने। हर्षे जनु निज निधि पहिचाने॥

अर्थ—तब सखियो ने श्यामले और गोरे सुहावने रूप के किशोर अवस्था वालो को लता की ओट मे दिखलाया। उनके रूप को देखते ही सीताजी के नेत्र इस प्रकार ललचाने लगे मानो उन्होने अपने धन-समूह को पहिचान लिया हो (भाव यह कि सीताजी ने अपने परम प्रिय रामचद्रजी को पहिचान लिया)।

थके नयन रघुपति छबि देखी[१]। पलकन हूँ परिहरी निमेखी॥
अधिक सनेह देह भइ भोरी। शरद शशिहि जनु चितव चकोरी[२]॥

अर्थ—रामचन्द्रजी की शोभा देख सीताजी के नेत्र इस प्रकार स्थिर हो गये कि पलको

गीत—चले गये दिलके दामनगीर।
जब सुधि आवै तुम्हरे दरश की उठत करेजवा पीर॥
नटवर वेष नयन रतनारे सुन्दर श्याम शरीर।
सूरश्याम प्रभु तुम्हरे दरश को अँखियाँ होत अधीर॥

१. थके नयन रघुपति छबि देखी—
क०—बानी नेह सानी सुखदानी मनमानी बहु प्रीति सरसानी सुनि रूप की निकाई को।
सग ले सहेली अलबेली जो नवेली सबै देखन चली हैं घनश्याम रघुराई को॥
जनकदुलारी सुकुमारी मोद भारी हिये 'रसिक बिहारी' सो निहारी चहुँ घाई को।
निरखत झाँकी छबि बाँकी देह थाकी सिया प्रेममद छाकी लखि लाल की लुनाई को॥

२. अधिक सनेह देह भइ भोरी। शरद शशिहि जनु चितव चकोरी—रामरसायन रामायण से—

→

का खुलना व लगना बन्द हो गया (अर्थात् सीताजी उन्हें टकटकी बाध कर देखने लगी)। विशेष प्रेम मे देह की सुध इस प्रकार भूल गईं जिस प्रकार चकोरी शरद ऋतु के (पूर्ण) चन्द्रमा को देखकर मग्न हो जाती है।

लोचनमग रामहि उर आरी। दीन्हे पलककपाट सयानी ॥
जब सिय सखिन प्रेमवश जानी। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी ॥

अर्थ—लोचनरूपी द्वार से श्री रामचन्द्रजी को हृदय मे लाकर चतुर सीताजी ने नेत्रो के पलकरूपी किवाड बन्द कर लिये (अर्थात् रामचन्द्रजी के ध्यान मे सीताजी नयन मूँद कर बैठ रही)। जब सखियो ने सीताजी को प्रेम के अधीन जान लिया तब तो वे कुछ न कह सकी परन्तु मन मे लज्जित हुईं।

दोहा—लता भवन ते प्रगट भे,[१] तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु युग विमलविधु, जलदपटल बिलगाइ ॥२३२॥

अर्थ—उसी समय दोनो भाई लताओ के मडप से बाहिर निकल आये मानो दो स्वच्छ चन्द्रमा बादल के परदे को अलग कर निकल पडे हो। साराश यह कि लताओ की ओट से दोनो भाई मैदान मे दिखाई दिये।

शोभासीव सुभग दोउ वीरा। नील पीत जलजात शरीरा ॥
काकपक्ष शिर सोहत नीके। गुच्छा बिच बिच कुसुमकली के ॥

अर्थ—दोनो वीर बडे सुन्दर और शोभा की मानो हद्द ही थे और उनके शरीर पर (क्रमानुसार) नीले और पीले कमल के समान मस्तक पर बालो के पट्ठे सुशोभित थे जिनके बीच-बीच मे फूलो की कलियो के गुच्छे लगे थे।

भाल तिलक श्रम बिदु सुहाये। श्रवण सुभग भूषण छवि छाये ॥
विकट भृकुटि[२] कच घूँघरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे ॥

अर्थ—माथे पर तिलक पसीने की बूँदो के साथ शोभायमान थे और कानो मे सुन्दर आभूषणो की शोभा छा रही थी। टेढी भौहे, घूँघरवाले बाल और नये कमल के समान रतनारे नेत्र थे।

हरिगीतिका छन्द –इहि भाँति सिय जू सखिन युत रस नेह के छाकी घनी।
प्रकटे लतन की ओट ते ताही समैं रघुकुल मनी ॥
आनन्द हिय उमगो रहा जकि चित्र सी सब जहँ तही।
मानो शरद निशि चन्द्र को इकटक चकोरी लखि रही ॥

१. लता भवन ते प्रगट भे—
सवैया—प्यारी लखो इन श्यामरे को अति ही द्युति शोभन रूपअपार के।
जाति सराही न कोमलता 'ललिते' शुभआनन चारु हजार के ॥
कैसे लतान के बाहिर हैं कढे देखत ही जे हरैं मद मार के।
टारि कै मेघन की पटली निकरे जनु पूरनचन्द कुँवार के ॥

२ विकट भृकुटि—नखसिख से—
छन्द—कीधो काम कमल लिखी है बक छद तुक सरस सिगार सुरीति बिसतार की।
कीधौं मुख पकज पै भँवर लुभाय रह्यो पाँय फैलाय सेज सोभन सँभार की ॥
कैधौ है 'बिहारी' बिनगुन की कमान युग सुखमा अपार भरी धरी श्याम मार की।
वदन मयक ते कढ़ी है कै कलक कला बक भृकुटी है राम अवध अधार की ॥

चारु चिबुक नासिका कपोला। हास विलास लेत जनु मोला[१] ॥
मुखछवि कहि न जाइ मोहि पाही। जेहि बिलोकि बहुकाम लजाही ॥

अर्थ—ठुड्डी, नाक और गाल सुन्दर तथा हँसने की छटा मानो (चित्त को) मोल ही लिये लेती थी (अर्थात् उनके हँसने मे वश करने की शक्ति थी)। उनके मुख की शोभा तो मुझ से कही नही जाती, उसे देखकर तो अनेक कामदेव लज्जित हो जाते थे।

उर मणि माल कबु कल ग्रीवा। काम कलभकर भुजबलसीवा ॥
सुमन समेत वाम कर दोना। सॉवर कुँवर सखी सुठि लोना[२] ॥

१. हास विलास लेत जनु मोला—प्रेम पीयूषधारा से—

खेमटा—चलो देखे अवध के लाल बिहँसि मन लेइ रहे ॥
अलकै बिखरि रही मुख ऊपर, अजब अनोखी चाल,
बिहँसि मन लेइ रहे ॥
अँखियाँ दोउ रतनार सखी री, बिधु सम सोहत भाल,
बिहँसि मन लेइ रहे ॥
मोहनिदास करै वश अपने, डारि प्रेम को जाल,
बिहँसि मन लेइ रहे ॥

२ सुमन समेत वामकर दोना। साँवर कुँवर सखी सुठि लोना—

सवैया—सुर सिद्ध महर्षि सुर्रषि सबै, जिनके पद पूजत सेव करै।
सुर पादप फूलन को जिन पै, अज शकर हू बरषै बगरै ॥
'रघुराज' सोई निज भक्त अधीन, विदेह की वाटिका मे विहरै।
मुनि कौशिक शासन मानि सुखी, कर फूलन तोरिकै दौन भरै ॥

और भी, राग विनोद से—

राग सारग मे—हौ लखि आई आजु बाग बिच कुँवर सलोने री ॥
कोटि रूप शृगार के, धन दामिनि रति मार।
रवि शशि लज्जित होत सब, लखि शोभ अपार ॥
राज हसन के छोने री ॥
निरखत ही मोहत चितै, छवि सागर सुख ऐन।
किमि बरनौ दृग बिन गिरा, बिन बानी तिमि नैन ॥
मनौ पढि डारत टोने री ॥
नील पीत सोहत बसन, कटि निखंग कर बान।
कध शरासन मुकुट शिर, कुडल छवि श्रुति खान ॥
भाल दिये बिन्दु दिठोन री ॥
लतन ओट ते कढत यो, दीपति दिपति अमन्द।
सघन पटल घनफारि मनु, कढि आये युगचन्द ॥
लिये कर फूलने दोने री ॥
ऐसे नहिं देखे सुने, रूप राशि सुकुमार।
मजुलता मृदुता भरी, पोर पोर सुख सार ॥
बसी सुठि सुगन्ध सोने री ॥
चलि देखौ अबही अजी, दृग भरि रूप अनूप।
धन्य फाग ब्रजचन्द जिन, जन्मे रानी भूप ॥
न ऐसे भये न होने री ॥

अर्थ—हृदय पर रत्नो की माला धारण किये हुए थे, उनकी गर्दन शख की नाई शोभायमान थी (अर्थात् ऊँची, पुष्ट और तीन रेखाओ सहित) उनकी भुजाये बडी बलिष्ठ काम-रूपी हाथी के बच्चे की सूँड के समान थी। बाये हाथ मे फूलो से भरे हुए दोने लिये थे। हे सखी ! उनमे से श्यामले रग वाले बहुत ही सुन्दर स्वरूपवान् है।

दोहा—केहरि कटि पट पीत धर, सुखमा शीलनिधान।
देखि भानुकुल भूषणहि, बिसरा सखिन अपान[१] ॥२३३॥

अर्थ—सिंह के समान कमर वाले पीताम्बरधारी शोभा और शीलयुक्त सूर्यवश के शिरोमणि श्री रामचन्द्रजी को देखकर सखियो को अपने शरीर की सुध भूल गई।

धरि धीरज इक सखी सयानी। सीता सन बोली गहि पानी ॥
बहुति गौरि कर ध्यान करेहू। भूप किशोर देखि किन लेहू[२] ॥

अर्थ—एक चतुर सखी धीरज धर के सीताजी का हाथ पकडकर कहने लगी, कि गौरीजी का ध्यान फिर कर लेना, अभी राजकुमारो को क्यो नही देख लेती !

सकुचि सीय तब नयन उघारे। सन्मुख दोउ रघुसिह निहारे ॥
नख शिख देखि राम की शोभा। सुमिरि पिता प्रण मन अति छोभा[३] ॥

अर्थ—(वचनो को सुन) लज्जित हो जब सीताजी ने नेत्र खोले तो उन्होने अपने सामने दोनो रघुकुल वीरो को देखा। पैर मे सिर तक रामचन्द्रजी की शोभा देखी परन्तु पिताजी के प्रण का विचार करते ही चित्त मे बडा खेद हुआ।

परवश सखिन लखी जब सीता। भयउ गहरु सब कहहि सभीता ॥

---

१ देखि भानुकुल भूषणहिं, बिसरा सखिन अपान—प्रेम पीयूषधारा से—

दादरा—मो मन बसि गयो अवध बिहारी ॥

जनक बाग मे गई रही मैं, बीनत कुसुम फिरत फुलवारी।
वा छवि को कहँ लगि हौ बरनौ निरखत तन मन धन सब वारी ॥
ता छिन ते बावरि भइ डोलौ, जा छिन ते वह रूप निहारी।
"मोहनिदास" प्रेम की गाँसी, मो हिय आनि लगी अति भारी ॥

२. बहुरि गौरिकर ध्यान करेहू। भूप किशोर देखि किन लेहू ॥—

पद—जनकतनया तजि गौरी ध्यान।

लखि लीजै लुकि राज लाडिलो, अस सुन्दर नहि आन ॥
खजन कजन मृगन मीनगण लोचन लखत परान।
मजु मयक मरीचि मन्द परि तकि माधुरि मुसुक्यान ॥
कोटि मदन मद कदन वदन छवि होनो जासु समान।
घटत बढत दिन प्रति तारापति सोच यही पियरान ॥
सकल सुकृत फल कोटि जन्म को देहि जो गौरि इशान।
तौ "रघुराज" राज ढोटा दोउ करहिं नैन थल थान ॥

३. नख शिख देखि राम की शोभा। सुमिरि पिताप्रण मन अति छोभा—

(सवैया)

पितु के प्रण की सुधि कै पुनि सो पछताति मनै नहिं धीर धरै।
हरको धनु है अति ही कठिनै महिपालन नहि टारो टरै ॥
"रघुराज" महा सुकुमार कुमार कहो किमि टोरि है मजु करै।
विधि कैसी करौं इनही के गरे मम हाथन सो जयमाल परै ॥

पुनि आउब इहि बिरियाँ काली[1] । अस कहि मन बिहँसी इक आली ।।

अर्थ — जब सखियो ने देखा कि सीताजी तो दूसरे के अधीन हो रही हैं(अर्थात् रामचन्द्रजी के प्रेम मे पग गई है)तब तो सब की सब डर के मारे कह उठी कि देरी हो गई है। (इतने ही मे) एक सखी यह कहकर कि 'पुनि आउब इहि बिरियाँ काली' मन ही मन मुसकराने लगी।

सूचना —'पुनि आउब इहि बिरियाँ काली' इन शब्दो के विषय मे गोस्वामीजी आगे लिखते है कि 'गूढ गिरा सुनि सिय सकुचानी'। इसमे स्पष्ट है कि इन मे बहुत गूढ भाव भरा हुआ है सो यो कि—

(१) 'इसी समय कल फिर आवेगी' अर्थात् आज विशेष प्रेम के कारण बहुत देरी हो चुकी है सो जल्दी घर चलो, कल फिर आवेगी।

(२) आज तुमने पूजा के हेतु यहाँ आकर इतनी देर लगाई है सो 'कल फिर इसी समय आ सकोगी क्या ?' अर्थात् माताजी कल न आने देवेगी।

(३) राजकुमारो को यहाँ एकान्त मे देख लेने का सुअवसर आज ही मिला है, 'कल फिर क्या ऐसा समय आवेगा' अर्थात् नही आवेगा, कारण धनुषयज्ञ हो चुकेगा।

(४) सखी यह दर्शाती है कि अब चलो घर चले, कल यही समय फिर आवेगा अर्थात् कल इसी समय धनुषयज्ञ होगा। वहाँ सब राजाओ के साथ ये राजपुत्र भी आवेगे तब उन्हे फिर देख लेना।

गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयउ विलब मातु भय मानी ।।
धरि बड़ि धीर रामउर आनी। फिरी अपनपौ पितुवश जानी ।।

अर्थ—सखी के ऐसे गूढ वचन सुनकर सीताजी लज्जित हुईं और जब जाना कि देरी हुई तो माताजी (की अप्रसन्नता) का भय माना और बडा ही धीरज धर कर तथा रामचन्द्रजी को हृदय मे धारण कर लौटी। तो भी अपनी स्वाधीनता को पिता के अधीन समझा (अर्थात् स्वयवर का यही अभिप्राय है कि लडकी अपनी इच्छानुसार 'वर' को स्वीकार कर ले परन्तु यहाँ तो स्वयवर पिता के प्रण पर निर्भर था।

दोहा—देखन मिसु मृग विहँग तरु, फिरै बहोरि बहोरि[2]।
निरखि निरखि रघुवीर छबि, बाढ़ै प्रीति न थोरि ।।२३४।।

अर्थ—पशु, पक्षी और वृक्षो को देखने के बहाने से बारम्बार लौटती थी और रघुनाथ की सुन्दरता को देख-देखकर प्रीति अधिक बढती जाती थी।

जानि कठिन शिवचाप बिसूरति। चली राखि उर श्यामल मूरति[3] ।।

---

१. पुनि आउब इहि बिरियाँ काली—

सवैया—ह्वै गै बिलम्ब जु बैठी इतै अब अब गये बिन कोप करैगी।
पूजन बाकि अहै जगदब को लब भये रवि बेला टरगी ।।
श्री रघुराज निहारि लई मन की उपजी नहि फेरे फिरैगी।
आउब काल्हि यही बिरियाँ इत गौरि कृपा सब पूरी परैगी ।।

२ देखन मिसु मृग विहँग तरु, फिरै बहोरि बहोरि—

सवैया—देखै बहोरि बहोरि कुरगन त्योही विहगन भृंगन सीता।
तामिसि राजकुमार विलोकति होत अघाउ न चित्त पुनीता ।।
लालच लागी विलोकन की इत त्यों उत है जननी ते सभीता।
खेलत चंग से चित्त चली ज्यों बँधी 'रघुराज' के प्रेम के फीता ।।

३. चली राखि उर श्याम मूरति—राम स्वयवर से—

→

अर्थ—शिवजी के कठोर धनुष का स्मरण कर विशेष दुखित हुई तो भी हृदय मे श्यामले रूप को धारण करके लौट आई (इस अभिप्राय से कि ये ही मेरी मनोकामना सिद्ध करेगे)।

सूचना—कोई-कोई पण्डित इसमे यह शका करते है कि जब सीताजी ने शिवजी के धनुष को कठोर समझ लिया तो फिर श्यामली मूर्ति का हृदय मे धाण करना अयोग्य समझ पडता है इस हेतु इस पक्ति का यो अर्थ करते है—

दूसरा अर्थ—सीताजी ने शिवजी के कठोर धनुष को बिसूरत अर्थात् टूटा ही समझ लिया, इस हेतु रामचन्द्रजी की श्यामली मूर्ति को हृदय मे धारण कर लौटी।

प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख सनेह शोभा गुणखानी[१] ॥
परम प्रेम मय मृदुमसि कीन्ही। चारु चित्त भीतर लिखि लीन्ही ॥

अर्थ—रामचन्द्रजी ने सुख, प्रेम, सुन्दरता और गुणो से भरी-पूरी जानकी को जाते हुए देखा। तब तो उन्होने अपने पूर्ण प्रेम की मानो उत्तम स्याही से अपने चित्त के भीतर उनका चित्र खीच लिया (भाव यह कि अधिक प्रेम से उनको अपने हृदय मे धारण किया)।

गई भवानी भवन बहोरी। वदि चरण बोली कर जोरी।
जय जय जय गिरिराजकिशोरी। जय महेशमुखचद चकोरी ॥

अर्थ—फिर से गौरीजी के मदिर मे गई और उनके चरणो की वदना कर हाथ जोड कर कहने लगी। हे श्रेष्ठ गिरिराज नदिनी! तुम्हारी जय हो, जय हो! हे शिवजी के चन्द्ररूपी मुख को चकोरी के समान निहारने वाली, तुम्हारी जय हो।

जय गजवदन[२] षड़ानन माता। जगत जननि दामिनि द्युतिगाता ॥

सवैया—दूर सिधारत जानि कै जानकि पाटि तहाँ अपनो मन कीन्ही।
प्रेम तरगन रग अनेकन त्यो मति की लिखनी कर दीन्ही ॥
नेह की स्याही जलै अनुराग को श्रीरघुराज पिया निज चीन्ही।
श्री रघुवीर की यो तसवीर बनाइ सिया हिय धरि लीन्ही ॥

इसके पश्चात् भवानी के भवन मे तो आई परन्तु—(रामचन्द्र भूषण से)—

कवित्त—बाग लतान के ओट लखी, बर ब्रह्म विलास हिये फरक्यो परै।
दोने भरे कर कज प्रसून, गरे बनमाल को त्यौ लरक्यो लरै ॥
मन्दिर आई सकोच सनी, मन ही मन भावरै मे भरक्यो भरै।
सावनी श्याम घटा रँग रामको, मैथिली लोचन मे खरक्यो करै ॥

१. सुख सनेह शोभा गुणखानी—चारो विशेषणो की विशेषता कविजी पहिले ही पृथक्-पृथक वर्णन कर आये है, यथा—
(१) सुख की खानि—देखि सीय शोभा सुख पावा। हृदय सराहत वचन न आवा ॥
(२) सनेह की खानि—अधिक सनेह देह भइ भोरी। शरद शशिहि जनु चितव चकोरी ॥
(३) शोभा की खानि—सुन्दरता कहँ सुन्दर करई। छवि गृह दीप सिखा जनु बरई ॥
(४) गुण की खानि—देखन मिसु मृग विहँग तरु, फिरै बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुवीर छवि, बाढै प्रीति न थोरि ॥

२. गजवदन—मत्स्यपुराण मे कथा है कि एक बार पार्वतीजी ने अपने शरीर को उबटन लगाया। शरीर से अलग किये हुए उबटन का इन्होने एक पुतला बनाया और खिलवाड की रीति से उससे हाथी की नाईं सूड बना दी। फिर वह खेल समझकर उन्होने उस पुतले को पानी मे डाल दिया। उसी समय उस पुतले से एक पुरुष निकला। उसे पार्वतीजी ने→

नहि तव आदि मध्य अवसाना । अमित प्रभाव वेद नहि जाना ।।
भव भव विभव पराभव कारिणि । विश्व विमोहनि स्ववशविहारिणि ।।

अर्थ —हे गणेशजी और स्वामि कार्तिक की माता, हे ससार के उत्पन्न करने हारी, बिजली के समान प्रकाशित शरीर वाली तुम्हारी जय हो ! न तो तुम्हारा आदि है, न मध्य है और न अत है। तुम्हारी अपरम्पार महिमा को वेद भी नही जानते। ससार की उत्पत्ति, पालन और नाश करने वाली तुम्ही तो हो तथा ससार को मोहित करने वाली और अपनी इच्छा से विहार करने वाली भी हो।

दोहा—पतिदेवता सुतीय महँ, मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न कहि सकहि, सहस शारदा शेष ।।२३५।।

अर्थ—हे माता ! जितनी उत्तम पतिव्रता स्त्रियाँ है उनमे आप की गणना पहिले है, आपकी अमित बडाई तो सहस्रो शारदा और शेषनागजी भी नही कर सकते।

सेवत तोहि सुलभ फल चारी । वरदायिनि त्रिपुरारि पियारी[1] ।।
देवि पूजि पदकमल तुम्हारे । सुर नर मुनि सब होहि सुखारे ।।

अर्थ हे वर देने वाली, शिवप्रिये ! तुम्हारी सेवा करने से अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारो फल सुगम हो जाते हैं। हे देवी ! तुम्हारे कमलस्वरूप चरणो को पूजने मे देवता, मनुष्य और मुनिगण सब सुखी होते हैं।

मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उरपुर सब ही के।।
कीन्हेउ प्रकट न कारण तेही । अस कहि चरण गहे वैदेही[2] ।।

पुत्र कहके पास बुलाया। जब वह समीप आया तो विनायक नाम से उसे सब रुद्रगणो का अधिकारी बना दिया। इसी से इनका नाम गणपति भी हुआ और हाथी की सूँड सरीखा मुँह होने के कारण ये गजानन गजवदन आदि नाम से प्रसिद्ध हुए। पार्वतीजी ने इन्हे अपना पुत्र कहा, इस हेतु ये शिवपुत्र, शिवलाल आदि नाम से भी प्रसिद्ध हैं। गणेश आदि पुराणो मे यही कथा कुछ अदल-बदल कर लिखी है।

इनके प्रथम पूज्यपद पाने की कथा इसी काण्ड मे 'महिमा जासु जान गणराऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ' की टिप्पणी मे है।

१ सेवत तोहि सुलभ फल चारी। वरदायिनि त्रिपुरारि पियारी—

क०—तुही वेद बानी रमा रूप-गुणखानी तूही तूही निरवानी पचभूत मे समानी है।
तुही योगध्यानी परमातमा भवानी तूही तूही किरपानी दास हाथन बिकानी है।।
'बदी कवि' तूही सूर्य चंद्र मे प्रकाशमानी तूही ठकुरानी सब विश्व मे प्रमानी है।
जीव हितमानी ईश कला प्रगटानी तूही मोहि बरदानी एक तूही शिवरानी है।।

२ मोर मनोरथ जानहु नीके .... अस कहि चरण गहे वैदेही—

सवैया—हे गिरिराजसुता शिव आनन चन्द्र चकोर समान अहौ।
आदि न मध्य न अन्त अहै चिरकाल से शम्भु के सग रहौ।।
तुम जानति हौ सबके हिय की 'बलदेव' मनोरथ जानति हौ।
प्रकट्यो नहि कारण है यहि कारण कारण जानि सबै निबहौ।।

और भी, कुडलिया रामायण से—

कुंडलिया—पूजि विविध विधि पाँय परि विनती सीय सुनाय।
आदि अन्त त्रैलोक तू स्ववश विहारिणि माय।।

अर्थ—मेरी इच्छा को तुम भली भाति जानती हो कारण तुम तो सब ही के हृदय-स्थल मे रहती हो। इसी हेतु मैंने (अपना मनोरथ) स्पष्ट नही कहा, ऐसा कह कर सीताजी ने उनके चरण पकडे।

विनय प्रेमवश भई भवानी। खसी माल मूरति मुसकानी[१] ।।
सादर सियप्रसाद शिर धरेऊ। बोली गौरि हर्ष उर भरेऊ ।।

अर्थ—सीताजी की विनती पर पार्वतीजी को इतना प्रेम उमगा कि उनके शरीर से एक माला खसक पडी और वे मुसकराने लगी (प्रसन्नता से प्रसाद रूप माला गिरा दी और सीताजी की पति के हेतु दबी हुई प्रार्थना सुनकर मुसकराई)। सीताजी ने आदरपूर्वक उस माला को अपने शीश पर धारण किया तब तो गौरीजी का हृदय प्रसन्नता से इतना भर गया कि वे इस प्रकार बोलने लगी—

सुनु सिया सत्य असीस हमारी। पूजिहि मनकामना तुम्हारी ।।
नारदवचन सदा शुचि साँचा। सो वर मिलिहि जाहि मन राँचा[२] ।।

स्ववश विहारिणि माय मनोरथ जानत ही के।
प्रकट प्रभाव प्रताप अगम वरदान शची के ।।
शची शारदा हरि तिया सेय सेय सब सुख भरि।
जयजयजय गिरिपतिसुता विविध विनय सिय पाँय परि ।।

१ विनय प्रेमवश भई भवानी। खसी माल मूरति मुसकानी—
इस कथन मे 'खसी माल' और 'मूरति मुसकानी' ये दोनो वाक्य आरभ के वाक्य से सबध रखते है और दोनो का कारण भी उसी मे सुझाया गया है। सो यो कि—
(१) सीताजी की विनय भरी स्तुति से पार्वतीजी की मूर्ति ऐसी प्रेमवश भई कि उस पर से एक माला खसक पडी जिसे प्रसाद रूप मानकर सीताजी ने उठा लिया क्योकि मूर्ति से माला किम्वा पुष्प का गिरना शुभ तथा कार्यसिद्धकारी समझा जाता है।
(२) मूरति मुसकानी—मूर्ति के हँसने का कारण भी सीताजी की विनय ही थी क्योकि पार्वतीजी ने इस बात का विचार किया कि इन्होने मेरी इतनी मर्यादा और प्रतिष्ठा रक्खी कि 'रामजी मुझे वर मिलें' ऐसा स्पष्ट रूप से कथन न किया और 'मनुज चरित की चेष्टा दर्शाती हुई मुझे ही आदि शक्ति मान स्तुति कर रही है परन्तु यथार्थ मे आप स्वत: आदि शक्ति आदि अत और मध्य रहित है (पृ० २१ उद्भव स्थिति सहार आदि का अर्थ और टि० देखो)।
दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि—सीताजी अधूरी पूजा छोड करके रामजी के दर्शनो को चली गईं और फिर उन्हे अपने हृदय मे धारण कर वरदान पाने की इच्छा से पूजा के अनतर प्रार्थना-वन्दना करने को आईं और कह रही है कि मेरे मन की प्रीति अब तुमसे छिपी नही है तो भी अपने श्रीमुख से मुझे वरदान दे दीजिये—साराश यह है कि पूजा अधूरी छोडी और रामचन्द्रजी को पति स्वीकार कर लिया और अब हम से वर माग रही हैं, इन बातो का विचार कर मूरति मुसकानी। मूर्ति का मुसकराना तो इस अवस्था मे अशुभ नही समझा जा सकता। जबकि मूर्ति स्वत बातचीत करने की शक्ति रखती हो, जैसा कि उनके आशीर्वाद से प्रकट है। साधारण पाषाण मूर्ति का कुसमय पर हँसना अशुभ समझा जाता है।

२. नारदवचन सदा शुचि साँचा। सो वर मिलिहि जाहि मन राँचा—
सवैया—सत्य असीस सुनौ सिय सुदरि और गुनो जनि चित्त अनेरो।
नारद बैन मृषा कबहूँ नहिं सत्य त्रिकाल सदा श्रुति हेरो ।।

अर्थ—हे सीताजी ! हमारी सच्ची असीस को सुनो। 'तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी' नारद का कहना सदैव शुद्ध और सच्चा होता है। तुम्हे वही वर मिलेगा जो तुम्हारे चित्त मे चढा है। (भाव यह कि नारद ही के कहने से मैने शिवजी के चरणो मे विश्वास कर उन्हे पति रूप मे पा लिया, उसी तरह नारद के वचनो को मानकर तुमने भी श्री रामचन्द्रजी को जो अपने हृदय मे धारण किया है सो वे ही तुम्हे ब्याहेगे)।

छन्द—मन जाहि राचेउ मिलिहि सो वर सहज सुदर साँवरो।
करुणानिधान सुजान शोलसनेह जानत रावरो॥
इहि भाँति गौरि असीस सुनि सियसहित हिय हर्षित अली।
तुलसी भवानिहि पजि पुनि पुनि मुदितमन मदिर चली॥

अर्थ—'स्वभाव ही से सुन्दर श्यामल शरीर वाला पति, जिस पर तुम्हारा मन मोहित है वही मिलेगा, क्योकि दयासागर, ज्ञानवान रामचन्द्रजी तुम्हारा शील और प्रेम जानते है'। इस प्रकार पार्वतीजी के आशीर्वाद को सुनकर सीताजी सखियो सहित हृदय मे प्रसन्न हुई। तुलसीदासजी कहते है कि वे पार्वतीजी का पूजन कर बारम्बार मन मे प्रसन्न होती हुई पिता के भवन चली आई।

सोरठा—जानि गौरि अनुकूल, सिय हिय हर्ष न जात कहि।
मंजुलमंगलमूल, वाम अग फरकन लगे॥२३६॥

अर्थ—गौरीजी को प्रसन्न जानकर सीताजी के हृदय का आनन्द कहा नही जाता था। उनके कोमल आनन्दकारी बाये अङ्ग (नेत्र, भुजा आदि) फरकने लगे (स्त्रियो के बाये अङ्गो का फरकना शुभ समझा जाता है)।

हृदय सराहत सीय लुनाई। गुरुसमीप गवने दोउ भाई॥
रामकहा सब कौशिक पाही[१]। सरल सुभाव छुआ छल नाही॥

अर्थ - (रामचन्द्रजी) अपने मन मे सीता की शोभा की बडाई करते हुए लक्ष्मण सहित विश्वामित्रजी के पास गये। रामचन्द्रजी ने सब हाल विश्वामित्रजी से कहा क्योकि उनका स्वभाव सीधा था और छल का लेश भी उसमे न था।

सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही। पुनि असीस दुहुँ भाइन्ह दीन्ही॥
सुफल मनोरथ होहि तुम्हारे। राम लषन सुनि भये सुखारे[२]॥

"बन्दि" धरो उर धीर डरौ जनि आइ तुलान समै अब नेरो।
जैहै अँदेश सबै सहजै मिटि पूरण ह्वै है मनोरथ तेरो॥

१. राम कहा सब कौशिक पाही—

सवैया—मै प्रभु आयसु को धरि शीस गयो जबही हित कै फुलवारी।
तोरत फूल तहाँ या दशा भइ ऐसी न जाति है देह सँभारी॥
का कहिये प्रभु लो "ललिते" यह जैसी भई नइ रीति हमारी।
नेह भरो ठगि या मे गयो बगिया मे लखी मिथिनेश कुमारी॥

२. सुफल मनोरथ होहि तुम्हारे। राम लषन सुनि भये सुखारे—रामरसायन रामायण—

छन्द—इत आय दोऊ भाय गुरुपद पूजि अति आनद लहे।
नृप बाग के सम्वाद सरल सुभाय मुनि ते सब कहे॥
ह्वै अधिक हृदय प्रसन्न कौशिक सुभग शुभ आशिष दये।
चिरजियहु मन अभिलाष पूर राम सुनि प्रमुदित भये॥

अर्थ—फूलो को लेकर मुनिजी ने पूजा की और फिर दोनो भाइयो को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी मनोकामना पूरी होवे, यह सुनकर रामचन्द्रजी और लक्ष्मण सुखी हुए।

करि भोजन मुनिवर विज्ञानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी ।।
बिगत दिवस गुरु आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई ।।

अर्थ—श्रेष्ठ ज्ञानवान मुनिजी भोजन करके कुछ पुरानी कथा कहने लगे। जब दिन डूब गया तो गुरुजी की आज्ञा पाकर दोनो भाई सध्या-वदन करने चले।

प्राचीदिसि शशि उयेउ सुहावा। सियमुखसरिस देखि सुख पावा ।।
बहुरि विचार कीन्ह मन माही। सीयवदन सम हिमकर नाही[1] ।।

अर्थ—पूर्व दिशा मे सुन्दर चन्द्रमा का उदय हुआ। उसे सीता के मुख के समान देखकर सुखी हुए। (इस कथन से अनुमान हो सकता है कि उस दिन पूर्णमासी थी) फिर मन मे जो विचार किया तो सीता के मुख के समान चन्द्रमा न जँच पडा।

दोहा—जन्म सिधु पुनि बधु विष[2], दिन मलीन सकलंक।
सियमुख समता पाव किमि, चंद बापुरो रक[3] ।।२३७।।

अर्थ—(सो यो कि) उसका उत्पत्ति-स्थान (खारा) समुद्र, भाई विष है और वह दिन मे तेजहीन तथा कलक सहित है, (इस हेतु) बेचारा (शोभा का) दरिद्री चन्द्रमा सीता के मुख की बराबरी कैसे कर सकता है।

घटइ बढ़इ विरहिनि दुखदाई[4]। ग्रसइ राहु निज सधिहि पाई ।।

---

१. सीयवदन सम हिमकर नाही—हमुमन्नाटक मे लिखा है कि ब्रह्मा ने तराजू के पलडो मे एक ओर सीताजी का मुख और एक ओर चद्रमा को रखकर मिलान किया तो चद्रमा वाला पलडा ऊपर ही रहा आया अर्थात् चद्रमा बहुत ही कम प्रतीत हुआ, यथा—

छप्पय—क्षीर सिंधु अरु पुहुमि युगल जेहि पलुवा कीन्हे।
औषधीश अरु वदन सीय तिन मे रखि दीन्हे ।।
अनिल दण्ड करि तुला विधाता तिनको तोलत।
यहै भूमिको भूमि वहै गगनागन डोलत ।।
तब तौल बराबर होन हित तारागण तितमे रखत।
तउ रह्यो ऊर्ध्व को ऊर्ध्व वह गुरुताई मुख मे लखत ।।

२ जन्म सिंधु पुनि बधु विष—

सवैया—चन्द नही विष कन्द है "केशव" राहु यहै गुन लीनि न लीन्हो।
कुम्भज पावन जानि अपावन धोखे पियो पचि जान दीन्हो ।।
याको सुधाधर शेप विषाधर नाम धरो विधि है बुधि हीनो।
शूर सो भाइ कहा कहिये यह पाप लै आप बराबर कीन्हो ।।

३. सिय मुख समता पाव। किमि, चन्द्र बापूरो रक

(कवित्त)

कुन्ती पाचाली दमयन्ती तारा शकुन्तला का अहल्या हू मन्दोदरि हू पहिले सुधारे हैं।
मैनका घृताची रभा मजुघोषा उरबशी तिलोत्तमा को तिलहूते हलुकी निहारे हैं ।।
'विदुष सुकवि' भनै गिरा रमा उमा राधा मोहिनी हूँ रचि फिर मनमे बिचारे है।
सिया को बनाय विधि धोये हाथ जामो रग ताको भयो चन्द कर झर भये तारे हैं ।।

४. घटइ बढ़इ विरहिनि दुखदाई—कविवर भिखारीदास कृत दोहा देखिये— →

कोकशोकप्रद पंकजद्रोही। अवगुण बहुत चन्द्रमा तोही[१] ॥

अर्थ— तू घटता-बढता है और वियोगियो को दु ख देने वाला है, तुझे अवसर पाकर राहु ग्रहण लगाता है। तू चकई-चकवाओ को दु खदायी तथा कमलो का बैरी है। रे चन्द्र ! तुझ मे बहुत से दुर्गुण है।

वैदेही मुखपटतर दीन्हे। होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हे[२] ॥

दोहा—घटै बढै सकलक लखि, जग सब कहै ससक।
बालवदन सम है नही, रक मयक इकक ॥

विजय दोहावली रामायण से—

दोहा—नृप दधीचि राजा हते, कन्या साठ हजार।
अष्टोत्तर सै सोम को, ब्याहो हती कुमार ॥
पति अभाव सो बाल सन, आई पितु के गेह।
तब नृप के मन मे भयो, देखत ही सन्देह ॥
तब कन्यन सो नृपति ने, पूछी बारहिबार।
कौन काज आई यहाँ, कहौ सु सत्य विचार ॥
पिताक्रोध मन समझि कै, कहि कन्यन यह बात।
पति ने त्यागी जब हमै, तेहि ते आई तात ॥
राजा रघु ने सुनत ही, चन्द्रहि पकरि बुलाय।
भय दै कै कन्या दई, गयो सा तुरत लिवाय ॥
कछु दिन राख्यो प्रेम सो, फिरि अभाव सोइ कीन्ह।
पति परित्याग विचारिकै, देह भस्म तिन कीन्ह ॥
राजा रघु ने जब सुनी, कन्यन तजे शरीर।
तब द्वै गण पैदा किये, सुनहु गरुड मति धीर ॥
तिनसो नृप ने या कही, करहु जो बेगि उपाय।
सोरहु कला समेत तुम, चन्द्रहि लीलहु जाय ॥
चन्द्र लीलि जबही लियो, सोरहु कला समेत।
तब नृप सो विनती करी, देवन आय निकेत ॥
महाराज समरत्थ हौ, यह वर माँगे देहु।
चन्द्रहि देहु उगेल कै, यह जए मे यश लेहु ॥
शुक्ल पक्ष परिधा लगे, पन्द्रह तिथि सो सोइ।
कलन कलन बहु चन्द्रका, उगलित है गण दोइ ॥
कृष्ण पक्ष याही विधिहि, लीलि चन्द्र को लेइ।
घटत बढत तुलसी कह्यो, इहि प्रकार विधि सोई ॥

१. अवगुण बहुत चद्रमा तोहि—

सवैया—रे विधु कोकन शोक प्रदायक तू जग जाहिर पकज द्रोही।
काम को मीत करै अति शीत कियो गुरुको अपकार है कोही ॥
भाषत "श्री रघुराज" सूनै सियके मुख की लरि तोहि न लोही।
नीक न लागत मोहि मयक बडो विरही जन को निरमोही ॥

२. वैदेही मुख पटतर दीन्हे। होइ दोष बड अनुचित कीन्हे —

सवैया—जन्म समुद्र ते क्षद्र महागल रुद्र धरे ज्यहि सो यहि माई।
"बदि" अनाहक पकज दाहक राहु ग्रसै निज सधि लगाई ॥

सिय मुखछबि बिधु ब्याज बखानी। गुरु पहँ चले निशा बढ़ि जानी ।।

अर्थ—सीता मुख से मिलान करने मे अयोग्य बात करने का बडा दोष होता है। इस प्रकार चन्द्रमा के बहाने से सीताजी के मुख की शोभा का वर्णन किया और रात्रि अधिक हुई ऐसा समझ गुरुजी के पास चले।

करि मुनि चरण सरोज प्रणामा। आयसु पाइ कीन्ह विश्रामा ।।
विगत निशा रघुनायक जागे। बंधु विलोकि कहन अस लागे ।।

अर्थ—मुनिजी के कमलस्वरूप चरणो को प्रणाम किया और फिर उनकी आज्ञा ले विश्राम किया। रात बीत जाने पर श्री रामचन्द्रजी जागे और लक्ष्मण को देखकर ऐसा कहने लगे।

उयेउ अरुण अवलोकहु ताता। पकज कोक लोक सुखदाता ।।
बोले लषन जोरि युग पानी। प्रभु प्रभाव सूचक मृदु बानी ।।

अर्थ—हे भाई! देखो तो अरुण उदय हुआ जो कमल, चकवा और ससार को सुख देने वाला है। लक्ष्मणजी दोनो हाथ जोडकर रामचन्द्रजी के प्रताप को प्रकट करने वाली मधुर वाणी बोले।

दोहा—अरुणउदय सकुचे कुमुद, उडुगनज्योति मलीन।
तिमि तुम्हार आगमन सुनि, भये नृपति बलहीन ।।२३८।।

अर्थ—अरुण के उदय होने से कुमुदिनी के फूल सकुचा गये और नक्षत्रो की ज्योति मद पड गयी, जिस प्रकार से आपका आना सुन सब राजा बलहीन हो गये।

नृप सब नखत करहि उजियारी। टारि न सकहि चापतम भारी ।।
कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निशा अवसाना ।।
ऐसेहि प्रभु सब भक्त तुम्हारे। होइहहि टूटे धनुष सुखारे[1] ।।

क्षीण मलीन रहै दिन मे विरहीन दुखीन बडो दुखदाई।
रक मयक सदा सकलक सिया मुख की समता किमि पाई।।

१. ऐसेहि प्रभु सब भक्त तुम्हारे। होइहहि टूटे धनुष सुखारे—गोस्वामीजी की इगित उपमाओ का स्पष्टीकरण यो है कि जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से कमल, चक्रवाक, भौरे और पक्षीगण प्रफुल्लित होते है उसी प्रकार आपके भक्त धनुष के टूटने से प्रसन्न होगे।
यथा—(१) कमल की नाईं सिकुडे हुए जिज्ञासु भक्त, जैसे—मुनिगण प्रफुल्लित होगे।
(२) चक्रवाक की नाईं आर्त्त भक्त, जैसे—सीता समेत सखियो का वियोग दु ख दूर होगा।
(३) भौरो की नाईं अर्थार्थी भक्त, जैसे—परिजन सहित विदेहजी अपनी प्रतिज्ञा-रूपी बन्धन से मुक्त होगे, जिस प्रकार कमल मे बँधे हुए भौंरे सूर्योदय के समय कमल के फूलने से निकल पडते है।
(४) पक्षीगणरूपी ज्ञानी भक्त, जैसे—श्रेष्ठ मुनि विश्वामित्र, सतानन्द आदि भी प्रेम की तरगो मे मग्न होवेंगे, जैसा 'रामरहस्य' मे कहा है—

सवैया—भानु उदै विकसे सरसीरुह मजुल मोद भयो प्रभु ऐसे।
सन्तगुणी यशवन्त महीप मुदै सुनि आवन आप को जैसे।।
फीके पडे नभतारे यथा अवनी के बली लखि नाथ को तैसे।
'दत्त' प्रमोद भरो उर भक्तन पाय दिवा खग औ मृग जैसे।।

अर्थ—यद्यपि सब राजा नक्षत्रो की नाईं प्रकाश करते है तो भी वे धनुषरूपी अधकार को दूर नही कर सकते (इस अधकार को दूर करने के लिए सूर्य के समान आप ही योग्य है) कमल, चक्रवाक, भौरे और भाँति भाँति के पक्षी सब के सब रात बीत जाने से प्रसन्न हो उठे है। इसी प्रकार हे नाथ! आपके सम्पूर्ण भक्त धनुष के टटने पर सुखी होवेगे।

उयेउ भानु बिनुश्रम तमनाशा। दुरे नखत जग तेज प्रकाशा॥
रवि निज उदय व्याज रघुराया। प्रभु प्रताप सब नृपन्ह दिखाया॥

अर्थ—सूर्य का उदय हुआ तो अधकार बिना ही श्रम के मिट गया, ससार मे तेज के फैल जाने से नक्षत्र छिप गये। हे रामचन्द्रजी! सूर्य ने अपने उदय के बहाने से आप का प्रताप सब राजाओ को दर्शाया है।

तव भुजबल महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु विघटन परिपाटी[1]॥

शब्दार्थ—तव=तुम्हारी। उदघाटी=(१) उदयाचल की घाटी, (२) प्रकट करने वाली। विघटन=नाश होना। परिपाटी=परम्परा की रीति।

अर्थ—आपकी भुजा उदयाचल की घाटी है। उस पर धनुष 'तोडने' की परम्परा की रीति आपके बल के प्रताप को प्रकट करेगी (अर्थात् जिस प्रकार उदयाचल पर सूर्यदेव उदय होकर अधकार नाश करने की सनातन रीति से अपने प्रताप को प्रकट करते है उसी प्रकार आपके बाहुरूपी उदयाचल पर आप के बल की महिमा धनुप भग करने की प्रत्येक रामअवतार की सनातन रीति को प्रकट करेगी। भाव यह कि धनुष को तोड कर आप अपने पराक्रम को प्रकट करेंगे)।

दूसरा अर्थ—तुम्हारी भुजाओ के बल की बडाई प्रकट करने को मानो यह धनुष तोडने की परम्परा की रीति प्रकट होगी (अर्थात् जब आज आप धनुष तोडेगे तब आपकी सूर्य के समान सनातन रीति अधकाररूपी धनुष को नाश कर नक्षत्ररूपी राजाओ के तेज को मलीन कर कमल, चक्रवाक, आदिरूपी अपने भक्तो को सुखी करेगी)।

तीसरा अर्थ—आपके बाहु बल की कीर्ति के उदय की घाटी यह धनुष रूप से प्रकट हुई है और न घटना ही इसकी परम्परा की रीति है। (अर्थात् धनुष तोडकर आपकी कीर्ति जो फैलेगी सो कभी घटने की नही बढती ही जावेगी)।

चौथा अर्थ—रावण, बाणासुर आदि बडे-बडे राजाओ की कीर्ति को विघटन अर्थात् विशेष करके घटा देना यह जिसकी सनातन रीति है वही धनुष आपके भुज बल-प्रताप को उदय कराने के हेतु ही मानो प्रकट हुआ है (अर्थात् यह धनुष दूसरे राजाओ का प्रताप भजन कर आपकी महिमा प्रसिद्ध करने के हेतु ही मानो प्रकट हुआ है)।

बंधु बचन सुनि प्रभु मुसुकाने। होइ शुचि सहज पुनीत नहाने॥
नित्यक्रिया करि गुरु पहँ आये। चरण सरोज सुभग शिर नाये॥

अर्थ—लक्ष्मण के वचन सुनकर श्री रामचन्द्रजी मुसकराने लगे और जो स्वभाव ही से पवित्र हैं उन्होने शौच आदिक कर्म करके स्नान किया। नित्य कर्म (सध्या आदि) करके

१. तव भुजबल महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु विघटन परिपाटी—

सवैया—राउर के भुज विक्रम की महिमाउदयाचल घाटी।
ता ते सदा प्रगटै कवि 'बन्दि' अमन्द प्रताप दिवाकर बाटी॥
नाश करै अनयासहिं सो शिवचाप तमैं क्षण मे द्युति डाटी।
लाजत राज समाज सबै उडु एही सनातन की परिपाटी॥

गुरुजी के पास गये और उनके कमलस्वरूप सुन्दर चरणो को प्रणाम किया ।

सतानद[१] तब जनक बुलाये । कौशिक मुनि पहँ तुरत पठाये ॥
जनक विनय तिन आनि सुनाई[२] । हर्षे बोलि लिये दोउ भाई ॥

अर्थ—वहाँ जनकजी ने (अपने पुरोहित) सतानदजी को बुला भेजा और तुरन्त ही उन्हे विश्वामित्रजी के पास जाने को कहा । उन्होने आकर जनकजी की विनती विश्वामित्रजी से कही (कि धनुष यज्ञ के हेतु आप कृपा कर पधारे) विश्वामित्रजी ने प्रसन्न हो दोनो भाइयो को (अपने पास) बुला लिया ।

दोहा—सतानंद पदवंदि पभु, बैठे गुरु पहँ जाइ ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब, पठएउ जनक बुलाइ ॥२३६॥

अर्थ—रामचन्द्रजी सतानदजी के चरणो की वदना कर अपने गुरुजी के पास जा बैठे, तब ही विश्वामित्रजी ने कहा—हे प्यारे ! जनकजी ने हम लोगो को बुलावा भेजा है सो चलो चले ।

सीय स्वयम्वर देखिय जाई । ईश काहि धौ देइ बड़ाई ॥
लषन कहा यशभाजन सोई । नाथ कृपा तव जापर होई ॥

अर्थ—चलकर सीता स्वयवर देखना चाहिए देखें । शकरजी किसे बडाई देते हैं । लक्ष्मणजी कहने लगे कि हे गुरुजी ! यश का पात्र तो वही होगा जिस पर आपकी कृपा होगी ।

हर्षे मुनि सब सुनि बर बानी । दीन्ह असीस सबहिं सुखमानी ॥
पुनि मुनि वृन्द समेत कृपाला । देखन चले धनुषमखशाला ॥

अर्थ—ऐसे योग्य वचनो को सुनकर सब मुनिगण प्रसन्न हुए और सबने सुख मानकर आशीर्वाद दिया । फिर मुनिगणो समेत श्री रामचन्द्रजी धनुष यज्ञ की शाला देखने को चले ।

रँगभूमि आये दोउ भाई । अस सुधि सब पुरवासिन पाई ॥
चले सकल गृह काज बिसारी[३] । बालक युवा जरठ नर नारी ॥

अर्थ—यज्ञशाला मे दोनो भाई आये, जब ये समाचार नगर निवासियो ने पाया तो बालक जवान बुड्ढे स्त्री-पुरुष अपने-अपने घर का काम छोड उठ धाये ।

देखी जनक भीर भइ भारी । शुचि सेवक सब लिये हँकारी ॥

---

१. सतानद—एक ऋषि, गौतम ऋषिजी के पुत्र, अहल्या के गर्भ से उत्पन्न हुए थे और जनकजी के यहाँ उपरोहिती करते थे ।

२. जनक विनय तिन आनि सुनाई—

सवैया—औरइ रग रँगी रँगभूमि है, कौन गनै नृप को गन आयो ।
साजि समाज सो राजि रहे सब, मोद महा हिय को उपजायो ॥
चोपि चढाइबे को 'ललितै', मखभूमि मे शकर चाप धरायो ।
राजकुमार समेत सहत, मुनीश तुम्है नृप नाथ बुलायो ॥

३. चले सकल गृह काज बिसारी—

दोहा—दौरे को न विलोकिये, रसिक रूप अभिराम ।
सब सुखदायक साँचहू, लखिबे लायक श्याम ॥

तुरत सकल लोगन्ह पहँ जाहू। आसन उचित देहु सब काहू ।।

अर्थ—जब जनकजी ने देखा कि बहुत से लोग आ पहुँचे तब उन्होने सब चतुर सेवको को बुलाया (और कहा)। जल्दी से सब लोगो के पास जाओ और सबको यथा योग्य स्थान पर बिठाओ।

दोहा—कहि मृदुवचन विनीत तिन, बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि ।।२४०।।

अर्थ—उन लोगो ने विनय से भरे हुए कोमल वचन कह-कहकर उत्तम, मध्यम, नीच और सबसे छोटी जाति के स्त्री-पुरुषो को यथा योग्य स्थानो पर बिठाया।

राजकुअँर तेहि अवसर आये। मनहुँ मनोहरता तन छाये ।।
गुणसागर नागर वरवीरा[१]। सुदर श्यामल गौर शरीरा ।।

अर्थ—उमी समय दोनो राजकिशोर आ पहुँचे, मानो उनके शरीर पर शोभा छा रही हो। सुन्दर श्यामले और गोरे रग वाले (दोनो) वीर गुणो से भरे हुए बडे चतुर थे।

राजसमाज बिराजत रूरे। उडुगण महँ जनु युग विधु पूरे ।।
जिनके रही भावना जैसी। प्रभुमूरति तिन देखी तैसी[२] ।।

अर्थ—राजसभा मे ऐसे शोभायमान लगते थे मानो नक्षत्रो के समूह मे दो पूर्ण चन्द्रमा विराजते हो। (उस समय) जिसका जैसा भाव था उसने रामचन्द्रजी की मूर्ति को उसी प्रकार देखा।

देखहिं भूप महा रणधीरा। मनहुँ वीररस धरे शरीरा[३] ।।
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी ।।

अर्थ—बडे रणबाँकुरे राजा लोग उन्हे इस प्रकार देखते थे कि मानो वीररस ही ने शरीर धारण कर लिया हो। रामचन्द्रजी को देख दुष्ट राजा इस प्रकार डरे कि मानो भारी डरावनी मूर्ति हो।

रहे असुर छल छोनिप बेखा। तिन प्रभु प्रकट कालसम देखा ।।
पुरवासिन देखे दोउ भाई। नरभूषण लोचन सुखदाई ।।

---

१ गुणसागर नागर वरवीरा—

कवित्त—मन्दर महीपन मे सुन्दर सुमेरवर, देवन मे ब्रह्मरूप राशि के अतन हौ।
राजहम नीति मे अनीति के कराल काल दीन सनमान बेलि राखत जतन हौ ।।
जग जैत जुगल जसीले फरकीले भुज, बारन उबारन बिरद बरतन हौ।
कलश प्रभाकर सुवश राव रामचन्द्र गुण रतनाकर के चौदहो रतन हौ ।।

२ जिनके रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन देखी तैसी—इसी आशय को श्रीकृष्णजी के के बारे मे यो कहा है—

(कवित्त)

कामिनी निहार्‌यो काम सतन विचार्‌यो राम योगी योग ध्यान सिद्ध सिद्धन विशेपिये।
दुर्जन को शारदूल मल्लन को बज्रतूल, शत्रुन को शूर प्रजा प्रजापति पेखिये ।।
घनघटा मोरन को चन्द्रमा चकोरन को भ्रमर को कज मजु मकरद लेखिये।
कस जाने काल ग्वाल बाल सब जाने सखा एक नन्दलाल ही अनेक रूप देखिये ।।

३. मनहुँ वीररस धरे शरीरा—यहाँ से आगे नव रसमयी रूपो का वर्णन है सो पुरौनी मे मिलेगा।

शब्दार्थ—छोनिप, शुद्ध रूप क्षोणिप (क्षोणि=पृथ्वी+प=रक्षा करने वाला)=राजा।

अर्थ—जो राक्षस राजाओ का रूप धारण किये थे उन्होने रामचन्द्रजी को यम के समान समझा। नगर निवासियो ने दोनो भाइयो को मनुष्यो मे शिरोमणि और नेत्रो को सुख देने वाला जाना।

दोहा—नारि विलोकहि हर्षि हिय, निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत श्रृंगार धरि, मूरति परम अनूप[1] ॥२४१॥

अर्थ—स्त्रिया प्रसन्न चित्त हो अपनी भावना के अनुसार देखती थी कि मानो शृगार रस ही बहुत ही उपमा रहित शरीर धारण कर शोभा दे रहा हो।

विदुषन प्रभु विराटमय दीसा[2]। बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥
जनक जाति अवलोकहि कैसे। सजग सगे प्रिय लागहि जैसे ॥

अर्थ—ज्ञानियो ने प्रभुजी को विराट रूप से देखा, जिनके अनगिनती मुख, हाथ, पैर, नेत्र और मस्तक थे। जनकजी के कुटुम्बी लोग उन्हे इस दृष्टि से देखते थे जिस दृष्टि से कोई अपने सगे नातेदारो को प्यार से देखना हो।

सहित विदेह विलोकहि रानी। शिशुसम प्रीति न जाइ बखानी ॥
योगिन परम तत्त्वमय भासा। शात शुद्धसम सहज प्रकासा ॥

अर्थ—जनक राजा और उनकी रानियाँ भी उन्हे अपने पुत्र के समान प्रेम से देखती थी कि जिसका वर्णन नही किया जा सकता। योगियो को तो वे पूर्ण ब्रह्म ही समझ पडे जो शांत, शुद्ध, एकरस और स्वभाव ही से प्रकाशित बूझ पडे।

हरिभक्तन देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुखदाता ॥
रामहि चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह सुख नहि कथनीया[3] ॥

अर्थ—ईश्वर के भक्तो ने दोनो भाइयो को इष्ट देव के समान सब प्रकार सुखदायक देखा। जिस भाव से सीताजी श्री रामचन्द्रजी की ओर देखती थी उस प्रेम का सुख कहते नही बनता।

उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहइ कवि कोऊ ॥

---

१. जनु सोहत शृगार धरि, मूरति परम अनूप—राम स्वयम्वर से—
दोहा—कोटि मदन मद कदन वपु, शोभा सदन सुकुमार।
कहै सखी काह पटतारय, निउछावरि शृगार ॥

२. विदुषन प्रभु विराटमय दीसा—श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय १३—
श्लोक—सर्वत पाणि पाद तत्सर्वतोऽक्षि शिरोमुखम्।
सर्वत श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१४॥
अर्थात् परब्रह्म सभी ओर से हाथ-पैर वाला, सभी ओर से नेत्र, सिर और मुख वाला, सब ओर से कान वाला होकर सब चराचर समुदाय मे व्याप्त होकर स्थित है।

३. रामहिं चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह सुख नहिं कथनीया—राम स्वयम्वर से—
सवैया—जो हरि हेरत ही सिय के हिय होत भयो हठि हौस हुलासै।
सो कवि कौन कहै सिगरो नहिं कै सकै शेष अशेष प्रकासै ॥
मैं मति मन्द कहौ केहि भाँति सो जुगुन क्यो करै भानुहिं भासै।
जानहिं राम सिया हिय की सिय जानति राम की अन्तर आसै ॥

जेहि विधि रहा जाहि जस भाऊ[1] । तेहि तस देखेउ कोशलराऊ ।।

अर्थ—(सीताजी उस प्रेमसुख को) हृदय मे तो समझती थी परन्तु वे भी उसे कह नही सकती थी तो भला कोई कवि किस प्रकार से उसका वर्णन करे ? निदान जिसके जी मे जैसा भाव रहा उसने श्री रामचन्द्रजी को उसी अनुसार देखा ।

दोहा—राजत राज समाज महँ, कोशल राजकिशोर ।
सुन्दर श्यामल गौर तनु, विश्व विलोचन चोर[2] ।।२४२।।

अर्थ—राजाओ के समाज मे सुन्दर श्यामले और गोरे शरीर वाले ससार के नेत्रो के चुराने वाले अयोध्यापुरी के राजकिशोर इस प्रकार सुशोभित हुए।

सहज मनोहर मूरति दोऊ । कोटि काम उपमा लघु सोऊ[3] ।।
शरद चंद निन्दक मुख नीके । नीरज नयन भावते जी के ।।

अर्थ—दोनो स्वरूप स्वभाव ही से मनमोहने थे, (यहाँ तक कि) करोडो कामदेव की उपमा भी उनके लिए थोडी ही थी। उनके सुन्दर मुख शरद् पूनो के चन्द्रमा को भी तुच्छ कर देते थे और उनके कमलस्वरूप नेत्र मन को प्यारे लगते थे ।

चितवनि चारु मारमदहरनी । भावति हृदय जात नहि बरनी ।।
कलकपोल श्रुतिकुडल लीला । चिबुक अधर सुदर मृदु बोला ।।

---

१ जेहि विधि रहा जाहि जस भाऊ—रामचन्द्र भूषण से—

(कवित्त)

श्याम घन सोहै मुनि मडली मयूरन को, पुरुष पुरातन प्रमाण वेद वर को।
मौज न सरासन शिरोमणि महेश जान्यो, ठान्यो देव वृन्द या प्रकाश जोति वर को ।।
'लछिराम' राजवश कामद कलश गन्यो, जन बन दानियाँ सुमेर सब थर को ।
मिथिला सुरेश प्राणनाथ मैथिली त्यो, मान्यो मिथिलेश बालब्रह्म रूप रघुवर को ।।

२ विश्व विलोचन चोर—देखो टि० पृ० ६८

३. सहज मनोहर मूरत दोऊ। कोटि काम उपमा लघु सोऊ—

राग बिहाग—जब ते लखे राजकुमार ।।

जनकपुर के लोग तब ते तजे अग सँभार।
सुभग श्यामल गौर राजत भौर कैसे भार ।।
भाल तिलक विशाल राजत गहे शोभ अपार।
विकट भृकुटी कमल दल से नैन छवि आगार ।।
कल कपोलन लोल कुडल श्रवण सीप सुढार।
नासिका शुक तुड के सम अधर बिम्ब मझार ।।
सुभग रेख सुदन्त अवली कुन्द कैसी डार ।
अम्ब कैसी चिबुक ग्रीवा कम्बु रेखा चार ।।
काम करि कर बाहु जासो हरत जग को भार ।
लसत आयत उर सु जाके विप्र चरण सिगार ।।
नदी त्रिवली लसति रोमावली सुभग सेवार ।
नाभि कूप सु केहरी कटि कदलि जघ सुढार ।।
पीडुरी बर गुलफ एडी आँगुरी नख जार ।
परो मन 'बलभद्र' को लखि चरण राम उदार ।।

अर्थ—कामदेव के घमड को मिटाने वाली मनोहर चितवनि चित्त को सुहावनी लगती थी परन्तु उसका वर्णन नही किया जा सकता। सुडौल कपोलो पर कानो के कुडल हिल रहे थे, ठोडी और होठ सुन्दर थे तथा वाणी मधुर थी।

कुमुद बंधु कर निदक हाँसा[१]। भृकुटी विकट मनोहर नासा॥
भाल विशाल तिलक झलकाही[२]। कच विलोकि अलि अवलि लजाही॥

अर्थ—उनकी हँसी चन्द्रकिरण की निंदा करने वाली थी, टेढी भौहे और सुहावनी नाक थी। ऊँचे मस्ततक मे तिलक झलक रहे थे और बालो को देखकर भौरो की पंक्तियाँ लज्जित हो जाती थी।

पीत चौतनी सिरन्ह सुहाई। कुसुम कली बिच बीच बनाई॥
रेखा रुचिर कंबु कल ग्रीवाँ। जनु त्रिभुवन शोभा की सीवाँ॥

अर्थ—पीली चौगोशिया टोपिया शीस पर शोभयमान थी जिनके बीच-बीच मे फूलो की कलियाँ बनाई गयी थी। शख के समान सुन्दर कठ की सुहावनी तीन रेखायें ऐसी थी मानो तीनो लोक की सुन्दरता की हदबदी हो।

दोहा—कुजरमणि कंठाकलित, उरन्ह तुलसिकामाल।
वृषभकंध केहरिठवनि, बलनिधि बाहु विशाल ॥२४३॥

शब्दार्थ—कुजरमणि=गजमोती। कलित=सुन्दर। वृषभ=बैल। कध (क=शिर+ध=रखना)=सिर के धारण करने वाले अर्थात् काँधा। केहरि=सिह। ठवनि=चाल।

अर्थ—गजमोतियो के सुन्दर कण्ठा (कण्ठ मे) तथा हृदय पर तुलसीमाला धारण किये थे, बैल के-से काँधे, सिह सरीखी चाल और बलिष्ठ लम्बी भुजाये थी।

सूचना—गजमुक्तो का कठा धारण करने से राजकुमार और तुलमी की माला धारण करने से मुनि-शिष्य सूचित किया है।

कटि तूणीर पीत पट बाँधे। कर शर धनुष वाम वर काँधे॥
पीत यज्ञ उपवीत सुहाये। नखशिख मंजु महा छबि छाये॥

अर्थ—कमर मे तरकस और पीताम्बर कसे थे, हाथ मे बाण और श्रेष्ठ और बाये काँधे पर धनुष धारण किये थे। पीले जनेऊ सुहावने लगते थे, इस प्रकार सिर से पैर तक सुन्दर महाछवि छाय रही थी।

देखि लोग सब भये सुखारे। इकटक लोचन टरत न टारे[३]॥

---

१. कुमुदबधुकर निदक हाँसा—जसवत जसोभूषण से—

दोहा—विद्रमथित मुक्ता फलसु, वा प्रवाल युत फूल।
अधर वर्ति मुसक्यान कै, तब ह्वै है सम तूल॥

२. भाल विशाल तिलक झलकाही—

छन्द—चरचित चन्दन सो तिलक झलक जामे सुभग सुथान राजै रूप भूप घर को।
भारी भाग भरो अवतारी अवधेशजी को त्रिभुवन नायक प्रसिद्धि निधि धर को॥
बरनै 'बिहारी' कलाधर की उज्यारी कहा चमक नक्षत्र बल वारो शत्रु डर को।
विमल विशाल भक्त जन को निहाल कर राजत सुभाल है कृपाल रघुवर को॥

३. 'टरत न टारे' का पाठान्तर 'चलत न तारे' है जिसका अर्थ 'उनके नेत्रो के गोलक किम्वा पुतलियाँ घूमती न थी अर्थात् वे एकटक निहार रहे थे।

हर्षे जनक देखि दोउ भाई । मुनिपदकमल गहे तब जाई ।।

अर्थ—सब लोग इस शोभा को देख प्रसन्नचित्त हुए और ऐसी टकटकी बाँधकर देखने लगे कि वे अपने नेत्र हटा नही सकते थे । दोनो भाइयो को देखते ही जनकजी ने प्रसन्न होकर विश्वामित्रजी के कमलस्वरूप चरणो को छुआ ।

करि विनती निज कथा सुनाई[1] । रंगअवनि सब मुनिहि दिखाई ।।
जहँ जहँ जाहि कुअँर वर दोऊ । तहँ तहँ चकित चितव सब कोऊ ।।

अर्थ—विनती करके अपना वृत्तान्त कह सुनाया और मुनिजी को सब रगभूमि दिखलाई । जहाँ-जहाँ दोनो राजकिशोर जाते थे तहाँ-तहाँ सब लोग चकित होकर देखने लगते थे ।

निज निज रुख रामहिं सब देखा । कोउ न जान कछु मर्म बिसेखा ।।
भलि रचना नृप सन मुनि कहेऊ । राजा मुदित महासुख लहेऊ[2] ।।

अर्थ—सबने रामचन्द्रजी को अपनी ही ओर मुँह किये हुए देखा परन्तु किसी को कुछ विशेष भेद न समझ पडा । विश्वामित्रजी ने जनकजी से कहा कि 'तैयारी अच्छी है' यह सुनकर राजाजी बहुत प्रसन्न हुए ।

दोहा—सब मंचन्ह ते मच इक, सुन्दर विशद विशाल ।
मुनि समेत दोउ बधु तहँ, बैठारे महिपाल[3] ।।२४४।।

---

१. करि विनती निज कथा सुनाई—रामरत्नाकर रामायण मे यह कथा इस प्रकार लिखी है कि—

तब महेश भृगुपतिहिं बुलाये । धनुप देइ बहु विधि समुझाये ।।
जनकराज के घर धर आवौ । चाप प्रभाव नृपहि समुझावौ ।।
जो धनु भग करे नृप धन्या । ताहि विवाहि देइ नृप कन्या ।।
दोहा—शिव आयसु निज माथ धरि, तुरत चले भृगुनाथ ।
परशु धरे इक हाथ पुनि, धनुष धरे इक हाथ ।।
जनकराय पूछत भृगु पाही । कारण कवन आगमन ह्याही ।।
परशुराम तब बचन सुनायो । कन्या को विवाह सुनि आयो ।।
अब मैं करन जात तप राजा । मम आधीन रहै वह काजा ।।
अब कब दरश होहिगे नाथा । मम कन्या विवाह तुव हाथा ।।
सुनि नृप विनय परशुधर भाखो । यह मम भूप धनुष धर राखो ।।
यह नरेश जो चाप चढावे । सो तुव सुता ब्याह कर पावे ।।
यहै प्रतीति राखि उर राजा । अस कह गये मुनी तप काजा ।।

२. भलि रचना नृप सन मुनि कहेऊ । राजा मुदिन महासुख लहेऊ—जानकी मगल से—

छन्द—लागे बिसूरन समुझि प्रण मन बहुत धीरज आनि कै ।
लै चल दिखावन रँगभूमि अनेक विधि सनमानि कै ।।
कौशिक सराही रुचिर रचना जनक मुनि हरषित भये ।
तब राम लषण समेत मुनि कहँ सुभग सिंहासन दये ।।

३. सब मचन्ह ते मच इक सुन्दर विशद विशाल'' '''बैठारे महिपाल—

राग परज—सखी रँगभीने दोऊ राजकुमार ।
निरख सखी नैनन भर नीके शोभा अमित अपार ।। →

अर्थ—सब बैठकों से एक सुन्दर, स्वच्छ, बड़े सिंहासन पर राजाजी ने दोनों भाइयों को मुनिजी के साथ बिठलाया।

प्रभुहिं देखि सब नृप हिय हारे। जनु राकेश उदय भये तारे ।।
अस प्रतीति सब के मन माहीं। राम चाप तोरब शक नाही[१] ।।

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी को देखकर सब राजा हृदय में ऐसे हार गये जैसे चन्द्रमा के उदय होने से तारागण (मलीन पड़ जाते) हैं। सबके हृदय में यह विश्वास जम गया था कि रामचन्द्रजी धनुष को तोड़ेंगे, इसमें सन्देह नहीं।

बिन भंजेहु भव धनुष विशाला। मेलिहि सीय राम उर माला ।।
अस बिचारि गवनहु घर भाई[२]। यश प्रताप बल तेज गँवाई ।।

अर्थ—शिवजी के भारी धनुष के तोड़े बिना ही सीता रामचन्द्रजी के गले में जय-माला पहिरावेगी। सो हे भाई! ऐसा विचार यश, प्रताप बल और तेज को खोकर चलो, घर लौट चलें।

विहँसे अपर भूप सुनि बानी। जे अविवेक अंध अभिमानी ।।
तोरेहु धनुष ब्याह अवगाहा। बिन तोरे को कुअँरि विवाहा ।।

अर्थ—दूसरे राजा जो अविवेकी, अज्ञानी और घमण्डी थे वे इन वचनों को सुनकर हँस पड़े। (और कहने लगे कि) धनुष तोड़ने पर भी ब्याह होना कठिन है फिर भला बिना धनुष तोड़े कन्या को कौन ब्याह सकता है?

भुज दंडन चंदन मंडन पर चमक चाँदनी चार।
ललित कंठ रेखा विचित्र सखि उर कमलन के हार ।।
रँगभूमि मणि जटित मंच पर बैठे सभा मझार।
मानो रवि उदयाचल गिरिते निकस्यो तिमिर विदार ।।
खंड खंड ब्रह्मण्ड खंड के भूपति जुरे अपार।
लाहा रामचन्द्र छवि ऊपर नित कान्हर बलिहार ।।

१. राम चाप तोरब शक नाही—इसका अर्थ कोई-कोई पण्डित नीचे की पंक्तियों के विचार से यों करते हैं कि 'रामचन्द्र में धनुष तोड़ने की शक्ति नहीं है' क्योंकि वे कहते हैं कि यदि ये अर्थ न करें तो 'बिन भंजेहु भवधनुष विशाला। मेलिहि सीय राम उर माला' इत्यादि ऐसे वाक्य गोसाईंजी क्यों लिखते हैं! तो भी टीका की पुष्टि में यह सवैया है—

सुमति मनरंजन नाटक से—

सवैया—ताड़का मारि कै जारि सुबाहु येई मुनि के सुख घोरन हारे।
गौतम नारिहि तारि येई दइ हैं सब के चित चोरन हारे ।।
येई बली बिधि एक रचे 'ललिते' नृप मान विनाशन हारे।
तोरन हार येई धनु के है येई सब के मुख मोरन हारे ।।

२. अस बिचारि गवनहु घर भाई—सुमति मनरंजन नाटक से—

सवैया—मूढ़ता के वश बाद करौ सिगरे जग में अपवाद भरैंगो।
को जग में बलवान सुनौ जु लखे रघुबीर को धीर धरैंगो ।।
याते सिधारिये बेगि पुरै 'ललिते' यहि में नहिं पूर परैंगो।
जानि लई हिय माहिं महीप पिनाक तुम्हे बिन नाक करैंगो ।।

एक बार कालहु किन होऊ[१]। सियहित समर जितब हम सोऊ ॥
यह सुनि अपर भूप मुसकाने। धर्मशील हरिभक्त सयाने ॥

अर्थ—सीता के लिए हम लडाई मे चाहे काल क्यो न हो, उसे भी एक बार हरा देवेगे। यह सुनकर दूसरे राजा जो धर्मात्मा, हरिभक्त और चतुर थे वे मुस्कराने लगे (और बोले कि) —

सोरठा—सीय विवाहव राम, गर्व दूरि करि नृपन्ह को[२]।
जीति को सक सग्राम, दशरथ के रनबाँकुरे ॥२४५॥

अर्थ--राजाओ का घमण्ड तोडकर सीता को तो रामचन्द्र ही ब्याहेगे। भला दशरथजी के पुत्र जो सग्राम करने मे विकट है उन्हे कौन जीत सकता है ?

वृथा मरहु जनि गाल बजाई। मनमोदक नहि भूख बुझाई ॥
सिख हमारि सुनु परम पुनीता। जगदंबा जानहु जिय सीता ॥

अर्थ—(तुम लोग) व्यर्थ बकवाद करके क्यो मरे जाते हो ? मन के लड्डू खाने से भूख नही बुझ सकती ! (अर्थात् बिना पराक्रम के सीता का मिलना इस प्रकार दुर्लभ है कि जिस प्रकार बिना कुछ खाये भूख नही बुझ सकती, इस हेतु) हमारी अति पवित्र सिखावन को सुनकर सीताजी को अपने हृदय से जगतमाता जानो।

जगतपिता रघुपतिहि विचारी। भरि लोचन छवि लेहु निहारी ॥
सुन्दर सुखद सकल गुणरासी। ये दोउ बधु शभु उरबासी ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी को ससार की उत्पत्ति करने वाले समझकर नयन भर उनकी शोभा को देख लेओ। छबीले, सुखदाई, सब गुण सम्पन्न ये दोनो भाई महादेवजी के हृदय मे बस रहे है।

सुधासमुद्र समीप बिहाई। मृगजलु निरखि मरहु कत धाई ॥
करहु जाइ जा कहँ जोइ भावा। हम तौ आज जन्मफल पावा ॥

अर्थ—अरे ! समीप के अमृतरूपी समुद्र को छोडकर मृगतृष्णा को देख क्यो भटक-भटककर मरते हो। जो जिसे अच्छा लगे सोई जाकर करने लगे, हम लोगो ने तो जन्म लेने का फल पा लिया (अर्थात् तुम लोग अमृतवत् रामदर्शन को छोड सीता पाने की झूठी आशा मे मरे जाते हो। जो चाहे सो करो हम तो उनके दर्शनो से तृप्त हो गये)।

---

१ एक बार कालहु किन होऊ—

सवैया—कैसे प्रशसि रहे रघुवशिन कालहु सो हमको खटके ना।
देखियो मेरी कला धनु की तुम शूरन हूँ से कहूँ अटके ना ॥
बादि बतात हौ बावरे से 'ललिते' अरि देखि कहूँ मटके ना।
नेक रहे हटके न कहूँ भट को लखि कै रन मे भटके ना ॥

२. सीय विवाहव राम, गर्व दूरि करि नृपन्ह को—

दोहा—जनकसुता श्री इन्दिरा, नारायण श्री राम।
वहा एक धनु तोरि है, सिय ब्याहै परिणाम ॥

सवैया—हरि है मद पुज नरेशन को करि है जग कीरति की उजियारी।
भरि है सब के हिय मोद यई चुप होउ सबै सुनि बात हमारी ॥
डरिहै शिवचाप मृनालसो भानि यही 'ललिते' हिय माहि विचारी।
धरि है सबके उर धीर यई वरिहै हरि ये मिथिलेशकुमारी ॥

अस कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप विलोकन लागे ।।
देखहि सुर नभ चढे विमाना। वरषहि सुमन करहि कलगाना ।।

अर्थ—इतना कहकर भले राजा प्रेम मे मग्न हो गये और उपमारहित स्वरूप को देखने लगे। देवगण विमानो मे चढे हुए आकाश से देख रहे थे और फूलो की वर्षा करके मनोहर गीत गा रहे थे।

दोहा—जानि सुअवसर सीय तब, पठई जनक बुलाइ।
चतुर सखी सुन्दर सकल, सादर चली लिवाइ ।।२४६।।

अर्थ—तब ठीक समय जानकर जनकजी ने जानकी को बुलावा भेजा, रूपवती और चतुर सब सखियाँ उन्हे आदर सहित लिवा ले आई।

सियशोभा नहि जाइ बखानी। जगदबिका रूप गुण खानी ।।
उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृत नारि अंग अनुरागी ।।

अर्थ—सीताजी की शोभा वर्णन नही की जाती क्योकि वे जगतमाता है तथा सौन्दर्य और गुणो से परिपूर्ण है। सब उपमाएँ साधारण स्त्रियो के अग प्रति अग के साथ मिलान की जाने से मुझे तुच्छ जान पडती है।

सीय बरनि तेहि उपमा देई। कुकवि कहाइ अयश को लेई ।।
जो पटतरिय तीय सम सीया। जग अस युवति कहाँ कमनीया[१] ।।

शब्दार्थ—कमनीया (कम्=चाहना)=चाहना करने योग्य, अर्थात् मनोहर।

अर्थ—उनके साथ मिलान कर सीताजी का वर्णन करके कौन अयोग्य कवि कहलावे और कौन अपयश लेवे। यदि कहो कि किसी स्त्री के साथ सीताजी का मिलान किया जावे तो ससार मे ऐसी मनोहर स्त्री है ही कहाँ?

गिरा मुखर तनु अर्धभवानी। रतिअति दुखित अतनु पति जानी[२] ।।
विष वारुणी बधु प्रिय जेही। कहिय रमा सम किमि वैदेही ।।

शब्दार्थ—गिरा=वाणी, सरस्वती। मुखर=बहुत ही बोलने वाली। अतनु (अ=बिना+तनु=बिना शरीर का अर्थात् कामदेव जिसका नाम अनग भी है। वारुणी=मदिरा।

---

१ जो पटतरिय तीय सम सीया। जग अस युवति कहाँ कमनीया—राम चद्रिका से—

(दडक)

को है दमयन्ती इन्दुमती रति राति दिन होहि न छबीली छबि इन जो श्रृगारिये।
केशव लजात जलजात जातवेद ओप जातरूप बापुरे विरूप सो निहारिये ।।
मदन निरूपमानि रूपण निरूप भयो चन्द बहु रूप अनुरूप कै विचारिये।
सीताजी के रूप पर देवता कुरूप को है रूप ही के रूपक तौ वारि वारि डारिये ।।

२. गिरा मुखर तनु अर्ध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी—
विचारने का स्थान है कि कविगण अपने इष्ट की प्रशसा करते समय और सब को कम प्रतीत कराते है। यदि ऐसा न करें तो प्रस्तुत विषय की विशेषता कैसे सूचित होवे, उसी का यह एक उदाहरण है जिसे 'राम रहस्य' मे भी यो कहा है—
सवैया—कौन बखान करै सिय की छबि श्री जगदम्ब अहै गुणखानी।
शारद तौ बकवादिनि है समता न लहै अरधग भवानी ।।
एक रती है उमा न रती कमला विष वारुणि बधु बखानी।
और सती कहु को जगती द्विजदत्त वृती सिय के सम जानी ।।

रंमा=लक्ष्मी।

अर्थ—सरस्वतीजी बहुत ही बोलने वाली है, पार्वतीजी तो आधे ही शरीर वाली है (आधा अग शिवजी का है) और रति अपने पति कामदेव को अनग समझ बहुत ही दुखित रहा करती है। विष और मदिरा जिनके प्यारे भाई है ऐसी लक्ष्मीजी को सीताजी के बराबर कैसे कहे (स्मरण रहे कि समुद्र मथने पर जो १४ रत्न निकले थे उनमे से विष, मदिरा और लक्ष्मीजी भी है, इसी कारण एक ही स्थान से उत्पत्ति होने के कारण विष और मदिरा लक्ष्मीजी के भाई हुए)।

जो छविसुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई।।
शोभारजु मदर शृंगारू। मथइ पानिपंकज निज मारू।।

सूचना—जब कि सीताजी की उपमा के लिए न कोई साधारण स्त्री है और न प्रसिद्ध देव स्त्रियो मे से कोई उनकी बराबरी कर सकती है तो कविजी की उपमा के लिए एक कल्पित लक्ष्मी मानकर उनके साथ मिलान तो करते है परन्तु फिर भी इस चतुराई के साथ कि ऐसी लक्ष्मी सीताजी की पटतर के लिए न्यून जँचती है।

अर्थ—जो छविरूपी अमृत का समुद्र होवे, और परम सौदर्यमयी कछुआ होवे शोभा की रस्सी और शृगार ही का मदराचल (मथानी) हो तथा कामदेव अपने कमलस्वरूप हाथो से मथन करे।

दोहा—यहि विधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुखमूल।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहि सीयसम तूल।।२४७।।

अर्थ—इस प्रकार सौन्दर्य-आनन्द की खानि लक्ष्मीजी जब उत्पन्न होवें तब भी कविगण डरते-डरते कहेगे कि ये सीताजी के तुल्य है।

चली संग लै सखी सयानी। गावति गीत मनोहर बानी[1]।।

अर्थ—चतुर सखियाँ सुरीले शब्दो से गीत गाती हुई सीताजी को अपने साथ लेकर आईं।

---

१ चली सग लै सखी सयानी। गावति गीत मनोहर बानी—प्रेम पीयूषधारा से—

(लावनी)

बनी सिय बनरी अति बाँकी। नही है जग उपमा जाकी।।
बैस की है अति ही थोरी। रूप की है अति ही गोरी।।
हिया की है अति ही भोरी। यही है जनकनृपति छोरी।।
लखो क्या तरह दार झाँकी। नही है जग उपमा जाकी।।१।।
लसै अँखियाँ दोउ रतनारी। फबै उर मोतिन गजरा री।।
सोह तन मे सुन्दर सारी। अलक सोहत है अति कारी।।
देखि गति मन्दहु की थाकी। नही है जग उपमा जाकी।।४।।
भाल बिच बिन्दा अति सोहै। देखि मुख रति निशिदिन जोहै।।
बरनि सक उपमा जग को है। छबी लखि सुरललना मोहै।।
करूँ मै समता यहि का की। नही है जग उपमा जा की।।३।।
अजब पग नूपुर हूँ बाजै। कमर मे कटि किंकिणि राजै।।
ध्यान धरने ते अघ भाजै। यही है सखियन सिर ताजै।।
प्रेम मे 'मोहनि' अलि छाकी। नही है जग उपमा जाकी।।४।।

सोह नवल तनु सुदरि सारी[१] । जगत जननि अतुलित छबि भारी ।।

अर्थ—नवीन शरीर पर सुन्दर साडी शोभायमान थी ऐसी जगत को उत्पन्न करने वाली सीताजी की बहुत ही उपमा रहित शोभा थी ।

दूसरा अर्थ—सारी सुन्दरियाँ अर्थात् सम्पूर्ण सुन्दर स्त्रियाँ नवीन शरीर से मानो शोभा पाती है, (अर्थात्) सम्पूर्ण सुन्दरता से युक्त जिनकी स्त्रियाँ है उन सबको जो शोभा मिली है सो सीताजी ही से मिली है । काहे से कि ये जगत की माता है, इस हेतु जो छवि लडकियो की होगी सो माता ही के अनुसार तथा इनमे इतना अधिक सौन्दर्य है कि उसकी तुलना करने को दूसरी छवि है ही नही, इस हेतु भी छबीली स्त्रियाँ इन्ही से छवि पाती है ।

तीसरा अर्थ—जगत की माता सीताजी सौन्दर्य की ऐसी भारी छटा लिए हुए थी कि उससे उनकी साडी तथा सम्पूर्ण नवयौवना सुन्दरी, जो उनके साथ थी, शोभायमान हो गयी थी ।

भूषण सकल सुदेश सुहाये । अंग-अग रचि सखिन बनाये ।।
रँगभूमि जब सिय पग धारी । देखि रूप मोहे नर नारी[२] ।।

अर्थ—सम्पूर्ण आभूषण यथोचित अग-प्रत्यगो मे सखियो ने उत्तम रीति से पहनाये थे । (इस प्रकार सुन्दर वस्त्र-आभूषणो से सुसज्जित हो) जब सीताजी रगभूमि मे आई तब उनके सौन्दर्य को देखकर सब स्त्री-पुरुष भौचक-से रह गये ।

हर्षि सुरन्ह दुदुभी बजाई । वर्षि प्रसून अपसरा गाई ।।
पाणिसरोज सोह जयमाला । औचक[३] चितये सकल भुआला ।।

अर्थ—देवताओ ने प्रसन्न होकर नगाडे बजाये, फूलो की वर्षा हुई और अप्सराएँ गाने लगी । (सीताजी के कमलरूपी हाथों मे जयमाला शोभा दे रही थी, सब राजा अचकचाकर देखने लगे ।

सीय चकित चित रामहिं चाहा । भये मोहवश सब नरनाहा ।।
मुनि समीप देखे दोउ भाई । लगे ललकि लोचन निधि पाई ।।

अर्थ—सीताजी ने तो अधीर चित्त से रामचन्द्रजी को देखना चाहा परन्तु सब राजा

---

१ सोह नवल तनु सुदरि सारी—जानकी स्तवराज भाषा टीका से—

सवैया—सारी सिया अति सूक्षम नील लसी तब गात प्रभा दरशाई ।
हेम के सूत्रन से कल भूषित हे पर देवि कृपा अधिकाई ।।
आनँद हेतु सुहागिन के उर राखत राम स्वरूप छिपाई ।
ताहि कृपा रँग से रँगि कै मम सारी समेत रहौ उर छाई ।।

२. देखि रूप मोहे नर नारी—
इसमे कोई-कोई यह शका कर बैठते है कि सीताजी को देखकर नर और नारी कैसे मोहित हुए क्योकि गोसाईंजी ही उत्तरकाण्ड मे लिखते है कि 'मोह न नारि नारि के रूपा' तो यहाँ पर विरोध-सा समझ पडता है परन्तु विचार करने से समझ मे आ जाता है कि 'मोह न नारि नारि के रूपा' यह कथन प्राकृत स्त्रियो के बारे मे है न कि आदि शक्ति के विषय मे । सीताजी तो आदि शक्ति है, उन्ही से सब स्त्री-पुरुष सौदर्य को प्राप्त करते है और उनकी छटा सब ससार के जीवधारियो को मोहित करने वाली है तो जनकपुर की स्त्रियाँ कैसे मोहित न होगी ?

३. 'औचक' का पाठान्तर 'अवचट' भी है । अर्थ एक ही है ।

भौचक से रह गये (सीताजी ने) विश्वामित्र मुनि के पास ही दोनो भाइयो को बैठे देखा तो उनके नेत्र मानो अपनी सम्पत्ति को पाकर लालसा से टकटकी बाँधकर रह गये।

दोहा—गुरुजन लाज समाज बडि, देखि सीय सकुचानि।
लगी विलोकन्ह सखिन्ह तन,[१] रघुबीरहि उर आनि ॥२४८॥

अर्थ—पिता, पुरोहित आदि श्रेष्ठजनो की मर्यादा और भारी सभा का विचार कर सीताजी सकुचा गईं। इस हेतु रघुनाथजी को हृदय मे धारण कर सखियो की ओर देखने लगी।

राम रूप अरु सिय छवि देखी। नर नारिन्ह परिहरी निमेखी[२] ॥
सोचहि सकल कहत सकुचाहीं। विधि सन विनय करहि मनमाहीं[३] ॥

अर्थ—रामचन्द्रजी का स्वरूप और सीताजी की सुन्दरता को देख स्त्री-पुरुषो ने पलक मारना बन्द कर दिया (अर्थात् वे एकटक निहारने लगे)। सब के सब विचार तो बाँधते थे परन्तु प्रकट करने मे सकोच करते थे तथापि मन ही मन विधाता से विनती करते थे कि—

हरु विधि वेगि जनक जड़ताई। मति हमार अस देहु सुहाई ॥
बिन विचार प्रण तजि नरनाहू। सीय राम कर करइ विवाहू[४] ॥

---

१ तन=ओर। इसके दूसरे उदाहरण रामायण ही मे यो है—(१) इसी काण्ड मे २५८ वें दोहे के पश्चात् प्रभु 'तन' चितै प्रेमप्रण ठाना। (२) अयोध्याकाण्ड के १००वे दोहे मे विहँसे करुणा ऐन, चितै जानकी लषन 'तन'।

२ रामरूप अरु सिय छवि देखी। नर नारिन्ह परिहरी निमेखी—

राग सारग—जब ते राम लषन चितये री।

रहे इकटक नर नारि जनकपुर लागत पलक कलप बितये री॥
प्रेमविवश माँगत महेश सो देखत ही रहिये नित ये री।
कै ये सदा बसहु इन नयनन्हि कै ये नयन जाहु जित ये री॥
कोउ समझाइ कहै किन भूपहि बडे भाग्य आये इत ये री।
कुलिश कठोर कहाँ शकर धनु मृदुमूरति किशोर कित ये री॥
विरचित इनहिं विरचि भुवन सब सुन्दरता खोजत रितये री।
तुलसिदास ते धन्य जनम जन मन क्रम वच जिनके हित ये री॥

३. विधि सन विनय करहिं मनमाही—कुडलिया रामायण से—

कुडलिया—मिथिलापुर के नारि नर सिय रघुवीर निहारि।
विनती करहिं विरचि सन अचल अजलि धारि॥
अंचल अजलि धारि देहु वरदान विधाता।
राम जानकी योग्य जोरि मिलवहु यह नाता॥
नात जुरै नृप प्रण टरै भूपति जायँ लजाय घर।
यह सयोग विचारि कहि मिथिलापुर के नारि नर॥

४. बिन विचार प्रण तजि नरनाहू। सीय राम कर करइ विवाहू—

कवित्त—कोऊ सखी कहती सखी सो रामरूप देख जो पै दर्द एती चित्त चाह कर देवै री।
इनको विलोकि भूत प्रन को विहाय वेग नेह की नदी मे परवाह कर देवै री॥
'अवध बिहारी' सरन होवै कृतकृत्य सबै आँखिन के आगे सो उछाह कर देवै री।
याह कर देवै दिल दाह कर देवै दूरि सीता रामचन्द्र को विवाह कर देवै री॥

अर्थ—हे विधाता ! तुम जनकजी की राजहठ को जल्दी से हटा दो और उन्हे हमारी सरीखी सुन्दर बुद्धि दे देओ। जिससे नरेशजी अपने बिना विचारे किये हुए प्रण को छोडकर सीता का विवाह रामचन्द्रजी के साथ कर देवें।

जग भल कहिहि भाव सब काहू। हठ कीन्हे अतहु उर दाहू ॥
इहि लालसा मगन सब लोगू। वर सॉवरो जानकी योगू[१] ॥

अर्थ—ससार के लोग इसे उत्तम कहेगे क्योकि सब लोगो की यही इच्छा है और हठ पकडे रहने से तो पीछे से जी जलेगा। सब लोग इसी लालसा मे मग्न है कि श्यामला वर जानकी के योग्य है।

तब बंदीजन जनक बुलाये। विरदावली कहत चलि आये[२] ॥
कह नृप जाइ कहहु प्रण मोरा। चले भाट हिय हर्ष न थोरा ॥

अर्थ—तब जनकजी ने यश बखानने वालो को बुलवाया। वे लोग उनके वश की कीर्ति का वर्णन करते हुए आये। (उनसे) राजा ने कहा कि (सब राजाओ को) हमारा प्रण कह सुनाओ। (यह सुन) बदीगण आनन्दपूर्वक चल खडे हुए।

सूचना— 'हिय हर्ष न थोरा' इन शब्दो मे बडी विचित्रता है सो यो कि एक अर्थ तो स्पष्ट ही है जो ऊपर लिख चुके है। दूसरा अर्थ—भाटो के आगे कहे हुए वचनो से यह ध्वनित होता है कि 'भाटो के हृदय मे थोडा भी हर्ष न था' अर्थात् जब उन्होने जान लिया कि जनकजी वही अपना कठिन प्रण अभी तक भी राजाओ को सुनाने के लिए कहते है और उसे त्यागते नही है, तब तो उन्हे यह चिन्ता हुई कि रामचन्द्रजी से विवाह होने मे सन्देह है।

दोहा—बोले बन्दी वचन वर, सुनहु सकल महिपाल।
प्रण विदेह कर कहहि हम, भुजा उठाइ विशाल[३] ॥२४९॥

---

१. इहि लालसा मगन सब लोगू। वर साँवरो जानकी योगू—
सवैया—हे विधि शेष सुरेश गनेश रमेश हरौ दुख भारै।
सोइ करौ ज्यहि युक्ति बनै सो प्रनै तजि भूप मनै यह धारै ॥
'बदि' अनदित जाते सबै सब भाँति फबै जन वारने वारै।
भाँवरि पारै सिया रघुनाथ सनाथ ह्वै नीके कै नैन निहारै ॥

२. तब बदीजन जनक बुलाये। विरदावली कहत चलि आये—
सोरठा—सभामध्य गुण ग्राम बन्दी सुत द्वै शोभही।
सुमति विमति यह नाम, राजन को वर्णन करै ॥

३. प्रण विदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाइ विशाल—गीतावली रामायण से—
राग मारू—सुनो भैया भूप सकल दै कान।
वज्ररेख गज दशन जनक प्रण वेद विदित जग जान ॥
घोर कठोर पुरारि शरासन नाम प्रसिद्ध पिनाकु।
जो दशकठ दियो बाँवो जेहि हरगिरि कियो है मनाकु ॥
भूमि भाल भ्राजत न चलत सो ज्यो विरचि को आँकु।
धनु तोरै सोई वरै जानकी राव होइ कि राँकु ॥
और भी—
गीतिका छन्द—कोइ आज राजसमाज मे बल शम्भु को धनु कर्षि है।
पुनि कान कै परिमान तानि सु चित्त मे अति हर्षि है ॥ →

अर्थ—भाट लोग ऊँचे स्वर से कहने लगे, हे सम्पूर्ण राजाओ ! आप सुनिये, हम लोग महाराज जनकजी के कठिन प्रण को हाथ उठाकर कहते है (हाथ उठाकर कहने की एक प्रथा है जो किसी बात को निश्चयपूर्वक जताने के लिए की जाती है कि जिससे सब का चित्त उस कहने वाले की ओर आर्कषित हो।

सूचना—स्मरण रहे कि भाटो की चतुराई उनके शब्दो से प्रकट होती है, यथा 'प्रण विदेह कर' 'विदेह कर' इन शब्दो का दूसरा अर्थ यह होना है कि यह प्रण लोगो को विदेह करने वाला है अर्थात् इसके सुनने से ही आप लोगो को शारीरिक बल का अभिमान न रहकर देह की सुधबुध-सी न रहेगी, जैसे नीचे लिखा है—

नृप भुजबल विधु शिवधनु राहू[१] । गरुअ कठोर विदित सब काहू ।।
रावण बाण महाभट भारे । देखि शरासन गवहि सिधारे[२] ।।

अर्थ—राजाओ की भुजाओ का बल चन्द्रमा के समान और शिवजी का धनुष राहु-रूपी है, सब लोग जानते ही है कि यह भारी और कठोर है। देखो बडे-बडे भारी योद्धा रावण और बाणासुर सरीखे जिस धनुष को देखकर चुपचाप चले गये।

सोइ पुरारि कोदड कठोरा । राज समाज आज जेइ तोरा[३] ।।
त्रिभुवन जय समेत वैदेही । बिनिहि विचार बरइ हठ तेही ।।

अर्थ—उसी शिवजी के कठोर धनुष को राजाओ की सभा मे जो कोई आज तोडेगा। उसके साथ जानकीजी तथा तीनो लोक की विजय लक्ष्मी बिना विचार किए हुए ही जबरई से विवाह कर लेवेंगी (अर्थात् सीताजी तो उसके साथ विवाह कर ही लेवेगी, इसके सिवाय उसे तीनो लोक मे यश मिलेगा)।

सुनि प्रण सकल भूप अभिलाषे । भट मानी अतिशय मन माषे ।।
परिकर बाँधि उठे अकुलाई । चले इष्टदेवन शिर नाई ।।

अर्थ—ऐसा प्रण सुनकर सब राजा उत्सुक हो गये और अभिमानी राजा मन मे बहुत

वह राज होइ कि रक 'केशवदास' सो सुख पाइ हैं।
नृप कन्यका यह तासु के उर पुष्पमाला नाइ है।।

१ नृप भुजबल विधु शिवधनु राहू—कुडलिया रामायण से—

कुडलिया—हरगिरि ते गरु जानिये कमर पृष्ठ ते खोर।
महि सँग रच्यो विरचि जनु सकल वज्र तन तोर।।
सकल वज्र तन तोरि मोरि मुरि गये दशानन।
बाणासुर ले सुभट भये भज्जित कहु जानन।।
जान न क्वउ या को मरम शिवहि छाँडि को तानिये।
निज बल हृदय विचारि कै हरगिरि ते गरु जानिये।।

२ रावण बाण महाभट भारे। देखि शरासन गवहि सिधारे—

दोहा (रावण)—हो तो नाशिव धनुष तौ देते ताहि चढाय।
यह असमजस लाइ उर जात शिवहि शिर नाय।।
(बाण)—मेरे गुरु को धनुष यह, सीता मेरी माय।
दुहूँ ओर असमजसहि महूँ जात शिर नाय।।

३ सोइ पुरारि कोदड कठोरा। राज समाज आज जेइ तोरा।।

राजा जनक के बदीगणो ने महाराजा का प्रण सब राजाओ के प्रति यो कहा (सीता स्वयम्वर से)— →

ही क्रोधित हुए (इस मतलब से कि धनुष को ऐसा कठोर बतलाते है हम अभी तोडे डालते है)। कमर बाँधकर झट से उठ खडे हुए और अपने-अपने इष्टदेवताओ को सीस नवाकर चले।

तमकि ताकि तकि शिवधनु धरही। उठइ न कोटि भाँति बल करहीं ॥
जिनके कछु विचार मन माही। चाप समीप महीप न जाही ॥

अर्थ—वे क्रोध के आवेश से घूरकर देख शिवजी के धनुष को पकडते थे परन्तु नाना प्रकार से बल करने पर भी वह उठाये नही उठता था। जिन राजाओ के चित्त मे कुछ ज्ञान था वे धनुष के पास तक नही जाते थे।

दोहा—तमकि धरहि धनु मूढ नृप, उठइ न चलहि लजाइ[1]।
मनहुँ पाइ भट बाहुबल, अधिक अधिक गरुआइ ॥२५०॥

अर्थ—मूर्ख राजा क्रोध से मुह लाल कर धनुष को जा पकडते थे परन्तु जब वह न उठता था तो लजाकर लौट आते थे, (ऐसा समझ पडता था कि) धनुष मानो राजाओ की भुजाओ का बल पाकर अधिक ही अधिक भारी होता जाता था।

भूप सहस दस एकहि बारा[2]। लगे उठावन टरइ न टारा ॥
डगै न शंभु शरासन कैसे[3]। कामी वचन सती मन जैसे ॥

दोहा—जो उद्‌भट भट आय्र के, शिवधनु देय चढाय।
सो आनँद सरसाय उर, सुता ब्याहि लै जाय ॥

१ तमकि धरहिं धनु मूढ नृप, उठइ न चलहि लजाइ।—कुडलिया रामायण से—

कुडलिया—धनु न नयो कर कटि नयो तमकि छुओ धनु आनि।
पाँव नवै शीशहु नवै भई प्रबल बल हानि ॥
भई प्रबल बल हानि मान सुख को सब सूख्यो।
तन मे चल्यो प्रस्वेद अधर दल विद्रुम रूख्यो ॥
रूख्यो विद्रुम वदन भी देह दशा विह्वल भयो।
लोचन मन दूनौ नये धनु न नयो कर कटि नयो ॥

और भी, रामरत्नाकर रामायण से—

चौपाई—गरुअ सुमेरु अधिक धनु जोहै। ताको सकै टार अस को है ॥
लज्जित हुइ नृप बैठहि जाई। बालक मिल करतार बजाई ॥

२. भूप सहस दस एकहि बारा—इसमे यह शका हो सकती है कि दस हजार राजा मिलकर जो धनुष को कदाचित् उठा लेते तो सीता किसे ब्याही जाती ? इसका समाधान पडित लोग यो करते है कि उन लोगो ने आपस मे यह सलाह कर ली होगी कि हम लोगो मे से जो सब से अधिक बलवान् होगा सो सीता को ब्याह लेगा, परन्तु सब पूर्वा पर विचार करने से ऐसा जँच पड़ता है कि राजाओ ने पृथक्-पृथक् अपना बल चलता न देख कदाचित् क्रोध के आवेश मे होकर ऐसा विचार किया हो कि किसी प्रकार से धनुष उठे तो सही ! परन्तु तीसरा सभावित अर्थ जो ऊपर लिख आये है उस पर विचार करने से यह शका भी नही रहती क्योकि धनुष का विस्तार भी विचारणीय है।

३. डगै न शभु शरासन कैसे। कामी वचन सती मन जैसे—

सवैया—खण्डित मान भयो सब को नृप मण्डल हारि रह्यो जगती को।
व्याकुल बाहु निराकुल बुद्धि थक्यो बल विक्रम लकपती को ॥
कोटि उपाय किये कहि "केशव" केहूँ न छाँडत भूमि रति को।
भूरि विभूति प्रभाव सुभावहि ज्यो न चलै चित योग यती को ॥

अर्थ—दस हजार राजे एक ही बार उठाने लगे परन्तु धनुष हटाने से भी नही हटा। महादेवजी का धनुष इस प्रकार अचल हो रहा था जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री का मन कामातुर पुरुष के वचनो से (नही डिगता है)।

दूसरा अर्थ—एक ही बारा से यह अभिप्राय भी होता है कि एक दिन दस हज़ार राजा बारी-बारी से धनुष उठाने का उपाय कर चुके थे परन्तु कोई भी सफल मनोरथ न हुए (बारीकी से विचार किया जावे तो यह अर्थ भी ठीक नही जमता क्योकि इतना समय कहा था)।

संभावित तीसरा अर्थ—दस हजार राजे जो एक ही दिन एकत्र हुए थे उनमे से (अभी तक) जितने राजा धनुष उठाने को गये थे उनमे से किसी के टाले वह धनुष न टल सका (भाव यह कि धनुष उठाने को अभिमानी घोडे से योद्धा गये थे, जैसा ऊपर कह आये है—'सुनि प्रण सकल भूप अभिलाषे। भट मानी अतिशय मन माषे।' बहुतेरे राजारूप देवता, सज्जन राजा, और भक्त राजा आदि धनुष के पास तक नही गये थे, जैसा ऊपर कह आये है—'जिन के कछु विचार मन माही। चाप समीप महीप न जाही।'

सर्ब नृप भये योग उपहासी। जैसे बिनु विराग संन्यासी॥
कीरति विजय वीरता भारी। चले चापकर बरबस हारी[१]॥

अर्थ—(धनुष के उठाने का प्रयत्न करने वाले) सब राजा हँसी के योग्य हो गये जिस प्रकार विषयो का त्याग किये बिना सन्यासी हँसने के योग्य हो जाता है। ये लोग अपना यश, जप की इच्छा और बडे पराक्रम को जबरई से मानो धनुष को सौपकर चले गये (अर्थात् धनुष न उठा सकने के कारण इन राजाओ ने भले राजाओ के रोकने पर भी अपनी कीर्ति, विजय और भारी वीरता को गँवाया)।

श्रीहत भये हारि हिय राजा। बैठे निज निज जाइ समाजा॥
नृपन्ह विलोकि जनक अकुलाने। बोले वचन रोष जनु साने[२]॥

अर्थ—ये राजा तेजहीन होकर मन मार अपने-अपने समाज मे जा बैठे। राजाओ की दशा देखकर जनकजी अधीर हो उठे और ऐसे वचन कहने लगे कि मानो क्रोध से भरे हो (भाव यह है कि विदेह राजा बडे धैर्यवान् थे तो भी समयानुसार उचित वचन बोले जो बहुतेरो को क्रोधयुक्त समझ पडे)।

---

१. कीरति विजय वीरता भारी। चले चाप कर बरबस हारी—कुडलिया रामायण से—

कुडलिया—धनु धन सब को हरि लयो मति गति नाम सदाप।
यश कीरति बल वीरता धीरज तेज प्रताप॥
धीरज तेज प्रताप नियम व्रत धर्म सुकर्मनि।
अस्त्र शस्त्र की हारि रूप द्युति लाज काज गनि॥
लाज काज पर गाज धरि राजनि धनुकर सो छियो।
रीते बीते सब भये धनु धन सबको हरि लियो॥

२. नृपन्ह विलोकि जनक अकुलाने। बोले वचन रोष जनु साने—

श्लोक—नारिकेल समाकारा, दृश्यन्तेऽपिहि सज्जना।
अन्ये बदरिकाकारा, बहिरे व मनोहरा॥

अर्थ—सज्जन लोग नारियल के समान स्वरूप मे दिखाई देते है (अर्थात् देखने मे कठोर परन्तु हृदय से नम्र और मधुर गरी की नाईं होते हैं) और दूसरे लोग बेर की नाईं बाहर से नम्र दिखाई देते है (परन्तु भीतर से बेर की गुठली की नाईं कठोर रहते है)।

द्वीप द्वीप के भूपति नाना । आये सुनि हम जो प्रण ठाना ।।
देवदनुज धरि मनुज शरीरा । विपुल वीर आये रणधीरा[१] ।।

अर्थ—अनेक द्वीप निवासी राजा लोग हमारे पक्के प्रण को सुनकर आये । देवता और राक्षस मनुष्य रूप धारण कर तथा बहुतेरे रणकुशल योद्धा भी आये ।

दोहा—कुँवरि मनोहरि विजय बडि, कीरति अति कमनीय ।
पावन हार विरचि जनु, रचेउ न धनु दमनीय ।।२५१।।

अर्थ—मनमोहिनी राजकुमारी, भारी जीत और बहुत ही प्रशसनीय कीर्त्ति इन सब का पाने वाला धनुभजनहार मानो कर्त्तार ने रचा ही नही (अर्थात् यदि कर्त्तार रचता तो वह अवश्य धनुष तोडकर इन तीनो को पा लेता) ।

सूचना—'कुँवरि मनोहरि' का अर्थ मनमोहिनी राजकन्या ऐसा करने से कोई कोई यह शका कर बैठते है कि जनकजी अपनी पुत्री की मनोहरता अपने सुख से कैसे कहेगे तो भी 'कुँवरि' को कोई विशेषण न लगाकर 'मनोहरि' को 'विजय बडि' के साथ रखने से ऐसी शका का भली भाति निवारण हो जाता है सो यो कि—

(१) राजकुमारी, (२) बडि मनोहरि विजय, तथा (३) अति कमनीय कीरति, इन तीनो का पाने वाला कोई भी राजा ब्रह्मा ने नही रचा (इसमे से ध्वनि यह निकल सकती है कि जिसे ब्रह्मा ने नही रचा अर्थात् जो आप ही अवतार ले आये है ऐसे रामचन्द्रजी कदाचित् हो तो हो)।

परन्तु केवल मनोहर कहने से पुत्री का शृगार वर्णन नही समझा जा सकता । क्योकि इसी प्रकार का कथन दक्षजी ने अपनी पुत्री सती के सम्बन्ध मे कहा है—'साविव्या इव साधु-वत्' अर्थात् सावित्री की नाईं शुद्ध आचरण वाली (भागवत, स्कन्ध ४, अध्याय दूसरा, श्लोक ११वा) और १२वे श्लोक मे भी 'गृहीत्वा मृगशावाक्ष्या पाणि मर्कट लोचन.' अर्थात् उस बन्दर की नाईं नेत्र वाले ने मेरी मृगछौनी की नाईं नेत्र वाली पुत्री का पाणिग्रहण करके (इत्यादि) ऐसे-ऐसे शब्द कहे है ।

कहहु काहि यह लाभ न भावा । काहु न शंकर चाप चढावा ।।
रहेउ चढाउब तोरब भाई । तिलभरि भूमि न सके छुड़ाई[२] ।।

अर्थ—कहिये तो सही ! यह लाभ किस को नही भाता परन्तु किसी ने भी तो शिवजी के धनुष को न चढाया । हे भाइयो ! चढाने और तोडने की तो कहे कौन ! किसी ने उसे अपने स्थान से तिल भर भी न हटाया ।

अब जनि कोउ माषै भट मानी । वीरविहीन मही मै जानी[३] ।।

---

१ देव दनुज धरि मनुज शरीरा । विपुल वीर आये रणधीरा—

कवित्त—पावक पवन मुनि पन्नग पतग पितृ ज्योतिवत जेते जग ज्योतिषिन गाये है ।
असुर प्रसिद्ध सिद्ध तीरथ सरित सिन्धु 'केशव' चराचर जे वेदन गनाये है ।।
अमर अजर अज अगी औ अनगी सब वरणि सुनावै कौन ऐसे मुख पाये हैं ।
सीता के स्वयम्वर को रूप अवलोकिवे को भूपन को रूप धारि विश्वरूप आये है ।।

२ रहेउ चढाउब तोरब भाई । तिलभरि भूमि न सके छुडाई—

दोहा—नेक शरासन आसनै, तजै न केशवदास ।
उद्यम कै थाक्यो सबै, राज समाज प्रकास ।।

३. वीर विहीन मही मैं जानी—

सवैया—देव अदेव नृदेव सबै जिनकी बल सेव न आज लौं जानी ।
कीरति थाप प्रताप कि दाप सु चाप सहूँ तिनहूँ कि हिरानी ।। →

तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न विधि वैदेहि विवाहू[१] ॥

अर्थ—आज से कोई घमडी योद्धा डीग न मारै, मैने समझ लिया कि पृथ्वी वीर रहित हो गई है। आशा छोडो और अपने-अपने घर पधारो, विधाता ने जानकी का विवाह लिखा ही नही।

सुकृत जाइ जो प्रण परिहरऊँ। कुँअरि कुँआरि रहउ का करऊँ ॥
जो जनतेऊँ बिनभट भुवि भाई। तौ प्रण करि होतेऊँ न हँसाई ॥

अर्थ—जो मैं अपना प्रण छोडता हू तो धर्म जाता है, पुत्री कुआरी बनी रहे, मै लाचार हू। हे भाई! यदि मै जान लेता कि पृथ्वी पर कोई योद्धा है ही नही, तो फिर ऐसा प्रण ठान अपनी हँसी न कराता।

जनकवचन सुनि सब नर नारी। देखि जानकिहि भये दुखारी ॥
माषे लषन कुटिल भईँ भौहै। रदपट फरकत नयन रिसौहै[२] ॥

अर्थ—जनकजी के वचन सुन और सीताजी की ओर देखकर सब स्त्री-पुरुष दुखित हुए। लक्ष्मणजी क्रोधित हो उठे, उनकी भौहे टेढी हो गईं, होठ फडकने लगे और आखो से क्रोध झलकने लगा।

दोहा—कहि न सकत रघुवीर डर, लगे वचन जनु बान।
नाइ रामपदकमल शिर, बोले गिराप्रमान ॥ २५२ ॥

अर्थ—रामचन्द्रजी के डर से कुछ कह नही सकते थे परन्तु जनकजी के वचन बाण की नाईं चुभ गये (इस हेतु) रामचन्द्रजी के कमलस्वरूप चरणो मे शीस नवाकर यथायोग्य वचन कह उठे कि—

रघुवंशिन्ह महँ जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहइ न कोई ॥
कही जनक जस अनुचित बानी। विद्यमान रघुकुलमणि जानी[३] ॥

जो हठ ठानी अयानी करी अब तो न कोऊ चटकै भट मानी।
'बदि' यही अनुमानि सही बिन वीर मही सब ही पहिचानी ॥

१. तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न विधि वैदेहि विवाहू—
कुडलिया—प्रण हमार मिथ्या भयो, जाहु सकल नृप धाम।
विधि न रच्यो वैदेहि वरु, पुरुष न कोऊ वाम ॥
पुरुष न कोऊ जानतो तो प्रण यह धरतो कहा।
कन्या रही कुमारि यह भई हास्य जग मे महा ॥
हास्य भई बसुधा सकल शूर हीन सब जग ठयो।
जनक सभा मे कह वचन प्रण हमार मिथ्या भयो ॥

२ माषे लषन कुटिल भईँ भौहै। रदपट फरकत नयन रिसौहै —
कुडलिया—लषन लाल को लाल मुख सुने जनक के बैन।
फरके अधर प्रताप को अरुण भये द्वउ नैन ॥
अरुण भये द्वउ नैन जोरि कर भे उठि ठाढे।
करुणानिधि की ओर वचन बोले रिस बाढे ॥
बाढे रिस कह सुनु जनक वचन कहौ रघुवश रुख।
राम कृपाल समाज महँ लषन लाल कहँ लाल मुख ॥

३. कही जनक जस अनुचित बानी। विद्यमान रघुकुलमणि जानी— →

अर्थ—रघुवंशियो मे से जहा कोई भी हो उस समाज मे ऐसा कोई भी न कहेगा। जैसे अयोग्य वचन जनकजी ने रघुकुल श्रेष्ठ रामचन्द्रजी के रहते हुए कहे है।

सुनहु भानुकुल पंकजभानू। कहउँ सुभाव न कछु अभिमानू ॥
जो राउर अनुशासन पाऊँ। कदुक इव ब्रह्माड उठाऊँ[१] ॥
कॉचे घट जिमि डारौ फोरी। सकौ मेरु मूलक इव तोरी ॥

अर्थ—हे कमलस्वरूप सूर्यवश को सूर्य के समान प्रभु ! मै अपने स्वभाव की कहता हू, कुछ अभिमान नही करता। जो आपकी आज्ञा पाऊ तो ब्रह्माड को गेद की नाई उठा लू और उसे कच्चे घडे की नाई फोड डालूँ, (यदि इसमे सुमेरु पर्वत के कारण बाधा पडे तो उस) सुमेरु पर्वत को भी मै मूली के समान तोड सकता हू।

तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना ॥
नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुक करौ विलोकिय सोऊ ॥
कमलनाल जिमि चाप चढ़ावौ। योजन शत प्रमाण ले धावौ ॥

अर्थ—सो हे भगवान् ! ये सब आपके प्रताप ही से, बिचारा जीर्ण धनुष किस हिसाब मे है। हे स्वामी ! ऐसा जानकर आज्ञा दीजिये और जो तमाशा कर दिखाऊँ उसे देखिये कि कमल की डडी की नाई धनुष को चढाकर चार सौ कोस तक ले दौडू।

दोहा—तोरौ छत्रकदंड जिमि, तव प्रताप बल नाथ[२]।
जो न करौ प्रभुपदशपथ, पुनि न धरौ धनु हाथ ॥२५३॥

शब्दार्थ—छत्रक=कठफूल, कुकुरमुत्ता।

अर्थ—हे प्रभु ! आपके प्रताप के आधार से धनुष को कठफूल की डडी के समान तोड डालू और जो ऐसा न करू तो आपके चरणो की सौगद खाकर कहता हू कि मै फिर धनुष को हाथ से न छुऊगा।

लषन सकोप वचन जब बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले ॥
सकल लोक सब भूप डेराने। सिय हिय हर्ष जनक सकुचाने ॥

सवैया—जात नही तन पीर सही, नृप बैन भरे विष तीर से लागे।
धीर धरो नहिं जात करौ कहा, ये सिगरे अग दाह से दागे ॥
आप सुने "ललिते" न गुने कछु जो मिथिलेश कहे रिस पागे।
वीर विहीन भई बसुधा रघुवशिन के अवतसन आगे ॥

१. जो राउर अनुशासन पाऊँ। कदुक इव ब्रह्माड उठाऊँ—
क०—अब तो न सही जात पीर रघुवीर धीर तीर से लागे है बैन आयसु जो पाऊँ मै।
"ललित" मरोरि महि वारिधि मे डारो बोरि तोरि दिग दतिन के दतन दिखाऊँ मैं ॥
रावरे प्रताप बल साँची कहौ रघुवीर मेरु लै उखारि छिति छोर लगि धाऊँ मैं।
अटकि रहेहौ कहा मुख ते निकारिये तौ झटकि शरासन को चटकि चढाऊँ मैं ॥

२. तोरौ छत्रकदड जिमि, तवप्रताप बल नाथ—हृदयराम कविकृत हनुमन्नाटक से—
सवैया—बोल उठयो रघुवीर सुनो रघुवीर कहो छिन माहि उठाऊँ।
श्री मुख ते न कहो कछु लासहिं भौहन को नैकु आयसु पाऊँ ॥
पाय छुवो ऋषि के अबही रवि को कर बाम सो जाय उचाऊँ।
राम उठाय तुम्है दिखराय कै देहुँ चलाय कहौ चटकाऊँ ॥

अर्थ—जब लक्ष्मणजी ने ऐसे क्रोध भरे वचन कहे तो पृथ्वी हिलने लगी और दिशाओ के हाथी कॅप उठे । सम्पूर्ण मनुष्य तथा राजा लोग डर गये, सीताजी के हृदय मे आनद हुआ और जनकजी लज्जित हुए ।

गुरु रघुपति सब मुनि मन माही । मुदित भये पुनि पुनि पुलकाही ।।
सनहि रघुपति लषन निबारे । प्रेम समेत निकट बैठारे ।।

अर्थ—विश्वामित्रजी, रामचन्द्रजी और सब मुनिगण हृदय से ऐसे प्रसन्न हुए कि बारम्बार उनके रोम खडे हो उठते थे । रामचन्द्रजी ने नेत्रो के सकेत से लक्ष्मण को रोका और प्यार से उन्हे अपने पास बिठलाया ।

विश्वामित्र समय शुभ जानी । बोले अति सनेहमय बानी ।।
उठहु राम भजहु भवचापा । मेटहु तात जनक परितापा[१] ।।

अर्थ—विश्वामित्रजी ठीक अवसर जानकर अत्यन्त प्रेम से भरी हुई वाणी बोले । हे राम उठो, महादेवजी का धनुष तोडो ! और ऐसा करके हे प्यारे ! जनकजी का दु ख दूर करो ।

सुनि गुरु वचन चरण शिर नावा । हर्ष विषाद न कछु उर आवा ।।
ठाढ़ भये उठि सहज सुभाये । ठवनि युवा मृगराज लजाये ।।

अर्थ—गुरुजी की आज्ञा सुन उनके चरणो पर सिर नवाया परन्तु रामचन्द्रजी के हृदय मे आनन्द व खेद कुछ भी नही हुआ । वे अपने सादे स्वभाव ही से उठ खडे हुए । उस समय की छटा ने जवान सिंह को भी मात कर दिया ।

दोहा—उदित उदयगिरि मच पर,[२] रघुवर बाल पतग ।
बिकसे सत सरोज सब, हरषे लोचन भृग ।।२५४।।

अर्थ—उदयाचलरूपी सिंहासन पर रामचन्द्र रूपी प्रात काल के सूर्य का उदय हुआ जिससे सज्जनरूपी सब कमल प्रफुल्लित हुए और उनके भ्रमररूपी नेत्र प्रसन्न हुए (अर्थात् रामचन्द्रजी को धनुष तोडने के निमित्त उठकर खडे देख सज्जन गण हर्षित हुए और उनके नेत्र रामचन्द्रजी की ओर टकटकी बॉधकर रह गये जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से कमल खिलते है और तब भौरे प्रसन्न होते है) ।

---

१. उठहु राम भंजहु भवचापा । मेटहु तात जनक परितापा—

सवैया—सातहु द्वीपन के अवनीपति हारि रहे जिय मे जब जाने ।
बीस बिसे ब्रत भग भयो सो कहौ अब 'केशव' को धनु ताने ।।
शोक कि आग लगी परिपूरण आय गये घनश्याम बिहाने ।
जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरु पुण्य पुराने ।।

भाव यह है कि जनकजी व सीता आदि सब शोक की आग मे मानो तप रहे थे कि इतने मे विश्वामित्रजी की आज्ञा से जो श्याम स्वरूप श्री रामचन्द्रजी खडे हो गये से मानो घने बादल उठ आये हो, जिनकी वर्षा से जैसे जगल की दँवार शान्त हो जाती है इसी प्रकार घनश्याम रामजी के धनुष तोडने से इन लोगो की तपन बुझने की आशा होऊँ ।

२. उदित उदयगिरि मच पर—

सवैया—शोभित मचन की अवली गजदन्तमयी छवि उज्ज्वल छाई ।
ईश मनो वसुधा मे सुधारि सुधाधर मडल मडि जुन्हाई ।।
ता महँ "केशव दास" बिराजत राजकुमार सबै सुखदाई ।
देवन सो जनु देवसभा शुभ सीयस्वयम्बर देखन आई ।।

नृपन्ह केरि आशा निशि नाशी। बचन नखत अवली न प्रकाशी ।।
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने ।।

अर्थ—सम्पूर्ण राजाओ की आशारूपी रात्रि मिट गई और उनके वचनरूपी नक्षत्रो की पक्तियो का प्रकाश दब गया (अर्थात् सम्पूर्ण राजा हताश हुए इसी हेतु उनका डीग मारना बन्द हो गया)। घमडी राजा कुमुद के समान सिकुडे और कपट-भेषधारी राजा रूपी उल्लू छिप गये (अर्थात् घमडी राजा लज्जित हुए और देवता, राक्षस आदि जो राजाओ के रूप धरकर आये थे सो छिपने लगे)।

भये विशोक कोक मुनि देवा। वर्षहि सुमन जनावहि सेवा[१] ।।
गुरुपद वंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्ह सन आयसु माँगा ।।

अर्थ—चक्रवाकरूपी मुनि और देवगणो का दुःख दूर हुआ, इस हेतु वे फूल बरसा कर अपनी भक्ति बताने लगे। रामचन्द्रजी ने प्रीतिपूर्वक गुरुजी के चरणो को प्रणाम कर सब मुनियो से आज्ञा मागी।

सहजहि चले सकल जगस्वामी। मत्तमंजु वर कुजरगामी[२] ।।
चलत राम सब पुर नर नारी। पुलक पूरि तनु भये सुखारी ।।

अर्थ—मस्त धीमी चाल वाले सुन्दर हाथी के समान चलने वाले सम्पूर्ण ससार के स्वामी श्री रामचन्द्रजी अपनी स्वाभाविक चाल से चले। रामचन्द्रजी के चलते समय जनकपुर के सब स्त्री-पुरुष रोमाचित हो प्रसन्न चित्त हुए।

वदि पितर सुर सुकृत सँभारे। जो कछु पुन्य प्रभाव हमारे ।।
तौ शिव धनुष मृनाल की नाई। तोरहिं राम गणेश गोसाई[३] ।।

अर्थ—अपने पुरुखाओ और देवताओ की वदना करके अपने सत्कर्मो का स्मरण किया (और कहा) यदि हमारे धर्म कर्मों का कुछ फल होवे तो हे गणेश गोसाईं! रामचन्द्रजी शिवजी के धनुष को कमल की डडी के समान तोड डाले।

---

१ वर्षहिं सुमन जनावहिं सेवा—कुडलिया रामायण से—

कुडलिया— रामरूप नृप देखि कै द्युति मुख की छबि क्षीन।
रविप्रताप निरखत मनौ उडुगन ज्योति मलीन ।।
उडुगन ज्योति मलीन दीन बलहीन विराजत।
जड खल दल दलमलेउ साधु सुर सज्जन गाजत ।।
गाजत दुदुभि सुमन सुर मगन नारि नर पेखि के।
थकित चकृत पल नहिं लगत रामरूप नृप देखि के ।।

२. मत्त मजु वर कुजरगामी—यही छटा अन्य प्रकार से 'उत्तर रामचरित के छठे' सर्ग मे यो दर्शाई है—"धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम्" अर्थात् यह वीर गम्भीर धीर चाल से मानो पृथ्वी को दबाता जा रहा है।

३. वदि पितर सुर सुकृत सँभारे · ···गणेश गोसाई—जनकपुर के सब लोग मानो यह विचार रहे थे कि—

दोहा—जन्म अनेकन के सुकृत, जो कछु होइ हमार।
सो ब्याहै वर जानकी, सुन्दर श्याम कुमार ।।

दोहा—रामहिं प्रेम समेत लखि, सखिन्ह समीप बुलाइ ।
सीता मातु सनेहवश, वचन कहै बिलखाइ ।।२५५।।

अर्थ—सीताजी की माता (सुनयना जी) रामचन्द्रजी को प्यार से देख सखियो को अपने पास बुलाकर प्रेम के कारण दु ख भरे वचन कहने लगी ।

सखि सब कौतुक देखनहारे । जेउ कहावत हितू हमारे ।।
कोउ न बुझाइ कहइ नृप पाही । ये बालक अस हठ भल नाही ।।

अर्थ—हे सखी ! जो हमारे हितकारी कहे जाते है, वे सब तमाशा देख रहे है (उनमे से) कोई भी राजाजी से समझा कर नही कहता कि ये बालक है, इनके साथ ऐसा हठ ठीक नही (अथवा यह आपकी बालक की नाई हठ ठीक नही) ।

रावण बाण छुआ नहि चापा । हार सकल भूप करि दापा ।।
सो धनु राजकुँअर कर देही । बाल मराल कि मदर लेही[1] ।।

अर्थ—जिस धनुष को रावण और बाणासुर सरीखे योद्धाओ ने छुआ तक नही तथा (जिसके उठाने के हेतु) सब राजा बल का अभिमान करके हार बैठे, वही धनुष राजकुमार के हाथ मे देते है । भला हस का छौना कही मदराचल को उठा सकता है ? (अर्थात् ऐसे सुकुमार राजकुमार से धनुष तोडने की आशा निरर्थक है) ।

भूप सयानप सकल सिरानी । सखि विधि गति कछु जात न जानी ।।
बोली चतुर सखी मृदु बानी । तेजवंत लघु गनिय न रानी[2] ।।

शब्दार्थ—सयानप=चतुराई । सिरानी=जाती रही ।

---

१. सो धनु राजकुँअर कर देही । बाल मराल कि मदर लेही—

सवैया—ये हो सखी न लखी अब जाति बुझाति न काहु करै दइ मारे ।
कौतुक देखन वारे सभी नृप को सिख देत न हेत विचारे ।।
जो धनु धारन टारन को बलवान दशानन बान से हारे ।
"बन्दि" सो धारि है टारि है क्योकर बाल मराल से ये नृप वारे ।।

२. तेजवत लघु गनिय न रानी' 'इत्यादि—लाला मन्नीलाल (ब्रजचन्द) कृत 'राग विनोद' से—

राग कालिंगडा—रानी तनिक धीर उर धारो ।
अति प्रवीन इक सुमति सहेली यो मृदु वचन उचारो ।।
कहँ गागरसुत कह सागर जल अति अपार विस्तारो ।
सोख्यो धरि अगुष्ठ गाढ मे विदित सुयश उजियारो ।।
देखत मै रवि बिम्ब तनक सो लागत तनक निहारो ।
उदय होत ताके त्रिभुवन मे रहत न कहुँ अँधियारो ।।
काम कुसुम की लै कमान कर कियो स्ववश जग सारो ।
अकुश के वश रहत निरन्तर ज्यो गयद मतवारो ।।
मत्र परम लघु जाके वश मे सुरगण सकल विचारो ।
लघु को प्रभुता श्रेष्ठ दई विधि चित चिन्तन सब टारो ।।
राज समाज आज शिवधनु तिमि तोरहिं कठिन करारो ।
तेजवन्त "ब्रजचन्द" राम ये जनि बालक अनुसारो ।।

अर्थ—राजा की सब चतुराई जाती रही, हे सखी! विधाता की करतूति कुछ समझ में नही आती, (तब) चतुर सखी मधुर वचन बोली कि हे रानीजी! प्रतापवान् को छोटा न समझना चाहिये।

कहँ कुम्भज कहँ सिधु अपारा। सोखेउ सुयश सकल संसारा ॥
रविमडल देखत लघु लागा। उदय तासु त्रिभुवन तम भागा ॥

शब्दार्थ—कुभज=अगस्त्य ऋषि।

अर्थ—कहाँ तो अगस्त्य ऋषिजी और कहाँ भारी समुद्र, उसको पीकर उन्होने ससार मे अपनी सुन्दर कीर्ति फैलाई। सूर्य मण्डल देखने मे तो छोटा लगता है परन्तु उसके उदय होने से तीनो लोक का अन्धकार मिट जाता है।

दोहा—मंत्र परम लघु जासु वश, विधि हरि हर सुर सर्व।
महामत्त गजराज कहँ, वश कर अकुश खर्व ॥२५६॥

अर्थ—मत्र बहुत छोटा है परन्तु ब्रह्मा, विष्णु, महादेव और सम्पूर्ण देवता उसके अधीन रहते है, इसी प्रकार मतवाले हाथी को भी छोटा सा अकुश अपने वश मे रखता है।

काम कुसुम धनुशायक लीन्हे। सकल भुवन अपने वश कीन्हे ॥
देवि तजिय सशय अस जानी। भजव धनुष राम सुनु रानी ॥

अर्थ—कामदेव फूलो के धनुष-बाण ही से सम्पूर्ण ससार को अपने अधीन किये है। हे देवी! ऐसा जान कर सन्देह को त्यागो, हे रानीजी सुनिये! रामचन्द्रजी धनुष को तोड डालेंगे।

सखी वचन सुनि भइ परतीती। मिटा विषाद बढी अति प्रीती ॥
तब रामहि विलोकि वैदेही। सभय हृदय बिनवति जेहि तेही ॥

अर्थ—सखी के ऐसे बचनो को सुनकर रानीजी को विश्वास आ गया, दुःख दूर हो गया और विशेष प्रेम बढा। उसी समय सीताजी भी रामचन्द्रजी को देखकर हृदय से भयभीत हो जिस को देखो उसी देवता की विनती करने लगी।

मन ही मन मनाव अकुलानी। होउ प्रसन्न महेश भवानी ॥
करहु सुफल आपन सेवकाई। करि हित हरहु चाप गरुआई[१] ॥

अर्थ—मन ही मन घबरा कर विनती करने लगी कि हे शिव-पार्वतीजी! प्रसन्न हूजिये। आप की जो सेवा की है उसे सार्थक कीजिए, कि दया कर धनुष के भारीपन को घटा दीजिये।

गणनायक वरदायक देवा[२]। आजु लगे कीन्हउँ तव सेवा ॥
बार बार सुनि विनती मोरी। करहु चाप गरुता अति थोरी ॥

---

१. करहु सुफल आपन सेवकाई। करि हित हरहु चाप गरुआई—

सवैया— हे करुणाकर शकर देव करी तुम्हरी शुचि सेव अघाई।
आय गयो समयो अब सो कर जोरि निहोरि कहौ मन भाई ॥
श्री रघुनाथ के पकज हाथ मे नाथ शरासन की गरुआई।
"बंदि" समूहलहु फूलहु ते खग तूलहु ते हलकी हरुवाई ॥

२. गणनायक वरदायक देवा—मान कवि कृत कृष्णखण्ड भाषा से— →

अर्थ—हे गणेशजी ! वरदान देने वाले देवता, आज तक मैने आपकी सेवा की है। बारबार मेरी विनय सुनकर धनुष के भारीपन को बहुत ही थोडा कर दीजिये।

दोहा—देखि देखि रघुवीर तन, सुर मनाव धरि धीर।
भरे विलोचन प्रेमजल, पुलकावली शरीर ।।२५७।।

अर्थ—रघुवीर के शरीर को बारबार देखकर धीरज धरके देवताओ को मना रही थी। प्रेम के मारे नेत्रो मे जल भर आया और शरीर के रोंगटे खडे हो गये।

नीके निरखि नयन भरि शोभा। पितु प्रण सुमिरि बहुरि मन छोभा।।
अहह तात ! दारुण हठ ठानी[1]। समुझत नहि कछु लाभ न हानी।।

अर्थ—भली भाँति नेत्रो से निहार-निहारकर रामचन्द्रजी की छटा देखी, परन्तु पिता के प्रण की सुध करके फिर भी चित्त को चिंता हुई। (सो यो कि) हे पिता ! तुमने बडा कठिन प्रण ठान लिया है, कुछ हानि-लाभ का विचार न समझा।

सचिव सभय सिख देई न कोई। बुध समाज बड़ अनुचित होई[2]।।
कहँ धनु कुलिशहु चाहि कठोरा। कहँ श्यामल मृदुगात किशोरा।।

अर्थ—कोई मत्री भी डर के मारे सिखावन नही देता, बुद्धिमानो की सभा मे यह बडा अयोग्य बर्ताव हो रहा है। कहाँ तो वज्र की नाईं कठोर धनुष और कहाँ यह श्यामला, सुकुमार छोटी अवस्था का शरीर !

विधि केहि भाँति धरउँ उर धीरा। सिरिस सुमन किमि बेधिय हीरा।।
सकल सभा की मति भइ भोरी। अब मोहि शंभुचाप गति तोरी[3]।।

छप्पय— जय गजमुख मुख सुमुख सुखद सुखमा सरसावन।
जय जग सिद्ध समृद्धि वृद्धि बुधिवर बरसावन।।
जय मगल आचरण मगला वरण विविधि विधि।
जय वर वरण अडोल कलित कल्लोल कलानिधि।।
जय शम्भु सुवन दुख दुवन हर भुवन भुचन गुणनाथ जय।
जय निखिलनाथ निजनाथजय, जय जय जय गणनाथ जय।।

१. अहह तात दारुण हठ ठानी—हनुमन्नाटक भाषा (श्री रामा चतुर दासजी कृत)—
चन्द्रायणा छन्द—कोमल मूरति कोशलराजकिशोर है।
शम्भु शरासन कमठ सु पृष्ठ कठोर है।।
केहि विधि होय अधिज्य असभव बात है।
अति दारुण प्रण कियो अहह तुम तात है।।

२. सचिव सभय सिख देइ न कोऊ। बुध समाज बड अनुचित होई—
श्लोक—न सा सभा यत्र न सन्तिवृद्धा, वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मं।
धर्मं स नो यत्र न सत्यमस्ति, सत्य नतद्यच्छल मभ्युपैति।।
अर्थात् वह सभा नही जहाँ वृद्ध नही, वे वृद्ध नही जो धर्म नही बतलाते वह, धर्म नही जिसमे सत्य नही, वह सत्य नही जो छल से मिला है।

३. अब मोहि शभुचाप गति तोरी— (कवित्त)
ये हो शंभु परम कृपालु हौ निहोरौ तुम्है, माँगौ मन भायो वरदान यह पाऊँ मैं।
दीजै ह्वै प्रसन्न अति दाता फल चार के हौ, जाते गौरि सयुत तिहारो गुण गाऊँ मैं।। →

अर्थ—हे विधाता ! मै किस प्रकार से हृदय मे धीरज धरूँ, सिरिस के फूलो से कही हीरा छेदा जा सकता है ? सम्पूर्ण सभा वालो की तो बुद्धि नष्ट हो गई है। अब तो हे शिवधनु ! मुझे तेरा ही भरोसा है।

निज जडता लोगन पर डारी। होहु हरुअ रघुपतिहि निहारी ॥
अति परिताप सीय मन माही। लवनिमेष जनु युग सम जाही ॥

अर्थ—(हे धनुष ! तुम) अपनी कठोरता और लोगो पर डाल कर रामचन्द्रजी को देख हलके हो जाओ। सीताजी के मन मे इतना भारी क्लेश था कि जिनको एक पल भी युग के समान जान पड़ता था।

दोहा—प्रभुहि चितइ पुनि चितइ महि, राजत लोचन लाल[1] ।
खेलत मनसिज मीनयुग, जनु विधु मंडल डोल ॥२५८॥

शब्दार्थ—लोल=चचल। मनसिज=(मनसि=हृदय से+जन्=उत्पन्न होना) =हृदय से उत्पन्न होने वाला, अर्थात् कामदेव। युग=दो। डोल खेलत=हिंडोला झूलत।

अर्थ—(सीताजी के) चचल नेत्र (जो कभी प्रेम के कारण) रामचन्द्रजी की ओर देखते थे और (कभी लाज के मारे) पृथ्वी की ओर देखने लगते थे सो इस प्रकार शोभायमान थे कि मानो कामदेव की दो मछलियाँ चन्द्रमण्डल मे हिडोलना झूल रही हो (अर्थात् गोसाईजी सीताजी के मुख को चन्द्रमण्डल, उनके नेत्रो का कामदेव की मछलियाँ और नेत्रो के गोलको को जो बारंबार रामचन्द्रजी के मुख देखने को ऊपर उठते और लज्जा के मारे पृथ्वी की ओर जाते थे सो मानो हिंडोलने मे ऊपर-नीचे झूलना मानकर ऐसी तर्कना बाधते है कि जिस प्रकार किसी सफेद रग की चौडे मुँह वाली बोतल मे पानी भरकर उसमे जो मछलियाँ डाली जाती है वे क्रम से ऊपर-नीचे आया-जाया करती है और मन मे यो कह रही थी—इन दुखियाँ अँखियान को, सुख सिरजोई नाहिं। देखत बनै न देखते बिन देखे अकुलाहिं)।

गिरा अलिनि मुखपंकज रोकी। प्रकट न लाज निशा अवलोकी[2] ॥

शब्दार्थ—गिरा=वाणी। अलिनि=भौरी।

कै तौ तात त्यागें प्रण कै तो मृदु होवै चाप, तबै साँवरे को जयमाला पहिराऊँ मै।
'रसिक बिहारी' ब्याहि आनँद उमग रग, राम घनश्याम सग अवध सिधाऊँ मै ॥

१. प्रभुहि चितइ पुनि चितइ महि, राजत लोचन लोल, इत्यादि—इस कथन की छटा नीचे लिखे हुए राग मलार मे विस्तार सहित दर्शाई है—

राग मलार—झूलत तेरे नयन हिंडोरे ॥

श्रवण खभ भुइँ भइ मयारी दृष्टि किरण डाँडी चहुँ ओरे ॥
पटली अधर कपोल सिंहासन बैठे युगल रूप रति जोरे।
बरुनी चमर दुरत चहुँदिशि ते लर लटकत फुँदना चितचोरे ॥
दुर देखत अलकावलि अलि कुल लेत है पवन सुगध झकोरे।
कचघन आड दामिनी दमकत इद्र माँग धन करत निहोरे ॥
थकित भये मडल युवतिन के युग ताटक आज मुख मोरे।
रसिक प्रीतम रस भाव झुलावत विविध कटाक्ष तान तृण तोरे ॥

२. गिरा अलिनि मुखपकज रोकी। प्रक्ट न लाज निशा अवलोकी—स्त्रियो के शरीर पर धारण करने के १२ आभूषण तो होते ही है सो अन्यत्र लिखे हैं, परन्तु यथार्थ १२ आभूषण तो लज्जा आदि सदगुण है वे 'अर्जुन विलास' नामक ग्रन्थ से उद्धृत किये जाते है— →

अर्थ—सीताजी ने वाणीरूपी भौरी को मुखरूपी कमल मे रोक रक्खा, लाजरूपी रात्रि को देख कर उसे प्रकट नही किया (अर्थात् सीताजी कुछ कहना चाहती थी परन्तु गुरुजनो की लाज के मारे उन्होने कहा नही, जिस प्रकार रात्रि के आ जाने पर कमल पर बैठी हुई भौरी उसी मे बन्द होकर रहती है और यद्यपि उसे फोडकर निकल जाने की उसमे शक्ति रहती है तो भी वह प्रेम के कारण उसमे प्रात काल तक बन्द ही रहती है)।

लोचन जल रह लोचन कोना[१] । जैसे परम कृपण कर सोना[२] ।।

अर्थ—नेत्रो का जल नेत्रो के कानो मे ही रह गया (अर्थात् आँसू कुछ बहे नही) जिस प्रकार बडे कजूस मनुष्य का द्रव्य उसके घर ही मे कही छिपा रहता है।

भाव यह है कि प्रेम और दु ख दोनो के कारण नेत्रो मे आँसू तो आये परन्तु सीताजी ने उन्हे इस प्रकार दबाया कि सखियो आदि के सामने भी स्पष्ट रूप से वे दिखे नही, वैसे बडा कजूस अपने द्रव्य को दूसरो की दृष्टि से छिपाये रखता है।

सकुची व्याकुलता बडि जानी । धरि धीरज प्रतीति उर आनि ।।
तन मन बचन मोर प्रण साँचा[३] । रघुपतिपदसरोज मन राँचा ।।
तौ भगवान सकल उरवासी । करिहहि मोहि रघुवर कै दासी ।।

अर्थ—अपने चित्त की घबराहट को विशेष जान लज्जित हुई तो भी धीरज धर के हृदय मे भरोसा रख विचारने लगी कि जो मनसा-वाचा-कर्मणा से मेरा प्रण सच्चा होकर मेरा मन रघुनाथजी के चरणारविंदो मे लगा है तो घट-घट की जानने वाले परमात्मा मुझे रामचन्द्रजी की दासी करेंगे।

*जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलइ न कछु सन्देहू[३] ।।

सवैया—शील औ लाज मिठासै बतान मे तैसी दृढाई स्वधर्म मयूषन।
साधुता और पतिव्रत नेम मिताई सबै सो न काहू को दूषन ।।
तैसा विनय औ अचार क्षमा गुरु लोगन सेइवे को बिन दूषन।
येई तियान को तीरथ से सुख कीरतिकारी है द्वादश भूषन ।।

१ लोचन जल रह लोचन कोना—(रसवाटिका से) विप्रलभ श्रृगार का कैसा उत्तम उदाहरण है।

सवैया—पी चलिबे की चली चरचा सुनि चन्द्रमुखी चितई दृग कोरन।
पीरी परी तुरतै मुख पै बिलखी अति व्याकुल मैन सकोरन ।।
को बरजै अलि का सो कहै मन झूलत नेह ज्यो लाज झकोरन।
मोती से पोइ रहे अंसुआ न गिरे न फिरे बरु नैन के कोरन ।।

२ जैसे परम कृपण कर सोना—बडे भारी कजूस का द्रव्य पृथ्वी मे गडा होवे तो भी उसे स्वप्न तक मे दे डालने का विचार ही चित्त को चिताग्रस्त करता है—

(कवित्त)

सूम पतनी सो कहे सुन सपने की बात अकथ कहानी रात बरबस हारो तो।
चादी को खरो तो जिमी गाडके धरो तो ताहि मन मे विचार खोद हाथ के निकारो तो ।।
ताही समय आय एक कवि ने कवित्त पढो ह्वै कै प्रसन्न ताहि दीवो अनुसारो तो।
हो तो कुल दाग बड जेठन के भाग अरी जाग ना परतो तौ हौं रुपैया दै डारौ तो ।।

३. तन मन वचन मोर प्राण साँचा ··सो तेहि मिलई न कछु सदेहू— →

अर्थ—(क्योकि) जिसका जिस पर सच्चा प्रेम होता है वह उसे मिलता ही है इसमे कुछ संदेह नही।

प्रभुतन चितै प्रेमप्रण ठाना। कृपानिधान राम सब जाना ॥
सियहि विलोकि तकेउ धनु कैसे। चितव गरुड लघु व्यालहि जैसे ॥

अर्थ—रामचन्द्रजी की ओर देखकर प्रेम का दृढ निश्चय कर लिया, दयासागर रामचद्रजी ये सब विचार जान गये। सीताजी को देखकर धनुष को इस प्रकार देखने लगे जिस प्रकार गरुड छोटे सर्प को (तुच्छ मान कर) देखता हो।

दोहा— लषन लखेउ रघुवंशमणि, ताकेउ हरकोदण्ड।
पुलकि गात बोले वचन, चरण चाँपि ब्रह्माण्ड ॥२५९॥

अर्थ—जब लक्ष्मणजी ने देखा कि रघुकुल श्रेष्ठ रामचन्द्रजी शिवजी के धनुष को ताकने लगे तब तो वे अपने चरणो से ब्रह्माण्ड को दबाकर प्रसन्नतापूर्वक यो कहने लगे।

दिशि कुजरहु कमठ अहि कोला[१]। धरहु धरनि धरि धीर न डोला ॥
राम चहहि शकरधनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा ॥

शब्दार्थ—दिशिकुजर=दिशाओ के हाथी अर्थात् दिग्गज। कमठ=कच्छप, जो अपनी पीठ पर पृथ्वी को धारण किये है। अहि=सर्प, शेषनाग जो कच्छप पर ठहरे हुए पृथ्वी को धारण किये है। कोला (कोल)=बाराह, जो पृथ्वी के धारणकर्त्ता है।

अर्थ—हे दिग्गजो! हे कच्छप! हे शेषनाग! हे वाराहजी तुम सब धीरज के साथ पृथ्वी को सम्हाले रहो जिससे वह डगमगाय नही। श्री रामचन्द्रजी शिवजी के धनुष को तोड़ना चाहते है इस हेतु तुम सब हमारी आज्ञा सुन कर चैतन्य हो जाओ।

चाप समीप राम जब आये। नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाये ॥

अर्थ—जब रामचन्द्रजी धनुष के पास पहुँचे तब सब स्त्री-पुरुषो ने अपने देवताओ तथा शुभ कर्मों का स्मरण किया (इस अभिप्राय से कि हम लोगो के अच्छे कर्मों का फल देवगण हमे इस भाँति देवें कि रामचन्द्रजी धनुष को तोड सके)।

ये तीन पक्तियाँ नीचे के दो श्लोको का ठीक-ठीक उल्था ही जँचती है—

श्लोक—कायेन मनसा वाचा यदि सत्य प्रण मम —
राघवेन्द्रस्य पादाब्जे मनश्चमे रति गतम् ॥ १ ॥
तर्हि सर्वगतो देवस्तद्दासी माङ्करोतु वै।
यस्या यस्मिन् पर स्नेह सता प्राप्यो न सशय ॥ २ ॥

* जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु सदेहू—

क०—कौन काज भौरन को कमल बुलावत है कौन काज वृक्षन पखेरू मड़रात है।
चन्द्रमा की चिट्ठी कहूँ गई है चकोरन को मेघ की गराज ते मयुर हरषात है ॥
आज लो सरोवर ने हस ना बुलायो कहूँ दौर दौर फेर फेर योही कुररात है।
बूझि देखौ गुणीजन पडित प्रवीण लोग जहाँ भाव देखे तहाँ आप ही सो जात है ॥

१. दिशि कुजरहु कमठ अहिकोला—आदि (रामरहस्य से)—

सवैया—दिशि कुंजर कच्छप कोल सुनौ महिशीस पै शेष जु धारन वारे।
यहि औसर श्री रघुवशमणी शिवचाप प्रभजन को चित धारे ॥
दृढता से धरा धरिये सबले यहि ते पहिले "द्विज दत्त" पुकारे।
बल सयुत होउ सबै दिगपाल येही अनुशासन होइ हमारे ॥

सब कर संशय अरु अज्ञानू । मंद महीपन्ह कर अभिमानू ।।
भृगुपति केरि गर्व गरुआई । सुर मुनि वरन्ह केरि कदराई ।।
सियकर सोच जनक पछतावा । रानिन्ह कर दारुण दुख दावा ।।
शंभुचाप बड बोहित पाई । चढ़े जाइ सब संग बनाई ।।

अर्थ—सब लोगो का सदेह तथा अज्ञान, मूर्ख राजाओ का घमड, परशुराम का अहकार और बडप्पन, देवताओ और श्रेष्ठ मुनियो का डर । सीता-की चिन्ता, जनकजी का सोच तथा रानियो के बडे भारी दु ख की जलन । ये सब मिलकर शिवजी के धनुष को बडा भारी जहाज समझकर उस पर जा बैठे (अर्थात् सशय, अज्ञान, अभिमान, गर्व, गरुआई, कदराई, सोच, पछतावा दारुण दुख दावा, इन सब ने धनुष का आधार ले रक्खा था, धनुष न टूटता तो ये सब बने ही रहते, परन्तु धनुष टूटने पर उसी के साथ नष्ट हो जायेगे जैसा आगे कहा जायगा)—

रामबाहुबल सिन्धु अपारा । चहत पार नहि कोउ कनहारा ।।

शब्दार्थ—कनहार, शुद्ध शब्द कर्णधार (कर्ण=पतवार+धार=पकडने वाला)= पतवार पकड़ने वाला, नाव खेने वाला ।

अर्थ—रामचन्द्रजी की भुजाओ का बल ही मानो अपार समुद्र था,ये सब इसके पार जाना चाहते थे पर कोई खेने वाला न था (भाव यह कि ये सब रामचन्द्रजी के बल मे सन्देह समझते थे कि धनुष न टूट सकेगा परन्तु उसके तोडने मे बाधा डालने वाला कोई न था अर्थात् किसी को यह शक्ति कहाँ थी जो रामचन्द्रजी को धनुष तोडने से रोके । ऐसा ही रोकने वाला यहाँ पर खेने वाला कहा गया है, जो था ही नही, तभी तो ये सब के सब धनुष टूटने के साथ ही डूब जावेंगे, इसी को गोस्वामीजी ने आगे के २६१वें सोरठे में कहा है 'बूढी सकल समाज आदि) ।

दोहा— राम विलोके लोग सब, चित्र लिखे से देखि ।
चितई सीय कृपायतन, जानी विकल विशेखि ।।२६०।।

अन्वय—राम (ने) सब लोक विलोके (उन्हे) चित्रलिखे से देखि, कृपायतन सीय चितइ (तौ) विशेखि विकल जानी ।

अर्थ—रामचन्द्रजी ने जब सब लोगो की ओर देखा तो उन्हे टकटकी लगाये अपनी ओर देखते हुए समझ दयासागर प्रभु ने सीता की ओर देखा तो उन्हे बहुत व्याकुल जाना ।

देखी विपुल विकल वैदेही । निमिष बिहात कल्पसम तेही ।।
तृषित वारि बिन जो तनु त्यागा । मुये करै का सुधा तडागा[1] ।।

शब्दार्थ—तृषित=प्यासा । सुधा=पानी ।

अर्थ—(रामचन्द्रजी ने) देखा कि सीताजी बहुत ही व्याकुल हैं, (यहा तक कि) एक पल भर भी उन्हें एक कल्प के समान व्यतीत होता है । (तो विचारने लगे कि) जो प्यासा प्राणी पानी बिना प्राण त्याग देवे तो फिर मरने पर उसे तालाब भर पानी भी किस काम का ।

---

१. तृषति वारि बिन जो तनु त्यागा । मुये करै का सुधा तडागा—राम रहस्य से—
सवैया—प्यासो तजै तन वारि बिना सरितामृत ताहि जियावत कैसे ।
सालि समूल सुखाय गयो महि पै अति वृष्टि करै घन जैसे ।।
चूकि गयो जब औसर मे "द्विज दत्त" वृथा पछताव है वैसे ।
बीतत कल्प समान पला मिथिलेशसुता बिकला मन जैसे ।।

का वर्षा जब कृषी सुखाने। समय चूक पुनि का पछताने[१] ।।
अस जिय जानि जानकी देखी[२] । प्रभु पुलके लखि प्रीति विशेखी ।।

अर्थ—जब खेती सूख गई तो बरसा किस काम की ? और समय टल जाता है तो फिर पछताने से क्या होता है ? ऐसा जी मे जान जानकी को देखा तो प्रभुजी उनका विशेष प्रेम देखकर रोमाचित हो उठे ।

गुरुहि प्रणाम मनहि मन कीन्हा । अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा[३] ।।
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ[४] । पुनि धनु नभ मडल सम भयऊ ।।

---

१ का वर्षा जब कृषी सुखाने । समय चूक पुनि का पछताने —

श्लोक—निर्वाण दीपे किमु तैल दानम् चोरैर्गते वा किमु सावधानम् ।
वयोगते किं वनिता विलास, पयोगते किं खलु सेतुबध ।।

अर्थ—दीपक के बुझ जाने पर उसमे तेल डालने से क्या, चोरो के चले जाने पर सावधानी किस काम की, जवानी ढल जाने पर स्त्री-प्रेम किस काम का और पानी के निकल जाने पर पुल बाधने से क्या लाभ होगा (अर्थात् ये सब उपाय निरर्थक होगे) ।

और भी—मनोहर कविकृत नीति शतक से—

दोहा—समय पाय आछे पुरुष, करत भलाई तात ।
समय चूक की हुक सो, बडे बडे बिलखात ।।

२ अस जिय जानि जानकी देखी—जानकीजी के हृदय के विचार, श्री रामचन्द्रजी का झट से धनुष तोडना आदि सब नीचे की गजल मे स्पष्ट रूप से दर्शाये गये है (सागीत रत्नाकर (से—)

गज़ल—कठिन है प्रण पिताजी का ये शम्भु चाप भारी है।
ये रह रह सोचती सीताजी दिल मे बेकरारी है।। १ ।।
खयाले पाक मे आना औ आकर झट निकल जाना ।
नजाकत उस तरफ ऐसी इधर ये काम भारी है।। २ ।।
मिलेगा हाथ रघुवर सा हमे वर किस स्वयम्वर मे।
हिरासा दिल मे होती नाउमेदी दिल पै तारी है ।। ३ ।।
उठाया चाप रघुवर ने औ भजन कर दिया दम मे।
लो सीता रह गई कहती ये भारी है ये भारी है।। ४ ।।
पिन्हायी मग्न हो जयमाल कि रघुवर को सियाजी ने।
हुई जानी विधाता ने भली जोडी सम्हारी है ।। ५ ।।
"दया" सुन लो ज़रा ठहरो कोई कानो मे कहता है।
सियाजी रामजी की जै जै बोलो जै जै कारी है ।। ६ ।।

३. अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा—काव्य प्रभाकर से—

छप्पय—कहलि कोल अरु कमठ उठत दिग्गज दस दलिमलि ।
धसकि धसकि महि मसकि जात सहस्रफणि फणि दलि ।।
उथल पुथल जल थल सशक लका दल गलबल ।
नभ मडल हल हलत चलत ध्रुव अतल वितल तल ।।
टकोर घोर घन प्रलय धुनि सुनि सुमेरु गिरि गिरिगयो ।
रघुवश वीर जब तमकि पग धमकि धमकि धरि धनु लयो ।।

४. दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ—

अर्थ—गुरुजी को मन ही मन प्रणाम किया और बडी हलकाई से धनुष को उठा लिया। उस समय वह बिजली की नाईं चमका फिर ज्योंही उसे चढाया तो वह धनुष आकाश मे मडलाकार दिखाई दिया।

लेत[३] चढ़ावत खैंचत गाढे। काहु न लखा देख सब ठाढे।।
तेहि क्षण राम मध्य धनु तोरा[१]। भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा[२]।।

अर्थ—(धनुष को) उठाते चढाते और तानते हुए किसी ने ठीक-ठीक न लखा, यद्यपि सब खडे-खडे देखते रहे। उसी पल भर मे रामचन्द्रजी ने धनुष को बीच से तोड डाला जिसकी बडी भारी ध्वनि ससार भर मे भर गई।

छंद—भरि भुवन घोर कठोर रव रविवाजि तजि मारग चले।
चिक्करहि दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले।।
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हे सकल विकल विचारही।
कोदंड भंजेउ राम[३] तुलसी जयति[४] बचन उचारही।।

सवैया—ज्यो घन दामिनि कौधि अचानक त्यो हरि शकरचाप उठायो।
ज्यो सुनि रोपि शरासन कानहि पूछन दाहिन हाथ पठायो।।
वाम कहै कस भागि चल्यो तब दाहिन उत्तर देत सुहायो।
"ठाकुर राम" कहै यह बूझहुँ तोरहि की धरि देहिं चढायो।।

१ लेत चढावत खैंचत गाढे · तेहि क्षण राम मध्य धनु तोरा—रामरसायन रामायण से—

दडक छन्द-राम धनु निरखि वर नृपन बल धरखि बहु परखि सब हीय गति हरखि रुख पाय के।
धर्म धुर धीर रघुवीर रणधीर तेहि सहज कर धारि गुरुहि शिवहि शिर नाय के।।
सपदि सधानि ध्रुवभग अनुमानि कसि कान लग तानि निरखो न कोउ वियो।
वेशि बरिबड जसमड भुज दड ते चड कोदड द्वै खंड खडित कियो।।

और भी—

दोहा—धनुष भग इहि विधि भयो, औचक काहु न देख।
गिरो खड ह्वै भूमि तब, चकित रहे सब पेख।।

गाढे =दृढता से, जैसा अमरकोश मे लिखा है—"गाढ बाढ दृढानि च"

२. भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा—

कवित्त—छिति गई दचक लचक गयो छिति धर बार पर्‌यो कठिन कमठ कररानो है।
सहम सुरेश गयो दहल चहल शेष औध को दिनेश वामदेव पररानो है।।
भयो छिति पात ऐसो सुनिये अघात मानौ कैधो प्रलै करिबे को बज्र तररानो है।
जन सो "मुरारि" भनै राम तान तोरो चाप चाप चररानो कै अकाश अररानो है।।

३. कोदड भजेउ राम—

छप्पय—डिगति उर्वि अति गुर्वि सर्व पव समुद्र सर।
ब्याल बधिर त्यहि काल विकल दिगपाल चराचर।।
दिगगयंद लरखरत परत दशकध मुक्ख भर।
सुर विमान हिमवान भानु सघटित परस्पर।।
चौके विरचि शकर सहित कोल कमठ अहि कलमल्यो।
ब्रह्माड खड कियौ चड धुनि जबहि राम शिवधनु दल्यो।।

४. जयति वचन उचारही—

अर्थ—बडा भयकर शब्द जगत मे भर गया जिससे सूर्य के घोडे भी रास्ता छोड भागने लगे। दिशाओ के कुजर चिघाडने लगे पृथ्वी हिलने लगी और शेषनाग, कच्छप और वाराह (जो तीनो पृथ्वी को सम्हाले हुए है) गडबडा गये। देवता, राक्षस और मुनिगण सबके सब व्याकुल हो कानो मे अँगुली डाल विचार बाधने लगे कि श्री रामचन्द्रजी ने धनुष को तोड डाला और तुलसीदासजी भी (सब के साथ) जय हो ! जय हो ! ऐसे शब्द कहने लगे।

सोरठा—शकरचाप जहाज, सागर रघुवरबाहुबल।
बूडी सकल समाज, चढ़े जो प्रथमहि मोहवश[१] ॥२६१॥

अर्थ—शिवजी का धनुष जहाज के सदृश था और रघुनाथजी की भुजाओ का बल समुद्र के समान था। उस जहाज पर बैठने वाले सब के सब जो पहिले उस पर अज्ञान के कारण जा बैठे थे सो डूब गये (भाव यह कि धनुष के टूट जाने से 'सब कर सशय अरु अज्ञानू' से लगाकर 'रानिन्ह कर दारुण दुख दावा' तक जितने मोहरूपी भ्रम, दु ख आदि थे वे सब मिट गये)।

प्रभु दोउ चापखंड महि डारे। देखि लोग सब भये सुखारे[२] ॥
कौशिक रूप पयोनिधि पावन। प्रेमवारि अवगाह सुहावन ॥
रामरूप राकेश निहारी। बढ़ी बीचि पुलकावलि भारी ॥

अर्थ—रामचन्द्रजी ने धनुष के दोनो टुकडे पृथ्वी पर फेक दिये, जिन्हे देखते ही सब लोग प्रसन्न हुए। विश्वामित्र का स्वरूप पवित्र समुद्र था उसमे प्रेमरूपी अथाह जल शोभा दे रहा था। रामरूपी पूर्ण चन्द्र को देखकर (उस समुद्र रूपी शरीर मे) रोमाचित रूप की लहरो की तरगे बढ गई (भाव यह कि रामचन्द्रजी का पराक्रम देख विश्वामित्रजी प्रेम से फूले न समाते थे अर्थात् वे ही आनदित हुए)।

बाजे नभ गहगहे निशाना। देववधू नाचहि करि गाना ॥
ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीशा। प्रभुहि प्रशसहि देहि अशीशा ॥
वर्षहि सुमन रंग बहु माला। गावहि किन्नर गीत रसाला ॥

अर्थ—आकाश मे बडे ज़ोर से नगाडे बजने लगे और अप्सराएँ गीत गाकर नाचने लगी। ब्रह्मा आदि देवगण, सिद्ध और मुनि लोग रामचन्द्रजी की बडाई कर उन्हे आशीर्वाद देते थे। रग-बिरगे फूल और मालाये बरसाते थे और स्वर्गीय गवैये प्रेम भरे गीत गाते थे।

दोहा—जय रघुवर जय राम की, जय जय अवध किशोर।
जय रघुवीर सुधीर जय, चहूँ मचो यह शोर ॥

१. बूडी सकल समाज, चढे जो प्रथमहि मोहवश—
क०—जनक निराशा दुष्ट नृपन की आशा दुरजन की उदासी शोक रनिवास मनु के।
बीरन के गरब गरूर भरपूर सब भ्रम मद आदि मुनि कौशिक के तनु के ॥
"हरिचन्द" भय देव मन के पुहिमि भार विकल विचार सबै पुरनारी जनु के।
शका मिथिलेश की सिया के उर शूल सबै तोरि डारे रामचन्द्र साथै हर धनु के ॥

२. प्रभु दोउ चापखड महि डारे। देखि लोग सब भये सुखारे—
क०—भूपन को मान गयो ज्ञान गयो बीरन को बैरिन को प्रान गयो खलदल खर को।
जनक को सोच गयो सकट सिया को पुरजन मन पन भयो आनँद सुभर को ॥
"गोकुल" कहत साधु सुखमा सरस भई भयो है असाधुन को रूप जरो जर को।
मगल उदोत भयो पोत पुण्य पानिप को दोई खड होत ही कोदड महा हर को ॥

रही भुवन भरि जय जय बानी[१] । धनुषभंगधुनि जात न जानी ।।

अर्थ—ससार भर मे 'जय जय' की ध्वनि भर गई परन्तु धनुष-भग-ध्वनि के कारण कम समझ पडती थी ।

'धनुषभंग धुनि जात न जानी' का दूसरा अर्थ कोई कोई ऐसा करते है कि जय जय ध्वनि के कारण धनुष भग की ध्वनि का ध्यान भी उचट गया ।

तीसरा अर्थ यो करते है कि धनुष तोडने के शब्द को (जा=जमदग्नि+तन=पुत्र) अर्थात् परशुराम ने सुना ।

मुदित कहहि जहँ तहँ नर नारी । भजेउ राम शभुधनु भारी[२] ।।

अर्थ—प्रसन्न हो जहा-तहा स्त्री-पुरुष कहते थे कि शिवजी के भारी धनुष को रामचन्द्रजी ने तोड डाला है ।

दोहा— वन्दी मागध सूत गण, विरद वदहि मति धीर ।
करहिं निछावर लोग सब, हय गय मणि धन चीर ।।२६२।।

शब्दार्थ—वन्दी=भाट, प्रशसक। मागध=(मगध देश का) कलावत, कडखैत । सूत= कथा कहने वाले ।

अर्थ—चतुर भाट, कलावत और पौराणिक लोग वश की कीर्ति गाने लगे और बहुतेरे लोग घोडा, हाथी, मणि, धन और वस्त्र निछावर करने लगे ।

झाँझ मृदंग शंख सहनाई । भेरि ढोल दुदुभी सुहाई ।।
बाजहि बहु बाजने सुहाये । जहँ तहँ युवतिन्ह मंगल गाये ।।

अर्थ—झाँझ, मृग, शख, रोशनचौकी, तुरही, ढोल और सुन्दर नगाडे । इस प्रकार भाँति-भाँति के सुहावने बाजे बजने लगे और स्त्रियाँ सभी स्थानो मे मगल गीत गाने लगी ।

सखिन्ह सहित हरषीं सब रानी । सूखत धान परा जनु पानी ।।
जनक लहेउ सुख सोच विहाई । पैरत थके थाह जनु पाई[३] ।।

---

१. रही भुवन भरि जय जय बानी—

(मनहर छन्द)

गाँव गाँव गेह गेह गैल गैल गली गली, गोल गोल माहि यहै धुनि सरसाई है।
कहै कवि अम्बादत्त दास तुलसी के करै, ठौर ठौर राम ही की बजत बधाई है।।
याही तान टूटत है झाँझ औ मृदग सबै, ढोलक सितार बसी बीना सहनाई है।
रामचन्द्र जू की जय रामचन्द्र जू की जय रामचन्द्र जू की जय यहै धूम छाई है।।

२ मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी । भजेउ राम शभुधनु भारी—

सवैया—रावन बान महाबलि और अदेव औ देवन हूँ दृग जोर्‌यो ।
तीनहुँ लोकन के भट भूप उठाय थके सबको बल छोर्‌यो ।।
घोर कठोर चितै सहजै "लछिराम" अमी जस दीपन घोर्‌यो।
रामकुमार सरोज से हाथन सो गहि शम्भु सरासन तोर्‌यो ।।

३ जनक लहेउ सुख सोच विहाई…… .. … ..

राग टोडी—जनक मुदित मन टूटत पिनाक के ।
बाजे है बधावने सुहावने मंगल गान भयो सुख एक रस राती राजा राँक के ।।
दुदुभी बजाई गाई हरषि बरषि फूल सुरगण नाचै नाच नायक हू नाक के ।
तुलसी महीश देखें दिन रजनीश जैसे सूने परे सून से मनो मिटाये आँक के ।।

अर्थ—सखियो समेत सब रानियाँ ऐसी प्रसन्न हुईं कि मानो सूखी हुई धान को पानी मिला हो। जनकजी ने चिंता को त्याग सुख पाया मानो तैरते-तैरते थकने वाले को थाह मिल गई हो।

श्रीहत भये भूप धनु टूटे। जैसे दिवस दीप छवि छूटे[१] ॥
सिह हिय सुख बरनिय केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जल स्वाँती[२] ॥

अर्थ—धनुष के टूटने से सब राजा शोभाहीन हो गये जैसे दिन मे दीपक का तेज फीका पड जाता है। सीताजी के हृदय का सुख किस प्रकार वर्णन किया जा सकता है (वे तो ऐसी प्रसन्न हुईं) मानो चातकी को स्वाति का जल मिल गया हो (भाव यह कि बहुत समय का इच्छित फल प्राप्त हो गया)।

रामहि लषन विलोकत कैसे। शशिहि चकोर किशोरक जैसे ॥
सतानंद तब आयसु दीन्हा। सीता गमन राम पहँ कीन्हा ॥

अर्थ—लक्ष्मण रामचन्द्रजी को इस प्रकार देख रहे थे जिस प्रकार चकोर का बच्चा चन्द्रमा को देखता हो। इतने मे सतानन्दजी ने आज्ञा दी तो सीताजी रामचन्द्रजी के समीप चली।

दोहा—संग सखी सुन्दरि चतुर, गावहि मगलचार[३]।
गवनी बालमरालगति, सुखमा अंग अपार ॥२६३॥

अर्थ—साथ मे रूपवती चतुर सखियाँ विवाह के गीत गाती जाती थी। सीताजी छोटी राजहंसिनी की चाल से चली, उनके अगो की शोभा का पारावार न था।

सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसी। छविगण मध्य महा छवि जैसी[४] ॥
कर सरोज जयमाल सुहाई। विश्व विजय शोभा जनु छाई ॥

---

१ जैसे दिवस दीप छबि छूटे—कहा है सभा विलास मे—

दोहा—मूढ तहाँ ही मानिये, जहाँ न पडित होय।
दीपक की रवि के उदय, बात न बूझे कोय ॥

२ सिय हिय सुख बरनिय केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जल स्वाँती—सीताजी की रीझन, श्री रामचन्द्रजी पर अटल प्रेम और धनुष टूटने से अब उनकी प्राप्ति का सुख कहते तो बनता ही नही, तो भी तुलसी सतसई के अनुसार चातक और स्वाँति बूँद का अकथनीय अनुराग आदि कहा जाता है—

दोहा—साधन खाँसति सब सहत, सुमिर सुखद फल लाहु।
तुलसी चातक जलद की, रीझि बूझि बुध काहु ॥

३. गावहिं मगलचार—

राग विलावल—सिय जयमाल चली पहिरावन ॥टेक॥

बनी अनूप नवल फूलन की राजै कोमल करन सुहावन ॥
सुन्दर अग सग सब सखियाँ लागी मगल गीत सुनावन।
छवि वारी प्यारिन तन सारी दमके दामिन दीप सजावन ॥
सब सखियन शिरमौर जानकी जिनके रघुनदन मन भावन।
"मन्नीलाल" प्राणधन वार्‌यो जगदम्बिका प्रभालखि पावन ॥

४. छविगण मध्य महाछवि जैसी—शिवसिंह सरोज से—(कवित्त)

हुसन के छौना स्वच्छ सोहत बिछौना बीच होत गति मोतिन की ज्योति जोन्ह यामिनी।
सत्य की सीता गसीता पूरण सुहाग भरी चली जयमाल लै मराल मद गामिनी ॥ →

अर्थ—सखियो के बीच मे सीताजी कैसी शोभायमान लगती थी मानो सुन्दरता के समूह मे महा सुन्दरता हो। सीताजी के कमलस्वरूपी हाथो मे जयमाला शोभा दे रही थी मानो ससार जीतने की शोभा छहर रही हो।

तन सकोच मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेम लखि परै न काहू॥
जाइ समीप रामछबि देखो। रहि जनु कुँअरि चित्र अवरेखी॥

अर्थ—शरीर मे लज्जा और हृदय मे भारी उमग थी, इस गुप्त प्रेम को कोई भी न समझ सका। रामचन्द्रजी के समीप पहुँचकर जब उनकी छवि को निहारा तब तो किशोरीजी मानो चित्र लिखी-सी रह गई।

चतुर सखी लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई॥
सुनत युगल कर माल उठाई। प्रेमविवश पहिराइ न जाई॥

अर्थ—यह दशा देख चतुर सखी ने समझाकर कहा कि मनोहर जयमाला पहना दो। इन वचनो को सुनकर दोनो हाथो से माला उठाई परन्तु प्रेम से अधीर हो पहिराते न बनती थी।

सोहत जनु युग जलज सनाला। शशिहि सभीत देत जयमाला[१]॥

अर्थ—उस समय ऐसी छटा दीख पडी कि मानो डडियो युक्त दो कमल सकुचित हो चन्द्रमा को जयमाल देना चाहते हो।

सूचना—यहाँ पर कवि की चतुराई पर विचार करने से अपूर्व आनद होता है कि उन्होने सिमटे हुए हाथो को सिकुडे हुए कमलो की उपमा दी है और उसका कारण भी बहुत ही उत्तम रखा है क्योकि कमल चन्द्रमा के सन्मुख सिकुड जाता है। यहाँ पर रामचन्द्रजी के मुख को चन्द्रमा की उपमा देकर कमलो का सिकुडना और भय के कारण बहुत पास तक न जाना सब ही दरशा दिया है।

गावहि छवि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल रामउर मेली[२]॥

अर्थ—उस छटा को देखकर सखियाँ फिर गाने लगी, इतने ही मे सीताजी ने वह जय-

---

सोई डर बसी सोई मूरति प्रत्यक्ष बसी चिंतामणि देख हसी शकर की स्वामिनी।
मानौ शरद चन्द मध्य अरविन्द अरविन्द मध्य विद्रुम विदारि खडी दामिनी॥

१. सोहत जनु युग जलज सनाला। शशिहि सभीत देत जयमाला—राम रसायन रामायण से—

क० : आईं रघुचन्द ढिग जनककिशोरी गोरी देखो खड खड तहँ शभुधनु बंक को।
रसिक बिहारी ऐसो आनँद सिया के चित्त जैसे वर वित्त पाय होवे सुख रक को॥
दोऊ कर उमगि उठाये जयमाल लीन्हे कवि हुलसाये हेरि उपमा उतक को।
क्षीरसिंधु गहि के सनाल युग कजन ते मुक्तमाल देत मानो पूरन मयक को॥

२. गावहिं छवि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल रामउर मेली—गीतावली रामायण से—

राग सारग—राम कामरिपु चाप चढायो।
मुनिहिं पुलक आनद नगर नभ निरखि निशान बजायो॥
जेहि पिनाक बिन नाक किये नृप सबहि विषाद बढायो।
साईं प्रभु कर परसत टूट्यो जनु हुतो पुरारि पढायो॥
पहिराइ जयमाल जानकी युवतिन मगल गायो।
तुलसी सुमन बरषि हरषे सुर सुयश तिहु पर छायो॥

माल रामचन्द्रजी के गले मे पहरा दी ।

सोरठा—रघुवर उर जयमाल, देखि देव वर्षहि सुमन ।
सकुच सकल भुआल, जनु विलोकि रवि कुमुदगन ।।२६४।।

अर्थ—रामचन्द्रजी के हृदय मे जयमाल देखकर देवगण फूल बरसाने लगे और सम्पूर्ण राजा लज्जित हुए, जैसे सूर्य को देखकर कुही के फूल सिमट जाते है ।

पुर अरु ब्योम बाजने बाजे । खल भे मलिन साधु सब राजे ।।
सुर किन्नर नर नाग मुनीसा । जय जय जय कहि देहि असीसा ।।

अर्थ—नगर और आकाश मे बाजे बजने लगे, दुष्ट राजा उदास हुए और सज्जन प्रसन्न हुए । देवता, किन्नर, मनुष्य, सर्प और मुनिगण 'जय, जय, जय' कहकर आशीर्वाद देने लगे ।

नाचहि गावहि बिबुध बधूटी । बार बार कुसुमावलि छूटी ।।
जहँ तहँ विप्र वेदधुनि करही । वदी विरदावलि उच्चरही ।।

अर्थ—अप्सराएँ नाचती और गाती थी तथा बारम्बार फूलो की बरसा होती थी । जगह-जगह ब्राह्मण वेदध्वनि कर रहे थे और भाट लोग वश की बडाई कर रहे थे ।

महि पाताल नाक यश व्यापा । राम वरी सिय भंजेउ चापा[१] ।।
करहि आरती पुर नर नारी[२] । देहि निछावर वित्त बिसारी ।।

शब्दार्थ—नाक = स्वर्ग ।

अर्थ—पृथ्वी, पाताल और स्वर्ग मे यश भर गया कि रामचन्द्रजी ने धनुष को तोडकर सीताजी को ब्याहा । नगर के स्त्री-पुरुष आरती करते थे और अपनी-अपनी श्रद्धा से बढकर निछावर करते थे ।

---

१. महि पाताल नाक यश व्यापा । राम वरी सिय भजेउ चापा—

श्लोक—लज्जा कीर्तिर्जनकतनया शैवको दड भगे ।
तिस्र. कन्या वरमुपगता भेजिरे रामचन्द्रम् ।।
अत्यापाणि ग्रहण समये ज्यायसी जात रोषा ।
भूपै· सार्द्धं किमपितु गता मध्यमा दिग्दिगतम् ।।

अर्थ—धनुष के टूटने पर विवाह योग्य तीन कन्याये रामचन्द्रजी के पास आ खडी हुईं । एक लज्जा, दूसरी कीर्ति और तीसरी सीता । जिस समय रामचन्द्रजी ने सीताजी को स्वीकार कर लिया उस समय जेठी अर्थात् लज्जा क्रोधित होकर राजाओ के पास चली गई (भाव यह कि सीताजी के जयमाल पहराने पर दुष्ट राजा लोग लज्जित हुए) और मझली अर्थात् कीर्ति देशान्तर को चली गई (भाव यह कि रामचन्द्रजी का यश तीनो लोक मे फैल गया) ।

२. करहि आरती पुर नरनारी—प्रेमपीयूषधारा से—

परज—नित उठि दरशन कीजिये ।
दशरथसुत अरु जनकलली को, रूप सुधा रस पीजिये ।।
मोहनि मूरति निरज जुगल छवि नैनन को सुख दीजिये ।
मोहनि दास लागि वरनन मे जन्म सुफल कर लीजिये ।।

सोहति सीय राम की जोरी[१] । छवि शृंगार मनहुँ इक ठोरी ।।
सखी कहहि प्रभु पद गहु सीता । करति न चरण परस अति भीता ।।

अर्थ—सीता रामचन्द्रजी की जोडी शोभा दे रही थी मानो छवि और शृगार इकट्ठे हुए हो। सखियाँ कहने लगी कि हे सीता ! रघुनाथजी के चरण छूओ परन्तु बहुत भय के कारण वे उनके चरण न छूती थी।

दोहा—गोतमतिय गति सुरति करि, नहि परसति पग पानि[२] ।
मन विहँसे रघुवंशमणि, प्रीति अलौकिक जानि ।।२६५।।

अर्थ—गौतम की स्त्री अहल्या की गति अर्थात् पतिलोक गमन का स्मरण कर रामचन्द्रजी के चरणो को अपने हाथो से नही छूती थी (इस अभिप्राय से कि यदि मैं भी अपने पतिलोक को चली जाऊँ तो रामचन्द्रजी से वियोग हो और मैं अकेली वहाँ क्या करूँगी) इस अलौकिक (अर्थात् अनादि) प्रीति को समझ रघुकुल श्रेष्ठ रामचन्द्रजी हँसे।

दूसरा अर्थ—गौतम की स्त्री जो पाषाण की थी उसने भी दिव्य रूप धारण कर लिया सो मेरे अलकारो के हीरे आदि भी स्त्रीरूप न बन जाएँ।

तीसरा अर्थ—गौतम अर्थात् अधकार मिट गया तियगति सुरति करि अर्थात् स्त्रियो की मुक्ति केवल पतिचरणरज सेवा है, इसका स्मरण कर अभी चरण नही छूती कि इनको जल्दी छू लेने से शीघ्र ही वियोग सहना पडेगा।

तब सिय देखि भूप अभिलाषे । कूर कपूत मूढ़ मन माषे ।।
उठि उठि पहिरि सनाह अभागे । जहँ तहँ गाल बजावन लागे[३] ।।

अर्थ—तब सीताजी को देखकर राजाओ की अभिलाषा बढी और वे दुष्ट, भ्रष्ट, नष्ट मन मे क्रोधित हुए। ये कर्महीन उठ-उठकर बख्तर पहन अपनी-अपनी जगह पर डीग मारने लगे।

---

१. सोहति सीय राम की जोरी—

राग देश—युगल छवि आज अनूप बनी ।
गोरी सिया साँवरे रघुवर नख शिख द्युति कमनी ।।
अ्रजन नैन मयन मन गजन अजन रेख बनी।
ललित किशोरी लाल रसिक वर मृदु मुसक्यान धनी ।।

२. गोतमतियगति सुरति करि, नहिं परसति पग पानि—राम रहस्य से—

सवैया—सजनी तुव बात प्रमान करौं शुचि सीख सदा उर मे धरिहौं।
यहि औसर कारण एक बडो तेहि ते यह शासन ना करिहौं ।।
पदकज छुए ऋषि की रमनी पति पै गमनी यहिते डरिहौं।
'द्विजदत्त' निरतर मो हिय में बसते प्रभु पायन ना परिहौं ।।

इसके उत्तर मे सखियो ने यो कहा—

दोहा—धूरी पकज रेणुका, मूरि बदन मयक।
ऊरी रही कलंक युत, तू री बिना कलक ।।

३ उठि उठि पहिरि सनाह अभागे । जहँ तहँ गाल बजावन लागे— (कवित्त)

कोहै बापुरे ये सुकुमार नृप बाल दोऊ कालहू के साथ हम रण मे उमाहि है।
'ललित' जियत धरि बालक समर जीति जनकनरेश को जोरावरी चित चाहि है ।।
'आजु लौ मुरे न जुरे कोटिन सुभट रण कौन अवनी मैं भूप जौन बल थाहि है।
काकपक्ष धारे ये विचारे जिन मारे मरै जियत हमारे कौन कुँवरि विवाहि है ।।

लेहु छँड़ाइ सीय कह कोऊ। धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ[१] ॥
तोरे धनुष चाँड़ नहि सरई। जीवत हमहिं कुँअरि को बरई ॥

अर्थ—कोई-कोई कह उठे कि सीता को छुडा लो और दोनो राजकुमारो को पकड-कर बाँध लो। धनुष तोडने मे काम न चलेगा, हमारे जीते-जी राजकुमारी को कौन व्याह सकता है।

जो विदेह कछु करै सहाई। जीतहु समर सहित दोउ भाई ॥
साधु भूप बोले सुनि बानी। राज समाजहि लाज लजानी ॥

अर्थ—यदि राजा जनक कुछ सहायता करे तो सग्राम मे इनको भी दोनो भाइयो समेत जीत लो। इन वचनो को सुनकर भले राजा कहने लगे, अरे! इन राजाओ की सभा मे तो लाज भी लजा गई (अर्थात् इनके समीप से लाज तो चली गई और अब ये निर्लज्ज यो बक रहे है)।

बल प्रताप वीरता बड़ाई। नाक पिनाकहि सग सिधाई[२] ॥
सोइ शूरता कि अब कहुँ पाई। अस बुधि तौ विधि मुँह मसि लाई ॥

अर्थ—बल, प्रताप, शूरता, बडाई और नाक (अर्थात् लोक मे मर्यादा) ये सब धनुष के सग चले गये। वही बहादुरी है कि इतने ही समय मे कही दूसरी जगह से पा गये हो, अरे! तुम्हारी ऐसी कुबुद्धि है तभी तो विधाता ने तुम्हारे मुँह मे कारख लगाई है (अर्थात् तुम्हारी बडी अपकीर्ति हुई है)।

दोहा—देखहु रामहि नयन भरि, तजि ईर्षामद कोहु।
लषन रोष पावक प्रबल, जानि शलभ जनि होहु[३] ॥२६६॥

अर्थ—अरे! बैर, घमड और क्रोध को त्यागकर रामचन्द्रजी को नेत्र भरकर देख लो, लक्ष्मणजी के प्रचड अग्निरूपी क्रोध मे जान-बूझकर पतंगा मत बनो (भाव यह कि रामचन्द्रजी से यदि विरोध करोगे तो लक्ष्मण बिना मारे न छोडेगे)।

बनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमिशशचहहि नाग अरिभागू ॥
जिमि चह कुशल अकारण कोही। सुख संपदा चहै शिवद्रोही ॥

---

१. लेहु छँडाइ सीय कह कोऊ। धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ—
सवैया—सीय छँडाइ धरौ न डरौ पकरौ नृप बालक बापुर दोऊ।
युद्ध अरौ सँभरौ अब तो न टरौ चित्त चाह करौ हठ सोऊ ॥
'बदि' अनदि लरौ रण में क्षण मे अस कौतुक होउ सो होऊ।
आजहि तौ लखि हाल परै हम जीवत बाल बरै कस कोऊ ॥

२. बल प्रताप वीरता बडाई। नाक पिनाकहि संग सिधाई—
सवैया—का बलको बल को लियो जानि कहा चित दीन इहाँ ते टरौ ना।
नाक गई कटि साथ पिनाक कहे 'ललिते' कुल कानि डरौ ना ॥
बातें बनाय बनाय कहा कहौ नेकहु लाज हिये मे धरौ ना।
जाय कहूँ विष खाय मरौ गल बाँधि कै सागर डूबि मरौ ना ॥

३. लषन रोष पावक प्रबल, जानि शलभ जनि होहु—जैसा कहा है—
दोहा—तब न बनी कछु काहुते, अब बोलत बहु फूल।
लषन रोष की अग्नि मे, वृथा होउ जनि तूल ॥

शब्दार्थ—बैनतेय (विनता से उत्पन्न) = गरुड। शश = खरहा। नागअरि (नाग = हाथी + अरि = शत्रु) = सिंह।

अर्थ—गरुड का भाग जिस प्रकार कौआ चाहे, और जिस प्रकार सिंह का भाग खरहा लेना चाहे। जिस प्रकार व्यर्थ क्रोध करने वाला कुशल चाहे और शिवजी का विरोधी होकर सुख और सपत्ति चाहे।

लोभी लोलुप कीरति चहई[१]। अकलंकता कि कामी लहई॥
हरिपदविमुख परमगति चाहा। तस तुम्हार लालच नरनाहा[२]॥

शब्दार्थ—लोभी = लालची। लोलुप = चचलचित्त। अकलकता = निर्दोषीपन।

अर्थ—लोभ से चलचित्त पुरुष यदि अपनी बडाई चाहे और कामीपुरुष निर्दोषी होना चाहे। ईश्वर के चरणो का विरोधी जिस प्रकार मुक्ति चाहे, हे राजाओ! उसी प्रकार यह तुम्हारा लालच है।

कोलाहल सुनि सीय सकानी। सखी लिवाइ गई जहँ रानी॥
राम सुभाय चले गुरु पाहीं। सिय सनेह बरनत मन माही॥

शब्दार्थ—कोलाहल = हुल्लड, बहुतेरे लोगो की जोर से बातचीत।

अर्थ—यह हुल्लड सुनकर सीताजी डर गईं, तब सखियाँ उन्हे वहाँ लिवा ले गईं जहाँ रानियाँ थी। रामचन्द्रजी सीताजी के प्रेम को मन ही मन सराहते हुए साधारण रीति से गुरुजी के पास चले।

रानिन्ह सहित सोचवश सीया। अब धौ विधिहि कहा करनीया॥
भूप वचन सुनि इत उत तकहीं। लषन राम डर बोल न सकही॥

अर्थ—रानियो समेत सीताजी को चिंता हुई कि विधाता अब क्या किया चाहता है? लक्ष्मणजी राजाओ के वचन सुनकर यहाँ वहाँ ताकते थे परन्तु रामजी के डर के मारे कुछ कह नही सकते थे।

दोहा—अरुणनयन भृकुटी कुटिल, चितवत नृपन्ह सकोप।
मनहुँ मत्तगजगण निरखि, सिंहकिशोरहि चोप[३]॥२६७॥

शब्दार्थ—चोप = उछाह।

---

१. 'लोभी लोलुप कीरति चहई" के पाठान्तर "लाभ लोल कुल कीरति चहई" से भी ऊपर का अर्थ सिद्ध होता है।

२. हरिपदविमुख परम गति चाहा। तस तुम्हार लालच नरनाहा —
राग धनाश्री—मति तोसो केतिक ही समझाई।
नदनँदन के चरण कमल भजि तजि घमंड चतुराई॥
सुख सम्पति दारासुत हुए गये हठै सबै समुदाई।
क्षण भगुर ये सबै श्याम बिन अन्त नाहिं सँग जाई॥
जन्मत मरत बहुत युग बीते अजहूँ लाज न आई।
सूरदास भगवन्त भजन बिन जैहै जन्म गँवाई॥

३. मनहुँ मत्तगजगण निरखि, सिंहकिशोरहि चोप—भामिनीविलास की टीका (विप्रचन्द्र कवि विरचित) से—
दोहा—नेकहु गज की गरज सुनि, हारसुत जननी गोद।
सिमिटि अग निज वेगही, उछल्यो चहत समोद॥

अर्थ—लक्ष्मणजी लाल-लाल आँखे और टेढी भौहे कर क्रोध के साथ राजाओ को देखते थे। मानो मस्त हाथियो के झुड को देखकर सिह का बच्चा उत्साह मे भर गया हो।

खरभर देखि विकल पुरनारी। सब मिलि देहि महीपन्ह गारी[१] ॥

अर्थ—नगर की स्त्रियाँ इस गडबड को देख व्याकुल हो उठी और सब मिलकर इन राजाओ को गालियाँ देने लगी।

(परशुराम आगमन)

तेहि अवसर सुनि शिव धनु भगा। आये भृगुकुल कमल पतंगा[२] ॥

अर्थ—उसी समय महादेवजी के धनुष के टूटने का शब्द सुनकर भृगु के कमलस्वरूपी वश को सूर्य के समान (प्रफुल्लित करने वाले) परशुरामजी आ पहुँचे।

देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने ॥
गौर शरीर भूति भलि भ्राजा। भाल विशाल त्रिपुड विराजा ॥

अर्थ—उनको देखकर सम्पूर्ण राजा दबक गये मानो बाज पक्षी की झपेट से लवा पक्षी छिप गये हो। (परशुरामजी के) गोरे शरीर पर भस्म भलीभाँति शोभा दे रही थी और उनके ऊँचे मस्तक पर चदन की त्रिपुड सुशोभित थी।

---

१. सब मिलि देहिं महीपन्ह गारी—सीता स्वयम्बर से—

सवैया—धनुहाँ जब टूटि गयो सजनी इन राजन को अब काज कहा।
दहिजार न जायँ घरै अपने काहेक जोरे समाज महा ॥
नाहक सरमात नही तनिकौ वठिहा अस मोट दिखात अहा।
नहि आवत राज बजावत गाल हराम गुलाम निकाम महा ॥
अरराय के गाज काटि परै मरै रारि गोहारि मचाय रहे।
मुख माहि मसौ मरवाय रहै अपनो कि हँसी करवाय रहे ॥
नृप कूर गरूर भरे लवरे किमि सापुन को डरवाय रहे।
हक नाहक गाल बजाय रहे दहिजार कहाँ से भौ आय रहे ॥

२. आये भृगुकुलकमलपतगा—भृगुकुल कमलपतग अर्थात् परशुराम। इनके पूर्व पुरुषा भृगुजी थे। इसी से ये भृगुकुल मे श्रेष्ठ भार्गव कहलाये। इनके पिता का नाम जमदग्नि और माता का नाम रेणुका था। ये ब्राह्मण थे जो विष्णु के छठवें अवतार माने जाते है। रामनाम धारी पहले यही हुए। इन्होने शिवजी से विद्या सीखी थी और उन्होने इन्हे परशु या फरसा दिया था तभी से ये 'परशुराम' कहलाये (दूसरे रामनाम धारी प्रसिद्ध श्री रामचन्द्रजी हुए और तीसरे श्रीकृष्णजी के बडे भाई बलरामजी रामनाम धारी हुए)। इनका अवतार त्रेतायुग के आरभ मे क्षत्रियो का अत्याचार दबाने को हुआ था। ये शिवजी के शिष्य थे, इसी हेतु जब रामचन्द्रजी ने जनकपुर मे शिवजी का धनुष तोडा था तब क्रोधित होकर दौड आये थे परन्तु श्री रामचन्द्रजी का विशेष बल देख तथा उन्हे अवतार समझ, तपस्या करने हेतु चले गये। पिता की आज्ञा मानकर जो इन्होने अपनी माता का बध किया था, उसकी कथा अयोध्याकाण्ड की टिप्पणी मे और सहसबाहु से युद्ध का वर्णन आगे दिया है। इन्होने इक्कीस बार क्षत्रियो को परास्त कर सम्पूर्ण पृथ्वी ब्राह्मणो को दे डाली थी। कहते है कि मलावार को परशुरामजी ने बसाया था जहाँ पर बहुत से ब्राह्मण उनके साथ उत्तरी प्रदेशो से आये थे।

सीस जटा शशि वदन सुहावा। रिसवश कछुक अरुण हुइ आवा[१]।।
भृकुटी कुटिल नयन रिसराते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते।।

अर्थ—सिर पर जटाजूट और चन्द्रमा के समान सुहावना मुख था जो क्रोध के कारण कुछ लाल हो गया था। टेढी भौहे और नेत्र क्रोध से लाल हो गये थे, इस हेतु उनकी साधारण दृष्टि भी ऐसी दीख पडती थी कि मानो क्रोधभरी हो।

वृषभ कंध उर बाहु विशाला। चारु जनेउ माल मृगछाला।।
कटि मुनिवसना तूण दुइ बाधे। धनु शर कर कुठार कल काधे।।

अर्थ—बैल सरीखे कन्धे, छाती चौडी, लम्बी भुजाये थी, सुन्दर जनेऊ, माला मृग-छाला धारण किये थे। कमर मे वल्कल तथा दो तरकस धारण किये थे, हाथ मे धनुषबाण और सुन्दर कधे पर फरसा लिये थे।

दोहा—संत वेष करनी कठिन, बरनि न जाइ स्वरूप[२]।
धरि मुनितनु जनु वीररस, आयउ जहँ सब भूप।।२६८।।

अर्थ—भेष तो साधुओ का परन्तु काम क्रूरता के थे ऐसे रूप का वर्णन नही हो सकता मानो वीररस मुनि भेष धारणकर के राज-समाज मे आया हो।

देखत भृगु पति वेष कराला। उठे सकल भय विकल भुआला।।
पितु समेत कहि निज निजनामा। लगे करन सब दड प्रणामा।।

अर्थ—परशुरामजी का भयानक भेष देखते ही सब राजा भय से हरबराकर उठ खडे हुए। अपने-अपने पिता के नाम सहित अपना नाम बताकर सब साष्टाग प्रणाम करने लगे।

जेहि सुभाय चितवहि हित जानो। सो जानइ जनु आयु खुटानी।।
जनक बहोरि आइ सिर नावा। सीय बुलाइ प्रणाम करावा।।

अर्थ—अपना प्रेमी समझकर जिसकी ओर सहज ही मे देखते थे वह समझता था कि मानो हमारी उमर बीत चुकी (भाव यह कि उनकी क्रोध-भरी दृष्टि से ही लोग ऐसा भय मानते थे कि कही मार न बैठें)। फिर जनकजी ने भी आकर सीस नवाया और सीता को बुलवाकर उनसे भी प्रणाम करवाया।

---

१ सीस जटा शशि बदन सुहावा। रिसवश कछुक अरुण हुइ आवा—

सवैया—स्वच्छ शरीर विभूति भसी भलि भाल त्रिपुण्ड की शोभा।
सीस जटा मुख चद छटा शुचि शोणित रग मनो कछु शोभा।।
नैन रिसौहै सुभौहै तनी तनि माल विशाल उरूस्थल लोभा।
भूभरहारक भार्गव रूप विलोकत भूपन को मन क्षोभा।।

और भी—रामरसायन रामायण से—

दोहा—जटा जूट शिर भस्म तनु, भाल त्रिपुड विशाल।
कर धनु शर वर तेज बहु, चपल चाल दृग लाल।।

२. सत वेष करनी कठिन, बरनि न जाय स्वरूप—हनुमन्नाटक भाषा (महन्त श्री रामाजी चतुरदासकृत)—

कवित्त—मस्तक मनोहर बिराजै टोप कमान पीठि पै निषग युग्म ख्यात खड खड है।
परम पवित्र भूती भूषित उरस्थल है मजु मृगचर्म मुज मेखला अखड है।।
बसन मजीठ रग रजित ललित तनु कर मे धनुष अक्ष बलय घमड है।
दड औ कमंडल ले उग्र अस्त्र मडल ले फरशा प्रचड चड चरित उदड है।।

आशिष दीन्हि सखी हर्षानी[१] । निज समाज ले गई सयानी ।।
विश्वामित्र मिले पुनि आई । पदसरोज मेले दोउ भाई ।।

अर्थ—उन्होने आशीर्वाद दिया (कि कल्याणी वीर प्रसवाभव अर्थात् सौभाग्यवती और शूरवी पुत्रो की जननी होवो) यह सुनकर सखी प्रसन्न हुई और सीताजी को स्त्री समाज मे लिवा ले गई । फिर विश्वामित्रजी ने आकर भेट की और दोनो भाइयो (राम-लक्ष्मण) को उनके कमलस्वरूपी चरणो मे डाल दिया ।

राम लषन दशरथ के ढोटा । दीन्ह असीस देखि भल जोटा[२] ।।
रामहि चितइ रहे भरि लोचन । रूप अपार मारमदमोचन ।।

अर्थ—राम और लक्ष्मण दशरथ के पुत्रो को देख उनकी जोडी मनोहर जान आशीर्वाद दिया (कि विजयी आयुष्मान् भव अर्थात् तुम्हारी विजय रहे और बडी आयु हो) । कामदेव के रूप गर्व को मिटाने वाले रामचन्द्रजी के अति सुन्दर स्वरूप को देख वे टकटकी बाँधकर रह गये ।

सूचना—समय सूचकता के कैसे उत्तम उदाहरण है कि एक तो जनकजी ने सीताजी से परशुरामजी को प्रणाम कराकर आशीर्वाद प्राप्त कर लिया और दूसरे विश्वामित्रजी ने भी राम-लक्ष्मण को भी आशीर्वाद दिलाकर सभावी कोप से हानि का बचाव कर लिया ।

दोहा—बहुरि विलोकि विदेह सन, कहहु काह अति भीर ।
पूछत जानि अजान जिमि, ब्यापेउ कोप शरीर ।।२६६।।

अर्थ—फिर जनकजी की ओर देखकर कहने लगे कि कहो तो सही—यह बडी भीर काहे की है ? सो जानकर भी अज्ञान की नाईं पूछते थे और शरीर मे क्रोध भर गया था ।

समाचार कहि जनक सुनाये । जेहि कारण महीप सब आये ।।
सुनत वचन फिर अनत निहारे । देखे चाप खंड महि डारे ।।

अर्थ—जिस हेतु सब राजा एकत्र हुए थे वह सब हाल जनकजी ने कह सुनाया । वचन सुनते ही ज्योही फिर कर दूसरी ओर देखने लगे तो क्या देखते हैं कि धनुष के दो टुकडे पृथ्वी पर पडे है।

अति रिस बोले वचन कठोरा । कहु जड़ जनक धनुष केहि तोरा[३] ।।
वेगि दिखाउ मूढ़ नतु आजू । उलटउँ महि जहँ लगि तब राजू ।।

---

१. आशिष दीन्हि सखी हर्षानी—

दोहा—जियहु सुयश जग छाइ कै, सुख सुखमा सरसात ।
पतिव्रत माहि प्रवीन हुइ, रहै अचल अहिवात ।।

२. दीन्ह असीस देखि भल जोटा—

दोहा—होहु निडर अरि ते सदा, समर न जीतै कोइ ।
चिर चिर जग युग युग जियो, कीर्तिलता वर होय ।।

३ अति रिस बोले वचन कठोरा । कहु जड जनक धनुष केहि तोरा—

क० : रे शठ जनक मुख खोलु बोलु इत नतु ससमाज आज तब राज सिंधु पाटि हौं ।
कौन भुज दड को प्रचड बरि बड वीर भयो नव खड मे अखड जाते घाटि हौ ।।
वेगि सो बताइ "बन्दि" लाउना बिलंब अब बढ्यो कोप वाउ ताहि कैसे उदघाटि हौं ।
शभु धनु खंड्यो तासु छाँटि भुज दंड दोऊ कठिन कुठार सो कठोर कंठ काटि हो ।।

अर्थ—बड़े क्रोध से दुष्ट वचन बोले कि रे मूर्ख जनक ! कह, धनुष को किसने तोड़ा है । अरे ! उस मूर्ख को जल्दी बता नही तो जहाँ तक तेरा राज्य है वहाँ तक की पृथ्वी को उलट दूँगा ।

सूचना—कोई-कोई लोग जड और मूढ इन शब्दो को धनुष तोडने वाले का विशेषण बनाकर यो अर्थ करते है कि जनक तुम उसे बताओ कि जिसने जड धनुष अर्थात् कठोर धनुष को तोड डाला है, उस मूर्ख को बताओ " इत्यादि ।

अति डर उतर देत नृप नाही । कुटिल भूप हरषे मन माही ॥
सुर मुनि नाग नगर नर नारी । सोचहि सकल त्रास उर भारी ॥

अर्थ—अधिक भय के कारण जनकजी ने कुछ उत्तर नही दिया तब तो दुष्ट राजा मन मे प्रसन्न हुए । देवता, मुनि, नाग और जनकपुर के स्त्री-पुरुष सब के सब चिन्ता मे पडे और उनके हृदय मे बडा दु ख हुआ ।

मन पछताति सीय महतारी । विधि सँवारि सब बात बिगारी ॥
भृगुपति कर सुभाव सुनि सीता । अर्ध निमेष कल्प सम बीता ॥

अर्थ—सीता की माता मन मे यह पछतावा करने लगी कि विधाता ने सब काम सुधार कर बिगाड दिया । परशुरामजी का (क्रोधी) स्वभाव सुनकर सीताजी को आधा पल भी एक कल्प के समान कटा (अर्थात् आधे पल तक सीता को बडी भारी बेचैनी हुई जब तक किसी ने परशुरामजी के प्रश्न का उत्तर न दिया) ।

दोहा—सभय विलोके लोग सब, जानि जानकी भीरु ।
हृदय न हर्ष विषाद कछु, बोले श्री रघुवीर ॥२७०॥

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी ने जब देखा कि सब लोग भयभीत है और जानकी को भारी बेचैनी हो रही है ऐसा जानकर दु ख-सुख रहित हृदय से कहने लगे—

नाथ शंभुधनु भंजनिहारा । होइहि कोउ इक दास तुम्हारा[1] ॥
आयसु काह कहिय किन मोही । सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही ॥

शब्दार्थ—कोही (सं० कोपी) = क्रोधी ।

अर्थ—हे स्वामी ! शिवजी का धनुष तोडने वाला आपका कोई एक दास होगा । क्या आज्ञा है ? मुझसे क्यो नही कहते (इस उत्तर को) सुन क्रोधी मुनि खिसियाकर कहने लगे—

सेवक सो जो करइ सेवकाई । अरिकरनी करि करिय लराई ॥

अर्थ—सेवक वही है जो सेवा करे, परन्तु जो शत्रु के काम करे उससे लड़ाई करनी चाहिए (भाव यह कि जो मन से, वचनो से और कर्म से सेवा करे वह सेवक कहलाता है । केवल वचनो से सेवक कहने वाला सेवक नही हो सकता । कर्म तो शत्रु के किये अर्थात् मेरे गुरु शकर जी का धनुष तोड़ डाला तो वह सेवक न हुआ शत्रु हुआ, इससे वह लडाई करने के योग्य है) ।

---

१ नाथ शभु धनुभजनिहारा । होइहि कोउ इक दास तुम्हारा—सीता स्वयम्बर से—
सवैया—रोष न आनिय ज्ञानि शिरोमणि ठानिय नेक विवेक विचारा ।
मानिय सम्मत मूल यहै मन कोप किये उर होत विकारा ॥
भाविहि मेटि सकै हठि को द्विज "बंदि" अनदित भेद पुकारा ।
शभु शरासन नाशनहार सो ह्वै है कोऊ इक दास तुम्हारा ॥

सुनहु राम जेइ शिवधनु तोरा । सहसबाहु[1] सम सो रिपु मोरा ।।

अर्थ—हे राम, सुनो ! जिसने शिवजी का धनुष तोडा है वह सहसबाहु राजा के समान मेरा बैरी है (भाव यह है कि सहसबाहु मेरे पिता का घातक था और शिवजी का धनुष तोडने वाला भी गुरुद्रोही हुआ । इस हेतु गुरुद्रोही को भी मै ऐसा दण्ड दूंगा जैसा सहसबाहु को दिया था) ।

सो बिलगाई बिहाइ समाजा । नतु मारे जैहै सब राजा ।।

अन्वय—सो समाजा बिलगाइ बिहाइ (दे) नतु सब राजा मारे जैहै ।

अर्थ—उसे समाज के लोग अलग करके छोड दे नही तो सब राजा मारे जाएगे (भाव यह है कि सबको चाहिए कि उससे दूर हो जाएं जिससे मै उसे मार डालूं, यदि ऐसा न होगा तो मेरा कहना न मानने से मैं सब राजाओ को मार डालूंगा) ।

सूचना—'सो समाजा को बिलगाइ बिहाइ नतु सब राजा मारे जैहै' ऐसा अन्वय करने से यह अर्थ होगा कि उम राजा को चाहिए कि वह समाज को छोड अलग हो जाए नही तो सब राजा मारे जाएगे, परन्तु इसमे यह शका रह जाती है कि यदि वह राजा डर के मारे

---

१ सहसबाहु—चन्द्रवशी कृतवीर्य राजा का पुत्र कार्तवीर्य था । इनके और नाम अर्जुन, सहस्रार्जुन, सहस्रबाहु आदि थे । इसने अनूप देश की माहिष्मती नाम नगरी को अपनी राजधानी बनाया । कहते है कि माहिष्मती नर्मदा के किनारे जबलपुर के पास भेडाघाट के समीप थी । इसका अधिकार भारतवर्ष भर मे हो गया था । इसने तपस्या करके दत्तात्रेय को प्रसन्न किया और इनसे अनेक वरदान पाये, यथा (१) एक हजार हाथ, (२) एक सोबरन का रथ जिसकी गति राजा की इच्छानुसार थी, (३) दोषो को न्याय के द्वारा सुधारने की शक्ति, (४) पृथ्वी को जीत लेना और उस पर धर्म से राज्य करने की बुद्धि, (५) शत्रुओ से पराजित न होना, (६) उस मनुष्य के हाथ से मृत्यु जो ससार भर मे प्रसिद्ध हो, (७) इसने ८५००० वर्ष तक हृष्ट पुष्ट और शक्ति युक्त शरीर से ऐश्वर्य सहित राज्य भोगा । कोई भी राजा कभी कार्तवीर्य की बराबरी न कर सकेगा, विशेषकर इन बातो मे, यथा (१) १०००० यज्ञ, (२) उदारता, (३) तपस्या, (४) नम्रता, और (५) आत्म सयमन ।

यह रावण का समकालीन था । एक बार रावण दिग्विजय करता हुआ माहिष्मती नगरी मे पहुँचा । वहाँ पर सहसबाहु ने इसे कैद कर रखा था, परन्तु रावण के आजा पुलस्त्य मुनि के कहने से छोड दिया था । इसके १००० पुत्रो मे से जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, मधु और उर्जित प्रसिद्ध थे ।

अग्नि ने अपने भोजनो के लिए इस राजा से एक बन मांगा था । राजा की आज्ञानुसार उसे नियमित बन को भक्षण करते समय अर्थात् जलाते समय वशिष्ठ मुनि का आश्रम जल गया था । मुनिजी ने इसी से क्रुद्ध होकर कार्तवीर्य को श्राप दिया कि तेरी सहस्र भुजाएँ शीघ्र ही खडित हो जाए ।

इस के ही प्रभाव से एक बार इसे दुर्बुद्धि उत्पन्न हुई । इसने जमदग्नि ऋषि से यथायोग्य आतीथ्यसत्कार पाने पर भी उनकी कामधेनु का बलात्कार से हरण कर लिया और जमदग्नि को भी मार डाला । परशुरामजी ने उसकी १००० भुजाएँ काट डाली जिससे वह मर गया और यह सकल्प किया कि मेरी दृष्टि मे ये क्षत्री है इस हेतु मै पृथ्वी को निक्षत्रिय कर डालूंगा । इस कथन के अनुसार परशुरामजी ने २१ बार राजाओ का बध करके पृथ्वी का राज्य ब्राह्मणो को दे डाला था (जैसा कहा है "भुज बल भूमि भूप बिन कीन्ही । बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही ।")

समाज को छोडकर अलग न हो तो सब राजाओ का क्या दोष है और वे बेचारे क्यो वृथा मारे जायँगे ।

सुनि मुनि वचन लषन मुसकाने । बोले परशु धरहिं अपमाने ।।
बहु धनुही तोरी लरकाई[1] । कबहुँ न अस रिस कीन्हि गोसाई ।।
इहि धनु पर ममता केहि हेतू । सुनि रिसाय कह भृगुकुलकेतू ।।

अर्थ—मुनिजी के इन वचनो को सुनकर लक्ष्मणजी मुस्कराये और परशुरामजी से निरादर सहित कहने लगे—हे गोस्वामी ! मैंने छुटपन मे बहुत से छोटे धनुष तोडे थे, आपने कभी ऐसा क्रोध नही किया । इस धनुष पर क्यो विशेष प्रेम है ? इन शब्दो को सुन परशुरामजी क्रोधित हो कहने लगे —

दोहा—रे नृप बालक कालवश, बोलत तोहि न सँभार ।
धनुही सम त्रिपुरारिधनु, विदित सकल संसार ।। २७१ ।।

अर्थ—रे राजकुमार ! क्या मृत्यु के वश होकर तू सम्हालकर नही बोलता, सब ससार मे प्रसिद्ध शिवजी का धनुष क्या धनुही के समान है ?

लषन कहा हँसि हमरे जाना । सुनहु देव सब धनुष समाना ।।
का छति लाभ जीर्ण धनु तोरे । देखा राम नयें के भोरे[2] ।।

शब्दार्थ—छति (क्षति) =हानि । जीर्ण =पुराना । भोरे=धोखे ।

अर्थ—लक्ष्मणजी हँसकर कहने लगे कि हे देव, सुनिये ! हमारी समझ मे सब धनुष बराबर ही है । पुराने धनुष के तोडने मे हानि-लाभ क्या है ? श्री रामचन्द्रजी ने तो उसे नये के धोखे से देखा था ।

छुवत टूट रघुपतिहु न दोषू । मुनि बिन काज करिय कत रोषू[3] ।।
बोले चितइ परशु की ओरा । रे शठ सुनेहि सुभाउ न मोरा ।।

---

१ बहु धनुही तोरी लरिकाई— (कवित्त)
छोटे छोटे छोहरा छबीले रघुवशिन के करत कलोलै यूथ निज निज जोरि जारि ।
ये हो भृगुनाथ चलौ अवध हमारे साथ देखौ तहँ कैमे चहुँ खेलत है कोरि कोरि ।।
"रसिक बिहारी" ऐसी अमित कमानै सदा आनै गहि तानै एक एकन ते छोरि छोरि ।
कोऊ झकझोरै कोऊ पकरि मरोरैं योही खोरि खोरि नितहिं बहावै बाल तोरि तोरि ।।
और भी—विजय दोहावली से—
दोहा—दश हजार वे शिशु हते, गधर्वन के पुत्र ।
तिनकी धनुही छीनि कै, तोरी हती सुमित्र ।।

२. का छति लाभ जीर्ण धनु तोरे । देखा राम नये के भोरे— (कवित्त)
तायो तो पवन सतायो सो शरद ताहि सरिगौ सरेस कैयो युग को डारो हतो ।
बिना रग रोगन को सकुचत लीन्हो हाथ तानो कछु नाही अति जोरौ ना करो हतो ।।
क्षमावत हूजै मोपै नयो बनवाइ लीजै जीरन पुरानो जानि तुम हूँ धरो हतो ।
खाये कौन शासन प्रकाशन हुताशन ह्वै चाहे सो कीजिये शरासन तो सरो हतो ।।

३ छुवत टूट रघुपतिहुँ न दोषू । मुनि बिन काज करिय कत रोषू ।। (कवित्त)
सुनिये सुजान भृगुवश अवतश मुनि बिन अपराध भौंह नाहक न तानिये ।
'ललित' पुरानो बहु काल को न जानो धरो अति सरो भरो अपयश ही को दानिये ।।→

अर्थ—वह तो छूते ही टूट गया, श्री रामचन्द्रजी का भी दोष नही। हे मुनिजी ! आप क्यो व्यर्थ क्रोध करते है। (तब तो मुनिजी) फरसा की ओर देखकर बोले, रे मूर्ख ! तूने मेरा स्वभाव नही सुना ?

बालक जानि बधउँ नहि तोही[१]। केवल मुनि जड़ जानहि मोही ॥
बालब्रह्मचारी अति कोही। विश्व विदित क्षत्रियकुल द्रोही ॥

अर्थ—तुझे बालक समझकर नही मारता हूँ, रे मूर्ख ! तू मुझे निपट मुनि ही जानता है। मैं बालकपन से ब्रह्मचारी और बडा क्रोधी हूँ, ससार जानता है कि मै क्षत्रियो के वश का बैरी हूँ।

भुजबल भूमि भूप बिन कीन्ही। विपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही ॥
सहसबाहुभुज छेदनिहारा। परशु विलोक महीपकुमारा[२] ॥

अर्थ—मैंने अपने बाहुबल से पृथ्वी को राजाओ से रहित कर डाला और अनेक बार ब्राह्मणो को दान कर दी। रे राजकुमार ! सहसबाहु की भुजाओ के काटनेवाले मेरे इस फरसा को देख ले।

दोहा—मातु पितहि जनि सोचवश, करसि महीपकिशोर।
गर्भन[३] के अर्भकदलन, परशु मोर अति घोर ॥ २७२ ॥

शब्दार्थ—गर्भन के अर्भक=गर्भवती के पेट के बच्चे।

अर्थ—हे राजकुमार ! अपने-माता पिता को सोच मे मत डाल। मेरा यह बडा कठोर फरसा गर्भवती स्त्रियो के बच्चो का भी नाश करने वाला है।

विहँसि लखन बोले मृदुबानी। अहो मुनीश महाभट मानी ॥
पुनि पुनि मोहि दिखाव कुठारू। चहत उडावन फूँकि पहारू[४] ॥

अर्थ—लक्ष्मणजी मुसकराकर धीरे से कहने लगे कि अहो मुनीश्वर ! तुम अपने

रावरी दुहाई नाथ साची ये बखानत हौं छुअत कमलपानि टूटो यह जानिये।
पीर न उठावौ उर धीरन मे धीर तुम जीरन पिनाक ताको येती रिस ठानिये।

१. "बालक जानि" के पाठान्तर "बाल विलोकि और बालक बोलि" भी है।
बालक जानि बधउँ नहि तोही—बालक, स्त्री आदि के वध करने से भारी पातक होता है, उसे भरतजी ने भी कौशल्याजी से कहा था (राम रत्नाकर रामायण से)—

छन्द—जे मरत बिन उत्तरक्रिया निज नारि मे सुत ना लहै।
नृप नारि बालक के बधें शुचि दास को नहि पाल है ॥
मधु मास आदिक बेच के निज कुटुब पालत राग है।
जिनके मते रघुनाथ बन गे तिनहिं ये अघ लाग है ॥

२. भुजबल भूमि भूप बिन कीन्ही परशु विलोक महीपकुमारा—हनुमन्नाटक भाषा (श्री रामाजी चतुरदास कृत)— (छद)

त्रिगुणित सात बेर क्षत्रिय समस्त केर बसा मास रुधिर सनान बहु बार है।
निधन विधान बीच परम प्रधान यह तीय वृद्ध बाल नाहि निर्दय निहार है॥
राजन के कधकूट कोटि कोटि काटन मे साठौ घरी आठौं पैर परम प्रचार है।
बार बार बदत ध्रुवाक ध्रिय धार धार क्षत्रि क्षयकार घोर धार ये कुठार है ॥

३. 'गर्भन' का पाठान्तर 'गर्विन' भी है जिसका अर्थ घमंडी राजाओ के ऐसा होता है।

४. पुनि पुनि मोहि दिखाव कुठारू। चहत उडावन फूँकि पहारू— →

को बडा योद्धा समझ रहे हो । तुम मुझे बारबार फरसा दिखलाते हो' सो क्या फूँक से पहाड को उडाना चाहते हो ? (अर्थात चेष्टामात्र ही से तुम मुझे भयभीत करना चाहते हो सो नही हो सक्ता क्योंकि—)

इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं । जे तर्जनी देखि मर जाहीं ।।
देखि कुठार शरासन बाना । मै कछु कहा सहित अभिमाना ।।

शब्दार्थ—तर्जनी (तर्ज = धमकाना) = हाथ के अँगूठे के पास की अँगुली जिसके द्वारा बहुधा लोगो को धमकाते हैं ।

अर्थ—यहाँ पर कोई कुम्हडा की बतियाँ तो है नही जो तर्जनी अँगुली के दिखाने से सूख जाए । फरसा और धनुषबाण को (तुम्हारे पास) देखकर मैने भी कुछ बचन तेजी से कहे ।

भृगुकुल समझि जनेउ बिलोकी[१] । जो कछु कहेउ सहउँ रिस रोकी ।।
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई[२] । हमरे कुल इन पर न सुराई ।।

शब्दार्थ—सुराई (शूराई = शूर का काम) = बहादुरी ।

अर्थ—आपको भृगुकुल वाले समझ तथा जनेऊ देखकर जो कुछ आपने कहा सो सब मैने क्रोध मारकर सह लिया । (क्योकि) देवता, ब्राह्मण, हरिभक्त और गौ इन सब पर हमारे वश वाले (अर्थात रघुवशी) बहादुरी नही दिखलाते ।

बधे पाप अपकीरति हारे । मारत हू पा परिय तुम्हारे[३] ।।
कोटि कुलिश सम बचन तुम्हारा । बृथा धरहु धनु बान कुठारा ।।

अर्थ—इनके मार डालने से पाप होता है और इनसे हार जाने से अपयश होता है । तुम यदि मारोगे तो भी हम तुम्हारे पैर ही पडेंगे (भाव यह कि तुम भृगुकुल के हो और भृगुमुनि

क० पीलन के पाये तौ पिलत ना पपीलन सो पीलन के पेले कहुँ पर्वत पिलै नही ।
दीपक के लेसे दिनेश ना मलिन होत मृगा सुने कहूँ मृगराजन सो लडे नही ।।
द्विजन के पुत्र रण मडित रजपूतन सो धीरज प्रकाश गाह तनको धरे नही ।
लै लै कुठार बार बार ही उबारत रघुवशन के बाहु दड डारन करे नही ।।

१ भृगुकुल समझि जनेउ बिलोकी···सुमति मन रजन नाटक से— (कवित्त)
पाइ नृपदोषी कब छाँडतो समर माहि डरो अपलोकै रघुवशि वर नाम हौ ।
काहे को बलकि बलविपुल बखानौ मुनि मह्र धनु हाथ नाथ धारे बलधाम हौ ।।
'ललित' न छोभौ देखि अरिगण मोद भरो शक को न अक कालहू को रण बाम हौ ।
देखि उपवीत गातै घात ना करत बातै जाहु चलि ह्यातै यातै करत प्रणाम हौ ।।
और भी—

दोहा—परशु देख फरकत जु भुज, कपत लखि उपवीत ।
रन सन्मुख भे राम सो, राम होत यह रीत ।।

२ सुर महिसुर हरिजन अरु गाई । हमरे कुल इन पर न सुराई ।

दोहा—विप्रवैद्य बालक बधू, गुरु गरीब अरु गाय ।
"सम्मन" इन सातहुन पै, चोट करे रँग जाय ।।

३ बधे पाप अपकीरति हारे । मारत हू पा परिय तुम्हारे—हृदयराम कविकृत हनुमन्नाटक से— (कवित्त)
बाहन भिखारी तिन धारी तिन तूल तुछ भूखन के भूखे महा तोसो कहा कहिये ।
नावै हाथ बाँबी मे न आवै मत्र बीछन को तातें तेरी बात सुन सुन चाइ रहिये ।।→

ने जो विष्णुजी के लात मारी थी उसे सहकर उन्होने उनके पैर ही पडे थे)। (इस समय) तुम्हारे वचन ही तो करोडो बज्रो के समान है, धनुषबाण और फरसा का धारण करना तुम्हारे लिए व्यर्थ है।

कोटि कुलिश सम वचन ·······का **दूसरा अर्थ**—ब्राह्मणो का श्राप ही करोडो वज्रो के समान हानिकारक होता है। उन्हे धनुषबाण और फरसा आदि धारण करने की आवश्यकता ही नही।

दोहा—जो विलोकि अनुचित कहेउँ, क्षमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोष भृगुवंशमणि, बोले गिरा गँभीर ॥२७३॥

अर्थ—जो (अर्थात् जिन अस्त्र-शस्त्रो को) देखकर मैने आपसे कुछ अयोग्य वचन कहे है सो हे धीरजवान् मुनिश्वर जी! आप क्षमा कीजिये (अर्थात् यदि मैं आपके सरीखे महामुनि के पास इन हथियारो को न देखता तो अयोग्य वचन भी न कहता, इसी से क्षमा मागता हूँ) इन वचनो को सुनते ही भृगुवशियो मे श्रेष्ठ परशुरामजी क्रोध के साथ गभीर वाणी से बोले —

कौशिक सुनहु मंद यह बालक। कुटिल कालवश निजकुलघालक॥
भानुवंशराकेसकलकू। निपट निरंकुश अबुध अशकू॥

अर्थ—विश्वामित्रजी, सुनो! यह बालक मूर्ख तथा कपटी है, मृत्युवश अपने कुल का नाश करने वाला है। यह सूर्यकुलरूपी चद्रमा मे कलक के समान है, यह बडा मनमौजी, अज्ञानी और निडर है।

कालकवल होइहि छिन माही। कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं॥
तुम हटकहु जो चहहु उबारा। कहि प्रताप बल रोष हमारा[1]॥

शब्दार्थ—कालकवल होइहि=यम का ग्रास बनेगा अर्थात् मारा जायेगा। उबारा=बचाया।

अर्थ—यह पल-भर मे मारा जायेगा, मैं चिल्लाकर कह देता हूँ, मुझे दोष नही। जो तुम इसे बचाना चाहते हो तो हमारा तेज, बल और क्रोध सुनाकर इसे रोक दो।

लषन कहेउ मुनि सुयश तुम्हारा। तुमहि अछत को बरनै पारा॥
अपने मुख तुम आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी॥

अर्थ—लक्ष्मणजी कहने लगे कि हे मुनिजी! आपके रहते आपके यश को कौन वर्णन कर सकता है। आपने अपने मुख से निज करतूति तो नाना भाँति से बारबार वर्णन की है।

नहि सतोष तो पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दूसह दुख सहहू॥
वीरवृत्ति तुम धीर अछोभा। गारी देत न पावहु शोभा[2]॥

हम को अजस तोसो बाँधे तरकस अनरस करे बाम्हन सो ताते सब सहिये।
कासीराम कहै रघुवशिन की रीति यहै जासे कीजै मोह तासो लोह कैसे गहिये॥

१. तुम हटकहु जो चहहु उबारा। कहि प्रताप बल रोष हमारा— राम रहस्य से—

सवैया—सुन कौशिक बालक की शठता अभिमानरता कुल नाशन वारो।
रविवशिन माँहि अशक निरंकुश ज्यो सकलक मयक बिचारो॥
क्षण मे यह काल कराल के गाल मे जावहिगो नहिं दोष हमारो।
कहि के हमरो बल रोष प्रताप यही हटको चहो "दत्त" सवारो॥

२. वीर वृत्ति तुम धीर अछोभा। गारी देत न पावहु शोभा—राम रहस्य से— →

अर्थ—यदि जी न भरा हो तो और कुछ कह डालो। क्रोध को दबाकर असह्य कष्ट न सहिये। आप तो योद्धाओ का बाना बाँधे, धीरजवान और स्थिर चित्त वाले माने जाते हो, इस हेतु गालियाँ देने से शोभा नही पाते।

दोहा—शूर समर करनी करहि, कहि न जनावहि आप[१]।
विद्यमान रिपु पाइ रण, कायर करहि प्रलाप[२] ॥२७४॥

शब्दार्थ—प्रलाप=-बकवाद।

अर्थ—योद्धा लोग तो लडाई मे बहादुरी दिखाते है, कुछ अपनी बडाई नही बताते और कायर तो सग्राम मे बैरी को रहते हुए देख केवल बकवाद करने लगते है।

तुम तो काल हाँकि जनु लावा। बार बार मोहि लागि बुलावा ॥
सुनत लषन के वचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा ॥

अर्थ—तुम तो मृत्यु को मानो अपने साथ ही लेते आये हो जो बारबार मेरे लिए उसे बुलाते हो। (भाव यह है कि मृत्यु क्या आपके अधीन है जो घडी-घडी मेरे लिए उसे बुलाते हो)। लक्ष्मणजी के ऐसे कडे वचन सुनकर (परशुराम ने) भयकर फरसा को अपने हाथ मे सम्हाल लिया।

अब जनि देइ दोष मोहि लोगू। कटुवादी बालक बधयोगू ॥
बाल बिलोकि बहुत मै बाँचा। अब यह मरनहार भा साँचा[३] ॥

अर्थ – (और बोले) 'अब लोग मुझे बुरा न कहे, बुरे वचन कहने वाला बालक मार डालने के योग्य है। मैने इसे बालक जान बहुत बचाया परन्तु अब तो यह सचमुच मरना ही चाहता है (क्योकि यह तो मुझे कायर कहता है)।

सवैया—सन्तोष नही तो कहो कछु और न रोकहु क्रोध सहौ दुख भारो।
वीरवृती तुम हौ सुकृती सुनि गारिन को हँसि है जग सारो ॥
हे मुनिनाथ सुशील तुम्हार न जानत को जग मे उजियारो।
पै यह रीति न बीरन की अपने मुख दत्त प्रताप पुकारो ॥

"गारी देत न पावहु शोभा"—गाली सूचक शब्द ये है—
(१) भानुवश राकेश कलकू। (२) निपट निरकुश। (३) निपट अबुध। (४) निपट अशकू, आदि।

१ शूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आप—
श्लोक—नवै शूरा विकत्थते, दर्शयन्त्येव पौरुषम्।
भाव यह है कि शूरवीर केवल बकवाद नही करते, वे तो करतूति कर दिखाते है।

२ विद्यमान रिपु पाइ रण, कायर करहिं प्रलाप—ठीक यही बात विभीषण ने उन राक्षसो से कही जो रावण की सभा मे गाल बजा रहे थे। जब उन्होने सुना था कि श्री रामचन्द्र जी की सेना लका के समीप आ पहुँची है—रामरसायन से—
दोहा—प्रथम बखानत फूलि जे, बडी बडी बहु बात।
ऐसे ते औसर परे, दरशत है कदरात ॥

३. बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। अब यह मरन हार भा साँचा—
सवैया—बालक जानि तजौ हित कै यह छाँडै नही कटु बैन उचारिबो।
जानै प्रताप न मेरी कहो बहु क्यो "ललिते" उर धीरज धारिबो ॥
मो शर पावक झारन मे शठ चाहै सबै कुल को बन जारिबो।
लाग न मेरी कछु यह तौ बरजोरी चहै यमलोक सिधारिबो ॥

कौशिक कहा क्षमिय अपराधू । बाल दोष गुन गनहिं न साधू ।।
कर कुठार मै अकरन कोही । आगे अपराधी गुरु द्रोही ।।

अर्थ—विश्वामित्र कहने लगे अपराध क्षमा कीजिये क्योकि बालक के गुण-अवगुणो का विचार सज्जन नही करते । (परशुराम कहने लगे कि) (एक तो) मेरे हाथ मे फरसा है (दूसरे) मै बिना कारण के ही क्षत्रियो पर क्रोध करने वाला हूँ और (तीसरे) मेरा अपराध करने वाला तथा गुरु का बैरी मेरे सामने है ।

उत्तर देत छाँड़उँ बिन मारे । केवल कौशिक सील तुम्हारे ।।
नतु इहि काटि कुठार कठोरे । गुरुहि उऋण होतेउँ श्रम थोरे ।।

अर्थ—ऐसे उत्तर देने वाले को मै जो बिना मारे छोडे देता हूँ सो हे विश्वामित्र ! यह तुम्हारा ही सकोच है (भाव यह कि मार डालने के योग्य तो है परतु तुम अपने साथ इन्हे लिवा लाये हो सो तुम्हे कलक न लगे इस हेतु छोडे देता हूँ) । नही तो इसको अपने भयकर फरसे से काटकर थोडे ही श्रम से गुरु के ऋण से छुटकारा पा लेता (अर्थात् सहज ही शकरजी के धनुष तोडने वाले को मारकर उनका बदला मै ही ले लेता) ।

दोहा—गाधिसुवन कह हृदय हँसि, मुनिहि हरिअरिइ सूझ ।
अजगव खंडेउ ऊख जिमि[१] , अजहुँ न बुझ अबूझ ।।२७५।।

शब्दार्थ—गाधिसुवन = गाधि राजा के पुत्र अर्थात् विश्वामित्र । हरिअरिइ = (१) हरियाली (२) हरि शत्रु ही । अजगव = शिव का धनुष, जैसा कि अमर कोष मे लिखा है 'पिना कोऽजगव धनु' अर्थात् शिवजी के धनुष को पिनाक या अजगव भी कहते है ।

अर्थ—विश्वामित्रजी हँसकर मन ही मन कहने लगे कि परशुराम को सब हरा-हरा ही सूझता है (अर्थात् वे समझते है कि राम-लक्ष्मण भी साधारण क्षत्री है सो जिस प्रकार उन्होने अनेक क्षत्रियो को बैरी समझकर मार डाला है इसी प्रकार इनको भी मार डालेंगे । जिस प्रकार सावन के अधे को सब कुछ हरा ही हरा समझ पडता है ।) जिन्होने शिवजी के धनुष को गन्ने की नाईं तोड डाला है उन्हे ये अज्ञानवश अभी तक नही पहिचानते (कि शिवजी का धनुष तोडना क्या साधारण क्षत्रियो का काम है) ।

दूसरा अर्थ—विश्वामित्रजी हँसकर हृदय मे कहने लगे कि हरि (अर्थात् रामचन्द्रजी) जिन्होने शिवजी के धनुष को गन्ने की नाईं तोड डाला है वे मुनि को 'अरिइ सूझ' अर्थात् शत्रु ही समझ पडते है यह जानकर भी अजान हो रहे है ।

कहेउ लषन मुनि सील तुम्हारा । को नहिं जान विदित संसारा ।।
मातहि पितहि उऋण भय नीके[२] । गुरुऋण रहा सोच बड़ जीके ।।

---

१. "अजगव खडेउ ऊख जिमि" का पाठान्तर "अयमय खाँड न ऊख मय" है जिसका अर्थ यह है कि (राम-लक्ष्मण को मारना) यह "अयमय खाँड" अर्थात् लोहे का बना हुआ खाँड है न "ऊख मय खाँड" है अर्थात् ऊख की बनी हुई खाँड (शक्कर) नही है जिसका खाना सहज है (भाव यह कि राम-लषन लोहे के खाँडे अर्थात् तलवार की नाईं काटने वाले है न कि ऊख की खाँड के समान सुलभता से खाने के पदार्थ है । सार यह है कि राम-लक्ष्मण को न मार सकोगे वरना उलटे पराजित होओगे) यह टेढी खीर है या लोहे के चने हैं, गप्प से खाने के योग्य नही है ।

२. मातहि पितहि उऋण भये नीके—इसकी कथा सहस्रबाहु की कथा मे देखें ।

अर्थ—लक्ष्मणजी कहने लगे, हे मुनि! तुम्हारे सकोची स्वभाव को कौन नही जानता है, ससार मे सभी को प्रकट है। तुम अपने माता के ऋण से भली भाँति मुक्त हो चुके, अब गुरु का ऋण बाकी है, उसी का जी मे बडा सोच है (अर्थात् माता को स्वतः मार कर तथा पिता को सहस्रबाहु से वध किया हुआ देख दोनो के ऋण से उऋण हो गये, ये व्यग्य वचन है)।

सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। दिन चलि गयेउ ब्याज बहु बाढ़ा ॥
अब आनिय ब्यवहरिया बोली। तुरत देउँ मैं थाली खोली ॥

अर्थ—वह गुरु का ऋण मानो हमारे ही माथे से चुकाया जाता है (उस ऋण को) दिन बहुत हो गये इस हेतु ब्याज बहुत बढ गया है। अब साहूकार को बुला लाओ तो मैं झटपट थैली खोलकर चुका दूंगा (भाव यह कि अपने साहूकार गुरु शकरजी को बुला लाओ तो वे ही आकर इसका निपटारा कर लेगे)।

सुनि कटुवचन कुठारा सुधारा। हाहा कहि सब लोग पुकारा ॥
भृगुबर परसु दिखावहु मोही। विप्र बिचारि बचौ नृपद्रोही ॥

अर्थ—ऐसे कठोर वचन सुनते ही परशुराम ने फरसा उठाया तो सब लोग हाहाकार मचाने लगे। (लक्ष्मण फिर बोले) हे परशुराम! तुम मुझे फरसा दिखाते हो, हे राजकुल शत्रु! मैं तुम्हे ब्राह्मण जानकर बचा रहा हूँ।

मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े[१]। द्विज देवता घरहि के बाढ़े ॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सैनहिं लषन निबारे ॥

अर्थ—कभी तुम्हे कठिन सग्राम मे विकट योद्धाओ से काम नही पडा, हे ब्राह्मण देवता! तुम घर ही के पराक्रम से बढे हो (अर्थात् तुम अपने तपोबल ही से वीर बन बैठे हो अथवा घर ही मे माता का बध कर वीरता की डीग मार रहो हो)। सब लोग चिल्ला उठे कि यह ठीक नही (सुनते ही), रामचन्द्रजी ने नेत्रो के सकेत से लक्ष्मण को रोका।

दोहा—लषन उतर आहुति सरिस, भृगुबरकोप कृसानु।
बढ़त देखि जल सम वचन, बोले रघुकुल भानु ॥२७६॥

अर्थ—रघुकुल मे सूर्य के समान रामचन्द्र ने जब देखा कि लक्ष्मण के आहुति समान उत्तरो से परशुराम की क्रोधरूपी अग्नि बढती जाती है तब तो वे जल के समान वचन बोले (अर्थात् जिस प्रकार आहुति से बढती हुई अग्नि को जल के द्वारा शात करते है उसी प्रकार लक्ष्मणजी के अनुचित उत्तरो से बढे हुए परशुराम के क्रोध को रामचन्द्रजी अपनी शीतल वाणी से शात करने लगे)—

नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूध मुख करिय न कोहू[२] ॥
जो प प्रभुप्रभाव कछु न जाना। तौ कि बराबरि करत अयाना ॥

---

१ मिले न कबहुँ सुभट रन गाढे—

क०—हमहूँ बिलोकि कै कुठार औ धनुषबान बैन सतराइ के कहे जो अरि जाइगो।
"ललित" करी जो बिन छत्र क्षिति मडल तौ मैं न हतो तब अब मान टरि जाइगो ॥
कोई तुम गाढो मुनि सुभट मिलो न जग अब रघुबशिन सो काम परिजाइगो।
दुख भरि जाइगो सुहाइगो न फेरि कछू रोष मति रखौ सो हिये मे सरि जाइगो ॥

२. नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूध मुख करिय न कोहू—हितोपदेश से—

श्लोक—देवतासु गुरौ गोषु, राजसु ब्राह्मणेषु च।
नियतव्यः सदा कोपो, बालवृद्धातुरेषु च ॥

→

अर्थ—हे स्वामी ! इस बालक पर दया कीजिये, यह शुद्ध दूध पीने वाले बालक की नाईं है, उस पर क्रोध न कीजिये । जो यह अज्ञानी कुछ आपके प्रभाव को जानता तो क्या बराबरी करता ? (अर्थात् नही) ।

जो लरिका कछु अनुचित करही । गुरु पितु मातु मोद मन भरही[१] ।
करिय कृपा सिसु सेवक जानी । तुम सम सील धीर मुनिज्ञानी ।।

अर्थ—जो बालक कुछ अयोग्य काम भी कर डाले तो उसके गुरु, माता और पिता का मन प्रसन्न ही होता है । आप सरीखे शीलवान, धीरजवान और ज्ञानवान मुनि उसे अपना छोटा सेवक समझकर कृपा ही करे ।

रामवचन सुनि कछुक जुडाने । कहि कछु लषन बहुरि मुसकाने[२] ।।
हँसत देखि नख सिख रिस ब्यापी । राम तोर भ्राता बड़ पापी ।।

अर्थ—रामचन्द्रजी के वचनो को सुनकर कुछ शात हुए, इतने मे लक्ष्मण कुछ कहकर फिर मुसकराये । हँसते हुए देख सिर से पैर तक क्रोध भर गया और कहने लगे, हे राम ! तुम्हारा भाई बडा पापी है ।

गौरशरीर श्याम मन माही । कालकूटमुख पयमुख नाही ।।
सहज टेढ अनुहरइ न तोही । नीच मीचसम लखै न मोही ।।

अर्थ—इसका तन तो उजला है परन्तु मन मैला है, यह विषमुख है दूध-मुख नही । यह स्वभाव ही से टेढा है, तुम्हारे स्वभाव से नही मिलता, यह नीच मुझे अपनी मृत्यु के समान नही देखता ।

दोहा—लषन कहेउ हँसि सुनहु मुनि, क्रोध पाप कर मूल[३] ।
जेहि वश जन अनुचित करहि, चरहि विश्वप्रतिकूल ।।२७७।।

अर्थात् देवताओ, गुरु, गायो, राजाओ, ब्राह्मणो, बालको, वृद्धो और रोगियो पर सदा कोप को रोकना चाहिए ।

१ जो लरिका कछु अनुचित करही । गुरु पितु मातु मोद मन भरही—हनुमन्नाटक भाषा (श्रीरामाजी चतुरदास-कृत)—

छप्पय—सुनि सुनि वचन मुनीश राम निज चेतसि चुनि चुनि ।
पुनि पुनि नयन निहारि बैन बोले हिय गुनि गुनि ।।
भुज बल विदित न याहि नाहि शिवधनु प्रताप बल ।
रावर महिमा महा कहा यह जानि सकै भल ।।
करिये न क्रोध नाहक विभौ धरिये धीरज ध्रुव धिय ।
अज्ञात बाल आचरण लखि है प्रमुदित गुरु लोग जिय ।।

और भी—राम रसायन रामायण से—

दोहा—महावीर वर धीर प्रभु, क्षमिये शिशु अपराध ।
कृपा करत हैं बाल पै, सबही साध असाध ।।

२. कहि कछु लषन बहुरि मुसकाने—विजय दोहावली मे इसके विषय मे यो लिखा है—

दोहा—प्रभु चितये मुसक्याय कै, बैठ रहे कहुँ अन्त ।
लषन बतायो भृगुपतिहि, चारि नारि को कन्त ।।

भाव यह कि चारि नारि को कन्त अर्थात् अँगूठा चुपके से दिखा दिया ।

३. क्रोध पाप कर मूल—

→

अर्थ—लक्ष्मण हँसकर कहने लगे, हे मुनि, सुनिये ! क्रोध पाप की जड है जिसके अधीन होकर मनुष्य अयोग्य काम कर बैठते है और ससार के विरुद्ध बर्त्ताव करने लगते है। (भाव यह कि जैसे आपने क्रोध के कारण निरपराधी क्षत्रियो को मारा और विश्वरूप श्री रामचन्द्रजी से क्रोध कर रहे हो)।

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया। परिहरि कोप करिय अब दाया॥
टूट चाप नहि जुरहि रिसाने। बैठिय होइहहि पाय पिराने॥
जो अति प्रिय तौ करिय उपाई। जोरिय कोउ बडगुणी बुलाई[1]॥

अर्थ—हे मुनीश्वर ! मै आपका सेवक हूँ, अब क्रोध को छोडिये और कृपा कीजिये। टूटा हुआ धनुष क्रोध करने से जुड नही सकता, बैठ जाइये, पाँव पिराने लगे होगे। जो (धनुष पर) अधिक प्रेम है तो उपाय कीजिये, किसी बडे कारीगर को बुलाकर जुडवा लीजिये।

बोलत लषनहि जनक डराही। मष्ट करहु अनुचित भल नाही[2]॥
थर थर कापहि पुरनरनारी। छोट कुमार खोट बड़ भारी॥
भृगुपति सुनि सुनि निर्भय बानी। रिसतन जरै होइ बल हानी॥

अर्थ—लक्ष्मणजी के बोलने से जनकजी डरते थे, वे कहने लगे—इन्हे चुप करा दो, अयोग्य बातें ठीक नही। नगर के स्त्री-पुरुष थर्रा उठे थे। वे बोले कि यह छोटा कुँवर बडा खोटा है। ऐसी निधडक बाते सुनते-सुनते परशुरामजी का शरीर तो क्रोध के मारे जला जाता था और साथ ही साथ उनका बल भी घटता जाता था।

बोले रामहि देइ निहोरा। बचउँ विचारि बंधु लघु तोरा॥
मन मलीन तनु सुन्दर कैसे। विषरस भरा कनकघट जैसे[3]॥

क० : गर्व ते सुलख जाय सूमता ते यश जाय कुलाल हूँ ते कुल जाय योग जाय कुसग ते।
लाड किये पुत्र जाय शोक ते शरीर जाय भूख ते मरयादा जाय बुद्धि जाय भग ते॥
कपट किये मित्र जाय लोभ ते बडाई जाय माँग हूँ ते मान जाय पाप जाय गग ते।
नीति बिना राज जाय क्रोध ते तपस्या जाय रजपूती जाय जब मुडे जात जग ते॥

१. जो अति प्रिय तौ करिय उपाई। जोरिय कोउ बड गुणी बुलाई—धनुष यज्ञ नाटक बहार से—

सवैया—मुनि बैठिये पाय पिरान लगे हुइ हैं मन मो तरसावत है।
नहि चैन पडे जु हृदै मे प्रभू आ क्षण क्षण मोह बतावत है॥
तौ एक गुणी हमरे पुरमाहि बसइ वर चाप बनावत है।
तुम ताहि बुलाइ जुडाइ लो ये जन रत्न प्रयत्न बतावत है॥

२. मष्ट करहु अनुचित भल नाही—नीति शास्त्र मे कहा है कि "मौनेन कलहो नास्ति नास्ति जागरिते भयम्" अर्थात् चुप रह जाने से तकरार शान्त हो जाती है और चैतन्य रहने वाले को भय नही रहता।

३. मन मलीन तनु सुन्दर कैसे। विषरस भरा कनकघट जैसे—धनुष यज्ञ नाटक बहार से—

सवैया—ये दुष्ट है श्याम हृदय का महा तन सुन्दर गौर लखावत है।
सौभाविक वक्र गती ये चलइ नहि तेरी समानता पावत है॥ →

अर्थ—रामचन्द्र पर थरभार रख के कहने लगे कि मैं इसे तुम्हारा छोटा भाई जानकर छोड़े देता हूँ। ये मन का मैला तन का गोरा इस प्रकार है जैसे विष के रस से भरा हुआ सोने का घडा।

दोहा—सुनि लछिमन विहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम[१]।
गुरु समीप गवने सकुचि, परिहरि बानी वाम ॥२७८॥

अर्थ—सुनते ही लक्ष्मणजी फिर हँसने लगे तो रामचन्द्रजी ने घुडक दिया, तब वे लज्जित होकर व्यग्य वचन कहना छोड गुरुजी के पास चले गये।

अति विनीत मृदु शीतल बानी। बोले राम जोरि युग पानी ॥
सुनहु नाथ तुम सहज सुजाना। बालकवचन करिय नहि काना ॥

अर्थ—रामचन्द्रजी दोनो हाथ जोड बहुत ही नम्र, मधुर और शाति देने वाले वचन बोले—हे स्वामी, सुनिये ! आप तो स्वभाव ही से बुद्धिमान् है, बालक के शब्दो पर ध्यान न देना चाहिए।

बररे बालक एक सुभाऊ। इनहि न सत विदूषहि काऊ[२] ॥
तेहि नाही कछु काज बिगारा। अपराधी मै नाथ तुम्हारा[३] ॥

शब्दार्थ—बररे = पागल मनुष्य।

अर्थ—पागल मनुष्य और बालक की एक-सी टेव होती है, सज्जन इन्हे दोष नही लगाते। उसने आपको कोई हानि नही पहुँचाई, हे नाथ ! तुम्हारा अपराधी तो मै हूँ।

कृपा कोप बध बध गोसाई। मो पर करिय दास की नाई ॥
कहिय वेगि जेहि विधिरिस जाई। मुनिनायक सोइ करउँ उपाई ॥

अर्थ—हे स्वामी ! दया, क्रोध, मारना या बधन जो कुछ करना हो अपना सेवक जान मुझ पर कीजिये। शीघ्र कह डालिये जिस प्रकार से आपका क्रोध शात होगा, हे मुनिराज !

है घोर हलाहल या के गले मुख बयन सदा कटु आवत है।
मन तुच्छ मुनी मोय जानत है नहिं काल विचार डरावत है ॥

१. सुनि लछिमन विहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम— हितोपदेश से—
श्लोक—आकारैरिंगितैर्गत्या, चेष्टया भाषणेन च।
नेत्रवक्त्र विकारेण, लक्ष्यतेऽन्तर्गतंमन ॥
अर्थात् आकार से, इशारे से, गति से, चेष्टा से और भाषण से तथा नेत्र और मुख के विकार से मन के भीतरी भाव जाने जाते है।

२. बररे बालक एक सुभाऊ। इनहिं न सत विदूषहिं काऊ—राम रसायन रामायण से—
दोहा—मूढ मत्त शिशु तिय दुखी, पाँचहु एक समान।
इनके वचन सरोष सुनि, रोष न करै सुजान ॥
सवैया—बाल बदी करै बादि सदा पितु मातु तऊ भरै गोदिन्ह माही।
कूर कसूर करै पशु भूरि तजै तऊ पालक पालिबो नाही ॥
हे भृगुनाथ निहारेहि नाथ अबोध है बाल कहै केहि पाही।
ये जडतावश मोह पर्यो तुम याहि बराबर होहु वृथाही ॥

३. तेहि नाही कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा—राम रसायन रामायण से—
दोहा—लषन छुओ नहिं चाप को, सत्य कही भृगुनाथ।
हौं अपराधी रावरो, यह तुव कर मम माथ ॥

मै वही उपाय करूँगा ।

कह मुनि राम जाइ रिस कैसे । अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे[1] ॥
इहि के कंठ कुठार न दीन्हा । तौ मैं काह कोप करि कीन्हा ॥

शब्दार्थ—अनैसे = कुदृष्टि से ।

अर्थ—परशुराम कहने लगे, हे राम ! मेरा क्रोध कैसे मिटे ? तुम्हारा छोटा भाई तो अभी तक बुरी दृष्टि से देख रहा है । इसके गले पर फरसा न मारो तो मैंने क्रोध कर क्या दिखाया (अर्थात जब तक इसे मार नही डालता तब तक मेरा क्रोध ही वृथा है) ।

दोहा—गर्भ स्रवहि अवनिपरमनि, सुनि कुठारगति घोर ।
परशु अछत देखउँ जियत, बैरी भूपकिशोर ॥२७९॥

अर्थ—मेरे फरसे का भयकर शब्द सुनकर राजाओ की स्त्रियो के गर्भ गिर जाते है उसी फरसे के होते हुए भी मैं अपने बैरी इस राजकुमार को जीता देख रहा हूँ ।

बहै न हाथ दहै रिस छाती । भा कुठार कुठित नृपघातो[2] ॥
भयेउ बाम विधि फिरेउ सुभाऊ[3] । मोरे हृदय कृपा कस काऊ ॥

अर्थ—हाथ नही उठता, क्रोध से जी जला जाता है, राजाओ का घातक यह फरसा भी निरर्थक हो रहा है । विधाता ही विपरीत हो गया तब तो मेरा स्वभाव पलट गया, भला, मेरे हृदय मे किसी के ऊपर दया काहे की ।

आज दैव दुख दुसह सहावा । सुनि सौमित्र विहँसि शिर नावा ॥
बाउकृपा मूरति अनुकूला । बोलत वचन झरत जनु फूला ॥
जो पै कृपा जरहि मुनि गाता । क्रोध भये तनु राखु विधाता[4] ॥

---

१ कह मुनि राम जाइ रिस कैसे--वृन्द सतसई से—

दोहा—रोष मिटत कैसे कहत, रिस उपजावन बात ।
ईंधन डारत आग मे, कैसे आग बुझात ॥

२ बहै न हाथ दहै रिस छाती । भा कुठार कुठित नृपघाती—कुडलिया रामायण से—

कुण्डलिया—रे कुठार कुठित भयो गयो, स्वभाव सक्रोध ।
अरि प्रचण्ड दहि अवनि नृप, कीन्हो हृदय प्रबोध ॥
कीन्हो हृदय प्रबोध, अछत अरि देखत ठाढे ।
उत्तर सुनत सरोष, मोर हृदि ज्वालन बाढे ॥
ज्वालन बाढे जरत उर, घोर धार को लै गयो ।
काटि काटि कंठनि कुतरु, रे कुठार कुँठित भयो ॥

३ भयेउ बाम विधि फिरेउ सुभाऊ— जसवन्त जसो भूषण से—

छप्पय—सुर समूह को सुधा विष्णु को रमा मनोहर ।
शकर को शशिकला शक्र को कल्पतरोवर ॥
मेदिनि को मर्याद हिमालय सुत को सरनो ।
दिय यह आशा यह जु करहि दुख मे उद्धरनो ॥
वारिधि अगस्त अचयो जबै किनहु न करी सहाय भल ।
एकहु दैव कोपत जबै ह्वै अनेक साधन विफल ॥

४. जो पै कृपा जरहि मुनि गाता । क्रोध भये तनु राखु विधाता—

→

शब्दार्थ—बाउ (शुद्ध रूप वायु) = हवा।

अर्थ— आज विधाता ने बडा भारी दु ख सहाया, सुनते ही लक्ष्मण ने सिर नवाया। आपके शरीर ही के अनुसार आपकी कृपा की वायु है (अर्थात् जैसा आपका शरीर विष का पात्र है वैसी ही आपकी कृपा भी विष-भरी है जो आप वचन बोल रहे है सो मानो फूल ही से भर रहे है (भाव यह कि आप बाते बोल रहे है सो मानो विष उगल रहे है)। हे मुनिजी ! यदि कृपा करने से ही आपका शरीर जला जाता है तो जब आप क्रोध करेगे तो दैव ही है जो आपके शरीर की रक्षा करे (अर्थात् क्रोधित होने पर कही शरीर न छूट जाय)।

देखु जनक हठि बालक येहू। कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू ॥
बेगि करहु किन आँखिन ओटा। देखत छोट खोट नृपढोटा ॥
विहँसे लषन कहा मुनि पाही। मूँदहु नयन कतहुँ कोउ नाही[1] ॥

अर्थ—हे जनक, देखो ! यह बालक मूर्ख है जो जान-बूझकर यमपुरी मे अपना घर बनाना चाहता है (अर्थात् मरना चाहता है)। यह देखने मे छोटा परन्तु बडा खोटा राज-कुमार है। इसे मेरी आँखो की ओट जल्दी से क्यो नही कर देते। (यह सुन) लक्ष्मणजी हँसे और परशुराम से बोले कि आप आँखें बद कर लें तो फिर कोई भी कही न दीख पडेगा।

दोहा—परशुराम तब राम प्रति, बोले वचन सक्रोध।
शंभुशरासन तोरि शठ, करसि हमार प्रबोध ॥२८०॥

अर्थ—तब परशुराम रामचन्द्रजी से क्रोध भरे वचन कहने लगे कि रे मूर्ख ! तू महादेवजी के धनुष को तोडकर हमे समझाना चाहता है।

बधु कहै कटु संमत तोरे। तू छल विनय करसि कर जोरे ॥
करु परितोष मोर संग्रामा। नाहि त छाँड कहाउब रामा[2] ॥

अर्थ—तेरी ही सलाह से तेरा भाई कठोर वचन कह रहा है और तू कपट से हाथ जोडकर विनती कर रहा है। मुझसे युद्ध करके मेरा सतोष कर नही तो अपने को राम कहल-वाना छोड दे (भाव यह कि यथार्थ मे राम तो मेरा नाम है तू नया राम कहाँ से कूद पडा)।

छल तजि करहु समर शिवद्रोही। बंधु सहित नतु मारौ तोही[3] ॥

दोहा—काम समान कुव्याधि नही, रिपु अज्ञान समान।
क्रोध तुल्य पावक नही, ज्ञान परम सुखमान ॥

१ मूँदहु नयन कतहुँ कोउ नाही—सहजो बाई कृत सहज प्रकाश मे—नयन मूँदकर बैठने से ससार की सम्पूर्ण वस्तुओ को मानो अपने सामने से हटाकर चित्त शुद्ध करना है—

दोहा—सहजो गुरु प्रसन्न हो, मूँदि लिए दोउ नैन।
फिर मोसो ऐसे कही, समझ लेहु यह सैन ॥

२. करु परितोष मोर सग्रामा। नाहि त छाँड कहाउव रामा ॥ हृदयराम कवि कृत हनुमन्नाटक से—

क० . जीवत न दैहौ जान आन महा रुद्र जू की करोगो निदान सुन्यो गयो जोऊ अब ही।
ऋषि के सपूत पुरहूत हू को बोझ धरे काशीराम बार बार बोलत गरब ही ॥
आँख तरे आनत न और भट जानत न मानत उछर उछर आवै अब ही।
भयो दावेदार तो सँभार मोसो रार राम नातर हथ्यार भूमि माँझ डार अब ही ॥

३. बंधु सहित नतु मारौं तोही—

→

भृगुपति बकहि कुठार उठाये। मन मुसकाहि राम शिर नाये॥

अर्थ—रे शिवजी के वैरी! कपट को छोड युद्ध कर नही तो मै तुझे भाई समेत मारे डालता हूँ। परशुरामजी फरसा को उठाये हुए अनाप-शनाप कह रहे थे और रामचन्द्रजी मन मे मुसकराते हुए सिर नीचा किये सुन रहे थे। (भाव यह कि इतने समय तक लक्ष्मण, रामचन्द्रजी, विश्वामित्र और जनक से परशुरामजी बातचीत करते रहे और कई स्थानो मे अवतार सूचक सूचना भी हुई, धनुष भग भी देखा परन्तु यह न जाना कि अवतार हो गया)।

गुनहु लषन कर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहु ते बड दोषू॥
टेढ जानि शंका सब काहू[1]। वक्र चन्द्रमहि ग्रसै न राहू[2]॥

अर्थ—(रामचन्द्रजी मन ही मन कह रहे थे) चिढाने की करतूति तो लक्ष्मण की है और हम पर क्रोध किया जाता है, कही-कही सीधेपन मे भी दोष लगाया जाना है। (देखे) टेढा जानकर तो सब डरते है, जैसे टेढे चन्द्रमा को राहु ग्रहण नही लगाता, जब चद्रमा सीधा अर्थात् पूरा हो जाता है (तब उसे ग्रहण लगता है)।

राम कहेउ रिस तजिय मुनीसा। कर कुठार आगे यह सीसा[3]॥
जेहिरिस जाइ करिय सोइ स्वामी। मोहि जानि आपन अनुगामी॥

सवैया—एक तो चूक यही धनु तोरेउ कोप की आगि बुझै न बरे से।
दूजइ आनि अतंक कियो मृग जात कहाँ मृगराज अरे से॥
तीजइ बैन कटाक्ष कहे बचिहौ नहिं कोटि उपाय करे से।
आज दुहू रघुवशिन के भुज काटौ कुठार की धार तरे से॥

१ टेढ जानि शका सब काहू—बिहारी की सतसई से—

दोहा—बसै बुराई जासु तन, ताही को सनमान।
भलो भलो कहि छोडिये, खोटे ग्रह जपदान॥

२ वक्र चन्द्रमहि ग्रसै न राहू—विप्रचित्त को सिंहिका नामकी पत्नी से जो सन्तान हुए, उनमे एक राहु है। इसका तामसरूपी मडल सूर्य मडल के ऊपर और चन्द्र मडल के नीचे इस मन्वतर मे विद्यमान है। इसका काला रथ आठ घोडो से खीचा जाता है और इसकी गति सूर्यमंडल से चन्द्र मडल तक और चन्द्र मडल से सूर्य मण्डल तक हुआ करती है। इस ग्रह के ऊर्ध्व भाग केतु के रथ मे भी आठ लक्खी घोडे जुते रहते है। इसकी कथा यो है कि राहु नाम का एक दैत्य था जिसका मस्तक और अधोभाग अजगर के थे इसका स्वरूप चतुर्भुजी था। समुद्र मथन से जो चौदह रत्न निकले थे उनमे से अमृत के लिए देव और दानव झगडा करने लगे। विष्णुजी ने चतुर्भुजी मोहिनी रूप धारण कर दैत्यो की पक्ति मे मदिरा और देव पक्ति मे अमृत बाँटना आरभ कर दिया। राहु देवता का रूप धारण कर देव पक्ति मे बैठ अमृत पान कर गया। इतने मे सूर्य और चन्द्र के द्वारा सूचित होने पर विष्णुजी ने उसके सिर से धड को अलग करके चतुर्भुज से द्विबाहु कर दिया। अमृत के प्रभाव से वह मरा नही। निदान दोनो टुकडे राहु और केतु के नाम से ग्रह बना दिये गये। परन्तु ये आकाश मे भ्रमण करते हुए सूर्य और चन्द्र से समय-समय पर ग्रहण लगाकर अपना बैर भँजाते रहते है (देखे विष्णु पुराण)।
स्मरण रहे कि जब चन्द्र-ग्रहण पडता है तब वह चन्द्रमा के पूर्ण होने ही पर पडता है और यह सब कथा चन्द्र और सूर्य ग्रहण का रूपक है।

३. राम कहेउ रिस तजिय मुनीसा। कर कुठार आगे यह सीसा 'इत्यादि—श्री हृदयराम कविकृत हनुमन्नाटक से—

→

अर्थ—रामचन्द्रजी कहने लगे कि हे मुनिजी ! क्रोध को छोड दीजिये। वैसे तो आपके हाथ मे फरसा है और यह मेरा सिर आपके आगे है। हे प्रभु ! मुझे अपना सेवक जानिये और जिस प्रकार से आपका क्रोध मिटे, सो कीजिये।

दोहा—प्रभुहि सेवकहि समर कस, तजहु विप्रवर रोष।
वेष विलोकत कहेसि कछु, बालकहू नहि दोष ॥२८१॥

अर्थ—स्वामी और सेवक का सग्राम कैसा ? हे श्रेष्ठ विप्र ! क्रोध को त्यागिये, आप का (विचित्र) रूप देखकर जो कुछ कहा उसमे इस बालक का भी कुछ अपराध नही।

देखि कुठार बान धनु धारी। भइ लरिकहि रिस वीर विचारी ॥
नाम जान पै तुमहि न चीन्हा। वंशसुभाव उतर तेइ दीन्हा ॥

अर्थ—फरसा और धनुष बाण धारण किये देख आपको वीर समझ लडके को भी क्रोध आ गया। आपका नाम सुनकर भी उसने आपको पहचाना नही और रघुकुल मे उत्पन्न होने के कारण से उसने आपको उत्तर दिये।

जो तुम अवतेहु मुनि की नाईं। पदरज शिर शिशु धरत गोसाईं ॥
क्षमहु चूक अनजानत केरी। चहिय विप्रउर कृपा घनेरी ॥

अर्थ—जो आप (केवल) मुनि ही की नाईं आते, तो हे स्वामी ! यह बालक आपके चरणो की रज को सिर पर धारण कर लेता। अज्ञानी की भूल क्षमा कीजिये, ब्राह्मण के हृदय मे तो बहुत सी दया चाहिए।

हमहि तुमहिं सरबर कस नाथा। कहहु तो कहाँ चरण कहँ माथा ॥
राम मात्र लघु नाम हमारा। परशुसहित बड नाम तुम्हारा ॥

अर्थ—हे स्वामी ! तुम्हारी हमारी बराबरी कैसे हो सकती है ? कहिये तो कहाँ सिर और कहाँ पैर ? (भाव यह कि कहाँ तो आप ब्राह्मणरूपी स्वामी और कहाँ मै क्षत्रीयरूपी आपका सेवक)। हमारा केवल 'राम' ऐसा छोटा नाम है और आपका तो 'परशु' के साथ मिलकर बडा नाम 'परशुराम' है।

देव एकगुण धनुष हमारे। नवगुण परम पुनीत तुम्हारे[1] ॥
सब प्रकार हम तुम सन हारे। क्षमहु विप्र अपराध हमारे ॥

अर्थ—हे ब्राह्मण देवता ! हमारे पास तो एक ही गुण धनुष विद्या का है (सो भी हिंसक होने से पवित्र नही) और आप परम पवित्र नौगुणो से परिपूर्ण है। हम सभी तरह आपसे हार मानते है। हे विप्र ! हमारे अपराधो को क्षमा कीजिये।

दोहा—बार-बार मुनि विप्रवर, कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष होइ, तुहूँ बन्धुसम वाम ॥२८२॥

क० मैं न जान्यो तेरो बल तैसो ताको लाग्यो फल कठिन कुठार धार कठ पर धरिये।
इत पर कछू बात आवै तात हाथ कीजै सोई भावती पै रोष को न करिये ॥
ऐसो कछू कुल को सुभाव है हमारे राम मारे मार खैये पै न मारिये जो मरिये।
वरी सरनाथ और सुनो मुनिराय गाय ब्राह्मण से, लरिये तो पाँय का के परिये ॥

१. देव एक गुण धनुष हमारे। नव गुण परम पुनीत तुम्हारे —राम रहस्य से—
सवैया—अनजान को अपराध क्षमौ द्विज होइ दया उर मे बहुतेरी।
हममे तुममें बड बीच मुनी लखिये जिमि मस्तक पाँउन केरी ॥ →

अर्थ—रामचन्द्रजी ने परशुरामजी से बारबार 'मुनि', 'विप्र वर' कहा तब तो परशुराम जी क्रोधित होकर कहने लगे कि तू भी अपने भाई के समान खोटा है ।

निपटहि द्विज कर जानहि मोही[1] । मै जस विप्र सुनावउँ तोही ॥
चाप श्रुवा शर आहुति जानू । कोप मोर अतिघोर कृशानू ॥

शब्दार्थ—श्रुवा=अग्नि मे आहुति देने का पात्र ।

अर्थ—तू मुझको निरा ब्राह्मण ही समझ रहा है, मै जैसा ब्राह्मण हूँ सो तुझे सुनाये देता हूँ । मेरे धनुष को श्रुवा, बाण को आहुति समझ और मेरा क्रोध ही भारी भयकर अग्नि है ।

समधि सेन चतुरंग सुहाई । महामहीप भये पशु आई ॥
मैं इहि परशु काटि बल दीन्हे । समरयज्ञ जग कोटिक कीन्हे ॥

शब्दार्थ -समधि=यज्ञ की लडकी ।

अर्थ—चतुरगिनी सेना समिधा और बडे-बडे राजा ही आकर बलि के पशु हुए । मैंने इस फरसा से काटकर मानो बलिदान किये । इस प्रकार के यज्ञ मैंने ससार मे करोडो कर डाले (अर्थात् जिस प्रकार यज्ञ मे समिधा से अग्नि को प्रदीप्त कर उसमे श्रुवा से घी, जौ आदि की आहुति देते है और अश्व आदि पशुओ का बलिदान करते है उसी प्रकार मैंने धनुष-बाण तथा फरसा से करोडो राजाओ को सेना समेत सग्राम मे मार गिराया) ।

मोर प्रभाव विदित नहि तोरे । बोलसि निदरि विप्र के भोरे ॥
भंजेउ चाप दाप बड़ बाढा । अहमिति मनहुँ जीति जग ठाढ़ा ॥

"द्विज दत्त" सुविप्रन के गुण नौ हम पै इक चातुरता धनु हेरी ।
सब भाँति से हारि गये तुम से अपराध क्षमौ विनती यह मेरी ॥

ब्राह्मणो के नव गुण ये है—

ऋजुस्तपस्वी संतोषी क्षम्यतृष्णो जितेन्द्रियः ।
दातादाता दयालुश्च ब्राह्मणो नवभिर्गुणैः ॥

अर्थात् सरल स्वभाव वाला, तपस्वी, सन्तोषी, क्षमावान्, तृष्णात्यागी इन्द्रियजित, दाता, गृहीता और दयावान् ब्राह्मण इन नौ गुणो से युक्त होता है ।

१. निपटहि द्विज कर जानहि मोही—द्विज (द्वि=दो बार+जन्=पैदा होना)=दो बार जन्मा हुआ अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य । ये तीनो द्विज कहलाते है । जैसा स्मृति मे लिखा है कि "जन्मना जायते शूद्र, सस्कारैर्द्विज उच्यते" अर्थात् जन्म से शूद्र की नाईं पैदा होता है परन्तु यज्ञोपवीत आदि सस्कारो से द्विज कहलाता है । ये द्विज शब्द का साधारण अर्थ हुआ ।

"निपटहि द्विजकर जानहि मोही" यहाँ पर निपटहि द्विज से साधारण ब्राह्मण सूचित होता है और साधारण के ये लक्षण हैं—

श्लोक—एकाहारेण सन्तुष्ट षट् कर्मनिरतःसदा ।
ऋतुकालाभिगामी च सविप्रो द्विज उच्यते ॥

अर्थात् एक ही बार के भोजन से सन्तुष्ट रहकर पढना-पढाना, यज्ञ करना-कराना, दान देना और लेना । इन छ कर्मों मे सदा रत हो और ऋतुकाल मे स्त्री का सग करे तो ऐसे ब्राह्मण को द्विज कहते है ।

परशुरामजी अपने को इन्ही ऊपर कहे हुए गुणो की चाप श्रुवा आदि रूपक से क्षत्री कर्म कर्त्ता द्विज सूचित करते है ।

अर्थ—तू मेरा प्रभाव जानता नही है इसी से विप्र के धोखे मे मेरा अपमान करता है। धनुष के तोडने मे बडा अहकार आ गया कि 'हम ही' है जो मानो ससार को जीतकर खडे है।

राम कहा मुनि कहहु विचारी। रिस अति बडि लघु चूक हमारी ॥
छुवतहि टूट पिनाक पुराना। मै केहि हेतु करउँ अभिमाना ॥

अर्थ—रामचन्द्रजी बोले, हे मुनिजी, विचार कर कहिये! आपका क्रोध बहुत ही भारी और हमारा अपराध बहुत थोडा है। धनुष पुराना था, छूते ही टूट गया, भला फिर मैं किस कारण से अभिमान करूँगा ?

दोहा—जो हम निदरहि विप्र बदि,[१] सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभट जेहि, भयवश नावहि माथ ॥२८३॥

अर्थ—हे भृगुश्रेष्ठ जी, सत्य-सत्य सुनिये! यदि हम ब्राह्मण मानकर आपकी निन्दा करें तो ससार मे ऐसा कौन बडा योधा है जिसके सामने हम डर से सिर झुकावें (भाव यह कि ब्राह्मण ही मानकर आपको शिर झुका रहे है, यदि आपके अस्त्र-शस्त्र धारण करने से आपको क्षत्री योधा मानते तो निधडक लडते)।

देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना ॥
जो रण हमहि प्रचारइ कोऊ। लरहि सुखेन काल किन होऊ ॥

अर्थ—देवता, राक्षस, राजा और अनेक योद्धा बराबरी के हो या अधिक बलवान् हो यदि हमको लडने के लिए उत्तेजित करे तो काल ही क्यो न आ जाये उससे भी आनन्दपूर्वक लडेंगे।

क्षत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंक तेहि पामर जाना[२] ॥
कहौ सुभाव न कुलहि प्रशंसी। कालहु डरहिं न रण रघुवसी ॥

अर्थ—जो क्षत्री का शरीर पाकर सग्राम से डरता है उस नीच को अपने वश मे कलक लगाने वाला समझो। मैं अपना स्वभाव कहता हूँ, कुछ वश की बडाई नही करता, रघुवशी तो सग्राम मे यम से भी न डरेंगे।

विप्रवंश की अस प्रभुताई। अभय होइ जो तुमहि डराई ॥

---

१. जो हम निदरहिं विप्र बदि—
श्लोक—नाऽह विशके सुरराजवज्रात् त्र्यक्षस्य शूलान्न यमस्यदडात्।
नाग्ने र्न सोमाद्वरुणस्य पाशाच्छके भृश ब्रह्मकुलावमानात् ॥
अर्थात् मैं न तो इन्द्र के वज्र से, न शिवजी के त्रिशूल से और न यमराज के दण्ड से न अग्नि से, न चन्द्र से और न वरुण के जाल से इतना डरता हूँ जितना अधिक मैं ब्राह्मणो के अपमान से डरता हूँ।

२ क्षत्रिय तनु क्षरि समर सकाना। कुल कलक तेहि पामर जाना—श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय मे कहा है—
श्लोक—स्वधर्ममपिचावेक्ष्य न विकपितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्योऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥३१॥
अर्थ—(श्रीकृष्णजी बोले कि हे अर्जुन) अपना धर्म (अर्थात् क्षत्रिय धर्म) का विचार कर तुम्हे भयभीत नही होना चाहिए। क्योकि क्षत्रियो को धर्मयुद्ध से बढ़कर और कोई दूसरा धर्म नही है।

अर्थ—ब्राह्मण के कुल का ऐसा प्रभाव है कि जो आपसे डरता रहे वही अभय हो (अर्थात् आपके आशीर्वाद, कृपा आदि से उसे किसी का डर नही रहता, यह भाव साधारण लोगो की समझ मे आया)।

दूसरा अर्थ—विप्र वश की ऐसी महिमा है कि जो 'अभय होइ' अर्थात् जिसे किसी का डर न हो। जैसे मैं परमेश्वर जो कभी किसी से नही डरता सो भी आपसे डर रहा हूँ। इसमे यह मूढता है कि परमेश्वर का अवतार क्षत्रीवश मे जो हुआ है सो मै ही हूँ।

तीसरा अर्थ—रामचन्द्रजी अपने हाथ से अपनी छाती पर की भृगुलता का सकेत करते हुए यह जताते है कि 'ब्राह्मण के वश का ऐसा माहात्म्य है' कि जो विष्णु स्वरूपी मै तुम्हारे पुरुषा भृगुजी से डरा और उनके चरणचिह्न को अभी तक हृदय पर धारण किये हूँ उससे मै निधडक हो गया। इसी आशय को विजय दोहावली मे यो पुष्ट किया है—

दोहा— राम कहा भृगुनाथ सो, कह अस नायो माथ।
अभय होय तुमको डरै, 'धरे चरण पर हाथ'॥

सुनि मृदुवचन गूढ़ रघुपति के। उघरे पटल परशुधरमति के॥
राम रमापति कर धनु लेहू। खैचहु मोर मिटै सन्देहू॥
देत चाप आपहि चढि गयऊ[१]। परशुराम मन विस्मय भयऊ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी के नम्र और गूढ वचनो को सुनकर परशुरामजी की बुद्धि के नेत्रो के पलक खुल गये (अर्थात् परशुरामजी को ज्ञान हुआ कि ये विष्णु का अवतार सूचित करते है परन्तु अब फिर से क्रिया द्वारा जाँच करना चाहते है क्योकि एक बार तो धनुष तोडने से क्रिया द्वारा जाँच हो ही चुकी थी तथापि) हे राम! इस लक्ष्मीपति विष्णुजी के धनुष को अपने हाथ मे लो और खीचो कि जिससे मेरा सन्देह दूर हो। परशुरामजी ने धनुष को देना चाहा कि उसका रोदा आप ही से तन गया (अर्थात् धनुष-बाण चलाने के योग्य हो गया) तब तो परशुरामजी के मन मे बडा आश्चर्य हुआ।

सूचना—परशुरामजी को जिस बात पर से विस्मय हुआ वह यह है कि शिवजी ने कहा था कि जो कोई तुम्हारे इस धनुष को चढावेगा, उसी को अवतार समझना सो धनुष तो आप ही से बिना चढाये चढ गया। इस हेतु रामचन्द्रजी पूर्ण अवतारी है। कथा यो है कि—
(राम रत्नाकर रामायण से)—

सुरन्ह बुलाय विश्वकर्मा को। युग धनु रचन कह्यो सब ता को॥
अजगव महिष शृङ्ग बहु जोरी। पवि पषान कीन्हे इक ठोरी॥
अपर कठोर पदारथ लाये। बहु श्रम कर युग चाप बनाये॥
शिव को दियो एक धनु जैमे। दूजो दियो विष्णु कहुँ तैसे॥
हरि निज चाप भृगुपतिहि दीन्हा। शिव कैलास पास घर लीन्हा॥
विष्णु कह्यो भृगुपति समझाई। जो यह मम कह लेइ चढाई॥

---

१. देत चाप आपहि चढि गयऊ—इस पाठ का प्रमाण रसिक बिहारी जी यो लिखते है कि

पुनि भृगुवर विचार उर कीन्हा। निजकर धनु रघुनार्थाहि दीन्हा॥
नृपसुन छुअत सगुन भो चापा। लखो राम तब रामप्रतापा॥

भाव यह है कि जब परशुरामजी अपना धनुष श्री रामचन्द्रजी को देने लगे तो वह चाप 'नृपसुत' अर्थात् श्री रामचन्द्रजी को छूते ही 'सगुन भो' अर्थात् रोदा सहित सज्जित हो गया तब 'राम' अर्थात् परशुराम ने 'राम प्रताप' अर्थात् श्री रामजी का प्रताप जान लिया—'आपहि चढि गयऊ' का पाठान्तर 'आपहि चलि गयऊ' भी है अर्थात् धनुष उचट-कर आप ही से श्री रामचन्द्रजी के हाथ मे चला गया।

दोहा—तब जानो अवतार मम, भयो भूमि बिच आन ।
कह्यो अस देवन सहित निज, भवन गये भगवान ।।

दोहा—जाना रामप्रभाव तब, पुलकि प्रफुल्लित गात ।
जोरि पाणि बोले वचन, प्रेम न हृदय समात ।।२८४।।

अर्थ—तब वे रामचन्द्रजी की महिमा जान गये और उनका शरीर रोमाञ्चित हो गया। फिर हाथ जोडकर वचन तो कहते थे परन्तु प्रेम हृदय मे न समाता था।

जय रघुवश वनजवन भानू । गहनदनुज कुल दहन कृशानू ।।
जय सुर विप्र धेनु हितकारी । जय मद मोह कोह भ्रमहारी ।।

शब्दार्थ—वनज (वन=पानी+ज=पैदा होना)=पानी से जो पैदा हो अर्थात् कमल (योगरूढि)। गहन=वन। दनुज=राक्षस।

अर्थ—रघुवशरूपी कमलो के समूह को सूर्य के समान प्रफुल्लित करने वाले तथा जगल-रूपी राक्षसो को जलाने के हेतु अग्नि के समान आपकी जय हो। देवता, ब्राह्मण और गौ की रक्षा करने वाले आपकी जय हो। अभिमान, ममता क्रोध और सन्देहो को मिटाने वाले आपकी जय हो।

विनयशील करुणा गुण सागर । जयति वचनरचना अति नागर ।।
सेवक सुखद सुभग सब अंगा । जय शरीर छवि कोटि अनंगा ।।

अर्थ—नम्रता, सुचाल, दया और गुणो के समुद्र तथा वचनचातुरी मे अति प्रवीण आपकी जय हो। सेवको को सुख देने वाले, सब अग सुन्दर, करोडों कामदेव के समान शरीर की छवि वाले आपकी जय हो।

करौ काह मुख एक प्रशंसा[1] । जय महेश मनमानस हंसा ।।
अनुचित वचन कहेउँ अज्ञाता । क्षमहु क्षमामदिर दोउ भ्राता[2] ।।

अर्थ—मै एक मुख से आपकी क्या बडाई करूँ, महादेवजी के मन रूपी मानसरोवर मे हस के समान आपकी जय हो। मैने बिना समझे अयोग्य वचन कहे सो हे क्षमाशील दोनो भाइयो! मुझे क्षमा कीजिये।

---

१. करौ काह मुख एक प्रशसा—काव्य निर्णय से—

क०—सागर सरित सर जहँ लो जलासै जग सब मे जो केहूँ किन्न कज्जल रलावई।
अवनि अकाश भरि कागज गँजाइ लै कमल कुश मेरु सिर बैठक बनावई।।
'दास' दिन रैन कोटि कलप लो शारदा सहस कर ह्वै जो लिखिवे ही चित लावई।
होइ हद काजर कलम कागजन की गुपाल गुण गण को तऊ न हद पावई।।

२ अनुचित वचन कहेऊँ अज्ञाता। क्षमहु क्षमा मन्दिर दोउ भ्राता—हनुमन्नाटक भाषा (श्रीरामाजी चतुरदास कृत)—

छप्पय—अहो रामगुणग्राम धर्म ध्रुव धाम धुरधर।
दिनमणि कुल कल कलश प्रचुर पुहमीश पुरदर।।
जो न आप अवतार अमल निरमल महि होतो।
तौ अवलम्बन अवनिअवनि अधिपन नहिं हो तो।।
त्रैलोक्य तापत्राशक तरल निजनर मुदमगल करण।
अपराध ओघ क्षमियो विभो सकल लोक अशरण शरण।।

कहि जय जय जय रघुकुल केतू। भृगुपति गये बनहि तप हेतू॥
अपभय कुटिल महीप डराने। जहँ तहँ कायर गवहि पराने॥

अर्थ—हे रघकुल शिरोमणि! आपकी जय होय, जय हो, जय हो! ऐसा कहकर भृगुकुल श्रेष्ठ (परशुरामजी) बन मे तपस्या करने को चले गये। दुष्ट राजा अपनी की हुई करतूति ही के डर से काँप उठे, वे कायर मौका पाते ही जहाँ तहाँ भागने लगे।

दोहा—देवन दीन्ही दुदुभी, प्रभु पर वर्षहि फूल।
हर्षे पुर नर नारि सब, मिटा मोह भय शूल॥२८५॥

अर्थ—देवताओ ने नगाडे बजाये और वे रामचन्द्रजी पर फूल बरसाने लगे, नगर के सब स्त्री-पुरुष आनदित हुए। उनका अज्ञान, डर और दु ख दूर हो गया।

(ब्याह की तैयारी)

अति गहगहे बाजने बाजे। सबहि मनोहर मगल साजे॥
यूथ यूथ मिलि सुमुखि सुनयनी। करहि गान कल कोकिल बयनी[1]॥

अर्थ—नगर मे बडे घनघोर बाजे बजने लगे और सब लोगो ने सुहावने मगल कार्य आरभ किये। सुन्दर मुख वाली, सुन्दर नेत्र वाली तथा कोकिला के समान शब्द वाली स्त्रियाँ एकत्र होकर सुन्दर गीत गाने लगी।

सुख विदेह कर बरनि न जाई। जन्म दरिद्र मनहुँ निधि पाई॥
विगत त्रास भइ सीय सुखारी। जनु विधु उदय चकोरकुमारी[2]॥

अर्थ—जनकजी का आनद तो कहते नही बनता था मानो जन्म के कगाल ने बहुत-सा द्रव्य पा लिया हो। डर के मिट जाने से सीताजी भी ऐसी प्रसन्न हुईं मानो चन्द्रमा के उदय होने से छोटी चकोरी आनदित हुई हो।

जनक कीन्ह कौशिकहि पणामा। प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा॥
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाई। अब जो उचित सो कहिय गोसाई॥

अर्थ—जनकजी ने (जाकर) विश्वामित्रजी को प्रणाम किया (और कहा कि) आप ही के आशीर्वाद से रामचन्द्रजी ने धनुष तोड डाला है। दोनो भाइयो ने मुझे कृतार्थ कर दिया। हे स्वामी! अब जो कुछ करना उचित हो सो कहिये।

कह मुनि सुनु नरनाथ प्रवीना। रहा विवाह चाप आधीना॥

---

१. करहिं गान कल कोकिल बयनी—पद रामायण से—
राग झँझोटी—अद्भुत रूप सिया रघुवर को।
निरखि सखी नैननि भरि नीके को त्रिभुवन इनकी सरबर को॥
राजिव नैन कमलदल लोचन नृप दशरथसुत अवध नगर को।
इनके चरण कमल कोमल पर मन मधुकर हो रहो जिन पर को॥
इनके नाम नेक सुमिरे ते सशय मिटत सकल जम घर को।
लाहारामगुलाम राम को पटो लिखायो प्रभु के कर को॥

२. जनु विधु उदय चकोरकुमारी—बिहारी की सतसई मे चन्द्र पर चकोरी की चाह की पराकाष्ठा यो कही गई है—
दोहा—लगति किरण शीतल सुभग, निशि दिन सुख अवगाह।
मोह शशी भ्रम सूर त्यो, रहति चकोरी चाह॥

टूटत ही धनु भयेउ विवाहू । सुर नर नाग विदित सब काहू ।।

अर्थ—मुनिजी बोले, हे चतुर राजन् ! सुनिये, विवाह का होना तो धनुष के टूटने पर ही अवलबित था । सो धनुष के टूटते ही विवाह तो हो चुका, इसे देवता, मनुष्य और नागलोक, वासी भी जानते है ।

दोहा—तदपि जाइ तुम करहु अब, यथा वंश व्यवहार ।
बूझि विप्र कुल वृद्ध गुरु, वेद विदित आचार ।।२८६।।

अर्थ—तो भी अब तुम जाकर वेद मे कही हुई रीति के अनुसार कुलाचारो को ब्राह्मणो से, वश के जेठो से तथा कुलगुरु से पूछ कर करो ।

दूत अवधपुर पठवहु जाई । आनहि नृप दशरथहि बुलाई[1] ।।
मुदित राउ कहि भलेहि कृपाला । पठये दूत बोलि तेहि काला[2] ।।

अर्थ—दूतो को अयोध्यापुरी भेजो कि वे लोग जाकर दशरथजी को बुला लावें । राजाजी ने प्रसन्न होकर कहा, बहुत अच्छा महाराज ! और उसी समय दूतो को बुलाकर भेज दिया ।

बहुरि महाजन सकल बुलाये । आइ सबन्हि सादर शिर नाये ।।
हाट बाट मदिर सुरबासा । नगर सँवारहु चारिहु पासा ।।

अर्थ—फिर सब भले आदमियो को बुलवाया उन लोगो ने आकर आदरपूर्वक सिर नवाया । (राजाजी ने कहा कि तुम लोग) बाजारो, रास्ताओ, महलो, देवस्थानो और नगर भर को चारो ओर से सजाओ ।

---

१ दूत अवधपुर पठवहु जाई । आनहिं नृप दशरथहि बुलाई— हृदयराम कवि-कृत हनुमन्नाटक से—

क० राज ऋषि बात कही भली पति रही राजा राजा दशरथ जू को बेगही बुलाइये ।
कुटुम्ब समेत और बालक लै सग दोऊ नैनन सो पूतन को व्याह दिखराइये ।।
मानी सोई करी दूत बोल्यो तेहिघरी विदा कीन्हो कह्यो पौन सग रैन दिन धाइये ।
सीरी भई छाती पाई भागन की थाती राम पाती लिख पठई बराती ह्वै कै आइये ।।

२ पठये दूत बोलि तेहि काला — रामस्वयबर से—

चौबोला—करि प्रणाम धावत सुख छावन कटि फेटो खत कीन्हे ।
चचल चले चटक बाजी चढ़ि अवध पथ गहि लीन्हे ।।
यहि विधि देखत कहत चार ते जान तुरग धवाये ।
दिवस द्वैक महँ चले दिवस निशि कौशलपुर नियराये ।।
राजमहल की डगर बताओ पूछत पथिकन काही ।
निमिकुल नाथ निशान निहारत पथिक खडे हुइ जाही ।।
दशरथ द्वारपाल देखे तिन छरी विदेह निशानी ।
सादर कुशल पूछि मिथिला की बैठाये सन्मानी ।।
तुरत जाय अवधेश सभा महँ ऐसे वचन सुनाये ।
धावन चारि पत्र लै आये श्री मिथिलेश पठाये ।'
सुनि मिथिलेशपत्र की आवनि लहि नृप मोद महाई ।
कह्यो द्वारपालहि विदेह के ल्यावहु दूत लिवाई ।

हर्षि चले निज निज गृह आये । पुनि परिचारक बोलि पठाये ।।
रचहु विचित्र बितान बनाई । शिर धरि वचन चले सचुपाई ।।

अर्थ—वे लोग प्रसन्न होते हुए अपने-अपने घर आ गये फिर जनकजी ने टहलुओ को बुला भेजा । (और कहा कि) तुम लोग सम्हाल कर अनोखा मडप तैयार करो । इस आज्ञा को स्वीकार कर वे चुपचाप चले गये ।

पठये बोलि गुणी तिन नाना । जे वितान विधि कुशल सुजाना ।।
विधिहि वंदि तिन कीन्ह अरम्भा । बिरचे कनककदलि के खंभा ।।

अर्थ—उन्होने सब भाँति के कारीगरो को बुलाया जो मडप बनाने मे बडे चतुर थे । उन (कारीगरो) ने विधाता की वन्दना कर कार्य आरम्भ किया, सोने से केले के खभे बनाये ।

दोहा—हरितमणिन्ह के पत्र फल, पद्मराग के फूल ।
रचना देखि बिचित्र अति, मन बिरचि कर भूल ।।२८७।।

अर्थ—हरी मणियो के पत्ते और फल बनाये तथा लाल मणियो के फूल बनाये जिसकी विचित्र बनावट देखकर ब्रह्मा का मन भी धोखा खा सकता था ।

वेणु हरित मणिमय सब कीन्हे । सरल सपर्ण परहि नहि चीन्हे ।।
कनककलित अहिबेलि बनाई । लखि नहि परे सपर्ण सुहाई ।।

अर्थ—हरी मणियो से सब बाँस पत्तो समेत ऐसे बनाये गये थे कि पहिचाने नही जाते थे । सोने से शोभायमान नागबलि पानो सहित ऐसी बनाई थी कि असली और नकली का भेद न समझ पडता था ।

तेहि के रचि पचि बंध बनाये । बिच बिच मुकता दाम सुहाये ।।
माणिक मरकत कुलिश पिरोजा । चीरि कोरि पचि रचे सरोजा ।।

अर्थ—उसी बेल के सम्हाल कर पच्चीकारी से बँध बनाये और उनके बीच-बीच मे मोतियो की झालरे लगाई । फिर माणिक, नीलम, हीरा और पिरोजा इनको चीर कर, कोर कर और पच्चीकारी करके कमल बनाये ।

किये भृंग बहु रग विहगा । गुजहि कूजहि पवन प्रसगा[1] ।।
सुरप्रतिमा खभन गढि काढी । मगलद्रब्य लिये सब ठाढी ।।
चौके भाँति अनेक पुराई । सिधुरमणिमय सहज सुहाई ।।

अर्थ—बहुत से भौरे तथा रग-बिरगे पक्षी भी बनाये जो पवन के लगने से गुजारते और शब्द करते थे । देवताओ की मूर्त्तियाँ भी खभो मे गढकर बनाई गई थी जो मगलीक द्रव्यो को लिये खडी थी । फिर नाना प्रकार के सहज ही मे सुहावने गजमुक्तो से चौक पूरे गये थे ।

दोहा—सौरभपल्लव सुभग सुठि, किये नीलमणिकोरि ।
हेमबौर मरकत घवरि, लसत पाटमय डोरि ।।२८८।।

---

१ किये भृ ग बहु रग विहगा । गुजहि कूजहि पवन प्रसगा—प्राचीन समय के कला-कौशल्य की बलिहारी है जबकि ऐसे-ऐसे भौरे और पक्षी तैयार किये जाते थे कि जिनमे वायु का सचार होने से ऐसी स्वाभाविक बोलिया निकलती थी कि मानो भौरे गुजार रहे हो और पक्षी बोल रहे हो ।

अर्थ—नीलमणि को कोर कर आम के उत्तम सुहावने पत्ते बनाये जिससे सोने का बौर और हरी मणियो की अबियो के गुच्छे रेशम के धागो से लटकते हुए शोभा दे रहे थे ।

रचे रुचिर बर बदनवारे । मनहुँ मनोभव फंद सवाँरे ॥
मंगल कलश अनेक बनाये । ध्वजपताक पट चँवर सुहाये ॥

शब्दार्थ—मनोभव (मन = मन + भव = उत्पन्न होना) = मन से उत्पन्न होने वाला, कामदेव ।

अर्थ—सुन्दर सुहावने बन्दनवार बनाये मानो कामदेव ने अपना जाल फैलाया हो । बहुतेरे मगलसूचक कलश तैयार किये तथा ध्वजा, पताका, वस्त्र और चौर शोभायुक्त बनाये थे ।

दीप मनोहर मणिमय नाना । जाइ न बरनि बिचित्र बिताना ॥
जेहि मंडप दुलहिन वैदेही । सो बरनइ अस मति कवि केही[1] ॥

अर्थ—नाना भाँति के मनभावने मणियो के दीपक थे । वह मडप ऐसा अनूठा था कि उस का वर्णन नही किया जा सकता । जिस मडप मे सीताजी दुलहिन थी उस का वर्णन कर सके ऐसी बुद्धि किस कवि की है (किसी की नही) ।

दूलह राम रूपगुणसागर । सो वितान तिहुँ लोक उजागर ॥
जनक भवन की शोभा जैसी । गृह गृह प्रतिपुर देखिय तैसी[2] ॥

अर्थ—स्वरूप और सद्‌गुणो से परिपूर्ण रामचन्द्रजी जहाँ पर दूलह है वह मडप तीनो लोक मे प्रसिद्ध ही है । राजा जनक के महलो की जैसी सजावट थी वैसी ही शोभा (प्राय.) जनकपुर के प्रत्येक घर की दीख पडती थी ।

जेइ तिरहुत तेहि समय निहारी । तेहि लघु लगत भुवन दशचारी ॥
जो संपदा नीचगृह सोहा । सो विलोकि सुरनायक मोहा ॥

अर्थ—जिसने उस समय (जनकजी की राजधानी) तिरहुत नगरी देखी थी उसे चौदह भुवनो की शोभा कम ही जँचती थी । जो कुछ धन-सम्पत्ति साधारण तिरहुत निवासी के घर मे थी उसे देख कर इन्द्र का चित्त भी मोहित हो जाता था (भाव यह कि इन्द्र भी उस की सम्पदा की सराहना करने लगते थे) ।

दोहा—बसै नगर जेहि लक्षि करि, कपट नारिवर वेष ।
तेहि पुर की शोभा कहत, सकुचहि शारद शेष ॥२८९॥

---

१. जेहि मडप दुलहिन वैदेही । सो बरनइ अस मति कवि केही—कुडलिया रामायण से—

कुडलिया—को वितान सुखमा कहै जेहि थल सुखमा आहि ।
नटत किकरी लक्ष्मी रुख जुगवत पल जाहि ॥
रुख जुगवत पल जाहि जहाँ दुलहिन वैदेही ।
विधि हरि हर यम इन्द्र होत चितवै हित तेही ॥
चितवै हित तेही कृपा दूलह श्री रघुपति रहै ।
समधी दशरथ जनक सम को वितान सुखमा कहै ॥

२. जनक भवन की शोभा जैसी । गृह गृह प्रतिपुर देखिय तैसी—विजय दोहावली से—

दोहा—आदि सखी जे सिया की, सग लीन्ह अवतार ।
आदि सखा जे विष्णु के, अवधपुरी व्यवहार ॥

अर्थ—जिस नगर मे साक्षात् लक्ष्मीजी बनावटी स्त्री भेष धारण किये हुए आ बसी थी, उस नगर की शोभा वर्णन करने मे सरस्वती और शेषनागजी भी सकुचाते थे।

पहुँचे दूत रामपुर[१] पावन। हरषे नगर विलोकि सुहावन ॥
भूपद्वार तिन खबर जनाई। दशरथ नृप सुनि लिये बुलाई[२] ॥

अर्थ—दूत पवित्र अयोध्यापुरी मे जा पहुँचे और वै उस मनोहर नगर को देख प्रसन्न हुए। उन्होने राजाजी की ड्योढी पर सन्देशा लगाया, जिसे सुनकर महाराज दशरथजी ने उन्हे बुलवा लिया।

करि प्रणाम तिन पाती दीन्ही। मुदित महीप आप उठि लीन्ही ॥
वारि विलोचन बाँचत पाती। पुलकगात आई भरि छाती[३] ॥

अर्थ—उन्होने प्रणाम करके चिट्ठी दी, राजा ने स्वत उठकर प्रसन्नतापूर्वक चिट्ठी ले ली। चिट्ठी के बाचते-बाचते नेत्रो मे (प्रेम के) आसू भर आये और शरीर पुलकायमान हो गया तथा हृदय मे प्रेम उमँड उठा।

---

१. रामपुर=श्री रामचन्द्रजी की नगरी अर्थात् अवधपुरी। इस के बारे मे रामरत्नाकर रामायण मे यो लिखा है—

वदउँ अवधपुरी सुखराशी। सबहि मुक्तिदायक जिमि काशी ॥
सप्तपुरिन्ह महँ आदि बखानी। रामभक्ति चितामणि खानी ॥

२ भूपद्वार तिन खबर जनाई। दशरथ नृप सुनि लिये बुलाई—रामस्वयम्वर से—

छन्द चौबोला—सभा द्वार पहुँचे जब धावन दशरथ सभा निहारे।
सिहासनासीन कोशलपति सुनासीर मद गारे ॥
लोकपाल सम भूमिपाल सब बैठे उभय कतारे।
ढालन सो ढालन करि चालन कर बालन कर धारे ॥
बैठ रघुवशी रिपुध्वशी जगत प्रशसी प्यारे।
कलँगी सो कलँगी बिलँगी नहि सान शूरता वारे ॥
अचल अचल इव मौन बैठ भट प्रभु मुख रुखहि निहारै।
इष्टदेव सम रघुकुलनायक अपने मनहि विचारै ॥
छाजत छत्र छपाकर शिर पर प्रगटत परम प्रकाशा।
चार चमर चालत परिचारक खडे चारिहूँ पाशा ॥
कनकछरी बहु रत्न भरी कर धरे खरे प्रतिहारा।
निरखत नयन नरेश वदन वर कारज करत इशारा ॥
सन्मुख खडो सुमत सचिव वर नृप शासन अभिलाखी।
भ्रकुटि विलास विचारि काज सब करत राज रुख राखी ॥
पुलकित तनु करि कै प्रणाम सन दड सरिस मन माही।
दीन्हे नजरि निछावरि कीन्हे कोशल नायक काही ॥

३. वारि विलोचन बाँचत पाती। पुलकगात आई भरि छाती—

क०—ताडका को बध विश्वामित्र जू को यश तारी गौतम की नारी जो मढी ही शाप मढते।
करिबो पिनाक भग वरिबो जनकसुता कौशिक जनक सब लिखी प्रेम बढते ॥
ए हो रघुनाथ कवि कहिये कहाँ लौ सुख धावन लै आयो घरी चारि दिन चढते।
टूटे बद जामा के पुलक भरी छाती भये विह्वल भूप दशरत्थ पाती पढते ॥

राम लषन उर कर वर चीठी । रहि गये कहत न खाटी मीठी[1] ॥

शब्दार्थ—खाटा मीठी (मुहावरा)=बुरी भली ।

अर्थ—राम-लक्ष्मण तो हृदय मे भर गये थे और हाथ मे शुभ पत्रिका लेकर रह गये । उस समय यह कहते न बना कि समाचार बुरे है या भले (भाव यह कि बहुत समय मे राम-लक्ष्मण के समाचार मिले थे सो हृदय मे तो दोनो भाइयो पर ध्यान लग रहा था और बाहर से हाथ मे चिट्ठी लिये थे, सभा के लोगो से चिट्ठी का हाल थोडे समय तक कुछ भी न कह सके, कारण उस मे सकट और फिर उन का निवारण यही बारबार लिखे थे ।

पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची । हरषी सभा बात सुनि साँची ॥

अर्थ—(निदान) धीरज धरके फिर से चिट्ठी बाँचकर सुनाई । सब सभा वाले सच्चा-सच्चा हाल सुनकर प्रसन्न हो गये (अर्थात् जब लोगो ने पत्रिका के समाचार सुने । तब तो उन्हे पहिले यह विचार उठा कि दशरथजी के चुप रह जाने के यथार्थ कारण इस मे सचमुच दीख पडते है और जब सुना कि प्रत्येक बाधा दूर होकर जनक पुत्री से विवाह का शुभ मुहूर्त्त भी निश्चित हो गया और बरात की तैयारी करना है तो बहुत ही प्रसन्न हुए) ।

खेलत रहे तहाँ सुधि पाई । आये भरत सहित हित भाई[2] ॥
पूछत अति सनेह सकुचाई । तात कहाँ ते पाती आई ॥

अर्थ—भरत अपने हितकारी भाई शत्रुघ्न के साथ जहाँ पर खेल रहे थे वही पर खबर सुन कर (सभा मे) आ गये । बडे प्रेम से सकोच के साथ पूछने लगे कि हे पिताजी ! चिट्ठी कहाँ से आई है ।

दोहा—कुशल प्राणप्रिय बधु दोउ, अर्हहि कहहु केहि देश ।
सुनि सनेहसाने वचन, बाँची बहुरि नरेश ॥ २९० ॥

अर्थ—प्राणो के समान प्यारे हमारे दोनो भाई कुशलपूर्वक तो है ? और कहिये कि

---

१. रहि गये कहत न खाटी मीठी—

खट मीठी चीठी महँ देखी । मानो ईश्वर कृपा बिसेखी ।
प्रथम भयो ताडका सँहारा । मुनि मख राखि निशाचर मारा ॥
तीजे गौतम नारि उधारा । चौथे जनकनगर पगु धारा ।
पचयो शम्भुचाप कर भगा । सीता ब्याह छठौ रस रगा ॥
ये खत मे षट लिखी मिठाई । बाँचि भूप रहिगे सुख छाई ।

भाव यह कि मार्ग मे ताडका राक्षसी कोप करके खाने को दौड़ी, यह चिट्ठी का पहिला खट्टापन है । उसे श्री रामचन्द्रजी ने विश्वामित्रजी की आज्ञानुसार मार गिराया, यह उसी का मीठापन है । इसी प्रकार मारीच और सुबाहु का उपद्रव तथा लडाई, यह दूसरी खटाई और उन का विनाश दूसरी मिठास । वन की निर्जनता तथा स्त्री रूपी पाषाण की मूर्त्ति की कथा तीसरी खटाई और उस का उद्धार तीसरी मिठाई । चौथे जनक नगर को पाय प्यादे आने के श्रम के पल्टे मनोहर नगर और सीताजी का अवलोकन, पाचवें शिवजी के कठिन चाप द्वारा समस्त राजाओ का मानमर्दन, जनक तथा जानकी के सोच के पल्टे धनुष भग का परमानन्द । निदान परशुराम कोप और सवाद रूपी खाटी वार्त्ता के प्रति उत्तर मे परशुरामजी का श्री राम स्तुति कर वन गमन के पश्चात् विवाह का मुहूर्त्त नियत होकर बारात के बुलावे की मीठी वार्त्ता उस चिट्ठी मे लिखी थी ।

२. "आये भरत सहित हित भाई" का पाठान्तर "आये भरत सहित दोउ भाई" भी है ।

किस देश मे है ? ऐसे प्रेम भरे वचन सुनकर राजाजी ने फिर से चिट्ठी पढ सुनाई।

सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता। अधिक सनेहु समात न गाता॥
प्रीति पुनीत भरत कै देखी। सकल सभा सुख लहेउ बिसेखी॥

अर्थ—चिट्ठी के समाचार सुनकर दोनो भाई रोमाचित हो गये क्योकि उनका अधिक प्रेम शरीर मे न समा सका। भरत का सच्चा स्नेह देखकर सम्पूर्ण सभा वालो को बडा आनन्द प्राप्त हुआ।

तब नृप दूत निकट बैठारे। मधुर मनोहर बचन उचारे॥
भैया कहहु कुशल दोउ बारे[1]। तुम नीके निज नयन निहारे॥

अर्थ—तब दशरथजी दूतो को अपने समीप बैठालकर मीठे और सुहावने वचन कहने लगे, 'भैय, कहो तो मेरे दोनो बालक कुशल से है ! तुमने अपने नेत्रो से उन्हे कुशल देखा है !' अथवा भली भाँति अपने नेत्रो से उन्हे देखा है !

श्यामल गौर धरे धनुभाथा। वय किशोर कौशिक मुनि साथा॥
पहिचानहु तुम कहहु सुभाऊ। प्रेमविवश पुनि पुनि कह राऊ[2]॥

अर्थ—वे श्यामले तथा गोरे अग वाले धनुष और तर्कस धारण किये है, कुमार अवस्था है और विश्वामित्र मुनि के साथ है। पहिचानते होओ तो उनका स्वभाव कहो। इस प्रकार प्रेम के मारे राजाजी बारम्बार कहते थे।

जा दिन ते मुनि गये लिवाई। तब ते आज साँचि सुधि पाई॥
कहहु विदेह कवन बिधि जाने। सुनि प्रियबचन दूत मुसकाने॥

अर्थ—जिस दिन से मुनिजी उन्हे लिवा ले गये है उस दिन से आज पक्की खबर पाई है। कहो तो ! राजा जनक ने उन्हे कैसे पहिचाना ? ऐसे प्रेम भरे वचनो को सुनकर दूत मुसकाने लगे।

दोहा—सुनहु महीपति मुकुटमणि, तुम सम धन्य न कोउ।
राम लषन जिन के तनय, बिश्वबिभूषण दोउ॥ २९१॥

अर्थ—हे सब राजाओ के सिरताज महाराज ! आप के समान भाग्यवान् कोई नही है। ससार को शोभा देने वाले राम-लक्ष्मण सरीखे जिन के दोनो पुत्र है।

पूछन योग न तनय तुम्हारे। पुरुषसिह तिहुँ पुर उजियारे॥
जिन के यश प्रताप[3] के आगे। शशि मलीन रवि शीतल लागे॥

---

१. भैया कहहु कुशल दोउ बारे—इतने बडे चक्रवर्ती महाराज जिनकी सहायता से समय-समय पर इन्द्र को भी लाभ पहुँचता था, उनकी बातचीत सरलतापूर्वक प्रेम सहित जनकपुर के दूतो के साथ जो आरम्भ हुई उस पर लक्ष्य देना अवश्य है।

२. पहिचानहु तुम कहहु सुभाऊ। प्रेम विवश पुनि पुनि कह राऊ—
इस पर कोई यह शका न कर बैठे कि दशरथजी पुत्रो के वियोग मे ऐसी भोली बाते कर रहे थे। ये तो राम-लक्ष्मणजी की सच्ची हुलिया इसलिये बता रहे थे के जनक राज के दूतों को यह सन्देह न हुआ हो कि यहा अवध मे तो ऐसे चक्रवर्त्ती के ठाट-बाट है और राम-लक्ष्मण सादे भेष मे ही है।

३. प्रताप—

दोहा—जाकि कीरति सुयश सुनि, होत शत्रु उर ताप।
जग डरात सब आप ही, कहिये ताहि प्रताप॥

तिन कहँ कहिय नाथ किमि चीन्हे । देखिय रवि कि दीप कर लीन्हे[१] ।।

अर्थ—पुरुषो मे सिंह के समान, तीनो लोक मे प्रकाश करने वाले आप के पुत्रो का क्या पूछना है ! जिन के यश के सामने चन्द्रमा फीका और तेज के आगे सूर्य निस्तेज सा जान पडता है उन्हे आप कहते हो कि कैसे पहिचाना ! हे नाथ ! क्या सूर्य को कोई चिराग हाथ मे लेकर देखता है ? (अर्थात् जैसे सूर्य अपने प्रभाव से सब को प्रकाशित करता है । उसको देखने के लिये दूसरा साधन न चाहिये—इसी प्रकार आपके कुमार प्रभावशाली है । इनका पहिचानना क्या कठिन है ?

सीयस्वयम्वर भूप अनेका । सिमिटे सुभट एक ते एका ।।
शंभुशरासन काहु न टारा । हारे सकल भूप बरियारा ।।
तीन लोक महँ जे भट मानी । सब कै शक्ति शभुधनु भानी ।।

अर्थ—सीता के स्वयम्वर मे एक से एक अधिक बलवान् अनेक राजा इकट्ठे हुए थे । सब राजा बल करके थक गये परन्तु शिवजी का धनुष किसी से न डिगा । तीनो लोक मे जितने अभिमानी राजा थे सब के बल को महादेवजी के धनुष ने घटा दिया ।

सकै उठाइ सरासुर[२] मेरू । सोउ हिय हारि गयेउ करि फेरू ।।
जेई कौतुक शिवशैल उठावा[३] । सोउ तेहि सभा पराभव पावा ।।

शब्दार्थ—सरासुर ('सर' का पर्यायी शब्द 'बाण' + असुर) = शुद्ध नाम 'बाणासुर' ।

अर्थ—बाणासुर जो कि मेरु पर्वत को उठा सकता है वह भी हृदय मे हार मान फिर कर चला गया और जिस (रावण) ने खिलवाड की रीति से कैलास पर्वत को उठा लिया उसने भी उस सभा मे हार मानी ।

दोहा—तहाँ राम रघुवशमणि, सुनिय महा महिपाल[४] ।
भजेउ चाप प्रयास बिन, जिमि गज पंकजनाल ।।२९२।।

---

१. तिन कहँ कहिय नाथ किमि चीन्हे । देखिय रवि कि दीप कर लीन्हे—
क०—मारे ताडका को जाको देवहु डराते हुते गयो पथ ही मे परि तासु भरभेटा है ।
राखि क्रतु कौशिक की साखि जग मारे दुष्ट लावन्ह को करे जैसे बाज झरपेटा है ।।
रघुराज राजमणि तार्‍यो नारि गौतम की रगभूमि भूपन खलन खरखेटा है ।
दीपक लै पाणि मे पतग को परेखै कौन विश्व मे विदित आप ही को बर बेटा है ।।

२ "सरासुर" का पाठान्तर "सुरासुर" भी है, जिसका अर्थ होता है—देवता और राक्षस (जो सुमेरु पर्वत को उठा सकते थे) ।

३. जेइ कौतुक शिवशैल उठावा—इसकी कथा रावण के जीवन-चरित्र मे है सो अन्यत्र मिलेगी ।

४ तहाँ राम रघुवशमणि, सुनिय महा महिपाल—
क० सीय के स्वयम्बर समाज जहाँ राजन के राजन के राजा महाराजा जान नाम को ।
पवन पुरन्दर कृशानु भानु धनद से गुण के निधान रूप धाम सोम काम को ।।
बान बलवान यातुधान पति सारिखे से जिनकै गुमान सदा सालिम सग्राम को ।
तहाँ रघुवश के समर्थ नाथ तुलसी के चपरि चढायो चाप चन्द्रमा ललाम को ।।
और भी, जसवन्त जसोभूषण से—
छप्पय—हर जु सुमन शर दहन परम पातकि भृगुनन्दन ।
घात ब्रह्म अरु मात अपर छित छत्रि निकन्दन ।। →

अर्थ—हे चक्रवर्ती महाराज, सुनिये ! ऐसी सभा मे रघुकुल श्रेष्ठ रामचन्द्रजी ने बिना ही श्रम के धनुष को तोड डाला जिस प्रकार हाथी कमल की डडी को तोड डालता है ।

सुनि सरोष भृगुनायक आये । बहुत भाँति तिन आँखि दिखाये[1] ॥
देखि रामबल निजधनु दीन्हा । करि बहु बिनय गबन बन कीन्हा ॥

अर्थ—(धनुष टूटने की ध्वनि) सुनते ही क्रोध से भरे हुए परशुराम आये थे सो उन्होने बहुत कुछ धमकाया-घुडकाया । निदान रामचन्द्रजी का बल देख उन्होने अपना धनुष उन्हे सौप दिया और आप बहुत प्रकार से विनती करके वन को चले गये ।

राजन राम अतुल बल जैसे । तेजनिधान लषन पुनि तैसे ॥
कंपहिं भूप बिलोकत जा के । जिमि गज हरिकिशोर के ताके ॥

अर्थ—हे महाराज ! जिस प्रकार रामचन्द्रजी बडे ही बलवान् है उसी प्रकार लक्ष्मणजी भी तेजवान् है । जिन्हे देखते ही राजा लोग इस प्रकार से काँप उठते है जिस प्रकार सिह के बच्चे को देखकर हाथी काँपते है ।

देव देखि तव बालक दोऊ । अब न आँखि तर आवत कोऊ ॥
दूत बचन रचना प्रिय लागी । प्रेम प्रताप बीर रस पागी ॥

अर्थ—हे राजन् ! आपके दोनो राजकुमारो को देखकर अब कोई भी राजा वैसा नही जँचता । दूतो की वचन चातुरी जिसमे प्रेम प्रभाव और वीर रस भरा हुआ था, बडी प्यारी लगी ।

सूचना—"प्रेम प्रताप वीर रस पागी" प्रेम भरे शब्द ये है "अब न आँखि तर आवत कोऊ" । प्रताप इन शब्दो मे झलकता है कि "शशि मलीन रवि शीतल लागे" और वीर रस प्रकट करने वाले ये वचन है "भजेउ चाप प्रयास बिन, जिमि गज पकजनाल" ।

सभा समेत राउ अनुरागे । दूतन्ह देन निछावरि लागे[2] ॥

तेहि कर सगम पाप भीत प्रायश्चित सज्जिय ।
मनु रघुनाथ जु हाथ तीर्थ मध धनु तनु तज्जिय ॥
रघुवश वीर अवतस नृप दशरथ सुन यह कथ श्रवन ।
आनन्द सिन्धु गाहत भयउ सो कहिबे समरथ कवन ॥

१. सुनि सरोष भृगुनायक आये । बहुत भाँति तिन आँखि दिखाये—

सवैया—काल कराल नृपालन के धनु भग सुने फरसा लिये धाये ।
लक्ष्मण राम विलोकि सप्रेम महा रिसहा फिरि आँखि दिखाये ॥
धीर शिरोमणि वीर बडे विनयी विजयी रघुनाथ सुहाये ।
लायक हो भृगुनायक सो धनशायक सौपि सुभाय सिधाये ॥

२. दूतन्ह देन निछावरि लागे—रावस्वयवर से—

पुनि अवधेश सुमत बुलाये । हरे कान महँ बैन सुनाये ॥
दोहा—लाख लाख के आभरण, वसन तुरग मँगाय ।
चारिहु दूतन देहु द्रत, पठवहु नाग चढाय ॥
सुनि सुमत शासन नृप केरा । ल्याय विभूषण वसन घनेरा ॥
धर्‌यो चारिहू चारन आगे । कहे भूपमणि अति अनुरागे ॥
पान फूल सम यह कछु जोई । लीजै दूत सनेह समोई ॥

अनीति ते मूदहिं काना[1] । धर्म बिचारि सबहिं सुख माना ॥

अर्थ—सभा वालों समेत राजाजी मग्न हो गये और दूतों को निछावर देने लगे। दूत उचित नहीं और कानों पर हाथ धर के रह गये (भाव यह कि दूत दुलहिन की ओर उन्होंने वर पक्ष से द्रव्य आदि का ग्रहण धर्म विरुद्ध जान कर नहीं किया) इस धर्म के देखकर सब सुखी हुए ।

दोहा—तब उठि भूप वशिष्ठ कहँ, दीन्हि पत्रिका जाइ ।

कथा सुनाई गुरुहि सब, सादर दूत बुलाइ ॥२९३॥

अर्थ—तब राजा ने उठ करके वशिष्ठजी को चिट्ठी दी और दूतों को बुलाकर गुरुजी रपूर्वक सब कथा कह सुनवाई ।

बोले गुरु अति सुख पाई । पुण्यपुरुष कहँ महि सुख छाई ॥

सरिता सागर महँ जाहीं । यद्यपि ताहि कामना नाहीं ॥

—(सब वार्त्ता) सुनकर गुरुजी बहुत ही प्रसन्न हो बोले कि पुण्यवान् पुरुष के लिए मानो आनंद से भरी है। जिस प्रकार नदियाँ बहकर समुद्र में मिलती हैं यद्यपि नदियों की कुछ चाह नहीं रहती ।

सुख संपति बिनहि बुलाये । धर्मशील पहँ जाहिं सुभाये[2] ॥

गुरु बिप्र धेनु सुरसेवी । तस पुनीत कौशल्या देवी ॥

—इसी प्रकार सुख और धनधान्य आदि भी बिना बुलाये आप ही आप धर्मात्माओं चले आते हैं। आप गुरु, ब्राह्मण, गाय और देवताओं की सेवा करने वाले हो, इसी आचरण वाली महारानी कौशल्याजी भी हैं ।

तुम समान जग माहीं । भयउ न है कोउ होनउ नाहीं ॥

ते अधिक पुण्य बड़ का के । राजन राम सरिस सुत जा के ॥

—संसार में आप के समान सत्कर्मी न हुआ था, न है और न होवेगा। हे राजन् ! रामचंद्र सरीखे पुत्र हैं उन से बढ़ कर और कौन पुण्यात्मा हो सकता है ।

विनीत धर्मव्रतधारी । गुणसागर वर बालक चारी ॥

अनीति ते मूदहिं काना—रामस्वयंवर से—

देखि दूत पट भूषण भूरी । वाणी कही धर्म रस पूरी ॥
रंगभूमि महँ जब ते नाथा । तोर्‌यो शंभु धनुष रघुनाथा ॥
तव ते गई विवाहि कुमारी । यह लीन्हों हम सत्य विचारी ॥

दोहा—जस हमार मिथिलेश प्रभु, तैसहि प्रभु अवधेश ।
पै कन्याधन लेत महँ, हम को परत भदेश ॥

सुख संपति बिनहि बुलाये । धर्मशील पहँ जाहि सुभाये—विष्णुपुराणान्तरगत पाख्यान से—

श्लोक—सुशीलो भव धर्मात्मा मैत्रः प्राणिहिते रतः ।
निम्नं यथापः प्रवणाः पात्रमायान्ति सम्पदः ॥

(रानी सुनीति अपने पुत्र ध्रुव से बोली कि) तुम शीलवान्, धर्मात्मा सब के प्रिय प्राणियों के हित करने वाले हो जाओ। क्योंकि जिस प्रकार पानी नीचे ही की ओर है उसी प्रकार नम्र स्वभाव वाले धर्मात्मा मनुष्य के पास सम्पूर्ण ऐश्वर्य भी आप ही आते हैं ।

तुम कहँ सर्वकाल कल्याना[१] । सजहु बरात बजाइ निशाना ।।

अर्थ—चारो सुन्दर सुत पराक्रमी, नम्र और धर्म के आचरण वाले है । आप को सदैव मगल ही है इस हेतु नगाडे बजाकर बरात तैयार करो ।

दोहा—चलहु वेगि सुनि गुरुवचन, भलेहि नाथ शिर नाइ ।
भूपति गवने भवन तब, दूतन्ह बास दिवाइ ।।२६४।।

अर्थ—'चलो जल्दी चले,' ऐसे गुरुजी के वचन सुनकर 'ठीक है स्वामी' (इतना कह) प्रणाम कर तथा दूतो को डेरा दिलवा कर राजाजी महलो मे पधारे ।

राजा सब रनिवास बुलाई । जनकपत्रिका बाँचि सुनाई ।।
सुनि सदेश सकल हरषानी । अपरकथा सब भूप बखानी ।।

अर्थ—राजा जी ने सब रानियो को बुलाकर जनकजी की चिट्ठी पढकर सुना दी । समाचार सुन सब की सब मग्न हो गई, तब तो राजाजी ने और भी दूतो से सुने हुए समाचार कह सुनाये ।

प्रेम प्रफुल्लित राजहि रानी । मनहुँ सिखिनि सुनि बारिदबानी ।।
मुदित असीस देहि गुरुनारी । अति आनदमगन महतारी ।।

अर्थ—रानिया प्रेम से इस प्रकार आनद मे मग्न हो गई जैसे मोरनिया बादल की गर्ज सुनकर प्रेम से फूली नही समाती । गुरुजन की स्त्रिया प्रसन्न चित्त हो आशीर्वाद देने लगी और कौशल्या आदि माताएँ तो परमानद मे मग्न थी ।

लेहि परस्पर अतिप्रिय पाती । हृदय लगाइ जुडावहि छाती ।।
राम लषन की कीरति करनी । बारहि बार भूप बर बरनी ।।

अर्थ—आपस मे उस परम प्यारी पाती को ले-ले कर हृदय से लगा करके कलेजा ठडा करती थी । श्रेष्ठ राजाजी ने राम-लक्ष्मण की बडाई और करतूति को कई बार कहा ।

मुनिप्रसाद कहि द्वार सिधाये । रानिन्ह तब महिदेव बुलाये ।।
दिये दान आनद समेता । चले बिप्र बर आसिस देता ।।

अर्थ—निदान 'यह सब विश्वामित्रजी का आशीर्वाद' है, 'ऐसा कह राजाजी सभा मे आ गये, तब रानियो ने ब्राह्मणो को बुलवाया और उन्हे दान दिये । श्रेष्ठ ब्राह्मण आनन्दपूर्वक आशीर्वाद देते हुए चले गये ।

सोरठा—याचक लिये हँकारि, दीन्हि निछावरि कोटि विधि ।
चिरजीबहु सुत चारि, चक्रवर्त्ति दशरत्थ[२] के ।।२६५।।

---

१. तुम कहँ सर्वकाल कल्याना—ऊपर के कथन से विदित होता है कि महाराजा दशरथ को सब प्रकार के सुख थे सो यो कि—

श्लोक—अर्थागमो नित्यमरोगिता च, प्रियश्च भार्या प्रियवादिनी च ।
वश्यस्य पुत्रोऽर्थ करी च विद्या, षड्जीव लोकेषु सुखानि राजन् ।।

भाव यह कि हे राजा ! ससार मे जीवन के ये छ सुख है—(१) प्रतिदिन धन प्राप्ति, (२) निरोगी शरीर, (३), सन्मित्र, (४) मधुर बोलने वाली स्त्री, (५) आज्ञाकारी पुत्र, और (६) फलदायक विद्या ।

२. चक्रवर्त्ति दशरत्थ के—राम स्वयवर से चक्रवर्ती के कुछ चिह्न— →

अर्थ—फिर भिखारियो को बुला लिया और उन्हे अनगिनती प्रकार से निछावर दी, वे आशीर्वाद देने लगे कि चक्रवर्त्ती महाराज दशरथजी के चारो पुत्र चिरजीव रहे।

कहत चले पहिरे पट नाना । हरषि हने गहगहे निशाना ॥
समाचार सब लोगन्ह पाये । लागे घर घर होन बधाये[१] ॥

अर्थ—(निछावर मे पाये हुए) भाँति-भाँति के कपडे पहन कर (ऊपर कहे अनुसार) कहते हुए चले और प्रसन्न होकर जोर-जोर से बाजे बजाने लगे। जब नगर निवासियो को यह खबर लगी तो घर-घर मगलाचार होने लगे।

भुवन चारि दश भयउ उछाहू। जनक सुता रघुवीर विवाहू ॥
सुनि शुभ कथा लोग अनुरागे। मग गृह गली सवाँरन लागे[२] ॥

अर्थ—चौदह लोको मे इस बात का आनन्द छा गया कि सीता और रामचन्द्रजी का विवाह है। यह शुभ कथा सुनकर लोग प्रेम मे मग्न हुए और रास्ते, घर तथा गलियो को सजाने लगे।

यद्यपि अवध सदैव सुहावनि । रामपुरी मंगलमय पावनि ॥
तदपि प्रीति की रीति सुहाई । मगल रचना रची बनाई ॥

अर्थ—यद्यपि अयोध्या सदा सुहावनी है क्योकि वह राम की नगरी होने से सदैव पवित्र और मगलो से परिपूर्ण है। तो भी प्रेम का भाव सुहावना होता है इस हेतु मनोहर मगलमयी सजावट सम्हाल कर बनाई।

ध्वज पताक पट चामर चारू। छावा परम विचित्र बजारू ॥
कनककलश तोरण मणिजाला। हरद दूब दधि अक्षतमाला ॥

अर्थ—अच्छे-अच्छे ध्वज, पताका, वस्त्र और चमर से बाजार को बहुत ही अद्भुत

क०—केते महाराज रघुराज आवै देखिबे को, केते महाराज जावै बलि दै स्वदेश को।
केते महाराज ठाढे रोज रोज द्वार देश, केते महाराज बसै शिर धै निदेश को ॥
केते चौर ढारै केते छत्र को सँवारै सग, केते धूरि झारै पद रसम हमेश को।
भूपति हजारै ते निहारै रुख बार बारै, भूप चक्रवर्त्ती चूडामणि अवधेश को ॥

१. लागे घर घर होन बधाये—

राग केदार—मन मे मजु मनोरथ होरी।
सो हरगौरि प्रसाद एक ते कौशिक कृपा चौगुनी भोरी ॥
प्रण परिताप चाप चिन्ता निशि सोच सँकोच तिमिर नहिं थोरी।
रविकुल रवि अवलोकि सभासर हित चित बारिज बन विकस्योरी ॥
कुँवर कुँवरि सब मगल मूरति नृप दोउ धरम धुरधर धोरी।
राज समाज भूर भागी जिन लोचन लाहु लह्यो इक ठोरी ॥
ब्याह उछाह राम सीता को सुकृत सकल विरचि रच्योरी।
'तुलसीदास' जाने सोइ यह सुख जा उर बसत मनोहर जोरी ॥

२. मग गृह गली सवाँरन लागे—राम स्वयम्वर से—

चौबोला—धूम धामपुर धाम धाम महँ कालिह बरात पयाना।
आप सजहि औरन कहँ साजहिं पट भूषण विधि नाना ॥
दीपावली देव आलय महँ गवन बजारन माही।
[illegible] बरात तैयारी भारी नीद नयन महँ नाही ॥

रीति से सजाया। वहाँ पर सोने के कलश, तोरण, मणियो की झालरे लगाई। हल्दी, दूब, दही, अक्षत और मालाएँ रक्खी।

दोहा—मगलमय निज निज भवन, लोगन्ह रचे बनाइ।
बीथी सीची चतुर सम, चौके चारु पुराइ ॥ २९६ ॥

शब्दार्थ—चतुर मम=उसको कहते हे जिसमे चार वस्तुये बराबर-बराबर की मिली हो।

अर्थ—सब लोगो ने अपने-अपने घर सजाकर मगलमयी कर दिये और गलियो को सिंचवाकर चार सम भाग चौक पूरने की वस्तुयें एकत्र कर चौक पुरवाया।

जहँ तहँ यूथयूथमिलि भामिनि। सजि नवसप्त सकल द्युतिदामिनि ॥
बिधु बदनी मृगशाबक लोचनि। निज सरूप रतिमान बिमोचनि ॥
गावहि मगल मंजुल बानी[1]। सुनि कलरव कलकंठ लजानी ॥

अर्थ—जहाँ देखो तहाँ स्त्रियो के झुड सोलह श्रृगार किये हुए सबकी सब बिजली की नाई प्रकाश करती हुई। चन्द्रमुखी, मृगनयनी और अपनी सुन्दरता से रति के रूपगर्व को छुडाने वाली। मीठे स्वरो से मगलगीत गा रही थी। उनकी सुरीली तानो को सुनकर कोयल भी लज्जित होती थी।

भूपभवन किमि जाइ बखाना। विश्वविमोहन रचेउ विताना ॥
मगलद्रव्य मनोहर नाना। राजत बाजत विपुल निशाना ॥

अर्थ—राममहल का वर्णन कैसे किया जा सकता है, जहाँ पर ससार को मोहित करने वाला मडप तैयार किया गया थाँ। नाना प्रकार के मगलीक पदार्थ सुशोभित थे और बहुत से बाजे बज रहे थे।

कतहुँ विरद वन्दी उच्चारही। कतहुँ वेदध्वनि भूसुर करही ॥
गावहि सुन्दरि मगलगीता। लेइ लेइ नाम राम अरु सीता ॥
बहुत उछाह भवन अति थोरा। मानहुँ उमगि चला चहुँ ओरा ॥

अर्थ—कही तो भाट वशावली कह रहे थे और कही-कही ब्राह्मण वेद पढ रहे थे। रूपवती स्त्रियाँ राम और सीता का नाम ले-लेकर गीत गाती थी। आनन्द तो बहुत था (उसके लिए) राजभवन बहुत छोटा था इस हेतु वह मानो चारो ओर से निकल पडा (भाव यह कि आनन्द राजगृह तथा सम्पूर्ण नगर भर मे भर गया था)।

परी खरभरी ताहि शर्बरी करै हर्बरी लोगू।
कहै हर्घरी मेटि कर्बरी कब प्रभु करी सँयोगू ॥
कहुँ रथ चक्र होत घर घर रव नर्दाहि मत्त मातगा ॥
कहुँ हय हेखन शोर मच्यो अति कोउ नहि हीन उमगा ॥
भरत शत्रुसूदन अति हर्षित नयन नीद बिसराई।
मुदित करहि मातन से बातन कब देखब दोउ भाई ॥

१. गावहिं मगल मजुल बानी। सुनि कलरव कलकठ लजानी—
कान्हरा—राम लषन सुधि आई बाजै अवध बधाई।
ललित लगन लिखि पत्रिका उपरोहित के कर जनक जनेश पठाई ॥ →

दोहा—शोभा दशरथ भवन की, को कवि बरनै पार[१] ।
जहाँ सकल सुरसीसमणि, राम लीन्ह अवतार ।।२९७।।

अर्थ—जहाँ पर सब देवताओं के शिरोमणि श्री रामचन्द्र जी ने अवतार लिया था ऐसे दशरथजी के महलो की शोभा का वर्णन कर सके ऐसा कौन कवि है ?

भूप भरत पुनि लिये बुलाई । हय गय स्यदन साजहु जाई ।।
चलहु वेगि रघुवीर बराता । सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता ।।

अर्थ—फिर राजाजी ने भरत को बुलाकर कहा कि तुम जाकर घोडे, हाथी और रथो को तैयार कराओ और जल्दी से रामचन्द्र की बरात मे चलो । यह सुनकर दोनो भाई आनन्द मे मग्न हो गये ।

भरत सकल साहनी बुलाये । आयसु दीन्ह मुदित उठि धाये ।।
रचि रुचि जीन तुरग तिन साजे । बरन बरन बर बाजि बिराजे[२] ।।

कन्या भूप विदेह की रूप की अधिकाई ।
तासु स्वयम्वर सुनि सब आये देश देश के नृप चतुरग बनाई ।।
पण पिनाक पवि मेरु ते गुरुता कठिनाई ।
लोकपाल महिपाल बाण इत रावण सके न चाप चढाई ।।
तेहि समाज रघुराज के मृगराज गजाई ।
भजि शरासन शम्भु को जग जय कल कीरति तिन तियमणि सिय पाई ।।
पुर घर घर आनन्द महा सुनि चाह सुहाई ।
मातु मुदित मगल सजै कहे मुनिप्रसाद भये सकल सुमंगल भाई ।।
गुरु आयसु मडप रच्यो सब साज सजाई ।
'तुलसिदास' दशरथ बरात सजि पूजि गणेशहि चले निशान बजाई ।।

१. शोभा दशरथ भवन की, को कवि बरनै पार "आदि—रामस्वयम्वर से—

चोबोला—अति उतग सुन्दर शशि शाला सात मरातिब बारे ।
मानहुँ पुहुप विमान भान अस्थान लजावन हारे ।।
हत दूषण पूषण प्रकाश इव नगर विभूषण सोई ।
नर भूषण दशरथ निवास जहँ कतहूँ रूख न होई ।।
समथल ऊँच नीच नहि कतहूँ पूर्ण धर्म धन धानी ।
सरस सुरस रजित नीरस हत कोशलपति रजधानी ।।
वीणा वेणु पटह पणवादिक बाजत रोज नगारे ।
अवध सरिस शोभा सुर नर मुनि त्रिभुवन मे न निहारे ।।
दोहा—जो देख्यो कोशलनगर, सुरनर एकहुँ बार ।
तेहि न रही पुनि कामना, देखन हेत अपार ।।

२. रचि रुचि जीन तुरग तिन साजे । बरन बरन बर बाजि बिराजे—आल्हखड से—

बोलि दरोगा घोडन बारो चीरा कलँगी दई इनाम ।
बडे बडे घोडन को सजवावौ जल्दी हाल करौ तैयार ।।
घोडी हिरौजिनी औ मुखमजनि श्यामकरण सब्जा सुरग ।
चौधर चाल कबूतर आवै औ दरियाई पार के घोड ।।
कच्छी मच्छी घोड़ा साजै ताजी तीनि पायँ ठहनाय ।
हरियल मुस्की पाखर डारौ पचकल्यानिहु लेहु सजाय ।। →

अर्थ—भरत ने फौज के दारोगाओ को बुलाकर आज्ञा दी, सो वे प्रसन्नता पूर्वक उठ दौडे। उन्होने अच्छे-अच्छे जीन रखकर घोडो को कसा। अनेक रग के उत्तम घोडे सजे हुए अच्छे लग रहे थे।

सुभग सकल सुठि चचल करनी। अय इव जरत धरत पग धरनी।।
नाना जाति न जाहि बखाने[१]। निदरि पवन जनु चहत उड़ाने[२]।।

अर्थ—सब सुडौल, मनोहर तथा चपल चाल वाले थे और जो पृथ्वी पर इस प्रकार टाप धरते थे कि मानो जलते हुए लोहे पर पैर रखते हो (साराश यह कि घोडे बहुत ही शीघ्रता से पैरो को रखते और उठाते थे)। उनके अनेक प्रकारो का वर्णन नही किया जा सकता था मानो हवा को तुच्छ मान उडना चाहते थे।

तिन सब छैल भये असवारा। भरतसरिस वय राजकुमारा।।
सब सुन्दर सब भूषणधारी। कर शरचाप तूण कटि भारी।।

अर्थ—उन पर भरत ही की अवस्था वाले बाँके सब राजकुमार सवार हुए। सभी सुन्दर और सब ही अलकार पहिरे हुए हाथ मे धनुष-बाण और कमर मे तर्कस धारण किये थे।

दोहा—छरे छबीले छैल सब, शूर सुजान नवीन।
युग पदचर असवार प्रति, जे असिकलाप्रवीन।।२९८।।

अथ—सब चुने हुए छबीले गबरू बहादुर नई अवस्था वाले चतुर थे और प्रत्येक सवार के साथ दो-दो ऐसे पैदल थे जो तलवार चलाने मे चतुर थे।

बाँधे विरद वीर रन गाढ़े। निकसि भये पुर बाहिर ठाढ़े।।
फेरहि चतुर तुरग गति नाना[३]। हरषहि सुनि सुनि पणव निशाना।।

लक्खा गर्रा औ कुम्मैता समुदा घोडा करौ तयार।
लै हनवावौ इन घोडन कौ ऊपर लेउ दुशाला डारि।।
भरि भरि बेला अरे मेहदी के जिन मे सेरन केसर डारि।
चारौ सुम्मन को रँगवावौ पाछे पूँछ देउ रँगवाय।।
धरि कठिलानी इन घोडन पर ऊपर तग देउ कसवाय।
लगे बकसुआ है सोने के और रेशम के, तग कसाय।।
छोटि छोटि कलँगी मोतीचूर की सो कल्लन पर दई धराय।
पग पैजनिया रुनझुन बाजै तिन पर छैल भये असवार।।

१ नाना जाति न जाहि बखाने—
कवित्त—नैपाली टाँगन ताजी अरबी सुरग ताखी तरबी तुरग गर्रा सबजा कुम्मेद है।
अवलक विलायती हिरोजल श्याहकर्ण कोतल सिरागा मुश्की तुरकी सफेद है।।
भनै "मन्नूलाल" अश्व लक्खा मुखमजन है पचकल्यान निकुला प्रतिकूल भेद है।
नुकरा पहाडी कच्छी देवमान दरयाई मक्सी सुमन्द बाज तेलिया कुमेद है।।

२. निदरि पवन जनु चहत उडाने—
क० नर ते अधिक दौरे पक्षी अन्तरिक्ष ही के पक्षी ते अधिक दौरे वेगि नदी नीर के।
नीर ते अधिक दौरे "बसी" कहै सिह बली सिंह ते अधिक दौरे तीर महाधीर के।।
तीर ते अधिक दौरे पवन झकोरै जोर पौन ते अधिक दौरे नैनहि शरीर के।
नैन ते अधिक दौरे मन तिहुँ लोकन मे मन ते अधिक दौरे बाजी रघुवीर के।।

३. फेरहि चतुर तुरग गति नाना।—आल्हखड से— →

अर्थ—संग्राम मे प्रवीण वीर लोग लडाई का बाना धारण किये नगर से निकलकर बाहर खडे हुए। वे चतुर घोडो को भानि-भाँति की चाल चलाते थे और ढोल तथा नगाडो का शब्द सुनकर प्रसन्न होते थे।

रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाये। ध्वज पताक मणि भूषण लाये।।
चँवर चारु किंकिनि धुनि करही। भानुयान शोभा अपहरहीं।।

अर्थ—सारथियो ने रथो को ध्वजा, पताका मौर मणियो के आभूषणो द्वारा अद्भुत रीति से सजाया था। उनमे उत्तम चँवर लगे थे तथा घटियाँ बज रही थी वे मानो सूर्य के रथ की शोभा को छीने लेते थे (अर्थात् बहुत सुन्दर थे)।

श्यामकर्ण[1] अगणित हय होते। ते तिन्ह रथन्ह जोते।।
सुन्दर सकल अलंकृत सोहे। जिनहिं बिलोकत मुनि मन मोहे।।

शब्दार्थ—होते=अश्वमेध यज्ञ के योग्य।

अर्थ—यज्ञ के अनगिनती श्यामकर्ण नाम के घोडो को सारथियो ने उन रथो मे जोते। सबके सब सुडौल तथा आभूपणो से सुशोभित थे जिनको देखकर मुनियो के मन मोह जाते थे।

जे जल चलहि थलहि की नाई। टाप न बूड़ बेग अधिकाई।।
अस्त्र[2] शस्त्र[3] सब साज बनाई। रथी सारथिन्ह लिये बुलाई।।

अर्थ—जो पानी पर भी पृथ्वी की नाई चलते थे सो यों कि बहुत तेजी से चलने के कारण (पानी मे) उन की टाप तक न बूडती थी। सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्र आदि सम्हाल के तैयार कर सारथी लोगो ने रथ पर बैठने वालो को बुलाया।

दोहा—चढ़ि चढ़ि रथ बाहिर नगर, लागी जुरन बरात।
होत सगुन सुन्दर सबन्हि, जो जेहि कारज जात।।२९९।।

अर्थ—रथो पर सवार हो-हो कर गाव के बाहर बरात इकट्ठी होने लगी। उस समय जो जिस काम के लिए जाता था, उस को उसी योग्य सुन्दर शकुन होते थे।

कलित करिबरन्हि परी अँबारी। कहि न जाइ जेहि भाँति सँवारी[4]।।
चले मत्तगज घट बिराजे। मनहुँ सुभग सावन घन गाजे।।

नये बछेरा जे सजवाये तिन पर छैल भये असवार।
अपने अपने गलियारेन रो क्षत्री निकसे बाघ मरोर।।
कोई रवियन कोइ रौहालन कोइ कुडरिन पर फेरै बाध।
चित्र चालि पै चतुर चालि पै कोइ कोइ तितुर चालि लै जायँ।।
हस चालि पै मोर चालि पै घोड़ा हरिण चौकडी जायँ।
पोइन सरपट घोडा चलावै दुलकी चालि चलावत जायँ।।

१. श्यामकर्ण—श्यामकर्ण घोडो के विषय मे अयोध्याकाण्ड रामायण की श्री विनायकी टीका की टिप्पणी मे "गालब" की कथा देखो।

२. अस्त्र (अस्=फेकना)=ऐसा हथियार जो फेक कर चलाया जावे, जैसे बाण, बन्दूक की गोली आदि।

३. शस्त्र (शस्=मारना)=ऐसा हथियार जिसे हाथ मे लिए हुए चलावे, जैसे तलवार, बर्छी आदि।

४. कलित करिबरन्हि परी अँबारी। कहि न जाइ जेहि भाँति सँवारी—आल्हखड से आल्हा छन्द में—

→

अर्थ—सुन्दर हाथियो पर उत्तम अबारियाँ इस प्रकार से सजी हुई थी कि उन का वर्णन नही किया जा सक्ता। मस्त हाथी जो झूमते जाते थे उनकी घटावलिया इस प्रकार बज रही थी कि मानो सावन के सुहावने बादल गरज रहे हो।

वाहन अपर अनेक विधाना। शिविका सुभग सुखासन याना॥
तिन चढि चले विप्रवरवृन्दा। जनु तनु धरे सकल श्रुतिछन्दा॥

अर्थ—और भी अनेक प्रकार की सवारिया थी जैसे उत्तम पालकी, नालकी, तामझाम आदि। इन पर वेदपाठी ब्राह्मणो के समूह बैठ कर चले, मानो सब वेद-शास्त्र ही रूप धर कर चले जा रहे हो।

मागध सूत वन्दि गुणगायक। चले यान चढि जो जेहि लायक॥
बेसर ऊँट वृषभ बहु जाती। चले वस्तु भरि अगणित भाँती॥

अर्थ—भाट, पौराणिक, वश-कीर्तन करने वाले तथा गुण गाने वाले यथा योग्य सवारियो पर बैठ कर चले। कई जाति के खच्चर, ऊट बैल अनेक प्रकार की वस्तुओ से लदे हुए चले।

कोटिन्ह काँवरि चले कहारा। विविध वस्तु को बरनै पारा॥
चले सकल सेवक समुदाई। निज निज साज समाज बनाई॥

अर्थ—कहार लोग करोडो काँवरो मे भाँति-भाँति की वस्तुये लेकर चले, जिनका वर्णन करना कठिन है। सम्पूर्ण नौकर-चाकर भी अपनी-अपनी टुकडियो को सजा-बजा कर चले।

दोहा—सब के उर निर्भर हरष, पूरत पुलकि शरीर।
कबहि देखिहै नयन भरि, राम लषन दोउ वीर॥३००॥

अर्थ—सब लोगो के हृदय मे ऐसा आनन्द भर गया था कि वह समाता न था, उन के शरीर रोमाचित हो गये थे (और सब को यही लालसा थी कि) राम-लक्ष्मण दोनो भाइयो को अपने नेत्र भर कब देखेगे।

गर्जहि गजघटा ध्वनि घोरा[१]। रथ रव बाजि हिंस चहुँ ओरा॥
निदरि घनहि घूमरहि निशाना। निज पराइ कछु सुनि न काना॥

बोलि दरोगा हाथिन वारो हाथन कडा दये डरवाय॥
बडे बडे हाथिन कौ सजवावौ छोटे पर्वत की उनहारि॥
हाथी साजै जे इकदन्ता औ दुइ दन्ता लये सजाय॥
मैन कुज मलिया धौरा गिरी ओ भौरा गिरी लये सजाय॥
अगद गज से औ पगद गज हाथी सजन अगिनिया लाग॥
मुडिया हौदा कौ सजवायौ मकुना हाथी लेहु सजाय॥
डारि बिछौना मखमल वारो ऊपर हौदा दये कसाय॥
हीरा बिराजै अम्बारी मे झालरि लगी मोतियन क्यार॥
बारह कलसा सोने वारे सो हौदन पर दये धराय॥
इक इक हाथी के हौदा मे बैठे चार चार असवार॥
घण्टा बाजै गज हाथिन के मानौ सावन के घन गाज॥

१. गर्जहि गजघटा ध्वनि घोरा—

दोहा—रणित भृंग घटावली, झरत दान मधु नीर।
मन्द मन्द आवत चल्यो, कुजर कुज समीर॥

अर्थ—हाथी चिंघाडते थे और उनके घटाओ का शब्द भारी था। चारो ओर रथो की गडगडाहट और घोडो का हिनहिनाना सुनाई देता था। नक्कारो की घडघडाहट के आगे बादलो की गरज फीकी लगती थी, अपना व दूसरे का कहना कुछ समझ न पडता था।

महा भीर भूपति के द्वारे। रज होइ जाइ पषान पबारे[1] ॥
चढा अटारिन्ह देखहि नारी। लिये आरती मगलथारी ॥

अर्थ—महाराजा के द्वार पर इतनी भारी भीड थी कि ककड पिसकर धूल हो जाते थे। स्त्रियाँ अटारियो पर चढी थाल मे मगलीक द्रव्य और आरती लिये हुए खडी-खडी देख रही थी।

गावहि गीत मनोहर नाना। अति आनन्द न जाइ बखाना ॥
तब सुमंत दुइ स्यदन साजी। जोते रविहयनिदक बाजी ॥

अर्थ—वे अनेक मनभावने गीत गा रही थी, उस समय का बडा भारी आनन्द वर्णन नही किया जा सकता। तब सुमत ने दो रथ तैयार किये, उन मे ऐसे घोडे जोते जो सूर्य के घोडो को तुच्छ समझते थे।

दोउ रथ रुचिर भूप पहँ आने। नहि शारद पहँ जाहि बखाने ॥
राजसमाज एक रथ साजा। दूसर तेज पुज अति भ्राजा ॥

अर्थ—सुमत दोनो सुन्दर रथ राजाजी के पास ले आये, जिनका वर्णन सरस्वतीजी से भी नही हो सकता था। एक रथ तो उन्होने राजकीय ठाठ से सजाया था और दूसरा बडा दीप्तिमान बनाया था।

दोहा—तेहिरथ रुचिर वशिष्ठ कहँ, हर्षि चढ़ाइ नरेश।
आप चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि, हर गुरु गौरि गनेश[2] ॥ ३०१ ॥

अर्थ—इस तेजस्वी मनोहर रथ पर राजाजी ने आनदपूर्वक वशिष्ठजी को बिठलाया और गणेशजी, शिव पार्वतीजी तथा गुरुजी का स्मरण कर आप भी रथ पर जा बैठे।

(अवधपुर से जनकपुर को बरात का प्रस्थान आदि)

---

१. महा भीर भूपति के द्वारे। रज होइ जाइ पषान पबारे—जैसा कि वीरछन्द मे कहा है—
ईट फूट के गुटई हुइ गइ यारो गुटई फूटि भइ छार।
धूरि उडानी आसमान मे, सूरज रहे धुन्ध मे छाय ॥

२. हर गुरु गौरि गनेश—
हर-गौरि का स्मरण—
कर्पूर गौर करुणावतार, ससार सार भुजगेन्द्र हारम्।
सदा बसत हृदयारविन्दे, भव भवानी सहित नमामी ॥
गुरुजी का ध्यान—
अखड मडलाकार, व्याप्त येन चराचरम्।
तत्पद दर्शित येन, तस्मै श्री गुरवे नम. ॥
गनेशजी का स्मरण—
दोहा—सुरगण नरगण मुनिनगण, हरत विघन गण जोय।
एक रदन शुभ सदन जय, मदन कदन सुन सोय ॥ →

सहित वशिष्ठ सोह नृप कैसे। सुरगुरु संग पुरंदर जैसे ।।
करि कुलरीति वेदविधि राऊ। देखि सबहि सब भाँति बनाऊ ।।
सुमिरि राम गुरु आयसु पाई। चले महीपति शंख बजाई[1] ।।

अर्थ—वशिष्ठजी के साथ दशरथजी इस प्रकार शोभा दे रहे थे जिस प्रकार बृहस्पतिजी के साथ इन्द्रजी। राजाजी ने वेद के अनुसार कुल की रीति करके तथा सभी प्रकार की सम्पूर्ण तैयारी देखी। फिर वे राचन्द्रजी का स्मरण कर गुरुजी की आज्ञा ले शख बजाकर चले।

हर्षे विबुध विलोकि बराता। वर्षहि सुमन सुमगल दाता ।।
भयउ कोलाहल हय गय गाजे। व्योम बरात बाजने बाजे ।।
सुरनर नाग सुमगल गाई। सरस राग बाजहिं सहनाई ।।

अर्थ—देवगण बरात को देखकर प्रसन्न हुए और शुभ मगलकारी फूल बरसाने लगे। घोडो और हाथियो के शब्द मे बडा कोलाहल मच गया, आकाश और बरात मे बाजे बजने लगे। देवता, मनुष्य, नागलोक वासी सुन्दर मगलगीत गा रहे थे और शहनाइयो मे सुरीले राग बज रहे थे।

घट घटि ध्वनि बरनि न जाही। सरौ करहि पायक फहराही ।।
करहि विदूषक कौतुक नाना। हासकुशल कलगान सुजाना[2] ।।

अर्थ—घटो और घटियो का शब्द वर्णन नही किया जाता था, सेवको के हाथो मे सीधी झडियाँ फहरा रही थी। ममखरे लोग जो ठठोली करने मे चतुर और सुन्दर गाने मे प्रवीण थे, भाँति-भाति के खेन करते जाते थे।

दोहा—तुरँग नचावहि कुअँर वर, अकनि मृदग निशान।
नागर नट चितवहि चकित, डगहिं न ताल बिधान ।। ३०२ ।।

अर्थ—चतुर कुमार मृदग और नगाडो की ध्वनि सुन घोडो को नचाते थे जिनको देखकर चतुर नट चकित होते थे क्योकि वे ताल की गति को न चूकते थे।

---

१ चले महीपति शख बजाई—बडे-बडे शुभ कार्यो के आरभ मे तथा ऐसे कार्यो मे जहाँ अगणित समाज को आज्ञा देना दूसरे प्रकार से कठिन था, वहाँ पर शखध्वनि करते थे, जैसा यहाँ पर बरात के प्रस्थान की सूचना के निमित्त किया गया था। इसी प्रकार महाभारत मे युद्ध के आरभ मे भी श्रीकृष्ण आदि ने अपने-अपने शख बजाये थे, इसका अनुकरण आजकल तुरही या बिगुल बजाकर किया जाता है।

२. करहिं विदूषक कौतुक नाना—हासकुशल कलगान सुजाना—
एक विदूषक ने बरात की तैयारी की अद्भुत छटा उतारी थी—

३
तिताला—पपिहरा पिउ की बोली न बोलो।
हाथी पर हौदा अरु घोडे पर जीन।
काली मुर्गी पर डका बजावे देवीदीन ।।
३ ३
गोरी सरारारादन ।। १ ।। पपिहरा ।।

और दूसरे विदूषक ने वृद्धावस्था मे विवाह की कुरीति के विषय मे यो दिल्लगी उडाई—

बुढऊ कौन कुमति उपजाय, बनरा बने ब्याहने जाते।
बीती उमर पचासक साल, सन हो गये सीस के बाल,
करते कन्या वृथा हलाल, पापो से नही भय खाते ।। १ ।। →

बनै न वर्णत बनी बराता[१]। होहिं सगुन सुंदर शुभ दाता ।।
चारा चाषु वाम दिशि लेई[२]। मनहुँ सकल मंगल कहि देई ।।

अर्थ—बरात इस प्रकार से सजाई गई थी कि उसका वर्णन करते नहीं बनता, बहुत से शुभदायक शकुन होते थे। नीलकंठ पक्षी बाई ओर चुँग रहा था मानो वह सम्पूर्ण मंगल कहे देता हो।

दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुलदरश सब काहू पावा ।।
सानुकूल वह त्रिविध बारी। सघट सबाल आव वर नारी ।।

अर्थ—दाहिनी ओर सुन्दर खेत में कौआ शोभा दे रहा था और निउले के दर्शन सब किसी को हुए। समय के अनुसार तीन प्रकार की (शीतल, मंद, सुगंधित) पवन चलने लगी, सौभाग्यवती स्त्रियाँ बालक या भरे घड़ा लिये आती थीं।

लोवा फिरि फिरि दरश दिखावा। सुरभी सन्मुख शिशुहि पियावा[३] ।।
मृगमाला फिरि दाहिनि आई। मंगलगण जनु दीन्ह दिखाई।

घर में सभी तरह सुख सार, बेटा बहू दिये करतार,
इनको सूझि गई ससुरार, घर पै आफत बेल जमाते ।। २ ।।
मग में देख हँसैं सब लोग, गाली देते कर कर सोग,
इनको शर्या भजन में भोग, ऐसे महा मोह मदमाते ।। ३ ।।
ऐसे कूढ़ों को धिक्कार, जो कर रहे बुरे व्यवहार,
कहता कर जोरे "हरपाल", सुन लो यही जगत के नाते ।। ४ ।।

१. बनै न वर्णत बनी बराता—रामस्वयम्वर से—

चौबोला—कनक रजत के रत्न खचित युत हौदन तयों अंबारी।
झूलैं बरतारिन की झूलैं दश हजार गज भारी ।।
पंच लक्ष अति स्वच्छ साज के गच्छे दक्ष सवारा।
मन्मथ कृत मनु तीन लक्ष रथ पथ पर रहहिं तयारा ।।
अहलादे दश लक्ष पयादे जादे नख शिख सोहे।
चलहिं विख्यात बरात संग महँ जिन लजात सुर जोहे ।।
वृषभ शकट अरु ऊँट जूट बहु खच्चर खेचर खासे।
रत्न जाल की विविध पालकी तिमि नालकी कलासे ।।
रघुकुल के सब राजकुमारन सुकुमारन बुलवाई।
लिये बरात संग करि सादर निउतो भवन पठाई ।।
कवि कोविद वंदीजन सज्जन सुहृद सखा अति प्यारे।
परिजन पुरजन गुरुजन लघुजन चले स्वरूप सँवारे ।।

२. चारा चाषु बाम दिशि लेई—

श्लोक—भारद्वाज मयूरानाम् चाशस्य नकुलस्य च।
इत्येतद्दर्शनम् पुण्यं वाम भागे विशेषतः ।।

अर्थात् भारद्वाज पक्षी, मोर, नीलकंठ और निउला—इनके दर्शन ही शुभ हैं परन्तु बाईं ओर विशेष शुभदायक हैं।

३. सुरभी सन्मुख शिशुहि पियावा—कहावत प्रसिद्ध है कि—

सन्मुख धेनु पियावहि बच्छा। इन ते सगुन और नहिं अच्छा ।।

अर्थ—लोखरी बारबार दिखाई पडती थी और सामने ही गाय बछडे को दूध पिला रही थी। हरिणो का झुड विचरता हुआ दाहिनी ओर आ गया सो मानो मगलमय समाज ही दीख पडा।

छेमकरी कह छेम बिसेखी। श्यामा वाम सुतरु पर देखी ॥
सन्मुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ विप्र प्रवीना ॥

अर्थ—सगुनचिरैया विशेष कुशल कह रही थी और श्यामा पक्षी को सुन्दर वृक्ष पर बाईं ओर देखा। लोग सामने ही दही तथा मछलियाँ लिये हुए आ रहे थे और दो वेदपाठी ब्राह्मण हाथ मे पोथियाँ लिये आ रहे थे।

दोहा—मंगलमय कल्याणमय, अभिमत फलदातार ।
जनु सब साँचे होन हित, भये सगुन इक बार[१] ॥ ३०३ ॥

अर्थ—मगल और कल्याण के देने वाले तथा मनमाना फल देने वाले सब शकुन मानो सत्य ठहरने के लिए एक बार ही दिखाई दिये। भाव यह कि ये सब शकुन उत्तम तो थे परन्तु उन्होने रामचन्द्रजी की बरात के सम्मुख आकर अपनी अमत्यता को पुष्ट किया अर्थात् सब लोगो ने जान लिया कि ये सब शकुन भले ही है क्योकि इनके होने ही से रामचन्द्रजी के विवाह सरीखा परम आनन्द परिपूर्ण रूप से हुआ।

मगल सगुन सुगम सब ता के। सगुन ब्रह्म सुदर सुत जा के ॥
राम सरिस वर दुलहिन सीता। समधी दशरथ जनक पुनीता[२] ॥

---

१ मगलमय कल्याणमय, अभिमत फलदातार ' भये सगुन इक बार—ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के गणेश खण्ड के ३३वे अध्याय मे जो अगणित शकुन परशुरामजी को यात्रा समय हुए थे उनमे से बहुत ही थोडे उद्धृत किये जाते है—

श्लोक—गच्छन् ददर्श रामश्च, यात्रा मगलसूचकम् ।
दधि लाज शुक्ल धान्य, शुक्ल पुष्प च कुकुमम् ॥
धेनु वत्स प्रयुक्ताच, रथस्थ भूमिप तथा ।
ज्वलत्प्रदीप विभ्रन्ती, पति पुत्रवती सतीम् ॥
शिव शिवा पूर्ण कुभ, चाप च नकुल तथा ।
खद्यो मास सजीव च, मत्स्य शख सुवर्णकम् ॥
मृग वेश्या च भ्रमर, कर्पूर पीत बाल सम् ।
गोमूत्र गोपुरीष च गोधूलि गोपदाकितम् ॥
सुगन्धि वायोराघ्राण, प्राप विप्राशिष शुभम् ।
इत्येतन्मगल ज्ञात्वा, प्रययौ समुदान्वित ॥

अर्थात् परशुरामजी ने चलते समय यात्रा मे मगल सूचित करने वाले ये पदार्थ देखे—दही, लाई, सफेद अन्न, सफेद फूल, रोली, बछडा सहित गाय और रथ पर चढा हुआ राजा। सौभाग्यवती और पुत्रवती स्त्री अपने हाथ मे जलता हुआ दीपक लिये जाती थी। शकर, गौरी की मूर्ति और भरा हुआ घडा, धनुष और नेउला। ताजा मास, जीवित मछलियाँ, शख और सोना। मृगा, वेश्या, भौरा, कपूर और पीला वस्त्र गोमूत्र गौ का गोबर गाय को खुरो से उठी हुई धूल। सुगन्धित वायु और ब्राह्मण का शुभ आशीर्वाद। ऐसे-ऐसे मगलो को समझकर परशुरामजी ने प्रसन्नतापूर्वक प्रस्थान किया।

२ राम सरिस वर दुलहिन सीता। समधी दशरथ जनक पुनीता—

क० भले भूप कहत भले भदेश भूपन सो लोक लखि बोलिये पुनीत रीति मारखी।
जगदम्बा जानकी जगतपितु रामभद्र जानि जिय जो हो जो न लागे मुँह कारखी ॥→

अर्थ—जिसके शरीरधारी परमात्मा सरीखे सुपुत्र है उसको सम्पूर्ण कल्याण और शकुन सहज ही है। राम सरीखे दुलहा, सीता सरीखी दुलहिन और दशरथ तथा जनक सरीखे पुण्यवान् समधी है।

सुनि अस ब्याह सगुन सब नाचे। अब कीन्हे विरचि हम साँचे ॥
इहि विधि कीन्ह बरात पयाना। हय गय गाजहि हनहि निशाना ॥

अर्थ—ऐसे ब्याह को सुनकर सब शकुन आनन्द मे मग्न हो गये कि अब हम सबको विधाता ने सच्चा सिद्ध कर दिया। इस प्रकार बरात ने कूच किया, हाथी-घोडे शब्द कर रहे थे और नगाडे बज रहे थे।

आवत जानि भानुकुलकेतू। सरितन्ह जनक बँधाये सेतू ॥
बीच बीच वर बास बनाये। सुरपुर सरिस संपदा छाये ॥

अर्थ—(दूतो के द्वारा) सूर्यकुल श्रेष्ठ दशरथजी का आगमन जानकर जनकजी ने नदियो के पुल बँधवा दिये, (मार्ग मे) स्थान-स्थान पर उत्तम निवास स्थान बनवाये जहाँ पर देवलोक के समान द्रव्य आदि का सुभीता था।

अशन शयन वर वसन सुहाये। पावहि सब निज निज मनभाये ॥
नित नूतन सुख लखि अनुकूले। सकल बरातिन मदिर भूले ॥

अर्थ—सब लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार भोजन, विश्राम और उत्तम-उत्तम वस्त्र पाते थे। सब बरात वाले नित नया आनन्द भोगते हुए अपने घरो का सुख भूल गये।

दोहा—आवत जानि बरातवर, सुनि गहगहे निशान।
सजि गज रथ पदचर तुरँग, लेन चले अगवान ॥ ३०४ ॥

अर्थ—नगाडो का भारी शब्द सुनते ही शुभ बरात का आगमन समझ हाथी, रथ, पैदल, घोडे सजकर अगवानी उसे लेने को चले।

कनक कलश भरि कोपर थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा ॥
भरे सुधा सम सब पकवाने। भाँति भाँति नहि जाहि बखाने[१] ॥

अर्थ—स्वर्ण के भरे हुए कलश, कोपर, थार और नाना प्रकार के उत्तम बर्तनो मे अमृत की नाई इतने पकवान भरे थे कि जिनका वर्णन नही हो सकता।

फल अनेक वर वस्तु सुहाई। हर्षि भेट हित भूप पठाई ॥
भूषण वसन महामणि नाना। खग मृग हय गय बहुविधि याना ॥

अर्थ—बहुत से फल और उत्तम सुहावनी वस्तुएँ राजाजी ने प्रसन्न होकर भेट के निमित्त भेजी। अलकार, वस्त्र, भाँति-भाँति की बडी-बडी मणियाँ, पक्षी, हरिण, घोडा, हाथी और भाँति-भाँति की सवारियाँ (भेजी)।

मंगल सगुन सुगंध सुहाये। बहुत भाँति महिपाल पठाये ॥

देखे है अनेक ब्याह सुने है पुराण वेद बूझे है सुजान साधु नर नारि पारखी।
ऐसे सम समधी समाज न विराजमान राम से न वर दुलही न सीय सारखी ॥

१. भाँति भाँति नहिं जाहिं बखाने—पूरी-कचौरी और जो अनेक पकवान भेजे गये थे उसमे कचौडी की प्रशसा तो सुनिये—

एला लवग लवणार्द्रक हिंगु जीरमर्षानि पिष्ट परि पूरित शुद्ध गर्भा।
सख्या स्वकीय रमणी रचिते सुगधे हे हे कचौरि घृत चौरि नमो नमस्ते ॥

दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि काँवरि चले कहारा।।

अर्थ—राजाजी ने अनेक प्रकार के मगलीक, शकुन के तथा सुगन्धित पदार्थ पहुँचाये। कहार लोग काँवरो मे भरकर दही, चिउरा और भी भेट की कई वस्तुएँ ले चले।

अगवानन्ह जब दीख बराता। उर आनन्द पुलक भर गाता।।
देखि बनाव सहित अगवाना। मुदित बरातिन हने निशाना।।

अर्थ—जब अगवानियो ने बरात को देखा तो हृदय मे ऐसा आनन्द भर गया कि शरीर के रोम खडे हो गये। जब बरात वालो ने अगवानी ठाट-बाट देखा तब तो उन्होने प्रसन्न होकर नगाडो पर चोब दी।

दोहा—हरषि परस्पर मिलनहित, कछुक चले बगमेल।
जनु आनन्द समुद्र दुइ, मिलत बिहाइ सुबेल[1] ।। ३०५ ।।

अर्थ—(दोनो ओर के लोग) प्रसन्नता से आपस मे भेट करने के हेतु कुछ-कुछ आगे बढे। मानो आनन्द के दो समुद्र अपनी सीमा छोडकर मिलने जा रहे हो।

बरषि सुमन सुरसुन्दरि गावहि। मुदित देव दुन्दुभी बजावहि।।
वस्तु सकल राखी नृप आगे। विनय कीन्ह तिन अति अनुरागे।।

अर्थ—देवताओ की स्त्रियाँ फूल बरसा कर गीत गाती थी और देवता प्रसन्न होकर नगाडे बजाते थे। अगवानियो ने सब पदार्थ राजा दशरथजी के सामने ला रखे और प्रेमपूर्वक उनसे (उन्हे स्वीकार करने के हेतु) विनती की।

प्रेम समेत राय सब लीन्हा। भइ बकसीस याचकन्ह दीन्हा।।
करि पूजा मान्यता बडाई। जनवासे कहँ चले लिवाई।।

अर्थ—राजाजी ने प्रीतिपूर्वक सब पदार्थ ले लिये और भिखारियो को भी बहुत कुछ दे डाला। फिर (अगवानी लोग) उनका पूजन, सम्मान और बडाई करके जनवासे की ओर लिवा ले चले।

वसन विचित्र पाँवडे परही। देखि धनद धनमद परिहरही।।
अति सुन्दर दीन्हेउ जनवासा। जहँ सब कहँ सब भाँति सुपासा।।

अर्थ—ऐसे अनोखे-अनोखे कपडो के पावडे बिछाये गये थे कि जिनको देखकर कुबेर भी अपनी सपत्ति का घमड भूल गये थे। बहुत ही रमणीक जनवासा दिया गया जहाँ सबको सभी प्रकार का सुभीता था।

जानी सिय बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगट जनाई।।
हृदय सुमिरि सब सिद्धि बुलाई। भूपपहुनई करन पठाई।।

अर्थ—जब सीताजी ने समझ लिया कि बरात नगर मे आ गई तो अपनी थोड़ी-सी महिमा कर दिखाई। हृदय मे ध्यान करके सब सिद्धियो को बुलाया और राजा दशरथजी की पहुनई के लिए भेजा।

---

१. हरषि परस्पर मिलनहित ···मिलत बिहाइ सुबेल—स्मरण रहे कि समुद्र की लहरे अपनी सीमा का उल्लघन कर आगे नही जाती, परन्तु कविजी यहाँ पर बरातियो और जनानियो को अपना अपना समाज छोडकर परस्पर मिलने के प्रसग की उपेक्षा यो करते है कि मानो दो समुद्र की लहरे अपनी सीमाओ को छोडकर आगे बढ़ गई हो।

दोहा—सिधि सब सिय आयसु अकनि, गई जहाँ जनवास ।
लिये सपदा सकल सुख, सुरपुर भोग विलास ।। ३०६ ।।

अर्थ—सीताजी की आज्ञा सुनकर सब सिद्धियाँ अपने साथ देवलोक मे भी सुख-चैन देने वाले ऐश्वर्य और सम्पूर्ण आनन्दो को लिये हुए वहाँ गई जहाँ पर जनवासा था ।

निज निज वास विलोकि बराती । सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती ।।
विभव भेद कछु कोउ न जाना । सकल जनक कर करहि बखाना ।।

अर्थ—बरात वाले अपने-अपने निवास-स्थान मे देवताओ के योग्य सम्पूर्ण आनन्द सब प्रकार से सहज ही मे प्राप्त हुआ देखते थे । इस ऐश्वर्य का कारण किसी को न समझ पडा, सब लोग तो जनकजी ही की बडाई करते थे ।

सियमहिमा रघुनायक जानी । हरषे हृदय हेतु पहिचानी ।।
पितु आगमन सुनत दोउ भाई । हृदय न अति आनन्द समाई ।।

अर्थ—सीताजी की महिमा रघुनाथजी ने जानी तो उनके अभिप्राय को समझ हृदय मे प्रसन्न हुए । पिताजी का आना सुनते ही दोनो भाई आनद मे फूले न समाते थे ।

सकुचत कहि न सकत गुरु पाही । पितु दर्शन लालच मन माही ।।
विश्वामित्र विनय बडि देखी । उपजा उर सतोष बिसेखी ।।

अर्थ—पिताजी के देखने की मन मे अभिलाषा तो थी पर सकोचवश गुरुजी से कह नही सकते थे । विश्वामित्रजी ने जब इस भारी नम्रता को देखा तब तो उनके हृदय मे विशेष आनद हुआ ।

हरषि बन्धु दोउ हृदय लगाये । पुलक अग अबक जल छाये ।।
चले जहाँ दशरथ जनवासे । मनहुँ सरोवर तकेउ पियासे ।।

अर्थ—प्रेमपूर्वक दोनो भाइयो को अपने हृदय से लगा लिया, शरीर रोमाचित हो उठा और नेत्रो मे जल भर आया । जहाँ जनवासे मे दशरथजी थे वहाँ को चल दिये, मानो प्यासे मनुष्यो ने तालाब देख लिया हो ।

दोहा—भूप विलोके जबहि मुनि, आवत सुतन्ह समेत ।
उठे हरषि सुखसिधु महँ, चले थाह सी लेत ।। ३०७ ।।

अर्थ—जब दशरथजी ने विश्वामित्रजी को राजकुमारो समेत आते देखा, तब तो वे प्रसन्नतापूर्वक उठे और ऐसे चले कि मानो सुखरूपी समुद्र की तली को ढूँढते हो (भाव यह कि पानी मे तैरनेवाला उसकी थाह ढूँढने के निमित्त धीरे-धीरे पाँव के अगले भाग को कुछ-कुछ बढाता है फिर पूरा पैर रख देता है । इसी प्रकार दशरथजी प्रेम मे मग्न हो विश्वामित्रजी की ओर जा रहे थे । सो उनकी दृष्टि तो रामचन्द्रजी मे लगी थी, इस हेतु उनके पैर मार्ग मे धीरे-धीरे पडते थे और उनके आडे टेढे पडने का उन्हे कुछ भान ही न था) ।

मुनिहि दंडवत कीन्ह महीसा । बार बार पदरज धरि सीसा ।।
कौशिक राउ लिये उर लाई । दै असीस पूछी कुशलाई ।।

अर्थ—राजा दशरथजी ने विश्वामित्रजी की चरणरज को अनेक बार अपने मस्तक पर धारण कर उन्हे प्रणाम किया । विश्वामित्रजी ने राजाजी को हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद देकर कुशल-क्षेम पूछी ।

पुनि दडवत करत दोउ भाई । देखि नृपति उर सुख न समाई ।।

सुत हिय लाइ दुसह दुख मेटे। मृतकशरीर प्राण जनु भेटे[1] ।।

अर्थ—फिर दोनो भाइयो को प्रणाम करते देखकर राजाजी के हृदय मे आनद समाता न था। पुत्रो को हृदय से लगाकर (पुत्र विछोह रूपी) भारी दु ख को भूल गये मानो मुर्दे मे जान आ गई हो।

पुनि वशिष्ठपद सिर तिन नाये। प्रेम मुदित मुनिवर उर लाये।।
विप्रवृन्द वन्दे दुहुँ भाई। मनभावती असीसै पाई।।

अर्थ—फिर उन्होने वशिष्ठजी के चरणो मे सिर नवाया तो मुनिश्रेष्ठ ने प्रेमपूर्वक प्रसन्न हो उन्हे अपने हृदय से लगा लिया। फिर दोनो भाइयो ने सब ब्राह्मणो को प्रणाम किया और उनसे मनमाने आशीर्वाद पाये।

भरत सहानुज कीन्ह प्रणामा। लिये उठाइ लाइ उर रामा।।
हरषे लषन देखि दोउ भ्राता। मिले प्रेमपरिपूरित गाता।।

अर्थ—भरतजी ने शत्रुघ्न सहित रामचन्द्रजी को प्रणाम किया तो उन्होने इनको उठाकर हृदय से लगा लिया। दोनो भाइयो को देखकर लक्ष्मणजी प्रसन्न हुए और प्रेम से परिपूर्ण होकर मिले।

दोहा—पुरजन परिजन जातिजन, याचक मंत्री मीत।
मिले यथाविधि सबहि प्रभु, परमकृपालु विनीत ।।३०८।।

अर्थ—बडे दयालु और नम्र स्वभाव वाले रामचन्द्रजी नगर निवासियो, कटुम्बियो, जाति भाइयो, याचको, मत्रियो और मित्रो आदि सब ही से यथोचित रीति से मिले।

रामहि देखि बरात जुडानी। प्रीति कि रीति न जाति बखानी।।
नृपसमीप सोहहि सुत चारी। जनु धन धर्मादिक तनुधारी।।

अर्थ—रामचन्द्रजी को देख बरात वालो के हृदय शात हुए, उस समय के प्रेमभाव का वर्णन नही किया जा सकता। दशरथजी के समीप चारो पुत्र इस प्रकार शोभा दे रहे थे कि मानो अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष शरीर धारण करके उनका सर्वस्व-धन ही बन गये हो।

सुतन्ह समेत दशरथहि देखी। मुदित नगर नर नारि बिसेखी।।
सुमन वरषि सुर हनहि निशाना। नाकनटी नाचहिं करि गाना।।

शब्दार्थ—नाकनटी (नाक=स्वर्ग+नटी=नाचने वाली)=स्वर्ग मे नाचने वाली अर्थात् अप्सरा।

अर्थ—नगर के स्त्री-पुरुष राजा दशरथ को सुतो सहित देखकर बहुत प्रसन्न हुए। देवता फूलवर्षा कर नगाडे बजाते थे और अप्सराये गीत गाकर नाच रही थी।

सतानद अरु विप्र सचिवगन। मागध सूत विदुष वंदीजन[2] ।।

---

१. सुत हिय लाइ दुसह दुख मेटे। मृतकशरीर प्राण जनु भेटे—पुत्र विछोह का शोक ससार मे प्राणी को मृतक के समान बना देता है। इसी दशा को गोस्वामीजी यो दर्शाते है कि उन्ही बिछुडे हुए राम-लक्ष्मण से मिलते ही राजा दशरथजी के जी मे जी आ गया।

२. मागध सूत विदुष वदीजन—आनन्द रघुनन्दन नाटक से—

कई रग पावलाल चन्दन ललाट लाग अकुश बँधो है जामे भालो लिये हाथ मे।
कम्मरकटारी कठ कठुला कुकाठधारी याही भाँति औरो भाट केते लिये साथ मे।।
आशिष समूह बढै छन्दन के ब्यूह बाँधि पावत अनन्द लोग रसन के गाथ मे।
करत प्रणाम बार-बार 'विश्वनाथ' आवै सब तकि धारै दोनों हाथ निज माथ मे।।

सहित बरात राउ सनमाना। आयसु माँगि फिरे अगवाना ।।

अर्थ—सतानद (पुरोहित), ब्राह्मण, मन्त्री लोग, भाट, पौराणिक पण्डित और यश वर्णन करने वाले सब अगवानियो ने दशरथजी सहित सब बरातियो का सत्कार किया और आज्ञा माँगकर लौट आये।

प्रथम बरात लगन ते आई[१] । ता ते पुर प्रमोद अधिकाई ।।
ब्रह्मानंद लोग सब लहही। बढइ दिवस निशि विधि सन कहही ।।

अर्थ—नियमित तिथि से पहले ही बारात आ गई थी, इस हेतु नगर मे अधिक आनन्द छाया था। सब लोग मानो ब्रह्म के मिल जाने का आनन्द पा रहे थे और ब्रह्मा से यह प्रार्थना करते थे कि दिन-रात बढा दीजिये (दिन-रात बढाने के दो भाव हो सकते है (१) यह कि दिन-रात का समय बहुत बढ जावे, (२) यह कि लग्न का समय कोई दूसरा कुछ दिन और भी बढाकर रख दिया जाय)।

दोहा—राम सीय शोभाअवधि, सुकृतअवधि दोउ राज।
जहँ तहँ पुरजन कहहि अस, मिलि नर नारि समाज[२] ।।३०६।।

अर्थ—नगर के निवासी स्त्री-पुरुष अपने-अपने समाज मे सभी ठौर यही चर्चा करते थे कि रामचन्द्र और सीताजी तो सुन्दरता की हद है और दोनो राजा सत्कर्मों की सीमा है (अर्थात् राम और सीता से बढकर कोई रूपवत नही और न दोनो महाराजाओ मे बढकर कोई पुण्यात्मा है)।

जनकसुकृत मूरति वैदेही। दशरथसुकृत राम धरि देही ।।
इन सम काहु न शिव अवराधे। काहु न इन समान फल साधे[३] ।।

अर्थ—जनकजी के उत्तम कर्मों का फल ही मानो साक्षात् सीताजी है और दशरथजी के सत्कर्म ही मानो रामरूप धारण कर आये है। इनके समान किसी ने शिवजी की ऐसी भक्ति नही की और न किसी ने इनकी नाई फल पाये।

इन सम कोउ न भयउ जग माही। है नहि कतहुँ होनेउ नाही ।।
हम सब सकल सुकृत की रासी। भे जग जन्मि जनकपुर वासी ।।

अर्थ—इनके समान ससार मे कोई नही हुआ है और न कही होने वाला है। हम सब जनकपुर निवासी भी जगत मे जन्म लेकर सत्कर्मों के भडार हुए।

जिन जानकी राम छवि देखी। को सुकृती हम सरिस बिसेखी ।।
पुनि देखब रघुवीर विवाहू। लेब भली विधि लोचनलाहू ।।

---

१ प्रथम बरात लगन ते आई—पाणिग्रहण का मुहूर्त्त अगहन सुदी पचमी को था और बरात अवधपुर से कार्तिक बदी ८ को चलकर कार्तिक बदी १३ को जनकपुर मे आ गई अर्थात् लग्न वेला से एक महीना सात दिन पहले बरात आ गई थी।

२. जहँ तहँ पुरजन कहहि अस, मिलि नर नारि समाज—

क०—आवति सवारी सुनि कोशलकुमार वारी मिथिला की नारिन के वृन्द ते ठठकि रहे।
धवल अगारन पै उन्नत सुढारन पै देखिबे को तिन वारे लोचन अटकि रहे ।।
कहै "मणिदेव" केती बालन के बालन के अलकै सँघट ऐसी भाँति सो लटकि रहे।
मेघ मे सरदवारे मानो चचलान पर साँवरे जलदवारे धोरवा छटकि रहे ।।

३. "साधे" का पाठान्तर "लाधे" भी है जिसका अर्थ "पावना" है।

अर्थ—हमारे समान विशेष सत्कर्मी कौन है जिन्होने सीता और रामचन्द्रजी के स्वरूपो का दर्शन किया और इसके सिवाय अब रामचन्द्रजी का विवाह देखकर अपने नेत्रो का लाभ भली भाँति उठावेगे ।

कहहि परस्पर कोकिलबयनी । इहि विवाह बड लाभ सुनयनी ।।
बडे भाग्य विधि बात बनाई । नयनअतिथि हुइहहि दोउ भाई ।।

अर्थ—सुभाषिणी और मृगनयनी आपस मे यही कहती थी कि इस विवाह से यही बडा लाभ है कि दोनो भाई हमारे नेत्रो के पाहुने बनेगे, यह सुअवसर विधाता ने बडे भाग्य से दिया है ।

दोहा—बारहिबार सनेहवश, जनक बुलाउब सीय[1] ।
लेन आइहहि बधु दोउ, कोटि काम कमनीय ।।३१०।।

अर्थ—जनकजी प्रेम के कारण सीताजी को बारबार बुलवावेगे, तब करोडो कामदेव की शोभा से भरे हुए दोनो भाई उन्हे लिवाने को आया करेगे ।

विविध भाँति होइहि पहुनाई । प्रिय न काहि अस सासुर माई[2] ।।
तब तब राम लषनहि निहारी । होइहहि सब पुरलोग सुखारी ।।

अर्थ—नाना प्रकार से उनकी पहुनाई होगी, हे माता ! कहो ऐसी ससुराल किसे प्यारी न लगेगी ? उसी समय सब नगर निवासी राम-लक्ष्मण को देख सुखी होवेगे ।

सखि जस राम लषन कर जोटा । तैसेइ भूप सग दुइ ढोटा ।।
श्याम गौर सब अग सुहाये । ते सब कहहि देखि जे आये ।।

अर्थ—हे सखी ! वे सब लोग जो देख आये है सो कहते है कि जिस प्रकार राम और लक्ष्मण की जोडी है उसी प्रकार राजा के सग और दो पुत्र है जो श्यामले और गोरे रग के सब अगो से सुडौल है ।

कहा एक मै आजु निहारे । जनु विरंचि निज हाथ सॅवारे ।।
भरत रामही की अनुहारी । सहसा लखि न सकहि नरनारी ।।

अर्थ—एक सखी कहने लगी कि मैने आज ही उनको देखा है, मानो ब्रह्मा ने अपने हाथ ही से उन्हे बनाया हे । भरत तो हूबहू राम ही के सदृश है, उन्हे कोई भी स्त्री-पुरुष एकाएकी नही पहचान सकता ।

लषन शत्रुसूदन इकरूपा । नख सिख ते सब अग अनूपा ।।

---

१ बारहिबार सनेहवश, जनक बुलाउब सीय—माता की ममता तथा निज प्रेम के कारण जनकजी सीता को बारम्बार बुलावेगे । कारण कितना ही सुख ससुराल मे क्यो न हो, पुत्री भी पिता के भवन को माता के अगाध प्रेम आदि के कारण भूलती नही, यथा—

सवैया—सुन्दर रूप तिया मन जानकि लोक औ वेद की मेड न मेटी ।
औधपुरी सुख सपति सो रजधानी सदा लछना सो लपेटी ।।
सूर किशोर बनाय विरचि सनेह की बात न जात है मेटी ।
कोटिक जो सुख है ससुरारि तो बाप को भौन न भूलत बेटी ।।

२ विविध भाँति होइहि पहुनाई । प्रिय न काहि अस सासुर माई—जैसा कहा है कि "ससुर-पुर निवास स्वर्ग तुल्य नराणाम् ।"
भाव यह कि ससुरारि सुख की सार । (जो रहै दिना दुइ चार) ।

मन भावहि मुख बरनि न जाही। उपमा कहँ त्रिभुवन कोउ नाहीं ॥

अर्थ—लक्ष्मण और शत्रुघ्न जिनके पैर से सिर तक सब अग उपमा रहित हे, एक ही से रूप वाले है। मन मे तो रुचते है परन्तु मुख से कहने मे नही आते, (कारण) तीनो लोक मे कोई नही है जिससे इनकी पटतर देवे।

छंद—उपमा न कोउ कह दास तुलसी, कतहुँ कवि कोविद कहै[१]।
बल विनय विद्या शील शोभा, सिधु इन से एइ अहै ॥
पुरनारि सकल पसारि अचल, विधिहि वचन सुनावही।
ब्याहिय सुचारिउ भाइ इहिपुर, हम सुमगल गावही ॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते है कि कवि और पण्डितो का कथन है कि इनकी उपमा के लिए कोई भी कही पर नही है, शक्ति, नम्रता, विद्या, शील और शोभा के समुद्र इनके समान ये ही हैं। जनकपुर की स्त्रियाँ आँचल पसारकर ब्रह्मा से विनती करती थी कि सुन्दर मगलगीत गावे।

सोरठा—कहहि परस्पर नारि, वारि विलोचन पुलक तनु।
सखि सब करब पुरारि, पुन्यपयोनिधि भूप दोउ ॥३११॥

अर्थ—नेत्रो मे आँसू भर और रोमाचित हो स्त्रियाँ आपस मे कहने लगी, हे सजनी ! शकरजी सब इच्छा पूर्ण करेगे, काहे से कि दोनो राजा पुण्य के समुद्र है।

इहि विधि सकल मनोरथ करही। आनँद उमगि उमगि उर भरही ॥
जे नृप सीय स्वयम्वर आये। देखि बधु सब तिन सुख पाये ॥
कहत रामयश विशद विशाला। निज निज भवन गये महिपाला ॥

अर्थ—इस प्रकार सब लोग विचार बाँधते रहते थे और आनन्द के उत्साह से चित्त को प्रसन्न करते थे। सीताजी के स्वयवर मे आये हुए जिन राजाओ ने चारो भाइयो को देखा उन्होने भी आनन्द मनाया। राजा लोग रामचन्द्रजी के निर्मल और भारी यश का वर्णन करते हुए अपने-अपने स्थानो को चले गये।

गये बीति कुछ दिन इहि भाँती। प्रमुदित पुरजन सकल बराती ॥
मंगल मूल लगन दिन आवा। हिमऋतु अगहन मास सुहावा[२] ॥

---

१. उपमा न कोउ कह दास तुलसी, कतहुँ कवि कोविद कहै—चाणक्य नीति से—

श्लोक—काष्ठ कल्पतरु सुमेर रचलश्चितामणि. प्रस्थर।
सूर्यस्तीव्रकर शशीक्षयकर. क्षारोहि वारानिधि ॥
कामोनष्ट तनुर्बलिर्दितिसुतो नित्य पशुः कामगौः।
नैतास्तेतुलयामि भो रघुपते कस्योपमा दीयते ॥

अर्थात् कल्पवृक्ष काठ है, सुमेर अचल है, चिन्तामणि पत्थर है, सूर्य की किरणे अत्यन्त उष्ण है, चन्द्रमा की किरणे क्षीण हो जाती है, समुद्र खारा है, कामदेव के शरीर नही है, बलि राजा दैत्य है, कामधेनु सदा पशु ही है—इस कारण आप के साथ इनकी उपमा नही दे सकते। हे रघुपति ! फिर आपको किसकी उपमा दी जावे ?

२. मंगल मूल लगन दिन आवा। हिमऋतु अगहन मास सुहावा—रामरसायन रामायण से—

दोहा—अगहन की सित पचमी, वृषभ लग्न भृगुवार।
सुखद समय गोधूलिका, राम विवाह विचार ॥

अर्थ—नगर निवासी तथा बरात वाले प्रसन्न चित्त रहते थे, इस भाँति कुछ समय व्यतीत हो गया। सब मगलो का मूल कारण विवाह का मुहूर्त्त अर्थात् हेमन ऋतु मे सुहावना अगहन महीना आया।

ग्रह तिथि नखत योग बर बारू। लगन शोधि विधि कीन्ह विचारू ॥
पठै दीन्हि नारद सन सोई। गनी जनक के गनकन्ह जोई ॥
सुनी सकल लोगन यह बाता। कहहि ज्योतिषी आहि विधाता ॥

अर्थ—ब्रह्मा उत्तम ग्रह, तिथि, नक्षत्र, योग, दिन और लग्न शोध कर विचार करने लगे और फिर वही लग्न नारद मुनि के हाथ भिजवा दी, जनक के ज्योतिषियो ने भी वही लग्न शोध कर रखी थी (जो ब्रह्मा ने शोध कर भेजी)। जब सब लोगो ने यह बात सुनी (कि ब्रह्मा और जनकजी के ज्योतिषियो की शोधी हुई लग्न एक ही ठहरी) तो वे कहने लगे, वाह! ज्योतिषी तो विधाता ही हो गये।

(विवाह का उत्सव)

दोहा—धेनुधूलि वेला विमल, सकल सुमगल मूल[१]।
विप्रन्ह कहेउ विदेह सन, जानि समय अनुकूल ॥३१२॥

अर्थ—ब्राह्मणो ने यह समझकर कि गोधूलि का समय शुद्ध तथा सम्पूर्ण मगलो का देने वाला है, जनक से कहा कि अब योग्य समय है।

उपरोहितहि कहेउ नरनाहा। अब विलब कर कारण काहा ॥
सतानन्द तब सचिव बुलाये। मगल सकल साजि सब ल्याये ॥

अर्थ—राजा जनक ने सतानन्द से कहा कि अब देरी करने का कौन-सा कारण है? तब सतानन्द ने मत्रियो को बुलाया जो सम्पूर्ण मगलीक द्रव्य ले आये।

शख निशान पणव बहु बाजे। मगल कलश शकुन शुभ साजे ॥
सुभग सुआसिनि गावहि गीता[२]। करहि वेदध्वनि विप्र पुनीता ॥

शब्दार्थ—सुभग = सौभाग्यवती। सुआसिनि = विवाहित कन्या जो पिता के घर हो।

अर्थ—शख, नगाडे, ढोल आदि बहुत से बाजे बजने लगे और मगलीक कलश तथा

---

१. धेनुधूलि बेला विमल, सकल सुमगल मूल—धेनुधूलि, जिसे बहुधा लोग गोधूलि कहा करते है, वह समय है जब कि गाये वन से चरकर गाँव के समीप आती है और उनके पद-प्रहार से जो धूल उडती है। वह प्रायः सध्या समय ही है जबकि अस्तमान सूर्य की कुछ किरणे भी दिखाई देती है।

क०—नाहिन बिचारन के बुरे तिथि बारन को निन्दित नक्षत्र के निषेध की प्रथा न है।
बन्यो विधान न अयोग योग कर्णन को मान्यो ना महूरत न बार को निदान है ॥
अष्टम सुथान के न शोधन को काम कछू जामित्रक आदि दोष हू को ना मिलान है।
नाथ नव खड मे विवाह के विधान बीच गोरज समान शुभ लग्न हू न आन है ॥

२. सुभग सुआसिनि गावहि गीता—प्रेम पीयूषधारा से—
धुन नई—सखी सियवर की रँगीली झाँकी।
निरखन चलुरी जनकसदन मे, नहिं कोउ जग उपमा है वा की ॥
पीत रंग को जामा पहिरे, सिर पगिया सोहै अति बाँकी।
"मोहनि दास" देखि मैं आई, मोहनि मूरति अवधलला की ॥

उत्तम शकुन की वस्तुये इकट्ठी की गई। सौभाग्यवती नगरकन्याएँ गीत गाती थी और वद पाठी ब्राह्मण वेद-ध्वनि कर रहे थे।

लेन चले सादर इहि भाँती। गये जहाँ जनवास बराती॥
कोशलपति कर देखि समाजू। अति लघु लाग तिनहि सुरराजू॥

अर्थ—इस प्रकार आदरपूर्वक लिवाने को चले और जनवासे मे जा पहुँचे जहाँ पर बरात वाले थे। महाराज दशरथजी का ठाट-बाट देखकर इन लोगो को इन्द्र का वैभव भी बहुत हलका जँच पडा।

भयउ समय अब धारिय पाऊ। यह सुनि परा निशानन्ह घाऊ॥
गुरुहि पूछ करि कुलविधि राजा। चले सग मुनि साधु समाजा॥

शब्दार्थ—घाऊ=चोब।

अर्थ—समय आ पहुँचा, अब पधारिये! इन शब्दो को सुनते ही नगाडो पर चोब पडने लगी। दशरथजी वशिष्ठजी से कुलाचार पूछकर मुनि मडली और साधुओ को साथ लेकर चले।

दोहा—भाग्यविभव अवधेश कर, देखि देव ब्रह्मादि।
लगे सराहन सहसमुख, जानि जन्म निज बादि॥ ३१३॥

अर्थ—ब्रह्मा आदि सब देवता महाराजा दशरथजी का भाग्य और ऐश्वर्य देखा तथा अपने जन्म को वृथा समझ मानो एक स्वर से सहस्रमुख वाले शेषनाग की सराहना करने लगे (कि धन्य है हजार मुँह और दो हजार जीभ वाले शेषनागजी को जो इनकी सराहना करने की योग्यता रखते है। हम दो-चार मुँह वाले कहाँ तक कर सकते है। लिखा है हितोपदेश मे कि 'एतस्य गुणस्तुतिं जिह्वा सहस्रेण यदि सर्पराज कदाचित् कर्त्तुं समर्थः स्यात्' अर्थात् इनकी स्तुति शेषनागजी हजारो जीभो से कदाचित् कर सके तो कर सके)।

सुरन्ह सुमगल अवसर जाना। बरषहि सुमन बजाइ निशाना॥
शिव ब्रह्मादिक विबुध बरूथा। चढ़े विमानन्ह नाना यूथा॥

अर्थ—देवताओ ने सुन्दर मगल का समय जानकर बाजे बजाय और फूल बरसाये। शिव, ब्रह्मा आदि सब देवगण नाना प्रकार के विमानो मे झुण्ड के झुण्ड बैठे थे।

प्रेम पुलक तन हृदय उछाहू। चले विलोकन राम विवाहू॥
देखि जनकपुर सुर अनुरागे। निज निज लोक सबहि लघु लागे॥

अर्थ—प्रेम के मारे शरीर के रोम खडे हो आये, हृदय मे उमग के साथ श्री रामचन्द्रजी का विवाह देखने चले। जनकपुर को देखकर देवगण मोहित हुए और उन सबों को अपना-अपना लोक तुच्छ समझ पडा।

चितवहिं चकित विचित्र विताना। रचना सकल अलौकिक नाना॥
नगर नारि नर रूपनिधाना। सुघर सुधर्म, सुशील सुजाना॥

अर्थ—अद्भुत मडप को देखकर भौचक से रह गये क्योंकि उसकी भाँति-भाँति की सम्पूर्ण रचना मृत्युलोक की रचना की नाई न थी। जनकपुर के स्त्री और पुरुष सब रूपवान्, चतुर, धर्मवान्, शीलवान् और ज्ञानवान् थे।

तिनहिं देखि सब सुरसुर नारी। भये नखत जनु विधु उजियारी॥

विधिहि भयउ आचरज बिसेखी[१] । निज करनी कछु कतहुँ न देखी ।।

अर्थ—उनको देखकर सम्पूर्ण देवता और उनकी स्त्रियाँ इस प्रकार तेजहीन पड गईं जैसे चन्द्रमा के उदय से तारागण (भाव यह कि जनकपुर के स्त्री-पुरुषो की सुन्दरता और छवि देवताओ से भी बढ-चढकर थी)। ब्रह्मा को भी बडा आश्चर्य हुआ जबकि उनने अपनी करतूति किसी स्थान मे भी न देखी (अर्थात् जनकपुर के स्त्री-पुरुषो की तथा मडप आदि की रचना कुछ ब्रह्मा की बनाई न थी, वह तो माया रूपधारिणी सीताजी की रचना थी)।

दोहा—शिव समझाये देव सब, जनि आचरज भुलाहु ।
हृदय विचारहु धीर धरि, सिय रघुवीर विवाहु ।। ३१४ ।।

अर्थ—शिवजी ने सब देवताओ को समझाया कि इस आश्चर्य मे मत भूलो, धीरज करके हृदय मे विचार करो, यह तो सीता-रामचन्द्रजी का विवाह है (अर्थात् यहाँ की रचना लौकिक नही है)।

जिन कर नाम लेत जग माही । सकल अमगल मूल नशाही ।।
करतल होहि पदारथ चारी । तेइ सियराम कहेउ कामारी ।।

अर्थ—कामदेव के शत्रु महादेवजी कहने लगे कि ये वही सीता-राम है कि ससार मे जिनका नाममात्र लेने से सम्पूर्ण बाधाये मिट जाती है और अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारो पदार्थ हाथ लग जाते है।

इहि विधि शभु सुरन्ह समझावा । पुनि आगे वर बसह चलावा[२] ।।
देवन्ह देखे दशरथ जाता । महामोद मन पुलकित गाता ।।

अर्थ—इस प्रकार शिवजी ने देवताओ को समझाया और फिर अपने उत्तम वाहन नादिया को आगे चलाया, देवताओ ने दशरथजी का परम आनन्दपूरित मन तथा रोमाचित शरीर देखा।

---

१. विधिहि भयउ आचरज बिसेखी—गीत रामायण से—

गीत—विस्मित लखि देव हृदय मडप शोभा घनी।
दुलहिन जग जननि जहाँ दूलह त्रिभुवन धनी ।।
मणिमय सब खभ रचे अतिशय सुखमा सनी।
प्रतिमा विरचे अनूप पचि पचि हीरन कनी ।।
तोरन महँ मुक्तमाल अनुपम उपमा बनी।
मानहुँ छविखानि विपुल अद्भुत प्रगटे गुनी ।।
सहसकोटि शम्भु शेष शारदा चहे भनी।
"महावीर" दास तौन पार पाइ है तनी ।।

२. पुनि आगे वर बसह चलावा—'कुमार सभव' मे कविवर कालिदासजी ने इसकी छटा यो उतारी है—

श्लोक—खे खेलगामी तमुवाह वाह, सशब्द चामीकर किकिणीक ।
तटाभिघातादिव लग्न पके, धुन्वन्मुहु प्रोतघने विषाणे ।।

अर्थात् शिवजी का खिलाडी बैल आकाश मार्ग से उन्हे ले चला। उस समय उसके गले की छोटी सोने की घटावली बजती जाती थी और वह आकाश मे बादलो को फाडता हुआ अपने सीगो को इस प्रकार बारम्बार कँपाता था, जिस प्रकार नदी की कगार को सीगो से खोदते समय सीगों पर लगी हुई मिट्टी को साँड़ सिर हिलाकर गिराता जाता है।

साधु समाज सग महिदेवा । जनु तनु धरे करहि सुख सेवा[१] ।।
सोहत साथ सुभग सुत चारी । जनु अपवर्ग सकल तनुधारी ।।

अर्थ—उनके साथ मे साधुओ और ब्राह्मणो के समाज ऐसे जान पडते थे कि मानो सम्पूर्ण 'सुख' स्वरूप धारण किये उनकी सेवा कर रहे हो। सग ही मे सुन्दर चारो पुत्र ऐसे शोभायमान थे मानो अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इन चारो अपवर्गो ने शरीर धारण कर लिये हो।

मरकत कनक बरन बरजोरी । देखि सुरन्ह भइ प्रीति न थोरी ।।
पुनि रामहि बिलोकि हिय हर्षे । नृपहि सराहि सुमन तिन वर्षे ।।

अर्थ—नीलमणि और सुवर्ण की नाई उत्तम दोनो जोडियो (अर्थात् राम और लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न) को देखकर देवताओ को बहुत आनन्द हुआ। फिर रामचन्द्रजी को देखकर हृदय मे और भी प्रसन्न हुए तथा राजा दशरथ की बडाई कर उन्होने फूल बरसाये।

दोहा—रामरूप नखशिख सुभग[२], बारहि बार निहारि ।
पुलकगात लोचनसजल, उमा समेत पुरारि ।। ३१५ ।।

अर्थ—पार्वती सहित शकरजी तो रामचन्द्रजी की छवि को सिर से पैर तक सुडौल बारबार देख-देखकर शरीर से रोमाचित हो नेत्रो मे प्रेम के आँसू भरते थे।

केकि कठ द्युति श्यामल अगा । तडित विनिन्दक वसन सुरगा[३] ।।
ब्याह विभूषण विविध बनाये । मगलमय सब भाँति सुहाये[४] ।।

अर्थ—मोर के कठ समान श्यामले अग की छवि थी, बिजली की निन्दा करने वाले रगीन वस्त्र थे। नाना प्रकार के मंगलीक, सब प्रकार से मनोहर ब्याह के आभूषण धारण किये हुए थे।

---

१. "सुख सेवा" का पाठान्तर "सुर सेवा" भी है जिसका अर्थ यह है कि देवगण सेवा कर रहे हो।

२ रामरूप नखशिख सुभग—जनक पच्चीसी से—

चौबोला—चारु जनेऊ पीत वसन बैजती माल श्याम तन मे।
करककण अरु पहुँची पहिरे रतन जडित चूटा कर मे ।।
गरे हार गज मुक्तायुत भृगुचिन्ह लसै तिनके उर मे।
कहै मडन श्रीपति मुकुट धरे हम देखे राम जनकपुर मे ।।

३ तडित विनिन्दक वसन सुरगा—वृहद्राग रत्नाकर से—

सवैया—जामा बन्यो जरतार सो सुन्दर लालहु बद अरु जर्द किनारी।
झालरदार बन्यो पटुका अरु मोतिन की छवि जात कहारी ।।
जैसी चाल चले गजराज कहे बलिहारी है मौज तिहारी।
देखत नयनन ताक रही झुक झाक झरोखन बांके बिहारी ।।

४. ब्याह विभूषण विविध बनाये। मगलमय सब भाँति सुहाये—जानकी मगल से—

बरवा—ब्याह विभूषण भूषित भूषण भूषण ।
विश्व विलोचन वनज विकासक पूषण ।।
मध्य बरात बिराजत अति अनुकूलेउ।
मनहुँ काम आराम कल्पतरु फूलेउ ।।

शरद विमल विधु बदन सुहावन । नयन नवल राजीव लजावन[1] ।।
सकल अलौकिक सुदरताई । कहि न जाइ मन ही मन भाई ।।

अर्थ—शरद् ऋतु के निर्मल चन्द्रमा के समान मुख था और नये कमल को लज्जित करने वाले नेत्र थे । सम्पूर्ण अनोखी शोभा थी, मन मे सुहावनी लगती थी परन्तु कहने मे नही आती थी ।

बधु मनोहर सोहहि सगा । जात नचावत चपल तुरगा[2] ।।
राजकुँअर वर बाजि नचावहि । वशप्रशसक विरद सुनावहि ।।

अर्थ—साथ ही मे मनभावने भाई सुशोभित थे जो चचल घोडो को नचाते जाते थे । राजकुमार उत्तम घोडो को नचाते जाते थे और वश की बडाई करने वाले प्रशसा करते जाते थे ।

जेहि तुरग पर राम बिराजे । गति विलोक खगनायक लाजे ।।
कहि न जाइ सब भाँति सुहावा । बाजिवेष जनु काम बनावा ।।

अर्थ—जिस घोडे पर रामचन्द्रजी विराजमान थे उसकी चाल को देखकर गरुड भी लज्जित हो जाते थे । वह सभी प्रकार से ऐसा मनोहर था कि कहा नही जाता मानो घोड़े का रूप ही कामदेव ने धारण कर लिया हो ।

छन्द—जनु बाजिवेष बनाय मनसिज राम हित अति सोहई ।
अपने सुवय बल रूप गुण गति सकल भुवन विमोहई ।।
जगमगत जीन जडाव जोति सुमोति मणि माणिक लगे[3] ।
किकिनि ललाम लगाम ललित विलोकि सुर नर मुनि ठगे ।।

अर्थ—मानो कामदेव घोडे का रूप धारण कर रामचन्द्रजी के हेतु बहुत शोभा दे रहा हो । वह अपनी सुन्दर अवस्था, बल, रूप, गुण और चाल से सम्पूर्ण ससार को मोहित कर रहा था । लगे हुए सुन्दर मोती, मणि और माणिक्र की ज्योति से जडाऊ जीन जगमगा रहा था ।

---

१. नयन नवल राजीव लजावन—कवि बिहारीलाल कृत 'नखसिख से'—
छन्द—लाल लाल डोरे कज हल द्यु ति तोरे लेत जग चित चोरे मनो मैन ही के ऐन है ।
मीन छवि छीन मृगशावक अधीन खजरीट बलहीन रवि चद जिय चैन है ।।
चकृत चकोर मन मुनिन के मोर श्याम रग घन घोर यो बिहारी सुख सैन है ।
कटि दुख द्वद फद आनद के कद वृ द रस प्रबद रामचद्र जी के नैन है ।।

२ बधु मनोहर सोहहि सगा । जात नचावत चपल तुरगा—
क०—बागो पीत फेटा पीत पटका पिछौरा पीत सोहै खौर पीत मन मोहै मौर पीत है ।
अगराग पीत वर भूषन अमोल पीत तून धनुबान औ कृपान म्यान पीत है ।।
साजित तुरग पीत सग निज सगी पीत विपुल बराती पीत साज सब पीत है ।
'रसिक बिहारी' चारु दूलह विलोकि चारौ श्याम श्वेत हरित सुरग भयो पीत है ।।

३. जगमगत जीन जडाव जोति सुमोति मणि माणिक लगे—रामनाथ प्रधान अवधवासी कृत—
जग वन्दन जेहि नाम जाहिरो रघुनन्दन को बाजी ।
ताको गुण छवि कहँ लग बरणौ जोहि होत मन राजी ।।
भूषित भूषण अग अदूषण पूषण हय लखि लाजै ।
चोटिन तनियाँ गुथी सुमनियाँ पग पैजनियाँ बाजै ।।

सुन्दर घटियो और मनोहर लगाम को देखकर देवता, मनुष्य और मुनि धोखा खा जाते थ।

दोहा—प्रभुमनसहि लवलीन मन, चलत बाजि छवि पाव।
भूषित उडुगन तड़ित घन, जनु वर वरहि नचाव[१] ।। ३१६ ।।

अर्थ—घोडा श्री रामचन्द्रजी के मन की लय मे अपने मन को लीन करके नाच रहा था सो इस प्रकार से सुशोभित हुआ था मानो तारागण और बिजली से शोभायमान मेघ उत्तम मोर को नचा रहा हो (यहाँ पर तारागण के स्थान मे भूपण है, बिजली के स्थान मे केशरिया बाना और मेघ के स्थान मे श्री रामचन्द्रजी है तथा मोर के स्थान पर घोडा है)।

जेहि वर बाजि राम असवारा। तेहि शारदहु न बरनै पारा ।।
शकर रामरूप अनुरागे। नयन पचदश अति प्रिय लागे ।।

अर्थ—जिस उत्तम घोडे पर रामचन्द्रजी सवार थे उसकी बडाई सरस्वती भी नही कर सकती थी। शिवजी रामरूप पर इस प्रकार मोहित हो गये कि उनको अपने पन्द्रह नेत्र बहुत प्यारे लगे (भाव यह कि शिवजी के पाच सिर है और प्रत्येक सिर मे तीन नेत्र है, इस हेतु पन्द्रह नेत्रो से रामरूप की शोभा दो नेत्रो वालो से मानो साढे सात गुणी देखते थे)।

हरि[२] हित सहित राम जब जोहे। रमासमेत रमापति मोहे ।।

अन्वय—रमा समेत रमापति (ने) जब हरि सहित राम हित से जोहे तो मोहे।

अर्थ—लक्ष्मीपति विष्णुजी ने जब घोडे समेत रामचन्द्रजी के रूप को प्रेम से देखा तो मोहित हुए (भाव यह कि हमारे ही रूपान्तर रामचन्द्रजी की इस समय घोडे पर कैसी अनुपम छटा है)।

निरखि रामछवि विधि हरषाने। आठे नयन जानि पछताने।
सुरसेनप उर बहुत उछाहू। विधि ते ड्यौढ विलोचन लाहू ।।

शब्दार्थ—सुरसेनप (सुर=देवता+सेन=सेना+प=रक्षा करना)=देवताओ की सेना के रक्षक, षडानन।

अर्थ—ब्रह्मा भी रामचन्द्रजी के सौंदर्य को देख प्रसन्न हुए, परन्तु केवल आठ ही नेत्र होने से पछतावा करने लगे (कि कहाँ शिवजी के पन्द्रह नेत्र और कहा मेरे आठ)। षडानन जी के हृदय मे विशेष आनन्द हुआ, कारण उन्हे ब्रह्मा से ड्यौढे नेत्रो से देखने का लाभ हुआ (ब्रह्मा के चार मुख की आठ आँखे और षडानन के छ मुँह की बारह आखे अर्थात् आठ ड्यौढे बारह)।

---

१ जनु वर वरहि नचाव—रामचन्द्र भूपण से—

सवैया—चञ्चल चारु चुने सब रग मे, होत लका कर सैन लगाम के।
बाग मरोर मे भोर धजी, कल बोलत आनंद गे गुण ग्राम के ।।
बाँकुरे चीते कुरगन पै "लाँछराम" मही महिमा अभिराम के।
सागर फाँदिबे को फफँदे, परहीन परिन्द महीपति राम के ।।

२ हरि—इस शब्द का अर्थ यहाँ पर "घोडा" लेना चाहिए। जैसा कि अन्वय और अर्थ देखने से भली भाँति समझ मे आ जाता है। प्रमाण के लिए अमरकोश का यह श्लोक है—

श्लोक—यमानिलेन्द्र चन्द्रार्क विष्णु सिंहाशु वाजिषु।
शुकाहि कपि भेकेषु हरिर्ना कपिले त्रिषु ।।

अर्थात्—यम, वायु, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, विष्णु, सिंह, किरण, घोडा, तोता, सर्प, बन्दर, मेढक—इन तेरह पुल्लिग शब्दो के अर्थ मे "हरि" शब्द आता है और कपिल रग का वाची तीनो लिगो मे आता है।

रामहि चितव सुरेश सुजाना। गौतमशाप परमहित माना॥
देव सकल सुरपतिहि सिहाही। आज पुरंदरसम कोउ नाही॥
मुदित देवगण रामहि देखी। नृपसमाज दुहुँ हर्ष बिसेखी॥

अर्थ— रामचन्द्रजी को देखकर विचारवान् इन्द्र ने गौतमजी के शाप को बडा हितकारी माना। सम्पूर्ण देवता इन्द्र को सराहते थे कि इस समय इन्द्र के समान कोई नही है (जो हजार नेत्रो से रामरूप के दर्शन ले रहे है)। रामचन्द्रजी को देखकर सब देवगण प्रसन्न हुए और दोनो राज समाजो मे भी भारी आनन्द छा गया।

छन्द—अतिहर्ष राजसमाज दुहुँ दिशि दुदुभी बाजहि घनी।
वर्षहि सुमन सुर हर्षि कहि जय जयति जय रघुकुल मनी॥
इहि भाँति जानि बरात आवत, बाजने बहु बाजही।
रानी सुआसिनि बोलि परिछन हेतु मगल साजही[1]॥

अर्थ—दोनो राज समाजो मे बडा आनन्द भर गया और बहुत से नगाडे बजने लगे। देवता प्रसन्न होकर फूल बरसाते थे और कहते थे हे रघुकुल श्रेष्ठ! तुम्हारी जय हो! जय हो, जय हो! इस प्रकार बरात को आती हुई समझकर बहुत से बाजे बजने लगे। रानियो ने विवाहित ग्राम कन्याओ को बुलाकर आरती करने के निमित्त मगल वस्तुये एकत्र की।

दोहा—सजि आरती अनेक विधि, मगल सकल संवारि।
चली मुदित परिछन करन, गजगामिनि बरनारि॥ ३१७॥

अर्थ—नाना प्रकार से आरती सँजोग कर तथा मगलीक वस्तुये सम्भाल कर हाथी के समान चालवाली रूपवती स्त्रियाँ आरती करने को आनन्दपूर्वक चली।

विधुवदनी मृगशावक लोचनि। सब निज छवि रति मान विमोचनि॥
पहिरे बरन बरन बर चीरा। सकल विभूपण सजे शरीरा[2]॥

अर्थ—चन्द्रमा के समान मुख वाली, मृगछौना सरीखे नैनावाली सब स्त्रियाँ अपनी सुन्दरता से रति के घमड को घटाने वाली अनेक रग के उत्तम वस्त्र पहिरे हुए और शरीरो पर सब गहने धारण किये हुए थी।

---

१. रानी सुआसिनि बोलि परिछन हेतु मगल साजही—श्री रामचन्द्रजी की अनुपम छटा को देखकर स्त्रियाँ आपस मे यो कह रही थी—

दादरा—सखि लखन चलो नृप कुँवर भलो, मिथिलापति सदन सिया बनरो।
शिर क्रीट मुकुट कटि मे पियरो, हँसि हेरि हरत हमरो हियरो॥
गल साजत है मोतियन गजरो, अनियारी अँखियन सोहत कजरो।
चित चाहत है उडि जाय मिलूँ, "रघुराज" छाँड सगरो झगरो॥

२ पहिरे बरन बरन बर चीरा। सकल विभूषण सजे शरीरा—आल्हखड से—

पहिर घाँघरा धुर दक्षिण को तरे तरे जर्द किनारी लाग।
चोली पहिरे मालदही की औ बंद तार कसी के लाग॥
पाय महावर जिनके सोहे अनवट दमकि दमकि रहि जायँ।
ठुमकि बाजने बिछिया पहिरे ऊपर नेवर की झनकार॥
कील लौटि लई तब गुजरी की नीचे पायल की झनकार।
बीस मुँदरियाँ दसौ अँगुरियाँ ऊपर छल्ला लये दबाय॥ →

सकल सुमंगल अंग बनाये। करहिं गान कलकंठ लजाये[१] ॥
ककन किकिन नूपुर बाजहिं। चाल विलोकि कामगज लाजहिं ॥

अर्थ—सम्पूर्ण अगो मे मगलीक द्रव्य लगाये हुए इस प्रकार से गाती थी कि कोयल भी लज्जित होती थी। हाथ के आभूषण, कमर के आभूषण तथा पैर के आभूषण इस प्रकार से छमछमाते थे कि उनकी चाल को देखकर कामदेवरूपी हाथी लज्जित होते थे।

बाजहिं बाजन विविध प्रकारा। नभ अरु नगर सुमगल चारा ॥
शची शारदा रमा भवानी। जे सुरतिय शुचि सहज सयानी[२] ॥
कपटनारि वर वेष बनाई। मिली सकल रनवासहिं जाई ॥

गोरी गोरी बहियाँ हरी हरी चुरियाँ बिच बगलियाँ लै लौटारि।
ककन पहिरे कर सोने के तिन की शोभा कही ना जाय ॥
आगे अगेला पाछे पछेला कान करनफूल हहराय।
आठ गाँठ की टाडै पहिरे बाजूबद झूमि झूमि रहि जायँ ॥
जडी बदियाँ है माथे पर मानो नाग रहे मन्नाय।
टिकुली ढुरवा दै माथे पर तिहरी पाँति काँकरन क्यार ॥
माँग भराई गजमोतिन से ऊपर सेंदुर लयो लगाय।
गुहो चुटीला है बारन को पटियाँ लौटि लौटि रहि जायँ ॥
अतर फुलेल परो बारन्ह में लपटैं उठैं सुगधन क्वार।
दुलरी तिलरी गल मे बाँधे ऊपर चम्पकली को हार।
हरवा डारे है मोतिन को छाती में चर्मकि चर्मकि रहि जाय ॥
बडि बडि आँखिन नन्हो कजरा औ सुरमा की रेख लगाय।
नथुनी को लटकन कहर करत है काजर भौरा सो मन्नाय ॥
ओढ चूनरी बुदकन वाली मानो नखतन को उजियार।
साथ केचुली की चादरि है सो माथे से दई उढाय ॥
सजि के सखियाँ जब ठाढी भई मानो बिजली केर कतार।

१. करहिं गान कल कठ लजाये—

राग बिलावल—क्रीट मुकुट शीस धरे मोतियन की माल गरे,
कानन कुडल कर धनुष बाण सोहै री।
अरुण नयन अनियारे अति ही लगत प्यारे,
दशरथ दुलारे सबही को मन मोहे री।
सुन्दर नासा कपोल, अलक झलक मधुर बोल,
भाल तिलक राजत बाँकी भौहै री।
लबित भुज अति विशाल भूषण जटित जाल,
अग अग छवि तरग कोटि मदन मोहे री ॥
पीताबर सोहै गात मद मद मुसकरात,
जनकभवन चले जात गति गयद की है री।
"कान्हर" करुणानिधान मेरे सखि जिवन प्रान,
जानकी झरोखे बैठी राम को मुख जोहै री।

२. शची शारदा रमा भवानी। जे सुरतिय शुचि सहज सयानी—जनक पच्चीसी से

करहि गान कल मंगलबानी[1] । हर्षविवश सब काहु न जानी ॥

अर्थ—नाना प्रकार के बाजे बज रहे थे और आकाश तथा जनकपुर मे सुन्दर मगलाचार हो रहे थे। इद्रानी, सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती और भी जो देवताओ की स्त्रियाँ सरल स्वभाव वाली और चतुर थी, वे सब स्त्रियो का बनावटी रूप धारण करके रनवास मे जा मिली। सुरीली वाणी से मगल गीत गाने लगी परन्तु आनन्द के मारे किसी ने उन्हे न पहचाना।

छन्द—को जान केहि आनंदवश सब ब्रह्म वर परिछन चली।
कलगान मधुर निशान वरषहि सुमन सुर शोभा भली ॥
आनदकद विलोकि दूलह सकल हिय हर्षित भई।
अभोज अबक अबु उमगि सुअग पुलकावलि छई ॥

अर्थ—आनन्द के मारे कौन किसे पहचानना था, सबकी सब दूलहरूपी परमात्मा की आरती उतारने को चली। उत्तम गीत, धीमे-धीमे बाजे और देवताओ का फूल बरसाना, इन सब की छटा निराली थी। आनन्द के भण्डार दूलह को देखकर सब की सब हृदय से आनन्दित हो उठी। यहाँ तक कि उनके कमलरूपी नेत्रो मे जल भर आया और सुन्दर शरीरो पर रोम खडे हो गए।

दोहा—जो सुख भा सियमातुमन, देखि राम वर वेष।
सो न सकहि कहि कल्पशत, सहस शारदा शेष ॥ ३१८ ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी की उत्तम छवि को देखकर सीता की माता को जो सुख हुआ वह सैकडो कल्प तक हजारो सरस्वती और शेषनागजी भी नही कह सकते।

नयन नीर हठि मगल जानी। परिछन करहि मुदित मन रानी ॥
वेदविहित अरु कुलआचारू। कीन्ह भली विधि सब ब्यवहारू ॥

अर्थ—मगल का समय जान नेत्रो के आँसुओ को रोक रानियाँ प्रसन्न चित्त से आरती उतारने लगी। वेद के अनुसार, कुल की रीति के प्रमाण से सभी नेग ठीक-ठीक किये गये।

चौबोला—नागसुता गधर्वसुता अरु यक्षसुता देखी तिन मे।
राजबधू अरु देवबधूटी मेरुबधू जुरि मडप मे ॥
कोकिल बानी गावत रानी बहु सुख मान भरी तिन मे।
कहै मडन श्री पति मुकुट धरे हम देखे राम जनकपुर मे ॥

१. करहिं गान कल मगलबानी—राग भूपाली कल्यान मे—

देख सखी शिर पाग राम के कैसी सोही है।
मरकत गिरि पै चन्द्र चाह चपला जनु मोही है ॥
बडि बडि भुजा विशाल विभूषण लख तृण तोरी है।
सुन्दर नयन विशाल वदन पर हाँसी थोरी है ॥
उर मोतियन की माल कान कल कुडल जोरी है।
नाभि गँभीर उदर त्रिवली लख शारद बौरी है ॥
पीताम्बर की कछनी काछे पीत पिछौरी है।
"राम गुलाम" अनूप रूप लख मति मेरि थोरी है ॥

पचशब्द सुनि मगल गाना[१]। पट पॉवडे परहि विधि नाना ।।
करि आरती अर्ध तिन दीन्हा। राम गवन मडप तब कीन्हा ।।

शब्दार्थ—पचशब्द = जयध्वनि, वन्दीध्वनि, वेदध्वनि, वाद्यध्वनि और निशानध्वनि।

अर्थ—पचशब्द और मगलमय गीत सुनकर नाना प्रकार के वस्त्रो के पॉवडे पडने लगे। उन्होने आरती करके अर्घ्य दिया तब रामचन्द्रजी मडप मे गये।

दशरथ सहित समाज बिराजे। विभव विलोकि लोकपति लाजे ।।
समय समय सर वर्षहि फूला। शाति पढहि महिसुर अनुकूला ।।

अर्थ—दशरथजी अपनी ओर की मडली सहित बैठे थे, उनके ऐश्वर्य को देखकर लोकपाल (इन्द्र, कुबेर आदि) लज्जित होते थे। देवता सुअवसर पर फूल बरसा देते थे और ब्राह्मण प्रसन्न हो शाति पाठ पढते थे।

नभ अरु नगर कोलाहल होई। आपन पर कछु सुनै न कोई ।।
इहि विधि राग मडपहि आये। अर्घ देइ आसन बैठाये ।।

अर्थ—आकाश और जनकपुर मे धूमधाम मच रही थी। कोई भी अपना बिराना (शब्द) न सुन सकता था। इस प्रकार रामचन्द्रजी मडप मे पधारे। उन्हे अर्घ्य देकर आसन पर बिठलाया।

छन्द—बैठारि आसन आरती करि निरखि वर सुख पावही।
मणि वसन भूपण भूरि वारहि नारि मगल गावही[२]।
ब्रह्मादि सुरवर विप्रवेष बनाइ कौतुक देखही।
अवलोकि रघुकुल कमल रवि छवि सुफल जीवन लेखही ।।

---

१. पचशब्द सुनि मगल गाना—सावित्री भजन माला से —

गीत—आये है सजन मभ पौरि हो सजनी, आनँद अति शुभ छाये हो ।।
सकल बराती पौरिन्ह आये सखियन मगल गाये हो ।।
आये सजन घराती ठाढे चरनन्ह शीस नवाये हो ।।
बारौठी कारण वर आये जल से चरण धुवाये हो ।।
कन्या पिता शुद्ध आसन पर पुनि वर को बैठाये हो ।।
बैठे जो ऋषिवर्य महामुनि वेदमत्र शुभ गाये हो ।।
आभूषण अरु शुद्ध वस्त्र ले पुनि वर को पहराये हो ।।
यथा योग्य सम्बन्धी दोनो प्रेम अनन्द मनाये हो ।।
दोनो पक्ष मिले शुभ अवसर प्रेम पुष्प बरसाये हो ।।
वैदिक अरु कुलरीति सबहि विधि "रामचन्द्र" पद गाये हो ।।

२. नारि मगल गावही—

परज—किशोरी प्यारो रँग बन रो।
मिथिलापुर की नर नारिन को मोहि लियो मन रो ।।
लटपट पाग केसरिया बागो सेहरो मोतिन रो।
भगत उधारन असुर सँहारन कर ककन पन रो ।।
दशरथजी को कुँवर लाड़िलो बन्धु भरत लछिमन रो।
"कान्हर" दूल्हा श्री रघुनन्दन जीवन सतन रो ।।

अर्थ—आसन पर बिठलाकर आरती की और दूलह को देखकर आनन्द मनाने लगी। बहुत से मणि, कपडे तथा गहने निछावर किये, और स्त्रियाँ मगल गीत गा रही थी। ब्रह्मा आदि बडे-बडे देवता ब्राह्मणो के रूप धारण कर तमाशा देख रहे थे और कमलस्वरूप रघुवश को सूर्य के समान रामचन्द्रजी की छटा को देखकर अपने जीवन को सार्थक समझते थे।

दोहा—नाऊ बारी भाट नट, रामनिछावरि पाय।
मुदित असीसहि नाय शिर, हर्ष न हृदय समाय।। ३१९ ।।

अर्थ—नाई, बारी, भाट और नट लोग रामचन्द्रजी को निछावर पाते ही सीस नवाकर प्रसन्न मन से आशीर्वाद देते थे और उनके हृदय मे आनन्द नही समाता था।

मिले जनक दशरथ अतिप्रीती। करि वैदिक लौकिक सब रीती।।
मिलत महा दोउ राज बिराजे। उपमा खोजि खोजि कवि लाजे।।

अर्थ—वेद के अनुसार तथा लोकाचार की सब रीतियाँ करके जनकजी दशरथ महाराज से बडे ही प्रेम से मिले। दोनो महाराजाओ के मिलने की शोभा के हेतु उपमा खोजते-खोजते कवि लोग लज्जित हो गये।

लही न कतहुँ हारि हिय मानी। इन सम ये उपमा उर आनी[१] ।।
समधी देखि देव अनुरागे। सुमन वरषि यश गावन लागे।।

अर्थ—जब कोई उपमा कही न पाई तो हृदय मे हार मानकर ये उपमा मन से विचारी कि इनके समान ये ही है (यही उपमाओ का भेद अनन्वय अलकार है। देखो अयोध्याकाण्ड की पुरौनी)। समधियो को देखकर देवगणो को ऐसा प्रेम उठा कि वे फूल बरसाकर उनका यश वर्णन करने लगे।

जग विरचि उपजावा जब ते। देखे सुने ब्याह बहु तब ते।।
सकल भाँति सम साज समाजू। सम समधी देखे हम आजू।।

शब्दार्थ—समधी (सम = एक समान + धी = बुद्धि) = तुल्य बुद्धि वाले।

अर्थ—ब्रह्मा ने जब से जगत को उत्पन्न किया है तब से हमने बहुत से विवाह देखे और सुने है, परन्तु सभी प्रकार से ऐश्वर्य और भीडभाड मे एक ही समान, बराबरी के समधी हमने आज ही देखे (अर्थात् गुण ऐश्वर्य, शरीर सपत्ति, राज्य विस्तार, बुद्धि आदि मे सम ऐसे समधी आज तक किसी ने न देखे थे और न सुने थे जैसे कि दशरथजी और जनकजी है)।

देवगिरा सुनि सुन्दर साँची। प्रीति अलौकिक दुहुँ दिशि माँची।।
देत पाँवडे अर्घ सुहाये। सादर जनक मंडपहि ल्याये।।

शब्दार्थ—माँची = फैल गई।

अर्थ—देवताओ के मनोहर और सच्चे वचनो को सुनकर दोनो ओर अद्भुत प्रेम बढ

---

१. इन सम ये उपमा उर आनी—यहाँ पर कवि जी अनन्वय अलकार को सूचित करते है जिसके ये लक्षण है कि इसमे किसी अनुपमेय वस्तु की उपमा उसी से दी जाती है, क्योकि उससे मिलान करने को कोई दूसरा योग्य रहता ही नही। सो यो कि—

पद—शोभा सीव जगतपति दोऊ मिलन काहि पटतरिये।
उनकी पटतर व है उनकी पटतर उन्है विचरिये।।
रामचन्द्र औ लषन लाल सम अग सुठि सुकुमारे।
"विश्वनाथ" नृप सग और है सुन्दर युगल कुमारे।। शोभा० ।।

गया। अर्घ्य देकर सुन्दर पाँवडे डालते हुए आदर सहित (दशरथजी को) जनकराज मडप मे लिवा लाये।

छन्द—मडप विलोकि विचित्र रचना रुचिरना मुनि मन हरे।
निजपाणि जनक सुजान सब कहँ आनि सिहासन धरे ।।
कुलइष्ट सरिस वशिष्ठ पूजे विनय करि आशिष लही।
कौशिकहि पुजत परम प्रीति कि रीति तौ न परै कही ।।

अर्थ—मडप की अनोखी बनावट और मनोहरता देखकर (वशिष्ठ विश्वामित्र आदिक) मुनियो के मन मोहित हो गये और ज्ञानवान् जनकराज ने अपने ही हाथो से सब के लिए सिंहासन लाकर रखे। फिर वशिष्ठ मुनिजी की अपने कुल के इष्टदेव के समान पूजा करके विनती की और उनसे आशीर्वाद पाया तथा विश्वामित्रजी का पूजन करते समय जो भारी प्रेम का वर्त्ताव हुआ सो तो कहने ही मे नही आता।

दोहा—वामदेव आदिक ऋषय[१], पूजे मुदित महीस।
दिये दिव्य आसन सबहि, सब सन लही अशीस ।।३२०।।

अर्थ—फिर राजा ने प्रसन्न चित्त से वामदेव आदि सब ऋषियो को उत्तम आसन दे पूजा की और सबसे आशीर्वाद पाया।

बहुरि कीन्ह कोशलपति पूजा। जानि ईश सम भाव न दूजा ।।
कीन्हि जोरि कर विनय बडाई। कहि निज भाग्य विभव बहुताई ।।

अर्थ—फिर कोशलाधीश महाराज दशरथजी का ईश्वर के समान पूजन किया। कुछ भेद-भाव नही रखा। हाथ जोडकर विनयपूर्वक बडाई की और फिर बहुत कुछ अपने भाग्य की भी (उनके साथ सम्बन्ध होने से) प्रशसा की।

पूजे भूपति सकल बराती। समधी सम सादर सब भाँती ।।
आसन उचित दिये सब काहू। कहौ कहा मुख एक उछाहू ।।

अर्थ—फिर जनकजी ने सम्पूर्ण बरातियो का भी सब प्रकार समधी ही के समान आदर सहित सन्मान किया और सब लोगो को यथा योग्य आसन दिये, उस आनद को मै अपने एक मुँह से कैसे वर्णन कर सकता हूँ।

सकल बरात जनक सनमानी। दान मान विनती वर बानी ।।

अर्थ—जनकजी ने सम्पूर्ण बरात वालो का धन, बडाई, विनती और श्रेष्ठ वचनो से सन्मान किया।

विधिहरिहरदिशिपतिदिनराऊ। जे जानहिं रघुवीर प्रभाऊ ।।
कपटविप्रवरवेष बनाये। कौतुक देखहि अति सचुपाये ।।

---

१. वामदेव आदिक ऋषय—कुडलिया रामायण मे ऋषियो के नाम यो वर्णन किये है—
कुडलिया—मुनि वशिष्ठ अरु सतानँद भरद्वाज जाबालि।
अत्रि अगस्त्य सु गर्ग ऋषि कश्यप मुनि तपशालि ।।
कश्यप मुनि तपशालि देवऋषि सनक समेते।
लोमश अरु चिरजीव व्यास पाराशर जेते ।।
पाराशर कौशिक सहित गौतमशुक उच्चरत पद।
वेद मत्र करणी करै मुनि वशिष्ठ ऋषि सतानँद ।।

पूजे जनक देवसम जाने[1] । दिये सुआसन बिन पहिचाने ।।

अर्थ—ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, दिग्पाल और सूर्य जो रामचन्द्रजी की महिमा जानते थे, वे उत्तम ब्राह्मणो का बनावटी भेष बनाये बहुत ही चुपचाप तमाशा देख रहे थे। जनकजी ने उन्हे भी देवताओ के समान आदर दिया और बिना पहिचाने ही उन्हे बैठने को सुन्दर आसन दिये।

छन्द—पहिचान को केहि जान सबहि, अपान सुधि भोरी भई।
आनदकद विलोकि दूलह, उभय दिशि आनँद मई ।।
सुर लखे राम सुजान पूजे, मानसिक आसन दिये[2] ।
अवलोकि शीलस्वभाव प्रभु को, विबुधमन प्रमुदित भये ।।

अर्थ—कौन किसे जाने ? और कौन किसे पहचाने ? क्योकि सबको अपनी ही सुध भूल गई थी। आनद के भडार दूलह को देखकर दोनो ओर आनद भर गया था। ज्ञानी रामचन्द्रजी ने देवताओ को लख लिया तो उन्हे मानसिक आसन दे मानसिक ही पूजन किया। ऐसा शील स्वभाव रामचन्द्रजी का देखकर सब देवता मन मे प्रसन्न हुए।

दोहा—रामचद्र मुखचंद्र छवि, लोचन चारुचकोर ।
करत पान सादर सकल, प्रेम प्रमोद न थोर[3] ।। ३२१ ।।

अर्थ—रामचन्द्रजी के मुख की चन्द्र समान शोभा को सब लोगो के सुदर चकोररूपी नेत्र आदर सहित निहार रहे थे। (उस समय का) प्रेम और आनद कम नही था (अर्थात् बडा आनन्द था)।

समय विलोकि वशिष्ठ बुलाये। सादर सतानद सुनि आये ।।
वेगि कुँअरि अब आनहु जाई। चले मुदित मुनि आयसु पाई ।।

अर्थ—लग्न का समय जान वशिष्ठजी के बुलावे को सुनकर सतानदजी आ गये। (वशिष्ठजी ने कहा कि) अब जल्दी से राजकुमारी को ले आओ। वे मुनिजी की आज्ञा सुनकर

---

१. पूजे जनक देवसम जाने—जनकजी ने मानो इस सुशिक्षा का वर्त्ताव कर दिखाया कि—

दोहा—तुलसी विलँब न कीजिये, मिलिये सब सो धाइ।
को जानै केहि भेष मे, नारायण मिलि जाइ ।।

सुर लखे राम सुजान पूजे, मानसिक आसन दिये—मानसिक पूजन व आसन के विषय मे देखो टि०, पृ० २०६ पूर्वार्द्ध (शिव विवाह)

रामचन्द्र मुखचन्द्र छवि, लोचन चारु चकोर' ····प्रेम प्रमोद न थोर—

राग श्याम कल्याण—कुँवर दशरथ के रग भरे।
कोटि काम सुन्दर सुख मन्दर अन्दर आन अरे ।।
रँगीली पगिया पेच धरे।
रत्न जटित शिर पेच पेच मोरे मन के बीच परे ।।
श्रवण शुभ कुडल सुघर धरे।
अलका झलक कपोल लोल मन मोल लिये हमरे ।।
बनी मोतियन की माल गरे।
कमल नयन सुख दैन रैन दिन मन ते नाहिं टरे ।।
करन कल ककन रत्न जरे।
श्याम बरन मन हरन "रत्न हरि" चरन शरन उबरे ।।

प्रसन्न चित्त होते हुए चले।

रानी सुनि उपरोहित बानी। प्रमुदित सखिन समेत सयानी ।।
विप्रवधू कुलवृद्ध बुलाई। करि कुलरीति सुमगल गाई[1] ।।

अर्थ—सतानदजी के वचन सुनकर चतुर रानी जी सखियो समेत प्रसन्न हुई, फिर ब्राह्मणियो और कुटुम्ब की जेठी सयानी स्त्रियो को बुलाकर कुलाचार करके मगलीक गीत गाये।

नारिवेष जे सुरवर वामा। सकल सुभाय सुदरी श्यामा ।।
तिनहि देखि सुख पावहि नारी। बिन पहिचान प्रान ते प्यारी ।।

अर्थ—देवताओ की सुन्दर स्त्रियाँ जो नारी रूप धारण किये थी और जो सब का सब स्वभाव ही से रूपवती और षोडशी थी, उन्हे देख स्त्रियाँ प्रसन्न होती थी क्योकि वे अन-चिन्हारी होने पर भी प्राणो के समान प्यारी थी।

बार बार सनमानहि रानी। उमा रमा शारद सम जानी ।।
सीय सँवारि समाज बनाई। मुदित मंडपहि चली लिवाई[2] ।।

अर्थ—रानी उन्हे पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती के समान जान उनका सन्मान बारबार करती थी। (सखियाँ) सीताजी का शृगार कर स्त्रियो का समाज बनाकर आनदपूर्वक उन्हे मडप मे लिवा ले चली।

---

१. करि कुलरीति सुमगल गाई—

चेती गौरी—रघुवशी दूल्हा नवल बना।

सीस सेहरो गज मोतियन को बिच बिच सोहत अधिक पना ।।
चौदह भुवन भामिनी गावत मगल बाजे बजत घना।
ब्याह उछाह राम सीता को सुनि सब हरखे सत जना ।।
कोशलेश नृप ब्याहन आयो राय जनक के मडप तना।
लीहा राम सिया चरणन्ह की जन्म जन्म कान्हर सरना ।।

२. सीय सँवारि समाज बनाई। मुदित मडपहि चली लिवाई—वाल्मीकीय रामायण के उल्था रामरत्नाकर रामायण से—

चौपाई—प्रथम आमलक माथे लायो। उष्णोदक असनान करायो ।।
कघी कर गह केश निवारे। वेणी बाँध आभरण धारे ।।
कल कपाल बिच कुकुम लायो। जनु शशि मध्य भूमिसुत आयो ।।
शीस फूल बेदी छवि देही। नकबेसर मुक्तामणि लेही ।।
करनफूल दृग अजन सारे। भृकुटी मनहुँ मदन धनु धारे ।।

दोहा—कठा भरण सुकण्ठ धर, पदकहार छवि देत।
कनक कचुकी उर धरी, झिलमिलात तन हेत ।।

भुज भूषण ककण कर सोहै। चूरी चमक कमल कर मोहै ।।
कटि किंकिणी पाय बिच नूपुर। कलरव करत धरत जब भूपर ।।
अगराग सब अग लगाये। सुभग सुरग बसन पहिराये ।।
सिय शृगार कहे को गाई। जगतमातु शोभा अधिकाई ।।

छद—चलि ल्याइ सीतहि सखी सादर सजि सुमगल भामिनी ।
नवसप्त[१] साजे सुदरी सब मत्तकुजरगामिनी ।।
कलगान सुनि मुनि[२] ध्यान त्यागहि काम कोकिल लाजही ।
मजीर नूपुर कलित ककन तालगति बर बाजही ।।

अर्थ—सखियाँ और स्त्रियाँ सम्पूर्ण मगल के साज सजकर सीताजी को लिवा ले चली । वे रूपवती सोलह श्रृगार किये हुए सबकी सब मस्त हाथी की सी चाल से चल रही थी । उनके सुरीले गीतो को सुनकर मुनियो के ध्यान उचट जाते थे और मतवाली कोकिला लजाती थी, तथा उनके पायजेब, बिछिया और सुन्दर ककनो की ध्वनि ताल के अनुसार निकलती थी ।

दोहा—सोहति वनितावृन्द महँ, सहज सुहावनि सीय[३] ।
छवि ललनागण मध्य जनु, सुखमातिय कमनीय ।। ३२२ ।।

अर्थ—स्त्रियो के झुड मे स्वभाव ही से रूपवती सीताजी इस प्रकार सुशोभित थी कि मानो छविरूपी सुन्दर स्त्रियो के बीच मे बहुत ही सुन्दर शोभा विराजमान हो ।

सिय सुन्दरता बरनि न जाई । लघुमति बहुत मनोहरताई[४] ।।

---

१ नवसप्त (९+७)=१६ श्रृगार । जो नीचे कहे प्रमाण हे—

दोहा—अग शुची मज्जन वसन माँग महावर केश ।
तिलक भाल तिल चिबुक मे भूषण मेहदी वेश ।।
मिस्सी काजल अर्गजा बीरी और सुगन्ध ।
पुष्पकली युत होइ कर तब नवसप्त निबध ।।

२ कलगान सुनि मुनि—प्रेम पीयूषधारा से—

दादरा—लखन लगी मै ललकि लली छबि ।
ब्याज साज प्रति अगन राजै सिर सुन्दर मौरी की भली छबि ।।
चोटी अजब गुही लटकत है, कारी नागनियाँ की दली छबि ।
मोहनिदास पिया अँखियन का, बरबस सिय बनरी की छली छबि ।।

३ सोहति वनितावृन्द महँ, सहज सुहावनि सीय—

क०—कचन समान गात सहज सुहात फेरि दीपति दिखात दृग मजन निखर पैं ।
"रसिक बिहारी" सजे सकल सिगार चारु शोभा है अपार हेम बिदु के विखर पै ।।
मजु मणि मौरी लसै जनक किशोरी शीश लगत सुहाई आई उपमा तिखर पै ।
मानौ रस राज रघुराज मन जीति बाँधो विजय पताक लै सुमेरु के शिखर पै ।।

और भी—

क० : जाके अवदात कल कुन्दन ते गात आगे नेक हू न दीपति है दीप्ति चमेली की ।
मुख सुखमा की कहूँ उपमा न पाऊँ जासु पायन की लाली कज लालिमा दबेली की ।।
दीपति मसाल सी है बाल 'हनुमान' जासो ह्वै रही विशाल शोभ और ही हबेली की ।
सग मे सहेली सबै सोहती नबेली तऊ राजति अकेली छटा छटी अलबेली की ।।

४. सिय सुन्दरता बरनि न जाई—प्रेम पीयूषधारा से—

ठुमरी—गोरे से बदन पर श्याम बिंदुलिया ।
मानहुँ अलि छौना पकज पै, बैठो है आय लगै छबि भलिया ।।
ता पर झीन नील सारी तन, चमकत जनु घन माँझ बिजुलिया ।
"मोहनि" पिया मन जाइ फँस्यो है, लखि सिय की मुसक्यान रँगिलिया ।।

आवत दीखि बरातिन्ह सीता । रूपराशि सब भाँति पुनीता ।।

अर्थ—सीताजी की शोभा का वर्णन नही हो सकता था क्योकि उनकी सुन्दरता बहुत और मेरी मति थोडी है। जब बरातियो ने सब प्रकार से शुद्ध और बहुत रूपवती सीताजी को आते देखा—

सबहि मन कीन्ह प्रणामा । देखि राम भये पूरणकामा ।।
हरषे दशरथ सुतन्ह समेता । कहि न जाइ उर आनँद जेता ।।

अर्थ—प्राय सब ही ने मन ही मन वदना की और रामचन्द्रजी तो उनको देखकर तृप्त हो गये । पुत्रो समेत दशरथजी प्रसन्न हुए, उनके हृदय मे जितना आनन्द था वह कहने मे नही आता ।

सुर प्रणाम करि वर्षहि फूला । मुनि असीस ध्वनि मगलमूला ।।
गान निशान कोलाहल भारी । प्रेम प्रमोद मगन नर नारी ।।

अर्थ—देवता प्रणाम कर फूल बरसाने लगे और मुनिगण मगलीक आशीर्वाद के वचन कहने लगे । गाने और बजाने की बडी धूम धाम थी तथा जनकपुर के स्त्री-पुरुष प्रेम मे मग्न थे ।

इहि विधि सीय मडपहि आई । प्रमुदित शान्ति पढ़हि मुनिराई ।।
तेहि अवसर कर विधि व्यवहारू । दुहुँ कुलगुरु सब कीन्ह अचारू ।।

अर्थ—इस प्रकार सीताजी मडप मे सिधारी, मुनि लोग हर्षपूर्वक शाति पाठ पढने लगे । उसी समय वशिष्ठजी और सतानदजी दोनो ओर के कुलगुरुओ ने व्यवहार की पद्धति करके सब नेग चार किये ।

छन्द—आचार करि गुरु गौरिगन पति[1] मुदित विप्र पुजावही ।
सुर प्रगटि पूजा लेहि देहि असीस अति सुख पावही[2] ।।
मधुपर्क मगलद्रव्य जो जेहि समय मुनि मन महँ चहहिं ।
भरि कनककोपर कलश सो सब लिये परिचारक रहहि ।।

अर्थ—दोनो कुलगुरुओ ने कुलाचार करवाया और ब्राह्मण लोग प्रसन्न मन से गौरी और गणेशजी का पूजन करवाने लगे । देवता साक्षात् दिखाई देकर पूजा लेते थे और बहुत ही प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते थे। मधुपर्क आदि मगल की वस्तुये जो जिस समय मुनिजी अपने मन मे विचारते थे, वे ही सब वस्तुये सोने के थार और घडो मे भरे हुए सब सेवक लिये खडे रहते थे ।

---

१. गनपति—

श्लोक—विनायक महत्पुण्य, सर्वं विघ्न विनाशनम् ।
लम्बोदर त्रिनेत्र च, गणनाथ नमाम्यहम् ।।

२. सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुख पावही—कुडलिया रामायण से—

कुडलिया—सूरज कुलगति सब कहै पावक आहुति लेय ।
गणपति कर पूजा करै विधि विवाह कहि देय ।।
विधि विवाह कहि देय पवन पुनि शेष महेशा ।
सुरपति सुरगण सहित मगन ढिग लखत रमेशा ।।
लखत रमेश सुदेश छवि राम सबहि जानत रहै ।
विप्र वेष वेदन पढ़ै सूरज कुलगति सब कहैं ।।

छन्द—कुलरीति प्रीतिसमेत रवि कहि देत सब सादर कियो।
इहि भाँति देव पुजाय सीतहि सुभग सिंहासन दियो॥
सियराम अवलोकनि परस्पर प्रेम काहु न लखि परै[1]।
मन बुद्धि वर बानी अगोचर प्रकट कवि कैसे करै॥

अर्थ—सूर्यदेव सूर्यकुल की रीति को प्रेम सहित साक्षात् कहते जाते थे, वही सब लोग आदरपूर्वक करते थे। इस प्रकार देवताओं का पूजन करवा के सीताजी को सुन्दर आसन बैठने के निमित्त दिया। सीता और रामचन्द्रजी का आपस में निहारने का प्रेम किसी ने न जाना। मनसा, वाचा तथा बुद्धि की पहुँच से जो बात बाहर है उसको कवि कैसे प्रकट करे।

दोहा—होम समय तनु धरि अनल, अतिसुख आहुति लेहिं।
विप्रवेष धरि वेद सब, कहि विवाह विधि देहिं॥ ३२३॥

अर्थ—होम के समय अग्निदेव शरीर धारण कर बड़े सुख से आहुति लेते थे और चारो वेद ब्राह्मण का रूप धारण कर विवाह की विधि बतलाते जाते थे।

जनक पाटमहिषी जग जानी। सीयमातु किमि जाइ बखानी॥
सुयश सुकृत सुख सुन्दरताई। सब समेटि विधि रची बनाई॥

शब्दार्थ—पाटमहिषी=पटरानी।

अर्थ—संसार जानता है कि जनकजी की पटरानी जो सीता की माता है उनका वर्णन कैसे हो सकता है। मानो ब्रह्मा ने सुन्दर कीर्ति, सत्कर्म, सुख और सुन्दरता इन सबको इकट्ठा कर सम्हाल कर रची हो।

समय जानि मुनिवरन्ह बुलाई। सुनत सुआसिनि सादर ल्याई॥
जनक वाम दिशि सोह सुनयना। हिमगिरि संग बनी जनु मयना॥

अर्थ—सुमुहूर्त्त समझकर श्रेष्ठ मुनियों के बुलवाने से सुआसिनि स्त्री (सुनयनाजी को) आदरपूर्वक ले आई। जनकजी की बाईं ओर (उनकी पटरानी) सुनयनाजी इस प्रकार सुशोभित हुई जिस प्रकार हिमालय के साथ मयनाजी सुशोभित हुई थी।

कनक कलश मनि कोपर रूरे। शुचि सुगन्ध मंगल जल पूरे॥
निजकर मुदित राय अरु रानी। धरे राम के आगे आनी॥

अर्थ—सोने का घड़ा और मणिजटित उत्तम परात जिसमें स्वच्छ सुगंधित और मंगलीक जल भरा हुआ था, प्रसन्नतापूर्वक राजा और रानी ने अपने हाथों से रामचन्द्रजी के सामने ला रक्खे।

पढ़हिं वेद मुनि मंगलबानी। गगन सुमन झरि अवसर जानी॥

---

१. सिय राम अवलोकनि परस्पर प्रेम काहु न लखि परै—रामरसायन रामायण से—

(कवित्त)

जनक किशोरी गोरी राम अभिराम श्याम जोरी या करोरी रति काम सुखमा भली।
"रसिक बिहारी" ब्याह औसर अनूप रूप शोभित अपार शोभा हेरि हरषी अली॥
सीय छवि छाके पीय पीय छवि छाकी सीय जी की गति दाऊ निज हीकी हिय मे रली।
कंज दृग देखे उत श्याम भृंग लोभे इत हेरि मुखचंद फूली बाल नलिनी कली॥

वर विलोकि दम्पति अनुरागे । पाय पुनीत पखारन लागे[1] ।।

अर्थ—मुनिगण सुन्दर वाणी से वेदध्वनि कर रहे थे और सुन्दर समय समझकर स्वर्ग से फलो की झडी लग गई । दूलह को देखकर राजा और रानी प्रसन्न हुए तथा पवित्र पैरो को पखारने लगे ।

छद—लागे पखारन पायपकज प्रेम तनु पुलकावली ।
नभ नगर गान निशान जयध्वनि उमगि जनु चहुँ दिशि चली ।।
जे पदसरोज मनोजअरिउरसर सदैव विराजही ।
जे सुकृत सुमिरत विमलता मन सकल कलिमल भाजही ।।

अर्थ—चरण कमलो को पखारने लगे तो प्रेम के मारे उनके अग रोमाचित हो गये । आकाश और नगर के गीतो, बाजो और जब की ध्वनि चारो ओर फैल चली जो कमलस्वरूप चरण कामदेव के शत्रु शिवजी के हृदयरूपी तालाब मे सदा बने रहते है और जिन्हे सत्कर्मी लोग स्मरण करके मन को शुद्ध कर सम्पूर्ण कलियुग के पापो को दूर कर देते है ।

छन्द—जे परसि मुनिवनिता लही गति रही जो पातकमई ।
मकरंद जिनको शभुशिर शुचिता अवध सुर बरनई ।।
करि मधुप मुनिमन योगिजन जे सेइ अभिमत गति लहहि ।
ते पद पखारत भाग्यभाजन जनक जय जय सब कहहि[2] ।।

अर्थ—जिन चरणो को छूकर गौतम की पत्नी अहल्या जो पाप से परिपूर्ण थी, पतिलोक को पहुँच गई, जिन कमलस्वरूप चरणो के रस अर्थात् गगाजी को शिवजी अपने सिर पर धारण किये रहते हैं जिसे देवताओ ने भी पवित्रता की सीमा कहा है, जिनको मुनि और योगी लोगो के मन भौरारूपी बनकर सेवन करने से इच्छित फल पाते है—ऐसे चरणो को जनकजी पखार रहे है सो बडे भाग्यवान् है । उनकी जय हो ! जय हो ! ऐसा सब कहते थे ।

---

१. वर विलोकि दम्पति अनुरागे । पाय पुनीत पखारन लागे—कुडलिया रामायण से—

कुडलिया—जनक पाय पूजन लगे, साखोच्चार उचारि ।
रानी नृप मन मोद भरि लै कोपर शुचि वारि ।।
लै कोपर शुचि वारि नारि वर मगल गाई ।
कन्यादान विचारि देव फूलन्ह झरि लाई ।।
फूले तरु नृप सुकृत के चरण पखारत सुख जगे ।
निरखि वदन दम्पति मगन जनक पाय पूजन लगे ।।

२. ते पद पखारत भाग्यभाजन जनक जय जय सब कहहि—

राग सारग—भूप के भाग की अधिकाई ।
टूट्यो धनुष मनोरथ पूज्यो विधि सब बात बनाई ।।
तब ते दिन दिन उदै जनक को जब ते जानकि जाई ।
अब यहि ब्याह सफल भयो जीवन त्रिभुवन विदित बडाई ।।
बारहिबार पहुनई ऐहै राम लषन दोउ भाई ।
यहि आनद मगन पुरवासिन्ह देह दशा बिसराई ।।
सादर सकल विलोकत रामहिं कामकोटि छवि छाई ।
यह सुख समउ समाज एक मुख क्यो तुलसी कहै गाई ।।

छन्द—बर कुअँरि करतल जोरि[1] साखोच्चार दोउ कुलगुरु करैं[2]।
भयो पानिगह्न विलोकि विधिसुर मनुज मुनि आनँद भरै[3] ।।
सुखमूल दूलह देखि दंपति पुलक तन हुलसेउ हियो।
करि लोकवेदविधान कन्यादान नृप भूषण कियो ।।

अर्थ—दूलह और दुलहिन का हाथ पर हाथ रखकर दोनो कुलगुरुओ ने साखोच्चार किया। पाणिग्रहण हुआ देखकर ब्रह्मा, देवता, मनुष्य और मुनि प्रसन्न हुए। आनन्दकद दूलह को देखकर राजा और रानी के शरीर रोमाचित हुए और उनके हृदय उमड उठे। इस प्रकार राजशिरोमणि (जनकजी) ने वेद और लोकरीति कर कन्यादान किया।

छन्द—हिमवन्त जिमि गिरिजा महेशहि हरिहि श्री सागर दई।
तिमि जनक रामहि सिय समर्पी विश्व कल कीरति नई[4]।।
क्यौ करहिं विनय विदेह कियो विदेह मूरति सॉवरी।
करि होम विधिवत गॉठि जोरी होन लागी भॉवरी।।

---

१. वर कुअँरि करतल जोरि—पाणिग्रहण की शोभा श्री पडितराज जगन्नाथ कृत भामिनी विलास से —

उपजाति छन्द—पाणीकृत पाणिरिलासुताया। सस्वेद कम्पो रघुनन्दनेन।।
हिमाम्बुसगानिल विह्वलस्य। प्रभात पद्मस्य बभार शोभाम् ।।

अर्थात् जिस समय श्री रामचन्द्रजी ने जानकीजी का पसीने से भरा कँपता हुआ हाथ अपने हाथ मे ग्रहण किया, उस समय उसकी ऐसी छटा थी कि मानो ओस से भीगा हुआ वायु से कम्पायमान प्रभात समय का कमल ही हो।

२. साखोच्चार दोउ कुलगुरु करैं—

छप्पय— बैठे मागध सुत विविध विद्याधर चारण।
केशव दास प्रसिद्ध सिद्ध शुभ अशुभ निवारण ।।
भरद्वाज जाबालि अत्रि गौतम कश्यम मुनि।
विश्वामित्र पवित्र चित्र मति वामदेव पुनि।।
सब भाँति प्रतिष्ठित निष्ठ मति तहँ वशिष्ठ पूजत कलस।
शुभ शतानद मिलि उच्चारत साखोच्चार सबै सरस।।

३ भयो पानिगहन विलोकि विधि सुर मनुज मुनि आनँद भरें—

क० जनक किशोरी अरु अवध किशोर दोऊ होत पाणिग्रहण अनद रस भीने है।
राम कर मध्य मजु शोभित भयो है कर शोभा सो अपार मे सुजान चित्त दीने है ।।
अति छवि वारी सिय आँगुरी अनूप हेरि बात निरधारी मति धारी जे प्रबीने है।
रसिक बिहारी विश्व विजय विचारी आज या ते पचवान पचवान सँग लीने है ।।

४ हिमवन्त जिमि गिरिजा महेशहि ....कल कीरति नई—अध्यात्म रामायण से—

श्लोक—दीयते मे सुता तुभ्य प्रीतो भव रघूत्तम।
इति प्रीते न मनसा सीता राम करेऽर्पयन् ।।
मुमोद जनको लक्ष्मी क्षीराब्धिरिव विष्णवे ।

अर्थात् (जनकजी बोले) हे रघुवशियो मे श्रेष्ठ रामचन्द्रजी! मै अपनी पुत्री आपको सर्मपित करता हूँ, आप प्रसन्न हूजिये। इस प्रकार प्रेमयुक्त गद्गद हृदय से सीताजी का रामचन्द्रजी के हाथ मे पाणिग्रहण करा के इस प्रकार प्रसन्न हुए जिस प्रकार समुद्र लक्ष्मी को विष्णुजी को सर्मपित कर प्रसन्न हुए थे।

अर्थ—जिस प्रकार हिमाचल ने पार्वतीजी शकर को और समुद्र ने लक्ष्मी विष्णुजी को समर्पित की, उसी प्रकार जनकजी ने सीता-रामचन्द्रजी को समर्पित की और ससार मे सुन्दर नई कीर्ति प्राप्त की। श्यामली मूर्ति (रामचन्द्रजी) ने विदेह राजा को विदेह-सा (अर्थात् हक्का-बक्का) बना दिया तो फिर वे उनसे विनती कैसे कर सकते थे। होम करके प्रथा के अनुसार गठबन्धन किया और फिर भाँवरे पडने लगी।

दोहा—जयध्वनि वदीवेदध्वनि, मगलगान निशान।
सुनि हरषहि बरषहि विबुध, सुरतरुसुमन सुजान ।।३२४।।

अर्थ—जय-जयकार का उच्चारण भाटो तथा वेदो की ध्वनि, मगल गीत और नगाडो के शब्द सुनकर ज्ञानी देवता प्रसन्न होते थे और कल्पवृक्ष के फूल बरसाते थे।

कुअँर कुअँरि कल भाँवरि देही। नयन लाभ सब सादर लेही[१] ।।
जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहौ सो थोरी ।।

अर्थ—दूल्ह और दुलहिन तो उत्तम रीति मे भाँवरे फिर रहे थे और सब लोग आदर सहित नेत्रो का लाभ लूट रहे थे। उस मनमोहिनी जोडी का वर्णन नही हो सकता। उनके विषय मे जो कुछ उपमा दी जावे वह सब थोडी जँचती है (भाव यह 'कि उपमा या तो बराबरी से होती है या श्रेष्ठ के साथ' सो इनकी उपमा के लिए कोई है ही नही, यदि है तो कम)।

राम सीय सुन्दर प्रतिछाहीं। जगमगाति मणि खंभन माही ।।
मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा। देखत राम विवाह अनूपा[२] ।।

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी और सीताजी की सुन्दर परछाही मणियो के खभो मे झिलमिलाती थी। मानो कामदेव और रति अनेक रूप धारण कर रामचन्द्रजी के उपमा रहित विवाह को (खभो मे छिप-छिपकर देख रहे हो)।

दरश लालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोर बहोरी ।।
भये मगन सब देखनिहारे। जनक समान अपान बिसारे[३] ।।

---

१. कुअँरि कुअँरि कल भाँवरि देही। नयन लाभ सब सादर लेही—
राग केदारा—राजति राम जानकी जोरी।
श्याम सरोज जलद सुन्दर वर दुलहिन तडित बरन तनु गारी ।।
ब्याह समयँ सोहति वितान तर उपमा कहुँ न लहति मति मोरी।
मनहुँ मदन मजुल मडप महँ छवि सिंगार शोभा सोउ थोरी ।।
मगलमय दोउ अग मनोहर ग्रन्थित चूनरि पीत पिछौरी।
कनक कलश कह देत भाँवरी निरखि रूप शारद भइ भोरी ।।
मुदित जनक रनिवास रहसवश चतुर नारि चितवहिं तृण तोरी।
गान निशान वेद धुनि सुनि सुर बरसत सुमन हरष कहै कोरी ।।
नयनन को फल पाइ प्रेमवश सकल असीसहिं ईश निहोरी।
तुलसी जेहि आनन्द मगन मन क्यों रसना वरणौं सुख सो री ।।

२. मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा। देखत राम विवाह अनूपा—
क०—देखि बनरी की छबि रति सकुचाति हीय हेरि बनरा को त्यो मनोज होत झावरो।
सिय रघुचद की छटा निहारि ब्याह समै रसिक बिहारी सब लोग भयो बावरो ।।
चूनरी ग्रथित पटपीत मणि मौर माथे लखि जन भाषै मिथिलेश पुण्य रावरो।
नवल किशोरी गोरी दुलहिनि जैसी बनी तैसो नव दूलह किशोर वर साँवरो ।।

३. भये मगन सब देख निहारे। जनक समान अपान बिसारे—

→

अर्थ—दर्शन की अभिलाषा बहुत थी तथा सकोच भी विशेष ही था, इस हेतु बारबार प्रकट हो जाते थे और फिर छिप भी जाते थे (दर्शनो की लालसा से प्रकट होते थे) और सकोच के कारण छिप जाते थे (यह राम-सीता की परछाईं की अद्भुत छटा कविजी बडी विचित्रता से दर्शाते हुए वर्णन करते है)। सब देखने वाले जनक ही की नाईं अपने देह की सुध बिसार कर मग्न हो गये।

प्रमुदित मुनिन्ह भाँवरी फेरी। नेग सहित सब रीति निबेरी॥
राम सीय शिर सिदुर देही[1]। शोभा कहि न जात विधि केही॥

अर्थ—मुनि लोगो ने प्रेम सहित भाँवरे फिरवाई और सम्पूर्ण पद्धति नेग सहित पूरी की। रामचन्द्रजी सीता की माँग मे सेदुर भरने लगे, उस समय की छटा किसी प्रकार से कहने मे नही आती (तो भी)।

अरुण पराग जलज भरि नीके। शशिहि भूप अहि लोभ अमी के॥
बहुरि वशिष्ठ दीन्ह अनुशासन। बर दुलहिन बैठे इक आसन[2]॥

दोहा—सहित समाज विदेह तहँ, सीय राम को देखि।
पलकन ते कीन्हे बिदा, निमि नृप को दुख लेखि॥
देव रूप सिगरे भये, चहे देवपति हौन।
भये विदेह समान सब, निरखि राम छबि भौन॥

साराश यह कि—राजा जनक अपने परिजन और पुरजनो के साथ सीता रामन्द्रजी की शोभा को देख टकटकी लगाकर ऐसे देखते रह गये कि उनके नेत्रो के पलक बद हो गये सो मानो वे पलक कार्यहीन देव बन गये और भी इन्द्र के समान हजार नेत्र वाले होना चाहते थे जिससे उस शोभा को भली भाँति देखे तथा सबके सब अपने-अपने शरीर के व्यापारो को भूल गये।

१. राम सीय शिर सिंदुर देही—
सवैया—चीकनी चारु सनेह सनी चिलकै द्युति मेचक ताई अपार सो।
जीति लिये मखतूल के तार तमीतम तार द्विरेफ कुमार सों॥
पाटी दुहूँ बिच माँग की लाली विराजि रही यो प्रभा विसतार सो।
मानो श्रृंगार की टाटी मनोभव सीचत है अनुराग की धार सो॥

२. बर दुलहिन बैठे इक आसन—विवाह के समय ईश्वर को सर्वव्यापी समझ अग्नि और लोगों की साक्षी देकर जो धर्म निर्मित पवित्र प्रतिज्ञाएँ करने मे आती है, ये सब आश्वलायन गृह्यसूत्र मे बताई हुई है। यहाँ पर सर्वसाधारण के स्मरणार्थ सुभीते के लिए 'सगीत-रत्न प्रकाश', तीसरे भाग से उद्धृत कर लिखी जाती है।

(स्त्री के वचन)

गज़ल—बचन दो सात जब हम को तभी प्रीतम कहाओगे।
करो इकरार पचो मे उसे पूरा निबाहोगे॥
पकड कर हाथ जो मेरा मुझे पत्नी बनाना है।
तो नैया उम्र की मेरी किनारे पर लगाओगे॥
हमारे वस्त्र भोजन की फिकर करना तुम्हे होगी।
बचन मन कर्म से प्यारे मुझे अपना बनाओगे॥
विपति संपति औ बीमारी गमी शादी औ सुख दुख मे।
कभी किसी हाल मे मुझ से जुदा होने न पाओगे॥ →

अर्थ—मानो सर्प अमृत पाने के लोभ से लाल कमलों की पुष्प रज से चन्द्रमा को भूषित कर रहा हो (यहाँ पर श्री रामचन्द्रजी का श्याम कर मानो सर्प है, उनकी हथेली कमल है, अँगुलियाँ कमल की पखुरी हैं और सेंदुर कमल का पराग है। सीताजी का मुख चन्द्र के समान है, उन का सौन्दर्य अमृत है सो सर्प मानो चन्द्रमा से अमृत रस पाने की इच्छा से उसका पूजन कमल के पराग से करता है) फिर वशिष्ठजी ने आज्ञा दी तो दूल्ह और दुलहिन एक ही आसन पर विराजमान हुए।

छन्द—बैठे बरासन राम जानकि मुदित मन दशरथ भये[1]।
तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपने सुकृत सुर तरु फल नये ॥

जवानी औ बुढापे मे खिजा बहार जोबन मे।
निगाहे मिहर से हरदम खुशी मुझ को दिलाओगे ॥
तिजारत नौकरी खेती अर्थ अरु धर्म सम्बन्धी।
करो कोई काम जब जारी हमे पहिले जताओगे ॥
जो बिगडे काम कुछ मुझ से करो एकान्त मे शिक्षा।
मगर ननँदी सहेलिन मे न तुम हम से रिसाओगे ॥
हमे तजि और तिरिया को दिया कभि दिल जो तुम जानो।
किये अपने को पाओगे जो मेरा जी जलाओगे ॥
अग्नि को साक्षी देकर जो अर्धांगिन किया मुझ को।
तो फिर "बलदेव" बायें पर मुझे अपने बिठाओगे ॥

(पुरुष के वचन)

गजल—वचन देता हूँ मैं तुझ को तुझे प्यारी बनाऊँगा।
मगर मैं चन्द बातो का अहिद तुझ से कराऊँगा ॥
तुझे मै धर्म की खातिर जो अर्धांगिन बनाता हूँ।
अहिद ता उम्र अपने से न पग पीछे हटाऊँगा ॥
मगर तामील हुक्मो पर मेरे रहना कमर बस्ता।
हुई इस काम मे गलती तो फिर नीचा दिखाऊँगा ॥
सिवा मेरे जो कोई नर हो चाहे कितना ही बेहतर।
जो की कभी ख्वाब मे ख्वाहिश तो दिल तुम से हटाऊँगा ॥
गृहाश्रम के लिये तुम को किया सगिन व सहधर्मिन।
कठिन इस धर्म आश्रम को तेरे बिन कर न पाऊँगा ॥
विपत्ति सम्पत्ति मे हरदम हमारे साथ मे रहना।
गुजारा उस मे ही करना कि जो कुछ मैं कमाऊँगा ॥
दगा राखो जो कुछ दिल मे तो अपने दिल की तुम जानो।
मगर मैं धर्म से अपना वचन पूरा निबाहूँगा ॥
वचन "बलदेव" के इतने जो है स्वीकार सत चित से।
तो फिर दिल जान से प्यारी तेरी खिदमत बजाऊँगा ॥

१. बैठे बरासन राम जानकि मुदित मन दशरथ भये—
राग बिलावल—आज इन दोउन पै बलि जैये।
रोम रोम से छबि बरसत है निरखत नयन सिरैये ॥
रूप रास मृदु हास ललित मुख उपमा देत लजैये।
"नारायण" या गौर श्याम को हिये निकुंज बसैये ॥

भरि भुवन रहा उछाह राम विवाह भा सब ही कहा ।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एक यह मंगल महा ॥

अर्थ—रामचन्द्रजी और जानकीजी को एक ही श्रेष्ठ आसन पर बैठा हुआ देख, दशरथजी मन मे प्रसन्न हुए । अपने सत्कर्म रूपी कल्पवृक्ष मे नये फल देख-देखकर उनका शरीर बारबार रोमाचित हो उठता था । तीनो लोको मे आनन्द भर गया और सब ने कहा कि रामचन्द्रजी का विवाह हो गया । इस का वर्णन किस प्रकार से करके जीभ को सतोष होवे क्योकि यह तो एक है और मगल बेहिसाब है ।

छन्द—तब जनक पाइ वशिष्ठ आयसु ब्याह साज सँवारि कै ।
माडवी श्रुतिकीर्ति उर्मिला कुँअरि लई हँकारि कै ॥
कुशकेतु[1] कन्या प्रथम जो गुणशील सुख शोभा मई ।
सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहि दई ॥

अर्थ—फिर जनकजी ने वशिष्ठजी की आज्ञा लेकर सम्पूर्ण विवाह की तैयारी कर माडवी, श्रुतिकीर्त्ति और उर्मिला राजकुमारियो को बुलवा लिया । पहिली कुशध्वज की कन्या (माडवी) जो गुणवती, शीलवती और सुख रूप सुन्दरी थी । राजा ने सब नेग-दस्तूर करके प्रीतिपूर्वक भरत को ब्याह दी ।

छन्द—जानकी लघु भगिनि सुन्दरि अति शिरोमणि जानिकै ।
सो जनक दीन्ही ब्याहि लषनहि सकल विधि सनमानि कै ॥
जेहि नाम श्रुतिकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी ।
सो दई रिपुसूदनहि भूपति रूप शील उजागरी ॥

अर्थ—जानकीजी की छोटी बहिन (उर्मिला) को अति रूपवतियो मे शिरोमणि जानकर जनकजी ने लक्ष्मणजी को सब प्रकार से आदर-सत्कार के साथ विवाह दी । अत मे राजाजी ने उत्तम नेत्र वाला, सुदर मुखवाली, सब गुणो से सम्पन्न तथा स्वरूप और शील-स्वभाव मे प्रसिद्ध श्रुतिकीर्त्ति नाम की कन्या का विवाह शत्रुघ्न के साथ कर दिया ।

छन्द—अनुरूप वर दुलहिन[2] परस्पर लखि सकुचि हिय हर्षही ।
सब मुदित सुन्दरता सराहहि सुमन सुरगण वर्षही ॥

---

१. कुशकेतु = कुशध्वज—
ह्रस्व रोमा नामक जनक के दो पुत्रो मे से छोटे का नाम कुशध्वज था । यह इद्र देश की साकाश्या नाम की राजधानी मे राज्य करता था । इस की दो कन्याएँ थी · माडवी और श्रुतिकीर्त्ति । जिन्हे इसने क्रमानुसार भरत और शत्रुघ्न को ब्याह दिया था । कहते है कि इस के बडे भाई शीरध्वज के कोई पुत्र न था इसी से शीरध्वज के पश्चात् कुशध्वज मिथिला का राजा हुआ । इसके लडके का नाम धर्मध्वज जनक था (देखो वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, सर्ग ७०) ।

२. अनुरूपर वर दुलहिन—विष्णु पदी रामायण से—
राग मलार—सखी जस सीता को पति राम ।
तैसेहि भरत माडवी को पति तिय गोरी पिय श्याम ॥
कुँवरि उर्मिला अरु श्रुतिकीरति सुभग साँवरी वाम ।
तिन के कन्त लषन रिपुसूदन गोरे अग ललाम ॥ →

सुन्दरी सुन्दर बरन्ह सह सब एक मण्डप राजही।
जनु जीव अरु चारिउ अवस्था विभुन सहित बिराजही[१] ॥

अर्थ—यथा योग्य स्वरूप वाले दूल्ह और दुलहिन एक-दूसरे को देखकर सकुचते-सकुचते मन मे प्रसन्न होते थे। सब लोग प्रसन्नतापूर्वक उनके स्वरूपो की बडाई करते थे और देवगण फूल बरसाते थे। सुदर राजकुमारियाँ रूपवान दूल्हो के साथ एक ही मडप मे सुशोभित हो रही थी। मानो जीव और चारो अवस्थाएँ अपने-अपने स्वामियो सहित विराजमान् हो।

दोहा—मुदित अवधपति सकल सुत, बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाये महिपालमणि, क्रियन्ह सहित फल चारि[२] ॥३२५॥

अर्थ—अयोध्यापति दशरथजी अपने चारो पुत्रो को बहुओ समेत देख कर इस प्रकार प्रसन्न हुए मानो इन राजशिरोमणि ने अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इन चारो फलो को इनकी क्रियाओ (अर्थात् उद्यम, अनुष्ठान, रति, भक्ति) सहित पाया हो।

जस रघुवीर ब्याह विधि बरणी। सकल कुँअर ब्याहे तेहि करणी ॥
कहि न जाइ कछु दायज भूरी। रहा कनकमणि मण्डप पूरी ॥

अर्थ—जिस प्रकार रामचन्द्रजी के विवाह की रीति वर्णन की गई है उसी प्रकार की रीति से बाकी तीन राजकुमारो का भी विवाह हुआ। दायज तो इतना अधिक था कि वह कहने मे नही आता, सुवर्ण और मणियो से मानो मडप ही भर गया था।

कबल बसन बिचित्र पटोरे। भाँति भाँति बहुमोल न थोरे ॥
गज रथ तुरंग दास अरु दासी। धेनु अलंकृत कामदुहासी ॥

अर्थ—ऊन के वस्त्र तथा रग-बिरगे रेशमी कपडे अनेक भाँति के बहुत दामो के थे। हाथी, रथ, घोडे, दास और दासियाँ, तथा अलकारो से सुसज्जित कामधेनु के समान गाये।

वस्तु अनेक करिय किमि लेखा। कहि न जाइ जानहिं जिन देखा ॥
लोकपाल अवलोकि सिहाने। लीन्ह अबधपति सब सुख माने ॥

दोउ बड बन्धु सुशील परति लखि धीर सहज अभिराम।
छोट अनुज बलदेव चपल कछु सब सुन्दर गुणधाम ॥

१. जनु जीव अरु चारिउ अवस्था विभुन सहित बिराजही --"जीव" राजा दशरथजी माने गये है, क्योकि उनका सम्बन्ध सब पुत्रो और पुत्रबधुओ से है।
चार अवस्थाएँ—(१) जाग्रत, (२) स्वप्न, (३) सुषुप्ति और (४) तुरीय।
इन के स्थानीय—(१) उर्मिला, (२) श्रुतिकीर्त्ति, (३) माण्डवी और (४) सीता
विभु—(१) विश्व, (२) तैजस, (३) प्राज्ञ और (४) अन्तर्यामी
इन के स्थानीय—(१) लक्ष्मण, (२) शत्रुघ्न, (३) भरत और (४) राम

२. क्रियन्ह सहित फल चारि—क्रियाएँ और उन के फलो का कोष्ठक उनके स्थानीय सहित लिखा जाता है—

क्रियाएँ	क्रियाओ के स्थानीय	फल	फलो के स्थानीय
भक्ति	उर्मिला	धर्म	लक्ष्मण
तपस्या	श्रुतिकीर्त्ति	' अर्थ	शत्रुघ्न
सेवा	माडवी	काम	भरत
श्रद्धा	सीता	मोक्ष	राम

अर्थ—और भी सैकडो वस्तुये थी, उनका लेखा कहाँ तक करे, कहते नही बनता। इसे वे ही जान सकते है जिन्होने देखा था। (दायज को) देख दिग्पाल भी सतुष्ट हुए और राजा दशरथजी ने सब आनन्दपूर्वक ग्रहण किया।

दीन्ह याचकन्ह जो जेहि भावा। उबरा सो जनवासहि आवा ॥
तब कर जोरि जनक मृदुबानी। बोले सब बरात सनमानी ॥

अर्थ—माँगने वालो को जो वस्तु अच्छी लगी वही दे दी गई। जो कुछ बच रहा वह जनवासे मे भेज दिया गया। तब सब बरात का आदर करके जनकजी हाथ जोडकर मीठी वाणी से कहने लगे।

छन्द—सनमानि सकल बरात आदर दान विनय बड़ाइ कै।
प्रमुदित महा मुनि वृन्द वन्दे पूजि प्रेम लड़ाइ कै ॥
सिर नाइ देव मनाइ सब सन कहत कर संपुट किये।
सुर साधु चाहत भाव सिधु कि तोष जल अंजलि दिये[1] ॥

अर्थ—सम्पूर्ण बरात वालो का यथायोग्य सत्कार, दान, विनती और बडाई से सम्मान किया। आनदपूर्वक प्रेम लगाकर बडे-बडे मुनीश्वरो का पूजन कर उनकी वदना की, फिर शीश नवाकर देवताओ को प्रसन्न किया और हाथ जोड कर सबसे कहने लगे कि देवता और सज्जन तो प्रेम को चाहते है, भला एक अजुली भर पानी के समर्पण करने से समुद्र को क्या सन्तोष होता है (भाव यह है कि आप लोगो के पास इतना वैभव और द्रव्य है कि उसके सामने मेरा दिया हुआ सब इस प्रकार तुच्छ है कि जिस प्रकार जल से परिपूर्ण समुद्र मे एक अजुली जल डालना है तो भी उस से समुद्र सतोष पाता है यदि प्रेम सहित दिया जावे, क्योकि महात्मा तो भाव ही के भूखे रहते है)।

छन्द—कर जोरि जनक बहोरि बंधु समेत कोशलराय सों।
बोले मनोहर बैन सानि सनेह शील सुभाय सों ॥
संबध राजन रावरे हम बड़े अब सब विधि भये[2]।
यह राज साज समेत सेवक जानिबी बिनु गथ लये ॥

---

१. सुर साधु चाहत भाव सिधु कि तोष जल अजलि दिये—
श्लोक—अपा निधि वारिभिरर्चयन्ति, दीपेन सूर्य प्रतिबोधयति।
ताभ्या तयो: किं परिपूर्णताऽस्ति, भक्त्यैव तुष्यन्ति महानुभावा. ॥
अर्थात् (लोग) समुद्र को थोडे से पानी द्वारा पूजते है, सूर्य को आरती दिखाते है। भला थोडे से जल और आरती से समुद्र तथा सूर्य को क्या सतोष हो सकता है? तो भी वे सतोष मानते है) क्योकि महात्मा तो भक्ति से सतोष को पाते है।

२. सबध राजन रावरे हम बडे अब सब विधि भये—
श्लोक—यात जन्म कृतार्थता विकसित पुण्याबुजाना वन।
छिन्नासप्रति सर्व पाप पटली दु खान्धकारो गत ॥
आनदाकुरकोटय. प्रकटिता, विघ्नाट्टवी पाटिता।
सबधे भवता कृते सुकृतिना, कि किं न लब्ध मया ॥
भाव यह कि हमारा जन्म सफल हुआ, हमारे पुण्यरूपी कमलो का वन खिल गया, अब हमारे सम्पूर्ण पापसमूह नाश हुए, दु:ख रूपी अधकार मिट गया। हमारे आनन्द रूपी→

अर्थ—फिर कुशध्वज के साथ जनकजी हाथ जोड कर अयोध्यापति से प्रेम और शील-स्वभाव-युक्त मधुर वचन कहने लगे, हे राजन् ! आप से सम्बन्ध करके हम लोग अब सब प्रकार से बडे हो गये। आप हम लोगो को राजवैभव समेत बिना मोल लिये अपने दास जानिये।

छन्द—ये दारिका परिचारिका करि पालबी करुणामई[1]।
अपराध छमिबो बोलि पठयो बहुत हौ ढीठी दई॥
पुनि भानुकुलभूषण सकल सनमाननिधि समधी किये[2]।
कहि जात नहि विनती परस्पर प्रेम परिपूरण हिये[3]॥

अर्थ—हे करुणानिधान ! इन लडकियो को टहलनी समान जान कर पोषण करियेगा। जो मैंने वह बडी ढिठाई की थी कि आपको बुला भेजा था सो अपराध क्षमा कीजियेगा (भाव

कोटानि कोटि अकुर प्रकट हुए और विघ्न रूपी जगल कट गया। निदान आप सरीखे सत्कर्मियो के सबध से हमने कौन-कौन-सी वस्तु नही पा ली (अर्थात् हमारे सम्पूर्ण दुःख और विघ्न दूर होकर हम परमानद को प्राप्त हुए)।

१ ये दारिका परिचारिका करि पालबी करुणा मई।—जनकजी बोले कि हे अयोध्यापति महाराज !

श्लोक—कन्या न जानाति गृहस्य कर्म, मात्रा सदा लालन पालितेयम्।
तथापि विद्वन्भवत· सुताय, समर्पिता चागण लेपनाय॥

अर्थात् कन्या घर का कामकाज नही जानती, कारण इस की माता इसे सदा प्यार से रखती रही है। तो भी हे विद्यानिधान महाराज ! यह कन्या आप के पुत्र को इस हेतु समर्पित की है कि वह उनके (पूजन निमित) चौका लगा दिया करेगी।

धन्य है सीताजी को जिन्होने अपने पिता की शिक्षा का महारानी हो जाने पर भी ठीक निर्वाह किया। जैसा उत्तरकाण्ड मे कहा है—

यद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। विपुल सकल सेवा बिधि गुनी॥
निज कर गृह परिचर्या करही। रामचन्द्र आयसु अनुसरही॥

२. पुनि भानुकुलभूषण सकल सनमाननिधि समधी किये—

श्लोक—विद्यावृत्तयुता प्रसन्नहृदया, विद्वत्सुवद्धा दराः।
श्री नारायण पादपकज युग, ध्याना बधूताहस·॥
श्रौताचार परायणाः सविनयाः विश्वोपकारक्षमा।
जाता यत्र भवाद्वशास्तदमल, केनोपमेय कुलम्॥

अर्थात् विद्या और सदाचार से युक्त, प्रसन्नचित्त, विद्वानों का आदर करने वाले, श्री नारायण के चरण कमल युगल के ध्यान से विगत पाप, वेदानुकूल आचार करने वाले, विनय सम्पन्न, ससार का उपकार करने मे समर्थ ऐसे आप सरीखे जिस कुल में उत्पन्न हुए हैं उस वश की उपमा किससे दी जा सकती है (अर्थात् आप परम प्रशसनीय हैं)।

३. कहि जात नहिं विनती परस्पर—रामचन्द्रिका से—

(जनकजी बोले)

तारक छन्द—जिन के पुरखा भुव गगहि लाये, नगरी शुभ स्वर्ग सदेह सिधारे।
जिनके सुत पाहन ते तिय कीनी हर को धनु भग भ्रमे पुर तीनी॥
निज आप अदेव अनेक सँहारे, सब काल पुरन्दर के रखवारे।
जिनकी महिमाहि को अन्त न पायो, हमको बपुरा यश वेदनि गायो॥ →

यह कि यहा से शिष्टजनो के साथ लग्नपत्रिका भेज कर सम्बन्ध का आरम्भ करने की अपेक्षा आप को दूतो द्वारा पत्री भेजकर बुलाया सो सर्वथा अनुचित हुआ, उसे क्षमा कीजिये)। फिर सूर्यवश के शिरोमणि दशरथजी ने अपने समधी को भी आदरणीयो मे श्रेष्ठ कर माना। इस प्रकार दोनो के हृदय प्रेम से ऐसे भर गये कि एक-दूसरे से फिर विनती न कर सके।

छन्द—वृन्दारकागण सुमन वर्षहि राउ जनवासहि चले।
दुदुभी जयधुनि वेदधुनि नभ नगर कौतूहल भले॥
तब सखी मंगल गान करत[१] मुनीश आयसु पाई कै।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुदर चली कोहबर ल्याइ कै॥

शब्दार्थ—वृन्दारकागण=देवगण। कोहबर=ब्याह के घर।

अर्थ-देवता लोग फूल बरसाने लगे, राजा दशरथ जनवासे को चले गये। आकाश और जनकपुर मे नगाडो की जय-जय और वेद की ध्वनि छा गई तथा बहुत आनन्द हुआ। तब सखिया मगल गीत गाती हुई मुनिश्रेष्ठो की आज्ञा पाकर चारो सुन्दर दुल्ह और दुलहिनो को विवाह घर मे लिवा ले गईं।

दोहा—पुनि पुनि रामहि चितव सिय, सकुचित मन सकुचै न[२]।
हरत मनोह मीनछवि, प्रेम पियासे नैन॥३२६॥

अर्थ—सीताजी रामचन्द्रजी को बारम्बार देखती थी, कारण वे (लोकलाज से) सकुचाती थी परन्तु मन से नही सकुचाती थी, प्रेम के भूखे नेत्र उत्तम मछली की छटा को छीने लेते थे (भाव यह कि प्रेम के आँसू से भरे हुए नेत्रो से कभी रामचन्द्रजी की ओर देख लेती थी और कभी उन्हे नीचा कर लेती थी। इस चपलता से चलते हुए नेत्रो को कविजी ने बहुत ही

(दशरथ जी ने कहा)

विजय छन्द—एक सुखी यहि लोक विलोकिये है वहि लोक निरै पगुधारी।
एक इहाँ दुख देखत "केशव" होत वहाँ सुर लोक बिहारी॥
एक इहाँऊ उहाँ अति दीन सो देत दुहूँ दिशि के जन गारी।
एकहि भांति सदा सब लोकनि है प्रभुता मिथिलेश तिहारी॥

१. तब सखी मगल गान करत—
बनरा—धनि धनि सीता जनककुमारी।
जाके हित सुन्दर बनरा यह बनि आये मनहारी॥
हम सीता बालकपन ते यक सगहि रही खेलारी॥
श्री रघुराज आज अब यहि सम कोउ नहिं परत निहारी॥

और भी, विष्णुपदी रामायण से—
बनरा—देखो सखि राम भरत लोने बनरा।
तैसेहि रूप लषन रिपुसूदन गोर औ श्याम मौर सिर सेहरा॥
तिलक अलक मकराकृतकुडल मुख अभिराम बडे दृग कजरा॥
कांध जनेऊ विजायठ बाहुन गोफ ललाम गुज गरे गजरा॥
श्री बलदेव पिताम्बर सोहत मोहत काम चितै चारो चेहरा॥

२. सकुचति मन सकुचै न– बिहारी सतसई—
दोहा–करे चाह सो चुटकि कै, खरे उडौहे मैन।
लाज नवाये तरफरत, करत खूंद सी नैन॥

उत्तम मीन की उपमा देकर दर्शाया है)।

श्याम शरीर सुभाय सुहावन। शोभा कोटि मनोज लजावन[१] ॥
यावकयुत पदकमल सुहाये। मुनिमन मधुप रहत जिन छाये ॥

शब्दार्थ—यावक=महावर।

अर्थ—रामचन्द्रजी का श्यामला शरीर स्वभाव ही से मनोहर था जिसकी सुन्दरता करोडो कामदेव को लज्जित करती थी। कमलस्वरूप चरण महावर लगाये हुए शोभायमान लगते थे। जिनमे मुनियो के मनरूपी भौरे लुभाने बने रहते है।

पीत पुनीत मनोहर धोती। हरत बालरवि दामिनि जोती ॥
कल किंकिनि कटिसूत्र मनोहर[२]। बाहु विशाल विभूषण सुदर ॥

अर्थ—पीले रग का पुनीत पीताम्बर सुहावना लगता था, वह प्रात काल के सूर्य तथा बिजली की चमक को दबा देता था। सुन्दर घुँघरू तथा करधनी मनमोहिनी थी और लम्बी भुजाओ मे सुन्दर आभूषण पहिने हुए थे।

पीत जनेउ महा छवि देई। कर मुद्रिका चोरि चित लेई ॥
सोहत ब्याह साज सब साजे। उर आयत भूषण उर राजे ॥

अर्थ—पीला जनेऊ बडी शोभा दे रहा था और हाथ की मुँदरी चित्त को चुराये लेती थी। ब्याह के सब अलकार धारण किये हुए सुशोभित हो रहे थे और विस्तीर्ण हृदय पर हृदय-आभूषण शोभायमान थे।

पियर उपरना काँखा सोती। दुहुँ आचरन्हि लगे मणि मोती ॥

---

१. श्याम शरीर सुभाय सुहावन। शोभा कोटि मनोज लजावन—विष्णुपदी रामायण से—
होरी— जानकी वर सुन्दर माई ॥टेक॥

श्यामल गात केसरिया जामा पीताम्बर फहराई।
मनहुँ मेघ पर दामिनि दमकति मोर तिलक छवि छाई ॥
रहे रवि चन्द्र लोभाई ॥ जानकी वर० ॥
बाँकी भौह कमल दल लोचन चितवनि चचलताई।
गोल कपोलन्ह कुडल डोलत छन छन छवि छहराई ॥
मनोहर ओठ ललाई ॥ जानकी वर० ॥
कठुला कण्ठ बिजायठ बाहुन ककन अधिक सोहाई।
लाल जडे कचन के चूरा मुँदरी सुन्दरताई ॥
मनौ चित लेत चुराई ॥ जानकी वर० ॥
चरण महावर भूषण देखत वर बस सुधि बुधि जाई।
श्री बलदेव कहत सिय की सखि अब नहिं परत कलाई ॥
गयो जिय रूप समाई ॥ जानकी वर सुन्दर माई ॥

२. कल किंकिनि कटिसूत्र मनोहर—कवि बिहारी कृत नखसिख से—

(मनहर छन्द)

जामा की चुननि चीन चपट सु पीतपट लपटि निपट अभिराम प्रभा भाथ की।
सूछम ललामा अति बिदित बलामा कटि किंकिणि कलामा मानौ रामा सब साथ की ॥
आगे पेशकबज कटारी द्विति कारी न्यारी रतन जटित उजियारी गुण गाथ की।
सिंह छवि हारी सुकुमारी कलाधारी कटि अवध बिहारी अवतारी रघुनाथ की ॥

नयन कमल कल कुडल काना । वदन सकल सौदर्यनिधाना[१] ।।

अर्थ—पीला दुपट्टा जिसके दोनो छोरो पर मणि और मोती लगे थे, जनेऊ की नाईं (अर्थात् बगल के नीचे से कांधे पर पडा था) कमल के समान नेत्र तथा सुन्दर कुडल कानो मे लटक रहे थे और मुख तो मानो सपूर्ण सुन्दरता का भडार था ।

सुन्दर भृकुटि मनोहर नासा । भालतिलक शुचि रुचिर निवासा ।।
सोहत मौर मनोहर माथे । मगलमय मुकुतामणि गाथे ।।

अर्थ—सुन्दर भौहे, सुहावनी नासिका और माथे पर तिलक मानो स्वच्छता और रोचकता का स्थान ही था । सुन्दर मस्तक पर मडलीक मोती और मणियो से जडा हुआ विवाह का मुकुट शोभायमान था ।

गाथे महामणि मौर मंजुल अंग सब चित चोरही[२] ।
पुरनारि सुरसुन्दरी वरहि विलोकि सब तृण तोरही ।।
मणि वसन भूषण वारि आरति करहि मगल गावही ।
सुर सुमन बरषहि सूत मागध वदि सुयश सुनावही ।।

अर्थ—मौर मे बड़े-बडे मणि जडे थे और अग-प्रत्यग मनोहर होने के कारण लोगो के चित्त को चुराये लेते थे । नगर की सब स्त्रियाँ तथा देवताओ की स्त्रियाँ दूल्हे को देख कर तिनका तोडती थी (इस अभिप्राय से कि इन को डीठ न लगे और इन की बलाये तिनके के समान टूट जावे । वे मणि, कपडे और गहने न्यौछावार कर आरती करती तथा मगल गीत गाती थी । देवगण फूल बरसाते थे और पौराणिक, भाट तथा यश वर्णन करने वाले सुन्दर कीर्त्ति सुना रहे थे ।

छन्द—कोहबरहिं आने कुँवर कुँवरि सुआसिनिन्ह सुखपाइ कै ।
अति प्रीति लौकिक रीति लागी करन मगल गाइ कै[३] ।।

---

१. वदन सकल सौदर्यनिधाना—

क०—सोम जो कहौ तौ कलानिधि कलकी सुन्यो कज सम कहौ कैसे पक को सदन है ।
काम मुख सरिस बखानिये जु राम मुख सोऊ न बनत देह रहित मदन है ।।
अमल अनूप आधि ब्याहि ते विहीन सदा बाणी के विलास कोटि कलुष कदन है ।
बदत "गुलाम राम" एक रस आठो याम शोभा को सदन रामचन्द्र को बदन है ।।

२. गाथे महामणि मौर मजुल अग सब चित चोरही—

राग परज—राघो जू महाराज साँवल बनरा ।
अजब बन्यो तिहारी अँखियन कजरा दशरथ महाराज ।।
रत्न मौर केसरिया बागो और विविध मणि साज ।
"राम सखे" लख रूप अटक मन तन मन रही न सम्हार ।।

३. अति प्रीति लौकिक रीति लागी करन मगल गाइ के—

गारी—जेवत राम जनकमन्दिर मे, सब मिलि नारि जिवाव ।
कि हाँ जी सब मिलि नारि जिवावे ।।
चारो वीर थार मिलि एकै, कौर लेत सुख पावै ।। कि हाँ जी कौर ।।
नवल बधू नव नेह नेह सो, कुल बधु सब जुरि आवै ।। कि हाँ जी कुल ।।
कुँवरहिं निरखत मन अति हरखत, रस भरि गारी गावै ।। कि हाँ जी रस ।।
शेष महेश निगम नारद मुनि उनहुँ के ध्यान न आवै ।। कि हाँ जी उनहुँ ।। →

लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीयसन शारद कहहिं[१] ।
रनिवास हासविलारसवश जन्म को फल सब लहहिं ।।

अर्थ—सौभाग्यवती स्त्रियाँ आनदपूर्वक दूल्हा और दुलहिनो को विवाहगृह मे लिवा लाईं और बडे चाव से लोक व्यवहार मगलगान समेत करने लगी । कौर उठाकर अपने हाथ से दुलहिन के मुख मे देने के लिये उमाजी ने रामचन्द्रजी को उकसाया और उसी प्रकार सीताजी को सरस्वतीजी ने सिखाया । रनिवास की सब स्त्रियाँ इस हँसी-दिल्लगी के प्रेमरस को देख-देख जन्म का फल लूट रही थी ।

छन्द—निज पाणि मणि महँ देखि प्रतिमूरति सुरूपनिधान की[२] ।
चालति न भुजबल्ली विलोकनि विरहभयवश जानकी ।।
कौतुक विनोद प्रमोद प्रेम न जाइ कहि जानहि अली ।
वर कुँअरि सुन्दर सकल सखी लिवाइ जनवासहि चली ।।

अर्थ—अपने हाथ के मणियो मे रूपनिधान रामचन्द्रजी की परछाईं देखकर जानकी अपनी लतारूपी भुज को नही डुलाती थी क्योकि ऐसा करने मे रामचन्द्रजी से विछोह होने का भय था (भाव यह कि हाथ के आभूषणो के मणियो मे रामचन्द्रजी के प्रतिबिंब को जानकीजी निहार रही थी, इस हेतु उन्होने अपना हाथ थोडे समय के लिये वहाँ से न हटाया, इस डर से कि हाथ हटाते ही उन का प्रतिबिंब मणियो मे न पडेगा, सो मानो इस छिपी हुई रीति से उनके दर्शन भी दुर्लभ हो जावेगे) । उस समय का खेल, मन बहलावा आनद और प्रेम कहा नही जा सकता, वह तो सखियाँ ही जानती थी । फिर सखियाँ सब सुन्दर दूल्ह और दुलहिन की जोडियो को जनवासे पहुँचाने के हेतु लिवा ले चली ।

छन्द—तेहि समय सुनिय असीस जहँ तहँ नगर नभ आनँद महा ।
चिरजियहु जोरी चारु चारिउ मुदितमन सबही कहा ।।

"जनहरिया" त्रिय धन्य जनकपुर, हँसि हँसि लाड लडावै ।। कि हाँ जी
हँसि हँसि लाड लडावै ।।

१. लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीयसन शारद कहहिं—

क०—कलित कटोरा स्वच्छ हीरक अमोल गोल तामे क्षीर ओदन सुधारो सुख हेत है ।
होत लहकौरि नेग आनँद अपार छायो लगत सुहायो अति सकल निकेत है ।।
राम सिय शोभा अवलोकि तेहि अवसर की भाषिवे को हरषि हिलोर हिय लेत है ।
रसिक बिहारी जनु चद ते पियूष लै लै रति मुख मैन रति मैन मुख देत है ।।

२. निज पाणि मणि महँ देखि प्रतिमूरति सुरूप निधान की" आदि—कवित्त रामायण से—

सवैया—दूलह श्री रघुनाथ बने दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माही ।
गावति गीत सबै मिल सुन्दर वेद युवा जुरि विप्र पढ़ाही ।।
राम को रूप निहारति जानकि ककण के नग की परछाही ।
याते सबै सुधि भूलि गई कर टेक रही पर टारति नाही ।।

और भी—प्रेम पीयूषधारा से —(चैती घाटे)

निरखत सीय कगनवाँ हो रामा, छवि रघुवर की ।
टारत नाही टेक रही कर, छाकी प्रेम मगनवाँ हो रामा, छवि रघुवर की ।।
सब सखियाँ मिलि मंगल गावत, बैठी जनक अँगनवाँ हो रामा, छवि रघुवर की ।
मोहनि दास छूटै नहि सजनी, जा हिय लाग लगनवाँ हो रामा, छवि रघुवर की ।।

योगीन्द्र सिद्ध मुनीश देव विलोकि प्रभु दुदुभि हनी।
चले हरषि बरषि प्रसून निज निज लोक जय जय जय भनी[१] ॥

अर्थ—उस समय नगर और आकाश मे अति ही आनद के कारण सभी ठौर आशीर्वाद के शब्द सुनाई देते थे, सो यो कि—सब लोगो ने प्रसन्न चित्त से कहा कि ये मनोहर चारो जोडियाँ चिरजीवी होवे। योगीश्वर, सिद्ध मुनिश्रेष्ठ और देवगणो ने रामचन्द्रजी को देखकर नगाडे बजाये और फिर फूल बरसाकर जय-जय-जय करते हुए अपने-अपने लोक को पधारे।

दोहा—सहित बधूटिन्ह कुँवर सब, तब आये पितु पास।
शोभा मंगल मोद भरि, उमगेउ जनु जनवास[२] ॥३२७॥

अर्थ—तब सब राजकुमार अपनी-अपनी दुलहिन समेत पिता के पास आये। उस समय उनकी मगलीक छटा से जनवासे के लोग आनद मे फूले न समाये।

पुनि जेवनार भई बहु भाँति। पठये जनक बुलाइ बराती[३] ॥
परत पाँवड़े बसन अनूपा। सुतन्ह समेत गवन किय भूपा ॥

अर्थ—फिर नाना प्रकार की रसोई तैयार हुई और जनकजी ने सम्पूर्ण बरातियो को

---

१. जय जय जय भनी—प्रेम पीयूषधारा से—

श्री राम—जय जय जयति जय जय राम।
जयति जय जगजननि सीता, जयति सुन्दर नाम ॥
जयति पावन सरित सरजू, जय जय अयोध्या धाम।
दास मोहनि भनत जय जय, जयति आठौ जाम ॥

२. सहित बधूटिन्ह कुँवर सब, तब आये पितु पास···आदि—इस दोहे के पश्चात् राम कलेवा का क्षेपक पुरौनी मे है।

३. पुनि जेवनार भई बहु भाँती। पठये जनक बुलाइ बराती—विष्णुपदी रामायण से—

गारी—जेवन हेत मुदित मिथिलापति कोशल पतिहि बुलाये जी।
साज समाज बरात सहित नृप राजपँवर महँ आये जी ॥
बाजा विविध नकीबन की धुनि सुनि पुरजन हरषाये जी।
कोउ खिरकी कोउ द्वार अटन पर कोउ मग देखन धाये जी ॥
नृप जनवास जनक द्वारे लगि कोटिन द्रव्य लुटाये जी।
रग बरग र वाइस अद्भुत छन छन माँह छुटाये जी ॥
जानि समय कर जोरि जनक पुनि समधिहि वचन सुनाये जी।
भोजन करन चलिय सब साहिब सुनत उठे सुख पाये जी ॥
धोइ चरण दिय भेट सबहि निमिराज भवन लै आये जी।
मनिमय अजिर कनकपीढन पर यथा उचित बैठाये जी ॥
सुवरण थार कटोरा अगणित सब ढिग प्रथम धराये जी।
चतुर सुआर परोसन लागे भोजन चतुर बनाये जी ॥
रुचिर छइउरस छत्तिस व्यजन भोज न जाहिं गनाये जी।
हरषि सनेह विदेह विभव दे सब कर नेग चुकाये जी ॥
पाँच कवल कर सब जन भोजन करन लगे मन भाये जी।
गारी होन लगी अटरन्ह पर कोकिल कठ लजाये जी ॥ →

बुला भेजा। फिर अनोखे-अनोखे पावडो पर से राजा दशरथजी चारो पुत्रो समेत चले आये।

सादर सब के पाय पखारे। यथा योग पीढन वैठारे ॥
धोये जनक अवधपति चरना। शील सनेह जाइ नहि बरना ॥

अर्थ—आदर सहित सब बरातियो के पाँव धुलाकर उन्हे यथोचित पीढो पर बिठा दिया। फिर जनकजी ने दशरथजी के पैर धोये, उस समय की शीलता और प्रेम का वर्णन नही हो सकता।

बहुरि रामपदपंकज धोये। जे हर हृदयकमल महँ गोये ॥
तीनिउ भाइ रामसम जानी। धोये चरण जनक निज पानी ॥

अर्थ—फिर जिन्हे महादेवजी ने अपने हृदय कमल मे छिपा रखा है ऐसे रामचन्द्रजी के कमलरूपी चरणो को धोया और जनकजी ने राम ही के समान जान तीनो भाइयो के पाँव पखारे।

आसन उचित सबहि नृप दीन्हे। बोलि सूपकारी सब लीन्हे ॥
सादर लगे परन पनवारे। कनककील मणिपान सँवारे ॥

अर्थ--जनकजी ने सब ही को सुयोग्य आसन पर बिठलाया फिर सब रसोई वालो को बुला लिया तब आदरपूर्वक ऐसी पत्तले डाली गई जिनमे हरी मणियो के पत्ते और सोने की कीलें लगी थी।

दोहा—सूपोदन सुरभी सरपि, सुन्दर स्वाद पुनीत[1]।
क्षणमहँ सब कहँ परसि गे, चतुर सुआर विनीत ॥३२८॥

शब्दार्थ—सूप=दाल। ओदन=भात। सुरभी=गाय+सरपि (शु=रूप सर्पि) =घृत, अर्थात् गाय का घी। सुआर=रसोई बनाने वाला।

सुनत हँसत महराज सभायुत खात विलम्ब लगाये जी।
नाम बरातिन के लक्ष्मीनिधि सब कहँ जात बताये जी ॥
सुनि सुनि नारि पुरुष अबलन कहँ उठत अधिक गरियाये जी।
इहि विधि जेइ उठे जब भूपति प्रेम सहित अँचवाये जी ॥
बैठे पहिर पोशाक सभा सब अतर सुगध लगाये जी।
मेवा भरित पान के बीरा पानदान भरवाये जी ॥
इक इक सकल बरातिन दीन्हे मणि भूषण पहिराये जी।
ब्याह उछाह सिया रघुवर को शेष कहत सकुचाये जी ॥
कृपा करहु "बलदेव" भजनहित एक बदन कछु गाये जी।

१. सूपोदन सुरभी सरपि, सुन्दर स्वाद पुनीत—

गारी—जेवन आये हैं राजा दशरथ सग सुवन वर चारी जी।
सुन्दर आसन जनक दिये अति दिव्य भानुद्युतिकारी जी ॥
कनक कील मणि परन बने शुचि परेउ तुरत पनवारी जी।
पूजि सुअवसर जानि सुआरन्ह व्यजन विविध प्रकारी जी ॥
परसन लगे प्रथम सूपोदन गोघृत अरु तरकारी जी।
भाँति भाँति मेवा पकवाने जेवत लखि सब नारी जी ॥
रानि सुनयना अवर सखा बहु देत मधुर धुनि गारी जी।
परिजन सहित भूप हरषत सुनि "महावीर" सुख भारी जी ॥

अर्थ—सुन्दर स्वादिष्ट और स्वच्छ दाल-भात और गाय का घी क्षण भर मे चतुर रसोई वाले सबको परोस गये ।

पचकवॉल करि जेवन लागे। गारिगान सुनि अति अनुरागे[1] ।।
भॉति अनेक परे पकवाने[2] । सुधा सरिस नहि जाहि बखाने ।।

अर्थ—पचग्रासी करके भोजन करने लगे और ब्याह की गारी सुनकर बडे मग्न हुए । फिर भाँति-भाँति के व्यजन परोसे गये, जो अमृत के समान थे और जिन का वर्णन नही हो सकता ।

परसन लगे सुआर सुजाना। व्यजन विविध नाम को जाना ।।
चारि भॉति भोजन विधि गाई। एक एक विधि बरनि न जाई ।।

अर्थ—चतुर रसोईदार नाना प्रकार के व्यजन परोसने लगे जिन के नाम कौन जान सकता है। भोजन चार प्रकार के होते है सो एक-एक प्रकार का भी वर्णन नही किया जा सकता ।

---

१. गारिगान सुनि अति अनुरागे—

सवैया—पातक हानि पिता सग हारिबो गर्भ के शूलन ते डरिये जू ।
तालन को बँध बन्ध धरोर को नाथ के साथ सदा रहिये जू ।।
पत्र फटै ओ कटै ऋण "केशव" कैसहु तीरथ मे मरिये जू ।
"नीकी सदा ससुरारि की गारि" सुडॉड भलो जु गया भरिये जू ।।

२. भाँति अनेक परे पकवाने । सुधा सरिस नहिं जाहिं बखाने—सावित्री भजन माला से—

जेवनार—पूरी परम पियारी परसो दधि अरु दूध मॅगाओ ।
सकल मिठाई मीठी मीठी सजनन को परसाओ ।।
चार चार चौकडा चतुर मिल लड्डू लेउ उठाई ।
मोती चूर मुदित मन मोहनभोग देउ परसाई ।।
युक्ति जतन से लेउ जलेबी अमृतरूप इमरती ।
बरफी बडे जतन से परसो करके आनँद विरती ।।
पेडा पुनि पवित्र प्रिय परसो पिस्ता आदि मिले है ।
खजुला खस्ता खुरमा खुशदिल सुन्दर श्रेष्ठ बने है ।।
खोया खुरचन खीर बनाई किशमिश आदि मिलाई ।
मालपुअन के वही लालची जिनके दाँत न भाई ।।
लेउ साग लाये लौका को बैंगन और रतालू ।
परबर गोभी मेथी मूली अरई उत्तम आलू ।।
काशीफल अरु कुँदुरू कचरी बने करेला कैसे ।
भिडी भुनी भक्तिवश हुइ के साग सुरुचि शुभ ऐसे ।।
रूपवान लेउ रसिक रायते निकुती नमक मिलाओ ।
बथुआ बडो परम पोदीना हीग धुगार लगाओ ।।
अब लेउ आम आमरे अदरख आक के पता सलोने ।
दही बडे अरु दारि मौठ लै है तिरखूँट तिकोने ।।
लेउ लसोडे सिरका सुन्दर चटनी खूब बनाई ।
हाथ धुलाय दीन्ह हिंगाष्टक हुइ जाय दूर कचाई ।।
रामचन्द्र ज्योनार बखानी हँसि हँसि के सब जेवै ।
गावै नारि कहै सजनन सो जो चाहै सो लेवै ।।

छरस रुचिर व्यंजन बहु जाती। एक एक रस अगणित भाँती[1] ।।
जेवत देहि मधुर धुनि गारी। लेइ लेइ नाम पुरुष अरु नारी[2] ।।

अर्थ— षट्रस स्वादिष्ट भोजनो के अनेक प्रकार थे, उन मे से प्रत्येक रस के अनगिनती भेद थे। भोजन करते समय स्त्रियाँ पुरुष और नारियो का नाम ले-लेकर मीठी वाणी से गारी गा रही थी।

समय सुहावनि गारि बिराजा[3] । हँसत राउ सुनि सहित समाजा ।।
इहि विधि सब ही भोजन कीन्हा। आदर सहित आचमन कीन्हा ।।

अर्थ—सुअवसर पर गारियो का गाना भी अच्छा लगा, तभी तो दशरथजी समाज समेत सुन-सुनकर हँसने लगते थे। इस प्रकार सभी ने भोजन किये और सबके आदर सहित हाथ धुलवाये।

दोहा—देइ पान पूजे जनक, दशरथ सहित समाज।
जनवासे गवने मुदित, सकल भूप सिरताज ।।३२६।।

अर्थ—जनकजी ने बरातियो समेत दशरथजी का पूजन कर पान दिये, तब सब राजाओ के शिरोमणि दशरथजी प्रसन्न होते हुए जनवासे को गये।

नित नूतन मंगल पुर माही। निमिष सरिस दिन यामिनि जाही[4] ।।
बड़े भोर भूपतिमणि जागे। याचक गुणगण गावन लागे ।।

---

१. छरस रुचिर व्यजन बहु जाती। एक एक रस अगणित भाँती—

तिक्त मधुर कटु अमल करवाये। क्षार सहित षटरस ये गाये ।।
एक एक कर भेद अनेका। परसे सूदन सहित विवेका ।।

२. जेवत देहि मधुर धुनि गारी। लेई लेई नाम पुरुष अरु नारी—रामयश दर्पण नाटक से—

गारी—जेवत राम जनकमन्दिर मे गावहु री सखि गारी।
कि हाँ जी, हम सुनियत सब अवधपुरी की होती है नारि अनारी।
कि हाँ जी, सुनियत तुम्हरी बहिनि शन्तना ऋषि के सग सिधारी ।।
कि हाँ जी, एक बात हम पूछत तुम सो कहहु जायँ बलिहारी।
कि हाँ जी, सब गोरेन महँ तुम कस कारे यह सन्देह महा री ।।
कि हाँ जी, और सुनी यक बात अजूबा बहुत है नृप के नारी।
कि हाँ जी, खीर खाय सुत पैदा करती यह करतूति विचारी ।।
कि हाँ जी, राजा वृद्ध भये अब अति ही गये है हिय ते हारी।
कि हाँ जी, यहि ते जनकभवन महँ पठवहु रहि है बहुत सुखारी ।।
कि हाँ जी, यह कहि कहि सब हँसत परस्पर और बजावत तारी।
कि हाँ जी, शकर कहत बिलग जनि मानहुँ गारी है परम पियारी ।।

३. समय सुहावनि गारि बिराजा— जैसा कहा है सभा विलास मे —

दोहा—फीकी पै नीकी लगै, कहिये समय विचारि।
सब के मन हर्षित करै, ज्यो विवाह मे गारि ।।

४. नित नूतन मगल पुर माही। निमिष सरिस दिन यामिनि जाही—रामरसायन रामायण से—

सोरठा—इहि विधि राम विवाह, भयो भये प्रमुदित सबै।
प्रतिदिन होत उछाह, दोऊ दिशि आनँदमय ।।

→

अर्थ—नगर मे प्रतिदिन नया ही आनन्द होता था, इस कारण दिन-रात एक पल के समान बीत जाता था। बडे सबेरे राजराजेश्वर दशरथजी सोकर उठे तो क्या देखते है कि मगन उनके गुणानुवाद गा रहे है।

देखि कुँअर बर बधुन्ह समेता। किमि कहि जात मोद मन जेता ॥
प्रातक्रिया करिगे गुरु पाही। महा प्रमोद प्रेम मन माही ॥

अर्थ—पुत्रो को सुन्दर बहुओ समेत देखकर दशरथजी के मन मे जो आनद हुआ वह कैसे कहा जावे। वे प्रात काल की नित्यक्रिया करके गुरु वशिष्ठजी के पास गये, उनके मन मे बडा ही आनद और प्रेम था।

करि प्रणाम पूजा कर जोरी। बोले गिरा अमिय जनु बोरी ॥
तुम्हरी कृपा सुनहु मुनिराजा। भयो आज मम पूरण काजा ॥

अर्थ - उनको प्रणाम करके हाथ जोडकर आदर से मानो अमृत भरे वचन कहने लगे। हे मुनिराज! सुनिये, आपकी कृपा से आज मेरा सब काम सिद्ध हो गया।

अब सब विप्र बुलाइ गोसाई। देहु धेनु सब भाँति बनाई ॥
सुनि गुरु करि महिपाल बड़ाई। पुनि पठये मुनिवृद बुलाई ॥

अर्थ—हे गोस्वामी! अब सब ब्राह्मणो को बुला कर सब प्रकार से सजाई हुई गौएँ दान कराइये। सुनते ही गुरुजी ने राजा की बडाई की और सब मुनियो को बुला भेजा।

दोहा—वामदेव अरु देवऋषि, वाल्मीकि जाबालि।
आये मुनिवर निकर तब, कौशिकादि तपशालि ॥३३०॥

अर्थ—तब वामदेव, नारद, वाल्मीकि, जाबालि और विश्वामित्र आदि बडे-बडे तपस्वी मुनीश्वरो के झुण्ड के झुण्ड आ पहुँचे।

दंड प्रणाम सबहि नृप कीन्हे। पूजि सप्रेम बरासन दीन्हे ॥
चारि लक्ष वर धेनु मँगाई। कामसुरभि सम शील सुहाई ॥

अर्थ—राजाजी ने सब ही को साष्टाग प्रणाम किया और आदर सहित सबको प्रेमपूर्वक उत्तम आसन बैठने को दिये। चार लाख उत्तम गौएँ मँगवाईं जो कामधेनु के समान शात और दिखनौट थी।

सब विधि सकल अलंकृत कीन्ही। मुदित महिप महिदेवन दीन्ही ॥
करत विनय बहु विधि नरनाहू। लहेऊँ आज जग जीवनलाहू ॥

अर्थ—राजाजी ने सबको सभी भाँति से सजाया और आनदपूर्वक ब्राह्मणो को दे दी। फिर दशरथजी अनेक प्रकार से विनती करने लगे कि ससार मे जन्म लेने का फल मैने आज पाया।

पाइ असीस महीश अनंदा। लिये बोलि पुनि याचकवृंदा ॥
कनक वसन मणि हय गय स्यंदन[१]। दिये बूझि रुचि रविकुलनन्दन ॥

नृत्य गान चहुँ ओर, होत कुतूहल विविध बहु।
मचो नगर मे शोर, घर घर होत अनँद अति ॥
भोजन दान विनोद, गीत वाद्य कौतुक विविध।
हास विलास प्रमोद, होत रहत नित रैन दिन ॥

१. कनक वसन मणि हय गय स्यदन। दिये बूझि रुचि रविकुलनन्दन—

अर्थ—ब्राह्मणो से आशीर्वाद पाकर दशरथजी प्रसन्न हुए फिर उन्होने याचको को बुलवाया। उन्हे सूर्यवशी महाराजा ने उनकी इच्छानुसार सोवर्ण कपडे, मणि, घोडे, हाथी और रथ दिये।

चले पढत गावत गुणगाथा। जय जय जय दिनकर कुलनाथा ।।
इहि विधि रामविवाह उछाहू। सकै न बरनि सहसमुख जाहू ।।

अर्थ—याचक गण गुणानुवाद गाते और यह कहते हुए चले कि हे सूर्यवशियो मे श्रेष्ठ महाराज, आपकी जय हो! जय हो! जय हो! इस प्रकार रामचन्द्रजी के विवाह के उत्सव का जिसके हजार मुख है और ऐसे शेषनागजी भी वर्णन नही कर सकते।

दोहा—बार बार कौशिकचरण, सीस नाइ कह राउ।
यह सब सुख मुनिराज तव, कृपाकटाक्ष प्रभाउ ।।३३१।।

अर्थ - दशरथजी विश्वामित्रजी के चरणो की बारम्बार वदना करके कहने लगे कि हे मुनिवर! यह सब आनन्द आप ही की कृपादृष्टि का फल है।

जनक सनेह शील करतूती। नृप सब भाँति सराह विभूती[१] ।।
दिन उठि बिदा अवधपति मांगा। राखहि जनक सहित अनुरागा ।।

अर्थ—जनकजी का प्रेम, शील स्वभाव और कार्रवाई को दशरथजी सब प्रकार उनके ऐश्वर्य समेत सराहते थे। प्रतिदिन सबेरे ही दशरथजी जाने की इच्छा प्रकट करते थे परन्तु जनकजी प्रीति सहित उन्हे रोक रखते थे।

नित नूतन आदर अधिकाई। दिनप्रति सहस भाँति पहुनाई ।।
नित नव नगर अनद उछाहू। दशरथ गवन सुहाइ न काहू ।।

अर्थ— दिनो दिन नये ढग से अधिक ही अधिक आदर होता था और प्रतिदिन हजारो प्रकार से पहुनई की जाती थी। जनकपुर मे नित नया आनद और उत्साह होता था, इस हेतु दशरथजी का जाना किसी को अच्छा नही लगता था।

बहुत दिवस बीते इहि भाँती। जनु सनेह रजु बँधे बराती[२] ।।
कौशिक सतानद तब जाई। कहा विदेह नृपहि समझाई ।।

कुण्डलिया—मघा मेघ दशरथ भये, याचक दादुर मोर।
सर सरिता द्विजगण भये बाढि चले चहुँ ओर ।।
बाढि चले चहुँ ओर शालि जनकादिक रानी।
पुर परिजन भे कृषी सुखी सुख सुन्दर पानी ।।
सुन्दर पानी बुन्द मणि भूषण पट वर्षत नये।
राम सिया पावस सुखद मघा मेघ दशरथ भये ।।

१ "नृप सब भाँति सराह विभूती" का पाठन्तर "नृप सबराति सराहस बीती" भी है जिसका अर्थ है .(१) बरातियो समेत राजा की बडाई करते-करते(समय) बीत गया,(२) राजा रात भर उसकी बडाई करते रहे।

२. बहुत दिवस बीते इहि भाँति। जनु सनेह रजु बँधे बराती—रामरसायन रामायण से—
तोटक छन्द—इहि भाँति घने दिन बीत गये। सब ही जन प्रीति अधीन भये ।।
नहि काहु कछू सुधि धामहु की। तन की धन की सुत वामहु की ।।
बहु वार कही अवधेश जऊ। न विदेह बिदा तिन कीन्ह तऊ ।।
तब कौशिक भूपहि आय कही। अब राज बिदा दृढ़ लेन चही ।।

अर्थ—इस प्रकार बहुत दिन बीत गये और बराती मानो प्रेम की डोरी मे बँधे थे (भाव यह कि प्रेम के मारे वे जा नही सकते थे)। तब विश्वामित्र और सतानद दोनो ने जाकर जनक राज से समझा के कहा कि—

अब दशरथ कहँ आयसु देहू। यद्यपि छाँड़ि न सकहु सनेहू ।।
भलेहि साथ कहि सचिव बुलाये। कहि जय जीव सीस तिन नाये ।।

अर्थ - यद्यपि आप प्रेम के कारण उन्हे छोड नही सकते तो भी अब दशरथजी को जाने की आज्ञा दीजिये। (जनकजी ने कहा) हे प्रभु ! ठीक है, और फिर मत्रियो को बुलवाया जिन्होने आते ही 'जय जीव' कहकर शीश नवाया।

दोहा—अवधनाथ चाहत चलन, भीतर करहु जनाउ।
भये प्रेमवश सचिव सुनि, विप्र सभासद राउ ।।३३२।।

अर्थ – (जनकजी बोले) रनवास मे खबर कर दो कि अवधपति महाराज जाना चाहते है। यह सुनकर मत्री तथा ब्राह्मण और सब समाजो के मुखिया प्रेम मे डूब गये।

(बरात की बिदा)

पुरबासनि सुनि चलिहि बराता। पूछत विकल परस्पर बाता ।।
सत्य गवन सुनि सब बिलखाने। मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने ।।

अर्थ—जब नगर निवासियो ने बरात की तैयारी सुनी तब तो व्याकुल हो एक-दूसरे से पूछने लगे और जब जाना कि चलना निश्चित ही हो गया है तब तो सबके सब इस प्रकार कुम्हला गये कि मानो सध्या के समय कमल मुरझा गये हो।

जहँ जहँ आवत बसे बराती। तहँ तहँ सीध चला बहु भाँती ।।
विविध भाँति मेवा पकवाना। भोजनसाज न जाइ बखाना ।।
भरि भरि बसह अपार कहारा। पठये जनक अनेक सुआरा ।।

अर्थ—आते समय जहाँ-जहाँ बरात वाले ठहरे थे वहाँ-वहाँ बहुत भाँति का सामान भेजा गया। नाना प्रकार के मेवा और व्यजन तथा अन्य भोजनो की सामग्री जिसका वर्णन नही किया जा सकता, बैलो पर लदवाकर और अनगिनती कहार तथा बहुत से रसोईदार जनकजी ने भिजवा दिये।

तुरग लाख रथ सहस पचीसा[१]। सकल सँवारे नख अरु सीसा ।।
मत्त सहसदस सिधुर साजे[२]। जिनहि देखि दिशिकुजर लाजे ।।

---

१ तुरग लाख रथ सहस पचीसा—

क० मुश्की महरोर मौर मव्हर मटौहा मोती लखौरी लखी लाल लीलौ लहरदारो है।
पच रग पीलग पिलग मुख पट्टन हू बहर बिदवार बादामी पीत तारो है ।।
तेलिया तिलक दर तुर्की दरियाई टोप अबलक अवस्या औरा नकुल वारो है।
जारद जरद नुकरा नागा रनि सून धूम "लक्ष्मणसिह" छत्तिस तुर वारो है ।।

२ मत्त सहसदस सिंधुर साजे—

क० कुजर गणेश मैना दिग्गज गयद खूनी मुडिया मतग भूरा एकदन्त न्यारो है।
भौरानन्द मदान्ध मुन्नागिरि कज्जल गिरि ऐरावत कुवलय धौलागिरि वारो है ।।
भनै मन्नूलाल नाम हाथी चाँद मूरत है मलयागिरि मकुना गज मतवारो है।
दलगज नाग गिरि द्वैदन्ता अगदगिरि कजा अरु भीला फील भौरा गिरि कारो है ।।

कनक वसन मणि भरि भरि याना। महिषी धेनु वस्तु विधि नाना ।।

अर्थ—एक लाख घोडे, पच्चीस हजार रथ, सब को सिर से पैर तक सजाया। दस हजार मस्त हाथी सजवाये जिनको देखकर दिग्गज लज्जित होते थे। सोने के बर्तन और जवाहरात छकडो मे लादकर तथा भैंसें, गाये और अनेक प्रकार की सामग्री।

दोहा—दाइज अमित न सकिय कहि, दीन्ह विदेह बहोरि[१]।
जो अवलोकत लोकपति, लोक सपदा थोरि ।।३३३।।

अर्थ—इतना बेपरिमाण दहेज जनकजी ने फिर से दिया कि उसका वर्णन नही हो सकता, जिसे देखकर सब लोको के अधिपतियो को उनके निज लोक की सपत्ति तुच्छ जँचने लगी।

सब समाज इहि भाँति बनाई। जनक अवधपुर दीन्ह पठाई ।।
चलहि बरात सुनत सब रानी। विकल मीनगन जनु लघु पानी ।।

अर्थ—इस प्रकार सब सामग्री तैयार करके जनकजी ने अयोध्यापुरी मे पहुँचा दी। जब रानियो ने सुना कि बरात बिदा हुई तब तो वे सब की सब इस प्रकार व्याकुल हुई जैसे मछलियाँ थोडे पानी मे होती है।

पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं। देइ असीस सिखावन देही[२] ।।
होइहु सन्तत पियहि पियारी। चिर अहिवात असीस हमारी ।।
सासु ससुर गुरु सेवा करहू। पतिरुख लखि आयसु अनुसरहू ।।

अर्थ--बारबार सीता को गोदी मे बैठाल कर आशीर्वाद और सिखावन देती थी। हमारा यह आशीर्वाद है कि 'अपने पति की सदा प्यारी होओ और तुम्हारा अहिवात अटल रहे'। सास, ससुर तथा जेठो की सेवा करना और अपने पति का रुख देख आज्ञानुसार बर्ताव करना (यह सिखावन है)।

---

१. दाइज अमित न सकिय कहि, दीन्ह विदेह बहोरि—रामचन्द्रिका से—
चामर छन्द—मत्त दंति राज राजि वाजि राज राजि कै।
हेम हीर मुक्त चीर चारु साज साजि कै ।।
वेष वेष वाहिनी अशेष वस्तु शोधियो।
दाइजो विदेह राज भाँति भाँति को दियो ।। १ ।।
वस्त्र भौन स्यो वितान आसने बिछावने।
अस्त्र शस्त्र अङ्ग त्रान भाजनादि को गने ।।
दासि दास वासि वास रोमपाट को कियो।
दाइजो विदेहराज भाँति भाँति को दियो ।। २ ।।

२. पुनि पुनि सीय गोद करि लेही। देइ असीस सिखापन देही—कुडलिया रामायण से—
कुण्डलिया—रानिन सुता सँवारि कै करुणा सीख सुनाय।
पतिव्रत धर्महि दृढ धरेउ सेयहु सहज सुभाय ।।
सेयहु सहज सुभाय होहु नित स्वामिहि प्यारी।
सदा सुहागिनि होहु यहै आशिषा हमारी ।।
यहै आशिषा देहिं हम सुता अक उरधारि कै।
भेटि भेटि पायन परै रानी सुता सँवारि कै ।।

अति सनेहवश सखी सयानी। नारि धर्म सिखवहि मृदुबानी[1] ॥
सादर सकल कुँअरि समझाई। रानिन्ह बार-बार उर लाई ॥
बहुरि बहुरि भेटहि महतारी। कहहि विरंचि रची कत नारी ॥

अर्थ—बहुत प्रेमवश हो चतुर सखियाँ भी सुहावनी बानी से स्त्री धर्म की शिक्षा करती थी। रानियो ने प्रेम सहित सब पुत्रियो को समझाकर बारम्बार हृदय से लगाया। फिर-फिर कर महतारी लडकियो से भेंट करती थी और कहती थी कि ब्रह्मा ने स्त्री काहे को बनाई ?

दोहा—तेहि अवसर भाइन्ह सहित, राम भानुकुलकेतु।
चले जनकमदिर मुदित, बिदा करावन हेतु ॥ ३३४ ॥

अर्थ—उसी समय सूर्यवशियो मे शिरोमणि रामचन्द्रजी भाइयो समेत बिदा कराने के लिए प्रसन्नता से जनकजी के महलो को चले।

चारिउ भाइ सुभाय सुहाये। नगर नारि नर देखन धाये ॥
कोउ कह चलन चहतहहि आजू। कीन्ह विदेह बिदा कर साजू ॥

अर्थ—चारो भाई स्वभाव ही से सुन्दर थे, इस हेतु नगर के स्त्री-पुरुष इन्हे देखने को दौडे। कोई-कोई कहने लगे कि जनकजी ने बिदा की सब सामग्री तैयार कर ली है सो ये आज ही जाने वाले है।

लेहु नयन भरि रूप निहारी[2]। प्रिय पाहुने भूपसुत चारी ॥
को जानै केहि सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हे विधि आनी ॥

अर्थ—चारो राजकुमार प्यारे पाहुने हैं, उनके रूप को अपने-अपने नेत्रों भर देख लो। हे चतुर सखी ! न जाने किस सत्कर्म से विधाता ने इन्हे हम सब के नेत्रो के पाहुने किया।

मरणशील जिमि पाव पियूखा। सुरतरु लहइ जन्म कर भूखा ॥
पाव नारकी हरिपद जैसे। इनकर दरशन हम कहँ तैसे ॥

शब्दार्थ—मरणशील = जिसका मरना निश्चित है अर्थात् मर्त्य। नारकी = नरक का रहने वाला, पापी।

---

१. नारि धर्म सिखवहि मृदुबानी—महात्मा कण्वजी ने भी अपनी पुत्री शकुन्तला को पति के घर भेजते समय यह शिक्षा दी थी—शकुन्तला नाटक, अ० ४—

दोहा—हे बेटी रनवास मे, जब तू पावे बास।
पति आदर नित कीजियो, अरु शुश्रूषा सास ॥
सखी मान सौतिनिहु ते, भाव सपत्नी हीन।
अपस्वारथि मत हूजियो, भोग्य वस्तु नहि लीन ॥
क्रोधित पति आज्ञा करै, तऊ करिय शिर धारि।
इहि विधि रह जो कुलबधू, सोई पतिव्रत नारि ॥

२ लेहु नयन भरि रूप निहारी—

राग जगला—लै ल्यो री लोचन भर लाहू।
पुष्पन वर्षत मुनिजन हर्षत सियाराम को अजब विवाहू।
मिथलापुर की सखी सयानी समझ समझ सिख दे सब काहू ॥
फिर कब राम जनकपुर ऐहै हम नहि नगर अयोध्या जाहू।
तुलसीदास परस्पर दोउ मिले नृप दशरथ मिथिलापुर नाहू ॥

अर्थ—जिस प्रकार मरनहार प्राणी अमृत पा जावे और जन्म से पेट भर खाने को न पाने वाला यदि कल्पवृक्ष को पा जावे। पापी मनुष्य को जिस प्रकार वैकुठ मिल जावे, उसी प्रकार हमे इनके दर्शन है (अर्थात् मनुष्य जिसका मरना ससार मे निश्चय से होवेगा यदि वह दैवयोग से अमर हो जावे तो उसके आनद का पारावार नही है। इसी प्रकार जन्म ही से अधपेटा रहने वाला दरिद्री भी यदि कल्पवृक्ष को पा जावे तो वह चाहे जिस प्रकार भोजन, सुख चैन आदि भोग सकता है। ऐसे ही नरक के योग्य पापी प्राणी यदि वैकुठ पा जावे तो उसे अति ही आनद होता है। इसी प्रकार हम लोगो को अत्यत दुर्लभ दर्शन इन चारो भाइयो के है, सो हमारे असीम आनद का क्या ठिकाना है)।

निरखि रामशोभा उर धरहू। निजमन फणि मूरति मणि करहू ॥
इहि विधि सबहि नयनफल देता। गये कुँअर सब राजनिकेता ॥

अर्थ—रामचन्द्रजी को देख उनकी शोभा को हृदय मे धारण करो, अपने मनरूपी सर्प के लिए उनकी मूर्त्ति का मणि बना लो। (भाव यह कि मणियारा सर्प अपने मणि के बिना रह नही सकता, वह उसे अपने मस्तक पर धारण किये ही रहता है, इसी प्रकार हम सब श्री रामचन्द्रजी की छवि को हृदय से न भूले) इस प्रकार सबको नेत्रो का फल देते हुए सब राजकुमार राजमहल मे गये।

दोहा—रूपसिधु सब बंधु लखि, हरषि उठेउ रनिवास।
करहिं निछावरि आरती, महा मुदित मन सास ॥ ३३५ ॥

अर्थ—अत्यत रूपवान् सब भाइयो को देखते ही सब रानियाँ प्रसन्न हो उठ खडी हुई और सासें तो मन मे परम आनन्द से उनकी निछावर और आरती करने लगी।

देखि रामछवि अति अनुरागीं। प्रेम विवश पुनि पुनि पद लागी ॥
रही न लाज प्रीति उर छाई। सहज सनेह बरनि किमि जाई ॥

अर्थ—रामचन्द्रजी की सुन्दरता को देखकर प्रेम मे मग्न हो गई और प्यार के कारण बारबार चरण छूने लगी। लाज को दबाकर प्रेम हृदय मे भर गया। उस स्वाभाविक प्रेम का वर्णन कैसे हो सकता है।

भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाये। छ रस अशन अति हेतु जिवाये[1] ॥

---

१. छ रस अशन अति हेतु जिवाये—

छन्द—आये कुँअर रनिवास सुनि रानी परम सुख पाइ कै।
आईं जु सन्मुख द्वार लौं किय आरती सजवाइ कै ॥
भरि थाल बहु मणि लाल न्यवछावरि करी चित चाय कै।
लै गईं पुनि शुचि भवन मे बहु भाँति मगल गाय कै ॥
पुनि जनक युवतिन रतन जटित सुवर्ण थाल भराय कै।
दिय परसि चौकनि पर अनेक प्रकार व्यजन ल्याय कै ॥
पूरी मलाई की घरी रस भरी बरफी अकबरी।
गुलगुले रसगुल्ले जलेबी गुलाबजामुन खरी ॥
उत्तम इमरती अरु अँदरसे रायभोग भलो गनो।
मोदक मदन माखन सु मिसरी खूब खोबा खुल बनो ॥
पेठा सु पेडा, हेसमी नव नकुल घेवर घृत सने।
मनहरन मोहनभोग मोती पाग सीरा शुठि घने ॥ →

बोले राम सुअवसर जानी। शील सनेह सकुचमय बानी ।।

अर्थ—उन्हे भाइयो समेत उबटन लगाकर स्नान करवाया और बडे प्रेम से षट्रस भोजन करवाये। फिर रामचन्द्रजी उचित समय जानकर शीलता प्रेम और सकोच से भरे हुए वचन बोले।

राउ अवधपुर चहत सिधायें। बिदा होन हित हमहि पठाये[1] ।।
मातु[2] मुदितमन आयसु देहू। बालक जानि करब नित नेहू ।।

अर्थ—राजाजी अयोध्यापुरी को पधारना चाहते है। उन्होने हम लोगो को विदा माँगने के निमित्त यहाँ भेजा है। हे माता! प्रसन्न चित्त हो हमे आज्ञा दीजिये और अपने बालक जान हम पर सदा स्नेह करती रहियो।

सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू। बोलि न सकहि प्रेमवश सासू ।।
हृदय लगाइ कुँअरि सब लीन्ही। पतिन्ह सौपि विनती अति कीन्ही ।।

अर्थ—इन वचनो को सुनकर सब रानियाँ व्याकुल हो उठी और सब साँसें भी प्रेम के कारण कुछ बोल न सकी। सब लडकियो को अपने हृदय से लगाया और उन्हे अपने-अपने पतियो के समीप खडी करके बहुत विनती की।

छन्द—करि विनय सिय रामहि समर्पी जोर कर पुनि पुनि कहै।
बलि जाउँ तात सुजान तुम कहँ विदित गति सबकी अहै ।।
परिवार पुरजन मोहि राजहि प्राणप्रिय सिय जानबी।
तुलसी सुशील सनेह लखि निज किकरी करि मानबी ।।

भिंडी बघारी भाँति नीकी भटन को भुरता बनो।
परवर मसाले दार भरमा रायतो बहु बिधि ठनो।।
मीठे मुरब्बा आम आदि अचार उत्तम है घना।
बहु भाँति और अनेक व्यंजन नाम कहँ लग मैं गनो।।
कीन्हो कलेवा राम लछिमन आदि शुचि रुचि पाइ के।
कचन कटोरा नीर निर्मल कियो अचमन जाइ के।।
दलदार पीरे पान के बीरे सुवदन चबाइ के।
करि अतर तर वर वसन बैठे सासु के ढिग जाइ के।।

१. राउ अवधपुर चहत सिधाये। बिदा होन हित हमहि पठाये—कुडलिया रामायण से—
कुण्डलिया—बिदा हेतु रघुवर गये जनकराय के धाम।
रानिन लखि आसन दियो कीन्हे राम प्रणाम ।।
कीन्हे राम प्रणाम कहत मृदु वचन सुहाये।
बिदा दीजिये मातु नृपति चह अवध सिधाये ।।
अवध सिधाये सुनत नृप रानी मुख सूखत भये।
वचन न मुख पकज कढ्यो बिदा हेतु रघुवर गये ।।

२. मातु—चाणक्य नीति मे लिखा है—
श्लोक—राजपत्नी गुरो. पत्नी मित्रपत्नी तथेव च।
पत्नीमाता स्वमाता च पचैता मातरः स्मृता.।।
अर्थ—रानी, गुरुआइन, वैसे ही मित्र की स्त्री, सास और अपनी माता—इन पाँचो को माता के तुल्य मानना चाहिए।

अर्थ—विनती करके रामचन्द्रजी को सीता सौंप दी और हाथ जोडकर बारबार कहने लगी, हे ज्ञानवान् प्यारे! मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ। तुम्हे तो सब का हाल विदित ही है। कुटुम्बी जनो, पुरवासियो, मुझे तथा राजाजी को जानकी प्राणो की नाई प्यारी है, ऐसा समझो। तुलसीदासजी कहते है कि इसकी सुशीलता और प्रेम का विचार कर इसे अपनी टहलनी की नाई समझना।

सोरठा—तुम परिपूरणकाम, ज्ञान शिरोमणि भाव प्रिय।
जनगुनग्राहक राम, दोषदलन करुणायतन ॥ ३३६ ॥

अर्थ—हे रामचन्द्रजी! तुम सब इच्छाओ से परिपूर्ण, ज्ञानियो मे सिरताज, प्रेम के भूखे, भक्तो के गुण जानने वाले, पापो के नाशकर्त्ता और दया के स्थान हो।

अस कहि रही चरण गहि रानी। प्रेमपक जनु गिरा समानी ॥
सुनि सनेहसानी बरबानी। बहु विधि राम सासु सनमानी[1] ।

अर्थ—ऐसा कहकर रानीजी (रामचन्द्रजी के) चरण पकडकर रह गई और उनकी वाणी मानो प्रेमरूपी कीचड मे फँस गई (अर्थात् प्रेम के मारे बोलना रुक गया)।

राम बिदा माँगत कर जोरी[2]। कीन्ह प्रणाम बहोरि बहोरी ॥
पाइ असीस बहुरि शिर नाई। भाइन्ह सहित चले रघुराई ॥

अर्थ—रामचन्द्रजी हाथ जोडकर बिदा माँगने लगे और बारबार प्रणाम भी किया। आशीर्वाद पाकर फिर से सिर नवाकर भाइयो समेत रामचन्द्रजी चल खडे हुए।

मंजु मधुर मूरति उर आनी। भई सनेह शिथिल सब रानी ॥
पुनि धीरज धरि कुँअरि हँकारी। बार बार भेटहि महतारी ॥

अर्थ—कोमल मनमोहिनी मूर्त्ति को हृदय मे धारण कर सब रानियाँ प्रेम से व्याकुल हो उठी। फिर माताओ ने धीरज रखकर लडकियो को बुलाया और वे बारबार उनसे भेंट करने लगी।

पहुँचावहि फिर मिलहिं बहोरी। बढ़ी परस्पर प्रीति न थोरी ॥

---

१. सुनि सनेहसानी बरबानी। बहु विधि राम सासु सनमानी—जानकी मगल से—
छन्द—जन जानि करब सनेह बलि कहि दीन वचन सुनावही।
अति प्रेम बारहिंबार रानी बालकिन्ह उर लावही ॥
सिय चलत पुरजन नारि हय गय विहँग मृग व्याकुल भये।
सुनि विनय सासु प्रबोधि तब रघुवशमणि पितुपहँ गये ॥

२. राम विदा माँगत कर जोरी—श्री रामचन्द्रजी हाथ जोडकर सास से बिदा माँग रहे थे, उस समय सखियाँ मानो सास ही की ओर से उत्तर के मिस आसावरी राग मे आशा भरी वाणी से यो गा उठी—
काहे जाओ रे अवध मनभावना रे।
तुम बिन धीरज नहिं जिव धरि हैं, नैनन ते अँसुआ नित झरि है।
लिखि लिखि पतियाँ प्यारे हमहिं पठावना रे ॥
जब करि हौं तुव सुरति दुलारे, हुइ हौं विकल लखे बिन थारे।
कबहुँ कबहुँ मिथिलापुर महियाँ आवना रे ॥
जब ते गवन सुनी है लाला, "मोहनिदास" भये बेहाला।
करिके कृपा सँवलिया दरश दिखावना रे ॥

पुनि पुनि मिलति सखिन्ह बिलगाई। बालबच्छ जिमि धेनु लवाई ॥

अर्थ—बिदा कर देती थी और फिर भेट करने लगती थी, इस प्रकार आपस का (अर्थात् माताओ और पुत्रियो का) प्रेम कुछ कमती न बढा (अर्थात् बहुत बढ गया)। फिर सखियो मे अलग होकर भी मिलती थी जिस प्रकार हाल की बियाई गाय छोटी बछिया से मिले।

दोहा—प्रेमविवश नरनारि सब, सखिन्ह सहित रनिवास।
मानहुँ कीन्ह विदेहपुर, करुणाविरह निवास[1] ॥३३७॥

अर्थ—इस प्रेम को देखकर सब स्त्री-पुरुष तथा सखियो समेत सब रानियाँ इस प्रकार जँच पडी कि मानो विदेहनगर मे करुणा रस और विछोह का दुख आन बसा हो।

शुक सारिका जानकी ज्याये। कनक पीजरन राखि पढ़ाये ॥
व्याकुल कहहि कहाँ वैदेही। सुनि धीरज परिहरै न केही ॥

अर्थ—तोता और मैना जिन्हे जानकीजी ने पाला था और सोने के पींजरो मे रख कर पढाया था, वे व्याकुल होकर कहते थे कि 'वैदेही कहा है' ? यह सुनकर ऐसा कौन है जिस का धीरज न छूटे।

भये विकल खग मृग इहिभाँती। मनुज दशा कैसे कहि जाती[2] ॥
बंधु समेत जनक तब आये। प्रेम उमगि लोचन जल छाये ॥

अर्थ—पशु-पक्षी इस प्रकार व्याकुल हुए तो मनुष्यो की दशा का वर्णन कैसे किया जावे। इतने मे कुशध्वज समेत जनकजी आये जिनके नेत्रो मे प्रेम के कारण आँसू भर आये।

सीय विलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम विरागी ॥
लीन्हि राय उर लाय जानकी[3]। मिटी महा मर्याद ज्ञान की ॥

अर्थ—सीताजी को देखते ही उनका धीरज उड गया यद्यपि वे बडे ही विरक्त कहे जाते थे। जनकजी ने जानकी को हृदय से लगा लिया, उस समय उनके ज्ञान की बडी मर्यादा न रही।

---

१. करुणाविरह निवास—पुत्रियो की विदा के समय विवाह का आनन्द तो अवधपुर को प्रस्थान कर गया और उसके स्थान में थोडे काल के लिये मानो करुणा और विरह आ बसे। जैसा कहा है कि—

दोहा—छूटि जात केशौ जहाँ, सुख के सबै उपाय।
उपजत करुणारस वहाँ, आपुन ते अकुलाय ॥

२. भये विकल खग मृग इहि भाँती। मनुज दशा कैसे कहि जाती—रामरसायन रामायण से—

तोटक छन्द—पशु पक्षिहुते अति ही विलपै। मन ही मन सोच भरे कलपै ॥
कह बालक वृद्ध कहा तरुणा। मिथिला सब छाय गई करुणा ॥

३. लीन्हि राय उर लाय जानकी।—कुडलिया रामायण से—

कुडलिया—जनक नयन धारा बहै सुता लिये उर लाय।
सिय कठा छोडत नही जनक न त्यागी जाय ॥
जनक न त्यागी जाय सिया समझावत राजै।
धीरज धर्म परान ज्ञान गुण ध्यान समाजै ॥
ध्यान समाज न लाज रह छुटत लगत रोवत गहै।
मातु गरे पुनि पितु गरे जनक नयन धारा बहै ॥

समझावत सब सचिव सयाने[1]। कीन्ह विचार अनवसर जाने ।।
बारहिबार सुता उर लाई। सजि सुदर पालकी मँगाई ।।

अर्थ—तब चतुर मत्री समझाने लगे तो उन्होने कुसमय जानकर विचार किया। बारम्बार पुत्री को हृदय से लगाया और सुन्दर पालकी सजवा कर मँगवाई।

दोहा—प्रेम विवश परिवार सब, जानि सुलग्न नरेश।
कुँअरि चढ़ाई पालकिन्ह,[2] सुमिरे सिद्ध गनेश ।।३३८।।

अर्थ—सब कुटुम्ब के लोग प्रेम मे डूबे थे, राजाजी ने उत्तम मुहूर्त्त जानकर लडकियो को सिद्ध गणेश का सुमिरन कर पालकी मे बिठाया।

बहु विधि भूप सुता समझाई। नारिधर्म कुलरीति सिखाई[3] ।।
दासी दास दिये बहुतेरे। शुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे ।।

अर्थ—राजा जनक ने अनेक प्रकार से सीता को समझाया, और स्त्रियो के धर्म तथा

---

१ समझावत सब सचिव सयाने—
दादरा—प्रीति के कोइ फन्दे परो ना ।। टेक ।।
बरसत नयन दरस बिन तरसत मिलत वियोग भये फिर रोना ।। १ ।।
कोउ फिर कोटि मनहि समझावे कैसहु धीरज जात धरो ना ।। २ ।।
निशि दिन सरिस मिलन अरु बिछुरन काल कर्मवश रोय मरो ना ।। ३ ।।
सोच किये "बलदेव" कौन फल नाहक तन बरबाद करो ना ।। ४ ।।

२. कुंअरि चढाई पालकिन्ह—
राग पूर्वी—प्रिय सँग प्यारी चलीं ससुरारी भेटकुटुँब परिवार हो ।। टेक ।।
कनक रतन की बनी है पालकी जरद जडाऊ ओहार हो।
झलकत कलश सुरज के रुख से पचरँग लगे है कहार हो ।।
छत्र चमर लिय सग मे दासी धावत लागि मुहार हो।
जो कहुँ उडत पवन से परदा होन न देति उघार हो ।।
शिविकन के चहुँ ओर तिलगे गजरथ तुरँग सवार हो।
लखि "बलदेव" सुमन सुर बर्षत बरणि न जात बहार हो ।।

३. बहु विधि भूप सुता समझाई। नारिधर्म कुलरीति सिखाई—रामरत्नाकर रामायण से—
पुत्री तोहि यत्न कर पाली। मम मन मानस राजमराली ।।
जबकब मिथिला की सुध कीजो। सास ससुर सेवा मन दीजो ।।
रहनी सदा होय जस जासों। इहि विधि जनक कहत दुहिता सों ।।
दोहा—राग असूया द्वेष तजि, पति सेवा मन लाय।
समय पाय सुख दुख सहन, कीजौ नेह बढ़ाय ।।
और भी—अभ्युत्थानमुपागते गृहपतौ तद्भाषणे नम्रता।
तत्पादार्पित दृष्टिरासन विधिस्तस्योपि चर्या स्वयम् ।।
सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो जह्याच्च शय्यामिति।
प्राच्यैः पुत्रि निवेदित. कुलवधू सिद्धान्त धर्मागमः ।।
अर्थात् जिस समय पति घर मे आवे उस समय खडे हो जाना और नम्रतापूर्वक पति से साथ बातचीत करना, उनके चरणों मे चित्त लगाये हुए आसन ग्रहण करना, उनकी सेवा स्वत करना, उनके सो जाने पर सोना तथा उनसे पहले उठना, हे पुत्री ! प्राचीन समय से कुलवान् वधूटियो के लिए यही धर्म बताया गया है।

अपने कुल की रीति सिखलाई और बहुत से दासी तथा दास के रूप मे उत्तम सेवक जिन्हे सीताजी चाहती थी, साथ कर दिये ।

सीय चलत व्याकुल पुरवासी । होहि शकुन शुभ मंगलरासी ।।
भूसुर सचिव समेत समाजा । सग चले पहुँचावन राजा ।।

अर्थ—सीताजी की बिदा के समय जनकपुर के लोग व्याकुल हुए, उस समय मगलीक शकुन होने लगे । जनकजी ब्राह्मणो, मन्त्रियो और सभा वालो समेत पहुँचाने के हेतु साथ हो लिए ।

समय विलोकि बाजने बाजे । रथ गज बाजि बरातिन्ह साजे ।।
दशरथ विप्र बोलि सब लीन्हे । दान मान परिपूरण कीन्हे ।।

अर्थ—सुअवसर देखकर बाजे बजने लगे और बरातियो ने रथ, हाथी और घोडे तैयार किये । दशरथजी ने सब ब्राह्मणो को बुला लिया और उनको द्रव्य तथा आदर-सन्मान दे सतुष्ट किया ।

चरण सरोज धूरि धरि सीसा । मुदित महीपति पाइ असीसा ।।
सुमिरि गजानन कीन्ह पयाना । मंगल मूल शकुन भये नाना ।।

अर्थ—दशरथजी ब्राह्मणो के कमलस्वरूप चरणो की धूल को सिर पर धारण कर तथा उनसे आशीर्वाद पाके प्रसन्न हो गनपतिजी का स्मरण कर चले, उस समय नाना प्रकार के मगलीक शकुन होने लगे ।

दोहा—सुर प्रसून बरसहि हरषि, करहिं अप्सरा गान ।
चले अवधपति अवधपुर, मुदित बजाय निशान ।।३३९।।

अर्थ—देवता प्रसन्नतापूर्वक फूल बरसाने लगे और अप्सरायें गाने लगी तथा दशरथजी प्रसन्न चित्त से नगाडे बजवाते हुए अयोध्यापुर को चले ।

नृप करि विनय महाजन फेरे । सादर सकल माँगने टेरे ।।
भूषण बसन बाजि गज दीन्हे । प्रेम पोषि ठाढ़े सब कीन्हे ।।

अर्थ—दशरथजी ने नम्रतापूर्वक सब महाजनो को लौटाया और आदर सहित सब माँगने वालो को बुलाया । उनको गहने, कपडे, घोडे और हाथी दिये तथा प्रेम से सन्तुष्ट कर सबको ठहरा रखा ।

बार बार विरदावलि भाखी । फिरे सकल रामहि उर राखी ।
बहुरि बहुरि कोशलपति कहहीं । जनक प्रेमवश फिरन न चहहीं ।।

अर्थ—बारम्बार वशावली वर्णन कर सबके सब रामचन्द्रजी को हृदय मे रखकर लौटे । दशरथजी बार-बार लौटने को कहते थे परन्तु जनकजी प्रेम के कारण लौटना नही चाहते थे ।

पुनि कह भूपति वचन सुहाये । फिरिय महीप दूरि बड़ि आये ।।
राउ बहोरि उतरि भे ढाढे । प्रेमप्रवाह विलोचन बाढे ।।

अर्थ—फिर भी दशरथजी मनोहर वचन कहने लगे कि हे राजन् ! बहुत दूर आ चुके, अब लौटिये । फिर राजाजी सवारी से उतरकर खडे हुए, उनके नेत्रो से प्रेम के आसू बहने लगे ।

तब विदेह बोले कर जोरी । वचन सनेह सुधा जनु बोरी ।

रउँ कवन विधि बिनय बनाई। महाराज मोहि दीन्ह् बडाई ।।

अर्थ—तब जनकजी हाथ जोडकर बोले, मानो उनके वचन प्रेमरूपी अमृत मे डूबे —मैं किस प्रकार से विनय करूँ, हे महाराज ! आपने मुझे बडप्पन दिया।

दोहा—कोशलपति समधी सजन, सनमाने सब भाँति।
मिलन परस्पर विनय अति, प्रीति न हृदय समाति ।।३४०।।

अर्थ—दशरथजी ने अपने स्वजन तथा समधी जनकजी का सब प्रकार से मान रखा। नो महाराज की आपस की नम्रता और प्रीति हृदय मे नही समाती थी।

ुनि मंडलिहि जनक सिर नावा। आसिरबाद सबहि सन पावा ।।
ादर पुनि भेटे जामाता। रूप शील गुन निधि सब भ्राता ।।

अर्थ—जनकजी ने मुनियो के समाज को सीस नवाया और सभी से आशीर्वाद पाया। कर आदरपूर्वक सब जमाइयो से मिले, जो चारो भाई रूपवान, शीलवान और गुणनिधान ।

ोरि पंकरुह पानि सुहाये। बोले वचन प्रेम जनु जाये ।।
ाम करउँ केहि भाँति प्रशसा। मुनि महेश मन मानस हसा ।।

अर्थ—कमलस्वरूप हाथो को जोडकर ऐसे सुहावने वचन बोले कि मानो वे वचन म से उत्पन्न हुए हो (अर्थात् उन वचनों मे प्रेम ही प्रेम भरा था)। (वे बोले) हे रामचन्द्रजी, आपकी बडाई किस प्रकार से करूँ ! आप मुनियो तथा महादेवजी के मनरूपी तालाब में हस ़ समान है (अर्थात् आप मुनियो तथा महादेवजी के हृदय मे सदैव बने रहते हो, जिस प्रकार ़स मानसरोवर नही त्यागता)।

करहिं योग योगी जेहि लागी। कोह मोह .ममता मद त्यागी ।।
व्यापक ब्रह्म अलख अविनासी। चिदानंद निर्गुण गुणरासी ।।

अर्थ—योगीजन क्रोध, मोह, ममता और मद को त्यागकर जिसके हेतु योग का अभ्यास करते है जो सबमे व्याप्त ब्रह्म, चित् और आनन्द से परिपूर्ण सत, रज और तम तीनो गुणो से रहित तथा सम्पूर्ण सद्गुणो के स्थान हैं।

मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहि सकल अनुमानी ।।
महिमा निगम नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एक रस अहई ।।

अर्थ—जिनको न तो मन और न वाणी ही ठीक-ठीक जानती है और सम्पूर्ण पदार्थों का अनुमान करके भी आपके बारे मे तर्क भी नही बाँध सकते, जिनके महत्त्व को वेद भी 'नेति' कहकर वर्णन करते है तथा जो भूत, वर्तमान और भविष्यत तीनो काल में एक ही से रहते हैं।

दोहा—नयन विषय मो कहँ भयउ, सो समस्त सुख मूल।
सबहि लाभ जग जीव कहँ, भये ईश अनुकूल ।।३४१।।

अर्थ—ऐसे सम्पूर्ण सुखो के आदि कारण आप मेरे नेत्रो के विषय हुए (अर्थात् मैंने अपने नेत्रो से आपके दर्शन किये)। ससार मे जीव को सब ही प्रकार के लाभ मिलते है यदि ईश्वर उस पर प्रसन्न होवें।

सबहि भाँति मोहि दीन्ह बड़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई ।।

होहि सहसदस शारद शेषा। करहि कल्प कोटिक भरि लेखा[1] ॥
मोर भाग्य राउर गुणगाथा। कहि न सिराहि सुनहु रघुनाथा ॥

अर्थ—आपने मुझे सब प्रकार से बडप्पन दिया और अपना भक्त जान मुझे अपना कर लिया। यदि दस हजार सरस्वती और शेषनाग भी इकट्ठे हो जावे तथा करोडो कल्प तक हिसाब करते रहें (तो भी), हे रामचन्द्रजी सुनिये! वे न तो मेरा भाग्य और न आपके गुणानुवाद कह सकेगे।

मै कछु कहउँ एक बल मोरे। तुम रीझहु सनेह सुठि थोरे ॥
बार बार माँगहुँ कर जोरे। मन परिहरै चरण जनि भोरे[2] ॥

अर्थ—मै जो कुछ कहता हूँ सो मुझे केवल एक ही आधार है और वह यह कि आप थोडे परन्तु सच्चे प्रेम से प्रसन्न हो जाते है। मै बारम्बार हाथ जोडकर यही माँगता हूँ कि मेरा चित्त आपके चरणो को धोखे से भी न भूलने पावे।

सुनि वर वचन प्रेम जनु पोषे। पूरणकाम राम परितोषे ॥
करि वर विनय ससुर सनमाने। पितु कौशिक वशिष्ठ सम जाने ॥

अर्थ—ऐसे सुहावने वचनो को जो मानो प्रीति मे परिपूर्ण थे सुनकर कामना रहित रामचन्द्रजी सतुष्ट हुए। उन्होने भली भाँति विनती कर जनकजी का आदर किया और उन्हे पिता दशरथजी तथा विश्वामित्र और वशिष्ठ के समान माना।

विनती बहुरि भरत सन कीन्ही। मिलि सप्रेम पुनि आसिष दीन्ही ॥

फिर जनकजी ने भरतजी से विनय की और उनसे प्रीति सहित भेटकर उन्हे आशीर्वाद दिया।

दोहा—मिले लषन रिपुसूदनहि, दीन्हि असीस महीष।
भये परस्पर प्रेमवश, फिर फिरि नावहि सीस ॥३४२॥

अर्थ—फिर जनकजी लक्ष्मणजी और शत्रुघ्न से मिले और उन्हे आशीर्वाद दिया, फिर

---

१ होहिं सहसदस शारद शेषा। करहिं कल्प कोटिक भरि लेखा—रामचन्द्रजी निर्दोष हैं, उनमे तूने दोष कहाँ से पाया जो उन्हे वनवास दिलाया। ऐसा वचन भरतजी ने कैकेयी से कहा था—

पद—रामचन्द्र महँ दोष गुणत विधि कै अकाश की पाटी।
दिये शुन्य सोई इहि उडुगन अबलि न जब इहि आँटी ॥
लखि श्रम खेद खरी धरि दीन्ही सोई शशि यह भायो।
'विश्वनाथ' उन खोजि न पायो तै बताव कहँ पायो ॥

२ बार बार माँगहुँ कर जोरे। मन परिहरै चरण जनि भोरे—

रागदेश—हे अच्युत हे पारब्रह्म अविनाशी अघनास।
हे पूरण हे सर्व मे दुखभजन गुण तास ॥
हे सगी हे निरकार हे निर्गुण सब टेक।
हे गोविंद हे गुणनिधान जा के सदा विवेक ॥
हे अपरम्पार हर हरे है भी होवनहार।
हे सन्तन के सदा सँग निराधार आधार ॥
हे ठाकुर हौ दास रो मैं निर्गुण नहिं कोय।
नानक दीजै नाम दान राखौ हिये पिरोय ॥

आपस मे प्रेम के मारे बार-बार सीस नवाने लगे।

बार बार करि विनय बड़ाई। रघुपति चले सग सब भाई ॥
जनक गहे कौशिक पद जाई। चरणरेणु शिर नयनन्ह लाई ॥

अर्थ—बारम्बार विनती और बडाई करके रामचन्द्रजी भाइयो समेत आगे चले। जनकजी ने जाकर विश्वामित्रजी के चरण गहे और चरण-रज को सिर तथा आँखो से लगाया।

सुन मुनीश वर दर्शन तोरे। अगम न कछु प्रतीति मन मोरे[1] ॥
जो सुख सुयश लोकपति चहहीं। करत मनोरथ सकुचत अहही ॥
सो सुख सुयश सुलभ मोहि स्वामी। सब सिधि तव दर्शन अनुगामी ॥
कीन्ह विनय पुनि पुनि शिर नाई। फिरे महीपति आसिष पाई ॥

अर्थ—हे मुनिराज सुनिये। आपके शुभ दर्शनो से कुछ भी दुर्लभ नही है ऐसा विश्वास मेरे मन मे है। जिस सुख और सुकीर्ति को लोकपाल चाहा करते है और उसके पाने की इच्छा से मन मे सकुचते रहते है, हे स्वामी! वही सुख और उत्तम कीर्ति मुझे सहज ही मे मिल गई। आपके दर्शनो के ही पीछे-पीछे सब सिद्धियाँ दौड़ा करती है (भाव यह कि आपके दर्शन जिसे मिल जायँ उसे सब सिद्धियाँ अनायास ही मिल जाती है)। विनती की और बार-बार सीस नवाकर आशीर्वाद पाकर के जनकजी लौटे।

चली बरात निशान बजाई। मुदित छोड़ बड़ सब समुदाई ॥
रामहि निरखि ग्राम नर नारी। पाइ नयन फल होहि सुखारी[2] ॥

अर्थ—नक्कारे पर चोब दे बरात चल खडी हुई, सभी छोटे-बडे प्राणी आनन्दित थे। मार्ग के ग्रामवासी स्त्री-पुरुष रामचन्द्रजी को देखकर नेत्रो का फल पा करके सुखी होते थे।

दोहा—बीच बीच बर बास करि, मग लोगन्ह सुख देत।
अवध समीप पुनीत दिन, पहुँची आइ जनेत ॥३४३॥

शब्दार्थ—जनेत (स० जन्य)=बरात।

अर्थ—मार्ग के उत्तम स्थानो मे डेरा करते हुए तथा मार्ग के लोगो को सुख देते हुए शुभ दिन को बराती अयोध्या नगर के निकट आ पहुँचे।

(बरात का अयोध्या में लौट आना)

हने निशान पनव बर बाजे। भेरिशंख धुनि हय गय गाजे ॥

---

१ सुन मुनीश वर दर्शन तोरे। अगम न कछु प्रतीत मन मोरे—
सवैया—सिद्ध समाज मजै अजहूँ न कहूँ जग योगिन देखन पाई।
रुद्र के चित्त समुद्र बसै नित ब्रह्म हुँ पै बरनी जो न जाई ॥
रूप न रंग नरेश विशेष अनादि अनत जो वेदन गाई।
'केशव' गाधि के नद तुम्ही वह ज्योति सो मूरतिवत दिखाई ॥

२ रामहि निरखि ग्राम नर नारी। पाइ नयन फल होहि सुखारी—प्रेम पियूषधारा से—
कजरी—लखो री श्यामल गौर किशोर, यही अवधेश दुलारे है ॥
कानन कनकफूल छबि राजै, दृग रतनारे हैं ॥
अलिपतियाँ इव केश कटीलो, लटकत कारे हैं ॥
जात चले मन लेइ सखी री, पथिक पियारे हैं ॥
मोहनिदास अली प्रीतम दोउ, दृग के तारे हैं ॥

झाँझ मृदंग डिमडिमी सुहाई। सरस राग बाजहि सहनाई ।।

अर्थ—तब नगाडे, ढोल और उत्तम बाजे बजने लगे तथा तुरही और शख ध्वनि हुई, घोडे हिनहिनाने लगे और हाथी चिंघाडने लगे। झाझ, मृदग और डुग्गो बजो तथा सुरीले रागो समेत शहनाई बजने लगी।

पुरजन आवत अकनि बराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता ।।
निज निज सुदर सदन सँवारे। हाट बाट चौहट पुरद्वारे ।।

अर्थ—जब अयोध्यावासियो ने बारात का आना सुना तब तो वे सब के सब ऐसे प्रसन्न हुए कि शरीर के रोम खडे हो आये। अपने-अपने घरो को तथा बाजारो, रास्तो, चौराहो, गाँवो और नगर के दरवाजो को भली भाँति से सजाने लगे।

गली सकल अरगजा सिचाई। जहँ तहँ चौके चारु पुराई ।।
बना बजार न जाइ बखाना। तोरण केतु पताक विताना ।।

अर्थ—सम्पूर्ण गलियो मे अरगजा सिंचवा दिया। और ठौर-ठौर सुन्दर चौक पुरवाये। बाजार बन्दनवारो, झडो, पताको और चँदोवो से इस प्रकार सजाया गया था कि उसका वर्णन नही हो सकता।

सफल पुगफल कदलि रसाला। रोपे बकुल कदम्ब तमाला ।।
लगे सुभग तरु परसत धरनी। मणिमय आलबाल कलकरनी ।।

शब्दार्थ—आलबाल=वृक्षो का थाला। कलकरनी=सुन्दर कारीगरी।

अर्थ—फल लगे सुपारी, केले और आम के वृक्ष, मौलश्री, कदब तथा तमाल के वृक्ष लगाये। ये मनोहर रोपे हुए वृक्ष पृथ्वी को छुए लेते थे, जिनके मणिजटित थाले सुन्दर कारी-गरी से बनाये गये थे।

दोहा—विविध भाँति मंगल कलश, गृह गृह रचे सँवारि।
सुर ब्रह्मादि सिहाहि सब, रघुवरपुरी निहारि ।।३४४।।

अर्थ—भाँति-भाँति के मगलीक कलश घर-घर उत्तम रीति से धराये गये, उस समय रामजी की पुरी को देखकर ब्रह्मा आदि सब देवता प्रसन्न होते थे।

भूपभवन तेहि अवसर सोहा। रचना देखि तदन मन मोहा ।।
मंगल शकुन मनोहरताई। ऋधि सिधि सुख संपदा सुहाई ।।

अर्थ—उस समय राजमहल इस प्रकार शोभायमान था कि उसकी सजावट देखकर कामदेव का मन मोहित हो गया। सम्पूर्ण मगल शकुन की मनोहरता, ऋद्धि-सिद्धि, सुख और सुहावनी धन-सम्पत्ति· ····

जनु उछाह सब सहज सुहाये। तनु धरि धरि दशरथ गृह आये ।।
देखन हेतु राम वैदेही। कहहु लालसा होइ न केही ।।

अर्थ—मानो सभी उत्साह स्वभाव ही से उत्तम रूप धारण करके दशरथजी के महलो मे आ गये हो। रामचन्द्रजी और सीताजी के दर्शनो की इच्छा कहो किसे न होगी ? (अर्थात् सब ही सीता-रामजी के दर्शनो की इच्छा रखते है।

यूथ यूथ मिलि चली सुआसिनि। निजछवि निदरहि मदन विलासिनि ।।

सकल सुमगल सजे आरती[1]। गावहि जनु बहु वेष भारती ।।

अर्थ—स्त्रियाँ झुड के झुड बाँधकर चली जो अपनी छटा के सामने रति की शोभा को मात करती थी। सम्पूर्ण आरती लिये इस प्रकार गा रही थी मानो सरस्वतीजी बहुत से रूप धारण किये हो।

भूपति भवन कोलाहल होई। जाइ न बरनि समय सुख सोई ।।
कौशल्यादि राम महतारी। प्रेमविवश तनुदशा बिसारी ।।

अर्थ—राजाजी के महलो मे खूब धूमधाम हो रही थी उस समय का आनन्द कहने मे नही आता। कौशल्या आदि रामचन्द्र की माताओ ने प्रेम के मारे शरीर की सुध बिसार दी।

दोहा—दिये दान विप्रन्ह विपुल, पूजि गणेश पुरारि।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु, पाइ पदारथ चारि ।।३४५।।

अर्थ—गणेशजी तथा महादेवजी का पूजन कर ब्राह्मणो को बहुत सा दान दिया और ऐसी प्रसन्न हुईं कि मानो महादरिद्री चारो पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) पाकर फूला न समाता हो।

प्रेम प्रमोद विवश सब माता। चलहिं न चरण शिथिल भये गाता ।।
रामदरश हित अति अनुरागीं। परिछनि साज सजन सब लागी ।।

अर्थ—सम्पूर्ण माताएँ प्रेम और बहुत ही आनन्द मे ऐसी मग्न हो गई थी कि उनका शरीर शिथिल हो जाने से आगे को पैर नही उठते थे। वे रामचन्द्रजी के दर्शनों के लिए बडी प्रेमातुर हुईं और सब आरती की सामग्री तैयार करने लगी।

विविध विधान बाजने बाजे। मंगल मुदित सुमित्रा साजे ।।
हरद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूगफल मगलमूला ।।

अर्थ—नाना प्रकार के बाजे बजने लगे और सुमित्राजी ने हर्ष से मगलीक द्रव्य इकट्ठे किये। जैसे—मगलकारी पदार्थ हल्दी, दूब, दही, पत्ते, फूल, पान, सुपारी···

अच्छत अकुर रोचन लाजा[2]। मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा ।।
छुहे पुरट घट सहज सुहाये। मदन शकुन जनु नीड़ बनाये ।।

शब्दार्थ—रोचन=रोली। लाजा= खील, लाई। छुहे=रगीन। पुरटघट=सोने के

---

१. सकल सुमगल सजे आरती---

क० पेखि के प्रदोष काल भौन महिपाल जू के नामीकर थारन मे परम प्रभा दली।
धै धै हेम दीपक प्रदीपति सुपन्थ छाइ पहिरे सुरग पट धारे भूषनावली।।
मगला मुखीन सग गावै मगलानि गीत मगलानि द्रव्य लीन्हें चारु कुसुमावली।
'रघुराज' आई राजमन्दिर अवधनारी तारावली आगे करि मानो चपलावली।।

२. अच्छत अकुर रोचन लाजा—

भजन—सहित बरात भूप इत आवै।
खँर भैर युत शहर लसत अति रहसि विहसि नर धावै ।।
चलौ चलौ लोचन फल लीजै अब आनँद मिति नाही।
ललकत रही कुँवर लखिबे को, लखब बधुन सँग माही।।
उतरहि चढहि अटन उतकठित मातन सुख किमि कहिये।
'विश्वनाथ' ऊपर बरषन हित, लाजा मोतिन गहिये।।

घडे । शकुन=पक्षी । नीड=घोसला ।

अर्थ—समूचे चावल, जौ आदि के अंकुर, रोली, लाई और तुलसी की कोमल मंजरी थी। सुनहरे घडे रँगे हुए सहज ही मे शोभायमान थे, मानो कामदेवरूपी पक्षी ने अपने रहने को घोसले बनाये हो (कि उनमे छिपकर राम-जानकी के दर्शन करता रहूँ)।

सगुन सुगंध न जाइ बखानी । मगल सकल सजहि सब रानी ।।
रची आरती बहुत विधाना । मुदित करहि कल मगल गाना ।।

अर्थ—शकुन के सुगन्धित पदार्थो (अर्गजा, अतर, गुलाबजल, धूप आदि) का वर्णन नही किया जा सकता । इस प्रकार सब रानियाँ मगलाचार की तैयारियाँ कर रही थी। अनेक प्रकार से आरती सजाकर आनन्द से मनोहर मगल गान करने लगी ।

दोहा—कनकथार भरि मंगलन्हि, कमल करनि लिये मात[1] ।
चलीं मुदित परिछन करन, पुलक पल्लवित गात ।।३४६।।

अर्थ—माताएँ प्रेम के कारण रोमाचित हो कमलस्वरूप हाथो मे सोने के थारो मे मगलीक द्रव्य भरकर आरती करने को चली ।

धूपधूम नभ मेचक भयऊ । सावन घन घमंड जनु ठयऊ ।।
सुरतरु सुमन माल सुर वर्षहि । मनहुँ बलाक अवलि मन कर्षहि ।।

शब्दार्थ—मेचक=श्यामता । बलाक=बगुला । अवलि=पक्ति । कर्षहि=खीचते है ।

अर्थ—धूप के धुएँ से आकाश श्याम बरन हो गया, मानो सावन के घने बादल छा गये हो। देवता कल्पवृक्ष के फूलो की मालाएँ बरसाते थे, मानो बगुलो की पक्तियाँ चित्त को लुभाती हो।

सूचना—यहाँ से गोस्वामीजी अयोध्या नगरी मे बरात आगमन की तुलना वर्षा ऋतु से करते है, यथा—

मंजुल मणिमय बंदनवारे । मनहुँ पाक रिपुचाप सँवारे ।।
प्रगटहि दुरहि अटन पर भामिनि । चारु चपल जनु दमकहि दामिनि ।।

अर्थ—सुन्दर मणि-जटित बन्दनवारे इस प्रकार भासती थी मानो इन्द्र का धनुष शोभायमान हो। अटारियो पर जो स्त्रियाँ कभी दीख पडती थी और कभी छिप जाती थी सो मानो उत्तम चचल बिजलियाँ चमक जाती थी।

दुदुभि धुनि घन गर्जनि घोरा । याचक चातक दादुर मोरा ।।
सुर सुगंध सुचि वर्षहि वारी । सुखी सकल ससि पुर नर नारी ।।

अर्थ—नगाडो का शब्द मानो बादलो की गर्जना थी और मँगता लोग मानो पपीहा, मेढक और मोर का-सा शोर कर रहे थे। देवगण जो शुद्ध सुगन्धित छुट्टाँ फूल बरसाते थे वही

---

१ कनक थार भरि मगलन्हि, कमल करनि लिये मात—जानकी मगल से उद्धृत—

छन्द—मगल विटप मजुल विपुल दधि दूब अक्षत रोचना ।
भरि थार आरति सजहिं सब शारग शावक लोचना ।।
मन मुदित कौशल्या सुमित्रा सकल भूपति भामिनी ।
सजि साज परिछन चली रामहिं मत्त कुजर गामिनी ।।

बरवा—बधुन सहित सुत चारिउ मातु निहारहिं ।
बारहिं बार आरती मुदित उतारहिं ।।

मानो जल बरसता था जिससे नगर के सम्पूर्ण स्त्री-पुरुष खेती की नाईं हरे-भरे थे। (स्मरण रहे कि कल्पवृक्षो की पुष्प मालाओ को तो बकपक्तियाँ माना है और छुट्टॉ फूलो को, जो क्षण-क्षण मे देवगण बरसाते थे, वर्षा की बूँदें अनुमान किया है, जैसे—आगे चलकर कहा है 'वर्षहिं सुमन क्षणहिं क्षणदेवा')।

समय जानि गुरु आयसु दीन्हा। पुर प्रवेश रघुकुलमणि कीन्हा ॥
सुमिरि शंभु गिरिजा गणराजा। मुदित महीपति सहित समाजा ॥

अर्थ—सुअवसर जानकर वशिष्ठजी ने आज्ञा दी तब दशरथजी प्रसन्न चित्त से गणेशजी तथा शकर-पार्वतीजी का स्मरण करके सब बरातियो समेत नगर मे पैठे।

दोहा—होहि शकुन वर्षहि सुमन, सुर दुदुभी बजाइ।
बिबुध बधू नाचहि मुदित, मंगल मंगल गाइ[१] ॥३४७॥

अर्थ—शकुन होने लगे और देवता नगाडे बजा-बजाकर फूल बरसाने लगे तथा अप्सरायें प्रसन्न मन से मनोहर मगल गीत गाती हुई नाचने लगी।

मागध सूत बंदि नट नागर। गावहि यश तिहुँ लोक उजागर[२] ॥
जय धुनि विमल वेदवरबानी। दश दिशि सुनिय सुमंगल सानी ॥

अर्थ—भाट, पौराणिक, यश बखानने वाले और चतुर नट लोग तीनो लोक मे प्रसिद्ध कीर्त्ति गाने लगे। शुद्ध जय-जयकार तथा श्रेष्ठ वेदध्वनि मगल से भरी हुई दसों दिशाओं में गूँजने लगी।

विपुल बाजने बाजन लागे। नभ सुर नगर लोग अनुरागे ॥
बने बराती बरनि ग जाही। महा मुदित मन सुख न समाहीं ॥

अर्थ—बहुत से बाजे बजने लगे, आकाश में देवता और नगर मे लोग सब प्रसन्न हुए। बरातियो का ठाट-बाट वर्णन नही किया जाता। चित्त मे बडा ही आनन्द था जो हृदय मे नही समाता था।

पुरबासिन्ह तब राउ जुहारे। देखत रामहि भये सुखारे ॥
करहिं निछावरि मणिगण चीरा। वारि विलोचन पुलक शरीरा ॥

अर्थ—तब पुरवासियो ने राजाजी को जुहार की और वे रामचन्द्रजी को देखते ही प्रसन्न हुए। सब लोग रोमाचित हो प्रेम के आँसू बहाते हुए रत्नो और कपड़ो की निछावर करने लगे।

---

१. बिबुध बधू नाचहिं मुदित, मजुल मगल गाइ—वृहद्राग रत्नाकर से—

(राग खम्माच)

बहुत दिनान मे विदेश हुइ आये मेरे प्यारे मनमोहन, बधाय सब गावो री।
नाचो रस राचो नीकी नीकी गति लै लैकर नीकी नीकी, भातिन सों भावन बतावो री ॥
ताल कठताल और दूसरा मुँहचगन सो घूंघरू बजाय के, मृदग सो मिलावो री।
कौशलकिशोर रिझवार को रिझावो आज सकल समाज कर, रंग सरसावो री ॥

२. मागध सूतबदि नट नागर। गावहिं यश तिहुँ लोक उजागर—

क० : दिन प्रति मति गति कीरति विभूति नति, रमापति पदरति सति अतिशय होय।
धनागार राज्य अधिकार श्री शृगार 'बदि' प्रजा परिवार औ उदारता अछय होय ॥
चंड कर को सो परचण्ड चंड खड खड, मडै बाहु दड लखि अरि उर भय होय।
राज अधिराज राज महाराज सब काल राजन की, जय होय जय होय जय होय ॥

आरति करहिं मुदित पुरनारी । हर्षहिं निरखि कुँअर वर चारी[१] ।।
शिविका सुभग उहार उघारी । देखि दुलहिनिन होहिं सुखारी[२] ।।

अर्थ—नगर की स्त्रियाँ प्रसन्नता से आरती करती थी और चारों श्रेष्ठ राजकुमारो को देखकर हर्षित होती थी। सुन्दर पालकियो का परदा उठा-उठाकर दुलहिनो को देखकर प्रसन्न होती थी।

दोहा—इहि विधि सब ही देत सुख, आये राजदुआर ।
मुदित मातु परिछन करहि, बधुन्ह समेत कुमार[३] ।।३४८।।

अर्थ—इस प्रकार सबको सुखी करते हुए राजद्वार पर आ पहुँचे, तब प्रसन्नता से माताएँ बहुओ समेत पुत्रो की आरती उतारने लगी।

करहि आरती बारहिबारा । प्रेम प्रमोद कहै को पारा[४] ।।
भूषण मणि पट नाना जाती । करहि निछावरि अगणित भाँती ।।

अर्थ—बारम्बार उनकी आरती की। उस समय के प्रेम तथा भारी आनन्द को कौन वर्णन कर सकता है। अनेक भाँति के गहने, जवाहरात और कपडे कई प्रकार से निछावर करती थी।

बधुन समेत देखि सुत चारी । परमानंद मगन महतारी ।।
पुनि पुनि सीय रामछवि देखी[५] । मुदित सुफल जग जीवन लेखी ।।

---

१. आरति करहिं मुदित पुरनारी । हर्षहिं निरखि कुँअर वर चारी—हृदयराम कवि कृत हनुमन्नाटक से—

सवैया—बारन मत्त गुँजारत भृग कपोलन तुग ध्वजा फहराही ।
चारनवश उचारन को निज बाँह उठाइ कवित्त पढाही ।।
चामर छत्र लिए सँग वीर बने रघुवीर सने मन माही ।
देख सरूप पियें जल वारि सबै पुर नारि कहै बलि जाही ।।

२. शिविका सुभग उहार उघारी । देखि दुलहिनिन होहिं सुखारी—दुलहिनो की मुख छवि देखते ही सखियाँ चकित हो यो कह उठी—

दोहा—आहा! बदन उघार दृग, सफल करै सब कोइ ।
रोज सरोजन के परे, हँसी शशी की होइ ।।

३ मुदित मातु परिछन करहिं, बधुन समेत कुमार—गीत रामायण से—

आरती—पुलकि तन आरती करै मैया ।
निरखि मनोहर कुँअर कुँअरि छवि बहु विध लेति बलैया ।।
वारत भूषण द्रव्य भूरि पट मुदित विलोकि निकैया ।।
शम्भु प्रसाद अनुग्रह मुनि के तात विजय बडि पैया ।।
'महावीर' आनन्द मगन मन रघुवर सुजस कहैया ।।

४ करहिं आरती रहिबारा । प्रेम प्रमोद कहै को पारा—

भजन—परछत मैयन सुख अधिकाई ।। टेक ।।
आनँद जल उमगत अबक युग भूलि भूलि विधि जाई ।।
सुत सुत बधुन तकहिं जन चाहहिं दृग मग हियहिं समाई ।।
'विश्वनाथ' मुख चूमि तोरि तृण पुनि पुनि लेहिं बलाई ।।

५. पुनि पुनि सीयराम छवि देखी—

गोरे श्याम रग रति कोटिन अनग सग जाकी छवि देखि होत लज्जित बिचारे हैं। →

अर्थ—माताएँ चारो बहुओ को पुत्रो समेत देखकर बडे ही आनन्द मे मग्न हो गईं बारम्बार सीता-रामचन्द्रजी की शोभा देख ससार मे अपने जन्म को सुफल जान प्रसन्न होती थी।

सखी सीय मुख पुनि पुनि चाही। गान करहि निज सुकृत सराही[१] ।।
बरषहि सुमन क्षणहि क्षण देवा। नाचहि गावहि लावहि सेवा ।।

अर्थ—सखियाँ सीताजी के मुख को बार-बार देखती थी और अपने सत्कर्मों की सराहना करती हुई गीत गाती थी। देवता पल-पल पर फूल बरसाते हुए नाच-गाकर प्रभु पर अपनी भक्ति दर्शाते थे।

देखि मनोहर चारिउ जोरी। शारद उपमा सकल ढँढोरी[२] ।।
देत न बनहि निपट लघु लागी। इकटक रही रूप अनुरागी ।।

अर्थ—चारो सुहावनी जोडियो को देखकर सरस्वतीजी ने सब उपमाएँ ढूंढ डाली। जब कोई भी उपमा देते न बनी क्योकि वे सब बहुत ही तुच्छ जँच पडी, तब तो छवि मे ऐसी छक गईं कि टकटकी बाँधकर रह गयी।

दोहा—निगमनीति कुलरीति करि, अर्घ पाँवड़े देत।
बधुन्ह सहित सुत परिछ सब, चली लिवाइ निकेत ।।३४९।।

अर्थ—आरती करने के पश्चात् वेद की विधि तथा कुलाचार कर अर्घ्य देती हुई और पाँवडे बिछाती हुई बहुओ समेत सुतो को महलो मे लिवा ले चली।

चन्द कैसो भाग भाल भृकुटी कमान ऐसी नासिका सुहाई नैन जोर छोर वारे हैं ।।
ओठ अरुणारे तैसे कुन्द से दशन प्यारे ललित कपोलन पै कच घुँघुरारे है।
अश भुज धारे दोउ नील पीत पटवारे 'प्रेम सखी' रामसिया जीवन हमारे हैं ।।

१ सखी सीय मुख पुनि पुनि चाही। गान करहिं निज सुकृत सराही—पद रामायण से—
केदारा—बडे भाग लली मिथिलेश की।
मेरे जान राम सीता की अविचल जोरि हमेश की ।।
दौरि दौरि दरशन को आवै भूप वधू सब देश की।
तन मन प्रान करत न्यौछावर लेत बलैया भेश की ।।
राव जनक की कुँवरि लडैती पटरानी अवधेश की।
लाहा रामदास कान्हर भज स्वामिनि शेश महेश की ।।

२. देखि मनोहर चारिउ जोरी। शारद उपमा सकल ढँढोरी— श्री रामाजी चतुर दास कृत हनुमन्नाटक भाषा से—

(राम-रूप)
(मनोहर छद)

कैसे वे जलज नील अतसी कुसुम जैसे कैसे वे कुसुम जैसे नीलमणि धाम है।
नीलमणि धाम कैसे शोभित तमाल तैसे कैसे वे तमाल जैसे दूब दल श्याम हैं ।।
दूब दल श्याम कैसे यमुना प्रवाह जैसे यमुना प्रवाह कैसे जैसे तनु राम हैं।
राम सुनि श्याम कैसे नवघन श्याम जैसे नवघन श्याम कैसे जैसे श्याम राम है ।।

(सीता-स्वरूप)

पीत मणिमाल कैसी लतिका सुवर्ण जैसी कैसी लता जैसी रग केसर अमद री।
केसर सु कैसी जैसी सोन जुही कैसी जुही जैसी गिरा वारि वृष्टि वृन्द पर बुद री ।।
कैसी ओप अम्बुकी सु जैसी यज्ञ ज्वाल ज्योति कैसी ज्वाल जैसी पीत पट छबिछंद री।
कैसी पट ज्योति जैसी सीय छबि कैसी सीय जैसी बिज्जु कैसी बिज्जु जैसी सिय सुदरी ।।

चारि सिंहासन सहज सुहाये। जनु मनोज निज हाथ बनाये ॥
तिन्ह पर कुँअरि कुँअर बैठारे। सादर पाय पुनीत पखारे ॥

अर्थ—चार सिहासन स्वभाव ही से ऐसे सुन्दर थे कि मानो कामदेव ने उन्हे अपने हाथ से बनाया हो। उन पर दूल्हा और दुलहिनो को बिठलाया तथा आदरसहित उनके चरण धोये।

धूप दीप नैवेद्य वेद विधि। पूजे वर दुलहिनि मंगल निधि ॥
बारहि बार आरती करही[1]। व्यजन चारु चामर शिर ढरही ॥

अर्थ—फिर मगल के भडार दूल्ह और दुलहिनो का धूप, दीप, नैवेद्य द्वारा वेद-विधान से पूजन किया। उन पर बारबार आरती उतारती थी और सिर पर उत्तम पखे और चमर ढुर रहे थे।

वस्तु अनेक निछावर होहीं। भरी प्रमोद मातु सब सोहीं ॥
पावा परमतत्त्व जनु योगी। अमृत लहेउ जनु संतत रोगी ॥

अर्थ—बहुत-सी वस्तुएँ निछावर की जा रही थी और आनन्द से परिपूर्ण सब माताएँ सुशोभित थी। मानो किसी योगी ने परब्रह्म को पा लिया हो अथवा सदैव के लिए रोगी को अमृत मिल गया हो।

ज़नम रंक जनु पारस पावा। अधहि लोचन लाभ सुहावा ॥
मूकवदन जस शारद छाई। मानहुँ सुमर शूर जय पाई ॥

अर्थ—मानो जन्म के दरिद्री ने पारस पाया हो अथवा अधे को आँखो का मिल जाना सुहावना लगा हो। जिस प्रकार गूँगे की जीभ पर सरस्वती आन विराजी हो अथवा किसी वीर ने मानो लडाई मे जय पाई हो।

दोहा—इहि सुख ते शत कोटि गुण, पावहि मातु अनंद।
भाइन्ह सहित विवाहि घर, आये रघुकुलचद।

अर्थ—जिस समय रघुवशियो मे चन्द्रमा के समान रामचन्द्रजी भाइयो समेत ब्याह कर घर आये, उस समय ऊपर कहे हुए सुखो से सौ करोड गुणा अधिक सुख सब माताओ को हुआ।

दोहा—लोकरीति जननी करहि, वर दुलहिन सकुचाहिं।
मोद विनोद विलोकि बड़, राम मनहि मुसुकाहि ॥३५०॥

अर्थ—माताएँ तो सब लोकाचार कर रही थी परन्तु दूल्हा-दुलहिन लज्जित होते थे, इस लोकरीति की क्रीडा के बडे आनन्द को देखकर रामचन्द्रजी मन ही मन मुसकराते थे।

देव पितर पूजे विधि नीकी। पूजी सकल वासना जी की ॥
सबहि वन्दि माँगहि वरदाना। भाइन्ह सहित राम कल्याना ॥

---

१. बारहिं बार आरती करही—

आरती—आरति कीजै सीय रमन की, भरत लक्ष्मण शत्रुदमन की ॥
राजत सुन्दर रतन सिंहासन, माधुरि मूरति शोक शमन की।
कीट मुकुट कुडल वनमाला, सीसफूल नथ ढार रतन की ॥
बाजूबन्द विजायठ ककन, कर धनु शायक गुच्छ सुमन की।
'श्री बलदेव' कमलपद देखत, क्षेत मगन सुधि रहत न तन की ॥

अर्थ—हृदय की सम्पूर्ण इच्छाएँ पूरी हुईं इस हेतु सुन्दर प्रकार से देवताओ और पितरो का पूजन किया तथा सबकी वदना कर यह वरदान माँगा कि भाइयो समेत रामचन्द्र का भला होवे ।

अंतरहित सुर आसिष देहीं । मुदित मातु अंचल भरि लेहीं ।।
भूपति बोलि बराती लीन्हे । यान वसनमणि भूषण दीन्हे ।।

अर्थ—अदृश्य रूप से देवता आशीर्वाद देते थे जिन्हे माताएँ हर्षपूर्वक अचल पसारकर ग्रहण करती थी । दशरथजी ने बरातियो को बुला लिया और उनको सवारियाँ, कपडे, जवाहरात और गहने दिये ।

आयसु पाइ राखि उर रामहि । मुदित गये सब निज निज धामहि ।।
पुर नर नारि सकल पहिराये । घर घर बाजन लगे बधाये ।।

अर्थ—आज्ञा पाकर सब बराती हृदय मे रामचन्द्रजी का चितवन करते हुए आनन्द-पूर्वक अपने-अपने घर गये । फिर नगर के सब स्त्री-पुरुषो को पहिरावन पहिराई और प्रत्येक घर मे आनन्द-बधाई होने लगी ।

याचक जन याचहि जोइ जोई । प्रमुदित राउ देहिं सोइ सोई ।।
सेवक सकल बजनियाँ नाना । पूरन किये दान सनमाना ।।

अर्थ—भिक्षुकगण जो-जो वस्तु माँगते थे राजाजी प्रसन्नता से वही वस्तु देते थे । सम्पूर्ण टहलुओ और तरह-तरह के बाजत्रियो को द्रव्य तथा मीठे वचनो से सतुष्ट किया ।

दोहा—देहि असीस जोहारि सब, गावहि गुणगण गाथ ।
तब गुरु भूसुर सहित गृह, गवन कीन्ह नरनाथ ।।३५१।।

अर्थ—सब लोग वन्दना कर आशीर्वाद देते थे तथा उनके गुणानुवाद वर्णन करते थे । (इस काम से छुट्टी पाकर) गुरु और विप्रो सहित राजाजी महलो मे पधारे ।

जो वशिष्ठ अनुशासन दीन्हा । लोक वेद विधि सादर कीन्हा ।।
भूसुर भीर देखि सब रानी । सादर उठी भाग्य बड़ जानी ।।

अर्थ—वशिष्ठजी ने जो कुछ आज्ञा की, वे ही सब वेद-रीतियाँ और लोकाचार आदर सहित किये गये । ब्राह्मणो की भीड देखकर सब रानियाँ अपना बडा ही भाग्य समझ आदरपूर्वक उठी ।

पाय पखारि सकल अन्हवाये । पूजि भली विधि भूप जिवाँये ।।
आदर दान प्रेम परिपोषे । देत असीस चले मन तोषे ।।

अर्थ—राजाजी ने सब के पाँव धोकर स्नान कराये और उनका पूजन करके भली भाँति भोजन करवाये तथा सत्कार करके, द्रव्य आदि दे प्रेम से उन्हे सतुष्ट किया, तब वे प्रसन्न हो आशीर्वाद देते हुए चले ।

बहुविधि कीन्ह गाधिसुत पूजा । नाथ मोहि सम धन्य न दूजा ।।
कीन्हि प्रशंसा भूपति भूरी । रानिन सहित लीन्ह पग धूरी[1] ।।

अर्थ—फिर अनेक प्रकार से विश्वामित्रजी का पूजन किया (और कहा) कि हे प्रभु !

---

१. रानिन सहित लीन्ह पग धूरी—सहजो बाई कृत सहज प्रकाश से—
दोहा— सब तीरथ गुरु के चरण, नित ही परवी होय ।
सहजो चरणोदक लिए, पाप रहत नहिं कोय ।।

मेरे समान भाग्यवान दूसरा नही है। राजाजी ने उनकी बहुत ही बडाई की और रानियो समेत उनकी चरण-रज को ले लिया।

भीतर भवन दीन्ह वर वासू। मन जोगवत रह नृप रनवासू ॥
पूजे गुरुपद कमल बहोरी[1]। कीन्ह विनय उर प्रीति न थोरी ॥

अर्थ—महलो के भीतर ही उनके रहने का सुभीता कर दिया और दशरथजी सब रानियो समेत उनके मन को अपने हाथ मे लिये रहते थे। फिर वशिष्ठजी के चरण कमलो का पूजन किया और उनसे विनती की। उस समय उनके हृदय मे बहुत प्रेम था।

दोहा– बधुन्ह समेत कुमार सब, रानिन सहित महीश।
पुनि पुनि वन्दत गुरुचरण, देत अशीस मुनीश ॥३५२॥

अर्थ—बहुओ समेत सब राजकुमारो ने तथा रानियो समेत दशरथजी ने गुरु वशिष्ठजी के चरणो की बारबार वन्दना की, तब मुनिजी ने उन्हे आशीर्वाद दिये।

विनय कीन्ह उर अति अनुरागे। सुत सपदा राखि नृप आगे ॥
नेग माँगि मुनिनायक लीन्हा। आशिरबाद बहुत विधि दीन्हा ॥

अर्थ—दशरथजी हृदय मे प्रेम से गद्गद हो विनती करने लगे कि ये पुत्र और धन-सपत्ति सब आप ही की है (अब क्या आज्ञा होती है)। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी ने अपना नेग माँग लिया और अनेक प्रकार से आशीर्वाद दिये।

उर धरि रामहि सीय समेता। हरषि कीन्ह गुरु गवन निकेता ॥
विप्रबधू सब भूप बुलाई। चैल चारु भूषण पहिराई ॥

शब्दार्थ—चैल (स०)=कपडे।

अर्थ—सीता समेत रामचन्द्रजी को हृदय मे धारण कर गुरुजी प्रसन्न होकर अपने घर चले गये। दशरथजी ने सब ब्राह्मणियो को बुलाया और उन्हे सुन्दर कपडे तथा गहने पहिनाये।

बहुरि बुलाइ सुआसिनि लीन्ही। रुचि विचारि पहिरावनि दीन्ही ॥
नेगी नेग योग सब लेही। रुचि अनुरूप भूप मणि देही ॥

अर्थ—फिर सौभाग्यवती स्त्रियो को बुलाया और उनकी इच्छानुसार पहिरावनें पहिराईं। फिर सब नेगियो ने अपने-अपने उचित नेग माँगे और राजराजेश्वरजी ने उनकी इच्छानुसार दिये।

प्रिय पाहुने पूज्य जे जाने। भूपति भली भाँति सनमाने ॥
देव देखि रघुवीर विवाहू। बरषि प्रसून प्रशंसि उछाहू ॥

अर्थ—जो पूजनीय प्यारे पाहुने समझे गये, राजाजी ने उनका भी सन्मान भली भाँति किया। देवताओ ने रामचन्द्रजी का यह विवाह देख फूलो की वर्षा की और उत्सव की प्रशसा की।

दोहा—चले निशान बजाइ सुर, निज निज पुर सुख पाइ।
कहत परस्पर रामयश, प्रेम न हृदय समाइ ॥३५३॥

---

१. पूजे गुरुपद कमल बहोरी—सहजो बाई कृत—

दोहा—गुरुपग निहचै परसिये, गुरुपग हिरदै राख।
सहजो गुरुपग ध्यान कर, गुरु बिन और न भाख ॥

अर्थ—देवता सुख पाकर नगाडे बजाते हुए अपने-अपने लोक को चले। एक-दूसरे से रामचन्द्रजी का यश वर्णन करते जाते थे तो भी उनका प्रेम हृदय मे न समाता था।

सब विधि सबहि समदि नरनाहू। रहा हृदय भरिपूरि उछाहू ॥
जहँ रनवास तहाँ पग धारे। सहित बधूटिन्ह कुँअर निहारे ॥

शब्दार्थ—समदि (सम्=भली भाँति+अदि=वश करना)=भली भाँति वश मे करना।

अर्थ—राजाजी ने सब का सब प्रकार से आदर-सत्कार किया और उनके हृदय मे बहुत ही उत्साह भर गया। फिर जहाँ रनिवास था वहाँ पधारे और पुत्रो को बहुओ समेत देखा।

लिये गोद करि मोद समेता। को कहि सकै भयउ सुख जेता ॥
बधुन्ह सप्रेम गोद बैठारीं। बार-बार हिय हरषि दुलारी ॥

अर्थ—(दशरथजी ने) आनन्दपूर्वक उन्हे अपनी गोद मे बैठा लिया (उस समय) उन्हे जितना सुख हुआ उसे कौन कह सकता है। प्रेमपूर्वक बहुओ को गोद मे बिठाया और बारबार हृदय मे प्रसन्न हो उनको प्यार किया।

देखि समाज मुदित रनवासू। सब के उर आनँद कियो वासू ॥
कहेउ भूप जिमि भयउ विवाहू। सुनि सुनि हर्ष होइ सब काहू ॥

अर्थ—इस समाज को देखकर रानियाँ प्रसन्न हुईं मानो सबके हृदय मे आनन्द आ बसा हो। जिस प्रकार विवाह हुआ था सो सब राजाजी ने कह सुनाया, जिसको सुन-सुनकर सब को आनन्द होता था।

जनकराज गुण शील बड़ाई। प्रीति रीति संपदा सुहाई[1] ॥
बहु विधि भूप भाट जिमि बरनी। रानी सब प्रमुदित सुनि करनी ॥

अर्थ—जनक महाराज के गुण, शील स्वभाव, बडप्पन, प्रीति, पद्धति और सुहावनी सपत्ति को। नाना प्रकार से दशरथजी ने भाट की नाईं वर्णन किया। ऐसी करतूति को सुनकर सब रानियाँ बहुत प्रसन्न हुईं।

दोहा—सुतन्ह समेत नहाइ नृप, बोलि विप्र गुरु ज्ञाति।
भोजन कीन्ह अनेक विधि, घरी पाँच गइ राति ॥३५४॥

अर्थ—राजाजी ने पुत्रो के साथ-साथ स्नान किये और ब्राह्मणो तथा गुरुजनो को बुलाकर उनकी पक्ति मे बैठकर नाना प्रकार के पकवान भोजन किये ही थे कि पाँच घडी रात बीत गई।

---

१. जनकराज गुण शील बडाई। प्रीति रीति सपदा सुहाई
बहु विधि भूप भाट जिमि बरनी।

इस विषय पर गगाधर की कविता राठ निवासी बच्चू भाट द्वारा प्राप्त—

(कवित्त)

राजन की कहा सुरराज साथ जेयो हम स्वाद का बताऊँ वह सुधा रस बोरे की।
ताही से सौगुणी रसोई मिथिलेशपुर की बिसरैं ना आज लों विदेह के निहोरे की ॥
कौशलेशजी कहत कौशला से 'गगाधर' पुण्य पटरानी मोहि कंठ सौंह तेरे की।
मुख मे भरी है मधुराई वह गारमा की कानन भरी है वह गान मुख गोरे की ॥

मंगलगान करहिं वरभामिनि[1] । भइ सुखमूल मनोहर यामिनि ।।
अँचइ पान सब काहू पाये । स्रग सुगंध भूषित छवि छाये ।।

अर्थ—सौभाग्यवती स्त्रियाँ मंगलीक गीत गाती थी और वह रात्रि सुहावनी तथा बहुत सुखदायक हुई। आचमन कर सब ने पान खाये और माला तथा सुगन्धित वस्तुओ से सुशोभित हुए।

रामहि देखि रजायसु पाई । निज निज भवन चले शिर नाई ।।
प्रेम प्रमोद विनोद बड़ाई । समय समाज मनोहरताई ।।
कहि न सकहि शत शारद शेषू । वेद विरंचि महेश गनेशू ।।
सो मैं कहौं कवन विधि बरनी । भूमिनाग शिर धरइ कि धरनी ।।

शब्दार्थ—भूमिनाग (स०) = केचुआ, सँपोला ।

अर्थ—(सब लोगो ने) रामचन्द्रजी के दर्शन कर प्रणाम किया और आज्ञा पाकर वे अपने-अपने घर गये । (उस समय का) प्रेम, अधिक आनन्द, उत्सव, बडाई, समय, समाज की सुन्दरता को, सौ सरस्वती, शेषनागजी, वेद, ब्रह्मा, महादेव तथा गणेशजी भी नही वर्णन कर सकते। तो फिर मै उसको किस प्रकार वर्णन कर सकता हूँ ! भला सँपोला भी कही अपने शीश पर धरती को धारण कर सकता है ? (कभी नही, पृथ्वी को शीश पर धारण करने की सामर्थ्य तो शेषनाग ही को है) ।

नृप सब भाँति सबहि सनमानी । कहि मृदु वचन बुलाई रानी ।।
बधू लरकिनी पर घर आई । राखेहु नयन पलक की नाई[2] ।।

अर्थ—राजाजी ने सबका सभी प्रकार से सन्मान किया फिर रानियो को बुलाकर मधुर वचनो से कहा, कि देखो ये बहुएँ बाल अवस्था वाली पराये घर आयी है, इस हेतु इनको इस प्रकार रखना जैसे पलक आँखो को सम्हालते है ।

दोहा—लरिका श्रमित उनींदवश, शयन करावहु जाइ[3] ।
अस कहि गे विश्रामगृह, रामचरण चित लाइ ।।३५५।।

---

१. मंगलगान करहिं वरभामिनि—

(गारी रामप्रसाद की)

पिया घन श्याम सिया तन गोरी, पिया घन श्याम० ।। टेक ।।
रूप सदन विधु वदन मनोहर रघुकुल मणि मिथिलेशकिशोरी ।। पिया घन० ।।
का कहुँ शोभा लाल लाडिली छबि शृगार मनहुँ थक ठौरी ।। पिया घन० ।।
बैठी महलन माहिं किशोरी निरखत मुख लोचन टुक जोरी ।। पिया घन० ।।
कीट मुकुट राघवशिर सोहै सियजी के माथे सोहत मौरी ।। पिया घन० ।।
सुभग रूप रति मदन विमोहै सीता राम सकै कह कोरी ।। पिया घन० ।।
'राम प्रसाद' के रघुवर स्वामी, हृदय बसौ यह सुन्दर जोरी ।। पिया घन० ।।

२. राखेहु नयन पलक की नाईं—जैसा सभा विलास मे कहा है—

दोहा—सुजन बचावत कष्ट सो, रहै निरन्तर साथ ।
नयन सहाइ पलक ज्यो, देह सहाई हाथ ।।

३. लरिका श्रमित उनीदवश, शयन करावहु जाइ—

लाल के सोने को समय भयो ।
दशरथ राज मुदित रानिन प्रति इहि बिधि बोध दयो ।।

अर्थ—लडके थके हुए उनीदे हो रहे है, सो जाकर इनको सुला देओ, इतना कह राजाजी रामचन्द्रजी के चरणो को चित्त मे धारण कर निद्रालय मे गये।

भूप वचन सुनि सहज सुहाये । जटित कनक मणि पलँग डसाये ।।
सुभग सुरभिपय फेनु समाना । कोमल कलित सुपेती आना[१] ।।
उपबरहन बर बरनि न जाही । स्रग सुगध मणिमदिर माहीं ।।

अर्थ—राजाजी के सरल सुहावने वचनो को सुनकर (रानियो ने) मणियो से जडे हुए सुवर्ण के पलग बिछवाये। उन पर उत्तम गौ के दूध फसकर के समान कोमस तोसक भाँति-भाँति के स्वच्छ निर्मल चादरो समेत थे । जिन पर रखे हुए उत्तम तकियो आदि का वर्णन नही हो सकता, जहा मणियो से जटित महलो मे पुष्पमालाओ की सुगध भर रही थी।

रतनदीप सुठि चारु चँदोवा । कहत न बनै जान जोइ जोवा ।।
सेज रुचिर रचि राम उठाये । प्रेम समेत पलँग पौढ़ाये ।।
अज्ञा पुनि पुनि भाइन्ह दीन्ही । निज निज सेज शयन तिन कीन्ही ।।

अर्थ—रत्नो के दीपक और बहुत ही उत्तम चंदोवा तने थे सो कहे नही जाते, इन्हे तो जिन्होने देखा है वे ही जानें। उत्तम रीति से बिछौना तैयार करके रामचन्द्रजी को हाथ पकड कर प्रेम सहित पलग पर लिटा दिया। फिर जब बार-बार भाइयो को आज्ञा दी गई तब वे भी अपनी-अपनी शैयाओ पर जा लेटे।

देखि श्याम मृदु मंजुल गाता । कहहि सप्रेम वचन सब माता ।।
मारग जात भयावन भारी । केहि विधि तात ताड़का मारी ।।

अर्थ—(रामचन्द्रजी के) श्यामले, कोमल और सुकुमार शरीर को देखकर सब माताएँ प्रेम सहित बोल उठी, हे प्यारे ! मार्ग मे जाते हुए तुमने बडी डरावनी ताडका राक्षसी का किस प्रकार बध किया ?

दोहा—घोर निशाचर विकट भट, समर गनहि नहि काहु ।
मारे सहित सहाय किमि, खल मारीच सुबाहु ।।३५६।।

अर्थ—और भी भारी राक्षस जो ऐसे कट्टर योद्धा थे कि लडाई मे किसी को कुछ

उत आईं द्रुम की परछाईं चन्द प्रकाश छयो।
लरिका बधुन्ह समेत उनीदे श्रम कछु अधिक भयो ।।
बधु सुकुमारी मातु दुलारी इन कहँ सबहि नयो।
शयन करावहु जाइ इन्हैं तुम यह कहि भूप गयो ।।
ब्याह उछाह विनोद महासुख नित-नित होत नयो।
ताहि 'विनायक' कहँ लग बरनै काहु न पार लयो ।।

१. सुभग सुरभि पयफेनु समाना । कोमल कलित सुपेती आना—श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ७ अ० ४ मे इन्द्रभवन की सेज सफेदी के बारे मे यह श्लोक है—

श्लोक—यत्र चित्र वितानानि पद्मरागासनानि च ।
पय फेन निभा. शय्या मुक्तादाम परिच्छदा' ।। १० ।।

अर्थात् जहाँ चित्र-विचित्र चँदोवे तने हुए है, पद्मराग मणि के आसन बिछे हुए हैं, और जहाँ चारों ओर मोतियो की लड़ें लटकती हुई तथा दूध के फसूकर के तुल्य नरम शय्याएँ हैं।

नही समझते। ऐसे दुष्ट मारीच और सुबाहु को उनके साथियो समेत कैसे मारा ?

मुनिप्रसाद बलि तात तुम्हारी। ईश अनेक करवरे टारी ॥
मख रखवारी करि दुहुँ भाई। गुरुप्रसाद सब विद्या पाई[१] ॥

अर्थ—हे प्यारे ! मैं तुम्हारी बलैया लेती हू, परमेश्वर ने मुनिजी की कृपा से तुम्हारी बहुत-सी बलायें दूर की। तुम दोनो भाइयो ने विश्वामित्रजी के यज्ञ की रक्षा की और उन्ही के आशीर्वाद से सब युद्ध विद्या प्राप्त की।

मुनितिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी ॥
कमठ पीठ पविकूट कठोरा। नृप समाज महँ शिवधनु तोरा ॥

अर्थ—तुम्हारे चरणो की धूल लगने से गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या तर गई, सो यश संसार-भर मे फैल रहा है। राजाओ के समाज मे कछुए की पीठ तथा वज्र से भी अधिक कठोर शिवजी के धनुष को तोड डाला।

विश्व विजय यश जानकि पाई[२]। आये भवन ब्याहि सब भाई ॥
सकल अमानुष कर्म तुम्हारे[३]। केवल कौशिक कृपा सुधारे ॥

अर्थ—इससे ससार मे जय, कीर्त्ति और जानकी को पाया, इसके सिवाय सब भाइयो को भी ब्याह ले आये। तुम्हारे काम सभी मनुष्यो के कर्त्तव्य से बढकर है सो विश्वामित्रजी

---

१ गुरुप्रसाद सब विद्या पाई—

क०—लोह को ज्यो पारस पषाण हूँ पलट लेत कचन छुअत होय जग मे प्रमानिये।
द्रुम को ज्यों चदन हू पलटै लगाय बास आपिके समानता को शीतलता आनिये ॥
कीट को ज्यो भृंग हू पलट के करत भृ ग सोऊ उड जाय नाहि अचरज मानिये।
"सुन्दर" कहत यह सगरे प्रसिद्ध बात शुद्ध सीख पलटै सो सत्तगुरु जानिये ॥

२ विश्व विजय यश जानकि पाई—

राग विहाग—जय जय जनक किशोरी की, कुअरि लडैती भोरी की।
भाल विशाल तिलक केसर को, मजुल बिन्दी रोरी की ॥
मणिमय जटित विविध बहु भूषण चन्द्रवदन तन गोरी की।
मिथिलापुर की वीथिन विहरत ललित सखी सँग टोरी की ॥
शची रची रति कमला वाछत चरण कमल रज तोरी की।
गुण गम्भीर शारदा सुमिरत जीवन शकर गोरी की ॥
"लाहा राम दास कान्हर" भज राम सिया की जोरी की।

३. सकल अमानुष कर्म तुम्हारे—

राग कान्हरा—भुजनि पर जननी वारि फेरि डारी।
क्यों तोर्‍यो कोमल कर कमलन शभु शरासन भारी ॥
क्यो मारीच सुबाहु महाबल प्रबल ताडका मारी।
मुनिप्रसाद मेरे राम लषन की विधि बडि करवर टारी ॥
चरणरेणु लै नयन लगावत क्यो मुनिवधू उधारी।
कहौ तात क्यो जीति सकल नृप वरी विदेहकुमारी ॥
दुसह रोष मूरति भृगुपति अति नृपति निकर क्षयकारी।
क्यो सौंप्यो सारग हारि हिय करी बहुत मनुहारी ॥
उमगि उमगि आनद विलोकति बधुन सहित सुत चारी।
तुलसिदास आरती उतारति प्रेममगन महतारी ॥

की कृपा से सिद्ध हुए।

आज सुफल जग जन्म हमारा। देखि तात विधुवदन तुम्हारा ॥
जे दिन गये तुमहि बिन देखे। ते विरंचि जनि पारहि लेखे ॥

अर्थ—हे प्यारे! आज तुम्हारे चन्द्रसमान मुख को देख 'ससार मे हमारा जन्म सफल हुआ। जितने दिन तुम्हारे विछोह मे बीत गये उन्हे ब्रह्मा हिसाब मे न लावें (भाव यह कि ससार मे हमारे जीने की जितनी अवधि है उसमे से जितने दिन तुम विश्वामित्रजी के साथ रहे उतने दिन हमारी आयु मे ब्रह्मा यदि और बढा देवे तो अच्छा हो क्योकि ससार मे तुम्हे बिना देखे जीना वृथा है)।

दोहा—राम प्रतोषी मातु सब, कहि विनीत वर बैन।
सुमिरि शंभु गुरु विप्रपद, किये नीदवश नैन ॥३५७॥

अर्थ—रामचन्द्रजी ने सुयोग्य मधुर वचनो से सब माताओ को सतुष्ट किया और शिवजी, गुरुजी और ब्राह्मणो के चरणो को स्मरण कर सो गये।

नींदहु वदन सोह सुठि लोना[१]। मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना ॥

अर्थ—सोते समय भी सुहावना सलोना मुखडा इस प्रकार शोभायमान था जैसे सध्या समय कमल सम्पुटित होने पर भी शोभता है।

घर घर करहिं जागरन नारी। देहि परस्पर मंगल गारी[२] ॥

अर्थ—स्त्रियाँ अपने अपने घरो मे रतजगा कर रही थी और आपस मे मगलीक हँसी-ठट्ठा कर रही थी।

पुरी बिराजति राजति। रानी कहहिं विलोकहु सजनी ॥
सुदरि बधुन्ह सासु लेइ सोई। फणिकन्ह जनु शिर मणि उर गोई ॥

---

१. नीदहु वदन सोह सुठि लोना—किसी कवि ने इसी छटा को कैसी उत्तम रीति से वर्णन किया है—

क० : एक कहै अमल कमल मुख रामजी को एक कहै चन्द्रमा ही आनँद को कन्द री।
होइ जो कमल सो तो रैन माहि सकुचै री चन्द्र जो तो वासर मे होइ द्युति मद री ॥
वासर मे कमलहि रजनी मे मुखचन्द वासर हू रैन हू विराजै जग वद्य री।
देखे मुख भावत न भावत कमल चद ताते मुख मुखै सखी कमल न चद री ॥

२. घर घर करहि जागरन नारी। देहि परस्पर मगल गारी—

राग सोरठ—अँखियाँ रामरूप रसभीनी।
कोटि काम अभिरामश्यामघन निरख भई लय लीनी ॥
लोकलाज कुलकान न मानत नूतन नेह रँगीनी।
"रत्न हरी" कैसे अब निकसै हो गईं ज्यो जल मीनी ॥

राग जगली—जय श्री जानकि बल्लभ लालहि।
मणिमन्दिर श्री कनकमहल मे विपुल रँगीली बालहि ॥
कोउ गावत कोउ बजावत कोउ मृदग डफ तालहि।
"युगल बिहारी" भावत दोऊ लखि छवि भईं निहालहि ॥

गारी—करत लाग गये नैन बतियाँ, करत लाग गये नैन ॥ टेक ॥
दशरथसुत अरु जनकनन्दिनी रूपशील गुण ऐन ॥ बतियाँ ॥
मधुवन मे रव बाँकी नर धुन, राग उठै घन चैन ॥ बतियाँ ॥
"मधुर अली" मधुरे स्वर गावै, बोलत अमृत बैन ॥ बतियाँ ॥

अर्थ—रानिया कहने लगी कि हे सजनी ! देखो तो अयोध्या नगरी सुशोभित होने से रात्रि भी शोभायमान लगती है। फिर प्रत्येक सास अपनी बहू को लेकर इस प्रकार सो गई जिस प्रकार नागिन अपने सिर की मणि को हृदय से लगाकर सो जावे।

प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुणचूड़ वर बोलन लागे[१] ॥
वन्दि मागधन्ह गुनगन गाये[२]। पुरजन द्वार जोहारन आये ॥

शब्दार्थ अरुणचूड=मुर्गा।

अर्थ—सबेरे के सुन्दर समय मे जब सुहावने मुर्ग बोलने लगे, तब रामचन्द्रजी जागे। बन्दीगण और भाट गुणानुवाद गाने लगे और नगर निवासी जोहार करने को द्वार पर आ पहुँचे।

वन्दि विप्र गुरु सुर पितु माता। पाइ असीस मुदित सब भ्राता ॥
जननिन्ह सादर बदन निहारे। भूपति सग द्वार पग धारे ॥

अर्थ—माता, पिता, देवता, गुरु और ब्राह्मणो की वन्दना कर उनसे आशीर्वाद पाकर सब भाई प्रसन्न हुए। माताओ ने प्रेम से उनके मुँह देखे फिर वे राजाजी के साथ द्वार पर आये।

दोहा—कीन्ह शौच सब सहज शुचि, सरित पुनीत नहाइ।
प्रातक्रिया करि तात पहँ, आये चारिउ भाइ ॥ ३५८ ॥

अर्थ—स्वभाव ही से पवित्र चारो भाई सब शौच क्रिया कर, पावन सरयू मे स्नान करके सन्ध्या-वन्दना आदि प्रातकर्म से सुचित्त हो पिता के पास आये।

भूप विलोकि लिये उर लाई। बैठे हरषि रजायसु पाई ॥
देखि राम सब सभा जुड़ानी। लोचन लाभ अवधि अनुमानी[३] ॥

---

१. प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुणचूड वर बोलन लागे—जागने के पहले कौशल्याजी ने अपना पूर्ण प्रेम प्रकाशित कर यह प्रभाती छेड़ी—

राग विभास—भोर भयो जागो रघुनदन। गत व्यलीक भक्तन उर चदन ॥
शशि कर हीन क्षीण द्युति। तमचर मुखर सुनौ मेरे प्यारे ॥
विकसत कज कुमुद बिलखाने। लै पराग रस मधुप उडाने ॥
अनुज सखा सब बोलन आये। बदिन अति पुनीत गुण गाये ॥
मन भावतो कलेऊ कीजे। तुलसिदास को जूठन दीजे ॥

२ वन्दि मागधन्ह गुनगन गाये—

(राग बिलावल)

आज तो निहार रामचन्द्र को मुखारविंद चदहू से अधिक छवि लानत सुहाई री ॥
केसर को तिलक भाल गरे सोहै मुक्तमाल घुँघरवारी अलकन पर कुडल छवि छाई री ॥
अनियारे अरुण नयन बोलत अति ललित बैन माधुरी मुसकान पर मदन हूँ लजाई री ॥
ऐसे आनद कद निरखत मिट जात द्वद्व छवि पर बनमाल "कान्हर गई हौ बिकाई री" ॥

३ देखि राम सब सभा जुडानी। लोचन लाभ अवधि अनुमानी---गीत रामायण से—

(चचरीक)

देखो छवि मजु मृदुल राम की लोनाई।
रेख रुचिर चरण भ्राज, सुभग पदज विधु समाज, मानो गिरि नील उपर बैठि है अथाई ॥ १ ॥
पीत वसन लमत अग, छजत कसे कटि निषग, कर सरोज धनुष बाण, देवन सुखदाई।
सुन्दर वर उर विशाल मुक्तन के पुजमाल, विप्रचरण अक ललित, सुखमा समुदाई ॥२॥ →

अर्थ—राजाजी ने देखते ही उन्हे हृदय से लगा लिया, फिर वे आज्ञा पाकर प्रसन्न हो बैठ गये। रामचन्द्रजी को देखकर सभा के सब लोग सतुष्ट हुए और मान लिया कि नेत्रो के लाभ की यही सीमा है (अर्थात् यदि नेत्रो से रामचन्द्रजी के दर्शन न होवें तो उन नेत्रो से कुछ फल नही)।

पुनि वशिष्ठ मुनि कौशिक आये। सुभग सुआसन्हि मुनि बैठाये॥
सुतन्ह समेत पूजि पद लागे। निरखि राम दोउ गुरु अनुरागे॥

अर्थ—फिर वशिष्ठ और विश्वामित्र मुनि आये, उन्हे उत्तम मनोहर आसनों पर बिठलाया। तब सब सुतो समेत पूजन कर उनके चरण छुए, दोनो गुरु रामचन्द्रजी को देखकर मग्न हो गये।

कहहि वशिष्ठ धर्म इतिहासा। सुनहि महीप सहित रनिवासा॥
मुनि मन अगम गाधिसुत करनी[१]। मुदित वशिष्ठ बहुत विधि बरनी॥

अर्थ—वशिष्ठजी धर्म सम्बन्धी कथाये कहने लगे जिन्हे राजाजी रानियो समेत सुनने लगे। मुनियो के चित्त मे भी न आने वाली विश्वामित्रजी की करतूति को वशिष्ठजी ने प्रसन्न मन हो अनेक प्रकार से वर्णन किया।

बोले वामदेव सब साँची। कीरति कलित लोक तिहुँ माँची[२]॥
सुनि आनंद भयउ सब काहू। राम लषन उर अधिक उछाहू॥

अर्थ—वामदेवजी कहने लगे कि वशिष्ठजी का कहना सत्य है, तभी तो (विश्वामित्रजी की) उत्तम कीर्त्ति तीनों लोको मे फैल रही है। यह सुनकर सबको आनन्द हुआ और रामचन्द्रजी तथा लक्ष्मणजी को अधिक आनन्द हुआ।

दोहा—मंगल मोद उछाह नित, जाहि दिवस इहि भाँति।
उमगी अवध अनंद भरि, अधिक अधिक अधिकाति॥ ३५९॥

अर्थ—मगलीक कार्य, आनन्द और उत्सवो मे ही दिन इस भाँति बीतते थे कि अवधपुरी आनन्द से उमग उठी और वह आनन्द नित प्रति बढता ही जाता था।

सुदिन शोधि कल कंकन छोरे। मंगल मोद विनोद न थोरे[३]॥

कठ कम्बु सम सुहाय, द्युति कपोल कहि न जाय, श्रुतिहु अगम सकल भाँति बरनत कठिनाई।
आनन आनन्द कद, हास मनहुँ उदय चंद, मदन कोटि लजहिं देखि, वदन की निकाई॥३॥
भृकुटि बक तिलक भाल, मुकुट सीस अति रसाल, श्याम बरन हरन मोह कोमन्न चित लाई।
"महावीर" मुदित देखि, जीवन करत सुफल लेखि, कारुणीक कृपा सिन्धु रघुपति रघुराई॥४॥

१. गाधिसुत करनी—देखो विश्वामित्रजी का जीवन-चरित्र। पृ० ३३७-३३८ (उत्तरार्द्ध)

२ बोले वामदेव सब साँची। कीरति कलित लोक तिहुँ माँची—

दोहा—विश्वामित्र मुनीश की, महिमा अपरम्पार।
करतल मरा आमलक सम, जिनको सब ससार॥

३. सुदिन शोधि कल ककन छोरे। मगल मोद विनोद न थोरे—

राग देश—हँस पूछे अवधपुर कि नारि नाथ कैसे गज के फद छुडाये।
तिहारे यही अचरज मन भाये॥
गज औ ग्राह लरें जल भीतर दारुण द्वद्व मचाये।
गज की टेर सुनी रघुनंदन गरुड छोड उठ धाये॥
छोरे न छुट सिया जी को कँगना कैसे चाप चढ़ाये।

→

नित नव सुख सुर देखि सिहाही । अवध जनम याचहि विधि पाही ॥

अर्थ—शुभ मुहूर्त्त ढूंढकर सुन्दर ककण छोरे, उस समय मगल आनन्द और हास-विलास बहुत हुआ । दिनोदिन नया ही नया आनन्द देखकर देवता प्रसन्न होते थे और ब्रह्मा से प्रार्थना करते थे कि हमारा जन्म अवधपुर मे होवे ।

विश्वामित्र चलन नित चहहीं । राम सनेह विनय वश रहही ॥
दिन दिन सौ गुण भूपतिभाऊ । देखि सराह महामुनिराऊ ॥

अर्थ—विश्वामित्रजी प्रतिदिन जाना चाहते थे, परन्तु वे रामचन्द्रजी के प्रेम और विनय के कारण ठहर जाते थे । दशरथजी का दिनोदिन बहुत ही बढता हुआ प्रेम देख मुनिराज भी उसकी सराहना करने लगते थे ।

मॉगत बिदा राउ अनुरागे[1] । सुतन्ह समेत ठाढ भये आगे ॥
नाथ सकल संपदा तुम्हारी । मै सेवक समेत सुत नारी ॥

अर्थ—निदान बिदा माँगते समय राजाजी प्रेमवश हो उठे और पुत्रो को साथ ले आगे खडे हो गये । (और बोले कि) हे स्वामी ! मेरा सब ऐश्वर्य आप ही का है और मै स्त्री-पुत्रो समेत आपका सेवक हू ।

करब सदा लरिकन्ह पर छोहू । दरशन देत रहब मुनि मोहू ॥
अस कहि राउ सहित सुत रानी । परेउ चरण मुख आव न बानी ॥

अर्थ—इन लडको पर सदा प्रेम करते रहियो और हे मुनिजी ! मुझे भी कभी-कभी दर्शन दिया कीजियो । इतना कह राजाजी स्त्री-पुत्रो सहित उनके पैरो पर गिर पडे और मुख से कुछ न कह सके ।

दीन्हि असीस विप्र बहु भाँती । चले न प्रीति रीति कहि जाती ॥
राम सप्रेम सग सब भाई । आयसु पाइ फिरे पहुँचाई ॥

अर्थ—विश्वामित्रजी नाना प्रकार के आशीर्वाद देकर चल खडे हुए । उस समय की प्रीति का बर्त्ताव कहा नही जाता । रामचन्द्रजी अपने भाइयों समेत प्रेमपूर्वक उन्हे पहुँचाकर उनकी आज्ञा से लौट आये ।

दोहा—रामरूप भूपति भगति, ब्याह उछाह अनन्द[2] ।
जात सराहत मनहि मन, मुदित गाधिकुलचन्द ॥ ३६० ॥

कोमल गात अग अति नीके देखत मनहिं लुभाये ॥
जहँ जहँ भीर परी सतन्ह पर तहँ तहँ होत सहाये ।
तुलसिदास सेवक रघुनदन आनँद मगल गाये ॥

१. माँगत बिदा राउ अनुरागे—

क० ' जा हौ कहौ रहिये तो प्रभुता प्रकट होत, चलन कहौं तो हित हानि नाहिं सहनै ।
भावै सो करहु तो उदास भाव प्राणनाथ, सग ले चलौ तो कैसे लोक लाज बहनै ॥
कैसा कैसो नाथ की सौ सुनहु छबीले लाल, चले ही बनत जो पै नाही अब रहनै ।
वखा तुम हीसि सीख सुनहु सुजान प्रिय तुम ही चलत मोही जैसी कछु कहनै ॥

२. रामरूप भूपति भगति, ब्याह उछाह अनद—

सवैया—इनके मुख पै जनु भानु उदै उन के मुख प द्युति चद बिराजै ।
इनके पटपीत लसै चपला उन के पटनील घटा घन गाजै ॥ →

अर्थ—गाधिजी के कुल मे चन्द्र के समान विश्वामित्रजी रामचन्द्रजी की सुन्दरता, दशरथजी की भक्ति और ब्याह के उत्सव तथा आनन्द को मन ही मन मे सराहते हुए प्रसन्नता-पूर्वक चले जाते थे ।

वामदेव रघुकुलगुरु ज्ञानी । बहुरि गाधिसुत कथा बखानी ।।
सुनि मुनि सुयश[1] मनहि मन राऊ । बरनत आपन पुण्य प्रभाऊ ।।

अर्थ—मार्ग से लौटकर वामदेव और वशिष्ठजी ने विश्वामित्रजी की कथा वर्णन की । मुनिजी की उत्तम कीर्ति सुनकर राजाजी मन ही मन अपने पुण्य की बड़ाई करने लगे ।

बहुरे लोग रजायसु भयऊ । सुतन्ह समेत नृपति गृह गयऊ ।।
जहँ तहँ राम ब्याह सब गावा । सुयश पुनीत लोक तिहुँ छावा ।।

अर्थ—राजा की आज्ञा हुई तब सब लोग अपने-अपने घर गये और दशरथजी भी पुत्रो समेत महलो मे पधारे । सब लोग ठौर-ठौर रामजी के विवाह की चर्चा करने लगे और उनका पवित्र उत्तम यश तीनो लोको मे फैल गया ।

आये ब्याहि राम घर जब ते । बसे अनन्द अवध सब तब ते[2] ।।
प्रभु विवाह जस भयउ उछाहू । सकहि न बरनि गिरा अहिनाहू[3] ।।

अर्थ—जिस समय रामचन्द्रजी विवाह करके आ गये, उसी समय से सब आनन्द भी अयोध्यापुरी मे आ बसे । रामचन्द्रजी के विवाह मे जिस प्रकार का आनन्द हुआ उसका वर्णन न तो सरस्वतीजी और न शेषनागजी कर सकते है ।

"कवि राघव" दोउ हँसे बिहँसे रस रग भरे छवि सो छवि छाजै ।
नित ऐसेहि नेह सनेह सने सिय राम सदा हमरे हिय राजै ।।

१. सुनि मुनि सुयश—गुरु वर हो तो ऐसा हो—

(कवित्त)

काहू सो न रोष तोष काहू सो न राग दोष काहू सो न वैर भाव काहू की न घात है ।
काहू सो न बकवाद काहू सो नही विषाद काहू सो न सग नातो कोऊ पक्षपात है ।।
काहू सो न दुष्ट बैन काहू सो न लैन दैन ब्रह्म को विचार कछु और न सुहात है ।
'सुन्दर' कहत सोई ईशन को महाईश सोई गुरुदेव जा के दूसरी न बात है ।।

२. आये ब्याहि राम घर जब ते । बसे अनन्द अवध सब तब ते--रामचन्द्रिका से—

त्रिभगी छन्द—बाजे बहु बाजै तारनि साजै सुन सुर लाजै दुख भाजै ।
नाचैं नव नारी सुमन श्रृंगारी गति मनुहारी सुख साजै ।।
वीणानि बजावैं गीतनि गावैं मुनिन्ह रिझावैं मन भावै ।
भूषण पट दीजै सब रस भीजै देखत जीजै छवि छावै ।।

सोरठा—रघुपति पूरण चन्द, देखि देखि सब सुख मढै ।
दिन दूने आनन्द, ता दिन ते तेहि पुर बढै ।।

३. प्रभु विवाह जस भयउ उछाहू । सकहि न बरनि गिरा अहिनाहू—कुडलिया रामायण से—

कुण्डलिया—राम विवाह बखानई मोद समुद्र उछाह ।
नारद शारद शेष शुक गणपति को अवगाह ।।
गणपति को अवगाह व्यास विधि कहि कहि हारे ।
मति अनुरूप बखानि भजन को भाव विचारे ।।
अति अनुरूप बखानि कै गिरा सफल निज मानई ।
तुलसिदास के कौन मति राम विवाह बखानई ।।

कवि कुल जीवन पावन जानी । राम सीय यश मंगल खानी ।।
तेहि ते मैं कछु कहा बखानी । करन पुनीत हेत निज बानी ।।

अर्थ—रामचन्द्रजी और सीताजी के यश को सम्पूर्ण मगल का भण्डार तथा कवियो के वश का जीवन आधार और पवित्र जाना । इस हेतु मैने अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए कुछ वृत्तात वर्णन किया ।

छन्द—निजगिरापावनि करन कारन रामयश तुलसी कह्यो[1] ।
रघुवीरचरित अपार वारिधि पार कवि कौन लह्यो ।।
उपवीत ब्याह उछाह मगल सुनि जे सादर गावही[2] ।
वैदेहि रामप्रसाद ते जन सर्वदा सुख पावही ।।

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मैंने अपनी वाणी को पवित्र करने के हेतु रामचन्द्रजी का यश वर्णन किया । रामचन्द्रजी का चरित्र तो सीमा रहित समुद्र के समान है, उसका छोर किस कवि ने पाया है ? (अर्थात् किसी ने नही ।) जो लोग श्री राम आदि चारो भाइयो के यज्ञोपवीत, ब्याह के मगलीक उत्सव आदि आदरपूर्वक सुनते है अथवा वर्णन करते है, वे लोग सीता-रामजी की कृपा से सदैव आनन्द भोगते है ।

सोरठा—सिय रघुवीर विवाह, जे सप्रेम गावहि सुनहि ।
तिन कहँ सदा उछाह, मगलायतन रामयश ।।३६१।।

अर्थ—जो लोग सीता और रामचन्द्रजी के विवाह को प्रेम सहित वर्णन करते हैं अथवा सुनते है उनको सदैव आनन्द ही आनन्द है क्योकि रामचन्द्रजी का यश मगल का भण्डार है । सो योंकि—

बाल चरित्र पवित्र किये प्रभु मात पिता सब ही हितकारी ।
धारि जनेउ महामुनियज्ञ सुधारि के तारि दई ऋषिनारी ।।
मर्दि महीपन के बल को मद ब्याह लई मिथिलेश कुमारी ।
'नायक' गाय कहैं रघुनायक दायक है मुद मगल भारी ।।
दोहा—शशि ऋषि निधि महि चतुर्दशि, माघ असित गुरुवार ।
बाल तिलक 'नायक' कियो, रामचरण रज धार ।।

□

इति श्री मद्रामचरित मानसे सकल कलिकलुष विध्वंसने
विमल सन्तोष सम्पादनो नाम प्रथमः सोपानः समाप्तः
श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु

---

१. निजगिरापावनि करन कारन रामयश तुलसी कह्यो—सीता स्वयम्वर नाटक से—
दोहा—बानी गुन खानी करन, चहत जु कविजन कोय ।
सीता राम विवाह को, बरनै मन मुद सोय ।।

२ उपवीत ब्याह उछाह मगल सुनि जे,सादर गावही—टीकाकार-कृत—
दोहा—जन्म महोत्सव शिशु चरित, अरु उपवीत विवाह ।
कहहिं सुनहिं ते नर सदा, 'नायक' लहहिं उछाह ।।

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

श्री रामायण बालकाण्ड की श्री विनायकी टीका की

पुरौनी

काव्य

ध्वनिकार ने काव्य को पुरुष मानकर उसके अगो की इस प्रकार योजना की है; यथा—

सवैया—शब्द औ अर्थ शरीर गुनौ रस आदि को काव्य की जीव बखानौ।
शूरता आदि लौ है गुण औ पुनि अधता आदिलौं दोष विजानौ॥
अगन के कोन ढग विशेष सो थापित होन लौं रीतिहि मानौ।
ककन कुडल आदि लौ आहि अलकृत यौ उर अन्तर आनौ॥

अर्थात् शब्द और उसका अर्थ दोनो मिलाकर काव्य के शरीर समझे जाते हैं, रस या व्यग्य उसके जीवात्मा माने जाते है। ओज, माधुर्य आदि उसके गुण हैं; कर्ण कटु और निहितार्थ आदि दोष है। छन्द का प्रकार रचना की विशेषता है तथा उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार हैं, जैसे कंकण और कुडल आदि शरीर के आभूषण होते हैं।

इनमे से कई एको का विस्तार सहित वर्णन यथायोग्य स्थान पर दिया गया है।

(पृ० १७—वर्णानां) मगण आदि का पिंगल विचार

सूचना—गुणो को पहचानने के लिए ह्रस्व और दीर्घ अक्षरो का ज्ञान होना आवश्यक है सो नीचे के कोष्ठक से समझ मे आवेगा।

भेद	अक्षर या मात्रा	उदाहरण	सकेत	अवशिष्ट
ह्रस्व या एक मात्रिक	(१) अ इ उ ऋ (२) क से ह तक के तेंतीस अक्षर ऊपर के किसी भी अक्षर की मात्रा से मिले हुए। (३) दो या तीन व्यजन आपस मे मिले हुए ऊपर की ह्रस्व मात्राओ सहित। (४) पहिले और दूसरे मे कहे हुए सम्पूर्ण अक्षर अर्द्धबिन्दु सहित।	अजा, इन्हे उठौ, ऋणी कब, फिर तुम मृदु स्वर, त्रिजटा स्मृति हँसी, चलहिं पायसँ	।।। तीन लघु	(ऋ ॠ लृ ल अक्षर बहुधा हिन्दी भाषा मे नही आते)। (स्वर रहित किम्वा हलन्त व्यंजन की मात्रा नही होती। जैसे अर्थात् मे त्)

भेद	अक्षर या मात्रा	उदाहरण	सकेत	अवशिष्ट
	(५) दीर्घ या ह्रस्व	मोहि तोहि भेट नृपति दिन तीजे ।		कविता के कारण 'मो' और 'तो' ह्रस्व माने और पढे जावेंगे ।
दीर्घ यानि मात्रिक	(१) आ ई ऊ ॠ ए ऐ ओ औ अं अः । (२) क से ह तक तेंतीसो अक्षर ऊपर की दीर्घ मात्राओ से मिले हुए (३) दो या तीन व्यजन आपस मे मिले हुए ऊपर की दीर्घ मात्राओ सहित । (४) सयुक्त अक्षर के आदि का दीर्घ माना जाता है । (५) संस्कृत कविता मे चरण के अन्त का ह्रस्व वर्ण कभी-कभी गुरु माना जाता है ।	आप ईश, ऊख अग । काम, घी, दूध, पैसा, दुःख । प्यार, स्त्री, क्रूर । वर्णानाम्, शक्कर और अनुस्वार । उपेन्द्र वज्रादपिदारुणोसि ।	ऽऽऽ तीनो दीर्घ	(१) इनमे आ, ई, ऊ, अ दीर्घ है । (२) का, घी, दू, पैसा, दुः दीर्घ है । (३) प्या, स्त्री, क्रू दीर्घ है । (४) इनमे व, श, नु ह्रस्व होने पर भी दीर्घ समझे गये । (५) इसमे ह्रस्व 'सि' दीर्घ मानी गई है । कभी-कभी सयोग के आदि का अक्षर भी ह्रस्व ही रहता है; जैसे 'कन्हैया' और तुम्हे मे 'क' और 'तु' ।

गणो का विचार नीचे लिखे अनुसार है—

काव्य मे तीन-तीन अक्षरो के समूह को गण कहते है । गुरु लघु के विचार से ये आठ प्रकार के है, यथा मन भय रस तज अर्थात् मगण, नगण, भगण, यगण, रगण, सगण, तगण और जगण ।

गणो मे वर्णों के गुरु लघु का क्रम स्मरण रखने के हेतु नीचे का श्लोक अथवा दोहा उत्तम है— (देखो श्रुति बोध)

श्लोक—आदिमध्यावसानेषु, भजसा यान्ति गौरवम् ।
यरता लाघव यान्ति, मनौतु गुरु लाघवम् ।।

इसी का उल्था टीकाकार कृत—

दोहा—आदि मध्य अरु अन्त मे भजसा के गुरु मान ।
'नायक' यरता लघु कह्यो, मन क्रम गुरु लघु जान ।।

अर्थ—भजसा अर्थात् भगण, जगण और सगण के आदि, मध्य और अन्त मे क्रम से गुरु होता है । यरता अर्थात् यगण, रगण और तगण के आदि, मध्य और अन्त मे क्रम से लघु होता है । इसी प्रकार मन अर्थात् मगण और नगण के आदि मध्य और अन्त मे क्रम से गुरु और लघु वर्ण रहते है अर्थात् मगण मे तीनो गुरु और नगण मे तीनो लघु वर्ण होते है ।

गणो के नाम उदाहरण सकेत, देवता, शुभ या अशुभ और उनके फल आगे के कोष्ठक मे लिखे जाते है ।

गण	उदाहरण	सकेत	देवता	शुभ या अशुभ	फल
मगण	वर्णानाम्	S S S	भूमि	शुभ	श्री
नगण	भरत	I I I	शेष	,,	सुख
भगण	श्री गुरु	S I I	चन्द्रमा	,,	यश
यगण	भवानी	I S S	वरुण	,,	धन
रगण	मालिका	S I S	अग्नि	अशुभ	जारक
सगण	धरणी	I I S	पवन	,,	भ्रम या दुःख
तगण	वाचाल	S S I	आकाश	,,	शून्य
जगण	महीश	I S I	भानु	,,	रोगकारी

शुभ और अशुभ गणो का विचार मात्रिक शब्दो मे किया जाता है, न कि वर्णवृत्तो मे। क्योकि वर्णवृत्त कभी-कभी एक ही गण से बनते है और कई अशुभ गण से बनते किम्वा आरम्भ होते है।

(पृष्ठ १७, पूर्वार्द्ध)—**अर्थ सघानां**—अर्थ तीन प्रकार के होते है अर्थात् (१) वाच्य, (२) लक्ष्य और (३) व्यग्य।

इन अर्थों को समझने के लिए 'शब्द' समझना अवश्य है क्योकि शब्द ही का अर्थ होता है।

शब्द—वह है जो सुनाई देता है और शब्द के सुनने से जो चित्त में समझ पडता है वही अर्थ है। शब्द तीन प्रकार के होते है--(१) वाचक, (२) लक्षक और (३) व्यजक।

(१) **वाचक**—सकेत किये हुए अर्थ का तो साक्षात् कहे वह शब्द वाचक है।

इस शब्द का यही अर्थ है ऐसी जो ईश्वर की इच्छा है उसे सकेत कहते हैं। और सकेत कराने वाली शक्ति को अभिधा कहते है।

वाचक शब्द से अभिधा शक्ति द्वारा जो सकेत प्रकट होता है, वही वाच्यार्थ है। इसी को वाच्य, मुख्यार्थ, अभिधेयार्थ, नामार्थ आदि कहते हैं। जैसे—

'जल सकोच विकल भइ मीना'

इसमे जल और मीना ये शब्द वाचक हैं और इनके अर्थ को बोध कराने वाली शक्ति 'अभिधा' तथा जल का अर्थ पानी और मीन का अर्थ मछली ये वाच्यार्थ हुए। वाचक चार प्रकार से पहिचाना जाना जाता है।

(क) जाति—'रघुवंशिन' महँ जहँ कोउ होई।

(ख) **यदृच्छा**—सुनि भुशुडि' के वचन भवानी।

(ग) **गुण**—'श्याम गौर' किमि कहौ बखानी।

(घ) **क्रिया**—शोभा सिन्धु 'खरारी'

(२) **लक्षक**—जिस शब्द से वाच्यार्थ को छोड सम्बन्धित दूसरे अर्थ का बोध कराया जावे वह लक्षक शब्द है इसकी शक्ति को लक्षणा कहते हैं।

लक्ष्य—वह अर्थ है जो वाच्यार्थ को छोडकर परन्तु उसी के सम्बन्ध से किसी प्रयोजन-वश अन्यार्थ स्फुरण करे। इसे लक्ष्यार्थ भी कहते हैं। जैसे—

'प्रथम बास तमसा भयउ' अर्थात् रामचन्द्रजी का निवास 'तमसा' नदी मे नही हुआ परन्तु उसके किनारे हुआ, यह लक्ष्यार्थ है।

(इसके अनेक भेद है जो विस्तार भय से नही लिखे)।

व्यंजक—वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से अतिरिक्त अर्थ के बोध कराने वाले शब्द को व्यंजक कहते हैं।

इस अर्थ कराने वाली शक्ति का नाम व्यंजना है।

व्यग्य – वह अर्थ है जो शब्द से व्यजना शक्ति के द्वारा भासता है और जो वाच्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ से भिन्न होता है। जैसे—विप्रवश की अस प्रभुताई। अभय होहि जो तुम्हे डराई।।

इसमे 'विप्रवश' से यह व्यग्य ध्वनित हुआ कि हम आपको नही डराते, परन्तु आपके ब्राह्मणत्व से डरते हैं।

(इसके अनेक भेद है जो विस्तार सहित काव्य निर्णय, जसवन्त जसोभूषण, श्री रावणेश्वर कल्पतरु और काव्य प्रभाकर आदि ग्रन्थो मे मिलेगे)।

सूचना – जब व्यग्य उत्तम हो अर्थात् व्यग्य मे वाच्य से अधिक चमत्कार हो, तब उसे ध्वनि कहते है। ऐसे ध्वनि वाले काव्य का नाम भी ध्वनि है। जैसे—बहुरि गौरि करि ध्यान करेहू। भूप किशोर देखि किन लेहू।।

(पृ० १७,) साहित्य के नव रस

'रस'[1] इस शब्द की धातु रस् है जिसका अर्थ स्वाद लेना है।

जिस प्रकार भोजन के रुचिया पुरुष भोज्य पदार्थों का स्वाद लेते है इसी प्रकार लोग भाव और अभिनय से बँधे हुए स्थायी भावो का मन से मजा लेते है।

स्वाद आनन्द विशेष है। धन पुत्र आदि की प्राप्ति मे भी आनन्द है, परन्तु वह आनन्द स्वादरूप नही। लोक मे रसनेन्द्रिय से मधुरादि रस का अनुभव करके जो आनन्द होना है उसका स्वाद व्यवहार है। उसी प्रकार काव्य किम्वा नाटक मे विभाव आदि सामग्री से उल्लसित रत्यादिको के अनुभव से लोगों के हृदयो को जो आनन्द होता है उसे भी स्वाद कहते है और वही रस कहलाता है। यह आनन्द इतर आनन्दो से उत्कृष्ट है।

नाटक देखते ही किम्वा काव्य सुनते ही रसोत्पत्ति नही होती, किन्तु नाटक तथा काव्य के भाव को समझ लेने से रसोत्पत्ति होती है, इस हेतु रस को समझने के लिए रस की सामग्री अर्थात् भावो का समझना आवश्यक है। जैसा कि भरत भगवान ने कहा है—

न भावहीनोस्ति रसो, न भावो रसवर्जित.।
परस्परकृता सिद्ध, स्तयोरभिनये भवेत्।।

अर्थात् भाव बिना रस नही है और रस बिना भाव नही है, नाटक मे इन दोनो की सिद्धि परस्पर होती है।

भाव

अमरकोष मे लिखा है कि 'विकारो मानसो भाव·' अर्थात् मन का विकार भाव है।

(१) **विभाव**—भाव के कारण को विभाव कहते है। इसके दो भेद है—

(अ) आलम्बन विभाव अर्थात् वे कारण जिनके अवलम्ब से भाव उत्पन्न होवे। यथा नायक अथवा नायिका, विदूषक शत्रु आदि। जैसे—

अस कहि फिर चितये तेहि ओरा। सिय मुख शशि भये नयन चकोरा।।
नाना जिनिस देखि कर कीशा।

---

१ भोजन के रस छ है; यथा—

दोहा—मीठा खट्टा चिरपिरा, खारा कड़ुवा आहि।
सहित कसैला स्वाद के, षटरस भोजन माहि।।

साहित्य मे इनसे प्रयोजन नही, उसके रस ९ है जिनका वर्णन विस्तार सहित ऊपर लिखा है।

(ब) उद्दीपन विभाव अर्थात् वे कारण जो भाव को उत्तेजित करें। जैसे निर्जनबन, बाग, कूदना, मारूबाजा आदि। उदाहरण—

प्राची दिशि शशि उयउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुख पावा ॥
करहिं विदूषक कौतुक नाना। आदि

सूचना—ये विभाव प्रत्येक रस के भिन्न-भिन्न होते हैं।

(२) **अनुभाव**—भाव के कार्य अथवा भाव के बोधन को अनुभाव कहते है। जैसे— सत्सूचक, अग विक्षेप, आदि चिह्न और भुज क्षेपादि शरीर चेष्टा। इसके चार भेद है— (१) कायिक, (२) मानसिक, (३) आहार्य और (४) सात्विक।

सात्विक के आठ भेद हैं—(१) स्तभ, (२) कम्प (वेपथु), (३) स्वरभग, (४) बिवर्न, (५) अश्रु (आँसू) (६) स्वेद (पसीना), (७) रोमाच और (८) प्रलय।

इन सबो की परिभाषाएँ उदाहरण सहित इसी पुरौनी मे 'भाव भेद' शीर्षक लेख मे मिलेंगी।

(३) **संचारी**—जो भाव रस को विशेष रूप से पुष्ट कर जलतरंग की नाईं स्थायी भाव मे लीन हो जाते हैं उन्हे सचारी भाव कहते हैं। इनका दूसरा नाम व्यभिचारी भाव ही है। ये तेंतीस है। यथा--(१) निर्वेद, (२) ग्लानि, (३) शका, (४) असूया, (५) सद, (६) श्रम, (७) आलस्य, (८) दैन्य, (९) चिन्ता, (१०) मोह, (११) स्मृति, (१२) धृति, (१३) ब्रीडा, (१४) आवेग, (१५) चपलता, (१६) जडता, (१७) हर्ष, (१८) गर्व, (१९) विषाद, (२०) निद्रा, (२१) अमर्ष, (२२) औत्सुक्य, (२३) अपस्मार, (२४) सुप्ति (स्वप्न), (२५) विबोध, (२६) उग्रता, (२७) मरण, (२८) ज्ञान, (२९) व्याधि, (३०) अवहित्थ, (३१) उन्माद, (३२) त्रास और (३३) वितर्क।

(४) **स्थायी भाव**—जो भाव वासनात्मक होते हैं, चित्त मे चिरकाल तक स्थिर रहते हैं, जो उत्पन्न होने के पश्चात् सजातीय वा विजातीय भावो के योग से नष्ट नही होते वरन उन्हे अपने मे लीन करते हैं और जो विभावादिको के योग से परिपुष्ट हो रसरूप होते हैं उन्हें स्थायी भाव कहते है। साराश यह कि स्थायी भाव के लिए ये चार धर्म अत्यन्त आवश्यक हैं—

(१) वासनात्मकता और चित्त मे चिरस्थिति।
(२) सजातीय या विजातीय भावो के योग से नष्ट न होना।
(३) अन्य भावो को अपने मे लीन कर लेना।
(४) विभावादिको के योग से परिपुष्ट हो रस रूप होना।

साहित्यशास्त्र के अनुसार ये चारों धर्म सम्पूर्ण भावों में से केवल इन नव भावों मे पाये जाते है। यथा—(१) रति, (२) हास, (३) शोक, (४) क्रोध, (५) उत्साह, (६) भय, (७) जुगुप्सा, (८) विस्मय और (९) निर्वेद।

ये ही स्थायी भाव परिपुष्ट होकर रस सज्ञा को प्राप्त होते हैं, इस हेतु रस की परिभाषा यों हुई—

विभाव, अनुभाव और सचारी भावो की सहायता से जब स्थायी भाव उत्कट अवस्था को प्राप्त हो मनुष्य के मन मे अनिर्वचनीय आनन्द को उपजाता है तब उसे रस कहते है। वे नव हैं सो यो कि—(१) रति से श्रृंगार, (२) हास से हास्य, (३) शोक से करुण (४) क्रोध से रौद्र (५) उत्साह से वीर, (६) भय से भयानक, (७) जुगुप्सा से बीभत्स, (८) विस्मय से अद्‌भुत और (९) निर्वेद से शान्ति रस होते हैं।

नव रसों का कोष्ठक

नम्बर	रस	स्थायी भाव	आलम्बन विभाव	उद्दीपन विभाव	अनुभाव	सचारी भाव	उदाहरण
१.	श्रृगार	रति	नायक नायिका	सखा सखी बन बाग विहार	मुसक्याना हावभाव आदि	उन्मादिक	सीतहि पहिराये प्रभु सादर
२.	हास्य	हास	विचित्र आकृति वेश आदि	कूदना, ताली देना आदि	अनोखी रीति से हँसना	हर्ष चपलता आदि	वर अनुहार बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई
३.	करुण	शोक	प्रिय का वियोग	प्यारे के गुण अवगुण, उसकी वस्तुओ का दर्शन आदि	रोना विलाप करना, मस्तक आदि ताडना अश्रुपात	मोह चिंता जडता अपस्मारक आदि	पति शिर देखत मदोदरी मूर्च्छित विकल धरणिखस परी
४.	रौद्र	क्रोध	शत्रु	शत्रु का बर्त्तावा उसके वचन आदि	भौहे चढाना ओठ चबाना दाँत पीसना आदि	गर्व चपलता मोह आदि	माखेलषनकुटिल भइ भौहे। रदपुट फरकत नयन रिसौहै ॥
५.	वीर	उत्साह	रिपु का विभव	मारू बाजा सैन्य का कोलाहल	सेना का अनुधावन हथियारो का उठाना	गर्व असूया	सुनि सेवक दुख दीनदयाला फरकि उठी दोउ भुजा विशाला।
६.	भयानक	भय	भयानक दर्शन	घोर कर्म	कँपना गात्र सकोच आदि	वैवर्ण्य गद्गद् आदि	हाहाकार करत सुर भागे
७	बीभत्स	जुगुप्सा ग्लानि	रक्त, मास आदि	रक्त, मास, कृमि पीव आदि दर्शन	नाक मूँदना मुख परिवर्तन और थूकना आदि	मोह मूर्च्छा असूया	धरिगाल फारहिं उर विदारहि गल अँतावरि मेलही

८.	अद्भुत	विस्मय आश्चर्य	आश्चर्य के पदार्थ, वार्त्ता	अलौकिक गुणो की महिमा	रोमाच, कम्प गद्गद वाणी का रुकना	वितर्क मोह निर्वेद	जहँचितवहि तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना ।।
९	शात	निर्वेद (शम)	सत्संगति गुरु सेवा	पवित्र आश्रम तीर्थस्थान आदि	रोमाच आदि	मति, धृति हर्ष, भूत दया	द्वादश अक्षर मंत्र बर जपहिं सहित अनुराग। वासु देवपद पंकरुह दम्पति मन अति लाग ।।

नवरसो के कोष्ठक मे रामायण से उदाहरण दिये गये हैं, परन्तु गोस्वामीजी ने जो रामायण की सम्पूर्ण कथा मे नवो रस भर दिये है उनका दिग्दर्शन मात्र यो है—

टीकाकार रचित—

दोहा—सीता राम विहार को, रस 'श्रृगारहि' जान।
सूपनखा श्रुति नासिका, कृंतन 'हास्य' बखान ।।
द्वितिय काण्ड मे 'करुण रस' 'रौद्र' दशानन कर्म।
लषन वीरता 'वीर रस' युद्ध 'भयानक' पर्म ।।
रक्तनदी 'बीभत्स' रस, 'अदभुत' राघव युद्ध।
नवम 'शान्त' निर्वेद मय, कथा राम की शुद्ध ।।

(पृ० १७) बालकाण्ड के छन्दों का पिंगल विचार

१. अनुष्टुप् या अनुष्टुभ् (वर्णिक)

दोहा—पंचम लघु षष्टम गुरु, वर्ण आठ पद चार।
द्वितिय चौथ सप्तम लघू, श्लोक अनुष्टुप सार ।।

अर्थात जिस छन्द मे आठ आठ अक्षर के चार चरण हो और प्रत्येक चरण का पाँचवाँ अक्षर लघु और छठवाँ अक्षर दीर्घ हो तथा दूसरे और चौथे चरण का सातवाँ अक्षर लघु होवे उसे अनुष्टुप् छन्द कहते हैं। यथा—

वर्णानामर्थसघानां, रसानां छन्दसामपि।
मंगलाना च कर्त्तारौ, वन्दे वाणीविनायकौ ।। १ ।।

इसमे ऊपर कहे हुए सब लक्षण पाये जाते हैं।

इसी प्रकार आरंभीय और चार श्लोक भी अनुष्टुप् हैं।

२. शार्दूल विक्रीडित (वर्णिक)

इस चार चरण वाले समवृत्त के चरण मे मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण, और एक गुरु रहता है तथा बारह और सात अक्षरों पर विश्राम होता है।

गण स्मरणार्थ नीचे का पद्यखण्ड उपकारी हैं (टीकाकार कृत)

मो से जे सुत तुर्ग भानु सुर हैं शार्दूल विक्रीडिते

भावार्थ—(सूर्य देव कहते हैं कि) अश्व रूपधारी मुझसे उत्पन्न जो पुत्र अर्थात्

अश्विनीकुमार है वे सिंह के समान पराक्रम से रहते है।

पिंगलार्थ— म स ज स त त से गण, ग से गुरु वर्ण, भानु से बारह तथा सुर (स्वर) से सात अर्थात् बारह और सात वर्णो पर विश्राम व यति सूचित की है।

अन्तिम शब्द से नाम और सम्पूर्ण पक्ति शार्दूल विक्रीडित छन्द ही मे है—

उदाहरण (देखो पृ० २२)

म	स	ज	स	त	त	ग
SSS	IIS	ISI	IIS	SSI	SSI	S
यन्माया	वशव	र्त्ति विश्व	मखिल	ब्रह्मादि	देवासु	रा

३. वसत तिलका (वर्णिक)

देखो 'वसत तिलकं' तभि जी जगैगो

भावार्थ— वसन्त ऋतु मे तिलक नाम के फूल को जब तुम देखोगे, तब तुम्हारा चित्त प्रसन्न होगा।

पिंगलार्थ—वसन्त तिलका छन्द मे ऊपर की पक्ति रची है इसमे तगण, भगण, जगण, जगण और दो गुरु होते है। यह चार लकीरो वाला चौदह अक्षरो का समवेत है।

इसे वसन्त तिलका, उद्धर्षिणी और सिंहोन्नता भी कहते है। (देखो उदाहरण पृ० २३)

त	भ	ज	ज	ग ग
SSI	SSII	ISI	ISI	SS
नानापु	राणनि	गमाग	मसम्म	तयद्

४. सोरठा (मात्रिक)

मात्रिक अर्द्धसम छन्द का नाम 'सोरठा' है जिसमे ४८ मात्रा होती हैं सो यो कि इसके पहले और तीसरे चरण मे ग्यारह-ग्यारह और दूसरे तथा चौथे चरण मे तेरह-तेरह मात्रा होती हैं। इसकि सम चरणो मे जगण न होना चाहिए।

यथा (देखो, पृ० २४)—

जेहि सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिबर बदन।
करहु अनुग्रह सोइ, बुद्धिराशि सुभगुन सदन॥ इत्यादि

सूचना—सोरठा के चरणो को उलटकर पढने से दोहा बन जाता है। यथा—

गननायक करिबर बदन, जेहि सुमिरत सिधि होइ।
बुद्धि राशि शुभगुन सदन, करहु अनुग्रह सोइ॥

५ चौपाई (मात्रिक)

इस मात्रिक सम छन्द के चारो चरणो मे सोलह-सोलह मात्रा होती है। विशेषता यह है कि चरण के अन्त मे गुरु लघु अक्षर न हो। तुलसीदासजी की इस रामायण को 'चौपाई रामायण' कहते हैं। क्योकि इस मे चौपाई ही विशेष है। यथा (पृ० २७-२८)—

बदउँ गुरु पद पदुम परागा । सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ।।
अमिय मूरिमय चूरन चारू । समन सकल भवरुज परिवारू ।। इत्यादि

आधी चौपाई को अर्द्धाली और चौथाई चौपाई को एक चरण कहते है । चौपाई के अनेक भेद है जिनके नाम आदि 'छन्द.प्रभाकर' अथवा और छन्द ग्रन्थो मे मिलेंगे ।

६. दोहा (मात्रिक)

'दोग्धि चित्तमिति दोहा' जो चित्त को दोहता है उसे दोहा (सस्कृत मे द्विपदा) कहते है। इस अर्द्ध सम छन्द मे ४८ मात्रा होती हैं, इसके पहले और तीसरे चरण मे तेरह-तेरह और दूसरे तथा चौथे चरण मे ग्यारह-ग्यारह मात्रा होती हैं परन्तु पहले और तीसरे चरणो मे जगण का निषेध है, यथा—(पृ० ३०)

दोहा—यथा सुअजन आँजि दृग, साधक सिद्ध सुजान ।
कौतुक देखहिं सैल बन, भूतल भूरि निधान ।। इत्यादि

दोहे को पलटने से सोरठा हो जाता है । यथा—

सोरठा—साधक सिद्ध सुजान, यथा सुअजन आँजि दृग।
भूतल भूरि निधान, कौतुक देखहिं शैल बन ।।

७. हरिगीतिका (मात्रिक)

इस मात्रिक सम छन्द के लक्षण छन्द प्रभाकर मे यो कहे हैं—

सोरह रवी लग अन्त जन रचि, लीजिये हरिगीतिका ।

अर्थात् १६ और १२ के विश्राम से २८ मात्रा होती है अन्त मे लघु गुरु होते है । यथा—(पृ० ५७)

मगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की। इत्यादि

८. चवपैया (मात्रिक)

दिसि वसु रवि भक्तन धरि प्रति पद्दन, सँग अन्तहि चवपैया । (छन्द. प्रभाकर)

अर्थात् दस, आठ और बारह मात्राओ के विश्राम से प्रत्येक चरण को रचकर अन्त मे सगण और एक गुरु रखने से चवपैया छन्द होता है । यथा—(देखो, पृ० २९७)

जप योग विरागा तप मख भागा श्रवण सुनै दश सीसा

(पृ० ३६ पूर्वार्द्ध) जलचर में राघव मत्स्य की कथा

इसकी कथा पुरौनी ही मे पूर्वार्द्ध के अन्त में रावण सम्बन्धी क्षेपक के अन्तर्गत है, इस हेतु यहाँ दोहराई नही गई परंतु गज की कथा नीचे लिखी है ।

।। गजेन्द्र ।।

क्षीरसागर के मध्य में त्रिकूट नाम का एक पर्वत है उसी पर्वत की कन्दरा मे वरुण भगवान का 'ऋतुमत' नामक बगीचा है। उसमें एक बडा भारी सरोवर है। इसी सरोवर पर किसी समय उस पर्वत पर रहने वाला एक गज यूथपति अपनी हथिनियो के झुड सहित आया । आते ही गजराज सरोवर मे धँसा और जलपान तथा स्नान कर अपनी सूँड से हथिनियो को भी नहलाने लगा । इतने मे एक बलवान् ग्राह ने उसका पैर पकड लिया । गज ने यथाशक्ति उनसे छूटने का उपाय किया, और उसके साथियो ने भी सहायता देकर उसे पानी से निकालना चाहा, परन्तु इन के सब उपाय निष्फल हुए । निदान गज ने (जो पूर्व जन्म का इन्द्रद्युम्न राजा था और शापवश गज हो गया था) यही निश्चय किया कि संकट के समय सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के सिवाय और कौन सहायता करेगा । इस हेतु उसने प्रार्थना आरंभ की । उसकी आर्त्त पुकार को सुनते ही भगवान् गरुड को छोडकर दौडे आये और सुदर्शन चक्र से ग्राह का सिर काट

कर गज को सकट से उबारकर मोक्ष दिया । ग्राह भी परमेश्वर के हाथ से मर कर 'हू हू' नाम के गधर्व का शरीर पुन प्राप्त कर अपने स्थान को चला गया । (देखो श्रीमद्भागवत, ८वाँ स्कन्ध)

(पृ० ३९) हरिहर

उपनिषद् मे लिखा है कि शिवजी ईश्वर ही है । विष्णु और शिव मे कुछ भेद नही, नाममात्र का भेद है सो यो कि सात्विक प्रकृति का अगीकार कर निमित्त कारण तो विष्णुजी है और तामस प्रकृति का स्वीकार विवर्तोदान कारण शिवजी है । जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणो द्वारा मृगजल की उत्पत्ति के हेतु विवर्त्तोपादान कारण और मध्याह्न काल मे इसी रूप से निमित्त कारण है । तो भी दोनो कारणो से केवल सूर्य ही है । इसी प्रकार ससार के सम्बन्ध से दोनो कारण केवल ईश्वर ही है । जिस प्रकार सूर्य महदाकाश के आश्रय से है उसी प्रकार ईश्वर परब्रह्म के आश्रित है । इस विचार से विष्णु और शिव इन दोनो का ईश्वरत्व नित्यमुक्त रूप से है । नित्यमुक्त वे कहलाते है जो सदा सर्वकाल मुक्त ही रहते है । ब्रह्मदेव की नाईं जीवत्व को प्राप्त होकर मुक्त होने वाले तो जीवन-मुक्त कहलाते है, न कि नित्यमुक्त जो केवल शिव और विष्णु ही है । ये अपना रूप आप ही निर्माण कर प्रकट होते है, जैसे जल-कणो से घनीभूत होकर ओले बन जाते है । ससार की उत्पत्ति हेतु जो दो मुख्य कारण अर्थात् निमित्त और विवर्तोपादान कारण है । वे दोनो इन्होने ब्रह्मदेव के अधीन किए है । इस हेतु यथार्थ मे इन्हे स्त्री-पुत्र आदि गौण उपाधियाँ हैं ही नही । जो प्राणी इन दोनो मे कुछ भेद न मानकर मत्सर हीन हो श्रेष्ठ वैराग्ययुक्त इनकी उपासना करते है, वे सालोक्य मुक्ति पाकर वहा से पतित न होकर कैवल्य मुक्तिपद को प्राप्त होते है । उनमे भेद बुद्धि से उनका अनादर करने वाले प्राणी उसी समय पतित होते है । जैसे जय-विजय हुए थे । इन्होने जिस प्रकार जगत के उत्पन्न करनेकी शक्ति ब्रह्मदेव को दी है उसी प्रकार उन्हे पालन और सहार की शक्ति भी देख रखी है । परन्तु इतना होने पर भी जब कभी कार्य कारण से ब्रह्मदेव इन कार्यों को करने मे असमर्थ हो जाते है उसी समय ये प्रकट होकर उनकी सहायता करते है । साराश यह है कि जो जीव विषयोन्मुख होते है उन्हे स्वरूपोन्मुख करना इतनी ही इन्हे उपाधि है और नही । जो भृगु मुनि के लात मारने आदि की कथाए है वे इनके विभूति रूप अवतारो की हैं ।

पृ० ५०—सम प्रकास तम पाख दुहूँ—इस के विषय मे पृष्ठ ५०, पूर्वार्द्ध की टिप्पणी मे जो कुछ समझाया है उसके व्यतिरिक्त एक तो यह बात बताई जाती है कि चन्द्रमा सूर्य से प्रकाशित होता है । जैसा कि महाकवि कालिदासजी ने (जिनको लगभग दो हजार वर्ष हो चुके है) अपने महाकाव्य रघुवश के तीसरे सर्ग मे लिखा है कि—

श्लोक—पितुः प्रयत्नात्स समग्र सम्पदः शुभैशरीरावयवैर्दिने दिने ।
पुपोष वृद्धि हरि दश्व दीधिते, रनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः ॥ २२॥

भाव यहकि युवराज दिलीप दिनोदिन अपने अग-प्रत्यगो मे इस प्रकार वृद्धि और पुष्टि पाते गये, जिस प्रकार नवीन चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से दिनोदिन वृद्धि व प्रकाश पाता जाता है ।

दूसरे मोटे लेखे से यह दर्शाने का प्रयत्न किया जाता है कि अधेरे तथा उजेले पाख मे चन्द्रमा प्रति तिथि को प्राय· दो घडी घटता-बढता है, न कि ठीक-ठीक दो घडी, परन्तु समझने के लिए दो ही घडी मानकर हिसाब यो जमता है । यथा—

	शुक्ल पक्ष		कृष्ण पक्ष	
तिथि	प्रकाश घटिका मे	तम घटिका मे	प्रकाश घटिका मे	तम घटिका मे
१	२	२८	२८	२
२	४	२६	२६	४
३	६	२४	२४	६
४	८	२२	२२	८
५	१०	२०	२०	१०
६	१२	१८	१८	१२
७	१४	१६	१६	१४
८	१६	१४	१४	१६
९	१८	१२	१२	१८
१०	२०	१०	१०	२०
११	२२	८	८	२२
१२	२४	६	६	२४
१३	२६	४	४	२६
१४	२८	२	२	२८
योग	२१०	२१०	२१०	२१०

सूचना—इसमे दोनो पाखो मे उजेला और अंधेरा बराबर-बराबर है। परन्तु यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि यद्यपि उजेले पाख की प्रतिपदा को दो घडी उजेला और अट्ठाईस घडी अँधेरा तथा अँधेरे पाख की प्रतिपदा को अट्ठाईस घडी प्रकाश और दो घडी अँधेरा बतलाया गया है और वह यथार्थ मे होता ही है परन्तु इतने सूक्ष्म रूप से कि दिखाई नही देता।

अब यह प्रश्न हो सका है कि चौदह तिथियो का मिलान तो किया गया, परन्तु मुख्य तिथि पूर्णिमा और अमावस्या जिनमे पूरा-पूरा विरोध-सा दीख पडता है उसका क्या समाधान है ? ज्योतिष के नियमो तथा तिथि के आरभ समय का विचार करने से समझ मे आ सकता है कि तिथि का आरभ अर्द्धरात्रि के पश्चात् हो जाता है इस नियम के अनुसार पूर्णिमा की अर्द्धरात्रि के उपरान्त का आधा प्रकाश कृष्ण पक्ष मे जा पडा और इसी प्रकार अमावस्या की अर्द्धरात्रि के उपरान्त की अँधेरी शुल्क पक्ष मे आ पडी। इस प्रकार पूर्णिमा और अमावस्या का उजेला और अँधेरा आपस मे घट-बढ कर समान ही हो जाता है। दिनमान तथा तिथिमान के भेद पर लक्ष्य करने से सब ठीक-ठीक ध्यान मे आ सका है (देखो ज्योतिष के ग्रन्थ)।

(पृ० ५४) सकल कला

कला हैं—(१) गाना (२) बाजा बजाना, (३) नाचना, (४) नाटक, (५) सुलेखन, (६) मणियो मे बेध करना, (७) फूल आदि से रग निकालना, (८) पुष्प-शय्या रचना, (९) दाँत व कपडे आदि रँगना, (१०) गृह आदि की रचना, (११) पलंग बिछाना, (१२) जल तरग, (१३) पानी के खेल, (१४) चित्रकारी, (१५) फूलो के अलकार बनाना, (१६) क्रीट मुकुट बनाना, (१७) समयानुसार वस्त्र परिधान, (१८) कर्ण भूषण रचना, (१९) इतर, फुलेल बनाना, (२०) गहने पहनना, (२१) इन्द्रजाल की विद्या, (२२) बहुरूप धारण, (२३) पट्टेबाजी, (२४) भोजन बनाना (२५) अर्क उतारना, (२६) सीना-पिरोना, (२७) चकरी भौंरा का खेल, (२८) वीणा वाद्य, (२९) पहेली कहना, (३०) पक्षी आदि की बोली बोलना, (३१) कठिन शब्द पढना, (३२) पुस्तक पढ़ना, (३३) हाव-भाव, (३४) समस्या-पूर्ति, (३५) खाट-खटोली बुनना, (३६) तर्कशास्त्र, (३७) बढई का काम, (३८) घर सजाना, (३९) रत्न पारख, (४०) स्वर्णकारी, (४१) माली का कर्म, (४२) मेढ़ा,

तीतर आदि की लडाई, (४३) तोता-मैना को पढाना, (४४) अपने बाल बनाना. (४५) उच्चाटन, (४६) गुप्त प्रश्न, (४७) म्लेक्ष कर्मों मे निपुणता, (४८) बहुभाषा ज्ञान, (४९) फूलो की रचना, (५०) कठपुतली का खेल, (५१) वाकचातुरी, (५२) हृदय की बात जानना, (५३) छन्दज्ञान (५४) कोषज्ञान, (५५) द्यूत निपुणता, (५६) बालक्रीडा, (५७) शीघ्र कविताई, (५८) वशीकरण, (५९) खुशामद, (६०) पुराण आदि पठन, (६१) सभा चातुरी, (६२) भूत-प्रेत आदि जगाना, (६३) काव्यो के अलकार जानना, (६४) ऐयारी ।

(पृ० ५५) आखर अर्थ अलकृत नाना, आदि

अक्षरो मे वर्ण अक्षरो मे वर्ण मैत्री । देवनागरी अक्षर ये है—

स्वर—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ ए ऐ ओ औ अ अ.

व्यजन—(१) क ख ग घ ङ—क वर्ग
(२) च छ ज झ ञ—च वर्ग
(३) ट ठ ड ढ ण—ट वर्ग
(४) त थ द ध न—त वर्ग
(५) प फ ब भ म—प वर्ग
(६) य र ल व—अतस्थ किम्वा य वर्ग
(७) श ष स ह—ऊष्म किम्वा अन्तिम वर्ग

सूचना—इन अक्षरो मे से जिस किसी अक्षर का नाम लेना हो, उस के अत मे 'कार' लगाकर उसे सूचित करते है । जैसे अकार से 'अ' ककार से 'क' समझा जाता है । इसी प्रकार और भी जानो ।

इनमे से ऊपर के वर्ण की मैत्री नीचे के वर्ग के अक्षरो से होती है । यथा ककार की चकार से, चकार की टकार से, टकार की तकार से और तकार की पकार से । परन्तु यही क्रम यदि उलट दिया जावे तो मैत्री नही होती । अर्थात् पकार की तकार से, तकार की टकार से, टकार की चकार से, और चकार की ककार से मैत्री नही होती है ।

भाव यह कि ऊँचे वर्ग के नीचे वर्ग वालो से मिल बैठते है, परन्तु नीचे वर्ग वालो मे इतनी योग्यता कहाँ कि ऊपर वालो को अपने मित्र बना लें ।

दग्धाक्षर दोष—प० मनीराम मिश्र कन्नौज वासी कृत छन्द छप्पनी पिंगल से—

सवैया—एक कवर्ग के अन्त को वर्ण चवर्ग के द्वै मनिराम गनीजै ।
चारि टवर्ग के बीच बिना तजि जागी थकार पवर्ग न कीजै ॥
तीनि यवर्ग के छाँडि यकार ते और षकार हकार न कीजै ।
वर्ण न दून विचारि कै चित्त ये मित्त कवित्त के आदि न दीजै ॥

अर्थ—मनीराम कवि कहते है कि कवर्ग का अत्य अक्षर 'ङ' चवर्ग के अन्तिम दो अक्षर अर्थात् 'झ ञ' गिन लेओ । टवर्ग के चार अक्षर बीच के डकार बिना त्यागो अर्थात् ट ठ ढ ण को त्यागो तथा थकार और पवर्ग के पाचो अक्षर छोडो । ऐसे ही यवर्ग के 'य' को शुभ मान बाकी तीन्न अक्षर अर्थात् 'र ल व' त्यागो और वकार तथा हकार भी वर्जनीय है । इस हेतु हे मित्र ! यदि ये अक्षर दीर्घ न हो और विचार के अनुसार देववाची न हो, तो इन्हे कविता के आदि मे मत रक्खो ।

साराश यह है कि ङ झ ञ ट ठ ढ ण थ प फ ब भ म र ल व ष और ह । ये अठारह अक्षर अशुभ समझे जाते है । यदि ये ही अक्षर दीर्घ हो अथवा देववाची शब्दो के आदि मे हो तो दूषित नही ।

स्मरण रहे कि बहुधा कविगण केवल पांच अक्षरो को दग्धाक्षर मानते है और वे ये हैं—झ भ र ष ह। परन्तु इनमे भी दीर्घ होने तथा देववाची होने से दोष नही माना जाता है (इसके सिवाय ङ ञ ण ये कविता के आदि मे आते ही नही है)।

झ —झाझ मृदंग शख सहनाई (इसमे 'झा' दीर्घ है)।

भ—भरत सकल साहिनी बुलाये ('भरत' देववाची शब्द है)

र—राम रमापति कप धनु लेहू ('राम' देववाची शब्द है और 'रा' दीर्घ भी है)

ष—षटमुख जन्म कर्म जग जाना (इसमे षटमुख देववाची शब्द है)

ह—हरिइच्छा भावी बलवाना (इसमे 'हरि' शब्द देववाची है)

(अर्थ में वाच्य, लक्ष्य, और व्यंग्य)

(देखो पुरौनी, पृ० ५४८, पंक्ति १३-१४)

अलंकारो मे उपमा आदि बहुतेरे अलकार अयोध्याकाण्ड रामायण की श्री विनायकी टीका की पुरौनी मे उदाहरण सहित मिलेंगे।

छन्द रचना मे अनुष्टुप्, शार्दूल विक्रीडित, वसत तिलका, सोरठा, चौपाई, दोहा, हरिगीतिका और चवपैया इतने ही प्रकार के छन्द जो बालकाण्ड मे है वे सब इसी पुरौनी मे लिख आये है (देखो पृ० ५५२ से पृ० ५५४ तक) शेष काडों के छन्दो का पिगल विचार उन्ही काडो की पुरौनी मे मिलेगा।

भाव भेद

सूचना—पुरौनी ही मे जो पृष्ठ ५४६ मे रस समझाये हैं उसी के भीतर भावों के भेद लिखे है। उनमे से अनुभाव और सचारी भावों के जो अन्तर्गत भेद लिख आये हैं, उन के उदाहरण कही-कही अन्य ग्रन्थो से और बहुधा रामायण से दिये है—

अनुभाव के चार भेद (१) कायिक, (२) मानसिक, (३) आहार्य और (४) सात्विक,

(१) कायिक—सिय मुख शशि भये नयन चकोरा।

(२) मानसिक—देखि सीय शोभा सुख पावा।

(३) आहार्य (शोभा दर्शाना)—गुच्छा बिच बिच कुसुमकली के।

(४) सात्विक—भये विलोचन चारु अचचल।

तन व्यभिचारी सात्विक भाव आठ है उनके नाम व उदाहरण 'श्री रावणेश्वर कल्पतरु' से सक्षेप मे लिखते—

दोहा—स्तम्भ कम्प स्वर भंग अरु, बिबरन आमू नाम।
स्वेद और रोमाच पुनि, प्रलय बहुरि अभिराम ॥

आठो के उदाहरण एक ही कवित्त मे—

ह्वै रही अडोल घहरात गात बोले नाहिं बदलि गई है छटा वदन सँवारे की।
भरि-भरि आवै नीर लोचन दुहून बीच सराबोर स्वेदन मे सारी रंग तारे की॥
पुलक उठे है रोम कछुक अचेत फेरि कवि 'लछिराम' कौन जुगुति विचारे की।
बानक सो डगर अचानक मिल्यो है लगी नजर तिरीछी कहूँ प्रीतपट वारे की॥

तेंतीस संचारी भाव उदाहरण सहित

१. निर्वेद—अब प्रभु कृपा करहुँ इहि भाँती। सब तजि भजन करौ दिन राती।

२. ग्लानि—मन ही मन मनाय अकुलानी।

३. शका—शिवहि विलोकि सशकेउ मारू।

४. असूया (डाह)—तब सिय देखि भूप अभिलाखे। कूर कपूत मूढ मन माखे।।
५ मद—रण मदमत्त निशाचर दर्पा।
६ श्रम—थके नयन रघुपति छवि देखी।
७ आलस्य—अधिक सस्नेह देह भइ भोरी।
८ दैन्य (दीनता)—पाहिनाथ कहि पाहि गोसाईं।
९ चिन्ता—चितवति चकित चहूँ दिशि सीता कहँ गये नृपकिशोर मनचीता।।
१० मोह—लीन्हि लाय उर जनक जानकी।
११ स्मृति—सुमिरि सीय नारदवचन उपजी प्रीति पुनीत।
१२ धृति (धैर्य)—धरि बडी धीर राम उर आनी।
१३ व्रीडा (लाज)—गुरुजन लाज समाज बडि, देखि सीय सकुचानी।।
१४ आवेग (सभ्रम)—उठे राम मुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषग धनुतीरा।।
१५ चपलता—प्रभुहि चितै पुनि चितै महि राजत लोचन लोल।।
१६ जडता—मुनि मग माँझ अचल हुइ वैसा। पुलक शरीर पनसफल जैसा।।
१७. हर्ष—हरषि राम भेटेउ हनुमाना।
१८ गर्व—रघुवशिन कर सहज सुभाऊ।
१९ विषाद—सभय हृदय विनवति जेहि तेही।
२०. निद्रा—रघुवर जाइ शयन तब कीन्हा।
२१ अमर्ष—जेहि सपनेहु परनारि न हेरी।
२२ औत्सुक्य—जनु तहँ बरिस कमल सितश्रयनी।
२३ अपस्मार—चितवति चकित चहूँ दिशि सीता।
२४ सुप्ति (स्वप्न)—जागी सीय स्वप्न अस देखा।
२५. विबोध—प्रात पुनीत काल प्रभु जागे।
२६. उग्रता—एक बार कालहु किन होई।
२७ मरण—राम राम कहि राम कहि बालि कीन्ह तन त्याग।
२८. ज्ञान—प्रभु तन चितै प्रेम प्रण ठाना।
२९ व्याधि—अति परिताप सीय मन माही।
३०. अवहित्थ—तन संकोच मन परम उछाहू।
३१. उन्माद—अहह तात दारुण हठ ठानी।
३२. त्रास—भयो विलम्ब मातु भय मानी।
३३. तर्क—सो सब कारण जान विधाता।

रसो मे शृगार, हास्य आदि का हाल इसी पुरौनी के पृ० ५४९ मे लिख आये है।

(पृ० ५५) दोषों में कर्ण कटु, ग्रामीण आदि

कविता के दोष काव्य ग्रन्थो मे ७० से अधिक कहे गये हैं सो यो कि—(१) शब्द दोष सोलह,(२) वाक्य दोष इक्कीस, (३) अर्थ दोष तेईस और (४) रस दोष दस। इन के सिवाय किसी-किसी दोष के अन्तर्गत भेद भी है तथा कोई-कोई दोष गुण भी हो जाते हैं। इनमे से बहुतेरे 'काव्य-प्रभाकर', 'काव्य निर्णय' आदि ग्रन्थो मे मिलेगे। यहाँ पर पाँच शब्द दोष और उतने ही अर्थ दोष समझाये गये हैं।

॥ शब्द दोष ॥

१. "कर्ण कटु" किम्वा श्रुति कटु—वह कविता है जो सुनने मे कर्कश हो। जैसे—'त्रियाअलक यच्छुश्रवा डसै परत ही दृष्टि।' ये शब्द कर्ण कटु है।

२ "ग्रामीण" किम्वा ग्राम्य—वे शब्द है जो बहुधा साधारण लोगो के बोलचाल मे आते है। जैसे, बरवा—करिया फरिया पहिरे कुरता लाल।

गुजरी गोड़ सु गुजरी चमकी चाल॥

३ "असमर्थ" (जिसे वाग्छल भी कहते है) जिस अर्थ के लिए शब्द रखा जावे उस पर लक्ष्य होते हुए भी दूसरे अर्थ को चित्त दौडे। जैसे—'मतिराम हरी चुरियाँ खनकैं' इसका अर्थ तो यह है कि मतिराम कवि कहते है कि हरी चूडियो का शब्द हो रहा है। परन्तु दूसरा अर्थ यह प्रतीत होता है कि मति अर्थात् बुद्धि राम ने हरी, इस हेतु चूडियाँ खनखाने वाले किम्वा जनाने बन गये।

४ "अश्लील"—जिस कविता मे लज्जा घृणा और अमगलसूचक शब्द हो उसे अश्लील कहते है। जैसे 'जीमूतनि दिन पितृगृह, तियपगयह गुदरान।' इसमे जीमूत शब्द बादलो का सूचक है। पितृगृह पितृलोक और गुदरान का अर्थ निर्वाह का है। इनमे मूत, पितृ, गृह, गुद और रान ये अश्लील शब्द है—

५. "समास"—जहाँ समास को पलटकर दूसरे शब्द रखे गये हों वहाँ समास दोष माना जाता है। जैसे—

दोहा - है दुपच स्यन्दन शपथ, सौ हजार मन तोहि।
बल आपनो दिखाउ जो, मुनिकर जानै मोहि॥

यहाँ दुपच स्यन्दन का अर्थ दशरथ और सौ हजार मन का अर्थ लक्ष्मण है।

॥ अर्थ दोष ॥

(१) "कष्टार्थ"—वह दोष है जिसमे अर्थ बडी कठिनाई से ध्यान मे आवे। जैसे—तो परवारौ चार मृग चार विहग फलचार। अर्थ—चार मृग=चार पशु, सो यो कि नयनो पर मृग, घूंघट पर घोडा, गति पर गज और कटि पर सिंह न्यौछावर है। चार विहग=चार पक्षी अर्थात् वाणी पर कोकिल, गर्दन पर कबूतर, बालो पर भौरा, नाक पर सुआ, वारि डारो। फल चार अर्थात् दाँतो पर अनार, रतनो पर श्रीफल, ओठो पर कुदरू और नितंब पर तूबी फल, ये चारों न्यौछावर है।

(२) "ब्याहत"—वह दोष है कि जिस अर्थ को सिद्ध करें, उसी को निषेध कर कहे। जैसे—

"चन्द्रमुखी के बदन सम, हिमकर कह्यो न जाय"

इस मे स्त्री को चन्द्रमुखी कहकर फिर कहते है कि उसके मुख के समान चन्द्रमा नही है।

(३) "पुनरुक्ति"—जिसमे (क) एक ही शब्द अनेक बार हो अथवा

(ख) भिन्न-भिन्न शब्द हो; परन्तु अर्थ एक ही हो, उसे पुनरुक्ति दोष कहते है। जैसे—

(अ) मुख पर वेसरिकी लसनि मुख पर केसरि रंग। इसमें मुख शब्द दो बार आया है।

(ब) मृदुवाणी मीठी लगै, बात कविन की उक्ति।
इस मे वाणी, बात और उक्ति इन तीनो का एक ही अर्थ है।

(४) "सन्दिग्ध"—वह दोष है जिसके अर्थ का ठीक-ठीक निर्णय करने मे सन्देह ही रहे। जैसे—

दोहा—बायस राहु भुजग हर, लिखित तिया ततकाल।
लिखि लिखि पोछत फिर लिखति, कारण कौन जमाल ।।

इसमे स्त्री के चित्र लिखने और मिटाने के कारणो का सन्देह ही रहता है।

(५) 'प्रसिद्ध विद्या विरुद्ध'—वह दोष है जिसमे लोक रीति, वेद रीति, कवि रीति, देश रीति, काल रीति आदि के विरुद्ध अर्थ हो। जैसे—

सवैया—कौल खुले कच गूँदति मूँदति चारू नखक्षत अगद के तरु।
दोहद मे रति के श्रम भार बडे बल कै धरती पग भूधरू ।।
पथ अशोकन को पलगावती है यश गावति सिंजित के भरु ।
भावति भादो की चादनि मे जगी भावते सग चली अपने घरु ।।

दोष ये है कि (क) नखो के चिह्न स्तन मे कहे जाते है न कि भुजाओ मे, यह अग देश विरुद्ध कथन हुआ। (ख) गर्भ के समय रति वेद विरुद्ध है, (ग) अशोक को स्त्रियो के पैरो के लगने से फूल उठने के पल्टे पत्तो सहित होना लोक विरुद्ध है और (घ) भादो की चाँदनी का वर्णन कविरीति विरुद्ध है।

सूचना—ऊपर कहे हुए 'दोष नरकाव्य' मे विचारणीय है। इस हेतु दोषो के उदाहरण 'नरकाव्य' ही के दिये है। परन्तु रामचरितमानस मे तो दोष भी गुण हो जाते है। जैसा नीचे के कथन से स्पष्ट हो जाता है—

दोहा—प्रिय लागिहि अति सबहि मम, भनिति रामयश सग।
दारु विचारु कि करै कोउ, वन्दिय मलय प्रसग ।।
श्याम सुरभि पय विशद अति, गुनद करहि सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय रामयश, गावहि सुनहिं सुजान ।।

गुणों में माधुरी, आदि

कविता मे माधुर्य, ओज और प्रसाद ये तीन मुख्य गुण कहे गये है।

(१) माधुर्य शब्द का अर्थ सौम्यता है। सौम्यता वाली वस्तु से मन द्रवीभूत होता है। इसी प्रकार जिस काव्य के सुनने से मन पिघल उठे उसे माधुर्य गुण वाला काव्य कहते है।

इसकी परिभाषा 'श्री रावणेश्वर कल्पतरु' मे इस प्रकार वर्णन की गई है—

दोहा—मृदुल बरन अटवर्ग जहँ, बिन्दु सहित सुख साज।
काव्य सरस माधुर्य गुण, वर्णत पडितराज ।।

भाव यह कि जिस रस-युक्त कविता मे टवर्ग छोडकर शेष वर्ण रहे और उनमे से बहुतेरे अनुस्वार सहित होवे, वह काव्य माधुर्य गुण-युक्त होता है। जैसे—

ककन किकिन नूपुर धुनि सुनि। कहत लषन सन राम हृदय गुनि ।।

यह गुण साधारण कविता तथा शृगार, करुण, और शान्त रस-युक्त कविता मे पाया जाता है।

(२) 'ओज' का अर्थ दीप्ति अर्थात् तेज है। जिस रचना के सुनने से मन तेज-युक्त होवे, वह काव्य ओज गुण वाला है। उसकी रचना 'काव्य निर्णय' मे यो निर्णय की गई है, जैसे—

दोहा—उद्धत अक्षर जहँ पर, सकट वर्ग मिलि जाय।
ताहि ओज गुण कहत है, जे प्रवीन कविराय ।।

भाव यह कि उद्धत अक्षर अर्थात् प्रत्येक वर्ग के दूसरे और चौथे अक्षर तथा सयुक्त

अक्षर, इसी प्रकार कवर्ग और टवर्ग के सम्पूर्ण अक्षर अथवा सयुक्त अक्षर जिस कविता मे हो उसे ओज गुण वाला काव्य कहते है। जैसे—

(क) कटकटहिं जम्बुक भूत प्रेत पिशाच खप्पर सचही॥

(ख) खप्परन्हि खग्ग अलुज्झि जुज्झहि सुभट भटन्ह ढहावही॥

यह गुण वीर, रौद्र और बीभत्स रस मे विशेष रहता है और 'अमृत ध्वनि' कविता इसका उत्तम उदाहरण है।

स्मरण रहे कि यह ओज गुण माधुर्य गुण का विरोधी है। इस हेतु माधुर्य गुण वाले रसो मे इसका निषेध है और इस के रसो मे माधुर्य के रसों का निषेध है।

(३) 'प्रसाद' शब्द का पर्यायी शब्द निर्मलता है।

जिस कविता मे अक्षर मन-रोचक हो और उसका अर्थ शीघ्र जाना जावे उसे प्रसाद गुण-युक्त काव्य कहते है।

प्रसाद गुण के विषय मे काव्य प्रभाकर की प्रभा पदुमन कवि कृत 'काव्य-मजरी' कथित यो प्रकाशित की गई है—

दोहा—सुगम बोध यति शुद्ध गति, नहिं सशय नहिं वाद।
तेहि कवित्त को जानिबो, 'पदुमन' गुण परसाद॥

भाव यह कि जिस कविता का अर्थ शीघ्र समझ में आवे, यति न बिगडे, खटक न हो, जो निस्सन्देह और निर्विवाद हो, उसे प्रसाद गुण-युक्त काव्य कहते है ऐसा पदुमनजी का कथन है। जैसे—

दोहा—ज्ञानी तापस शूर कवि कोविद गुण आगार।
केहि के लोभ विडम्बना, कीन्ह न यह ससार॥

यह गुण माधुर्य और ओज गुण वाली कविताओं मे भी पाया जाता है।

पृ०—वामनजी ने अपने 'काव्यालकार सूत्र' मे दस गुण कहे हैं (और उन्ही के अनुसार कई अर्थों मे भी दस गुण कहे गये है) सो यो कि—

श्लोक—श्लेष प्रसाद समता माधुर्य सुकुमारता।
अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोज कान्ति समाधय॥

अर्थात् (१) श्लेष, (२) प्रसाद, (३) समता, (४) माधुर्य, (५) सुकुमारता, (६) अर्थ व्यक्ति, (७) उदारता, (८) ओज, (९) कान्ति और (१०) समाधि।

इनमे से (२) प्रसाद (४) माधुर्य (८) ओज, ये मुख्य तीन गुण हैं जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है। शेष सात गुण इन्ही तीनो गुणो के अन्तर्गत ही रहते हैं। जैसा 'काव्य प्रकाश' में महात्मा मम्मटजी ने लिखा है कि—

माधुर्यौज: प्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दश

भाव यह कि काव्य के गुण तीन ही हैं अर्थात् माधुर्य, ओज और प्रसाद न कि दस। इसी अभिप्राय को भिखारीदासजी भी अनुमोदन करते हैं।

दोहा—माधुर्योज प्रसाद के सब गुन हैं आधीन।
ता ते इनही को गन्यो, मम्मट सुकवि प्रवीन॥

(पृ० ९८) अजामिल

कन्नौज शहर मे अजामिल नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह पहले सदाचारी था, पर दासी के संसर्ग से वह दुराचारी-अनाचारी हो गया था। उस दासी से इसे दस पुत्र उत्पन्न हुए। उनमे से छोटे पुत्र का नाम नारायण था। वह छोटा होने के कारण माता-पिता को बहुत

प्यारा था। जब अजामिल का मृत्यु काल आया तो यमदूत उसे लेने को आये। इसने घबडाकर अपने छोटे पुत्र को नारायण! नारायण! कह के पुकारा। नारायण नाम की ध्वनि सुनकर विष्णु के पार्षद वहा आये। उनसे और यमदूतो से बहुत कुछ वादानुवाद हुआ। निदान उस ब्राह्मण के पूर्व पुण्य तथा अन्त मे नारायण नाम स्मरण की महिमा को विशेष सिद्ध करके दोनो दूत अतर्धान हो गये। तत्पश्चात् अजामिल ने अपने पापकर्मों का प्रायश्चित्त करने के लिए हरिद्वार मे निवास कर कई वर्षों के पश्चात् मोक्ष पाकर उन्ही विष्णु दूतो के द्वारा वैकुठ धाम प्राप्त किया।

(देखो श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ६, अध्याय १ व २)

गज की कथा लिख आये हैं (देखो पुरौनी, पृ० ५५४)

गणिका

सत्यगुग मे परशु नाम का एक वैश्य था, इसकी स्त्री का नाम जीवन्ति था। वह पति के मर जाने पर व्यभिचार कर्म करने लगी। सब कुटुम्बियो ने इसे बहुतेरा समझाया, पर इसके जी मे एक न भाई। पिता ने क्रुद्ध होकर इसे घर से निकाल दिया। स्वतत्र होने पर इसका व्यभिचार और भी बढा। कुमार्गी स्त्रियाँ बहुधा सन्तानहीन रह जाती है। कदाचित् इसी कारण से इसे भी कोई सन्तान न हुई। एक दिन इसने एक सुग्गा मोल लिया और साधारण रीति से उसे राम नाम पढाने लगी। पढाते-पढाते दोनो को राम नाम लेने का अभ्यास-सा पड गया और दैवयोग से राम नाम उच्चारण करते-करते ही दोनो एक साथ मर गये और राम नाम के प्रताप से तर गये।

श्रीमद्भागवत के ११वे स्कन्ध मे एक दूसरी वेश्या की कथा है, सो यो कि विदेह नगर मे पिंगला नाम की एक वेश्या रहती थी, वह एक दिन सध्या ही से सज-धजकर किसी धनवान् पुरुष की मार्ग-प्रतीक्षा करने लगी—बारम्बार द्वार पर आती और फिर जब किसी को अपने पास आते न देखती तो भीतर चली जाती। परन्तु फिर भी वहाँ न ठहरकर बाहर आ जाती थी। ऐसा करते-करते आधी रात बीत गई, उसके पास कोई भी न आया। निदान यह निराश हो बिस्तर पर जा लेटी और नीद आने के कारण पडी-पडी सोचने लगी कि इस हड्डी और मास निर्मित मलमूत्र से भरी देह का मुझे इतना घमड और विश्वास था; परन्तु इसे तुच्छ ही जान बहुतेरे धनी पुरुष मेरे सामने से निकल गये और किसी ने मेरी सुन्दरता का विचार ही न किया। यह विदेह नगर है, मै क्यो ऐसे पाप कर्म करूँ कि जिसमे पीछे से पछताना पडे। साधारण मरणहार मलमूत्र से युक्त पुरुषो पर मैं क्यो वृथा प्रेम लगाऊँ। यदि मेरा अटल प्रेम उस सर्व-शक्तिमान् अजर अमर पवित्र परमात्मा पर लगे तो अवश्य यह जन्म सुधरे। ऐसे-ऐसे अनेक तर्क-वितर्क कर उसने अपना वेश्या कर्म त्याग दिया और परमेश्वर का भजन-करते-करते तर गई। सो मानो यो कि अबलौ नसानी अब ना नसै हौ।

[देखो टि० पृ० ११२, पक्ति ३३, पूर्वार्द्ध]

पृ० १२३—प्रसाद आदि गुणो का वर्णन इसी पुरौनी के पृ० ५६२ मे है।

पृ० १४३ शम्भु की कथा 'हरिहर शीर्षक' पुरौनी ५५५ मे है।

(पृ० २८७, पूर्वार्द्ध) दशशिर=रावण

साम्प्रत जो वैवस्वत मन्वन्तर प्रचलित है इसी मे ब्रह्मा के मन से उत्पन्न हुए पुलस्त्य ऋषि के नाती और विश्रवा ऋषि की कैकसी नाम की स्त्री से जो तीन पुत्र उत्पन्न हुए थें। उनमे से जेठा रावण था। उत्पन्न होते ही इसके दस सिर थे। इसी से इसका मुख्य नाम दशग्रीव था। फिर पीछे से रावण नाम पड़ा (देखो वाल्मीकीय रामायण, सर्ग ९ व महाभारत

वन-पर्व, अ० २७३) वैवस्वत मन्वन्तर की ग्यारहवी चौकडी मे इसका जन्म हुआ था (देखो लिंग पुराण, अ० ६३)।

जब रावण कुछ बडा हुआ तो इसका सौतेला भाई कुबेर अपने पिता विश्रवा से मिलने को आया। उस समय कैकसी ने उसकी पहिचान दिलाकर रावण मे कहा, तू भी ऐसा ऐश्वर्य प्राप्त कर ले। यह सुनकर रावण बोला, ऐसा ही करूँगा और फिर अपने भाई कुम्भकर्ण व विभीषण को साथ ले गोकर्ण क्षेत्र मे जाकर भारी तपस्या करने लगा। वह तपस्या इसने दस हजार वर्ष तक इस प्रमाण से की कि वह प्रत्येक हजार वर्ष के अन्त मे अपना एक सिर काट-कर हवन कर देता था। इस प्रकार उसने नौ हज़ार वर्ष के अत मे नौ सिर हवन कर डाले और दसवे हजार वर्ष के अत मे दसवाँ सिर भी हवन करने को तैयार हुआ। उस समय ब्रह्मदेव प्रकट होकर कहने लगे कि जो इच्छा हो सो वरदान माँगो। यह विनती कर बोला कि आप किसी को अमर तो करते ही नही। इस हेतु यह वरदान दीजिये कि देवता, राक्षस, दैत्य, नाग, यक्ष और सुपर्ण इत्यादि किसी के हाथ से मैं न मारा जा सकूँ। मनुष्य तो मेरे सामने तिनके के समान है। ब्रह्मदेव बोले, ऐसा ही हो और जो तूने मस्तक हवन किये है उनके बारे मे यह कहता हूँ कि वे ज्यो के त्यो हो जावे तथा तू इच्छा-रूपधारी भी हो जावे। इसी प्रकार शेष दोनो भाइयो को भी अलग-अलग वरदान दिये गये। निदान रावण श्लेषात्मक वन मे पिता के पास लौट आया (देखो वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग १०)।

जब सुमाली राक्षस को मालूम हुआ कि मेरे दौहित्र (अर्थात् लडकी के लडके) वरदान पा चुके है तब वह प्रहस्त मारीच विरूपाक्ष और महोदर आदि राक्षसों को साथ लेकर आया और रावण से कहने लगा कि तुम अपने सौतेले भाई कुबेर से ऐश्वर्य समेत लंका छीन लो। रावण ने कहा कि बडा भाई तो पिता के समान होता है, इसके साथ मे अनुचित बर्त्ताव कैसे करूँ? इस पर से प्रहस्त ने इसे माया से लुभा कर स्वत· दूत बन कुबेर से लंका ले ली। और राक्षसो ने मिलकर रावण को लका का राजतिलक कर दिया। इसका पराक्रम देख मय दैत्य ने अपनी कन्या मन्दोदरी इसे ब्याह दी और एक शक्ति भी इसको दी, जो इसने विभीषण पर चलाई थी। इसने अपनी बहिन शूर्पनखा का विवाह विद्युतज्जिव्ह नाम के राक्षस से कर दिया था। रावण मदमस्त होकर उपद्रव करने लगा। इसे रोकने के लिए कुबेर ने दूत भेजा। इस दूत का रावण ने राक्षसो द्वारा भक्षण करा दिया। तभी तो अगद ने ताना दिया था कि 'देखी नयन दूत रखवारी। बूडि न मरहु धर्मव्रत धारी'। फिर रावण कुबेर से लड़ने को गया और उसे परास्त कर उसका पुष्पक विमान छीन लिया।

एक समय यह कैलास पर्वत के समीप गया। वहाँ पर नन्दी का बन्दर सरीखा मुख देखकर हँस उठा। नन्दी ने शाप दिया कि बन्दर ही तेरा नाश करेंगे। इस पर क्रुद्ध हो दशानन कैलास को उखाडने लगा। जब यह हाल शिवजी को मालूम हुआ तो उन्होंने अपनी अलौकिक शक्ति मे कैलास को धर दबाया, इससे इसके हाथ दब गये। यह पहले रोया इस हेतु इसने 'रावण' अर्थात् रोने वाला, ऐसा नाम पाया। फिर इसने सामवेद का गान करके शिवजी को प्रसन्न कर वहाँ से छुटकारा पाया। इसी समय उसने शिवजी से चन्द्रहास नाम की तलवार भी प्राप्त कर ली।

एक समय इसने वेदवती से छेडछाड की थी। उसने इसे शाप दिया था कि वंश सहित तेरा नाश मेरे ही कारण से होगा। कहते हैं कि यही वेदवती सीता रूप से अवतरी।

यह एक बार मरुत राजा से युद्ध करने गया। राजा यज्ञ कर रहा था, सो उठकर युद्ध करना चाहता था, परन्तु यज्ञकर्त्ताओ ने रोका तो वह यज्ञासन पर बैठ गया। इस पर से रावण यह डीग मारते हुए लौट आया कि मरुत राजा मुझसे डर गया, मैंने उसे जीत लिया।

नारदजी के उत्तेजित करने से यह यम से लड़ने को गया। सात दिन तक युद्ध हुआ।

निदाम यम ने अपना भयकर रूप प्रकट कर कालदण्ड से रावण को मारना ही चाहा था कि इतने ही मे ब्रह्माजी ने यम को अपने वरदान की सूचना दी। इससे यम अन्तर्धान हो गये। रावण को अपनी जीत मान लेने का यह दूसरा अवसर मिल गया।

इसके पीछे रावण ने पाताल मे जाकर सब नाग देवो को जीत लिया और वहाँ पर निवात कवच मे साल-भर तक लडता रहा परन्तु विजय प्राप्त न होने से आपस मे सन्धि कर ली। फिर अश्म नगर के कालकेयो से जो इसका युद्ध हुआ उसमे रावण ही के हाथ से इसकी बहिन शूर्पनखा का पति विद्यज्जिव्ह मारा गया था। फिर वरुण लोक मे गया, वहाँ वरुण तो थे ही नही, उनके सेनापति ने अपनी हार स्वीकार कर ली। इसने नलकूबर की अप्सरा से बलात्कार किया। उसने सब हाल नलकूबर से जा कहा। नलकूबर ने यह शाप दिया कि यदि रावण किसी स्त्री से उसकी इच्छा के बिना सम्भोग करेगा तो उसके मस्तक के सात टुकडे हो जावेगे।

इसके दस सिर और बीस भुजाएँ थी। रग काला होने से भयकर दिखाई देता था परन्तु इच्छानुसार रूप धारण करने की शक्ति होने से यह बहुधा सुन्दर रूप धारण कर लेता था। इसकी आकृति भी बडी थी। परन्तु कुम्भकर्ण से बहुत छोटी थी। शिवजी पर इसकी बडी भक्ति थी। परन्तु बुरे कर्मों की ओर विशेष झुकाव होने के कारण इसे शिवभक्ति से अधिक लाभ न पहुँचा। इसकी वेद मे बहुत पहुँच थी, ऐसा मालूम होता है। कारण, पहले चारो वेदो के विभाग अध्यायो मे न थे। इसीने उन्हे विषयो के क्रम से जमाया। वेदो के पद, क्रम, घन व जटा इसी के कल्पित किये हुए कहे जाते है। श्री रामचन्द्रजी के साथ विरोध, उनसे युद्ध तथा उनके बाणो से मारे जाने का हाल विस्तारपूर्वक रामायण ही मे है।

(पृ० २८५, पूर्वार्द्ध)—'भूपति भावी मिटइ नहिं, यदपि न दूषण तोर' के पश्चात् का क्षेपक

चौपाई—जो करि कपट छलै जग काहू। देहहिं ईश अधम गति ताहू।।
विप्रवचन सुन नृप अकुलाना। उठि पुनि विनय कीन्ह विधिनाना।।
पुनि पुनि पद गहि कहेउ भुआला। शाप अनुग्रह करहु कृपाला।।
जब तुम होव निशाचर जाई। ब्रह्मवश तामस तनु पाई।।
अजर अमर अतुलित प्रभुताई। जग विख्यात वीर दोउ भाई।।
होईहिं जबहि पराभव चारी। तब तुम सेउव देव पुरारी।।
शिवप्रसाद वरु पाइ बहोरी। होइहै सब जग प्रभुता तोरी।।
मिलिहहिं तोहि जब सनत कुमारा। तब तुम समुझब शाप हमारा।।

दोहा—तुम पूछब निस्तार निज, सादर सुनहु नरेश।
सब परिवार उधार तब होइहै मुनि उपदेश।।

(पृ० २९६, पूर्वार्द्ध)—'रण मदमत्त फिरै जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा'।। के पश्चात् का क्षेपक

दोहा—सप्तदीप नव खंड लगि, सप्त पताल अकास।
कपमाने धरणी धसत, सरितपतिन्ह मन त्रास।।

चौपाई—नारद मिले कहेसि मुसुकाई। देव कहाँ मुनि देहु दिखाई।।
सुनत अनख नारदहिं न भावा। श्वेत द्वीप तेहि तुरत पठावा।।
सागर उतरि पार सो गयऊ। नारि वृंद तहँ देखत भयऊ।।
तिन सन कहा पतिन पहँजाई। कहेउ कि आव निशाचरनाई।।
तब मैं तिनहिं जीति सग्रामा। लै जैहौ तुम को निज धामा।।

सुनत वचन एक जरठ रिसानी। धाइ चरण गहि गगन उडानी ॥
गई दूरि धरि धरि झकझोरा। डारिसि सिंधु मध्य अति जोरा ॥
दोहा—गयो पताल अचेत हुइ, मरै न विप्रप्रसाद।
सावधान उठि गर्ज पुनि, हिये न हरष विषाद ॥
चौपाई—जीतेसि नाग नगर सब झारी। गयो बहुरि बलिलोक सुरारी ॥
बैरोचनसुत आदर दयऊ। कुशल बूझि तब बोलत भयऊ ॥
तुमहू निज शत्रुहि गहि लीजै। चलि महि लोक राज्य अत्र कीजै ॥
कह बलि कनककशिपु के मडन। पहरि लेहु तुम सुख दुख खडन ॥
लाग उठावन उठा न कोई। याही पौरुष ते जय होई ॥
जिन यह भूषण अगन धारे। ते भट गे इक क्षण मे मारे ॥
तेहि ते भवन जाहु लै प्राना। चला तुरत मन माहिं लजाना ॥
वामन रावन आवत जाना। किये देवऋषि सन अपमाना ॥
खेलत रहे नगर शिशु नाना। निज बल तिनहि दीन्ह भगवाना ॥
धाइ धरा तेहि पुर लै आये। नगर नारि नर देखन धाये ॥
बीस बाहु दशकधर जाई। विधि यह गढ़नि कहाँ की आई ॥
राखिन्हि बाँधि खिजावहिं भारी। नाम न कहै सहै बरु गारी ॥
वामन देखि बहुत सकुचाना। तब छुडाय दिय कृपानिधाना ॥
चला तुरत निशाचरनाहा। लाज शंक कछु नहिं मन माहा ॥
दोहा—अति निर्लज्ज दया रहित, हिंसा पर अति प्रीति।
राम विमुख दशकठ शठ, तापर चाहत जीति ॥
भरद्वाज सुनि जाहि जब, होत विधाता वाम।
मणिहुँ काँच हुइ जाइ तब, लहै न कौडी दाम ॥
चौपाई—जहं कहुँ फिरत देव द्विज पावै। दड लेइ बहु त्रास दिखावै ॥
इहि आचरण फिरै दिन राती। महा मलिन मन खल उतपाती ॥
तब तुरन्त पंपापुर आवा। बालि नाम कपिपति तहँ ठाँवा ॥
देखी तहँ इक सरवर शोभा। जेहि मन महा मुनिन कर लोभा ॥
तहाँ कपीश करै निज ध्याना। दशकंधरहिं देखि मुसुकाना ॥
जाइ ठाढ तहँ भा रजनीसा। ठीक बाहु गरजित भुज बीसा ॥
तब कपीश चितवा मुसुकाई। ध्यान कि औसर रिस बिसराई ॥
तब रावण बोला करि क्रोधा। बकध्यानी कपि शठ सुनु बोधा ॥
नाम तोर सुनि आयो धाई। दे कपि युद्ध छाँडि कदराई ॥
दोहा—मोहि जीते बिन समर सुन, वृथा ध्यान तव कीश।
अजलि देह न पाइ है, शपथ करौं अज ईश ॥
चौपाई—तब बाली बोला विहँसाई। बल तुम्हार ऐसो है भाई ॥
रवि अजलि मैं देऊँ सप्रीती। ठाढ होउ जायहु मोहिं जीती ॥
तब निशिचरपति उठा रिसाई। दे कपि युद्ध छाँडि कदराई ॥
तबहि कीशपति मनहिं विचारा। शिव बल दीन्ह मरहि नहिं मारा ॥
दशकधर घर जाहु विचारी। अजय तुम्हारि सुनी विधिचारी ॥
बहुत भाँति वाली समझावा। कौनेहु भाँति बोध नहिं आवा ॥
तब संकोप हुइ धरा कपीशा। धरि तेहि काँख चापि दशशीशा ॥
अजलि दीन्हि रविहिं मन बानी। अचई सदा उदधि कर पानी ॥

जपा आदि शंकर मन बानी। तेहि क्षण सध्या वन्दि सिरानी ।।

दोहा—आवाघरहि कपीश तब, काँख रहा लकेश।
इहि विध बीते मास षट, पाये बहुत कलेश ।।

चौपाई—नित कलेश वश करै उपाई। तहँ न चलै कछु आतुरताई ।।
बहु प्रस्वेद कखरी महँ जाया। अधिक कुवास कीन्ह तहँ धामा ।।
कलम लाइ रिसि दशननि काटा। कचकर जीव मनहुँ भ्रम चाटा ।।
एक दिवस रवि अजलि साजा। काँखते निसरि महा धुनि गाजा ।।
तब पुनि धरि कपीश सोइ बाँधा। लै आयो अगद के साँधा ।।
बीस भुजा दशशीश सुधारा। चरण दोउ पुनि धरि उर पारा ।।
धरि समेटि झूमरि सम कीन्हा। बाँधि सेज पर शोभा दीन्हा ।।
अगद खेलि लात शिर मारा। किलकिलाइ किलकै किलकारा ।।

दोहा—तारा चीन्हेउ रावणहि, तेहि क्षण दीन्ह छुडाइ।
जाहु तुरत लकेश गृह, बहुरि धरहिं कपिराइ ।।

चौपाई—पुनि रावण आवा तेहि ठाँई। सहसबाहु जहँ रास बनाई ।।
जलक्रीडा जु करहिं सब नारी। विविध भाँत शोभा अति भारी ।।
आस रासमडल जहँ रेवा। सुरनर नाग करहिं सब सेवा ।।
जाइ दीख रावण सुख नाना। देख विभव अतिशय दुख माना ।।
तहँ लकेश जाइ शिव देखा। शातरूप अति सुन्दर वेखा ।।
कमल प्रसून विल्व पुनि लायउ। तेहि चढाइ मस्तक पद नायउ ।।
जाकै जल क्षोभेउ दशशीशा। पढे मत्र सुमिरै गौरीशा ।।
निलज अशक गयउ पुनि तहँवा। करि जलकेलि सहसभुज जहँवा ।।

दोहा—तब प्रचड जल क्षोभयउ, बूडन लाग समाज।
सहसबाहु अति शकमन, सकल तियन उर लाज ।।

चौपाई—तब राजा सन बोलहिं नारी। अतिहि सुन्दरी राजकुमारी ।।
सुनहु नृपति आवा कोउ गाढा। अकस्मात नरमद जल बाढा ।।
सुनि राजहिं भा क्रोध अपारा। जस त्रिपुरारि त्रिपुर कहँ जारा ।।
जाइ दीख रावण तहँ ठाढा। जासु मत्र जनु जलनिधि बाढा ।।
माया प्रबल महा बल भारी। लकेश्वर कहँ धरेसि प्रचारी ।।
लै पुनि बाँधि गयो तिय पासा। गढनि देख सब परम हुलासा ।।
करि असनान पूजि गौरीशा। हयशाला बाँधिसि दशशीश ।।
लज्जित दुष्ट मष्ट करि रहई। रिस उर मारि कष्ट बहु सहई ।।

दोहा—सुन गिरिजा पावन परम, अब यह कथा रसाल।
लै हयशाला बाँधि तेहि, बीस भुजा दशभाल ।।

चौपाई—सकल आइ देखहिं नर नारी। मारहिं लात हँसहिं दै तारी ।।
नाम न कहै रहै सकुचाना। बहु विधि पूछहिं नृपति सुजाना ।।
नृत्य करहिं रभादिक नारी। दशहु माथ दश दीपक बारी ।।
कछुक दिवस इहि भाँति गवाँवा। सो पुलस्त्य मुनि जाइ छुडावा ।।
चला तुरत महा अभिमानी। नल की शाप आइ नियरानी ।।
मारग जात दीख विबुधारी। अति अनूप सुन्दर बरनारी ।।
चदन पुष्प पत्रकर थारी। पूजन चली जाय त्रिपुरारी ।।
देखि उर्वशी मन सकुचानी। तब रावण बोला मृदुबानी ।।
को तुम नारि गमन कहँ कीन्हा। लज्जावश कछु उतर न दीन्हा ।।

दोहा—निकट जाय लकेश तब, गये अक भरि लीन्ह ।
पुत्रबधू जो कुबेर की, नहिं विचार कछु कीन्ह ॥

चौपाई—चीन्ह ताहि मन शका आई । घाटि कर्म कीन्हे पछिताई ॥
मन पछिताय शोच उर भयऊ । लंकेश्वर लका महँ गयऊ ॥
चली उर्वसी आई ताहाँ । अलकापुर नल कूबर जाहाँ ॥
समाचार सब पतिहि सुनावा । सुनी कथा मन महँ पछितावा ॥
दीन्ह शाप करि क्रोध अपारा । रावण वश होहु क्षयकारा ॥
चली शाप लका महँ आई । दशकधर बैठेउ जेहिं ठाई ॥
आगे आइ ठाढि भा शापा । तब लकेश्वर अति भय काँपा ॥
सडर सकोप चितव तेहि ओरा । नल कूबर कर शाप सुघोरा ॥

दोहा—शापहि अगीकार कर, मन महँ कीन्ह विचार ।
दड ऋषिन से लीन्ह नहिं, रोषेउ लकभुवार ॥

चौपाई—दूत चारि तेहि पठव भवानी । भरद्वाज मुनि कथा बखानी ॥
आये दूत ऋषिन्ह के गेहा । देखत सबहिं भये सदेहा ॥
पूछहिं ऋषय कहाँ पग धारा । कहहु कुशल लंकेश भुवारा ॥
तात कुशल अब भइ विपरीता । तुमसन मागिन्ह दड अभीता ॥
देहु दड अस कहहिं रिसाई । कैं गिरि कंदर जाहु पराई ॥
सुनि अस वचन सबहिं दुख पावा । तुरत एक तिन पात्र मँगावा ॥
जेहि दरबार नीति नहिं भाई । खल मडली जुरी तहँ आई ॥
सब मिल करि विचार इक ठाये । भरि घट रुधिर ऋषय लै आये ॥
दूतन सौंपि कहा मुनि ज्ञानी । भूपहि कहेउ जाइ यह बानी ॥

दोहा—घट उघरत क्षय होइहहु, सहित सकल परिवार ।
लेय दूत तहँ आयऊ, जहँ रह लकभुवार ॥

चौपाई—आये दीख दूत जब रावन । परम उल्हास भयो मन भावन ॥
अग्र आनि घट धरा उतारी । देखि शक लकापति भारी ॥
बोलिन्ह वचन कहा यह भाई । सकल कथा तिन नृपहि सुनाई ॥
इहि घट ते लकापति नाशा । सब दूतन अस वचन प्रकाशा ॥
यह घट लै उत्तर दिशि जाहू । जतन समेत धरहु लै ताहू ॥
शम्भु सभा श्रुति वाद मझारा । प्रथमैं रहै जनक मन हारा ॥
तेहि रिस ते तहँ कुम्भ पठावा । दूतन्ह सो सब मर्म बुझावा ॥
ले घट जनक नगर ते गये । गाडत क्षेत्र मध्य तहँ भये ॥
दैवयोग तहँ परा अकाला । बिन बरसे भइ प्रजा विहाला ॥
रोग शोक चहुँ ओर निहारी । भई विकलता भूपति भारी ॥
सतानन्द तब कहेउ विचारी । करहु यज्ञ नृप बरसै वारी ॥
जनक यज्ञ तहँ कीन्ह अरम्भा । रचे कनक कदली के खम्भा ॥
कियो मेखला मणिमय पूरी । भूमि सुहाविन पावन भूरी ॥
नृपति पुरोहित शासन पाई । चामीकर हल रचो बनाई ॥
हाटकलागल मही सुधारी । तहाँ प्रकट भइ ऋषियकुमारी ॥
भुजा नाम कहि निकट बुलाई । लीन्हो नृप तेहि कठ लगाई ॥
कन्या देखि अनूप भवानी । सुता मानि राजा गृह आनी ॥
नाम जानकी परम पुनीता । नारद आइ कहा पुनि सीता ॥

छंद—कह पुनि सीता परम पुनीता आदि ज्योति की शक्ति सही।
नृप नीति विधाना परम सुजाना आदि मध्य अवसान मही॥
भव उद्‌भव करनी पालनि हरनी नेति नेति यह वेद कहै।
तुवकृत्य प्रकाशी भुजा बिलासी तीन लोक महँ पूर रहै॥
दोहा—सकल कथा नृप जनक सो, नारद कही बखानि।
सकल सुलक्षित लक्षि गुण, जगदबा जिय जानि॥

चौपाई—जनक सविनय कहत कर जोरे। नाथ मनोरथ पूजे मोरे॥
चरण पखारि सुथल बैठारी। विनय कीन्ह अस्तुति विस्तारी॥
परम हुलास वचन शुभ भाखा। चरणोदक लै माथे राखा॥
धन्य धन्य कहि सुता प्रभाऊ। मुनि अस प्रीति कीन्ह नहिं काऊ॥
जो तुम कृपा कीन्ह पग धारे। मिटे अमगल दोष हमारे॥
अब मोहि भा भरोस मुनिनाथा। भयो धन्य मैं गुणगण गाथा॥
साधु विदेह राज श्री जा की। उपमा और कहौ नृप का की॥
तुम उपमा उपमेय और सब। जहाँ प्रकट भइ भुजा आइ अब॥
दोहा—जोग भोग मैं गोइ मन, किये न प्रकट सुभाउ।
भये विदेह विदेह सुनि, बिदा भये मुनिराउ॥

चौपाई—कहि सु कथा ऋषिराउ सिधाये। बहुरि दूत लकापुर आये॥
कहहि जाइ हम आये राखी। सो शकर गिरिजा सन भाखी॥
याज्ञवल्क्य सुनि कथा रसाला। साधु साधु मुनि परम कृपाला॥
पुनि पुनि कहेउ कथा उपदेशा। जग जीतेहु सब लकनरेशा॥
चारि ठाउँ हारिसि भइ त्रासा। सकल देव कीन्हे निज दासा॥

(पृ० ३३६, उत्तरार्द्ध)

कौशलपुर बासीन्ह नर, नारि वृद्ध अरु बाल'' के पश्चात् का क्षेपक—

चौपाई—इक दिन एक सलूका आयउ। भूपति द्वारे कपिन्हि नचायउ॥
देखि राम मचलाई ठानी। मो कहँ कीश मँगावहु आनी॥
तब नरेश बहु कीश मँगाये। एकहु रघुपति मनहि न भाये॥
गुरु पहे जाइ भूप शिर नाये। सकल रामहठ कह समझाये॥
तब वशिष्ठ बोले मुसक्याई। कहौ हठै तज सोइ उपाई॥
पम्पापुर वासी हनुमाना। जहाँ रहत नृप बालि सयाना॥
दोहा—दूत तहाँ तुम भेज करि, बोल पठावहु कीश।
तेहि मर्कट को देखकर, हरषित हो सुरईश॥

चौपाई—सुनि गुरुवचन दूत पठवाये। तिन जा वचन सुकठ सुनाये॥
सुनि सँदेश हनुमन्त हकारी। कहेउ अवधपुर जाउ सुखारी॥
रघुपति निरखि पवन सुत आये। कमठ लाय निज सखा बनाये॥
जहँ खेलहिं श्री राम कृपाला। सग रहै तहँ केशरिलाला॥
राम एक दिन चग उडाई। इन्द्रलोक मे पहुँची जाई॥
सुरपति सुतबधु चग निहारी। पकड लीन्ह अस हृदय विचारी॥
जासु चंग अस सुन्दरताई। सो जन त्रिभुवन मे अधिकाई॥
इहाँ राम पकडी चग जानी। कहेहु जाहु देखहु कपि मानी॥
सुरपुर पहुँच नारि के हाथा। बोले देखि छाँडु हरिनाथा॥

विहँसि कह्यो बिन दरशन पाये। छाँडब नाहिं राम मन भाये॥
प्रेम विवश तेहि लखि हनुमाना। आइ सकल प्रभु पास बखाना॥
जाइ कहहु बोले भगवाना। चित्रकूट दर्शन मनमाना॥
दोहा—प्रभु की वाणी सुनत ही, जाइ कह्यो हनुमान।
चित्रकूट मे जाहु तुम, दर्शन निश्चय जान॥
तिन तब करते तुरत ही, दीन्ही छोड पतग।
खैच लई प्रभु वेग ही, खेलत बालक सग॥

(पृ० ३४६, उत्तरार्द्ध)

गये जहाँ जगपावनि गगा—के पश्चात् का क्षेपक।

चौपाई—अनुज सहित प्रभु कीन्ह प्रणामा। बहु प्रकार सुख पायउ रामा॥
पुनि सुरसरि उतपति रघुराई। कौशिक सन पूछा शिर नाई॥
कह मुनि प्रभु तव कुल इक राजा। नाम सगर तिहुँ लोक बिराजा॥
तेहि के युग भामिनि सुकुमारी। केशिनि ज्येष्ठ सुमति लघु व्यारी॥
सब प्रकार सपति गुण भ्राजा। सुत विहीन मन विस्मय राजा॥
एक समय भामिनि दोउ साथा। बन तप हेतु गये रघुनाथा॥
सघन सुफल तरु सुन्दर नाना। तहँ भृगुमुनि, तप तेज निधाना॥
दोहा—सहित नारि नृप मुदित मन, रहे वर्ष शत एक।
कीन्हे तप भल देखि भृगु, अस्तुति कीन्ह अनेक॥
चौपाई—कहि निज दुख प्रणाम नृप कीन्हा। दै अशीश तब मुनि वर दीन्हा॥
नृप रानी सन मुनि अस भाषा। लेउ सो वर जो जेहि अभिलाषा॥
सुनि मुनि चरण शीश तिन नावा। देउ नाथ तुम कहँ जो भावा॥
एकहि कहा एक सुत होना। दूसरि सहस साठि सुत लोना॥
हर्षित भयउ सुभग वर पाई। हाथ जोरि चरणनि शिरनाई॥
सहित भामिनिन्ह अवधहि आयउ। हर्ष सहित कछु दिवस गमायउ॥
जानि सुघरी नखत सुखदाई। तब केशिनि असमजस जाई॥
सुमति प्रसव तुम्बरि इक सोई। भये सुत प्रगट कहे मुनि जोई॥
हर्ष सहित दिय दान नरेशू। पूजि विप्र गुरु, गौरि गणेशू॥
घृत घट सुदर तुरत मँगाये। ते सब सुत नृप तिन महँ नाये॥
दोहा—इहि विधि भये सकल सुत, पूजे सब मन काम।
जाहि दिवस निशि हर्ष वश, सुनहु रामघनश्याम॥
चौपाई—परिजन पुरजन रानि नरेशू। अति आनँद तनु मिटा कलेशू॥
बाल केलि कर भयउ कुमाग। लीला करैं अगम संसारा॥
होहिं सुकाज सकल मन चीते। इहि सुख बसत बहुत दिन बीते॥
सरयू नदी अवध जो अहई। विमल सलिल उत्तर दिशि बहई॥
प्रजा लोग के बालक नाना। नित उठि तहाँ करहिं अस्नाना॥
असमजस तहँ तरणी आनी। तिन्हहिं चढाइ बोर गहिपानी॥
भये प्रजा सब परम दुखारी। बालक बध लखि सुनहु खरारी॥
सकल गये जहँ बैठि नृपाला। बोले वचन नाय पद भाला॥
तुम नृप चहहु प्रजा प्रतिपाला। सुत तुम्हार भा सब कर काला॥
तजब देश बरु सुनहु नरेशू। बिना तजे नहिं मिटहि कलेशू॥

दोहा—तव सुत कीन्हे पाप बहु, मारे बालक वृन्द।
तुम कहँ प्राण समान सुत, सकल प्रजनि कहँ मन्द ।।

चौपाई—प्रजागिरा सुनि धीरज दीन्हा। सुतहि देश ते बाहर कीन्हा।।
तासु तनय जग विदित प्रभाऊ। गुणनिधि अशुमान तेहि नाऊ ।।
बसत हृदय नृप के सो कैसे। फणि मणि मीन सलिल रह जैसे ।।
गये प्रजा सब निज निज धामा। भये विशोच मनहि विश्रामा ।।
बहुरि नृपति मन कीन्ह विचारा। आइ भयउ पन चौथ हमारा ।।
द्विज मन्त्रिन गुरु सुतन्ह बुलाये। हिमगिरि विंध्य मध्य तब आये ।।
रुचिर वेदिका एक बनाई। देखत बनै वरणि नहिं जाई ।।
मख अरभ छाँडेउ तब तुरगा। वेगवत देखिय जिमि उरगा ।।

दोहा—सुरपति सुनि दारुण मखहि, मन महँ करि अनुमान।
आइ तुरग तिन्ह लीन्हउ, मर्म न कोऊ जान ।।

चौपाई—राखेउ आन कपिल मुनि पाही। कोउ न जान काऊ गति नाही।।
युगवत रहे जे सुभट सयाने। लेत तुरग तिनहूँ नहिं जाने ।।
तिन सब आइ कहा नृप पाही। महाराज हम कहत डराही ।।
लीन्ह तुरग यह जान न कोई। कहा करिय जो आयसु होई।।
सुनत वचन नृप विस्मय पायउ। सकल सुतन कहँ तुरत बुलायउ ।।
जाइ तुरग तुम हेरहु भाई। सकल चले चरनन सिर नाई।।
सुरपति सम देखिय बलबीरा। सकल धनुर्धर अति रणधीरा ।।
तिनहि चलत धरणी अकुलाई। बलि पशु जीव भये सब आई ।।
सुमन वाटिका उपवन बागा। सरित कूप वापिका तड़ागा ।।
नगर गाँव मुनि आश्रम नाना। गिरि कानन कदर अस्थाना ।।

सोरठा—इहि बिधि शोधेउ जाइ, आये सब मिलि भूप पहिं ।।
चरणन माथहि नाइ, बोले प्रभु कहुँ अश्व नहिं ।।

चौपाई—खोदहु महि सुत हेर पठाये। चले सकल पूरब दिशि आये ।।
तिनके कर जनु बज्र समाना। योजन भरि खोदहिं बलवाना।।
देखि अतुल बल विबुध डराने। कारिहहिं कहा सक सकुचाने ।।
शोधत महि पताल सब आये। दिग्गज देखि सबन्ह सिर नाये।।
तेहि पूछा सब कथा सुनायउ। बहुरि सकल दक्षिण दिशि आयउ ।।
इहि विधि पुनि दूसर गज देखा। अति उत्तम गुण विमल विशेखा।।
ताहू कहँ प्रणाम पुनि कीन्हा। चले खनत पश्चिम चित दीन्हा ।।
तीसर देखि प्रदक्षिण कीन्हा। पुनि उत्तर दिशि शोधन लीन्हा।।
दिग्गज श्वेत देखि सुख पाये। सकल कपिल मुनि पहँ चलि आये ।।
खोदत महि कोउ पार न पावा। सोइ भा चहुँ दिशि जलधि सुहावा ।।

दोहा—देखिनि आइ तुरग सब, बाँधा मुनिवर पास।
बोले वचन सुक्रुद्ध हुइ, भा चह सब कर नास ।।

चौपाई—खोदी महि हम चारिउ कोधा। रे रे दुष्ट बहुत तोहि शोधा।।
कोउ कह चोर दीख बहु होई। इहि सम छली और नहिं कोई ।।
सुनत वचन मुनि चितवा जबही। भये भस्म क्षण महँ सब तबही ।।
उमा वचन जेहि समझि न बोला। सुधा होइ विष तिक्तम ओला ।।
पावक जानि धरै कर प्रानी। जरहिं न काहे ते अभिमानी ।।
जानि गरल जे संग्रह करही। सुनहु राम ते काहे न मरहीं ।।

क्रोध कीन्ह बिन करे विचारा। भये सकल तेहिते जरि क्षारा।।
यहाँ नृपति अशुमान बुलाये। नहि आये सुत निनहिं पठाये।।
दोहा—दीन्ह नृपति आशीश तब, अति हित बारहिबार।
बेगि फिरहु लै तुरँग सुत, मेरे प्राण अधार।।
चौपाई—चलेउ नाइ पद शीश कुमारा। विष्णु भक्त दुहूँ कुल उजियारा।।
जहँ कहुँ निरखि मुनिन के धामा। पूछि खबर करि दंड प्रणामा।।
चले मुनिन्ह सन पाइ अशीशा। खोजहु पैहहु जाहु महीशा।।
इहि विधि खोजत मग महँ जाता। मिलेउ गरुड सुमती कर भ्राता।।
चरण परत तब आशिष दयऊ। जरे सकल जेहि विधि सो कहऊ।।
सुनतहि वचन शोच भा भारी। लै खगेश देखउ थल बारी।।
अशुमान तहँ मज्जन कीन्हा। क्रम क्रम सबहिं तिलाजलि दीन्हा।।
बहुरि गरुड बोले सुनु ताता। मैं तोहि कहौ सुनो इक बाता।।
सोरठा—करु सुत सोइ उपाइ, गगा आवहि अवनि महँ।
दरशन ते अघ जाइ, मज्जन कीन्हे परम हित।।
चौपाई—षष्टि सहस सुत तरिहहि इहि विधि। गगा पाइ परम पावन निधि।।
सुनि अस वचन हृदय अतिभाये। सहित गरुड मुनिवर पहँ आये।।
भूप गरुड मुनि चरणन नायउ। पूर्व कथा नृप ताहि सुनायउ।।
आशिष देइ तुरग मुनि दीन्हा। हर्षित हृदय गवन तब कीन्हा।।
नगर समीप गरुड पहुँचाई। गयउ भवन तब निज रघुराई।।
वहाँ तुरग लै नृप शिर नाई। षष्टि सहस सुत मरण सुनाई।।
विस्मय हर्ष विवश नृप भयऊ। कीन्हा यज्ञ दान बहु दयऊ।।
बहु विधि नृपति राज तब कीन्हा। प्रजा लोग कहँ अति सुख दीन्हा।।
दोहा—अशुमान कहँ राज दे, निज मन हरिपद लाग।
गयउ सगर तप काज बन, हृदय अधिक अनुराग।।
चौपाई—तासु तनय दिलीप नृप भयऊ। बन तप हेतु उतर दिशि गयऊ।।
अतिहि अगम तप कीन्ह नृपाला। भये कालवश गे कछु काला।।
केहि विधि कहुँ दिलीप प्रभुताई। सेवहिं सकल नृपति तेहि आई।।
युगवत जेहि मुख सुरपति रहई। महिमा तासु कवन कवि कहई।।
भगीरथ अस सुत भयो जासू। पितु सम नीति अधिक उर तासू।।
तिन्हहिं बोलि नृप दीन्हेउ राजू। आप चले उठि तप के काजू।।
मन महँ करत पंथ अनुमाना। सुरसरि आव तजौं तनु प्राना।।
अशुमान सम तनु परिहरऊँ। फिरि निज नगरक नाम न लेऊँ।।
इहि विधि करत विचार भुआला। जाइ कीन्ह तप परम विशाला।।
सोरठा—करत विचार भुआल, जाइ कीन्ह बन प्रबल तप।
बीते कछु इक काल, देह तजी कोउ प्रकट नहिं।।
चौपाई—सुरसरि लागि तजे तनु भूपा। सो तजि मूढ़ प्रियहिं जल कूपा।।
इहाँ भगीरथ मन अस भयऊ। पितु न आव बहु दिन चलि गयऊ।।
काकुत्स्थ नाम तारा सुत रहऊ। दीन्हा राज नीति बहु कहऊ।।
कहि सब पूर्व कथा सुत पाही। दीन्ह अशीश चलेउ बन माही।।
निकसत नगर सगुन भल पाये। अतिहि निबिड़ बन तहँ नृप आये।।
देखि भगीरथ मन अति भावा। सुरसरि हेतु तपहिं मन लावा।।

एग चरण दोउ भुजा उठाये। रवि सन्मुख चितवहिं मन लाये।।
वर्ष सहस बीते इहि भाँती। जात न जानहि दिन अरु राती।।
देखि उग्र तप विधि चलि आये। बोले नृप सन वचन सुहाये।।
चाहहु नृप सु लेहु वरदाना। बोले नृप करि अजहि प्रणामा।।
जो माँगौ सो जानत अहहू। मोसन माँगन प्रभु किमि कहहू।।

सोरठा—तदपि कहौ प्रभु देहु, वर शुभ सतति वृद्धि कर।
दूसर करहु सनेहु, गगा आवहिं अवनि पर।।

चौपाई—एवमस्तु कहि पुनि विधि कहही। सुरसरि देउँ राखि को सकही।।
छूट जाइ पुनि तुरत रसातल। फिरहिं न नृपति सुनिय पुनि भूतल।।
तेहिते कहुँ एक तोहि उपाही। अति दयालु शकर मन माही।।
सोइ सक राखि देवसरि आजू। ताहि जपे तव होइहि काजू।।
अस कहि विधि अनरहित भयऊ। बहुरि भगीरथ शिव तप ठयऊ।।
विबुध वर्ष अगुष्ठ अधारा। बार बार शिव नाम उचारा।।
शिव कृपालु प्रगटे तब आई। हाथ जोरि नृप कह शिर नाई।।
मै राखव सुरसरि दे आसा। बहु उमापति गे कैलासा।।

दोहा—वहाँ देवसरि शिव वचन, सुनि मन कीन्ह विचार।
जाउँ रसातल शिव सहित, जात न लावौ बार।।

चौपाई—अतरयामी शिवहिं उपाई। निज शिर जटा सु अगम बनाई।।
इहाँ भगीरथ अस्तुति कीन्ही। सुनि मृदु गिरा छाँडि विधि दीन्ही।।
छटत शोर भयउ अति भारी। चक्रित देव अहि दिग्गज चारी।।
सुरसरि पुनि शिवजटा समानी। एक वर्ष तहँ रही भुलानी।।
कौतुक देखि सकल सुर हर्षे। कहि जग जयति सुमन तिन वर्षे।।
बहुरि भगीरथ सुमिरण कीन्हा। शिव तब डारि बुद इक दीन्हा।।
तेहि ते भईं तीनि जल धारा। एक गई नभ एक पतारा।।
गइ नभ सो भइ अघकर नाशिनि। देवन धरा नाम मदाकिनि।।

सोरठा—दूसरि गई पताल, नाम प्रभावति हरन दुख।
तीसरि गग विशाल, सुर सतन कहँ करन सुख।।

चौपाई—आइ भगीरथ तब शिर नावा। बोली सुरसरि वचन सुहावा।।
वेगवत नृप रथ तै आनू। तुरग मरुत गति जिमि रथ भानू।।
तेहि रथ चढि नृप चल मम आगे। चलिहौ मैं तव पाछे लागे।।
सुनि नृप तुरत दिव्य रथ आना। चढेउ हृदय सुमिरत भगवाना।।
चली अग्र करि नृपहि सुरसरी। देवन मुदित सुमन झर करी।।
चलत तेज कछु वरणि न जाई। टूटहिं तरु गिरि शिला सुहाई।।
करहिं कोलाहल बहु जिय जाती। कमठ नक्र व्याकुल बहु भाँती।।
मज्जन करहिं देवता आई। मुनिगण सिद्ध रहे तहँ छाई।।

सोरठा—तर्पन कर मन लाइ, हर्ष हृदय नहिं जात कहि।
दरशन ते अघ जाइ, तरहिं सकल सुर मुनि कहहिं।।

चौपाई—करै जो मज्जन तप मन लाई। तिन की महिमा कहि न सिराई।।
स्यदन पर नृप सोहत कैसे। तेजवत रवि देखिय जैसे।।
लाँघत शैल सुहावन देशा। पाछे सुरसरि अग्र नरेशा।।
हरिद्वार समीप तब आई। तीर्थ देखि सुरसरि मन भाई।।
तीरथ हूँ मन भा सुख भारी। जब प्रयाग पहुँची अघहारी।।

तहँ सज्जन कीन्हे दुख जाई। बहुरि देवसरि काशी आई॥
सो शिवपुरी सहज सुखदाई। बरनि न जाइ मनोहरताई॥
औरौं तीर्थ विविधि विधि जानी। गई तहाँ किमि कहौं बखानी॥
मग लोगन कहँ करति सनाथा। जाइ चली इहि विधि रघुनाथा॥

दोहा—मिली बहोरि समुद्र महँ, उदधि हृदय हरषान।
लगेउ सराहन भगिरथहिं, तुम सम धन्य न आन॥

चौपाई—कीन्हेउ अस जस करै न कोई। तप महिमा बल कस नहिं होई॥
सगर तनय तारे ततकाला। हर्षवत तब भयउ भुआला॥
औरौ रहे जे कुल महँ कोऊ। तिन के सग तरे सब ओऊ॥
सकल सुरन्ह सँग तहाँ विधाता। नृप सन आइ कही अस बाता॥
धन्य भगीरथ जग यश लयऊ। तुम समान नृप और न भयऊ॥
आपनि सत्य प्रतिज्ञा करऊ। समत वेद सबहिं मख दयऊ॥
गगासागर सब केउ कहही। अघ उलूक देखत रवि डरही॥
भागीरथी नाम अस कहही। सुर मुनि नाग सिद्ध यश लहही॥
अस कहि विधि निज लोक सिधाये। इहाँ भगीरथ अति सुख पाये॥

छन्द—पाये अमित सुख बहुरि पूजेउ सुरसरिहि मन लाइ के।
तब दीन्ह आशिष मुदित गंगा नृप गये सुख पाइ कें॥
इहि भाँति मुनि गंगा कथा तब राम ऋषि चरणन नये।
कह दास तुलसी राम लषनहिं महामुनि आशिष दये॥

दोहा—कौशिक आशिष अमिर्य सम, सुनि हर्षे रघुनाथ।
पाइ बहुरि सुख प्रभु कहेउ, बेगि चलिय मनि नाथ॥

(पृ० ५०६, उत्तरार्द्ध)

सहित बधूटिन्ह कुँअर सब तब आये। पितु पास···के आगे का क्षेपक (रामकलेवा)

भोर भये अपने कुमार को जनक बेगि बुलवाये।
सुनि कै पितु सँदेश लछमीनिधि सखन सहित तहँ आये॥
सादर किये प्रणाम चरण छुइ लखि बोले मिथिलेशू।
गमनहु तात तुरत जनवासे जहँ श्री अवधनरेशू॥
विनय सुनाय राय दशरथ सो पाय रजाय सचेतू।
आनहु चारिउ राजकुमारन करन कलेऊ हेतू॥
यह सुनि शीश नाय लछमीनिधि भरि उर मोद उमगा।
सखन समेत मन्द हँसि गमने चढ़ि चढ़ि चपल तुरगा॥
कलनि दिखावत हय थिरकावत करत अनेक तमासे।
मृदु मुसकात बतात परस्पर पहुँचि गये जनवासे॥
सखन सहित तहँ उतरि तुरग ते मिथिलापति के वारे।
चारिहु सुत युत अवधराज को सादर जाय जुहारे॥
अति सुख निधि लछमीनिधि को लखि सखन सहित सतकारे।
रघुकुल दीप महीप हाथ गहि निज समीप बैठारे॥
तेहि क्षण सानुज निरखि राम छवि सखन सहित सुखमाने।
लछमीनिधि मुख, दरश पाइ कै रामहु नैन जुड़ाने॥
तब श्रीनिधि कर जोरि भूप सो कोमल बैन उचारे।
करम कलेऊ हेत पठावो, चारिहु राजदुलारे॥

सुनि मृदुवचन प्रेमरस साने दशरथ मृदु मुसक्याने।
चारहु कुँवर बुलाय बेगही बिदा किये सुखमाने ।।
जनक नगर की जान तयारी सेवक सब सुख पाये।
निज निज प्रभुहि सँचारन लागे लै भूषण वर बागे ।।
रघुनदन शिर पाग जरकसी लसी त्रिभगी बाँधी।
तिमि नौरगी झुकी कलगी रुचि रुचि पैंजनि साधी ।।

दोहा—बरनि सकै को राम को, अनुपम दूलह भेष।
जेहि लखि शि सनकादि को, रहत न तनहि सरेष ।।
इमि सजि अनुज सहित रघुनन्दन चारो राजदुलारे।
बढे उमगन चढे रगन अगन वसन सँभारे ।।

जे रघुवशी कुँवर लाडिले प्रभु कहँ प्राण पियारे।
चढे तुरंग सग तेउ गमने राम रग मतवारे ।।
राम वामदिशि श्री लछमीनिधि सखन सहित तेउ सोहै।
चचल बागे किये तुरिन्ह की बातै करत हँसोहै ।।
जगवदन जेहि नाम जाहिरो रघुनन्दन को बाजी।
ता को गुण छवि कहँ लौ बरणौ जोहि होत मन राजी ।।
जित रुख पावै तित पहुँचावै छन आवै छन जावै।
जिमि जिमि थमि थमि थिरकि भूमि पर गतिन ततिन दरशावै ।।
फाँदत चंचल चारु चौकड़ी चपलहु के चख झाँपै।
भरत कुँवर को तुरँग रँगीलो वरणि जाइ कहु कापै ।।
चम्पा नाम चाल चटकीली जेहि पर रिपुहन भाये।
सब समाज के आगे निरतै मोर कुरग लजाये ।।
जो कहुँ नेकहु हाथ उठावत कई हाथ उठि जातो।
बार बार चुचुकारि दुलारत ताहू पर न जुडातो ।।
लक्खी घोडा लषनलाल को बाँको निपट चलाको।
उडि उडि जात वायुमंडल को परत न पग महि ताको ।।
तरफराय उडि जाय परत है लछमीनिधि हय पाही।
उचित विचार हँसे रघुवशी रामहु मृदु मुसकाही ।।
तकि तुरग की चचलताई लषन की देखि चढाई।
रघुवशी निमिवशी सिगरे ठगि से रहे बिकाई ।।
राम आदि जे कुँवर लाडिले तेउ लखि भरे उछाहै।
रीझि रीझि तहँ लषनलाल को बारहिबार सराहै ।।
इमि मग होत विलास विविध विधि विपुल बाजने बाजै।
सुनत नकीब पुकार नगर तिय कढि बैठी दरवाजै ।।
कोउ तिय निखिर वदन की सुखमा अति सुख महँ सो पागी ।।
भरे सनेह देह सुधि नाही रामरूप अनुरागी ।।
कोउ तिय देखि अतूला दूल्हा अति सनेह तनु भूला।
फूला नैन मैन मन भूला लागि प्रीति को हूला ।।
कोउ घूँघट पट खोलि सुन्दरी मणि मुँदरी लै पानी।
देखत दूल्हा रूप राम की आनद समानी ।।

दोहा—कोउ सूरति लखि माँवरि, तोरति तृण सुख पाग।
माधुरि मूरति मे पगी, निज मूरति सुख त्याग।।

कोउ रघुनदन छवि विलोकि कै बोली सुन सखी बैना।
राजकुँवर ये करन कलेऊ जात जनक के ऐना।।
इन को श्रीनिधि गये लिवाई आये चारहु बेटा।
रँगभीने रघुवशी छैला दशरथ राजदुल्हेटा।।
घनि यह भाग हमारे प्यारी जिन पर नैन निहारे।
न तु दर्शन दुर्लभ दूल्हा के रविकुल प्राण पियारे।।
भाग सुहाग आज भल भायो श्री मिथिलेश की बेटी।
सुन्दर श्याम माधुरी मूरति जिन जिन भुज भर भेटी।।
बोलि अपर सखी सुन सजनी भली बात बनि आई।
हमहुँ चलै सब जनक महल को हँसिये इन्है हँसाई।।
इमि मृदु बातै करत परस्पर भईं प्रेमवश वामा।
सुनत जात मुसकात अनुजयुत कृपा सिन्धु श्री रामा।।
द्वार समीप देखि अति सुन्दर मणिमय चौक सँवारे।
राजकुँवर रघुवशिन के तहँ ठाढ भये मतवारे।।
उधर जाय लहि सिया मातु की नगर सुवासिन नारी।
कंचन कलश सजे शिर ऊपर पल्लव दीप सँवारी।।
गावत मंगल गीत मनोहर कर ले कचनथारी।
परछन चली हेतु रघुबर को वहु आरती सँवारी।।
जाय समीप निहारि रामछवि दृग आनँद जल बाढी।
छकित रही वर वदन विलोकित चकित रही तहँ ठाढी।।
रामरूप रँग गईं रँगीली लखि दूलह सुख सारा।
तन मन रह्यो सरेख न काहू को करै मगल चारा।।
प्रेम पयोधि मगन सब प्यारी धरि पुनि धीरज भारी।
परछन अली भली विध कीन्हो रोकि विलोचन वारी।।
लछमीनिधि तब उतरि तुरँग ते चारिउ कुँवर उतारे।
पाणि पकरि रघुनदन जी को भीतर महल सिधारे।।
जहँ पिकबैनी सब सुख ऐनी बैठ सुनैना रानी।
इन्द्रानी की कौन चलावै लखि रति रूप लुभानी।।
चद्रमुखी चहुँ ओर बिराजै कोउ कर चमर चलावै।
कोउ सखि देखि राम की शोभा आरति मगल गावै।।
तेहि क्षण तहाँ गये रघुनदन मन फन्दन वर वेषा।
देखत उठी सकल रनिवासै रह्यो न तनुहि सरेषा।।
करि आरती वारि मणि भूषण सादर पाय पखारे।
चारि रग के चारि सिंहासन चारिहु वर बैठारे।।
लखि छवि ऐना सासु सुनैना एक न पलक तजै ना।
भूली चैना बोली सकै ना कहत बनै ना बैना।।
तकि जकि रही तनक नहिं डोलै मगन महा मुँह माही।
रामरूप रँगि गई रँगीली आँसु बहे दृग जाही।।

इमि तहँ दशा विलोकि सासु की राम सुनत मनमाही।
काह भयो यह आज रानि को पूछत भे सकुचाही ॥
चतुर सखी चित चरचि राम सो बोली मधुरी बानी।
यह तुम्हार गुण है सब लालन और न कछु उर आनी ॥
सुनत वचन यह तुरत धीर धरि जगी सुनैना रानी।
बार बार बहु लीन्ह बलैया चूमि कपोलन पानी ॥
माधुरि मूरति साँवलि सूरति की तृण तोरति रानी।
रीझि रीझि तहँ रामरूप पै बिन ही मोल बिकानी ॥
पुनि कर जोरि राम सो रानी बोली अति मृदु मोई।
उठहु लाल अब करहु कलेऊ जो जो रुचि हिय होई ॥
यह सुनि सखन समेत उठे तहँ चारहु राजदुलारे।
भरी भाग्य अनुराग सुनैना निज कर पाय पखारे ॥
रचना अधिक पदक के पीठन बैठारे सब भाई।
कचनथारी मृदुल सुहारी परसी विविध मिठाई ॥
रुचि अनुरूप भूपसुत जेवत पवन डुलावै सासू।
बूझि बूझि रुचि बिंजन परोस वरणि न जाइ हुलासू ॥
स्वाद सराहि पाय पुनि अँचये सखियन पान खवाये।
बैठे पहरि पोशाक सखन युत विविध सुगध लगाये ॥

दोहा—राज ऐन सब चैन युत, राजै राजकुमार।
जिन को हास विलास लखि, लाजहिं लाखन मार ॥

(पृ० ३०८ उत्तरार्द्ध) कौशल्या

दक्षिण कोशलपुरी के राजा भानुमान की कन्या का नाम कौशल्या था। कन्या का विवाह राजा ने उत्तर कोशल देश के महाराजा दशरथजी के साथ कर दिया था और दहेज मे बहुत धन सम्पत्ति दी थी। कौशल्याजी के सद्‌गुणो का कथन करना अशक्य है तथा उनके भाग्य के बारे मे इतना ही कहना बस है कि वे चक्रवर्ती बडे पराक्रमी राजा दशरथजी की पत्नी और विष्णु के अवतार श्री रामचन्द्रजी की माता थी। राजा दशरथजी इनका बडा आदर करते थे। ये ही प्रधान पटरानी थी। (यद्यपि कुछ काल के लिए दशरथजी का अधिक प्रेम कैकेयी पर लग गया था तो भी पुत्रेष्टि यज्ञ मे प्राप्त चरु का आधा भाग कौशल्या ही को दिया गया था)। कौशल्याजी अपनी सपत्नी कैकेयी पर क्रोधित न हुई थी। यद्यपि उसने इनके सत्य शील पुत्र को वनवास दे दिया था। इसके सिवाय इन्होने भरत को बहुत कुछ समझाया था। (देखो अयोध्याकाण्ड रामायण की श्री विनायकी टीका की पुरौनी) महाराजा दशरथजी ने स्वय कहा था कि प्रिय-वादिनी कौशल्या मेरी सेवा मे टहलनी की नाईं, एकान्त वार्ता मे सखी सरीखी, धर्माचरण मे भार्या की भाँति, उत्तम सलाह देने मे बहिन की नाईं और भोजन के समय मे माता की भाँति बर्ताव करती है। इन्होने धर्म को श्रेष्ठ समझ कर अपने प्यारे पुत्र के चौदह वर्ष वनवास का विछोह-दुख सहन कर लिया था। इन्होने सवतिया डाह की विपत्ति को धैर्यता से सहन किया था। परन्तु अपनी सौत पर क्रोध नही किया था। उनका सरल स्वभाव और निश्छल कथन गोस्वामीजी के वचनो मे यो है—

चौपाई—सरल सुभाव राम महतारी। बोली वचन धीर धर भारी ॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धर्मक टीका ॥

दोहा—राज देन कहि दीन्ह बन, मोहि न सो दुख लेश ।
तुम बिन भरतहि भूपतिहि, प्रजहि प्रचड कलेश ।।

चौपाई—जो केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड माता ।।
जो पितु मात कहेउ बन जाना । तौ कानन शत अवध समाना ।।
(देखो अयोध्याकाण्ड रामायण की श्री विनायकी टीका)

कैकेयी

केकय नाम का देश, जिसको आजकल हिरात कहते है, अफगानिस्तान मे है । वहाँ के राजा का नाम अश्वपति था । राजा जनक और अश्वपति समकालीन थे। अश्वपति की कन्या कैकेयी थी, जिसका विवाह महाराजा दशरथजी से हुआ था । विवाह होने के पूर्व ही कैकेयी के पिता ने दशरथजी से यह प्रतिज्ञा करा ली थी कि हमारी पुत्री से जो पुत्र उत्पन्न होवे, वही अयोध्या का भावी महाराज होवे (कारण, कौशल्याजी उनकी पटरानी थी ही, परन्तु उस समय तक निस्सन्तान थी) । अवस्था मे और रानियो से छोटी तथा परमसुन्दरी होने के कारण कैकेयी दशरथजी की प्यारी पत्नी बन बैठी । महाराजा मृगया तथा सग्राम के समय भी उसे अपने साथ रखते थे और कैकेयी भी राजाजी को बहुत चाहती थी । तभी तो सग्राम आदि कष्ट के समय उसने राजाजी को प्रसन्न कर दो वरदान पा लिये थे । (देखो अयोध्याकाण्ड रामायण की श्री विनायकी टीका की टि० पृ० ४५) . परन्तु जेठे पुत्र रामचन्द्रजी के राज्याभिषेक के समय कैकेयी भी जो रामचन्द्रजी पर भरत से बढकर प्रेम रखती थी, अपने पिता के वचन तथा अपने वरदानो को भूल गई थी। इसके दो मुख्य कारण कहे जा सकते है (१) श्री रामचन्द्रजी का सच्चरित्र, (२) अपनी विमाता कैकेयी पर उनकी परम पूज्य भक्ति ।कैकेयी का जन्म राजवश में हुआ था । वह अपने सौन्दर्य से दशरथजी को विवाह से पहले मोहित कर चुकी थी । उसके पति भी चक्रवर्ती महाराजा दशरथजी थे, जिन्हे यह परम प्यारी थी । परन्तु यह अपने भोले स्वभाव के कारण दूसरे के कथन पर शीघ्र ही विश्वास कर लेती थी और इसी कारण से मथरा के बहकाने से इस प्रकार स्त्रीहठ पकड गई कि रामचन्द्र सरीखे प्यारे पुत्र को वनवास देने मे न सकानी और यही उसके जीवन का दूषित कर्म समझा जाता है । वरदान माँगकर रामचन्द्रजी को वनवास भेजने और भरत को गद्दी पर बिठलाने आदि की कथा अयोध्याकाण्ड रामायण मे विस्तारपूर्वक है । श्री रामचन्द्रजी और भरतजी के आचरण से कैकेयी को पीछे से पछताना पडा था, परन्तु सहसा कर पीछे पछताना व्यर्थ ही हो गया ।

सुमित्रा

सिंघल देश के सुमित्र नाम के प्रतापी गुणवान् राजा की कन्या का नाम सुमित्रा था । यह भी रूपलावण्यवती थी । राजा ने अपने मंत्री के द्वारा महाराजा दशरथ को सूचना भेजी कि मैं अपनी कन्या का विवाह आपके साथ करना चाहता हूँ । इसके अनुसार महाराजा ने सुमित्रा का पाणिग्रहण किया । पहिले ये कौशल्या और कैकेयी से विवाह कर चुके थे । इस हेतु सुमित्रा तीसरी पटरानी हुई । परन्तु दशरथजी का विशेष प्रेम कैकेयी ही पर रहता था । पतिप्राणा साध्वी जिस प्रकार पति देवता को प्रेमभक्ति भरी दृष्टि से देखा करती है; सुमित्रा देवी भी राजा दशरथ को उसी प्रेमभक्ति भरी दृष्टि से देखा करती थी । इसके सिवाय सुमित्राजी का प्रेम श्री रामचन्द्र और भरत पर विशेष था । सपत्नी के पुत्रो से द्वेष न कर उनसे प्रेम रखकर अपने पुत्रो से उनकी सेवा कराना यह बहुत ही प्रशसनीय गुण सुमित्राजी मे था । उनमे दूसरा गुण इससे भी बढकर यह था कि वे अपनी सपत्नियो के साथ ऐसा उत्तम व्यवहार रखती थी कि मानो सगी बहिने हो । इन्होंने अपनी सहृदयता, सुशीलता, धर्मपरायणता आदि गुणो के

कारण कौशल्याजी को मानो अपने वश ही मे कर रक्खा था।

सुमित्रा देवी का सत्यधर्म पर अनुराग देखिये। रामचन्द्रजी के वनवास होने पर जब शोकाकुल दशरथजी कौशल्याजी के महलो मे गये, तब उनकी दशा से दु खित तथा रामचन्द्र सरीखे पुत्र आदि के वियोग से व्यथित कौशल्याजी को सुमित्राजी ने किस प्रकार से ढाढस बँधाया था ! उसे सुनकर कौन ऐसा पुरुष होगा जो सुमित्राजी को पूर्ण देवी मानकर उनकी प्रशसा न करेगा। क्योकि उस समय सुमित्राजी को भी उसी प्रकार के वियोग दु खो का सामना करना पडता था।

सुमित्राजी बोली कि हे बहिन ! रामचन्द्रजी सर्वगुण-सम्पन्न है। उनके लिए किसी प्रकार की विपत्ति का भय नही है। उनके लिए शोक करना उचित नही है। रामचन्द्रजी सत्यवादी है। वे अपने पिता की सत्यता दृढ रखने के लिए ही राज्य को छोड वनवासी हुए है। उनका अनुराग उत्कर्मों मे रहता है। ऐसे पुत्र के थोडे समय के लिए वियोग का शोक करना योग्य नही दिखता। और कहने लगी कि—

कीजै कहा जीजी जू सुमित्रा परि पाय कहै तुलसी सहावै विधि सोई सहियतु है।
रावरो सुभाय राम जन्म ही ते जानियत भरत की मातु को सो कीवो चहियतु है ॥
जाई राजघर ब्याहि आई राजघर महा राजपूत पाये हूँ न सुख लहियतु है।
देह सुधा गेह ताहि मृग ने मलीन कियो ताहू पर चाह बिन राहु गहियतु है ॥

रामचन्द्र निर्दोषी है। शीघ्र ही जय प्राप्त कर जानकी तथा लक्ष्मण समेत लौट आवेगे। भविष्य के सुख का विचार कर थोडे दिनो के वियोग को लोग आशा के कारण सहन कर लेते है।

जबकि सब अवध निवासी व्याकुल हो रहे थे दशरथजी को तो सुधबुध ही नही थी और कौशल्याजी भी शोकाकुल हो रही थी। ऐसे सकट के समय मे अपने पति की दशा देख और पुत्रो तथा पतोहू के वियोग से घबराई हुई सुमित्राजी भी जब धैर्य को धारण कर कौशल्याजी को उचित रीति से समाधान कर रही थी, तो उन्हे साक्षात् देवी ही कहना अनुचित न होगा। क्योकि इस समय उन्होने धर्म, विश्वास, सत्यप्रियता, कर्तव्यनिष्ठा मानवी चरित्र से जानकारी आदि का अच्छा परिचय दिया था। धन्य है ऐसी माताओ को और उनको उपजाने वाली भारत भूमि को !

विश्वासपात्र प्राणी यदि छल-कपट का भडार ही निकल पडे तो उसके द्वारा प्राप्त हुई वेदना असह्य हो जाती है। ऐसे असह्य दु ख के समय जो ढाढस बँधा सकता है उसी के आचरण अनुकरणीय है।

साराश यह है कि ऐसी सच्चरिता आदर्श देवी मे भार्याभाव, मातृभाव, सपत्नीभाव और विमाताभाव सभी उत्तम थे। तभी तो रसिकबिहारीजी ने कहा है कि 'कौशल्या सुमित्रा सी न माता सु विवेकी पुनि'······

(पृ० ३१६ उत्तरार्द्ध) सस्कार

बीजदोष और गर्भदोष के निवारणार्थ तथा "ब्राह्मीय देह" करने के लिए द्विजातियो मे अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रीय और वैश्य जातियो मे जो कर्म किये जाते है, उन्हे सस्कार कहते है (देखो मनुसहिता; दूसरा अ० श्लोक २६-२८) मनुसमृति मे द्वादश सस्कार कहे है। व्यासजी सोलह, कहते है। कही-कही दस ही बतलाये है। गौतम ऋषि तो चालीस सस्कार बतलाते है व आठ आत्मीय गुण मिला कर कही अड़तालीस सस्कार माने हैं।

इनमे से तीन (अर्थात् गर्भाधान, पुसवन और सीमत) सस्कार जन्म के पहले ही होते है। शेष जन्म होने के अनन्तर।

व्यासजी के अनुसार षोडश सस्कार ये है —

(१) **गर्भाधान**—(यह स्त्री का सस्कार है) स्त्री के प्रथम रजोदर्शन के समय यह सस्कार होता है। गणेश नक्षत्र आदि की पूजा, पुण्याह वाचन, मातृका पूजन, नान्दीमुख श्राद्ध आदि इसके आठ अग है।

(२) **पुंसवन**—गर्भ रहने पर यह सस्कार दूसरे से आठवें मास तक होता है। यह गर्भ के बालक का सस्कार है न कि स्त्री का। इसमे स्त्री के केश विशेष प्रकार से बाँधे जाते है। और नाक मे सोमलता या वट वृक्ष की जड का चूर्ण लगाया जाता है। यह पुत्रजन्म के उद्देश्य से किया जाता है।

(३) **सीमन्त**—सीमन्तोन्नयन सस्कार गर्भ से चौथे से आठवे मास तक होता है। यह स्त्री का सस्कार है। कुशा से स्त्री के केशो की माग की जाती है और कही-कही जघा पर जलपूर्ण घट भी रक्खा जाता है।

(४) **जातिकर्म**—नालच्छेदन के पूर्व यह बालक का सस्कार है।

(५) **नामकरण**—जन्म से दसवे-बारहवे दिन बालक का नाम रखने को कहते है।

(६) **निष्क्रमण**—चौथे मास मे बालक को पहले-पहल घर से बाहर ले जाने और सूर्य के दर्शन कराने को कहते है।

(७) **अन्नप्राशन**—छठवें मास अथवा कुलाचारानुसार बालक को पहले-पहल खीर चटाने को कहते है।

(८) **चौल (चूड़ा)**—प्रथम या तृतीय वर्ष मे बालक के मुंडन को कहते है।

(९) **कर्णवेध**—जन्म से बारहवे या सोलहवे दिन या ६, ७, ८वें मास या ऊने वर्षों मे. बालक के कान बीधने को कहते है।

(१०) **उपनयन**—लडके को आचार्य के समीप गायत्री उपदेश के हेतु ले जाने को उपनयन, यज्ञोपवीन, व्रतबध, जनेऊ या बरुआ आदि कहते है। पाचवे या आठवें वर्ष जनेऊ पहन कर गायत्री का उपदेश लिया जाता है। इस मुख्य सस्कार के बिना द्विजातीय वेद पढने का अधिकारी नही होता।

(११) **वेदारंभ**—वेद पढने के कर्म को वेदारभ संस्कार कहते हैं।

(१२) **केशान्त समावर्तन**—वेदपाठ समाप्त होने पर गुरु की आज्ञा से घर वापिस आने के सस्कार को कहते है। इसमे शिष्य के केश काटे जाते हैं।

(१३) **विवाह**—आठ प्रकार का है (देखो मनुस्मृति, अध्याय तीन, श्लोक २१)

(१४) **विवाहाग्नि परिग्रह**—विवाह की अग्नि का ग्रहण।

(१५) **त्रेताग्नि संग्रह**—तीन वेदो की विधि से अग्नि का सग्रह।

(१६) **अन्त्येष्टि**—यह मृतक का सस्कार है।

श्राद्ध

आपस्तम्ब धर्मसूत्र मे लिखा है कि पुरातन काल मे देव और मनुष्य पृथ्वी पर एकत्र रहते थे। यज्ञ करने के पुण्य से देवो को स्वर्ग मिला और मनुष्य पृथ्वी पर ही रह गये। यह देख कर मनुजी ने श्राद्धकर्म की राह दिखाई। वे लिखते है कि वेद पढे हुए ब्राह्मणों को हव्य कव्य (अर्थात् देवताओ और पितरो के निमित्त उद्देश्य किया हुआ अन्न) देवे। और अधिक पूज्य ब्राह्मणो को भी देने से बडा फल होता है। (देखो मनुसहिता, तीसरा अध्याय, १२८वा श्लोक)। देव निमित्त श्राद्ध को नान्दीमुख और पितृ निमित्त श्राद्ध को अश्रुमुख श्राद्ध कहते हैं। (देखो बालकाण्ड, रामायण, उत्तरार्द्ध टि०, पृ० ३१५-३१६)।

श्राद्ध का असल अभिप्राय योग्य ब्राह्मणो को (जिनका जीवन पुराने समय में संसारी

और इसी हेतु श्राद्ध मे जिनको भोजन-दक्षिणा आदि देने का विधान है उसमे सगे, सम्बन्धी, मित्र जिनसे अपना स्वार्थ निकले उन मनुष्यो को सम्मिलित करना ठीक नही समझा जाता था। श्राद्ध मे सुपात्र और केवल अतिथि ही को ग्रहण करना लिखा है। पुराने ग्रथो मे 'श्राद्धमित्र' (जो दक्षिणा आदि लेने से मित्र हो गये है) की बडी निन्दा की है। मोक्षमूलर साहब ने तो यहाँ तक कहा है कि ईसाई धर्म मे श्राद्ध का न होना एक बड़ी त्रुटि है। परोपकारार्थ प्रत्येक वस्तु का दान पितरो मे प्रबल भक्ति के सिवाय साधारण मनुष्यो से बहुत कम ही होता है।

बालकाण्ड रामायण की प्रसिद्ध कहावते (पूर्वार्द्ध)

कहावत

पृष्ठ	
३१	साधुचरित शुभ सरिस कपासू। निरस विशद गुणमय फल जासू॥
३२	जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। वन्दनीय जेहि जग यश पावा॥
३२	मुद मगलमय सन्तसमाजू। जो जग जगम तीरथराजू॥
३५	मज्जनफल पेखिय ततकाला। काक होहिं पिक बकहु मराला॥
३५	सुनि आचरज करै जनि कोई। सतसगति महिमा नहिं गोई॥
३६	बिन सतसग विवेक न होई। रामकृपा बिन सुलभ न सोई॥
३६	सठ सुधरहिं सतसगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई॥
३७	बिधिबस सुजन कुसगति परही। फनि मनि सम निज गुन अनुसरही॥
३७	बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥
३७	सो मो सन कहि जात न कैसे। 'शाक वनिक मनि गुन गन जैसे॥
३८	बहुरि वन्दि खलगण सतिभाये। 'जे बिन काज दाहिने बॉये'॥
३९	परहित हानि लाभ जिन केरे। उजरे हर्ष विषाद बसेरे॥
४०	जे परदोष लखहिं सहसाखी। परहित घृत जिनके मनमाखी॥
४१	उदयकेतु सम हित सब ही के। कुम्भकरण सम सोवत नीके॥
४१	पर अकाज लग तनु परिहरही। जिमि हिमउपल कृषीदल गरही॥
४२	वचन बज्र जेहि सदा पियारा। सहसनयन परदोष निहारा॥
४३	पायस पालिय अति अनुरागा। होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा॥
४४	बिछुरत एक प्राण हरि लेही। मिलत एक दारुण दुख देही॥
४४	उपजहिं एक सग जल माही। जलज जोक जिम गुण विलगाही॥
४५	गुण अवगुण जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई॥
४५	भलो भलाई पै लहइ, लहइ निचाई नीच। सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच॥ ५॥
४५	खल गह अगुण साधु गुण गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा॥
४५	तेहि ते कछु गुण दोष बखाने। सग्रह त्याग न बिन पहिचाने॥
४६	कहहिं वेद इतिहास पुराना। विधि प्रपच गुण अवगुण साना॥
४७	जड चेतन गुण दोष मय, विश्व कीन्ह करतार। सन्त हस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार॥ ६॥
४७	काल स्वभाव करम बरिआई। भलेउ प्रकृतिवश चुकहिं भलाई॥
४८	खलउ करहिं भल पाइ सुसगू। मिटै न मलिन स्वभाव अभगू॥

४८ कर सुवेष जग बचक जेऊ । वेष प्रताप पूजियत तेऊ ॥
४८ उघरहि अन्त न होय निबाहू । कालनेमि जिमि रावण राहू ॥
४९ किये कुवेष साधु सनमानू । जिमि जग जामवन्त हनुमानू ॥
४९ हानि कुसग सुसगति लाहू । लोकहु वेद विदित सब काहू ॥
४९ गगन चढै रज पवन प्रसगा । कीचहि मिलै नीच जल सगा ॥
४९ साधु असाधु सदन शुक सारी । सुमिरहिं राम देहिं गनि गारी ॥
४९ धूम कुसगति कारिख होई । लिखिय पुराण मंजुमसि सोई ॥
५० ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुयोग सुयोग ।
होइ कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहिं सुलक्षण लोग ॥
सम प्रकाश तम पाख दुहुँ, नाम भेद विधि कीन्ह ।
शशि पोषक शोषक समझि, जग यश अपयश दीन्ह ॥
५२ सूझ न एकउ अग उपाऊ । मन मति रक मनोरथ राऊ ॥
५२ मति अति नीच ऊँच रुचि आछी । चहिय अमिय जग जुरइ न छाछी ॥
५२ ज्यौ बालक कह तोतरि बाता । सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता ॥
५३ निज कवित्त केहि लाग न नीका । सरस होउ अथवा अति फीका ॥
५३ जे पर भनित सुनत हरषाही । ते वर पुरुष बहुत जग नाही ॥
५३ जग बहु नर सरिता सम भाई । जे निज बाढि बढ़हिं जल पाई ॥
५३ सज्जन सुकृत सिन्धु सम कोई । देखि पूर विधु बाढ़हिं जोई ॥
५३ खल परिहास होइ हित मोरा । काक कहहिं कलकण्ठ कठोरा ॥
५६ विधुवदनि सब भाँति सँवारी । सोह न बसन बिना वर नारी ॥
५६ सब गुण रहित कुकविकृत बानी । राम नाम यश अकित जानी ॥
५६ सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही । मधुकर सरिस सन्तगुणग्राही ॥
५७ सोइ भरोस मोरे मन आवा । कहिं न सुसग बडप्पन पावा ॥
५७ धूमउ तजइ सहज करुआई । अगरु प्रसग सुगन्ध बसाई ॥
५७ भव अग भूति मसान की, सुमिरत सोहावनि पावनी ॥
५८ प्रिय लागहि अति सबहि मम, भनिति रामजस सग ।
दारु बिचारु कि करइ कोउ, वन्दिय मलय प्रसग ॥
५९ तैसेहि सुकवि कवित बुध कहही । उपजहिं अनत अनत छवि लहही ॥
५९ कीन्हे प्राकृत जन गुण गाना । शिर धुनि गिरा लागि पछताना ॥
६० जे जनमे कलिकाल कराला । करतब वायस वेष मराला ॥
६० चलत कुपथ वेद मग छाँडे । कपट कलेवर कलिमल भाँडे ॥
६० बचक भक्त कहाइ राम के । किंकर कंचन कोह काम के ॥
६२ जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाही । कहहु तूल केहि लेखे माही ॥
६३ जेहि जन पर ममता अति छोहू । तेहि करुणा कर कीन्ह न कोहू ॥
६३ गई बहोर गरीब नेवाजू । सरल सबल साहिब रघुराजू ॥
६४ अति अपार जे सरित बर, जो नृप सेतु कराहिं ।
चढि पिपीलिकउ परम लघु, विन श्रम पारहि जाहिं ॥ १३ ॥
६५ जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरही । सो श्रमवादि बालकवि करही ॥
६६ सरल कवित कीरति विमल, सोइ आदरहिं सुजान ।
सहज बैर बिसराय रिपु, जो सुनि करहिं बखान ॥

७१ अनमिल आखर अर्थ न जापू । प्रकट प्रभाव महेश प्रतापू ।।
८२ महिमा जासु जान गणराऊ । प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ ।।
८२ जान आदिकवि नामप्रतापू । भयउ शुद्ध कर उलटा जापू ।।
८४ नामप्रभाव जान शिव नीको । कालकूट फल दीन्ह अमी को ।।
९० राम नाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहरहुँ, जो चाहसि उजियार ।। २१ ।।
९१ जपहिं नाम जन आरत भारी । मिटहिं कुसकट होहि सुखारी ।।
९२ चहुँ चतुरन कहँ नाम अधारा । ज्ञानी प्रभुहि विशेष पियारा ।।
९२ चहुँ युग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ । कलि विशेष नहिं आन उपाऊ ।।
९५ सबरी गीध सु सेवकनि, सुगति दीन्ह रघुनाथ ।
नाम उधारे अमित खल, बेद बिदित गुनगाथ ।। २४ ।।
९६ ब्रह्म राम ते नाम बड, बरदायक वरदानि ।
रामचरित सत कोटि महँ, लिय महेस जिय जानि ।। २५ ।।
९७ नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू । भक्तशिरोमणि भे प्रहलादू ।।
९८ ध्रुव सगलानि जपेउ हरिनामू । पायेउ अचल अनूपम ठामू ।।
१०१ भाय कुभाय अनख आलसहूँ । नाम जपत मगल दिशि दशहूँ ।।
१०२ लोकहुँ वेद सुसाहिब रीती । विनय सुनत पहिचानत प्रीती ।।
१०२ सुकवि कुकवि निज मति अनुहारी । नृपहि सराहत सब नर नारी ।।
१०२ साधु सुजान सुशील नृपाला । ईश अश भव परम कृपाला ।।
१०३ रीझत राम सनेह निसोते । को जग मन्दमलिन मति मोते ।।
१०३ सठ सेवक की प्रीति रुचि, रखिहहिं रामकृपालु ।
उपल किये जलयान जेहि, सचिब सुमति कपि भालु ।।
१०४ अति बड मोरि ढिठाई खोरी । सुनि अघ नरकहु नाक सिकोरी ।।
१०४ कहत नसाइ होइ हिय नीकी । रीझत राम जानि जन जी की ।।
१०५ रहत न प्रभुचित चूक किये की । करत सुरति सौ बार हिये की ।।
१०५ जेहि अघ बधेउ व्याध जिमि बाली । फिरि सुकठ सोइ कीन्ह कुचाली ।।
१०५ सोइ करतूति विभीषण केरी । सपनेहु सो न राम हिय हेरी ।।
१०७ जानहिं तीन काल निज ज्ञाना । करतल गत आमलक समाना ।।
१०८ श्रोता वक्ता ज्ञाननिधि, कथा राम की गूढ ।
किमि समझै यह जीवजड, कलिमल ग्रसित विमूढ ।। ३० ।।
१०९ रामकथा कलि पन्नग भरनी । पुनि विवेक पावक कहँ अरनी ।।
११३ सद्गुरु ज्ञान विराग योग के । विबुध वैद्य भव भीम रोग के ।।
११४ मंत्र महामणि विषय व्याल के । मेटत कठिन कुअक भाल के ।।
११४ हरन मोहतम दिनकर कर से । सेवक शालिपाल जलधर से ।।
११४ अभिमत दानि देव तरुवर से । सेवत सुलभ सुखद हरि हर से ।।
११४ कुपथ कुतर्क कुचालि कलि, कपट दम्भ पाखड ।
दहन रामगुणग्राम इमि, इधन अनल प्रचड ।।
११६ राम अनत अनत गुण, अमित कथा विस्तार ।
सुनि आचरज न मानिहहिं, जिनके विमल विचार ।। ३३ ।।
११७ चारि खानि जग जीव अपारा । अवध तजे तनु नहिं ससारा ।।
१२५ अति खल जे विषयी बक कागा । इहि सर निकट न जाहिं अभागा ।।

१२५ सम्बुक भेक सिवार समाना। इहाँ न विषय कथा रस नाना॥
१२५ तेहि कारण आवत हिय हारे। कामी काक बलाक बेचारे॥
१२५ आवत इहि सर अति कठिनाई। रामकृपा बिन आइ न जाई॥
१२६ गृह कारज नाना जजाला। तेइ अति दुर्गम शैल विशाला॥
१२६ जे श्रद्धा शम्बल रहित, नहिं सतन्ह कर साथ।
तिनकहँ मानस अगम अति, जिनहिं न प्रिय रघुनाथ॥ ३८॥
१२६ जो करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहि नीद जुडाई होई॥
१२७ जडता जाड विषम उर लागा। गयहु न मज्जन पाव अभागा॥
१२७ करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवै समेत अभिमाना॥
१२७ जो बहोरि कोउ पूछन आवा। सर निन्दा कर ताहि बुझावा॥
१२७ सकल विघ्न व्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपा विलोकहिं जेही॥
१३५ जिन इहि वारि न मानस धोये। ते कायर कलिकाल बिगोये॥
१३५ तृषित निरखि रवि कर भव वारी। फिरहिं मृगा जिमि जीव दुखारी॥
१४१ सन्त कहहिं अस नीति प्रभु, श्रुति पुराण जो गाव।
होइ न विमल विवेक उर, गुरु सन किये दुराव॥ ४५॥
१४६ अति विचित्र रघुपति चरित, जानहिं परम सुजान।
जे मतिमन्द विमोहवश हृदय धरहिं कछु आन॥ ४९॥
१४६ भरि लोचन छवि सिंधु निहारी। कुसमय जानि न कीन्ह चिन्हारी॥
१५० सती कीन्ह चह तहहुँ दुराऊ। देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ॥
१५४ अस प्रण तुम बिन करै को आना। रामभक्त समरथ भगवाना॥
१५४ जलपय सरिस बिकाय, देखहु प्रीत कि रीति भल।
बिलग होइ रस जाय, कपट खटाई परत ही॥ ५७॥
१५५ निज अघ समझि न कछु कहि जाई। तपै अवा इव उर अधिकाई॥
१५६ नित नव सोच सती उर भारा। कब जैहो दुखसागर पारा॥
१५८ नहिं कोउ अस जन्मेउ जग माही। प्रभुता पाइ जाहि मद नाही॥
१५९ जो बिन बोले जाहु भवानी। रहै न शील सनेह न कानी॥
१५९ यदपि मित्र प्रभु पितु गुरु गेहा। जाइय बिन बोले न सँदेहा॥
१५९ तदपि विरोध मान जहँ कोई। तहाँ गये कल्याण न होई॥
१६१ यद्यपि जग दारुण दुख नाना। सबते कठिग जातिअपमाना॥
१६१ सन्त शम्भु श्रीपति अपवादा। सुनिय तहाँ जहँ अस मर्यादा॥
१६१ काटिय जीभ जु तासु बसाई। श्रवण मूँदि न त चलिय पराई॥
१६४ सहज बैर सब जीवन त्यागा। गिरि पर सकल करहिं अनुरागा॥
१६८ कह मुनीश हिमवंत सुन, जो विधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि, कोउ न मेटनहार॥ ६८॥
१६८ जो अहिसेज शयन हरि करही। बुध कछु तिन कहँ दोष न धरही॥
१६८ भानु कृशानु सर्व रस खाही। तिन कहँ मन्द कहत कोउ नाही॥
१६८ शुभ अरु अशुभ सलिल सब बहही। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहही॥
१६९ समरथ को नहिं दोष गुसाईं। रवि पावक सुरसरि की नाईं॥
१६९ सुरसरि जलकृत वारुणि जाना। कबहुँ न सन्त करहिं तेहि पाना॥
१६९ सुरसरि मिले सुपावन जैसे। ईश अनीशहि अन्तर तैसे॥
१६९ दुराराध्य पै अहहिं महेशू। आशुतोष पुनि किये कलेशू॥

१६९ जो तप करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥
१७० इच्छित फल बिन शिव अवराधे। लहिय न कोटि योग जप साधे॥
१७१ जो घरवर कुल होइ अनूपा। करिय विवाह सुता अनुरूपा॥
१७१ बरु पावक प्रगटै शशि माही। नारद वचन अन्यथा नाही॥
१७१ प्रिया सोच परिहरहु सब, सुमरहु श्री भगवान।
पारवतिहि जिन निर्मयउ, सो करिहहि कल्यान॥ ७१॥
१७२ तपबल रचै प्रपच विधाता। तपबल विष्णु सकल जगत्राता॥
१७२ तपबल शभु करहिं सहारा। तपबल शेष धरहिं महिभारा॥
१७३ तपअधार सब सृष्टि भवानी। करहु जाइ तप अस जिय जानी॥
१७७ मात पिता गुरु प्रभु की बानी। बिनहिं विचार करिय शुभ जानी॥
१७७ तुम सब भाँति परम हितकारी। आज्ञा शिर पर नाथ तुम्हारी॥
१७८ मन हठ परा न सुनइ सिखावा। चहत वारि पर भीत उठावा॥
१७८ नारद कहा सत्य सोइ जाना। बिन पखन हम चहहिं उड़ाना॥
१७८ सुनत वचन विहँसे ऋषय, गिरिसभव तव देह।
नारद कर उपदेश सुनि, कहहु बसेउ को गेह॥७८॥
१८० नारद सिख जु सुनहिं नर नारी। अवशि भवन तजि होहिं भिखारी॥
१८० मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आप सरिस सबही चह कीन्हा॥
– १८१ सहज एकाकिन्ह के भवन, कबहुँ कि नारि खटाहिं॥७९॥
१८१ सत्य कहहु गिरिभव तनु एहा। हठ न छूट छूटै बरु देहा॥
१८१ कनकौ पुनि पषाण ते होई। जारेहु सहज न परिहर सोई॥
१८२ नारद वचन न मैं परिहरऊँ। बसौ भवन उजरौ नहिं डरऊँ॥
१८२ गुरु के वचन प्रतीति न जेही। सपनेहु-सुगम न सुख सिधि तेही॥
१८२ जेहिकर मन रम जाहि सन, तेहि तेही सन काम॥८०॥
१८२ जन्म कोटि लग रगर हमारी। बरौ शभु नतु रहौ कुमारी॥
१८५ तदपि करब मै काज तुम्हारा। श्रुति कह परम धर्म उपकारा॥
१८५ परहित लागि तजै जो देही। सन्तत सन्त प्रशसहि तेही॥
१९३ सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन कर सहज सुभाऊ॥
१९४ तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ॥
१९७ जस दूलह तस बनी बराता। कौतुक विविध होहिं मग जाता॥
१९९ कहिय कहा कहि जाय न बाता। यम कर धार किधौ बरियाता॥
२०० जेहि विधि तुमहिं रूप अस दीन्हा। तेहि जडवर बावर कस कीन्हा॥
२०० जो फल चहिय सुरतरुहि सो, वरवश बबूरहि लागई॥
२०१ परघर घालक लाज न भीरा। बाँझ कि जान प्रसव की पीरा॥
२०१ अस विचारि सोचहु जनि माता। सो न टरै जो रचेउ विधाता॥
२०१ तुम सन मिटहिं कि विधि के अका। मातु व्यर्थ जानि लेहु कलका॥
२०१ दुख सुख जो लिखा लिलार हमारे, जाव जहँ पाउब तही॥
२०९ करेहु सदा शकरपदपूजा। नारिधर्म पतिदेव न दूजा॥
२०९ कत विधि सृजी नारि जग माही। पराधीन सपनेहुँ सुख नाही॥
२११ शिवपदकमल जिनहिं रति नाही। रामहि ते सपनेहु न सुहाही॥
२११ बिन छल विश्वनाथपद नेहू। रामभक्त कर लक्षण येहू॥
२१२ शिव सम को रघुपतिव्रतधारी। बिन अघ तजी सती अस नारी॥

२१३ जेहि पर कृपा करहिं जन जानी। कविउर अजिर नचावहिं बानी ।।
२१४ हरिहर बिमुख धर्म रति नाही। ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाही ।।
२१८ यदपि योषिता अनअधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी ।।
४१८ गूढौ तत्त्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं ।।
२१६ जूठउ सत्य जाहि विन जाने। जिमि भुजग बिन रजु पहिचाने ।।
२१६ जेहि जाने जग जाइ हिराई। जागे यथा स्वप्नभ्रम जाई ।।
२२१ जिन हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवणरध्र अहिभवन समाना ।।
२२१ नयन्ह सन्तदरश नहि देखा। लोचन मोरपख कर लेखा ।।
२२१ ते शिर कटु तूमर सम तूला। जे न नमत हरि गुरुपदमूला ।।
२२२ जिन हरि भक्तहृदय नहिं आनी। जीवत शव समान ते प्रानी ।।
२२२ जो नहिं करैं रामगुण गाना। जीह सो दादुर जीह समाना ।।
२२२ कुलिश कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरिचरित न जो हरषाती ।।
२२२ रामकथा सुन्दर करतारी। सशय विहग उडावन हारी ।।
२२४ मुकुर मलिन अरु नयन विहीना। रामरूप देखहिं किमि दीना ।।
२२४ वातुलभूत विवश मतवारे। ते नहिं बोलहिं वचन विचारे ।।
२२४ जिन कृत महामोह मदपाना। तिनकर कहा करिय नहिं काना ।।
२२५ अगुण अरूप अलख अज जोई। भक्त प्रेमवश सगुण सो होई ।।
२२५ जो गुण रहित सगुण सो कैसे। जल हिमउपल विलग नहिं जैसे ।।
२२५ सहज प्रकाशरूप भगवाना। नाहिं तहँ पुनि विज्ञान विहाना ।।
२२६ हर्ष विषाद ज्ञान अज्ञाना। जीवधर्म अहमिति अभिमाना ।।
२२७ निज भ्रम नहिं समझहिं अज्ञानी। प्रभु पर मोह धरहिं जड प्रानी ।।
२२७ यथा गमन घनपटल निहारी। झम्पेउ भानु कहै कुविचारी ।।
२३० विवशहु जासु नाम नर कहही। जन्म अनेक रचित अघ दहही ।।
२३० सादर सुमिरण जे नर करही। भववारिधि गोपद इव तरही ।।
२३७ बोले विहँसि महेश तब, ज्ञानी मूढ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहि जब, सो तस तेहि क्षण होइ ।।
२३८ जे कामी लोलुप जग माही। कुटिल काक इव सबहिं डराही ।।
२३८ सूख हाड ले भाग शठ, श्वान निरखि गजराज ।।
छीन लेइ जनि जानि जड, तिमि सुरपतिहि न लाज ।।१२५।।
२३९ सीम कि चाँपि सकै कोउ तासू। बड रखवार रमापति जासू ।।
२४० राम कीन्ह चाहैं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई ।।
२४१ अतिप्रचड रघुपति की माया। जेहि न मोह अस को जग जाया ।।
२४५ जप तप कछु न होइ इहि काला। हे विधि मिलै कवन विधि बाला ।।
२४६ कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी। वैद न देइ सुनहु मुनि योगी ।।
२४८ मुनि अति विकल मोह मति नाठी। मणि गिर गई छूटि जनु गाँठी ।।
२४९ परम स्वतत्र न शिर पर कोई। भावै मन हि करहु तुम सोई ।।
२५० भले भवन अब वायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा ।।
२५१ जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव नर भक्ति हमारी ।।
२७१ तुलसी जसि भवितव्यता, तैसी मिलइ सहाय ।।
आपन आवे ताहि पहँ, ताहि तहाँ लेइ जाय ।।१५९।।
२७२ बैरी पुनि क्षत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहइ निज काजा ।।

२७२ समझि राज सुख दुखित अराती। अवाँ अनल इव सुलगइ छाती।।
२७३ रहहिं अपनपौ सदा दुराये। सब विधि कुशल कुवेष बनाये।।
२७३ तेहि ते कहहिं सत श्रुति टेरे। परम अकिंचन प्रिय हरि केरे।।
२७३ अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ, मैं न जनायउँ काहु।
लोकमान्यता अनलसम, करि तप कानन दाहु।।
२७४ तुलसी देख सुवेख, भूलहि मूढ न चतुर नर।।
सुन्दर केकिहि पेख, वचन सुधा सम अशन अहि।।१६१।।
२७४ प्रभु जानत सब विनहि जनाये। कहहु कवन सिधि लोक रिझाये।।
२७६ छठे श्रवण यह परत कहानी। नाश तुम्हार सत्य मम बानी।।
२७६ बडे सनेह लघुन पर करही। गिरि निज शिरन्ह न सदा तृण धरही।।
२७६ जलधि अगाध मौलि वह फेनू। सतत धरणि धरत शिर रेनू।।
२८० योगयुक्ति तप मत्र प्रभाऊ। फलै तबहि जब करिय दुराऊ।।
२८२ रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिय न ताहु।
अजहुँ देत दुख रवि शशिहि, शिर अवशेषित राहु।।१७०।।
२८२ परिहरि सोच रहहु तुम सोई। विन औषधिहि व्याधि विधि खोई।।
२८५ भूपति भावी मिटइ नहिं, यदपि न दूषण तोर।
किये अन्यथा होय नहिं, विप्रशाप अति घोर।।१७४।।
—२८५ सोचहिं दूषण दैवहिं देही। विचरत हंस काग किय जेही।।
२८६ भरद्वाज सुन जाहि जब, होइ विधाता वाम।
धूरि मेरु सम जनक यम, ताहि व्याल सम दाम।। १७५।।
२९३ नित नूतन सब बाढत जाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई।।
२९४ कामरूप जानिहिं सब माया। सपनेहुँ जिनके धर्म न दाया।।
२९८ बाढे खल बहु चोर जुआरा। जे लम्पट परधन परदारा।।
२९८ मानहिं मात पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा।।
२९८ जिनके ये आचरण भवानी। ते जानहु निशिचर सम प्रानी।।
२९८ गिरि सरि सिन्धु भार नहि मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही।।
३०० जाके हृदय भक्ति जस प्रीती। प्रभु तहँ प्रकट सदा तेहि रीती।।
३०० हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रकट होहिं मैं जाना।।
३०० देश काल दिशि विदशिहु माही। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाही।।

उत्तरार्द्ध

३५९ धाये धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रक निधि लूटन लागी।।
३७२ श्याम गौर किमि कहौ बखानी। गिरा अनयन नयन बिन बानी।।
३७३ वरणत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवशि देखयहि देखन योगू।।
३७६ रघुवशिन कर सहज सुभाऊ। मन कुपथ पग धरै न काऊ।।
३७६ मोहि अतिशय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहुँ परनारि न हेरी।।
३७६ जिनके लहहिं न रिपुरण पीठी। नहिं लावहिं परतिय मन डीठी।।
३७६ मगन लहहिं न जिनके नाही। ते नर वर थोरे जग माही।।
३८४ सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजहि मनकामना तुम्हारी।।
३८५ राम कहा सब कौशिक पाही। सरल सुभाव छुआ छल नाही।।
३८५ सुफल मनोरथ होहिं तुम्हारे। राम लषन सुनि भये सुखारे।।

३९१ जिनके रही भावना जैसी। प्रभुमूरति तिन देखि तैसी॥
३९७ वृथा मरहु जनि गाल बजाई। मनमोदक नहिं भूख बुझाई॥
४९७ सुधासमुद्र समीप बिहाई। मृगजल निरखि मरहु कत धाई॥
४०४ डगै न सभु शरासन कैसे। कामीवचन सती मन जैसे॥
४०८ तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना॥
४११ सखि सब कौतुक देखनहारे। जेउ कहावत हितू हमारे॥
४११ कोउ न बुझाइ कहइ नृप पाही। ये बालक अस हठ भल नाही॥
४११ सो धनु रजकुँअर कर देही। बाल मराल की मन्दर लेही॥
४११ बोली चतुर सखी मृदुबानी। तेजवन्त लघु गनिय न रानी॥
४१२ काम कुसुम धनुशायक लीन्हे। सकल भुवन अपने वश कीन्हे॥
४१३ सचिव सभय सिख देइ न कोई। बुध समाज वड अनुचित होई॥
४१३ विधि केहि भाँति धरहुँ उर धीरा। सिरिस सुमन किमि बेधिय हीरा॥
४१३ सकल सभा की मति भइ भोरी। अब मोहि शभुचाप गति तोरी॥
४१४ गिरा अलिनि मुख पकज रोकी। प्रकट न लाज निशा अवलोकी॥
४१५ लोचन जल रह लोचन कोना। जैसे परम कृपण कर सोना॥
४१५ जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु सदेहू॥
४१७ तृषिति वारि बिन जो तनु त्यागा। मुये करै का सुधा तडागा॥
४१७ का वर्षा जब कृषी सुखाने। समय चूक पुनि का पछताने॥
४२१ सखिन्ह सहित हरषि सब रानी। सूखत धाम परा जनु पानी॥
४२१ जनक लहेउ सुख सोच विहाई। पैरत थके थाह जनु पाई॥
४२२ श्रीहत भये भूप धनु टूटे। जैसे दिवस दीप छवि छूटे॥
४२६ बल प्रताप वीरता बडाई। नाक पिनाकहि सग सिधाई।
४२६ सोइ शूरता कि अब कहुँ पाई। अस बुधि तौ विधि मुँह मसि लाई॥
४२७ लोभी लोलुप कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई॥
४३६ अपने मुख तुम आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी॥
४३६ नही सतोष तो मुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू॥
४३७ शूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आप।
विद्यमान रिपु पाइ रण, कायर करहिं कलाप॥
४३९ अब आनिय ब्यवहरिया बोली। तुरत देउँ मै थैली खोली॥
४३९ मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहिं के बाढे॥
४४० जो लरिका कछु अनुचित करहिं। गुरु पितु मातु मोद मन भरही॥
४४१ थर थर कापहि पुर नर नारी। छोट कुमार खोट वड भारी॥
४४१ मन मलीन तनु सुन्दर कैसे। बिषरस भरा कनक घट जैसे॥
४४१ बररे बालक एक सुभाऊ। इनहिं न सत बिदूषहिं काऊ॥
४४३ बाउकृपा मूरति अनुकूला। बोलत वचन झरत जनु फूला॥
४४३ जो पै कृपा जरहि मुनि गाता। क्रोध भये तनु राखु विधाता॥
४४४ विहँसे लषन कहा मुनि पाही। मूँदहु नयन कतहुँ कोउ नाही॥
४४५ गुनहु लषन कर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहु ते बड दोषू॥
४४५ टेढ जानि शका सब काहू। वक्र चन्द्रमहि ग्रसै न राहू॥
४४६ हमहिं तुमहिं सरबर कस नाथा। कहहु तो कहाँ चरण कहँ थामा॥

४४७	भजेउ चाप दाप बड़ बाढा । अहमिति मनहुँ जीति जग ठाढा ।।
४४७	राम कहा मुनि कहहु विचारी । रिस अति बडि लघु चूक हमारी ।।
४४८	जो रण हमहिं प्रचारइ कोऊ । लरहिं सुखेन काल किन होऊ ।।
४४८	क्षत्रिय तनु धरि समर सकाना । कुल कलक तेहि पामर जाना ।।
४४८	व्रिप्रवश की अस प्रभुताई । अभय होइ जो तुमहिं डराई ।।
४५८	तिन कहँ कहिय नाथ किमि चीन्हे । देखिय रवि कि दीप कर लीन्हे ।।
४५९	देव देखि तब बालक दोऊ । अब न आँखि तर आवत कोऊ ।।
४६०	सुनि बोले गुरु अति सुख पाई । पुन्य पुरुष कहँ महि सुख काई ।।
४६०	जिमि सरिता सागर महँ जाही । यद्यपि ताहि कामना नाही ।।
४६०	तिमि सुख सम्पति बिनहिं बुलाए । धर्मशील पहँ जाहिं सुभाये ।।
४६८	महा भीर भूपति के द्वारे । रज होइ जाइ पषान पबारे ।।
४७२	नित नूतन सुख लखि अनुकूले । सकल बरातिन मन्दिर भूले ।।
४७४	चले जहाँ दशरथ जनवासे । मनहुँ सरोवर तकेउ पियासे ।।
४७७	विविध भाँति होइहि पहुनाई । प्रिय न काहि अस सासुर माई ।।
४७९	उपरोहितहि कहेउ नरनाहा । अब विलम्ब कर कारण काहा ।।
५०३	सुर साधु चाहत भाव सिन्धु । कि तोष जल अजलि दिये ।।
५०३	सम्बन्ध राजन रावरे हम । बडे अब सब बिधि भये ।।
५१६	होइहु सन्तत पियहि पियारी । चिर अहिवात असीस हमारी ।।
५१७	बहुरि बहुरि भेटहिं महतारी । कहहिं विरचि रची कत नारी ।।
५२०	पुनि पुनि मिलति सखिन्ह बिलगाई । बालबच्छ जिमि धेनु लवाई ।।
५२१	भये विकल खगमृग इहि भाँति । मनुज दशा कैसे कहि जाती ।।
५२१	लीन्हि राय उर लाय जानकी । मिटी महा मर्याद ज्ञान की ।।
५२२	समझावत सब सचिव सयाने । कीन्ह विचार अनवसर जाने ।।
५२५	मै कछु कहहुं एक बल मोरे । तुम रीझउ सनेह सुठि थोरे ।।
५३७	बधू लरकिनी परघर आईं । राखेहु नयन पलक की नाईं ।।
५३९	मुनिप्रसाद बलि तात तुम्हारी । ईश अनेक करवरें टारी ।।
५४०	आज सुफल जग जन्म हमारा । देखि तात विधुवदन तुम्हारा ।।
५४३	करब सदा लरिकन्ह पर छोहू । दरशन देत रहब मुनि मोहू ।।
५४४	आये ब्याहि राम घर जबते । बसे अनन्द अवध सब तब ते ।।
५४५	सिय रघुवीर विवाह, जे सप्रेम गावहिं सुनहिं ।
	तिन कहँ सदा उछाह, मगलायतन रामयश ।।

पुरौनी सम्पूर्ण

शुभम् भूयात्